CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

0152,1A1 5231
NA
Ayodhyaji
Manas-piyush: Aran-
yakanda

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

3273

5231

0152,1A1
NA

SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
(LIBRARY)
JANGAMAWADIMATH, VARANASI

5231

0152,1A1
NA

Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीसीताराम

मानस-पीयूष

अरण्यकांड

श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदासजीकी रामायणपर श्री पं० रामकुमारजी, श्री पं० रामवल्लभाशरणजी महाराज (व्यास), श्रीरामायणी रामबालकदासजी, एवं श्रीमानसी बंदनपाठकजीकी अप्राप्य और अप्रकाशित टिप्पणियाँ एवं कथाओंके भाव; बाबा श्रीरामचरणदासजी, श्रीसंतसिंहजी पंजाबी ज्ञानी, बाबा श्रीहरिहरप्रसादजी, श्रीहरिदासजी, श्रीपांडे रामबख्शजी, श्री पं० शिवलाल पाठकजी, श्रीबैजनाथजी, आदि पूर्व मानसाचार्योंके भाव; आजकलके समस्त टीकाकारोंके विशद एवं सुसंगत भाव तथा प्रो० रामदासजी गौड़ एम० एस सी०, प्रो० लाला भगवानदीनजी, प्रो० पं० रामचन्द्रजी शुक्ल, पं० यादवशंकरजी जामदार रिटायर्ड सबजज आदि आधुनिक मानसविज्ञोंकी आलोचनात्मक व्याख्याओंका सुंदर संग्रह।)

संपादक एवं प्रकाशक

श्रीजनकसुताशरण शीतलासहाय सावंत

श्रीअयोध्याजी

श्रीसीताराम प्रेस, बुलानाला काशी में मुद्रित।

प्रथमावृत्ति] तुलसी संवत् ३०८ [मूल्य २॥।)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

O152,1A1
NA

"मानस-पीयूष" के ग्राहकोंके लिए नियम

१—चौथे पाँचवें महीने एक मोटी पुस्तक प्रकाशित होतीहै।

२—स्थायी ग्राहकोंको ॥) प्रवेश-शुल्क देना होताहै। जिससे उन्हें आगे प्रकाशित होनेवाले कांडों वा पुस्तकों में २०) प्रति सैकड़ा मूल्यमें कमी करदीजातीहै और जैसे ही पुस्तक तैयार होतीहै उनके पास वह वी० पी० पी० द्वारा भेजदीजातीहै।

स्थायीग्राहकोंको उचित है कि यदि वे अपना पता बदलें तो उसकी सूचना अवश्य देदिया करें जिसमें वी० पी० पी०के लौटनेका संदेह न रहे।

३—नवीन ग्राहकोंको पुस्तकें बिना चौथायी मूल्य अग्रिम आए नहीं भेजीजातीं, क्योंकि एक तो वी० पी० पी० डाकघरमें अब दो दिन ही रखाजाताहै तीसरे दिन लौटा दिया जाताहै, दूसरे कई बार लोगोंने वी० पी० पी० मँगाकर फिर छुड़ाया नहीं।

४—पत्रोत्तरके लिए सदैव जवाबीकार्ड आना चाहिए।

५—बाल, अयोध्या, अरण्य और सुन्दरकांडका तिलक प्रकाशित होचुकाहै। किष्किधाकांड छपरहाहै जो चैत्रके प्रारंभमें ग्राहकोंके पास जायगा। फिर लंका और उत्तर क्रमसे प्रकाशित होंगे। एक वर्षके भीतर-ही श्रीसीतारामकृपासे सब कांड समाप्त होजायेंगे।

६—बाल (२२७८ पृष्ठ,अजिल्द), अयोध्या (१५२४ पृष्ठ दो जिल्दोंमें), अरण्य (४५२पृष्ठ) और सुन्दर (५०४ पृष्ठ) चारों कांड एक साथ लेनेसे २२॥) पड़ता है। डाक-व्यय २≡) अलग पड़ताहै।

७—जो स्थायीग्राहक होनाचाहतेहैं पर एकसाथ नहीं ले सकते उनको बाल १०) में, अयोध्या ८) में, अरण्य २॥) में और सुंदर ३।) में मिलताहै। डाक-व्यय अलग पड़ताहै।

८—किष्किधा, लंका और उत्तर की न्यवछावर लगभग १॥।), ३।) और ३॥।) क्रमसे होगी।

☞ यह जानकर प्रेमियोंको हर्ष होगा कि मानस-पीयूषके लिए भूमिका प्रोफेसर श्रीरामदासजी गौड़ एम० एस० सी० लिखरहेहैं।

संपादक, 'मानस-पीयूष'

श्रीअयोध्याजी

S. JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY.
Jangamwadi Math, VARANASI,
Acc. No. 5231
CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानमंदिर

वक्तव्य

। श्रीः ।

बालकांड और अयोध्याकांडकी हस्तलिखित प्रतियां पूज्यपाद श्रीमद्गोस्वामीजीके समयकी उपलब्ध होनेसे मानसके शुद्ध पाठके विषयमें बहुत सुगमता रही। इन दो कांडोंको छोड़ शेष ५ कांडों की कोई प्रतिलिप गोस्वामीजीके समयकी उपलब्ध न होनेसे ठीक पाठ कौन है इसके निश्चय करनेमें अत्यन्त कठिनता जानपड़तीहै।

१७०७ की लिखीहुई काशीराजकी प्रतिलिपिमें इन काण्डोंमें क्षेपक मिलेहुएहैं। यह बात छपीहुई प्रतिसे स्पष्ट सिद्ध होरहीहै। छपी हुई प्रति हस्तलिखित प्रतिके अनुसार नहीं छपी है। और कई मानस-विज्ञोंका सम्मत है कि छपी प्रति (रामायणपरिचर्या) के अरण्यकाण्डमेंभी प्रक्षिप्त है। दूसरी प्रति १७२१ की है, श्रीभागवतदासजीके पास इसकी दो प्रतिलिपियाँ थीं जो उन्होंने स्वयं लिखीं और उस प्रतिसे मिलान कीं। यही प्रति पं० रामगुलाम द्विवेदीजी, छक्कनलालजी, वंदनपाठकजी, पं० रामकुमारजी इत्यादिकी समझिए। ये सब महानुभाव एकही परिपाटी (School) के हैं।

पं० शिवलालपाठकजीके यहाँ परंपरासे आईहुई एक प्रतिलिपि कहीजातीहै, पर इसमेंभी मेरी समझमें पंडितोंका हाथ लगचुकाहै। उसके शुद्ध पाठमेंभी हमें संदेह है।

खूब विचार करनेपर यही निश्चय कियागया कि इस ग्रंथमें श्रीभागवतदासजीकी हस्तलिखित प्रतिका पाठ रक्खाजाय जो श्रीसद्गुरुसदन, गोलाघाट, श्रीअयोध्याजीमें विराजमान्है और जिसके उतारले और छपानेकी आज्ञाभी संपादकको श्री १०८ स्वामी रामवल्लभाशरणजी महाराजने देदीहै। जहाँ पाठभेद है वहाँ पाठान्तर और उनपर विचारभी दिएगएहैं। कहीं-कहीं भागवतदासजीका पाठ उत्तम न समझकर नहीं लियाहै।

अरण्यकांडकी प्रतियोंमें बड़ा गड़बड़ है। किसीने तो छठे दोहेके बाद नवीन अंक '१' से सातवाँ दोहा प्रारंभ कियाहै और किसीने वही पूर्वका सिलसिला कायम रक्खाहै। गोस्वामीजीने कैसा रक्खाथा यह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निश्चय नहीं कहाजासकता। संभव है कि बादको अरण्यकांडमें अयोध्या-की 'इति' मानकर उस स्थानसे नया अंक दियागयाहो।

'मानस-पीयूष' में दोनों अंक दिएगएहैं क्योंकि उदाहरणदेनेमें दो बार एकही अंक एकही कांडमें आनेसे भ्रम और ढूँढ़नेमें कठिनाई होना बहुत संभव है।

बाल और अयोध्याकांडोंकी लेखनशैली एकसी है। उनमें प्रायः संयुक्ताक्षरोंका प्रयोग नहीं कियागयाहै। पर, अरण्यकांड आदिकी १७०७ और १७२१ दोनों प्रतिलिपियोंमें संयुक्ताक्षरोंका प्रयोग बहुत हुआहै। नागरीप्रचारिणी सभाने उसको बाल और अयोध्याकांडोंके अनुसार बहुत कुछ बना लियाहै। पर 'मानस-पीयूषमें' प्राचीन प्रतिलिपियोंके अनुसारही पाठ ज्योंकात्यों रखदेना उचित समझागया। प्राचीन पाठों-को बदलकर अपनी बुद्धिके अनुसार मनमाना पाठ देना 'मानस-पीयूषका' अभीष्ट नहीं है। संभव है कि तुलसीके शब्दोंकी चोखाई आजके बहुतसे साहित्यिज्ञभी न समझ सकें पर कल कोई ऐसा पैदा हो जो उसीको बतासके। जैसे एक फ़ार्सी भाषाके कवि (हाफ़िज...) के बारेमें कहा-जाताहै कि उनकी कवितामें एक जगह व्याकरणकी अशुद्धिपर एक पंडित मोलवीजी हँसे और उनसे जाकर उनकी अशुद्धि बताई। उन्होंने उत्तर दिया कि ये वाक्य गधेके हैं मैं नहीं जानता था कि गधाभी व्याकरण जानताहै नहीं तो यह गलती न होती। मोलवीसाहब बहुत लज्जित हुए। इसी प्रकार आज पूज्य कवि होते तो पाठका उत्तर देते; तो भी पं० राम-कुमारजीके जहाँ तहाँके टिप्पणसे प्राचीन पाठकी मौलिकता सिद्ध है— जहाँ कि आधुनिक पंडितोंने अपनी बुद्धिके अभिमानमें पाठ बदल दिएहैं।

'इत उत' महावरा है पर कई ठौर कवि ने 'इत इत' रखाहै और उसमें गूढ़ भाव भरेहैं पर पंडितोंने न समझकर 'इत उत' करदियाहै। 'सीता बोला' को व्याकरणियोंने 'सीता बोली' और 'मन डोला' को 'मति डोली' कर दिया..... इत्यादि। 'मानस-पीयूष'ने प्राचीन ही पाठ दियाहै और उसकी उपयुक्तता दिखाईहै।

☞ नोट और कोष्टकांतर्गत लेख प्रायः संपादकीय टिप्पण हैं।

कविका ठीक आशय कविके उसी शब्द या पदके अन्यत्र प्रयोगसे ही यथार्थ जानाजासकताहै, इसलिए उदाहरणोंके देनेकी आवश्यकता होतीहै। दूसरा लाभ इससे यहभी है कि पाठकोंको कविके अन्य ग्रंथों काभी परिचय इससे होगा और उनमेंभी उनकी रुचि बढ़ेगी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जनताकी रुचि समानार्थी श्लोकोंकी ओर अधिक देखकर इस तिलकमें तुलनार्थ समानार्थी श्लोकभी दिएगएहैं। विशेषतः जहाँ इन श्लोकोंसे कठिन समस्याएँ हल होतीहैं वहाँ तो ये अवश्यही बिना विस्तार के भयके उद्धृत किएगएहैं। जिससे फिर संदेह नहीं रहजाता कि कौन अर्थ वा भाव ठीक है।

'मानस-पीयूषका' अभिप्राय केवल संग्रहका रहाहै वही प्रायः इसमेंहै। संग्रहको देखकर पाठक स्वयं विचार करलें कि कौन अर्थ और भाव प्रसंगानुकूल हैं। संपादकको जो ठीक जँचताहै प्रायः वही अर्थ प्रथम दियाजाताहै। पर दूसरोंकेलिए राह खुली रहतीहै, वे जिसे अच्छा समझें उसे चुनलें।

कथाएँ प्रामाणिक ग्रंथोंसे दीजातीहैं न कि टीकाओंसे। शब्दसागर आदि से शब्दार्थ और तुलनात्मक श्लोक वाल्मीकीय, अध्यात्म आदि रामायणों, श्रीमद्भागवत्, हनुमन्नाटक और पं० रामकुमारजी एवं श्री मानसी-वंदनपाठकजीके संग्रह आदिसे एवं बाबू रणबहादुरसिंहकी टीकासे लिएगएहैं।

☞ अरण्य और अगले कांडोंमें 'टिप्पणी' से केवल पं० रामकुमारजीके साफ़ खर्रों में दिएहुए भाव समझना चाहिए।

दीन,

श्रीजनकसुताशरण शीतलासहाय

संपादक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विनम्र निवेदन

प्रिय मानस-प्रेमीजी,

इधर कई माससे शरीर अस्वस्थ रहनेसे संपादक काशीजीमें रह नहीं सकताथा और प्रूफके काशीजीसे अयोध्याजी आने-जानेमें बहुत समय लग जाताथा। अतएव प्रेसके यह विश्वास दिलाने पर कि पुस्तक हूबहू लेखके अनुसार शुद्ध छाप दीजायगी यह कांड छपगया। अब देखा तो वह बहुत अशुद्ध छपी देखपड़तीहै। प्रेस-पर छोड़देनेमें मेरी मूर्खता और अज्ञान अब मुझे ज्ञात हुआ। कृपया इसबार क्षमा करें।

कुछ हस्तलिखित खर्रे नहीं मिले अतः उन पृष्ठोंके श्लोकोंकी शुद्धि नहीं कीजासकी। शेष सारी पुस्तकमें जहाँतक बनपड़ा मुख्य अशुद्धियाँ छाँटकर यह शुद्धिपत्र तैयार कियागया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संकेताक्षरों का विवरण

अ०=अयोध्याकांड=अध्याय
अ० मं०=अलंकार मंजूषा
आ०=अरण्यकांड
उ०=उत्तरकांड
क०=कवितावली
करु०, करुणासिंधुजी=बाबारामचरणदासकृत टीका
कल्याण=भक्तिज्ञानसमन्वित मासिकपत्र (गोरखपुर) से ।
का०, काशी, काशिराज=काशिराजके यहांकी प्रति
कि०=किष्किंधाकांड
काष्ठजिह्वास्वामी=रामायण-परिचर्याकार देवतीर्थ स्वामी
खर्रा=पं० रामकुमारजीके प्रथमावस्थाकेलिखेहुए टिप्पण
गुटका=वह मूल जो पं० रामगुलाम द्विवेदीजीकी पोथीसे छपाया गया
गौड़जी, गौड़=प्रोफ़ेसर श्रीरामदास गौड़, एम० एस० सी०
गणपति उपाध्याय=उनकी मानसतत्वप्रकाश शंकावली
गी०=गीतावली
गीता=श्रीमद्भगवद्गीता
चौ०=चौपाई
छ०=छक्कनलालजी
दो०=दोहावली
दीनजी=लाला भगवानदीनजी
टिप्पणी=पं० रामकुमारजी के भाव
जंगबहादुरसिंह=उनका 'शंकामोचन'
न० प्र०, ना० प्र०=काशी नागरीप्रचारिणी-सभाकृत मूल नोट—संपादकीय टिप्पण
पं०, पंजाबीजी=श्रीसंतसिंहजी ज्ञानी पंजाबीकृत भाव प्रकाश टीका
पु० र० कु०, खर्रा,=पं० रामकुमारजीके वह हस्तलिखित टिप्पण जो पुरुषोत्तमदत्तजीसे प्राप्त हुए
पु०=पुराण
पांड़ेजी, पां०=श्री पं० रामबख्श पाँड़े प्रसिद्ध रामायणी प्रयागजीके भाव समन्वित टीका जो मुं० रोशनलालजीने छपाई ।
पं० रा० गु० द्वि, द्वि०=पं० रामगुलाम द्विवेदी मिर्ज़ापुरी ।
भक्तमाल=श्री १०८ नाभास्वामीकृत भक्तमाल तथा श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीकाकवित्त ।
भ० द०, भा० द०=भागवतदासजीकी प्रतिलिपि
भा० स्क०=श्रीमद्भागवत् स्कंध
मं०=मंगलाचरण
मं० श्ल० (श्लो०)=मंगलाचरणका श्लोक
मा० त० प्र०=मानसतत्व प्रबोधिनी
मा० त० सु०=मानसतत्वसुधा व्याख्या ।
मा० त० भा०=मानसतत्वभास्कर पं० रामकुमारजीकी टीकाका नाम ।
मा० म०=मानसमयंककी टीका वा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इंद्रदेवनारायणसिंहजीकृत

मा० शं० म०=मानस शंकामोचन। (बाबू जंगबहादुरसिंहजीकृत)

मा० श०=श्रीमन्मानसशंकावली

मा० श० स०=मानस शंका समाधान (गणपति उपाध्याय)

मा० स०=मानस-संपादक

मा० हं०, मानस-हंस, जामदारजी } श्रीयादवशंकरजी रिटायर्डसबजज-कृत तुलसीरहस्य

रा० प०=काष्ठजिह्वास्वामीजीके भाव

रा० प० प०=रामायणपरिचर्या परिशिष्ट

रा० प्र०, प्र०=बाबाहरिहरप्रसादजी-कृत रा० प० प० पर प्रकाश

श्रीरूपकलाजी=महात्मा वैष्णवरत्न श्री १०८ सीतारामशरण भगवान् प्रसादजी

र० ब०, रणबहादुरसिंह=उनकी टीका

(पं०) रा० चं० शुक्ल=पं० रामचन्द्र शुक्ल प्रोफ़ेसर विश्वविद्यालय काशी (कृत लेख तुलसीग्रंथावलीसे)

(पं०) रा० चं० दूबे दूबेजी, पं० रामचन्द्र } उनला लेख ग्रंथावलीसे

रा० प्र० श०=रामायणप्रचारक साकेतवासी बाबा रामप्रसादशरण 'दीन'।

लं०=लंकाकांड

वा०=वाल्मीकीय

वै० सं०=वैराग्यसंदीपिनी

वै०, बैजनाथजी=श्रीबैजनाथजीकृत तिलक

वि०, विनय=विनयपत्रिका

बाबा हरीदास=उनकी टीका

वि० टी०=विनायकी टीका (पं० विनायकरावनायककृत)

वीर, वीरकवि=पं० महावीरप्रसाद मालवीयकृत टीका

विन्दुजी=ब्रह्मचारी श्रीविन्दुजी संपादक कथामुखी

व्यासजी, पं० रा० ब० श०=श्री १०८ स्वामी पं० रामवल्लभाशरणजीकी कथासे।

श० स०, श० सा०=नागरीप्रचारिणी सभाकृत हिंदी शब्दोंका कोष, शब्दसागर

शिला=बाबा हरिदासजीकृत टीका

श०सुं०=बाबू श्यामसुंदरदासकृत टीका

श्री०मि०, श्रीधर मिश्र=उनके भाव जो मा० शं० में दिए हैं।

श्ल०, श्ला०=श्लोक

शुक्लजी=पं०रामचन्द्र शुक्ल प्रोफ़ेसर

सं०=संस्कृत, संहिता

स०=सर्ग

सुं०=सुंदरकांड

§=दोहा वा सोरठाका अंक और उसके आगेकी चौपाई

∴=इसलिए

=अर्थात्

☞ स्मरणरखने योग्य बातें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

। श्रीः ।

श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासचरणकमलेभ्योनमः ।
कृपानिधये श्रीहनुमते नमः । श्रीगिरिजापतये नमः ।
श्रीसीतारामचरणकमलेभ्योनमः ।
श्रीमानसानुरागिचरणकमलेभ्योनमः ।
श्रीगुरुवर चरणकमलेभ्योनमः ।

श्रीरामचरितमानस

मानस-पीयूष

नामक टीकासंग्रहसहित

तृतीय सोपान

(अरण्यकाण्ड†)

श्रीगणेशायनमः

मूलं धर्म-तरोर्विवेकजलधे पूर्णेन्दुमानंददं ।
वैराग्यांबुज भास्करं ह्यघघनं ध्वांतापहं तापहं ॥

---

† १—रा० प्र० श०—पार्वतीजीका छठा प्रश्न है—'बन बसि कीन्हेउ चरित अपारा' । इसका उत्तर अरण्य, किष्किन्धा और सुन्दरकाण्डों में वर्णन कियागयाहै । 'बन' शब्दका प्रयोग इन तीनोंमें विशेषरूपसे हुआहै परन्तु इस काण्डमें सबसे अधिक हुआहै । अतएव इस काण्डका नाम' बनकाण्ड' (पं० शिवलालपाठकके मतानुसार) वा अरण्यकाण्ड हुआ ।—(सुं० परिशिष्ट में गौड़जीका टिप्पण देखिए ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मोहांभोधर पूग पाटन बिधौ स्वः संभवं * शंकरं ।
वंदे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्रीरामभूपप्रियं † ॥१॥

अर्थ—धर्म्मरूपी वृक्षके मूल (जड़), विवेकरूपी समुद्रको आनन्द देनेवाले पूर्णचन्द्र, वैराग्यरूपी कमलके (को प्रफुल्लित करनेके लिए) सूर्य्य, पापरूपी घोर अन्धकारको निश्चयही मिटानेवाले, (दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों) तापोंके हरनेवाले, मोहरूपी बादलोंके समूहको विच्छिन्न करने (तितर बितर, छिन्न-भिन्न करने वा उड़ाने) की विधिमें पवनस्वरूप, शं अर्थात् कल्याणके करनेवाले, ब्रह्मकुल (वा, ब्रह्मकुलके) ‡ कलङ्कके नाशक, और राजा श्रीरामचन्द्रजीके प्यारे एवं जिनको राजा श्रीरामचन्द्रजी प्रिय हैं, उन श्रीशङ्करजीको मैं प्रणाम करताहूँ।

* श्वासं भवं—(का०, न० प्र०) श्वासं भवं=दक्षिणवायुरूप हैं और भव एवं शंकर नामवाले। खे संभवं—(वै०)। 'श्वः संभवं भी कहीं २ है।

† यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है। ब० मं० श्ल० ६ में श्रीरघुनाथजीकी वन्दना इसी छन्दमें कीगईहै। वहाँ इसका स्वरूप लिखाजाचुकाहै। इसके चारों चरणोंमें १८-१८ अक्षर होतेहैं और मगण-सगण-जगण-सगण-दो तगण-अन्तका वर्णगुरु, यह स्वरूप है। ☞ यह बात स्मरण रखने योग्य है कि सातो काण्डोंके मङ्गलाचरणके आदि श्लोकमें मगण गणकाही प्रयोग हुआहै! अर्थात् सर्वत्र आदिके तीनों वर्ण गुरुही हैं--वर्णानां, यस्यांके वा वामांके, मूलं धर्म, कुन्देदीवर, शान्तं शास्वतं, रामं कामारिसेव्यं और केकीकंठाभ। बालकांडमें कहाजाचुकाहै कि मगणका फल है 'श्रिय' कल्याणका विस्तार करना। वक्ता श्रोता दोनोंके कल्याणके हितार्थ इस गणका सर्वत्र प्रयोग कियागया।

‡ 'ब्रह्मकुल' के कई प्रकारसे अर्थ किएगएहैं। १—ब्रह्मकुल=ब्रह्मरूप, ब्रह्म अर्थात् ईश्वरकोटि, यथा—'विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं'। भाव कि ये ईश्वर हैं, जीव नहीं हैं—(वै०)। २—कुल=देश, गोत्र, सजातीय, भवन और तन। यथा—'कुल जनपदे गोत्रे सजातीये गणेपि च इति मेदिनी'। अर्थात् शंकरजीका देश, गोत्र, सजातीय आदि सब कुछ ब्रह्म ही है।—(पं०)। ३—ब्रह्म=ब्राह्मण, यथा—'मोहि न सुहाइ ब्रह्मकुल द्रोही'। ब्रह्मकुल=ब्राह्मण है कुल जिसका।—(प्र०)। ब्रह्मकुल कलंकशमनं=ब्राह्मणकुलके कलंकके नाशकरने वाले।—(करु०, पां०)। अर्थात् अपना ब्राह्मणत्व धर्म छोड़कर परधर्मपर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु०—'मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधे० 'इति । १ (क)—धर्मपर वृक्षका आरोपणकरके शिवजीको* उसका मूल कहा। जड़के बिना वृक्ष खड़ा नहीं रहसकता, सूखही जाताहै और केवल जड़के सींचनेसे पूरा वृक्ष हराभरा रहताहै। वैसेही यहाँ 'मूल' कहकर जनाया कि शिवसेवासे धर्मकी उत्पत्ति, पालन और वृद्धि होतीहै, इसीसे सम्पूर्ण धर्म हरे-भरे रहतेहैं।—(नोट—शास्त्रोंमें धर्म चार प्रकारके कहेगएहैं—तप, शौच वा ज्ञान, दया और दान। ये ही धर्मके चार पैर मानेगएहैं। यथा—'चारहु चरन धरम जगमाहीं। पूरिरहा सपनेहु अघ नाहीं'— (उ० § ४३) पुनः, धर्म=सुकृत, पुण्य। जितने धर्म्म हैं वे चारोचरणोंमें आगए। करुणासिंधुजी धर्मसे भगवत्-भागवत-धर्म लेतेहैं।] (ख)—धर्मसे अघका नाश होताहै, यथा—'चारिहु चरन धरम...अघनाहीं। अघनाशसे चित्तकी शुद्धि होती है तब विवेक होताहै और विवेक से आनन्द होताहै ब्रह्मानन्दकी प्राप्तिसे विषयोंसे सर्वथा वैराग्य हुआ। यथा—विनय (पद ७५)

चलना कलंक है उसको शङ्करजी नाश करदेतेहैं यदि उनका भजन कियाजाय, क्योंकि वे रामानन्य हैं—(करु०)। वा, भृगुजी ब्राह्मणकुलमें कलंक हुए कि उन्होंने भगवान्‌को लात मारी। वह कलंक इनके द्वारा मिटा क्योंकि परम भक्त भगवान्‌के हुए। ४—ब्रह्म= ब्रह्मा। ब्रह्माके कुलके हैं। इसतरह कि एक रुद्र ब्रह्मासे उत्पन्न हुआ। सृष्टिको बढ़ते न देख ब्रह्माजी भगवान्‌का चिन्तवन् करनेलगे उसी समय सनकादिक उत्पन्न हुए। ब्रह्माजीने उनसे सृष्टि रचनेकी आज्ञा दी पर उन्होंने यह आज्ञा न मानी और वनको चलदिए। तब ब्रह्माजीको बहुत क्रोध हुआ उसी तामसी वृत्तिके समय उनके ब्रह्माण्डसे एक नीलवर्ण बालक उत्पन्न हुआ जो बहुत रोया। इसीसे उसका नाम रुद्र रखागया। ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक रुद्र यह है। अतः शिवजीको ब्रह्माका ब्राह्मण कुल कहा।

* इस श्लोकमें शंकरजीके अष्टस्वरूपयुक्त मूर्तिकी वन्दना कीगई। अष्ट स्वरूप यथा—'भूर्जलं वह्निराकाशं वायुर्यज्वा शशिः रविरित्यष्टौ मूर्त्तयः शम्भोर्मङ्गल जनयन्तुनः। धर्मसे यज्ञमूर्त्ति, पूर्णेन्दुसे चन्द्ररूप, भास्करसे सूर्य्यरूप, तरुमूलसे पृथ्वीतत्वस्वरूप, इन्दु जलमय है उससे (वा, जलधि से) जल तत्वरूप, स्वः से आकाशरूप और स्वः संभवंसे पवन तत्वरूप एवम् सूर्य्य अग्नि (तेज) मय है उससे अग्नितत्वरूप। पंचतत्व, यज्ञ, सूर्य्य, और चन्द्र येहा अष्टरूप हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"मोहमय कुहूनिसा बिसाल काल बिपुल सोयो खोयो सो अनूप रूप स्वप्न जूझ रे। अब प्रभात प्रगट ज्ञानभानुके प्रकास बासना सराग मोह-द्वेष निबिड तम टरे॥ भागे मद मान चोर भोर जानि जातुधान काम क्रोध लोभ छोभ निकर अपडरे। देखत रघुबरप्रताप बीते संताप पाप ताप त्रिविधि प्रेम-आप दूरही करे॥ श्रवन सुनि गिरा गँभीर जागे अति धीर बीर बर बिराग तोष सकल संत आदरे।"

(ग) कर्ममें फल लगताहै इसीसे धर्मको तरु कहा। ज्ञान अगाध है उसका अंत नहीं अतः उसे समुद्र कहा, यथा—'गुर बिबेकसागर जग जाना' और 'गुरुं शङ्कररूपिणम्'। वैराग्यसे संग दोष नहीं रहता अतः उसे कमल कहा, यथा—'पदुमपत्र जिमि जग जल जाय'। जैसे कमल जलसे निर्लिप्त वैसेही वैराग्य विषयसे रहित। मोह ज्ञानको ढाँप लेताहै जैसे मेघ सूर्य्यको, जथा गगन घन-पटल निहारी। झंपेउ भानु कहहिं०। अतएव मोहको अम्भोधर अर्थात् मेघ कहा। पुनः, (घ) धर्म्मसे चित्तकी शुद्धि होकर ज्ञान उत्पन्न होताहै और धर्मसेही वैराग्यभी होताहै, यथा—'धर्मते बिरति०'। तब भक्ति होतीहै। यथा—'जानिये तबहि जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥ होइ बिबेक मोह भ्रम भागा। तब रघुबीर चरन अनुरागा॥' ज्ञान हुआ और वैराग्य न हुआ तो वह ज्ञान व्यर्थ है, यथा—'ज्ञान कि होइ बिराग बिनु' 'जैसे बिनु बिराग संन्यासी'। अतः धर्म, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति क्रमसे कहे। पुनः, (ङ) इस मङ्गलाचरणमें कर्म, ज्ञान और उपासना तीनों क्रमसे कहेगए। 'मूलं धर्म तरोः' यह कर्म वा धर्म है, विवेक जलधे' यह ज्ञान, और 'वैराग्याम्बुज०० रामभूपप्रियम्' यह भक्ति है क्योंकि इसीसे श्रीरामचरणारविन्दमें अनुराग होताहै।*

* यहाँ टीकाकारोंने ये प्रश्न उठाकर कि—१ प्रथम शिवजीका मङ्गलाचरण क्यों कियागया? २—वृक्षके रूपकसे वंदना प्रारंभकरनेका भाव क्या है? उनके उत्तर इसप्रकार दिएहैं कि—१ (क)—शिवजी मानसके आचार्य्य हैं—(करु०)। पर इसमें यह शङ्का होतीहै कि यदि आचार्य्यभावसे प्रथम वंदना हुई तो अगले काण्डोंमेंभी क्यों यह क्रम न रखागया? इसका उत्तर किष्किंधाकाण्डमें दियागयाहै। (ख) काण्डकी निर्विघ्न परिसमाप्तिके लिए प्रथम कल्याणदायक शंकरजीका मंगलाचरण हुआ और इसीसे 'शंकर' नामसे वन्दना कीगई।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—'अघ घनं 'ध्वांतापहं तापहं 'इति—(क) पहले धर्म, इन्दु और भास्कर (सूर्य्य) कहकर तब 'अघघनं०' कहनेका भावकि धर्मसे अघनाश, सूर्य्यसे अंधकारनाश और चन्द्रसे तापका नाश होताहै। ध्वान्त=अन्धकार, यथा—'अंधकारो स्त्रियं ध्वान्तं तमिस्रं तिमिरं तमः इत्यमरः'। (ख) अघहरं, यथा—'प्रातःकाल शिवं'। (नोट—सूर्य्य भगवान्के तीन रूप कहेगयेहैं, यथा—हरिसंकर बिधि मूरति स्वामी' 'इति विनये पद २। उसीका यहाँ लक्ष्यहै।) तापहं यथा—'शुद्धां-शुकलितातं संतापहरं ततः शिवः पुनः, यथा—'जरा जन्म दुःखौ घतापतप्यमान'! † अपहं=नाशकर्त्ता।

—(पं०, पु० र. कु.) इसमेंभी वही शंका होसकती है। (ग) वनकी उदासीन लीला वर्णन करनाहै इसलिए उदासीनरूप और समर्थ जानकर शंकरजीकी प्रथम वन्दनाकी—(वै०)। (घ) प्रथम शिवजीकी वंदनाकी क्योंकि इस काण्डमें भक्तिका उपदेश है और विना इनकी भक्ति वा प्रसन्नताके रामभक्ति नहीं होती। यथा—संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि'—(उ० ९ ४५), जेहिपर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भक्ति हमारी' (पु. र. कु.), २—दूसरे प्रश्नका उत्तर—(क) फलकी अभिलाषासे वृक्षके रूपकसे वन्दना प्रारंभकी।—(पु. र. कु.)। (ख) वनमें मूल, फल, वृक्ष येही होतेहैं और इसकाण्डमें उन्हें सर्वत्र मूल फलही भेंट (अर्पण) किएजायँगे अतएव इस वनकाण्डको मूल और तरुसे प्रारंभ किया। यथा—'दिये मूल फल प्रभु मन भाये'—(अत्रि), 'कंद मूल फल सुरस अति दिए रामकहँ आनि'—(सबरी), इत्यादि। मुनः, धर्म एवं वृक्षसे सुख मिलताहै। इस वनयात्रामें प्रभुको और उनके भक्तों एवं सुरनरमुनि सबको सुख प्राप्त हुआहै, यह सूचित करनेको आदिमें वृक्षका रूपक दिया। यथा—'रिषि निकाय मुनिवरगति देखी। सुखी भए०' 'सकल मुनिन्हके आश्रम जाइजाइ सुख दीन्ह' 'जाग' न ध्यान जनित सुख पावा'—(सुतीक्ष्णजी), 'सुखी भये मुनि बीती त्रासा', 'भगतिजोग सुनि अति सुख पावा'—(लक्ष्मणजी), 'निज परम प्रीतम देखि लोचन सफल करि सुख पाइहउँ'—(मारीच), 'मन महँ चरन बंदि सुख माना'—(रावण) 'मज्जन कीन्ह परम सुख पावा'—(श्रीरामजी) और अत्रि, शरभंग, अगस्त्य एवं सबरीजी इत्यादिका सुख तो प्रत्यक्ष और प्रसिद्ध ही है।

† वै०—सूर्य्य अंधकारको दूरकरताहै पर तापकारक है और शिव—सूर्य्यमें यह अद्भुत गुण है कि यह तापहारकभी है। आप एकसाथही सूर्य्य और चन्द्र

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३—'मोहामोधर पूग पाटन बिधौ०', यथा—'मोह महाघनपटल प्रभंजन' और 'चिदानंद संदोह मोहापहारी'। ४—श्रीरामभूपप्रियम्। अर्थात् चक्रवर्त्ती राजारूप प्रिय है, यथा—'अनुज जानकीसहित निरंतर। बसहु रामनृप मम उर अंतर' (लं०)। पुनः, श्रीरामजीके जो प्यारे हैं, यथा—'कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरे (छमासील जे पर उपकारी। ते द्विज प्रिय मोहि जथा खरारी॥' पुनः, भूप-पदसे सगुण रूप जनाया।

गौड़जी—१ स्वः संभवम्=वायु। आकाशसे जो उत्पन्न हुआहो। [स्वर्=आकाश। संभव=उत्पन्न। वायु आकाशसे उत्पन्न माना-जाताहै।" "आकाशद्वायुः" इति श्रुतिः। २—कलंकशमन हैं, क्योंकि अपने परमभक्त चन्द्रमाको अपने मस्तकपर धारण करके गुरुतल्पगता का कलंक मिटादिया। जद्द्वन्द्य बनादिया—'यमाश्रितोहि वक्रोपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते'। ३—श्रीरामभूपप्रियम्=दाशरथि श्रीरामचन्द्रजी-को जो प्रिय हैं और जिनको दाशरथि राजारामचन्द्रजी प्यारेहैं। यहां सतीके मोहके कारणका स्मरण दिलातेहुए, राजारामचन्द्र और परतम परमात्मा रामकी एकताको पुष्टभी करतेहैं।

नोट—इस श्लोकमें धर्म, ज्ञान, वैराग्य, माया (क्योंकि मोहकी सहायक यहीहै' और भक्ति इन सब बातोंको कहा। क्योंकि इस-काण्डमें इनके विषयमें प्रश्न, उत्तर, वा उपदेश आए हैं। उदाहरण—१ कबंधको धर्मोपदेश यथा—'मोहि न सुहाइ ब्रह्मकुलद्रोही॥ कहि निज धरम ताहि समझावा'। २—सबरीजीसे नवधाभक्ति और धर्म, यथा—'नवधा भगति कहौं तोहि पाहीं', 'तब मम धरम उपज अनुरागा लक्ष्मणजीने सबके स्वरूप पूछे और प्रभुने कहे। नारदजीको मायाका स्वरूप बताया। इत्यादि,।

सांद्रानंद पयोद सौभग तनुं पीतांबरं सुंदरं।
पाणौ वाण शरासनं कटि लसत्तूणीर भारं वरं।

दोनों रूप हैं यह अद्भुतता है। यथा—'ससिकर सम सुनि गिरा तुम्हारी।...' 'अमतमरत्रिकर बचन मम'।—(ब०§११९,§११५),

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राजीवायत लोचनं धृत जटाजूटेन संशोभितं ।
सीता लक्ष्मण संयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे ॥२॥

शब्दार्थ-सांद्र=घना, गहरा; निरंतर—'घनंनिरंतरं सांद्रं इत्यमरः'-(वंदनपाठक, पु० र० कु०)। पयोद = पय (= जल) देनेवाले, जलद, मेघ। तूणीर = तर्कश। रामाभिरामं = आनंददेनेवाले रामजी एवं रामा (सीताजी) को आनंददेनेवाले। पथिगतं = जो पथिक की अवस्थामें प्राप्त हैं।

अर्थ—सघन (पूर्ण) आनंद (स्वरूप) सुन्दर जल बरसनेवाले बादलोंके समान सुन्दर (श्याम) शरीर सुन्दर पीताम्बर धारण किए हुए, हाथोंमें धनुष और बाण लिएहुए, श्रेष्ठ (अक्षय) तर्कशके भारसे जिनकी कमर शोभित है (अर्थात् अक्षय बाणोंसे पूर्ण अक्षय तरकश कटिमें कसे हैं), कमलदलके समान विशाल नेत्रवाले, जटाओंका जूड़ा धारणकिएहुए अत्यन्त शोभायमान श्रीसीतालक्ष्मणजीसहित मार्गमें जातेहुए, आनन्दके देनेवाले रामचन्द्रजीको मैं भजता हूँ।

गौड़जी—गोस्वामीजीको राम बटोहीका ध्यान परम् प्रिय है, अतः वह अपने आराध्यदेवके प्रिय अपने आचार्य्य भगवान् शंकरकी वन्दना करके 'पथिगतराम' की आराधना करते हैं।

पु० र० कु०—(क)—अयोध्याकाण्डमें मुनिपट धारणकरना कहाथा पर यहाँ मङ्गलाचरणमें 'पीताम्बरं सुंदरं' कहरहेहैं। यहाँ पीताम्बर धारणकिएहुए स्वरूपसे मङ्गलकरना साभिप्राय है। वीर केसरिया जामा धारणकरतेहैं। इस काण्डसे राक्षसवध प्रारंभ हुआहै; अतः वीरका केशरियावस्त्र पहनना कहा। (ख) यहाँ वल्कल जो धारण किएहैं वेही पीतवर्णके हैं—वल्कलै पीत अम्बर' अर्थात् पीत वस्त्र है। यथा—'वलकल वसन दुकूल'। (ग)—संतसिंहजी पीताम्बरं का भाव यह कहतेहैं कि पीताम्बर भगवान्का एक नाम है, यथा 'पीताम्बरोऽच्युतः शार्ङ्गी विष्वक्सेनो जनार्दन' इत्यमरः। नोट—श्री पं० रामवल्लभाशरणजीमहाराज कहतेहैं कि यहाँ ग्रन्थकार साक्षात् अपना अभी वर्णन करहेहैं अतः 'पीताम्बर' कहा। पुनः वाल्मीकिजीने भी वनकाण्डमें किसी स्थानपर पीताम्बर धारणकिएहुए लिखाहै*—

* १ वैजनाथजी लिखतेहैं कि यहाँ ग्रंथकारने ऐश्वर्य्य-माधुर्य्य-मिश्रित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—'कटिलसत्तूणीरभारं वरं इति। (क)—भाव यह कि और सब भार अशोभित हैं पर तरकशका भार सुशोभित है; यथा—'सब सुन्दर सब भूषनधारी। कर सर चाप तून कटि भारी॥' पुनः इससे जनाया कि यहाँसे अब ये राक्षसोंपर छूटेंगे। (ख)—'वरं कहकर धनुधारियोंमें श्रेष्ठ जनाया। यथा मेघनादवाक्ये—'कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। धन्वी सकल लोक बिख्याता'। (नोट—वरं को तूणीर-भार' का विशेषण प्रायः अन्य सभी महानुभावोंने माना है। भाव यह कि इसके वाण अमोघहैं और यह तूण भी अक्षय है, यह कभी वाणोंसे खाली नहीं होता')।

३—'राजीवायत लोचनं' से जनाया कि भक्तोंके लिए सदा कृपासे पूर्ण रहतेहैं। भक्तोंके दुःख या भय दूरकरनेके सम्बन्धमें सर्वत्र 'राजीव' विशेषण दियाहै। 'राजिवनयन धरे धनुसायक। भगत बिपतिभंजन सुखदायक'—ब०§ १७ (१०) देखिए। पुनः, यथा—'चितइ कृपा करि राजिवनयना'। †—सुं० §३४ (२) एवं §३१ (१) में देखिए।

नोट १—यहाँ वस्तुनिर्देशात्मक मङ्गलाचरण कियागयाहै। २—मनुशतरूपाप्रकाशमें 'नीलसरोरुह, नीलमणि और नीलधीर श्याम' तीन उपमाएँ श्यामताकी दीथीं।' यहाँ उनमेंसे केवल एक 'पयोद' कीही उपमा दीहै। कारण कि यहाँ प्रभु मुनियों और भक्तोंके यहाँ जाजाकर सुखदेंगे, यथा—'सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइजाइ

रूप वर्णन कियाहै इसीसे पीतम्बरधर कहा।

२ दीनजी—रामाबाबा (चित्रकूटवाले) का अनुभव है कि किसी कठिनाई के समय या जब ऐसी कोई घटना हो कि जिसमें प्राणान्तक कष्ट हो उस समय इस श्लोकका ध्यान करनेसे वह कठिनाई निश्चय टलजाती है और मृत्यु हुई तो मुक्ति तो है ही।

३—पं० शिवलालपाठकजी मयूखमें लिखतेहैं कि यहाँ 'पीताम्बर' धारण करना कहा और आगे लिखतेहैं कि 'अब प्रभुचरित सुनहु...' एक बार चुनि कुसुम सुहाये। निज कर भूषन राम बनाए' इत्यादि। इन सब वचनोंसे चित्र-कूटमें रासका प्रसाद लक्षित होताहै।

† मिलान कीजिए—'पुरुषसिंह दोउबीर चले हरषि मुनिभयहरन।
अरुन नयन उर बाहु बिसाला। नील जलद तन स्याम तमाल॥
कटि पटपीत कसे बर भाथा। रुचिर चाप सायक दोउ हाथा॥'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुख दीन्ह'। मणि और नीलकमल सर्वत्र सुलभ नहीं और मेघ सर्वत्र बिचरकर जगत्को जीवनदाता होतेहैं। ब० §१४६ देखिए। ३—वर्षा सबको सुखद है पर जवास झुलसजाता है; इसमें वर्षाका दोष नहीं। इसीप्रकार राममेघद्वारा निश्चरजवास का नाश समझो। यथा—बरषि बिस्व हरषित करत हरत ताप अघप्यास। तुलसी दोष न जलद को जो जल जरै जवास॥'—(दो० ३७८)।

४—खर्रा—'सान्द्रानंद०' प्रथमचरणमें शृङ्गारकी शोभा कही। दूसरे चरणमें वीररसकी शोभा कही। तीसरे चरणमें शान्तरसकी शोभा कही। क्योंकि शृङ्गार-द्वारा शूर्पणखाको मोहित किया, वीररस से खरदूषण का वध किया और शान्तरससे मुनियोंको सुख दिया। यथा—'जब रघुनाथ समररिपु जीते। सुरनर मुनि सबके भय बीते'।

नोट-ग्रन्थकारने अयोध्या, सुन्दर, लङ्का और उत्तरमें तीन २ श्लोकों से मङ्गलाचरण कियाहै पर अरण्य और किष्किन्धा काण्डोंमें दोही श्लोकोंसे मंगलाचरण किया, इसका कारण यह है कि अयोध्याकाण्ड तक श्रीसीताराम लक्ष्मण तीनोंका साथ रहा इससे तीनों श्लोकोंमें मंगल किया। अरण्यमें सीताहरण हुआ, किष्किंधामेंभी उनका पता नहीं चला कि वे कहाँहैं इससे इन दो काण्डोंमें एक श्लोककी कमी हुई सुन्दरकाण्ड में प्रथम उनका पता लगा और फिर लंका और उत्तरमें उनका साथ रहा अतः तीनोंमें पुनः तीन श्लोकोंसे मङ्गलाचरण हुआ।

उमा राम गुन गूढ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ जे हरिबिमुष न धर्म्मरति॥

अर्थ—हे उमा! रामगुण गूढ़ है। पंडित और मुनि उससे वैराग्य प्राप्त करतेहैं और जो विशेष मूर्ख हैं जो भगवद्विमुख हैं और जिनका धर्ममें प्रेम नहीं वे मोहको प्राप्तहोतेहैं।*

* १-पां०'दूसरा अर्थ यह है—हे उमा! रामका गुण गूढ़ है अर्थात् गम्भीर है जिससे पंडित मुनि वैराग्यभी पातेहैं और मोहभी पाकर विशेष मूढ़ देख पड़तेहैं, जो हरिसे विमुख नहीं हैं और धर्ममें रत हैं—जैसे सती, गरुड़, नारद आदि"।

२—जोड़क श्लोक, यथा—"आकर्ण्यचरितं गूढं रामस्य मुनि पण्डिताः। वैराग्यं प्राप्नुवन्त्यज्ञा मुह्यन्ति च गिरीन्द्रजे"—(शिव सं०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु०—१ इस काण्डके प्रारंभमेंही शिवजी पार्वतीजीको सावधान करतेहैं कि इसी काण्डके चरित्रसे तुमको दण्डकारण्यमें मोह हुआथा, अब खबरदार रहना क्योंकि आगे सन्देहके बहुतसे चरित मिलेंगे; अब संदेह न करबैठना।

२—अयोध्याकाण्डमें किसीका सम्वाद नहीं है इसीसे वहाँ किसी का सम्बोधन कविने नहीं दिया। और यहाँ आदिमेंही 'उमा' सम्बोधन दियागया। कारण कि भरतचरितमें किसीको मोह नहीं है। वहाँ गोसाईंजीने केवल प्रेमही वर्णन कियाहै इसीसे वहाँ किसीका संवाद नहीं है। और श्रीरामचरितमें सबको सन्देह हुआहै अर्थात् सती भरद्वाज और गरुड़ तीनोंको मोह प्राप्त हुआ। इसीसे यहाँ प्रथम छ दोहों में तीनों वक्ताओंने तीनों श्रोताओंका समाधान कियाहै। यथा—'उमा राम गुन गूढ', 'सब जग ताहि अनल ते ताता।...भ्राता', 'सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना'। यहाँ उमाकोही प्रथम कहा क्योंकि इस काण्डमें इन्हींको मोह हुआहै। पुनः, भाव यह कि अयोध्याकाण्डके अन्तमें कहा है कि "भरतचरित करिनेम तुलसी जे सादर सुनहिं। सीयरामपद होइ भवरस बिरति'। अर्थात् भरतचरितश्रवणसे अवश्य वैराग्य होताहै। अब शिवजी कहतेहैं कि वैसाही रामचरितको न जानो, यह गूढ़है इससे केवल मुनियों और पण्डितोंको वैराग्य होताहै, सबको नहीं।

३—'रामगुन गूढ पंडित मुनि...' इति। (क) गूढ, यथा—'श्रोता वक्ता ज्ञाननिधि कथा राम कै गूढ' किमि समुझइ यह जीव जड कलिमल ग्रसित बिमूढ'—(ब०§३०), 'चाहहु सुनइ रामगुन गूढा। कीन्हेहु प्रश्न मनहु अति मूढा'। (ख) गूढ कहा क्योंकि चरित तो है वही एक, पर उसीसे किसीको तो मोह होताहै और किसीको वैराग्य उत्पन्न होता है। मोह और वैराग्य परस्पर विरोधी बातें हैं, जहाँ वैराग्य है वहाँ मोह नहीं और जहाँ मोह है वहाँ वैराग्य नहीं यह दोनोंकी उत्पत्तिका कारण है। तात्पर्य्य यह कि गूढ़ है इसीसे तो किसीको कुछ भासित होताहै और किसीको कुछ, यदि गूढ़ न होता तो सबको एकसाही भासित होता। यहाँ प्रथम व्याघात अलङ्कार है। (ग) गूढ़=अति गुप्त आशययुक्त, जो बुद्धिमानोंको भी कठिनतासे समझमें आताहै। 'पावहिं बिरति' अर्थात् अन्य विषयिक प्रीतिसे विरक्त हो जातेहैं। (ग)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुनः, (घ)—'रामगुन गूढ़' का भाव कि जैसे नारद ब्रह्मा, आदिके बचन हेतु आप छिपेहैं वैसेही गुणकोभी छिपाएहैं।—विशेष पाद-टिप्पणी देखिए।*

४—'पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख०' इति। (क)—अब विमूढ़ का लक्षण बतातेहैं कि ये हरिपद विमुख होतेहैं और इनका धर्ममें प्रेम नहीं इसीसे इनको वैराग्य नहीं होताहै, धर्ममें तत्पर होते तब तो वैराग्य अवश्य ही होता, यथा—'धर्म ते बिरति०'। पुनः, भाव यह कि चाहे मूर्ख भी होनेपर यदि हरि सम्मुख होते या धर्ममें प्रीति होती तो मोह न प्राप्त होता यथा—'हरन मोहतम दिनकर करसे' 'जिमि हरिसरन न एकउ बाधा'।† पंडित=जिसमें सदसद्विवेक हो। यथा—

* १—रा० प्र० श०—"गूढ़ उसको कहतेहैं जो गुप्त हो, यथा—'बंदउँ परिजन सहित बिदेहू। जाहि रामपद गूढ़ सनेहू।' श्रीविदेहजी महाराज वात्सल्य भाव रखतेहुए ऐश्वर्य माधुर्य दोनोंके यथार्थ ज्ञाता हैं; इसीसे कहा कि 'योग भोग महँ राखेउ गोई'। योगसे ऐश्वर्य और भोगसे माधुर्य झलकता है ऐश्वर्य माधुर्य दोनों एक दूसरेके विरोधी हैं—माधुर्य देखकर ऐश्वर्यका पता ही नहीं चलता। उससे गरुड़जी, भुशुण्डिजी और सतीजीको मोह होगया। इसी तरह ऐश्वर्यका स्मरण करके माधुर्यमें प्रवृत्ति ही नहीं होती। यथा—'सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद', 'खोजइ सो कि अज्ञ इव नारी'। इन्हीं ऐश्वर्य और माधुर्य दोनोंमें छिपा होनेके कारण 'गूढ़' कहा। २—खर्रा—यह भी जनाया कि यह भी सन्देह न करना कि जो स्वयं प्रिय परिजनके वियोग में विलख रहेहैं उनकी पादुका आज्ञा कैसे देतीहोगी।'

† १—वंदनपाठकजी—यहाँ श्रीपार्वतीजी पर कटाक्षभी है। २—रा० प्र० श—यहाँ शिवजी पण्डित और मुनि दोनों हैं। सो इनको इस वनलीलासे वैराग्य हुआ—'एहि तन सती भेंट मोहि नाहीं'। जो किसीसे भगवत-सन्मुख होनेकी शिक्षा पाकरभी हरिसन्मुख न हो, वह मूढ़ है, यथा—'मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करेसि न काना'। पुनः, जिसकी धर्ममें प्रीति नहीं वह मूढ़ है। ये सब लक्षण सतीजीमें पाएजातेहैं। पतिव्रता होकर पतिके प्रतिकूल चलीं, पतिके वचनपर न चलीं न उनपर विश्वास किया—शिवजीने प्रणाम किया पर इन्होंने न किया, 'करेहु सो जतन बिबेक बिचारी' इस पति-आज्ञापर न चलीं, विश्वास न किया और परीक्षा लेने चलीं। सब लक्षण इनमें घटतेहैं; अतः इन्हें मोह हुआ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"सदसद्विवेकिनी बुद्धिः पंडा'। मुनि=जो मनन कियाकरतेहैं अतः मुनिभी पण्डित हुए। पुनः, (ख) 'विमूढ' 'हरिविमुख' और 'न धरमरति' से जनाया कि ज्ञान, उपासना और कर्म त्रयकाण्डरहित हैं। जहाँ ज्ञान चाहिए वहाँ ये विमूढ़ हैं, जहाँ उपासना चाहिए वहाँ हरिविमुख हैं और जहाँ कर्म चाहिए वहाँ धर्ममें प्रीतिही नहीं। पुनः, (ग) भाव कि केवल मूढ़ हो तो उसे रामजी सँभालतेहैं पर जिनमें अन्य दो बातें नहीं वे नहीं सँभाले जासकते। (ख) ऐसाही अन्यत्रभी कहागयाहै।*

५—'पंडित मुनि पावहिं बिरति।...' इति। जानकीहरणपर रामजीको विलाप करते देख पंडित मुनिको वैराग्य हुआ कि स्त्रीने रामको भी रुलाया तो उससे प्रीति करना कदापि उचित नहीं, और, विमूढ़को मोह हुआ कि स्त्रीके लिए रामभी रोयेहैं अतः वह रखनेलायक वस्तु हैं।

नोट—इस सोरठेमें इसकाण्डका चरित संक्षिप्त रीतिसे दरसाया है। अतः यहाँ मुद्रालंकारभी है। आदिमें जयन्तका मोह और नारद का वैराग्य कहाही है—(वै०)।

'बन बसि कीन्हे चरित अपारा'-प्रकरण

पुर नर † भरत प्रीति मैं गाई।
मति अनुरूप अनूप सुहाई॥ § ० (१)

---

* कामिन कै दीनता दिखाई। धीरन के मन बिरति दृढाई॥
गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुरहित दनुजबिमोहनसीला॥
अस रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहन जनसुखकारी॥
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥(वाल्मीकिः)

† पाठान्तर—'पूरन'—(पां०)। 'पुरजन'—(पं० शिवलालपाठक)। १—'पूरन' पाठसे पाँडेजी यह अर्थ करतेहैं—'अनूप और सुहाई भरतकी प्रीतिसे पूर्ण अयोध्याकाण्डको०'। पुनः, इसका अर्थ यह होगा कि—'भरतजीकी परिपूर्ण प्रीति मैंने गाई'। बाबा हरीदासजी कहतेहैं कि पूर्वार्द्धका संबंध मति अनुरूप' से है। भाव कि पूर्ण प्रीति मैंने नहीं गाई, मति अनुरूप उनकी पूर्णप्रीति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ--पुरवासियों और भरतजीकी सुंदर और उपमारहित प्रीति को कुछ गायाहै। पूर्णप्रीति, यथा—'सियरामप्रेमपियूष पूरन होत जनम न भरतको'—(अ० छन्द §३२६)। २—'पुरजन' और 'पुरनर' पर्य्याय शब्द हैं। मा० श० में 'पुरजन' का अर्थ कियाहै पुर (अवध) का, जन (अवधवासीजीवों) का। मा० म० में अर्थ है—पुर, जन (शेषजी) एवं पुरजन। ३—काशिराज, भा० द०, पं० रा० गु० द्विवेदीजी आदिकी प्रतिलिपियोंमें 'पुरनर' पाठहै। इनसे प्राचीन और कोई पोथी देखनेमें नहीं आई। और, अयोध्याकाण्डमें पुरवासियों और भरतजी दोनोंकाही प्रेम आदिसे अंत तक वर्णित है। पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दोनोंमें पुरनरप्रीति दिखाईगई और उत्तरार्द्ध में श्रीभरतजीका प्रेम दिखायागया। अवधपुरीभरके जीवोंकाभी प्रेम दरसायागयाहै। इनके उदाहरण कुछ दियेजातेहैं, यथा—

१. करहिं प्रनाम नगर नर नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी।
करि मज्जन मागहिं कर जोरी। रामचंद्रपद प्रीति न थोरी॥
२ लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अँधियारी।
घोर जंतु सम पुरनर नारी। डरपहिं एकहि एक निहारी॥
घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता।
बागन बिटप बेलि कुँभिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥
३ भरतागमने--श्रीहत सरसरिता बन बागा। नगर बिसेष भयावनलागा।
हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दह दिसि लागि दवारी॥

रामबिना यह दशा थी और उनके आनेपर—

अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा की खानी।
४—पुर नरनारि मगन अति प्रीती। बासर जाहिं पलक सम बीती॥
५—रामदरस लगि लोग सब करत नेम उपवास।
तजि तजि भूषन भोग सुख जिअत अवधिकी आस॥ अ० २२ इत्यादि।

अथ भरतप्रीति—१—"कुस साथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनाम प्रदक्षिन जाई
चरनरेखरज आँखिन लाई। कहत न बनै प्रीति अधिकाई'।
२—सखा वचन सुनि बिटप निहारी। उमगेउ भरत बिलोचन बारी।
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई॥"
३—"मिलनि प्रीति किमि जाइ बषानी। कबिकुल अगम करममन बानी॥"
४—नित पूजत प्रभु पावरी प्रीति न हृदय समाति।
मागि मागि आयसु करत राजकाज बहुभाँति॥ अ० ३२५॥ इत्यादि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मैंने बुद्धिके अनुसार गाई (वर्णनकी)।*

पु० र० कु०—१ (क)—'पुरनर भरतप्रीति०' ऐसा कहकर पूर्व-काण्डसे इस काण्डका संबन्ध मिलाया। (ख) 'पुरनर' पद प्रथम दिया क्योंकि अयोध्याकाण्डमें भरतागमनके पूर्व आधेकाण्डमें इन्हींका प्रेम दिखायागयाहै और भरतागमनसे उत्तरार्द्धमें भरतप्रेम वर्णन हुआ। अयोध्याकाण्डभर प्रेमसे भराहै; यहाँ पुरवासियोंसे भरतजीका प्रेम अधिक जनानेके लिए इनको उनसे पृथक् करके यहाँ लिखा। पुरनर और भरतजीकी प्रीतिके उदाहरण पादटिप्पणीमें देखिए। (ग) यहाँ 'नर' पद 'नर और नारि' दोनोंका उपलक्षक है। पुरनर=पुरलोग, पुरवासी, अवधपुरीके सभी स्त्रीपुरुष।

२—'मैं गाई' इति।—'गाई' से जनाया कि जैसे प्रभुके चरित गाने योग्य हैं वैसेही जीवों और भागवतोंका उज्ज्वलप्रेम और प्रेमरंगमें रँगाहुआ चरितभी गान करने योग्य है। ‡

पुर, यथा—'लागति अवध भयावनि भारी।००' इत्यादि। घोड़े आदि अन्य जीवोंकीभी दशा दिखाईगईहै।

* गौड़जीयों अर्थ करतेहैं—'पुर (अयोध्या) की, नर (लक्ष्मणजी) की और भरतकी प्रीति मैंने मतिअनुरूप अनूप गाई।'

‡ पंडितजीके एक पुराने खर्रेमें ऐसा लेख है कि इस काण्डके आदिमें कविके 'मैं गाई' पदसे यह सिद्ध होताहै कि अयोध्याकाण्डको गोसाईंजीने सब वक्ताओंसे पृथक् करके स्वयं गायाहै। इसीसे इसमें किसीका संवाद नहीं रखा-गया। दसहज़ार श्लोकका चौथाई अढ़ाई हज़ार (श्लोकोंका) वह काण्ड गुसाईंजीके हिस्सेका है। इसीसे इसकांडको कविने सब काण्डोंसे विलक्षण रचाहै। पर ऐसा जानपड़ताहै कि यह मत उन्होंने बदल दिया इसीसे साफ खर्रोंमें यह भाव न दिया। एवं पूर्व जो भाव उनका इस विषयमें ऊपर सोरठेमें लिखागया उससे विरोधभी पड़ताहै। पुनः, एक और खर्रेमें वे लिखतेहैं कि "शिवजी कहतेहैं कि मैंने अपनी मतिके अनुसार गायाहै। मैं गवैयोंमें हूं।" यह भाव गौड़जीके मतसे मिलताहै। उनका मत इस विषयमें यह है कि—यहां "मैं" भगवान् शंकर अपने लिये कहरहे हैं। कवि अपने लिये नहीं कहता इस बातको "उमा" सम्बोधन द्वारा सोरठेमें ही स्पष्ट करदिया। "भरत प्रीति मति अनुरूप गाने" का इकरार "ईश्वर" ही कर सकतेहैं। "अगमसनेह भरत रघुबरको। जहँ न जाइ मति विधि हरिहरको" अतः शिवजीकीभी मति वहां

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३—'मति अनुरूप' 'इति। (क) 'गाई' से यह संदेह होताहै कि विस्तारसे एवम् पूर्ण रीतिसे कहीहै अतः उसके निवारणार्थ 'मति अनुरूप' पद दिया। अर्थात् उनके प्रेमका वर्णन पूर्णरूपेण कोई नहीं कहसकता, मैं कैसे कहता, हाँ जैसी कुछ बुद्धिहै वैसा कुछ कहा। (ख) 'मति अनुरूप कहूँगा या कहा' ऐसा कहना बड़ोंकी चाल है, रीति है। गोस्वामीजी, याज्ञवल्क्यजी, शिवजी, भुशुण्डिजी, विभीषणजी आदिने भी ऐसाही कहाहै। ‡ (ग) इससे यह भी जनाया कि जैसे भगवच्चरित अथाह अतएव अकथनीय है वैसेही भागवतचरितभी अगाध है, यथा—'सागर सीपि कि जाइ उलीचे' एवं 'यथामति भाषेउँ०० चरित सिन्धु रघुनाथ कर थाह कि पावइ कोइ'।

४—'अनूप सुहाई 'इति। दो विशेषण देकर प्रीतिके दो भाग किए पुरनर प्रीति 'सुहाई' अर्थात् सुंदर है और भरतप्रीति 'अनूप' है कि जहँ न जाइ मन बिधिहरिहर को'। अथवा (ख) दोनोंकाही प्रेम सुहावना और उपमारहितहै।—(प्र०, रा० प्र० श०)

अब प्रभुचरित सुनहु अति पावन।
करत जे बन सुर-नर-मुनि-भावन॥ § ० (२)

अर्थ—अब प्रभु रामचन्द्रजीका वह अत्यन्त पवित्र और देवताओं,

तक जा नहीं सकती। हां, यह ईश्वरी शक्ति है कि "मति अनुरूप" कह सकते हैं। कविने तो बारंबार अपनी मतिकी असमर्थता बखानी है। यह कहना ठीक नहीं है कि अवधकांड गोस्वामीजीने सब वक्ताओंसे पृथक् करके गाया है। इसमें चारों वक्ता शामिल हैं, जिनमेंसे अन्तिम वक्ता, कविके गुरु [मानसकार शंकरके मानसीशिष्य नरहरि] के चरणसरोजरजकी कृपासे कविने शिवजीके कहे विमलयशको मानसके अनुसार गायाहै। बाबा रामप्रसादशरणजीका मतहै कि 'मैं' से समझाना चाहिए कि चारों वक्ता अपने २ श्रोताओंसे ऐसा कहरहेहैं।

‡ यथा—"मति अनुहारि सुबारि गुनगन गनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी संकरहि कह कबि कथा सुहाइ।'—(गोस्वामीजी)।
'कहउँ सो मति अनुहारि अब उमासंभु संबाद'—(याज्ञवल्क्यजी)
'तदपि जथाश्रुत जसि मति मोरी। कहिहउँ देखि प्रीति अति तोरी'—(शंकरजी)
'नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ।'—(भुशुण्डिजी)
'जौ कृपालु मोहि पूछेहु बाता। मति अनुरूप कहउँ हित ताता'—(विभीषणजी)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनुष्यों और मुनियोंको भानेवाला चरित सुनो जो वे वनमें कररहेहैं।

पु० र० कु०—१ 'अब' का भाव कि (क)—पूर्व भागवतचरित वा दासका चरित कहा अब प्रभुका चरित कहतेहैं। पुनः (ख)—बालकांडमें माधुर्य्य और ऐश्वरय्र्य कहा, अयोध्याकांडमें केवल माधुर्य्य, अब इस काण्डमें ऐश्वर्य्यही प्रधान रहेगा। अतः 'अब प्रभु०' कहा * २ (क) 'प्रभु' शब्द काण्डके आदिमें देकर जनाया कि इस काण्डमें प्रभुताके चरित कहेगएहैं। एवं यह कि इस काण्डमें 'प्रभु' शब्दका प्रयोग बहुत हुआहै। प्रभु=समर्थ। यहाँ यह शङ्का होतीहै कि क्या पूर्व विश्वामित्र-यज्ञ-रक्षा, धनुर्भङ्ग, परशुरामगर्वहरण आदि प्रभुत्वके चरित न थे? इसका समाधान यह है कि वे चरित विश्वामित्रके साथ में रहनेके समय हुए। यद्यपि वे चरित ऐश्वर्य्यद्योतक थे। पर वे माधुर्य्यका रंग लिएहुएथे और मुनिके प्रभावके कारण छिपेहुएथे। यथा—'केवल कौसिककृपा सुधारे'। और अब जयन्त खरदूषणादिके प्रसंगमें ऐश्वर्य्यका छिपानेवाला कोई साथ नहीं है। विशेषतः जयन्तके चरितकी समाई तो कहीं नहीं होसकती। † (ख) प्रभुताके

* गौड़जी।—"अब" में यह भाव कि इससे पहिले जो चरित वर्णन कियेगयेहैं। वह सबअयोध्याजीसे सम्बन्ध रखनेवाले थे और वनवासके आरंभ के ही थे। जब सबलोग लौटगये, तब बहुत काल तक श्रीरघुनाथजी चित्रकूटमें निवास करतेरहे। वर्षों का ठीक परिमाण नहीं दियागया। परन्तु रहे कई बरस। अन्तमें अपने वनवास की मर्यादाके भीतर ही भीतर जानपड़ताहै कि भगवान्ने रासकी रचना की। देवताओंको यह रंग देखकर शुबहा हुआ कि शायद हमारा काम भूलगये। वह घबराये। परन्तु किसीकी हिम्मत न पड़ी कि याद दिलावें जयन्तने अपने मनसे मोहवश परीक्षा लेने और चेतावनी देनेका काम किया। सतीकी तरह परीक्षाकी विधिमें वह चूकगया। उसका फल पाया। इस तरहके नाना चरित चिटकूटमें बसकर भगवानने किये। अन्तमें "होइहि भीर सबहि जाना" इसी विचारसे चित्रकूट छोड़कर मोहि आगे बढ़े। अत्रिसे विदालेने पर चित्रकूटका प्रकरण समाप्त होताहै इसीलिये उस स्थलपर फलस्तुति और चित्रकूट चरितोंका अन्तहै।

† गौड़जी—बालकाण्डमें स्वतंत्र ऐश्वर्य्यचरितभी है, जैसे जन्मकालमें कौसल्याको दर्शन, फिर "देखरावा मातहिं तब अद्भुत रूप अखंड", वसिष्ठजीसे पढ़नेगए तो "अल्पकाल विद्या सब आई।" आदि। अतः बालकांडमें माधुर्य्य-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चरित कहेगएहैं इसीसे यहाँसे अब 'लषन', 'सिय' नामके बदले ऐश्वर्य्य संबन्धी नाम देंगे।

३—'अति पावन' इति। (क)—भरतचरितको परमपुनीत कह आएहैं, यथा—'परमपुनीत भरत आचरनू'। अतएव प्रभुचरितको भी अतिपावन कहा। अति पावन, यथा—'पावनं पावनानाम्' पवित्राणां पवित्रोयं' अर्थात् जो पवित्रोंकोभी पवित्र करनेवाला है। (ख) यदि 'पावन' ही कहते तो भरतचरितमें न्यूनता आती वा भरतचरितसे इस चरितमें न्यूनता जानपड़ती। इसीसे दोनोंको अत्यन्त पावन कहा इस काण्डके अन्तमें केवल 'पावन' पद दियागयाहै यथा—'रावनारि जस पावन गावहिं'। क्योंकि वहाँ संदेह उठनेकी कोई बात नहीं है। और यहाँ अभी २ भरतचरितको परनपुनीत कहाहै इससे शंका हो सकती थी। पुनः, भाव कि (ग) अन्य धर्म, तीर्थ, आदि 'पावन' हैं और यह प्रभुचरित 'अति पावन' है। ‡

४ (क)—करत जे बन' इति—प्रथम चौपाईमें 'पुर' शब्द आदिमें देकर उस चरितको अयोध्याकाण्डका जनाया और यहाँ दूसरीमें 'बन' पदसे अरण्यकांडका चरित जनाया। पुनः, 'वन' से यहभी जनाया कि जो चरित अब कहेंगे वह वनमें किएगएहैं। इस प्रकारसे 'वन' से चित्रकूटकाभी ग्रहण हुआ, क्योंकि आगे जयन्त आदिका चरित कहाहै जो चित्रकूटमेंही हुआ। यथा—'रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किए श्रुति सुधा समाना॥' ††। (ख)—"सुर नर मुनि भावन' सुर रजोगुणी, नर तमोगुणी और मुनि सतोगुणी इन

ऐश्वर्य्य है। वनकांडमेंभी श्रीविरहादि प्रकरणमें माधुर्य्य है, परन्तु प्रधानता ऐश्वर्य्यकी है।

‡ १—रा० प्र० श—'प्रभुचरित' और 'अति पावन' का भाव कि काव्यके नवोंरसोंके नवरंग एकके उपरान्त एक अत्यन्त शोभा देतेहैं। उसमें विचित्रता यह है कि रजोगुणकी झलक होतेहुएभी अति पावन है; अर्थात् सत्वगुणवत् पवित्रकरनेवाला है, अन्य किसी साधनसे इतनी पवित्रता कदापि संभव नहीं। २—पां०—'अतिपावन' का भाव कि इस काण्डमें कितनेही अपावन पावन होंगे, जैसे गृद्ध, सबरी, आदि।

†† 'करत जो बन', इस बनचरितके सम्बन्धसे इस कांडका अरण्य नाम पड़ा।—(पां०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तीनोंको यह चरित 'मनभावन' हैं; यह विचित्रता है। क्योंकि जो चरित्र राक्षसी और तामसी प्राणियोंको रुचता है वह सात्विकको नहीं भाता, पर यह सबको भाता है। यथा—'जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सबके भय बीते'; अतः सबको 'भावन'।* अथवा; (॥)—रघुनाथजी यज्ञादि करतेहैं यह सुरभावन है, पितृभक्तिरूपी धर्म्मपालन करतेहैं यह नरभावन है और मुनियोंकेसे आचरण और वेष धारण किएहुए मुनियोंकी रक्षामें तत्पर हैं, उनके यहाँ जाजाकर उनको सुखदेरहेहैं अतः मुनिभावन हैं।—(यहाँ यज्ञसे मुनियोंके साथ यज्ञ हवन आदि जो करतेहैं वह और राक्षसोंके साथ समरयज्ञ, दोनों अभिप्रेत हैं)। *—यहाँतक चरितमाहात्म्य कहा, आगे चरित कहतेहैं।

एक बार चुनि कुसुम सुहाए।
निज कर भूषन राम बनाए॥§० (३)

* १—रा० प्र० श०—(क) सुर नर मुनि तीनोंको निज स्वार्थ प्रिय है, यथा—'सुर नर मुनि सबकी यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती'। स्वार्थप्रिय होनेका कारण है—मायासे मोहित होना। ये सब मायासे मोहित हैं, यथा—'सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल'। प्रभुके वनचरितसे इनसबका स्वार्थ सिद्ध होगा, अतः सबको प्रिय कहा। (ख) 'भावन' कहकर उदाहरण में जयन्तका उत्पात प्रारम्भ करतेहैं। जयन्त इन्द्रका पुत्र है इसको 'प्रभु छाड़ेउ करि छोह' अतः इन्द्रादि सब सुरोंको भाया, नारद मुनिने उसको क्लेशसे बचनेका उपाय बताया। उसका दुःख दूर देख वे सुखी हुए—'परदुख दुख सुख सुख देखे पर'। और नर भावन क्योंकि वनचरितश्रवणकथनका फल है कि 'रामभगति दृढ पावहीं बिनु बिराग जपजोग'।

२—जयन्तपर कृपा की, खरदूषणादिका वध किया, इत्यादि कारणोंसे सुर भावन, यथा—'हरषित बरषहिं सुमन सुर बाजहिं गगन निसान'। सबरी जटायु आदिकी गति देखकर नरभावन 'और' शर्भङ्गजीकी गति, निश्चरहीनकरनेकी प्रतिज्ञा और मुनियोंके आश्रमोंमें जाजाकर सबको सुख दिया अतः मुनिभावन है, यथा—'रिषिनिकाय मुनिवरगति देखी। सुखी भये निज हृदय बिसेषी', निसिचरहीन करउँ महि···सकल मुनिन्हके आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह'।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सीतहि पहिराए प्रभु सादर।
बैठे फटिकसिला पर सुंदर† ॥ § ० (४)

शब्दार्थ—चुनि=चुनकर, तोड़कर। फटिक=स्फटिक मणि।

अर्थ—एक बार सुंदर फूल चुनकर रामचन्द्रजीने अपने हाथोंसे आभूषण (गहने जैसे शीशफूल, नूपुर, बिछुवे, गुलूबंद, कङ्कन, कड़े, इत्यादि) बनाये। प्रभुने आदरपूर्वक सीताजीको पहनाये और सुन्दर स्फटिकशिलापर बैठे।

नोट—'एकबार' से जनाया कि इस प्रकार शृङ्गार अनेक बार हुआ पर उनमेंसे एकहीबार ऐसा हुआ कि 'सुरपतिसुत...'। 'बनाए' बहुवचन क्रिया देकर जनाया कि प्रत्येक अंगके भूषण बनाए। 'सुहाए' से यह भी सूचित किया कि रंगबिरंगके सुन्दर फूल चुनेगए जिसमें जिस भूषणमें जहाँ जिस रंगकी आवश्यकता हो वहाँ उसी रंगका फूल लगासकें।

पु० र० कु०—१ (क) 'एक बार चुनि कुसुम००' से श्रीराम-जानकीविहार सूचित किया जो चित्रकूटमाहात्म्यमें वर्णितहै * (ख)

---

† १—'भादर' पाठ पाँड़ेजीका है। सब प्राचीन पोथियोंमें 'सुंदर' पाठ है। 'परभाधर' एक शब्द मानकर 'शोभाके धारण करनेवाले' ऐसा अर्थ उन्होंने कियाहै। पंजाबीजी, करुणासिंधुजी और बैजनाथजीने भी 'परभादर' ही रखाहै। अर्थात् कान्तिमान्। २—मिलान कीजिए वाल्मीकीयके "आवद्ध वनमालौ तौ कृतापीडावतंसकौ। भार्यापती तावचलं शोभयांचकतुर्भृशम्॥"—

* १—बृहद्रामायाण चित्रकूटमाहात्म्यमें ऐसा लिखाहै—"चित्रकूटसमं नास्ति तीर्थं ब्रह्माण्डगोलके। यत्र श्रीरामचन्द्रोसौ सीतयासहितः सुधीः॥ विमलाद्रि सखी युक्तस्त्वणिमादि विभूतिभिः। सप्तावरण संयुक्ते मन्दिरे रत्न-भूषिते॥ पर्वस्यान्तरा लेसौ विहारं कुरुते सदा..." २—मा० त० सु—यह कथा प्रसङ्ग एकान्तसमयका है। यहाँ 'अति सादर' पद परमगोप्य रहस्यसूचक है, यथा—(गीतावली)—"सिय अंग लिखै धातुराग सुमननि भूषन बिभाग तिलक करनि क्यों कहौं कलानिधानकी। माधुरी विलास हास गावत जस तुलसिदास बसति हृदय जोरी प्रिय परम प्रानकी॥' (४४) १५४)। वही समय शक्र-सुत कथा प्रसंगकाहै, यथा—'सुरपति सुत धरि वायस बेषा'। उस समग्र पूर्वापर प्रसङ्गको पूज्य कविने सुंदरकांडमें केवल 'शक्रसुतकथा' कहकर जनायाहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीरामजी 'तापस बेष बिसेष उदासी' होकर वनवास कररहेहैं, ऐसाही केकयीका वरदानहै। अतः वे राजसी भूषण भोग त्याग किएहुएहैं। इस कारण फूलोंके भूषण अपनेहाथसे रचकर बनाते और सब सीताजीको पहनातेहैं। उनको प्रसन्न रखनेके लिए ऐसा करतेहैं। (ग) सुंदरका अन्वय सबके साथ है। (घ)—एक ओर तो कोमल, सुगन्धित, हलके फूल धारण कराना और दूसरी ओर कठोर शिलापर बैठना—यह दिखाकर जनाया कि आप कोमलता और कठोरता दोनोंको धारणकिएहैं। सज्जनपर कोमल हैं और खलके लिए कठोर, यथा—'कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि। चित खगेस रघुनाथकर समुझि परै कहु काहि'—(उ० §१९)। पुनः, यथा—'तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा'। (ङ) अ० §१३९–§१४१ में कहाथा कि "नाह नेह नित बढ़त बिलोकी हरषित रहति दिवस जिमि कोकी॥...सीय लषन जेहि बिधि सुख लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं॥०० जोगवहिं प्रभु सिय लषनहिं कैसे।"। उसीका यहाँ चरितार्थ दिखाया कि अपने हाथों यह सेवा करके उनको अवधमिथिलाका सुख देतेरहतेहैं।‡

किन्तु वाल्मीकिजीने स्पष्टरूपसे कहाहै; यथा—"अभिज्ञानं च रामस्य दद्यां हरिगणोत्तम। क्षिप्तामिषीकां काकस्य कोपादेकाक्षिशातनीम्॥ मनः शिलायास्तिलको गण्डपार्श्वे निवेशितः। त्वया प्रनष्टे तिलके तं किल स्मर्तुमर्हसि।" (वा० सुं० स० ३८, ४०)। दीनजी कहतेहैं कि नवलाकिशोर प्रेसका छपा हुआ एक 'अवधविलास' नामक ग्रन्थ है। उसमें लिखाहै कि रघुनाथजीने चित्रकूटमें ९९ रहस्य किए। अंतिम रहस्य आधा होगयाथा कि जयन्तने विघ्न किया। वही आधा रास भगवान्‌ने कृष्णावतार में पूरा किया। ४—बैजनाथजी लिखतेहैं कि किसी समय जयन्तकी स्त्री रासमें प्रभुको देखकर मोहित हो श्रीकिशोरीजीकी सखियोंमें मिलकर यहीं रहगई—यही देवाङ्गना तीर्थ प्रसिद्ध है। इसी ईर्ष्यासे जयन्त परीक्षा हेतु आया। ५—मयूखमें पं० शिवलालजी कहतेहैं कि सुरनर मुनि सब इस शृंगार रंगमें रँगगए पर यह शोभा और सुख जयन्तको अच्छा न लगा, इसीकारण वह विघ्न करनेको उद्यत हुआ।

‡ १ पां०—पुष्पोंके भूषण पहनानेका भावकि रावण दो प्रकारसे प्रबल है। एक इससे कि वह अनादिशक्तिको इष्ट जानता है और दूसरे इससे कि शंकरजी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुरपति-सुत धरि बायसबेषा।
सठ चाहत रघुपति-बल देषा॥ § ० (५)
जिमि पिपीलिका सागर थाहा।
महामंद-मति पावन चाहा॥ ,, (६)

अर्थ—देवराज इन्द्रका पुत्र कौवेका वेष धरकर मूर्ख रघुपतिका बल देखना चाहताहै। जैसे च्यूँटी समुद्रकी थाह लेना चाहे वैसेही महानीच बुद्धि जयन्तने उनके बलकी थाह पानी चाही।

पु० र० कु०—१ 'सुरपतिसुत धरि बायस बेषा' इति। (क)—☞यहाँ उपदेश है। बुरा कर्म करनेवालेकी क्या गति होतीहै। देखिए तो उसका दर्जाकि कहाँ तो समग्र देवताओंके राजाका पुत्र और कहाँ कौवेका रूप। महात्माओंसे छल करनेकी बुद्धि करतेही 'सुरपतिसुत' पदवीसे गिरकर इस दर्जेको पहुँचा, 'काग' होगया—'मूढ मन्दमति कारन कागा'। 'काग' कहलाया।

२—'सुरपतिसुत' से जनाया कि—(क) एक तो दिव्य देहवाला, दूसरे इन्द्रका दुलारा,तीसरे इन्द्रके समान है। वायस पक्षियोंमें अधम है 'जाहि छुइ सुमति करहिं अस्नाना'। पुनः, (ख)—सुरपति छली, मलिन और अविश्वासी कौवेके समान आचरणवाला है, यथा—'काक समान पाकरिपु रीती। छली मलीन कतहुं न प्रतीती', सरिस स्वान मघवान जुवानू'। उसीका यह पुत्र है। अतः काक वेष धारण

को गुरु मानताहै। अतः राजनीतिके अनुकूल रघुनाथजीने शंकरजीको गङ्गा उतर कर पूजकर प्रसन्न किया और यहाँ जानकीजीको प्रसन्न करतेहैं।

२—रा० प्र० श०—विचारसे देखाजाय तो इसकाण्डके हर चरितमें नवों रसोंकी झलकहै। यहाँ भी देखिए।—(१) फलोंके गहने धारण करानेमें शृंगार की पराकाष्ठा है। (२)—मंदमुस्क्यानयुत कुछ छेड़छाड़में हास्य। (३)—जयन्तका इसी समय रंगमें भंग करना वीभत्स। (४)—प्रभुको क्रोध आना रौद्र। (५)-सींक द्वारा ब्रह्मास्त्रका प्रयोग वीर। (६)-जयन्तका भयसे भागना भयानक। (७)—दोही अंगुलका बीच रहा परन्तु जलाया नहीं यह अद्भुत। (८)—शरण आनेपर क्षमा करुणा। (९)—यह सबहोनेपरभी चित्त स्थिर है यह शान्त।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किया ही चाहे। (ग)—सुरपति छली है और इसने भी छल किया, यथा—'तासनु आइ कीन्ह छल मूरुख अवगुन गेह' पुनः, भाव कि (घ)-अपने बाप इन्द्रके बलसे रामजीके बलकी परीक्षा करना चाहताहै *।

३—'धरि बायस बेषा'। कौएका रूप क्यों धारण किया? एक कारण ऊपर लिखागया। दूसरा, यह कि चाण्डालकर्म करने आया है, अतः चाण्डाल पक्षीका रूप धरा, यथा—'सठ स्वपच्छ तव हृदय बिसाला। सपदि होहु पच्छी चंडाला'—(उ० § १११)—जैसे लोमशजीने चाण्डालपक्षी होनेका शाप देते हुए भुशुण्डिजीको 'शठ' कहा, वैसेही यहाँ वक्ता लोग 'वायस वेष' धारण करनेके साथ इसे 'शठ' कहतेहैं—(मा० स०) पुनः, काक महामोहका स्वरूप है और सबसे बहुत सयाना है अतः काक बना—इति रामधुग्रन्थे।†

४—'सठ' कहा क्योंकि (क)—छलसे बलकी परीक्षा चाहताहै, कि अपना काम भी करलूँ और कोई पहचाने भी नहीं वा, (ख)—जो अथाह है, जो मनकर्म वचनसेभी सुनने समझनेको भी अशक्य है उसको (आँखोंसे) देखनाचाहता है। वा, (ग) बुद्धिविचारहीन है। मन्दोदरी वाक्यसे मिलान कीजिए यथा—'सुरपति सुत जानेउ बल थोरा'।

५—बल देखनेका कारण यह है कि समस्त देवता रावणवधकी प्रतीक्षा कररहेहैं और रामचन्द्रजी रातदिन स्त्रीकी सेवामें रहतेहैं; ये ईश्वर कैसे होसकतेहैं। आदिमें जो कहाथा कि "पावहिं मोह बिमूढ़'

---

* दीनजी—रामचंद्रजीका बल जाँचना मामूली आदमीका काम नहीं था। यह सुरपतिका पुत्र था इससे यह जाँचनेके लोग्य था। बड़ेसे बड़ाही जाँच करसकताहै। इन्द्र या उसका और कोई नाम यहाँ दियाजाता तो यह खूबी न आती जो 'सुरपति' शब्दमें है।

† मा० म० और कारण ये लिखतेहैं—(क) भुशुण्डिजी काग हैं। वे परम भक्त रामजीके हैं। कदाचित् मेरा अपराध रामचन्द्रजी जानभीगए तो उनके नातेसे क्षमा करेंगे क्योंकि 'प्रनतकुटुंबपाल रघुराई'। वा, (ख)—काग चिरजीवी होताहै इस शरीरमें मृत्युका भय नहीं। वा० (ग)—जैसा कर्म करना हो उसके अनुकूल शरीर होना चाहिए। शरीर कोई और हो और कर्म उससे दूसरे शरीरका हो तो निन्दा होतीहै।—'लहइ निचाइहि नीच'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वही जयन्तको हुआ। मोहवश होकर उसने परीक्षा ली।—(विशेष पिछली चौपाईमें लिखागयाहै और आगे चौपाई ८ में भी गौड़जीकी टिप्पणी देखिए)।

पु० र० कु०—"जिमि पिपीलिका सागर थाहा।००" इति।—अथाह बलको देखनाचाहता है और वह भी कागरूपसे, इसीपर सागर और च्यूँटीका उदाहारण देतेहैं। जयन्त च्यूँटीसदृश है और रघुपतिबल समुद्र। यथा—'संकरचाप जहाज सागर रघुबर-बाहु-बल'। च्यूंटीकी उपमा देकर जनाया कि जैसे यह सर्वथा अशक्य है वैसेही जयन्त सर्वथा अशक्य हैं, जिस बलकी समस्त देवतादैत्यभी थाह नहीं पासकते उसको भला यह क्या देखेगा।—'देवाश्च दैत्याश्च०'। इसीसे 'महामंदमति' कहा। अत्यन्त मूर्ख और नीच विचारहीन बुद्धिवाला न होता तो ऐसा न करता।—विशेष 'मूढ़ मंदमति कारन कागा' अगली चौपाईमें देखिए।*

सीताचरन चोंच हति भागा।
मूढ मंदमति कारन कागा॥ §० (७)

अर्थ—वह मूढ़, मन्दबुद्धिका कारण कौवा सीताजीके चरणोंमें चोंच ‡ मारकर भागा।

गौड़जी—कौएने कई बार यह ढिठाईकी होगी। परन्तु सरकारके जागपड़नेके डरसे जगज्जननीने चोट सहली, निवारणके लिए एक अँगुली तक न उठायी। 'सब तें सेवाधरमु कठोरा'।

---

* खर्रा—१ जैसे एक हलोरेमें चींटीका पता नहीं वैसेही इसका पता न चलेगा। २—जहाँ मन बुद्धिका गमगुजर नहीं वहाँ यह तनसे परीक्षा करना चाहताहै।

‡ १ मा० म०—अर्थ है कि चरण और चोंच दोनों मारे। कौआ चरण और चोंच दोनोंसेही घाव करताहै। २—पं० रा० कु०—चरण और चोंच दोनों मारे; इस अर्थमें कोई झगड़ा नहीं रहजाता, चाहे जहाँ मारा हो। ३—अब प्रश्न यह होता है कि किससमय यह चरित हुआ? करुणासिन्धुजीका मतहै कि रासविलास होचुकनेपर प्रातःकाल शिलापर सोगएथे, तभी यह चरित हुआ। सीताजीको चरण चोंच मारा, रामचन्द्रजीको नहीं क्योंकि उसने सोचा कि उनको मारूँगा तो जानकी निवारण करेंगी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'सीताचरन चोंच०'

वाल्मीकिजीका मत है कि स्तनमें चोंच मारा *। परन्तु शिवजीका मत है कि चरणमें चोंच मारा। अध्यात्म और आनन्द रामायणोंमें 'अंगुष्ठ' शब्द स्पष्ट दियाहै श्लोक इन दोनोंका एकही है। केवल उत्तरार्द्ध में इतना फ़र्क़ है कि आनन्दरामायणमें 'सीतांगुष्ठ मृदुं रक्तं' है और अध्यात्ममें 'मत्पादांगुष्ठमारक्तं' है। पहलेमें कविके वचन हैं, दूसरेमें सीताजीके वचन हैं जो उन्होंने हनुमान्‌जीसे कहे। अध्यात्म और वाल्मीकि दोनोंमें जयन्तकी कथा सुन्दरकाण्डमें है, अरण्यमें नहीं पर प्रसंग चित्रकूटकाही है।

'ऐन्द्रः काकस्तदागत्य नखैस्तुंडेन चासकृत् ॥५४॥
मत्पादांगुष्ठमारक्तं विददारामिषाशया।

ततो रामः प्रबुद्धयाय दृष्ट्वा पादंकृतव्रणम् ॥५५॥—(अध्यात्म स० ३)। जयदेवजीने भी ऐसाही लिखा है। गोस्वामीजी शिवकथित रामचरितमानसकी कथा लिखतेहैं। रा० प्र० आदि कई टीकाकारोंने वाल्मीकीयसे विरोधके भयसे 'सीताचरनका अर्थ 'सीता आचरन' † ऐसा पदच्छेद करके वाल्मीकिके मतानुसार अर्थ कियाहै। धन्य हैं गोसाईंजी कि जिन्होंने ऐसा पद यहाँ दिया जिससे अन्य ऋषियोंके मतका और विष्णु आदिके रामावतारोंके कल्पकी कथाकाभी उसी शब्दमें सम्मान और समावेश होजाताहै।

पु० र० कु०—१ 'हति भागा' का भाव कि चोंच मारकर भागकर दूर बैठजाताथा। कि देखें क्या करतेहैं। यह भाव आगे 'चला भागि बायस भय पावा' से सिद्ध होता है।—(वा० स० ३८ के 'दारयन्स च मां काकस्तत्रैव परिलीयते' अर्थात् वह वहीं छिप जाताथा, इससेभी

* ऐसा ही वाल्मीकि रा० में कहाहै—'स तत्र पुनरेवाथ वायसः समुपागमत्। ततः सुप्तप्रबुद्धां मां राघवाङ्कात्समुत्थिताम्। वायसः सहसागम्य विरराद स्तनान्तरे ॥२२॥ पुनः पुनरथोत्पत्य विरराद स मां भृशम्। ततः समुत्थितो रामो मुक्तैः शोणितबिन्दुभिः ॥२३॥'—(स० ३८ एवं स० ६७)।

† गौड़जी—(अँचरा पिलाना = स्तन पिलाना) यह मुहावरा है। 'अंचल' का प्राकृतरूप 'आंचर' और 'अँचरा' दोनों है। अन्यत्र प्रयोगभी है 'दुहुँ आचरन्ह लगे मनि मोती' इसप्रकार 'सीताचरन' का विच्छेद, 'सीता आचरन', इसप्रकारभी होसकताहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह भाव ज्ञात होताहै कि वह भागकर दूर बैठगया)। सीताजीके चरणोंमें चोंचमारा, इस तरह क्यों परीक्षा ली ? यह सोचकर कि इनका अपराध करनेसे रामचन्द्रजी अपने पुरुषार्थमें कसर न करेंगे, जितना बल होगा सब लगादेंगे। (पं०)।

२—'मूढ मंदमति कारन कागा'। पहले चरणोंमें चोंचमारना कहकर दूसरे चरणमें उसका कारण कहा कि 'मूढ मंदमति' है। अपनी हानि लाभ न समझ पड़ी, अपने हाथों अपने मरणका उपाय रचा; अतः मूढ़ कहा। यथा—'जातुधान सुनि रावन बचना। लागे रचइ मूढ सोइ रचना'। रघुनाथजीका बल और प्रभुता नहीं जानी; अतः मतिमन्द कहा। यथा—'अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मैं मतिमन्द जानि नहिं पाई'। बल देखनेके लिए काग बना। †

नोट—उस समय लक्ष्मणजी कहाँ थे, जो उन्होंने रक्षा न की ? इसका उत्तर यह है कि यह एकान्त स्थल है इससे लक्ष्मणजी यहाँ नहीं हैं। दूसरे जयन्त इसीलिए कौआ बना कि इसका सब घरोंमें गुज़र है किसीको कुछ संदेह नहीं होगा। तीसरे, लक्ष्मणजी फलफूल लेनेगए होंगे। इत्यादि।

चला रुधिर रघुनायक जाना।
सीक धनुष सायक संधाना॥§० (८)

अर्थ—खून बह चला तब रघुनाथजीने जाना। धनुषपर सींकका बाण रखकर चलाया।

"चला रुधिर रघुनायक जाना"

पु० र० कु०—(क) 'जाना'। क्या ? यह कि सुरपतिसुत है, वायस वेश धरकर बलकी परीक्षा लेने आया और उसीने इनके चरण

† इसका अन्वय दो प्रकारसे होताहै—'मूढ का मन्दमतिके कारण'। २—मूढ और मंदमति कारण जो काग है अर्थात् मन्दबुद्धिही जिसका कारण है वह काग। भाव यह कि मन्दबुद्धि न होता तो कौआ न बनता। वा; मन्दबुद्धिकी उत्पत्तिका स्थान है। पंजाबीजी अर्थ करतेहैं कि जो मूढ़ है, मंदबुद्धि है और कारणमात्र जो काग बनाहुआ है। बाबा हरीदासजी कहते हैं कि पक्षीको मूढ़ आदि न कहनाचाहिए अतः कहा कि कारन कागा' कि यह वस्तुतः है तो जयन्तही पर कारणसे काग बनाहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में चोंच मारा जिससे यह रुधिर निकला—यह सब जाना। (ख) 'जाना' पद देकर जनाया कि जानकीजीने स्वयं उनसे न कहा; ऐसा सुशील स्वभाव है इसी प्रकार जब रघुनाथजीसे कौसल्या अम्बाजीने पूछाथा कि 'को दिनकरकुल भयउ कृसानू' तब उनका सुशील स्वभाव देखिए कि उन्होंनेभी स्वयं इसका उत्तर न दिया, सचिवसुतसे इशारा करदिया तब उसने केकयीके वरदानका हाल कहा। वैसेही यहाँ सुरपतिकुलके नाशकका हाल सीताजीने न कहा। रामचन्द्रजीने स्वयं जानलिया क्योंकि वे 'रघु' अर्थात् जीवमात्रके नायक अर्थात् स्वामी हैं। वा० सुं० स० ३८ से भी यह भाव सिद्ध होताहै। यथा—"केन ते नागनासोरु विक्षतं वै स्तनान्तरम्। कः क्रीड़ति सरोषेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना॥ २५॥ वीक्ष्यमाणस्ततस्तं वै वायसं समवैक्षत। नखैः सरुधिरैस्तीक्ष्णैर्मामेवाभिमुखं स्थितम्॥ २६॥" रघुनाथजीने पूछा कि यह किसने किया? कौन पंचमुखवाले सरोष सर्पसे क्रीडा करना चाहताहै? पर वे कुछ न बोलीं उन्होंने स्वयं काकको चोंचमें रुधिर लगाहुआ, देखा कि पास बैठाहै। अध्यात्ममेंभी ऐसाही है—'केन भद्रे कृतं चैतद्विप्रियं मे दुरात्मना। इत्युक्त्वापुरतो पश्यद्वायसं मां पुनः पुनः'।—(सुं० सर्ग ३)।]

२—पाँ०—रघुनाथजी जानकीजीकी गोदमें सिर रखे सोरहेथे, उसी अवसरमें जयन्तने चोंच मारा। परन्तु रघुनाथजीके जाग उठने, पतिकी निद्रा भंग होनेके भयसे उन्होंने अङ्ग न हिलाया। जब रुधिर बहकर पीठमें लगा तब जागकर उन्होंने जाना।* ३—प्र०—'जाना श्लेष पद है। रुधिरका बहना और परीक्षार्थ आना दोनों जाना।

---

* यहाँ एक टीकाकारने यह सन्देह करके कि 'चला' तो रुधिरके साथ सम्बद्ध है, रघुनाथजीने जाना तो क्या जाना? 'बैठे फटिकसिला पर सुंदर', इस पूर्वोक्त वचनसे रघुनाथजीके शयनकी तो संभावनाही नहीं है? अतएव यहाँ जाना' कि हमारी परीक्षा लेनेआयाहै यही भाव है।" इसके उत्तर सुनिए (१) वाल्मीकीय, अध्यात्म, आदि प्रायः सभीमें सीताजीकी गोदमें रघुनाथजीका सोना कहागयाहै, यथा—'पर्यायेण च सुप्तस्त्वं देव्यंके भरताग्रजः'—(वा० स० ६७), 'ततः समुत्थितो रामो मुक्तैः शोणितबिन्दुभिः' (स० ३८) और 'मंदके शिर आधाय निद्राति रघुनन्दन।' (अध्यात्मे)। २—दीनजीका मत है कि "बैठे फटिकसिला०" वह प्रसंग वहीं पर ख़त्म होगया। उसके बाद

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"सीक धनुष सायक संधाना"

पु० र० क०—(क) जयन्त परीक्षा लेने आया है। सींकका धनुष बनाकर उसपर सींकका वाण संधान किया। इसमें भाव यह है कि परीक्षा लेने आयाहै। तो ऐसे वाणकाभी अद्भुत प्रभाव देखकर उसको विश्वास होजायगा कि मैंने बड़ी मूर्खता की कि इनकी बलकी परीक्षा लेनी चाही, भला इनके असली वाण और बलकी महिमा कौन जानसकताहै? पुनः, (ख)—तुच्छ जानकर सींक ऐसी तुच्छ वस्तु काही प्रयोग किया। पुनः, (ग)—दिखाया कि काम पुष्पधनुषवाण सेही सारे ब्रह्माण्डको वश करलेता है, "काम कुसुम धनु सायक लीन्हे। सकल भुवन अपने बस कीन्हे"—और हम सींकमात्रसे सारे भुवनोंको कँपादेसकते हैं। पुनः, (घ)—किंचित ही बल दिखानाहै, यथा—'सुरपतिसुत जानेउ बल थोरा' अतः नोट—सींकवाण चलाया। रघुनाथजीके वाण अमोघहैं और जयन्तको मारना नहींहै अतः शार्ङ्ग वाण नहीं चलाया। —(पं०)। * [नोट—पं० रा० ब० श० जी परीक्षा प्रसंग है। ३—गौड़जी लिखतेहैं कि "बैठेकी बादकी घटनाओंको व्यंजनासे कथा द्वारा ही बतायागयाहै। इस घटनामें लक्ष्मणजीकी चर्चा नहीं है। वह कहीं गयेथे। मयंककार कहतेहैं कि कामदगिरिकी प्रदक्षिणाको गयेथे। भगवान्को रुधिरके चलनेपर ही जयन्तकी ढिठाईका पता चला। बैठे होते तो उसकी हिम्मत ही क्यों पड़ती, पता चलनेकी तो बात ही क्या। सरकार श्रीजीकी गोदमें सिर रखकर सो रहेथे। यह एकान्तकी बात थी। इसका शब्दोंमें वर्णन अदबके खिलाफ़ समझकर व्यंजनासे काम लिया। "आचरन" को भी किस नज़ाकतसे "सीता" के साथ 'संधि' करके कैसा छिपाया है। बालक भक्त निःशंक चर्चा कर सकताहै, परन्तु शिवजी ज्ञानी भक्त हैं वह 'चरन' से ऊँचे निगाह उठा नहीं सकते। अतः चरनके कहनेमें भी 'आचरन' किस खूबीसे छिपा है! जब रुधिर टपका सरकारके मुखारविन्दपर, तभी वह तुरन्त उठे। वह लेटे थे इसीलिये तरकश पीठमें बँधा न था। सीक धनुषपर चढ़ाकर ब्रह्मास्त्र चलाया।

* मा० शं—१ निज धनुष वाण निशचरोंके लिए है। यह देवता है इसके लिए देववाणही चाहिए। जयन्तभी देवता और ब्रह्मामी देवता, ब्रह्माका वाण कुश है, अतएव कुशका वाण चलाया। २—सारी सृष्टि ब्रह्माकी रचीहै, ब्रह्ममंत्रसे मंत्रित करके चलाया जिसमें ब्रह्मसृष्टिभरमें जासके, कहीं जयन्तका पीछा न छोड़े।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कहतेहैं कि यह विहारस्थल था इससे यहाँ धनुष-वाण साथ न था)। १ यह सींक कुशासनसे निकालाथा जिसपर लेटेथे, यथा—"सदर्भं संस्तराद्गृह्य ब्रह्मणोस्त्रेण योजयत्। सदीप्त इव कालाग्निर्ज्वालाभिमुखो द्विजम्-(वा० स० ३८)। पुनः, अध्यात्मे यथा-'तृणमेक मुपादाय दिव्या स्त्रीणाभ्य योज्य तत्। चिक्षेप लीलवारामो वायसो परित्वज्ज्वलत्'-(स० ३)। २—एक कारण सींकवाणका यह भी होसकताहै कि जब तिनकेसे काम चलसकताहै तब भारी वस्तुसे काम न लेनाचाहिए। जैसा पंचतंत्रमें कहाहै।—"तृणेन कार्य्यं भवतीश्वराणां किमङ्गवाग्हस्त वता नरेण ॥" अर्थात् जब तिनके द्वाराही समर्थ लोगोंका काम होताहै तब अंग, वाणी हाथवाले मनुष्य द्वारा होना तो कोई बातही नहीं। इससे जयन्तको मालुम होजायगा कि सींकमें इतना बल है तब इनके बलकी थाह क्या मिलसकतीहै ये क्या नहीं करसकेंगे।

अति कृपाल रघुनायक सदा दीन पर नेह।
ता सनु आइ कीन्ह छलु मूरष अवगुन गेह ॥१॥

अर्थ—अत्यन्त कृपालु रघुकुलके राजा जिनका दीनोंपर सदा स्नेह रहताहै, उनसेभी अवगुणधाम मूर्ख जयन्तने आकर छल किया।

पु० र० कु० १—'अति कृपाल०', यथा—'मान्य मीत सो हित चहै सो न छुवै छल छाँह। ससि त्रिसंकु कैकेइ गति लखि तुलसी मन माँहि'। 'सदा दीन पर नेह' और 'अति कृपाल' के साथ 'रघुनायक' पद दिया। रघुजी सर्वस्व दान करके मिट्टीके पात्रसे काम चलाते थे, उस समयभी उन्होंने दया और दीनपर प्रेम न छोड़ाथा और ये तो उनके भी स्वामीहैं। इनकी कृपालुताका क्या कहना? इन्होंने अवध राज्यका त्यागकर उदासी वेष आर्त्त देवता, मुनि, पृथ्वी आदिके लिए धारण कर वनके कष्ट सहे। पुनः, रघु=जीव रघुनायक हैं, जीवमात्रके स्वामी हैं; उनसे छल किया। २—अति कृपालसे दयालुता और रघुनायकसे 'लायकता' (योग्यता) जनायी, यथा—'पुनि मन बचन करम रघुनायक। चरनकमल बंदउँ सब लायक'—(ब० § १७)। पुनः, कृपालुता और 'लायकता' दोनोंपर है अतः दीनपर नेह 'कहा, यथा—'यह दरबार दीनको आदर रीति सदा चलि आई'। ३—छल का कारण बतातेहैं कि वह 'मूर्ख अवगुणधाम' है। यह वक्ताके वचन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं। वे कहतेहैं कि जिसके निकट समस्त सुखोंकी प्राप्ति है वहाँ यह सब दुःखोंका पात्र स्वयं बना; इसका कारण "मूरष००" है।

प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा।
चला भाजि बायस भय पावा ॥§१ (१)
धरि निज रूप गएउ पितु पाहीं।
रामबिमुष राषा तेहि नाहीं॥ ,, (२)
भा निरास उपजी मन त्रासा।
जथा चक्र-भय रिषि दुर्बासा॥ ,, (३)

शब्दार्थ—'प्रेरित'=प्रेरणा किया हुआ, चलाया हुआ।

अर्थ—ब्रह्मास्त्र मंत्रसे प्रेरित वह ब्रह्मबाण दौड़ा, कौवा भयभीत होगया और भाग चला। अपना (असली) रूप धरकर पिताके पास गया। रामविरोधी होनेसे उसने उसको न रखा तप वह निराश होगया, उसके मनमें भय उत्पन्न होगया जैसा दुर्वासा ऋषिको चक्रसे भय उत्पन्न हुआथा।

पु० र० कु०—१ 'प्रेरित मंत्र ब्रह्म सर' इति। (क) ब्रह्मास्त्रसे बड़ा अस्त्र नहीं है और इसकी गति सर्वत्र है। मंत्रसे प्रेरितकरके सींकको चलाया, देखनेमें वह सींकही दिखतीहै पर उसमें तेज ब्रह्मास्त्रका है; सींक होतेहुएभी वह ब्रह्मसर ही है। ब्रह्मास्त्र, यथा—'ब्रह्म अस्त्र तेहि साधा कपि मन कीन्ह बिचार। जो न ब्रह्मसर मानिहौं महिमा मिटै अपार'। (ख)—जैसे वह देखनेमें कौआ और है जयन्त, वैसे ही यह देखनेमें सींक और है ब्रह्मसर। (ग) नोट—नृसिंह पुराणमें लिखा है कि ब्रह्मास्त्रसे अभिमंत्रित करके सींकास्त्र चलाया, यथा—"इषीकास्त्रं स चादाय ब्रह्मास्त्रेणभिमंत्रितम्। काकमुद्दिश्य चिक्षेप सोभ्यधावद्भयान्वितः॥" वही भाव यहां है। वाल्मीकिमेंभी ब्राह्मणोऽस्त्रेण योजयत्' लिखाहै। वह बाण प्रलयकालकी अग्निके समान जलताहुआ देखपड़ताथा।]

२—'धरि निज रूप' जिसमें इन्द्र पहचानले कि मेरा पुत्र है, पिताको पुत्र प्यारा होताहै, यथा—'सुत सम प्रीति प्रतीति मित्रकी इति विनये। उसके समान दूसरा पालक नहीं;अतः 'पितु पाहीं' कहा।

३—'राम बिमुष राखा तेहि नाहीं', यथा—'राम बिमुख थलु

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नरक न लहहीं'। जब नरकमेंभी उसको जगह नहीं मिलती तो भला स्वर्गमें कैसे रहनेको जगह मिले। पुनः, यथा—'बरषाको गोबर भयेउ को चहै को कर प्रीति। तुलसी तू अनुभवहि अब रामबिमुख की रीति' —(दो० ७३)। पुनः इससे जनाया कि रामविमुखता ऐसा बड़ा पाप है कि नरकभी नाक सकोड़ताहै, यथा—'अति बडि मोरि ढिठाई खोरी। सुनि अघ नरकहु नाक सकोरी'।

४—'भा निरास उपजी मन त्रासा...' इति। (क) अभीतक पिताका भरोसा था, जब उसने शरणमें न रखा तब भयभीत होगया और चिन्ता हुई क्योंकि जब पिताहीने रक्षा न की तो और कौन करेगा? पुनः यह कि वह देवताओंका राजा है, राजाही न रक्षा कर सका तो प्रजा क्या रक्षा करेगी? पुनः, (ख)—यह भी अनुमान होता है कि रक्षा करना तो दूर रहा वह स्वयं इसे मारने चला इसीसे वह हताश होगया—यह भाव आगेके 'मातु मृत्यु पितु समन समाना...' से निकलताहै। और नृसिंह पुराणसे भी इसकी पुष्टि होतीहै। * (ग) पहले 'भय' ही था अब 'त्रास' हुआ। (घ)—यहाँतक बलकी परीक्षा दी, बल देखने आयाथा सो बल दिखाया कि 'ब्रह्मधाम शिवपुर सब लोका' में गया, पर किसीने शरणमें न लिया।

५ (क)—'जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा' से दिखाया कि वहाँ तो विष्णुभगवान्का सुदर्शनचक्र था और यहाँ वही सींकवाणसे उत्पन्न हुआ, यह रघुनाथजीका प्रभाव दिखाया। ☞ यह उपदेश है कि भक्तका अपराध न करे, यथा—'जो अपराध भक्त कर करई। रामरोष पावक सो जरई'। राजा अम्बरीष क्षत्रिय थे, उनका अपराध करनेसे ब्राह्मण (ऋषि दुर्वासा) पर चक्र चला और ब्राह्मणको क्षत्रियके

* 'स त्विन्द्रस्य सुतो राजन्निन्द्रलोकं विवेश वै। रामास्त्रं प्रज्वलद्दीप्तं तस्यानुप्रविवेश वै ॥१॥ विदितार्थश्च देवेन्द्रो देवैः सर्वैः समन्वितः। निष्कामयच्च तं दुष्टं राघवस्यापकारिणम् ॥२॥ अर्थात् वह इन्द्रका पुत्र इन्द्रलोकमें प्रविष्ट हुआ उसके पीछेही रामजीका देदीप्यमान प्रज्वलित अस्त्रनेभी प्रवेश किया। समस्त देवताओं संयुक्त देवराजने अर्थको जानकर राघवके अपकार करनेवाले उस दुष्टको निकाल दिया। (नृसिंहपुराणे)। पुनः, यथा वाल्मीकीये—'स पित्रा च परित्यक्तः सर्वैश्च परमर्षिभिः। त्रींल्लोकान्सं परिक्रम्य तमेव शरणं गतः'।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पैरोंपर गिराया। यहाँ सीताजीका अपराध किया तो देवराजके पुत्रपर ब्रह्मसरने धावा किया। पुनः, (ख)—इस दृष्टान्तसे कालका भी नियम स्थिर हुआ। चक्र वर्षभरमें लौटा वैसेही यहाँ जयन्तका पीछा एक सालतक बराबर ब्रह्मसरने किया।—पूरी कथा अ० §२१७ (७) में देखिए। पुनः, (ग)—[प्र०—इस उदाहरणसे जनाया कि जिसका अपराध कियाहै उसीकी शरण जानेपर प्राण बचेंगे।

ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका।
फिरा स्रमित ब्याकुल भय सोका॥ §१ (४)
काहू बैठन कहा न ओही।
राषि को सकै राम कर द्रोही॥ ,, (५)

अर्थ—ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि समस्त लोकोंमें भागता फिरा, थका भय और शोकसे व्याकुल होगया। किसीनेभी उससे बैठने तकको न कहा। (इसका कारण वक्तालोग कहतेहैं कि) रामजीके द्रोहीको कौन रखसकताहै? अर्थात् कोई नहीं। *

नोट—जयन्तका प्रसंग इस कांडके आदिमें देकर अरण्यकांडकी कथा जनादी उसका बीज यहाँ डालदिया, कि इसमें सीताहरण होगा और सुरनरमुनिको तब पूर्ण विश्वास रावणवधका होगा। क्योंकि किंचित अपराधसे इन्द्र देवराजके पुत्रका यह हाल हुआ तब त्रिलोक का शत्रु कब सीताहरणकरके बचसकताहै।

पु० र० कु०—१ (क) "ब्रह्मधाम सिवपुर००" यथा—"जौं खल भयेसि रामकर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही"—(लं०§ २६)। (ख)—'सब लोका' अर्थात् चौदहो भुवनों वा त्रयलोक्यमें 'लोका' पद देकर जनाया कि 'रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी' इन अष्ट लोकपालोंके लोकोंमेंभी गया और उनसे शरण माँगा कि आप सब लोकपाल कहलातेहैं हमारा पालन कीजिए इस शब्दसे वैकुण्ठ, महावैकुण्ठ, किन्नरलोक आदि सभी जनादिए। (ग)—ब्रह्मधाममें जानेका कारण यहभी होसकताहै कि यह

* यथा—"अभ्यद्रवद्भयसश्च भीतोलोकान् भ्रमत्पुनः। इन्द्र ब्रह्मादिभिश्चापि न शक्यो रक्षितुं तदा"—(अध्यात्म स० ३)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मास्त्रसे अभिमंत्रित है ब्रह्मा अवश्य इसका निवारण करेंगे।-(खर्रा (घ)—'भ्रमित' क्योंकि करोड़ों योजन चला। चार प्रकारका दण्ड उसे हुआ श्रम, व्याकुलता, भय और शोक। शोक कि बुरा किया अब जीता नहीं बच सकता। भय अस्त्रका कि यह जला डालेगा छोड़ेगा नहीं।

२—"काहू बैठन कहा न ओही।०" (क) यहाँ यह शङ्का होतीहै कि प्रभुका बचन है कि "सरनागत कहँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि। ते नर पामर पापमय तिन्हहिं बिलोकत हानि"—(सुं०§ ४३) तो यहाँ उस वाक्यका विरोध होताहै? उत्तर यह है कि धर्मकी गति बड़ीही सूक्ष्म है। ईश्वर-साधु-ब्राह्मणके विरोधीकी रक्षा अधर्म है, इनका रक्षक स्वयं भी विरोधी मानाजाताहै। इनके संबन्धमें शरणागत पालन धर्म अधर्म है। इसी कारण ग्रन्थकारभी रामविरोधीका यहाँ नाम नहीं लेते—'ओही' अनादरसूचक सर्वनामकाही प्रयोग कियाहै। (ख) प्रथम चरणमें कहा कि बैठनेकोभी किसीने न कहा, जब बैठने तकको न कहा तो रखना तो बहुत दूर रहा। अतः यह कहकर तब कहा कि 'राखि००'। ३—'राखि को सकै रामकर द्रोही' से जनाया कि रामविरोधी सबका द्रोही है। जिसे अपनीभी वही दुर्दशा करानी हो वही रक्षाका साहस करसके। यथा—नृसिंहपुराणे—"रामवध्यो न शक्यः स्याद्रक्षितुं सुरसत्तमैः। ब्रह्मेन्द्ररुद्रसंज्ञैश्च त्रैलोक्ये प्रभुभिस्त्रिभिः।

४—(पं०—राम सर्वात्मा हैं, सबके प्रेरकहैं। अतः कहा 'राखिको सकै राम कर द्रोही')

मातु मृत्यु पितु समन समाना।
सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना॥ १ (६)
मित्र करै सत रिपु कै करनी।
ता कहुँ बिबुधनदी बैतरनी॥ ,, (७)
सब जगु ताहि अनलहु ते ताता।
जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता॥ ,, (८)

शब्दार्थ—समन (शमन) =यम। हरिजान = हरिकी सवारी, गरुड़। बिबुध=देवता, देव। बिबुधनदी=सुरसरि, गंगा। बैतरनी—वैतरणी *।

* वैतरणी—एक प्रसिद्ध पौराणिक नदी जो यमके द्वारपर मानी जातीहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—हे विष्णु-यान गरुड़जी ! सुनिए । हे भ्राता ! सुनिए—जो रघुवीरसे विमुख है उसके लिए उसकी माता मृत्यु, पिता यमराज और अमृत विषके समान होजातेहैं । मित्र सौ शत्रुओंकी करनी करताहै और सुरसरि (गंगा) उसे वैतरनी होजातीहै, सारा संसार ही उसे अग्निसेभी अधिक तप्त होजाताहै ।

पु० र० कु०—१ नभ, जल और थल संसारमें ये तीन विभाग हैं, यथा—'जल-चर थलचर नभचर नाना । जे जड चेतन जीव जहाना' इस प्रसंगमें दिखाया कि तीनोंमें कहीं उसे जगह न मिली । 'गयेउ पितु पाहीं' अर्थात् स्वर्गमें, यह आकाश हुआ; 'ता कहँ बिबुधनदी...' से जल बिभाग कहा, और 'सब जगु...' से थल सूचित किया ।

२—वहाँ रामविमुखकी गति कही, रामकृपापात्रको इसका उलटा जानिए ।

श्रीराम-विमुख	श्रीरामकृपा पात्र
१ जो रघुबीर विमुख	रामकृपा करि चितवा जाही
२ मातु मृत्यु	करौं सदा तिन्ह कै रखवारी । जिमि बालकहि राख महतारी
३ सुधा होइ बिष	गरल सुधा
४ मित्र करै सत रिपु कै०	रिपु करइ मिताई
५ बिबुधनदी बैतरनी	गोपद सिंधु
६ जग अनलहु ते ताता	अनल सितलाई

३--माताको मृत्यु और पिताको शमन कहकर जनाया कि मृत्यु

कहतेहैं कि यह नदी बहुत तेज़ बहतीहै, इसका जल बहुतही गर्म और बदबूदार है, और उसमें हड्डियाँ लहू तथा बाल आदि भरे हुएहैं । यह भी मानाजाता है कि प्राणीको मरनेपर पहले यह नदी पार करनीपड़तीहै, जिसमें उसे बहुत कष्ट होताहै । परंतु यदि उसने अपनी जावितावस्थामें गोदान कियाहो तो वह उसी गौकी सहायतासे सहजमें पार उतर जाताहै । पुराणोंमें लिखाहै कि जब सतीके वियोगमें महादेवजी रोनेलगे, तब उनके आँसुओंका प्रवाह देखकर देवता लोग बहुत डरे और उन्होंने शनिसे प्रार्थना की कि तुम इस प्रवाह को ग्रहण करके सोखलो । शनिने उस धाराको ग्रहण करना चाहा, पर उसे सफलता नहीं हुई । अंतमें उसी धारासे यह वैतरणी नदी बनी । इसका विस्तार दो योजन मानागयाहै ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और यमराज स्त्रीपुरुषहैं। ४—यहाँ दिखातेहैं कि रामविरोधीको सब उलटे होजातेहैं। माता बालकका पालन-पोषण करतीहै जन्म देतीहै सो उसकी मृत्युका कारण होजातीहै। पुत्र पिताकी स्थिति मातामें करताहै वही यमकी तरह उसे यमलोक पहुँचादेताहै। अमृत अमरत्वगुण छोड़ प्राणघातक होजाताहै। मित्र शत्रुसे बचाताहै यही स्वयं अगणित शत्रुओंका अकेलेही काम करताहै। गंगा तारनेवाली वैतरणी रूप कष्टदायक होजाती हैं, संसार भरमें उसे संतापही मिलताहै, जहाँ भी पैर पड़ता है पैरमें फफोले पड़जातेहैं। मिलान कीजिए 'भरद्वाज सुनु जाहि जब होइ बिधाता बाम। धूरि मेरुसम जनक जम ताहि ब्याल सम दाम'—(ब० §१७५)।

पां०—भुशुण्डिजी माता-पिता आदिके दृष्टान्त देकर लिखतेहैं कि ये सब बातें जयन्तपर बीतीं माता शची मृत्युसम और पिता इन्द्र-यमसमान कठोरचित्त होगए; सुधारूपी सारी विद्या (जिससे वह परीक्षाकेलिए गया) विषरूपा होगई, लोकपाल आदिको मित्रजानकर जिन-जिनकी शरण गया वे शत्रु होगए बैठनेभी न दिया और गङ्गारूपिणी जानकीजी उसे वैतरणी तुल्य होगईं। †

---

† १ रा० प्र० श०—जगज्जननी जानकी इसको मृत्युवत् हुईं ('जनमत मरत दुसह दुख होई', वैसाही दुःख इसे भोगना पड़ा)। जगतपितासे यमकीसी साँसति मिली। श्रीरामजानकीकादर्शन अमृत सो इसे विष हुआ। मंदाकिनी तटपर इसको वैतरणीवत् क्लेश हुआ।—और कैलाश आदि अत्यन्त शीतकर वहाँभी सींक उसे जलाए डालतीहै। २—खर्रा—रामजी सर्व अवतारोंमें श्रेष्ठ, उनका बल देखनेका उद्यम सुधा सम सो विष होगया।

नोट १—इसके बाद कुछ टीकाकारोंने निम्न दोहा दियाहै जो क्षेपक है—

'जिमि जिमि भाजत सक्रसुत ब्याकुल अति दुषदीन।
तिमि तिमि धावत रामसर पाछे परम प्रबीन॥'

२—ऐसाभी अनुमान कियाजाताहै कि यहाँ चारों वक्ताओंका कथन पृथक् पृथक् दियादयाहै 'सुनु हरिजाना' भुशुण्डिवाक्य; 'सुनु भ्राता' याज्ञवल्क्यवाक्य, यथा—'को सिव सम रामहि प्रिय भाई'; 'बिबुधनदी बैतरनी' ये शिववाक्य हैं गंगाके संबंधसे और 'राखि को सकइ' यह गोस्वामिवाक्य है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नारद देषा बिकल जयंता।
लागि दया कोमल चित संता॥ § १ (९)
पठवा तुरत राम पहिं ताही।
कहेसि † पुकारि प्रनत हित पाहीं॥ ,, (१०)

अर्थ—नारदजीने जयन्तको व्याकुल देखा, सन्तोंका चित कोमल होताहै, दया लगी। उसको तुरंत रामजीके पास भेजा—हे 'प्रणत-जनहितकारी! रक्षा कीजिए' ऐसा पुकारकर कहना एवं उसने तुरत पुकारकर कर कहा कि 'प्रणतहित पाहिमां'।

पु० र० कु०—१ 'नारद' (नार=ज्ञान + द=देनेवाले) नाम दिया क्योंकि उसको यथार्थ ज्ञान देंगे। 'संत' कहा क्योंकि दया लगआई, यथा—'कोमल चित दीननन्हपर दाया'—(उ० ३७); यह सन्तलक्षण कहा। २—भगवत्के कोपसे बचानेवाले भागवतहीहैं, दूसरे नहीं बचा सकते। प्रभुका बचन है "मोतें अधिक संत करि लेखै"। नारदजीने उसे बचालिया नहीं तो मराही था।—रामते अधिक राम कर दासा'। ३—'पठवा तुरत'से जनाया कि भागतेहीमें उपदेश कर दिया उसे रोका नहीं। ४—'कहेसि पुकारि००" इति। ब्रह्मसरसे बचनेके लिए शीघ्र बड़ी दूरसे आवाजदी (दिहिसि) ज़ोरसे पुकारकर ये बचन उच्चारण किए। यहाँ ग्रन्थकारनेभी उसकी आतुरता अपने शब्दोंसेही लक्षित करदीहै। इतनी जलदी प्रभुकी शरणमें आपुकारा कि नारदका उपदेश और उसका पुकारना ग्रंथकारने एकही चरणमें लिखा* ५—जयन्तको

† द्वि० और भा० द० ने यही पाठ दियाहै। प्र० में 'कहेसु' है। इसीसे दो प्रकारसे अर्थ लोगों ने किएहैं। किसी २ का मत है कि अन्तिम चरण नारद-वाक्य है। अर्थात् जयंत को प्रभुके पास भेजा और यह कहा कि पुकारकर प्रणत हित पाहिमां ऐसा कहना। क्योंकि आगे उसका जाकर त्राहि त्राहि करना लिखतेहैं मानसमें 'कहेसि' का अर्थ दोनों प्रकार आयाहै—कहना और कहा। और 'कहेसु' का अर्थ 'कहना' यही होगा। 'पठवा' पूर्ण क्रिया है अतः 'पुकारकर कहा' यह अर्थ अधिक संगत है। पहले दूरसे पुकारकर कहा फिर पास जाकर पकड़कर अत्यन्त दीन होकर शरण हुआ। अथवा, 'कहेसि' दोनोंमें लगालें तो और भी अच्छा है।

* रा० कु०—उपदेश किया कि रामजीके पास जाओ। दूरसेही पुकारकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मारना नहीं है और सबसे निराश होनेपर अब उसकी मरनेकी दशा होरहीहै अतः नारदजीको प्रेरणाहुई तब वे बचानेके लिए आकर मिले —(अथवा, नारद सर्वज्ञ हैं जानकर आमिले—वन्दन पाठकजी)

नोट—पुकारनेसे मानरहित और दीन सूचित होगा 'अभिमान गोविन्दहि भावत नाहीं' यही कारणहै कि दासमेंभी अभिमान देखतेहैं तो प्रभु तुरत उसे उखाड़ फेंकतेहैं, यथा—'उर अंकुरेउ गर्वतरु भारी। बेगि सो मैं डारिहउँ उपारी। पन हमार सेवक हितकारी'—(ब० § २२८)। फिर भला अपराधी और विमुख अभिमानपूर्वक छल करे तो कब शरण पावेगा ? कहा है कि 'मोहि कपट छल छिद्र न भावा'। अतः, 'पुकारि' पद दिया। प्र०—मानी विनयभी करताहै तो दंभ-पूर्वक गुप्त ही।

२—पूर्व कहागयाहै कि रामविराधी होनेसे वक्ताओंने उसका नामभी लेना अयोग्य समझा। पर यहाँ नारदके दर्शनपर कविने उसका नाम दिया। क्योंकि उनके दर्शनसे उसका पाप नष्ट हुआ—संत दरस जिमि पातक टरई' और अब वह प्रभु सन्मुख होगा, उसकी विमुखता दूर होगी।

३—शिवब्रह्मा आदिनेही यह उपाय उसे क्यों न बताया ? क्या उनको सूझा नहीं ? कुछ लोगोंका कहनाहै कि उन्हें सूझाही नहीं। होसकता है कि ऐसाही हो पर मेरे तुच्छ समझमें आताहै कि शिवजी को अवश्य सूझा होगा पर उन्होंने प्रभुकी रुचिजानकर उपदेश न किया। जबतक परम भयातुर न होगा उसपर किसीकी शिक्षाका प्रभाव न पड़ता, दूसरे प्रभुके बलकी पूर्ण परीक्षाभी नहीं पासकता था जबतक जिसका जिसका उसको बल-भरोसा था सबसे हताश न हो जाता। अतः, जबतक निरवलम्ब न हुआ, भयशोकसे व्याकुल न हुआ, तबकक शरणका उपदेश न दियागया। जैसे शिवजीने गरुड़के बारेमें कहाहै—"तातें उमा न मैं समुझावा। रघुपतिकृपा मरम मैं पावा"—(उ० § ६१)।

कहना जिसमें वे सुनलें कि तू शरण आयाहै। और नाम न लेना, 'प्रणतहित ही नाम लेकर रक्षाकी प्रार्थना करना। अर्थात् कहना कि प्रणतका हित करना आपकी बानिहै, मैं अत्यन्त 'नत' हूं...।—(यह भाव पुराने खर्रेका है। कथा केलिए जो साफ़ किएहुए खर्रे हैं उनमें यह भाव नहीं है।)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आतुर सभय गहेसि पद जाई ।
त्राहि त्राहि दयाल रघुराई ॥ § १ (११)
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई ।
मैं मतिमंद जानि नहिं पाई ॥ ,, (१२)
निज कृत कर्म्म जनित फल पायउँ ।
अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउँ ॥ ,, (१३)

शब्दार्थ—आतुर=घबड़ाया हुआ, व्याकुल; शीघ्र, यथा—'सर मज्जन करि आतुर आवहु । दीक्षा देहुँ ज्ञान जेहि पावहु'—(लं०)। 'तकि'=ताककर, उसका अवलंब या भरोसा करके ।

अर्थ—भय और व्याकुलतासहित उसने शीघ्र जाकर चरण पकड़ लिए और कहा कि—हे दयालु ! हे रघुराई ! रक्षा कीजिए,रक्षाकीजिए। आपका बल अतोल है, आपकी प्रभुता अतुलित है, मैं मंदबुद्धि उसको नहीं जानपाया । अपने किएहुए कर्मसे उत्पन्न फलको मैं पागया । हे प्रभो ! अब मेरी रक्षा कीजिए, शरण तककर आयाहूँ ।

पु० र० कु०—१ जैसे नारदजीने 'पठवा तुरत' वैसेही यहाँ वह तुरत आयाभी, यथा—'आतुर···जाई'। मन कर्म वचन तीनोंसे शरण गया—'सभयसे मन, 'गहेसि पद' से कर्म और 'त्राहि०० तकि आयउँ से वचन सूचित किए ।

२—'सठ चाहत रघुपतिबल देखा' उपक्रम है और 'अतुलित बल...' उपसंहार ।

३—'अतुलित बल...' इति ।—बल अतुलित है क्योंकि एक सींक चलाई सो उसने सारे ब्रह्माण्डको बेधडाला, उसमें यह अव्याहतगति देखी । प्रभुता अतुलित यह देखी कि आप तो चित्रकूटमेंही बैठे रहे तौभी ब्रह्मा शिवादिने मुझे अपने लोकमें बैठनेभी न दिया ।

४—'मैं मतिमंद जानि नहिं पाई' इति । (क)—भाव कि मंदबुद्धि होनेके कारण न जानताथा, अब जाना । पहले मोह था कि स्त्रीको पुष्पाभरण पहनापहनाकर प्रसन्न कियाकरतेहैं, इनमें क्या बल होगा । पुनः, (ख)—यह भी जनाया कि अज्ञानवश मैंने किया उसे क्षमा कीजिए, जैसे रामजीने परशुरामजीसे और उन्होंने रामजीसे कहा था,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यथा—'छमहु चूक अनजानत केरी' 'अनुचित बहुत कहेउँ अज्ञाता। छमहु छमा-मंदिर दोउ भ्राता'।—[नोट—नृसिंह पुराणमेंभी कहाहै—'त्राहि त्राहि महाबाहो अज्ञानादपिकारितम्' अर्थात् मैंने यह अज्ञान-वश किया है मेरी रक्षा कीजिए]

६—'निजकृत कर्म जनितफल पायउँ।००' इति। (क)—अर्थात् इसमें आपका किञ्चितभी दोष नहीं है सरासर मेरा अपराध है। जैसा किया वैसा फल पाया, यथा—'निज कृत कर्म भोग सब भ्राता'। (ख)—'प्रभु' का भाव कि चौदहों भुवनोंमें आपही समर्थ हैं, कोई भी रक्षा न कर सका पर आप रक्षा कर सकते हैं। आपका-सा सामर्थ्य किसीमें नहीं।

दीनजी—पूर्व परीक्षा की थी। अब परीक्षक स्वयं स्वीकार करताहै कि परीक्षा मिलगई कि अतुलित है। परीक्षकोंमें हेड अर्थात् सरदार है इससे जानलिया कि अतुलित है।

प्र०—(क)—'त्राहि त्राहि' में भयकी वीप्सा है। अथवा, सीता-राम युगल सरकारके विचारसे दोबार कहा। (ख) 'दयालु' का भाव कि मेरी करनीपर दृष्टि न कीजिए अपनी कारणरहित कृपालुताको देखिए। (ग) 'रघुराई' अर्थात् रघुकुल शरणागत पालक हैं, आप उसके राजा हैं मैं शरणागत हूँ मुझे शरण दीजिए। पुनः, रघु=जीव। आप जीवमात्रके स्वामी हैं, मैं पावँर जीव हूँ; अतः आपको रक्षा करनी उचित है।

गौड़जी—"पठवा·····रघुराई" तक इकट्ठा अन्वय इस प्रकार होना चाहिये।—'ताहिं पुकारि प्रणतहित! पाहि कहेसि' (अस कहि) तुरत राम पहिं पठवा। (जयन्त) पुकारि कहेसि 'प्रणत हित पाहि' (अरु) आतुर [तुरन्त] सभय जाइ पद गहेसि (अरु कहेसि) 'त्राहि! त्राहि! दयालु रघुराई' इत्यादि। इस अन्वयमें दीप देहरी न्यायसे 'कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही' यह पद दो बार आताहै। पहली बार 'कहेसि' का अर्थ है 'तू कहना' और विधि है। दूसरी बार 'कहेसि'का अर्थ है 'उसने कहा'। दोनों वाक्योंको एकमें ही कहनेमें अद्भुत चमत्कार है। शब्दशक्तिसे तथा दीपदेहरी अलंकारसे वस्तु व्यंग्य है। भाव यह है कि नारदजीने ज्योंही युक्ति बतायी त्योंही जयन्त उस युक्तिको काममें लाया। क्षणभरकी भी देर न की।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुनि कृपाल अति आरत बानी।
एक नयन करि तजा भवानी ॥§१ (१४)

कीन्ह मोहबस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित।
प्रभु छाडेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम ॥ २ ॥

अर्थ—(शिवजी कहतेहैं कि) भवानी! कृपालु रघुनाथजीने उसके अत्यन्त आर्त्त (दुःख भरे) वचन सुनकर उसको एकाक्ष (एक आँखका) करके छोड़दिया। उसने मोहवश द्रोह कियाथा, यद्यपि उसका वध ही उचित था सोभी प्रभुने कृपा करके उसे छोड़-दिया। रघुवीर रामजी के समान कौन दयालु है? (कोई भी नहीं)।

पु० र० कु०—१ 'अति आरत बानी'। (क)—'त्राहि त्राहि दयालु रघुराई।...अब प्रभु पाहि' यही अति आर्त्त वाणी है। यथा—"प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि। आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैंगे तोहि"। पुनः, (ख)—भाव यह कि रामजीके निकट थोड़ीभी दीनता हो तो वे उसे अत्यन्त मानलेते हैं, यथा—'सुनत राम अति कोमल बानी। बालि सीस परसेउ निज पानी', 'सुनत बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाई'—सुं० §५९ देखिए।

२—'कीन्ह मोह बस द्रोह' यथा—'सोचिय गृही जो मोहबस करइ कर्मपथ त्याग' एवं 'करहिं मोहबस द्रोह परावा' (३§३९)। भाव कि द्रोहका कारण मोह है। 'करि छोह' कहा क्योंकि उसके कहनेसे उसका नेत्र भंग किया। ३—'एक नयन करि तजा०० जद्यपि तेहिकर बध उचित' इति। (क)—जयन्त भगवान्‌की परीक्षार्थ आया और दक्षिण अँगूठा विदीर्ण किया अतः उसकी दक्षिण आँख फोड़ीगई। इतना कहनेपर जानपड़ताहै कि भवानीकी चेष्टासे उनको संदेह जानपड़ा कि जब एकाक्ष (काना) करदिया तब कृपालुता कैसी? अतः, उसीका समाधान तुरंत शङ्करजीने किया।—(दीनजी—यह शङ्करजी का फैसला हुआ।)

रामजीका बल, कृपालुता, प्रभुत्व और शरणपालकता गुण दिखाए पर ४—इस प्रसंगभरमें 'कृपा' गुणको प्रधानतादी है, यथा—(i) अति कृपालु रघुनायक सदा दीन पर नेह', (ii) 'सुनि कृपाल अति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आरत बानी' (iii) 'प्रभु छाडेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम'।

५—'प्रभु' और 'को कृपाल रघुबीर सम' का भाव यह कि जब क्रोध होताहै तब शान्ति और कृपा नहीं रहजाती, जैसा परशुरामजीने कहाहै—'मोरे हृदय कृपा कस काऊ'; पुनः, यथा—'क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा। ऊसर बीज बये फल जथा'। दूसरे, सामर्थ्य रहते हुए क्रोधीमें क्षमा दया प्रायः नहीं होती, यथा—'एहिके कंठ कुठार न दीन्हा। तौ करि कोप कहा मैं कीन्हा'। और यहाँ रामजी प्रभु (समर्थ) हैं, रघुकुलमें श्रेष्ठ वीर हैं; तो भी जयन्तपर इतना कोप होनेपरभी कृपालु हुए। ६—जयन्तप्रसंगके द्वारा प्रभुने अपना बल और प्रताप सबको दिखाकर जनादिया कि सीताका अपराध करनेवाला बच न सकेगा। रावण इनका अपराध इसी काण्डमें करेगा वह मारा-जायगा इसमें सन्देह नहीं। सुरनरमुनिको ढारस इस चरितसे होगा और मन्दोदरी आदिको भय।

प्र०—(क) 'एक नयन करि तजा'। इससे बाणकी अमोघता भी रही और उसको शिक्षाभी हुई। एकही नेत्र फोड़ा क्योंकि अर्धाङ्गी-जीका अपराध कियाथा। नेत्रही फोड़ा क्योंकि नेत्रसेही देखकर चोंच माराथा। मंदोदरीनेभी ऐसाही कहाहै—'राखा जिअत आँखि गहि फोरा'। (ख)—'जद्यपि तेहि कर बध उचित००' अर्थात् वध-दंडके बदले एक अंगही भंग करके छोड़दिया, न्याय और दया दोनोंकी मर्यादा रखी।—(वाल्मीकि एवं अध्यात्मसे स्पष्ट मालूम होताहै कि प्रभुने उससे कहा कि ब्रह्मास्त्र अमोघ है उपाय बताओ तब दक्षिण-नेत्र देकर उसने प्राणकी रक्षाकी। यथा—मोघमस्त्रं न शक्यं तु ब्राह्मं कर्तुं तदुच्यताम्। ततस्तस्याक्षि काकस्य हिनस्तस्म स दक्षिणम्। दत्वा तु दक्षिणं नेत्रं प्राणेभ्यः परिरक्षितः॥'‡ जयन्त आततायी है अतः इस-

‡ एक नेत्र फोड़नेके विषयमें महानुभावोंने अनेक कल्पनाएँ कीहैं, यथा—१ काकके एकही नेत्र होताहै, तेरे दो क्यों? २—हमदोनोंको एक जाने और देखे। ३—जानकीजी सबको नेत्रवत् प्रिय हैं, यथा—लरकिनी पर घर आई। राखे नयन पलककी नाईं" इति। दशरथवाक्य पुनः 'राखेउँ नयन पलककी नाईं' और 'जोगवहिं प्रभु सियलषनहिं कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे'। नेत्रवत् प्रिय जानकीको कष्टदिया अतः नेत्र फोड़ा।—(मा म, रा प्र० श०)। ४—शृङ्गाररसमें वीभत्सरस किया अतः नेत्रही फोड़ा।—(करु)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का वध उचित था। वाल्मीकिनेभी यही कहाहै—'वधार्हमपि काकुत्स्थः कृपया पर्यपालयत्'। २—कृपालुता एक आँख फोड़नेमें भी है। एक आँख रहनेपर भी दोनोंका काम एकसेही होजाता है और अंगोंमें यह बात नहीं। एक हाथ या एक पैर काट डालनेसे सदा दुःख रहता।—(पं०)।

रघुपति चित्रकूट बसि नाना।
चरित किये श्रुति सुधा समाना॥ §२ (१)
बहुरि राम अस मन अनुमाना।
होइहि भीर सबहि मोहि जाना॥ ,, (२)
सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई।
सीतासहित चले द्वौ भाई॥ ,, (३)

अर्थ—चित्रकूटमें बसकर रघुनाथजीने अनेक चरित किए जो कानोंको अमृत समान † (प्रिय) हैं। फिर रामजीने मनमें ऐसा विचार किया कि मुझे सभी जानगए, इससे भीड़ होगी। सब मुनियोंसे बिदा कराके सीतासहित दोनों भाई (वहाँसे) चले।

पु० र० कु० १—'रघुपति चित्रकूट बसि नाना...' इति। (क)—वाल्मीकिजीसे प्रभुने जो कहाथा, कि तहँ रचि रुचिर परन-तृनसाला। बास करौं कछु काल कृपाला' उसको चरितार्थ किया—'रघुपति चित्रकूट बसि०'। पुनः, मुनिने कहा था कि 'चित्रकूटगिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू' अतः 'चित्रकूट बसि नाना चरित किये...'। निवास का उपसंहार यहाँ है। (ख)—'नाना अर्थात् किए बहुत, पर हमने एकही कहा। 'अब प्रभुचरित सुनहु अतिपावन' उपक्रम है और 'चरित किये श्रुति सुधा समाना' उपसंहार है। इस प्रसंगकी समाप्ति यहाँ की। यहाँ सूक्ष्मतः यह भी जनाया कि वे सब चरित शृङ्गाररसके हैं।

† 'श्रुति' का अर्थ वेदभी कियागयाहै। अर्थ—वेदके समान पवित्र और अमृतसदृश वेदके अनुकूल और सुनने एवम् कल्याण करनेमें अमृत समान। यथा—'श्रुति सेतुपालक रा०'। वा, सुधासम जन्ममरणनाशक। वा, वेदोंमें साररूप जैसे समुद्रका सार अमृत वैसेही वेदोंका सुधासाररूप यह चरित। यथा—'ब्रह्मांभोधि समुद्भवं...'।—(खर्रा)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—'होइहि भीर...'। (क) भीड़ होनेका अनुमान होनेका कारण है। अवध-मिथिला-वासी देखगएहैं; किसी-न-किसी बहानेसे वे अवश्य आते-जाते रहेंगे। भीड़का पास रहना धर्मविरुद्ध है। यह 'विशेष उदासी व्रत' के प्रतिकूल पड़ताहै। (ख) अध्यात्मसे जानपड़ताहै कि अवधवासी आतेजातेथे। यथा—'दृष्ट्वा तज्जनसंबाधं रामस्तत्याज तं गिरिम्'। * (ग)—[खर्रा—जयन्तप्रसंगसे सबका जाननाकहा। सब जानगए कि ईश्वर हैं। अथवा, भाव कि यहाँ सब जानगए अब जो नहीं जानते उनको चलकर दर्शन दें—यह कृपागुण है।—(वंदन-पाठकजी)।]

३—'सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई' इति। (क)—विदा होकर जाना शिष्टाचार है, यथा—'चलेउ पवनसुत बिदा कराई'—सुं० §७ (५) देखिए, 'मुनि सन बिदा माँगि त्रिपुरारी'—ब० §४७ (६) 'गयेउ राउ गृह बिदा कराई'—(ब० §२१६)। पुनः, (ख)—ऐसा करनेसे मुनियोंको संतोष होगा। पुनः, 'सकल' से मिलनेसे आपकी सरलता दिखाई जैसा आगेभी दिखाएँगे, यथा—'सकल मुनिन्हके आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह'। ४—इस चौपाईसे नवीन प्रसंगका आरंभ जनाया। 'सुरपति सुतकरनी' प्रकरण समाप्त हुआ।

"प्रभु-अत्रि-भेंट-प्रकरण"

अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ।
सुनत महामुनि हरषित भयऊ॥ §२ (४)
पुलकित गात अत्रि उठि धाए।
देखि रामु आतुर चलि आए॥ ,, (५)

अर्थ—प्रभु जब अत्रिजीके आश्रममें गए तब वे महामुनि सुनते ही आनन्दित हुए। शरीर पुलकित होगया, श्रीरामचन्द्रजीको देख कर अत्रिजी उठ दौड़े। रामचन्द्रजी (मुनिको दौड़े आतेहुए) देखकर बड़ी शीघ्रतासे चलकर आए।

---

* दीनजी—'विश्राम सागरमें'भी लिखा कि अवधसे लोग बराबर आते जातेथे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु—१ 'अत्रिके आश्रम जब प्रभु गयऊ'। (क) विदा होकर चित्रकूटसे चलनेमें माधुर्य्य-सम्बन्धी "द्वौ भाई" पद दिया और यहाँ अत्रिजीके आश्रमपर पहुँचनेपर ऐश्वर्य्य सम्बन्धी "प्रभु पद दिया। कारण यह कि इनको देखकर मुनि दौड़ेंगे, 'मुनि का इनमें 'प्रभु'-भाव है। (ख)—मुनिका आश्रम आधक्रोश तक। कुटीसे आश्रमकी सीमा इतनी दूर है। 'आश्रम गयऊ' से जनाया कि सीमाके भीतर पहुँचे, अभी कुटी दूर है। (ग)—चित्रकूट रामघाटसे मुनिका आश्रम (सीमा) तीन कोस है और सीमासे कुटी आधकोसहै। यह बीचकी नाप कविने साढ़ेतीन चौपाइयाँ देकर जनादीहै। 'सीतासहित चले द्वौ भाई से लेकर 'सादर निज आश्रम तब आने'तक ३॥ चौपाइयाँ हैं। पहला 'आश्रम' सीमाका बोधक है और आगे जो पुनः 'आश्रम' शब्द आयाहै—'सादर निज आश्रम०'—वह कुटीका बोधक है।—(नोट—इसीप्रकार वाल्मीकिजीके आश्रमपर यह शब्द दो बार आयाहै यथा—'बालमीक आश्रम प्रभु आए—अ० §१२३ (५), और 'करि सनमान आश्रमहिं आने'—१ १२४ (२)। वहाँभी यही दो अर्थ हैं।)

२—"सुनत महामुनि हरषित भयऊ'। (क) कोलकिरातसे सुना होगा, यथा—'सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे' (ख)—यहाँ भीतर (मन) का हर्ष कहा और आगे "पुलकित गात' से बाहरका हर्ष कहा। भीतर बाहर दोनोंमें हर्ष छागया। हर्ष और प्रेमके मारे उठदौड़े। यथा—'प्रभु आगमन श्रवन सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा'—(सुतीक्ष्ण)। 'सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए। हरि बिलोकि लोचन जल छाए।—(अगस्त्य)। 'समाचार पुरवासिन्ह पाए॥ धाये धाम काम सब त्यागी।'—(मिथिलावासी)

(ग)—अत्रिजी चित्रकूटके ऋषियोंमें सबसे प्रधानहैं, इसीसे अन्य सब ऋषियों को 'मुनि कहकर—'सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई'—इनको 'महामुनि' कहा। अर्थात् और सब मुनि हैं और ये महामुनि हैं। यथा—'अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू। तात बिगत भय कानन चरहू॥ रिषिनायक जहँ आयसु देहीं। राखेहु तीरथ जल थल तेही॥—अ० § ३०७ (५) देखिए०।

३—'देखि राम आतुर चलि आए'। (क) उधर मुनिका प्रेमातुर होकर दौड़ना कहकर इधर प्रभुकोभी अपने धर्ममें सावधान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दिखाया। यथा—"सीलसिंधु सुनि गुर आगवनू। सीय समीप राषि रपुदमनू॥ चले सबेग राम तेहि काला। धीर धरमधुर दीनदयाला॥ —अ० § २४२। (ख)—मुनिका 'धावना कहा और रामजीका 'आतुरतासे चलकर आना'कहा। इनका दौड़ना न कहा; क्योंकि इनके साथ स्त्री है। तोभी बहुत तेज़ीसे चले जिससे मुनिको अधिक श्रम न हो। (ग)—खर्रा—मुनिको प्रभुके आगमनकी खबर मिली, अतः सुनकर दौड़नाकहा; पर किरात रामजीको ख़बर न देसके कि मुनि आरहेहैं क्योंकि मुनि सुनतेही धाए और बीचमें जगह थोड़ीही थी। इसीसे रामजीको देखकर आतुर होकर चलना कहा। अथवा, इधर ख़बर पहुचानेका कोई प्रयोजन न था इससे इनको ख़बर न दीगई।]

करत दंडवत मुनि उर लाए।
प्रेमबारि द्वौ जन अन्हवाए॥ § २ (६)
देषि रामछबि नयन जुडाने।
सादर निज आश्रम तब आने॥ ,, (७)

अर्थ—दण्डवत् करतेही मुनिने उनको हृदयसे लगालिया और दोनों जनोंको अपने प्रेमाश्रुसे नहलादिया। रामचन्द्रजीकी छबि देखकर नेत्र शीतल हुए; तब मुनि उनको आदरपूर्व्वक अपने आश्रममें लाए।

पु० र० कु०—१ 'करत दंडवत मुनि उर लाए'। (क) यहाँ राम और मुनि दोनोंकी परस्पर आतुरता और प्रेम दिखाते आरहेहैं। 'करत' शब्दमेंभी वही भाव झलकरहाहै। (ख) हृदयमें लगातेही प्रेम उमड़ पड़ा, नेत्रोंसे प्रेमाश्रुप्रवाह ऐसा उमड़ा कि दोनों भाई (जो छातीसे लगे हुएथे) उससे नहा-से गए। यह अत्यन्त प्रेमकी दशा है, यथा—'अति अनुराग अंब उर लाये। नयन सनेह सलिल अन्हवाए'—(अ० § २४४)। (ग) यहाँ 'अन्हवाए' पद देकर जनाया कि प्रभुने माधुर्य्यमें मुनिको दंडवत् किया; पर वे ऐश्वर्य्य भावसे इनका षोड़शोपचार पूजन करेंगे। उस पूजनका प्रारंभ यहीं कर दियागया। (घ)—[खर्रा—यहाँ मुनिने रामजीकी माधुर्य्यलीलाकी मर्यादा रक्खी, उनको हृदयसे लगाया पर स्वयं माथा न नवाया न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विनतीही की। आगे ऐश्वर्य्यके अनुकूल विनती और प्रणाम किया और भक्तिका वरदान माँगाहै—जहाँ जैसा चाहिए वहाँ वैसा किया।

२—'देखि रामछबि नयन जुडाने'। (क) सब भाइयोंमें रामजीका छबि सबसे अधिक है; इसीसे 'रामछबि' देखकर नेत्रोंका शीतल होना कहा। यह मूर्त्तिही ऐसी सुखदायीहै। यथा—

"चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा॥
"मुनि चरनन्हि मेले सुत चारी। राम देषि मुनि बिरति बिसारी॥
"दूरिहि ते देखे दोउ भ्राता। नयनानंद दानके दाता॥"

(ख)—'जुड़ाने' से पूर्व (दर्शन-विना दर्शनके लिए) संतप्त होना जनाया। यथा—'चितवत पंथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुडानी छाती॥'-(शरभंगजी)।—विशेष अ० §१२४ (२) और सुं० §४४ (३) में देखिए। * (ग)—'नयन जुड़ाने' कहकर जनाया कि रामानुरागी रामकोही पाकर, उनका दर्शन करके, शीतल होतेहैं, अन्य किसी पदार्थसे नहीं 'जुड़ाते'। (घ)—(खर्रा—देखिए अत्रिके नेत्रसे चन्द्रमाका जन्म हुआ जो अत्यन्त शीतल है तोभी उससे शीतल न हुए, प्रभुके दर्शनसेही शीतल हुए। (२) मुनिने प्रभुको प्रेमजलसे शीतल किया और स्वयं उनकी छबि देखकर शीतल हुए। छबि समुद्र है, दर्शन जल है। यथा-'भरि लोचन छबिसिंधु निहारी','जौं छबिसुधा पयोनिधि हुई'। नेत्रके प्रेमजलसे प्रभु शीतल हुए और छबि-जलसे मुनि शीतल हुए। ३—स्वयं दोनोंको शीतल किया और आप शीतल हुए रामछबिसे, क्योंकि 'चारिउ रूपसील गुनधामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा'। इत्यादि।) ३—'सादर निज आश्रम तब आने'। यथा गीतावल्याम्—'प्रेम पावँडे देत सुअरघ बिलोचन बारि' अर्थात् नेत्रों जलकेसेही मानों सुंदर अर्घ्य और प्रेम-पावँड़े देते हुए आश्रममें लेगए।—(सबरीप्रकरण) प्रेमपट बहुत कोमल है। यथा—'जबहिं राम कहि लेहिं उसासा। उमगत प्रेम मनहुँ चहुँ पासा॥'

करि पूजा कहि बचन सुहाए।
दिये मूल फल प्रभु मन भाए॥ §२ (८)

* खर्रा—सब शास्त्र अवलोकन करते करते, 'बाट जोहते' (=राह देखते कि प्रभु आकर दर्शन दें) एवम् तप आदि करनेसे संतप्त थे अब शीतल हुए।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरषि।
मनिबर परम प्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत ॥३॥

शब्दार्थ—आसन=विराजमान, बैठेहुए। प्रबीन=निपुण, चतुर।

अर्थ—पूजाकरके सुहावने सुंदर वचन कहकर उन्होंने प्रभुको 'मन भाये' कंदमूलफल दिए जिससे प्रभु प्रसन्न हुए। प्रभु आसनपर विराजे। नेत्र भरकर उनकी शोभा देखकर परम प्रवीण मुनिश्रेष्ठ हाथ जोड़कर स्तुति कररहे हैं।

१—पु० र० कु—(१) 'कहि बचन सुहाये' अर्थात् कहा कि हमपर बड़ी कृपाकी, हमारे बड़े भाग्य हैं कि आपने घर बैठे दर्शन दिए, अब हमारा आतिथ्य स्वीकार कीजिए। यथा—'मोहि सम भागवंत नहिं दूजा' इति अगस्त्यवाक्य, '...मुनिवर कहेउ अतिथि प्रेमप्रिय होहु। कंदमूलफलफूल हम देहिं लेहु करि छोहु'—इति भरद्वाजः।—(अ० §२१२)।

(२)—'भरि लोचन सोभा निरखि' इति।—'भरि लोचन' पद से जनाया कि इनको दर्शनकी अत्यन्त उत्कट लालसा थी। जहाँ २ ऐसी अभिलाषा दिखाईहै वहाँ २ यह पद प्रयुक्त कियागयाहै। जैसे, शिवजीको दर्शनकी अति अभिलाषा थी, यथा-'हृदय बिचारत जात हर केहि बिधि दरसनु होइ। तुलसी दरसन लोभु मन डरु लोचन लालची' (ब० ४८)। जब उनको दर्शन हुआ तब लिखतेहैं कि 'भरि लोचन छबिसिंधु निहारी' (ब० ४९)। इसी प्रकार विप्र (भुशुण्डिजी), अवधवासियों, मनुशतरूपाजी आदिकी दर्शनाभिलाषा बढ़ीचढ़ी दिखाकर उनके प्रसंगमेंभी 'भरि लोचन' पद दियाहै।*

---

* (भुशुण्डि)—'रामचरनबारिज जब देखउँ। तब निज जनम सफल करि लेखउँ। भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहौं निर्गुन उपदेसा।' (अवधवासी)—'रामदरसबस सब नरनारी। जनु करिकरिनि चले तकि बारी रामदरसकी लालसा भरतसरिस सब साथ'। अतः कहतेहैं—'मंगल मूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि' (मनु)—'उर अभिलाष निरंतर होई। देखिय नयन परम प्रभु सोई।

अतः माँगतेहैं कि 'देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु००'। पुनः,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(३)—यहाँ तक षोड़शोपचारपूजन दिखाया।†

२—खर्रा (१)—"भरि लोचन सोभा निरखि" इति भाव कि शोभा (समुद्र) को देख (पा) कर नेत्रोंमें भरलिया है। मिलान कीजिए शरभङ्गजीकी दशासे—'देखि राम मुखपंकज मुनिबर लोचन भृंग। सादर पान करत अति धन्य जनम सरभंग'।*आसन आसीन होनेपर सबकृत्यसे सावकाश हुआ तब शोभाका भरपूर देखना कहा।

(२)—'मुनिबर परम प्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत' इति। —मुनिवरसे अस्त्रज्ञान निपुण और परम प्रवीणसे अनुभवज्ञान (अर्थात् विज्ञान) निपुण जनाया। पुनः, 'परम प्रवीण' कहा; क्योंकि प्रभुका परात्पर स्वरूप जानकर वैसीही स्तुति कररहे हैं। ब्रह्माके पुत्र हैं जैसे ब्रह्माजी स्तुति करतेहैं वैसेही ये भी स्तुति करतेहैं, यथा—"सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलक नयन बह नीर। अस्तुति करत जोरि कर सावधान मति धीर"। बड़ेकी स्तुति हाथ जोड़कर की जातीहै। 'जोरि पानि' सेभी ऐश्वर्य्यभाव दिखाया, यथा—'कह दुहुँ कर जोरी अस्तुति तोरी केहिबिधि करउँ अनंता...' (कौशल्याजी कृत स्तुति), गई भवानी भवन बहोरी। बंदि चरन बोली करजोरी। इत्यादि।

३—प्र०—'दिये मूल फल प्रभु मन भाए'। मूल फल देनेका

"सकल सुरन्ह के हृदय अस संकर परम उछाह। निज ननयन्ह देखा चहहिं०।
यह उतसव देखिअ भरि लोचन। सोइ कछु करहु मदनमदमोचन॥"

† षोड़शोपचार, यथा—"आसनं स्वागतं पाद्यमर्घमाचमनीयकम्। मधुपर्काचमनं स्नानं वस्त्रं च भरणानि च॥ सुगन्धं सुमनो धूपं दीपं नैवेद्य वंदनम्। यहाँ—'सादर निज आश्रम तब आने' इत्यावाहनम्—(१)। 'प्रभु आसन आसीन' इत्यासनम्—(२)। प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाये' इतिस्वानं—(३)। 'दिये मूल फल प्रभु मन भाये' इति नैवेद्यम्—(४) 'जोरि पानि स्तुति करत' इति बन्दनम्—(५)। और करि पूजा' में अन्य सब उपचार भी जनादिए। (पु० २० कु०)

* यथा—"बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहा ठटुकि एकटक पल रोकी॥"—(सुं०) "छबिसमुद्र हरिरूप बिलोकी। एकटक रहे नयनपट रोकी॥"—(ब० §१४७)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भावकि जो सत्कर्मादि किएथे उन्हें इस बहाने समर्पण किया। ४—पं० रा० व० श०—'मन भाए' का भाव कि जिसे प्रभु बहुत चाहतेथे। वही २ फल मूल दिए। वा, फलमूल दिए जो प्रेमके कारण प्रभुको बहुत अच्छे लगे। वा, प्रभुकी इच्छाभर पेटभर खिलाया।

(नगस्वरूपिणी छन्द) *

नमामि भक्तवत्सलं कृपालु शील कोमलं।
भजामि ते पदांबुजं अकामिनां स्वधामदं॥ (१)

अर्थ—भक्तवत्सल, दयालु और कोमल स्वभाववाले आपको मैं नमस्कार करताहूँ। निष्कामभक्तोंको अपना धाम देनेवाले आपके चरणकमलोंको मैं भजताहूँ।

१ पु० र० कु०—(क) 'भक्तवत्सलं कृपालु शील कोमलं'। भक्तोंके लिए वात्सल्य, औरोंकेलिए कृपालुता †, यथा—'सब पर मोरि बराबरि दाया', और अपराधियोंकेलिए शील और कोमलता ऐसी कि जयन्तका वध उचित था तोभी उसे छोड़दिया। (ख)—'अकामिनां स्वधामदं'। अर्थात् फलकी कामना त्यागकर, तुमको अर्पित करके कर्मकाण्डी आपके धामको जातेहैं। पुनः, भाव कि निष्काम होकर

* यह स्तुति नगस्वरूपिणी छन्दमें कीगईहै। इस वृत्तके चारों चरणोंमें ८, ८ अक्षर होते हैं और दूसरा, चौथा, छठा और आठवाँ वर्ण चारों चरणोंका गुरु होताहै, इस काण्डमें ऐसे १२ छन्द आएहैं। नग पर्वतको कहतेहैं। यहाँसे आगेकी यात्रामें बराबर पहाड़ और पहाड़ी-वन मिलेंगे, यहींसे पहाड़की यात्रा प्रारंभ हुईहै, यह बात, प्रथमही स्तुतिको इस वृत्तमें देकर जनादी। २—मा० हं०—अत्रिस्तव नगस्वरूपिणी अथवा प्रमाणिका छन्दमें रचित है। यह छंद स्वयंही बड़ा लोचवाला होताहै। स्वामीजीने उसकी योजना करके अपने अत्रि-स्तव को विशेष मोहकता प्राप्त करदीहै। ३ पु० र० कु०—स्तोत्र चार प्रकारके हैं, यथा—'द्रव्यस्तोत्रं गुणस्तोत्रं कर्मस्तोत्रं तथैवाभिजन स्तोत्रं स्तोत्रमेवंचतुर्विधम्॥ इति मत्स्यपुराणे चतुश्चत्वारिंशदधिक शततमे ऽध्याये॥' ४ प्र०—नगस्वरूपिणी छन्दका भाव कि अचलता, गिरिकाननविहारी रामप्रतिपाद्य, और धराधर भूभारहरण-पालन-हेतु चले हैं'।

† कृपा गुण, यथा—'रक्षणे सर्वभूतानामहमेको परो विभुः। इति सामर्थ्यसंधानं कृपा सा पारमेश्वरी'। इति भगवद्गुणदर्पणे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चरणोंकी भक्ति करनेहीपर आप निजधाम देतेहैं, अन्यथा नहीं। (ग) प्रथम श्लोकमें गुण कहा (घ)—'स्वाधामदं'—स्वधाम=निज धाम। धाम' शब्द बड़ा उत्तम है; इसमें सभी तरहके धामों एवम् मोक्षोंका 'समावेश होगया। विष्णु-अवतारसे वैकुण्ठ धाम, श्रीमन्नारायणावतारसे क्षीरशायी वैकुण्ठ और परात्पर परब्रह्म रामावतारसे साकेत धाम। पुनः, धाम=तेज; रावण कुम्भकर्णका तेज आपके तेजमें समागया, यथा—"तासु तेज समान प्रभु आनन', तासु तेज प्रभु बदन समाना'—(लं०)। यह भी 'धाम' है। (ङ)—

निम्न मिलानके प्रसंगों से इस स्तुतिमें आपहुए विशेषणोंके भाव स्पष्ट होजायँगे।

अत्रिजी	मनुशतरूपाप्रकरण
नमामि भक्तवत्सलं	भगत बछल प्रभु कृपानिधाना
भजामि ते पदांबुजं	पदराजीवबरनि नहिं जाहीं
निकाम स्याम सुन्दरं...	नीलसरोरुह नीलमणि नीलनीर धर स्याम लाजहिं तनसोभानिरखि कोटि २ सतकाम
प्रफुल्ल कंज लोचनं	नव अंबुज अंबक छबि नीकी
प्रलंब बाहु बिक्रमं	करिकर सरिस सुभग भुजदंडा
निषंग चाप सायकं	कटि निषंग कर सर कोदंडा
स्वभक्त कल्प पादपं	सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू
मनोजवैरि वंदितंअजादि देव सेवितं	बिधिहरि हरबंदित पदरेनू

२—'भक्तवत्सल' अर्थात् जैसे गौको बछड़ा अत्यन्त प्यारा होता है वैसेही आपको भक्त प्रिय। पुनः, जैसे वह परबस चरने जातीहै तो हुँकारकर दौड़ती बच्चेके पास आतीहै और कभी २ खूँटातक उखाड़कर उसके पास पहुँचती है, यथा—

'जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह चरन बन परबस गई। दिन अंत पुर रुख स्रवतथन हुंकार करि धावत भई॥'—० उ० § ६। तथा आपको भक्त अति प्रिय है, यथा'—बालक सुत सम दास अमानी।' 'करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालकहि राख महतारी॥' और आप राज्य रूपी बन्धन तुड़ाकर हमको दर्शन देनेआप, यथा—"नवगयंद रघुबीर मन राजु अलान समान। छूट जानि बन गवन सुनि उर अनंद अधिकान'—(अ० § ५१)।—'भगतबछल प्रभुकृपानि-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धाना'—(ब० § १४ (८) देखिए । भक्तवत्सलता भुशुण्डिजीके प्रसंगमें देखिए—'भगत बछलता प्रभुकी देखी ।"

३—प्र०—भक्तवत्सलका भाव कि हम बछड़े के समानहैं। नित्य नैमित्तिक कर्म योगादि कर्मोंकी रस्सीमें बँधेहुएहैं। इससे आपके पास नहीं पहुँचसके और आप हमें कृतार्थ करनेको पहुँचही गए।—(रा० प्र० श०)। पुनः, गौ अपने बछड़ेकी मलिनताका ख़याल नहीं करती किन्तु मलिनताको चाटकर दूर करदेतीहै इसीतरह जो प्रभुकी शरण आताहै उसके दोषोंको दूरकरके वे शुद्ध करतेहैं—यहभी भाव 'भक्तवत्सल' पदमें है।—(पं० रा० व० श०)।

☞ —इस स्तुतिमें भा० द० जीने प्राय: 'श' की जगह 'स' ही दिया है। पर मानसपीयूषमें काशिराज एवं ना० प्र० आदिके अनुसार रखा है। दोनों प्रतियोंके पाठभेद स्तोत्रके अंतमें दिएगएहैं ।

निकाम श्यामसुंदरं भवांबुनाथ मंदरं।
प्रफुल्ल-कंज-लोचनं मदादि दोष मोचनं ॥ (२)

अर्थ—अत्यन्त श्यामसुंदर, भवसागर (को मथन करने) केलिए मन्द्राचलरूप, पूर्ण खिलेहुए कमलके समान नेत्रवाले, मद आदि दोषोंको छुड़ानेवाले ।

खर्रा—'निकाम श्यामसुन्दरं०'। (क) यथा—'स्यामलगात प्रनतभय मोचन'—[सुं० § ४४ (४)] निकाम = अत्यन्त, यथा—'कोपे समर श्रीराम चले बिसिष निसित निकाम'। (ख)—'काम, प्रकाम और निकाम ये सब अत्यन्त वाचक हैं । भवांबुनाथमंदरं' । मंदरका भाव कि आपको किंचित परिश्रम नहीं होता। अथवा, समुद्रके उत्तम पदार्थ देखने और प्राप्त करनेकेलिए आप भवसागरको मथकर उसमें से भक्त-रत्न निकालकर धारण करतेहैं।—[नोट—मिलान कीजिए—'प्रेम अमिय मंदर-बिरह भरत पयोधि गँभीर। मथि प्रगटे सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर'—(अ० § २३८)। यहाँ भवसागर मथनका भाव केवल यही है कि आप जीवोंको जन्ममरणादि दु:खसे मुक्त करनेवालेहैं।]

पु० र० कु०—'प्रफुल्ल कंज लोचनं...'। (क) लोचनके साथ मोचन कहकर जनाया कि आपकी कृपाकटाक्षमात्रसे मदादि दोष छूटजातेहैं ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. .....5231.....

(ख) इसी प्रकार श्यामसुंदरके समीप 'भवांबुनाथ मन्दरं' कहकर जनाया कि आपका श्यामल शरीर भवको छुड़ानेवालाहै, यथा—'स्यामलगात प्रनतभय मोचन'। (ग) 'कंजलोचन' से कृपासे परिपूर्ण जनाया। (घ) यहाँ दूसरे श्लोकमें शृङ्गार कहा।

रा० प्र० श०—भव=इस संसारका वह भाग जो जीवके अंतःकरण में है अर्थात् जिसपर जीवका ममत्व है, जिसको अपना समझकर उसके लाभालाभमें सुखी दुःखी बनारहताहै। भवके लिए मंदररूप कहनेका भाव कि जीवके उस ममत्व को हृदयसे मथकर निकाल देतेहो।

नोट—'मदादि दोष', ये वही मानसरोग हैं जिनका उ० § १२० में वर्णन है। अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, ममत्व, ईर्ष्या, अहंकार, तृष्णा, कपट, दंभ, पाखंड, मत्सर, इत्यादि।

प्रलंब बाहु विक्रमं प्रभोऽप्रमेय वैभवं।
निषंग चाप सायकं धरं त्रिलोक नायकं॥(३)
दिनेश वंश मंडनं महेशचाप खंडनं।
मुनींद्र संत रंजनं सुरारिवृन्द भंजनं॥(४)

शब्दार्थ—अप्रमेय=जो प्रमाणसे अनुमानकरके निश्चय न किया जासके। जिसका अंदाज़ा नहीं होसकता। मंडन=भूषण, शोभित करनेवाला।

अर्थ—जिनकी लंबी (आजानु) भुजाओंका पराक्रम अतुलनीय है और जिनका ऐश्वर्य प्रमाणरहित है तरकश और धनुषबाण धारण करनेवाले, तीनों लोकोंके स्वामी, सूर्य्यवंशके भूषित करनेवाले (आभूषण), महादेवजीके धनुषको तोड़नेवाले, मुनिराजों और सन्तोंको आनन्द देनेवाले, असुरसमूहके नाशक।

नोट—'प्रलंब बाहु विक्रमं अप्रमेय वैभवं', यथा—'अतुलितभुज प्रताप बल धामं'—(सुतीक्षण) (ख)—'प्रलंब बाहु'—प्रभुकी भुजाएँ घुटनेतक लम्बीहैं इसीसे आजानुबाहु कहलातेहैं। इन सब चरणोंका भाव यह है कि आप सदा भक्तों, सन्तों और मुनियों आदिकी रक्षामें तत्पर रहतेहैं। बाहु ऐसी लंबी और पराक्रमशालीहैं कि इनसे शत्रु

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बच नहीं सकता उसपर भी अक्षय त्रोण-धनुष और बाण सदा धारण किपरहतेहैं, भक्तदुःखहरणकरनेमें किंचित विलंब नहीं सहसकते। पुनः, 'प्रलंब बाहु' भुशुण्डिजीके प्रसंगमें देखिए *। एवं सुं० § ४५ (२) में टिप्पणी देखिए। (ग)—मिलान कीजिए 'अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मैं मतिमंद जान नहिं पाई'। अभी अभी लोकको इसका प्रमाण मिलचुका है।

पु० र० कु०—१—(क) मुनीन्द्रसन्तरंजन हैं अतएव 'सुरारिवृन्द-भंजन' हुए। उन्हींके लिए दुष्टोंका दलन करतेरहतेहैं, यथा—'परित्राणाय साधूनाम् विनायच दुष्कृताम्। धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे' (गीता॥ पुनः 'तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरे धरेउँ देह नहि आन निहोरे'—(सुं०)। 'निसिचरहीन करउँ महि... मुनिन्हके आश्रमन्ह जाइ जाइ सुख दीन्ह'। (ख) त्रिलोकनायक हैं। अतः लोकोंकी रक्षाके लिए धनुषबाण धारण किएहो।

(ग) 'दिनेशवंशमंडन' का भाव कि यह वंश जगत्काभूषण है आप उस वंशकेभी भूषण एवं भूषितकर्त्ता हैं। (घ) 'महेशचाप' कहकर धनुषकी कठोरता दिखाई। जो किसीसे न टसका उसेभी आपने खण्ड करडाला। (ङ)—श्लोक (३) में वीरस्वरूप और (४) में रामायण है।

२ (क) यहाँ भूत भविष्य वर्तमान तीनों दिखाए। त्रिलोकके स्वामी थे वही वर्तमानमें रघुकुल-भूषण हुए और अब मुनियोंसन्तोंको सुखदेनेकेलिए निश्चरनाश करने जारहेहैं इत्यादि। (ख) सातों काण्डोंका चरित इन विशेषणों द्वारा कहागया है। 'भक्तवत्सल त्रिलोकनायक' से पूर्व मनुशतरूपा आदिका प्रसंग कहा। 'दिनेशवंशमंडनं' 'महेशचापखण्डनं' से जन्मसे विवाह तक बालकाण्ड समाप्त किया। 'मुनीन्द्रसन्तरंजनं' से राज्यत्याग अयोध्याकाण्ड हुआ, 'सुरारिवृन्द-भंजनम्' से अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर और लंकाकी कथा रावण-वध तक कही। *तत्पश्चात् 'मनोज वैरिवंदितं अजादि देवसेवितं'

* यथा—'राम गहन कहँ भुजा पसारी॥'

जिमि जिमि दूरि उडाउँ अकासा। तहँ भुज हरि देखउँ निज पासा।

ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उडात। जुग अंगुल कर बीच सब रामभुजहि मोहि तात॥ सप्तावरन भेद करि जहाँ लगे गति मोरि। गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयउँ बहोरि (§ ७९)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से निश्चरनाशपर सबकी वन्दना एवम् रामराज्यभिषेक आदि कहे और 'विशुद्धबोधविग्रहं समस्त दूषणापहम्' से शान्त रामराज्य कहकर उत्तम रामचरित समाप्त किया। यथा—'रामराज बैठे त्रैलोका। हरषित भये गये सब सोका'—(उ० § १९)।

वै०—१ भक्तवत्सलसे अवतारका कारण कहा 'मुनीन्द्रसतरंजनं' से चित्रकूट और दण्डकारण्यकी लीला अर्थात् अरण्यकाण्ड हुआ। 'सुरारिवृन्दभंजनं' से रावणवधका उपाय एवं उसका वध अर्थात् किष्किन्धा, सुन्दर और लंकाकाण्ड हुआ। २—'सशक्ति सानुजं' से राज्य, जगद्गुरुं से अपने आचरणसे उपदेश प्रजा आदिको। ३—अद्भुतंसे आदर्श राज्य एवं साकेतयात्रा, यथा—'बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम। प्रजासहित रघुबंसमनि किमि गवने निजधाम'।—(नोट—इसी विषयपर प्र० के भाव श्लोक ११, १२ में देखिए।)

मनोजवैरिवंदितं अजादि देव सेवितं।
विशुद्ध-बोध-विग्रहं समस्तदूषणापहं॥ (५)
नमामि इंदिरापतिं सुखाकरं सतां गतिं।
भजे सशक्ति सानुजं शचीपति प्रियानुजं॥ (६)

अर्थ—कामदेवके शत्रु महादेवजीसे वंदित, ब्रह्मादि देवताओंसे सेवित विशेष निर्मल ज्ञानके स्वरूप और समस्त दोषोंके नाशक आपको मैं नमस्कार करताहूँ। लक्ष्मीके पति, सुखके खानि, सत्पुरुषोंकी (एकमात्र) गति मैं आपको नमस्कार करताहूँ। इन्द्राणीके पति इन्द्रके प्रिय भाई, आदिशक्ति सीता और भाई लक्ष्मणसहित आपको मैं भजता हूँ।

पु० रं० कु०—(१) 'मनोजवैरि वंदितं अजादि देव सेवितं' यहाँ शिवजी और ब्रह्मादि को निवृत्ति और प्रवृत्तिके भेदसे पृथक् २ कहा अजादि देव सेवितं' यथा—'सुर बिरंचि मुनि जाके सेवक'। पुनः, शिवजी सदा यश गातेरहतेहैं उनको कुछ काम नहीं है और अन्य सब देवताओंको अनेक काम दिएहैं जिनमें वे सब लगेरहतेहैं अतः देवताओंसे सेवित कहा।—'चाहत जासु चरन सेवकाई'। (२)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"विशुद्धबोधविग्रहं" कहकर तब समस्त दूषणायहं" कहा। क्योंकि ज्ञान समस्त दूषणोंका' नाशक है, यथा—'जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इन्द्रियगन उपजे ज्ञाना'—(कि० १५)। इसश्लोकमें भी रामायण कही।

(३) "नमामि इन्दिरापतिं सुखाकरं" इति। भाव कि आपको कुछ एक लक्ष्मीका ही सुख नहीं, वरन् आप समस्त सुखोंकी खानि हैं आपके सुखके एक छींटा बूंद मात्रसे संसार भरका सुख है, यथा—'जो आनंदसिंधु सुखरासी। सीकर ते त्रलोक सुपासी' सो सुखधाम राम अस नामा। (ब० § १९६)। पुनः, 'नमामि इन्द्रिरापतिं कहकर फिर 'भजे सशक्ति सानुजं' कहनेका भाव यह है कि श्रीपति आदि अन्य आपके रूपोंको मैं नमस्कार मात्र करता हूँ पर भजता श्रीसीता लक्ष्मणसंयुक्त आपको ही हूँ। अर्थात् यह रूप उपास्य है)।

(४) 'शचीपति प्रियानुजं'। अदितिके पुत्र इन्द्रादि हैं और उन्हींसे वामन अवतार हुआ, अतः भाई हुए। 'प्रिय' क्योंकि इन्द्रका राज्य जो बलिने छीन लियाथा वह उससे भिक्षाद्वारा लौटाकर वामन जीने इन्द्रको पुनः दिया। प्रियत्वके कारण भीख माँगी भावकि वहाँ तो बलिसे राज्य लेकर इन्द्रको दिया था और वहाँ रावणवध करके इन्द्रादिको सुखी करोगे। 'अनुज' छोटे भाईको कहतेहैं, यहाँ भगवान्का वामन अवतार इन्द्रके पीछे हुआ, अतः 'अनुज कहा। वामनजीकी कथा अ० § २९ (७) में देखिए। (५) इस श्लोकमें द्वैत, अद्वैत और विशिष्टाद्वैत तीनोंका मत कहा। इन्दिरापति' से द्वैत, 'सुखाकरं सतांगतिं' से अद्वैत और 'सशक्ति सानुजं' से विशिष्टाद्वैत।

२—प्र०—'मनोजवैरि वंदितं'। भाव कि शिवजी सबसे वन्दनीय हैं सो उनसेभी वंदित हैं † यहाँ मनोजवैरि (कामारि) विशेषण (क्रियावाचक नाम) देकर कामदेवको जलानेवाला पूरा प्रसंग स्मरण कराते हैं कि जहाँ ब्रह्मा विष्णु आदि सभी देवताओंने जाकर वंदना की तब उन्होंने कहाथा कि 'कहहु अमर आएहु केहि हेतू'। (२) 'अजादि०' का भाव कि ब्रह्मा सृष्टिके रचयिता हैं और इसमें लोक

† यथा—'संकर जगतवंद्य जगदीसा। सुरनर मुनि सब नावत सीसा॥ तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा॥ ब० §४९।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पालादि सभीके स्वामी हैं और सभीसे वंद्य हैं सो भी आपकी सेवा करतेहैं। अर्थात् आप सबके स्वामीहैं। (३) विशुद्धबोध=निरावरण ज्ञान। इन्द्रानुज वामन अवतार अभेदके भावसे कहा।

पां०—"शचीपति प्रियानुज" में भाव यह कि जैसे बलिको छल कर देवताओंकी रक्षा कीथी वैसेही रावणको छलकर देवरक्षाहेतु आपने यह नररूप धारणकियाहै। यही रावणके साथ छल है; क्योंकि उसको वर था कि देवतादिके हाथसे न मरे और मनुष्य ऐसा बला कहाँ कि उसे जीत सकता।

४—खर्रा—'समस्तदूषणापहं' तक मनु प्रतिपादित रामजीकी वन्दना है। और 'नमामि इन्दिरापति००' में विष्णु-अवतार रामकी वन्दना है। 'सतांगति'—सज्जनों की गति। यथा—'पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं'।

त्वदंघ्रिमूल ये नराः भजंति हीन मत्सराः।
पतंति नो भवार्णवे वितर्कवीचि संकुले ॥(७)
विविक्त वासिनस्सदा भजंति मुक्तये मुदा।
निरस्य इंद्रियादिकं प्रयांति ते गति स्वकं ॥(८)

अर्थ—जो मनुष्य मत्सररहित होकर आपके चरणमूलको भजतेहैं वे तर्क-वितर्क रूपी लहरोंसे परिपूर्ण भरे हुए संसारसागरमें नहीं गिरते। सदा एकान्तवासी इन्द्रियादिके विषयोंसे उदासीन' जो मुक्ति के लिए आनन्दपूर्वक आपको भजतेहैं वे स्वकीय गतिको प्राप्त होतेहैं।

नोट—'अंघ्रिमूल'=चरणका मूल अर्थात् तलवे। तलवेमेंही चिह्न होतेहैं जिनका ध्यान उपासक करतेहैं। 'पदराजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनि मन मधुप बसहिं जिन्ह माहीं' चरणोंका ध्यान कथनहुआहै वहाँ चिन्हकाही ध्यान अभिप्रेत है। रज भी तलवेकी होतीहै जिसको शिरोधार्य्य करतेहैं और जिसकी वन्दना कीजातीहै चरणामृतभी तलवेकाही उतारा जाताहै अतः 'भजन्ति' के सम्बन्धसे अंघ्रिमूल' पद दिया।

पु० र० कु०—'त्वदंघ्रि...भजंति०० पतन्ति००"का भाव कि जो लोग मत्सरयुक्त हैं और जो आपका भजन नहीं करते वे भवसागरमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गिरतेहैं।* पुनः, (२) इससे जनाया कि उपासक भवसमुद्रमें नहीं पड़ते, यथा—'यत्पादप्लवमेकमेवहि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां' (३) यहाँ उपासकोंकी मुक्ति स्पष्ट न कही। इसका कारण यह है कि उपासक मोक्ष नहीं चाहते, यथा—'राम उपासक मोच्छु न लेहीं'। (४) श्लो० ७ में चरणसेवाका फल कहा और ८ में भजनकी विधि कही। (५) विविक्तवासिनः अर्थात् ज्ञानी आपका भजन इस प्रकार करके वैकुण्ठ को जातेहैं। (६)—'वितर्क बीचि संकुले' यथा—'ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद। सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥...अस संसय मन भयउ अपारा" यही और इसी प्रकारके सब संशय तर्क वितर्क हैं। (७)—'मुदा का भाव कि आपकी सेवामें अपनेको भाग्यवान् मानतेहैं अतः हर्षपूर्वक करतेहैं, लाचारी वा जबरईसे किसीके भयसे नहीं। (८)—'गतिं स्वकं', यथा—'जीव पाव निज सहज सरूपा'। वा, 'गतिं स्वकं=आपका निज धाम। वा, मोक्ष।—[मुक्त्ये के संबंधसे यह गतिं स्वकं मुक्ति हुई। पाँड़ेजी अर्थ करतेहैं—आपकी निज गतिको प्राप्त होतेहैं। यही अर्थ करुणासिंधु जीका है।]

त्वमेकमद्भुतं प्रभुं निरीहमीश्वरं विभुं।
जगद्गुरुं च शाश्वतं तुरीयमेव केवलं॥ (९)
भजामि भाववल्लभं कुयोगिनां सुदुर्लभं।
स्वभक्त कल्पपादपं समं सुसेव्यमन्वहं॥ (१०)

अर्थ—आप एक (अद्वितीय), अद्भुत, समर्थ स्वामी, चेष्टा एवं इच्छारहित, ईश्वर, व्यापक, जगत्मात्रके गुरु और सनातन, तुरीयरूप ही और केवल हैं (पुनः) भावप्रिय, कुयोगियोंको अत्यन्त दुर्लभ, अपने भक्तोंकेलिए कल्पवृक्ष रूप, सबको समान (विषमता

* "बहु रोग वियोगन्हि लोग हये। भवदंघ्रि निरादरके फल ये॥ भवसिंधु अगाध परे नर ते। पद-पंकज प्रेम न जे करते॥ अति दीन मलीन दुखी नितहीं। जिनके पदपंकज प्रीति नहीं—(उ० § १३) मिलान कीजिए—'मोह जलधि बोहित तुम्ह भएउ।००' (उ० § १२४)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रहित), और निरंतर दिन प्रतिदिन सेवाकरनेयोग्य (सुस्वामी) ऐसे आपको मैं निरंतर भजता हूँ ।

नोट—'एक' अर्थात् आपकासा दूसरा कोई नहीं है, आपके समान आपही हैं। 'अद्भुत' अर्थात् नाम रूप लीला सभी आपके विलक्षण और आश्चर्यजनक हैं। *। निरीह'—[ब० § १२ (३) देखो]। ईश्वर = षडैश्वर्य्ययुक्त—अ० § २५३ (२) देखिए। 'जगद्गुरु' अर्थात् आपने किसीसे शिक्षा नहीं पाई न किसीके शिष्य हैं वरन् सृष्टिके रचयिता ब्रह्माको भी आपनेही वेद पढ़ाया जिस श्रुतिमार्गपर शङ्करजी स्वयं चलतेहैं, यथा—'जौं नहिं दंड करउँ खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुति-मारग मोरा'। शाश्वत = निरन्तर, आदि अन्तरहित। तुरीयावस्था चारों अवस्थाओंमें अन्तिम अवस्था है। भगवान् सदा उसी अवस्थामें रहतेहैं। यह अवस्था स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन सबसे रहित है। भाववल्लभ अर्थात् आपको भाव ही प्यारा है, यथा—'सर्वभाव भज कपट तजि मोहि परमप्रिय सोइ'—(उ० § ८७), 'भावबस्य भगवान' सुखनिधान करुनाभवन। तजि ममता मद मान भजिय सदा सीता-रमन'—(उ० § ९२), 'प्रभु भावगाहक अति कृपाल सुप्रेम सुनि सुख पावहीं'। पुनः 'बलिपूजा चाहत नहीं चाहै एक प्रीति। सुमिरत ही मानै भलो यह पावन रीति'—(विनय १०८)। अतः भुशुण्डि उपदेशके अनुसार 'भजामि' कहा।

'कुयोगिनां सुदुर्लभं', यथा—'पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहिं सकइ उखारी'—(लं० § ३३), और 'मोहगए बिनु राम-पद होइ न दृढ अनुराग'। 'कल्पपादप' अर्थात् उनकी समस्त काम-नाओंको पूर्ण करतेहैं जैसे कल्पवृक्ष शत्रु मित्र उदासीन सब विचार-रहित सबको अर्थ धर्मकाम देताहै। भक्तकेलिए कल्पवृक्ष हैं और सबके

* यथा—'आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमान निगम अस गावा। बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना ॥...असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥' (ब० § ११७)

२—'हरषित महतारी मुनिमन हारी अद्भुत रूप बिचारी।' ३—जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहू न समाइ। सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाइ'—(उ० § ८०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लिप समान हैं—'सबपर मोरि बराबरि दाया' 'सब मम प्रिय सब मम उपजाये'। भक्त पर विशेष ममत्व दिखाना।

पु० र० कु०—एकको दुर्लभ और दूसरेको अल्पवृत्त कहनेसे विषमता पाईगई अतः कहा कि सम हैं। 'सुसेव्य', यथा—'श्रुति सिद्धान्त इहै उरगारी। राम भजिय सब काम बिसारी॥

'प्रभु रघुपति तजि सेइअ काही। मोहि से सठ पर ममता जाही'—(उ० § १२२) समुझि मोरि करतूति कुल प्रभु महिमा जिय जोय। जो न भजइ रघुबीरपद जग बिधि बंचित सोइ॥'—(अ० § २९५)। सुसेव्य हैं, अतः 'अन्वहं भजामि'। *

पु० र० कु०—'नमामि भाववल्लभं कुयोगिनां...' इति। भाव यह कि कुयोगियोंके भाव नहीं है और भक्तोंमें भाव होता है। अपने भावसे कुयोगी आपको नहीं पाते और सन्त अपने भावसे आपको पातेहैं; आप दोनोंको 'सम' हैं। श्लो० ९ में निर्गुणस्वरूप कहा और १० में भगवत्-प्राप्तिकी सुगमता अगमता दिखाई।

अनूप रूप भूपतिं नतोहमुर्विजा-पतिं।
प्रसीद मे नमामि ते पदाब्जभक्ति देहि मे॥ (११)
पठंति ये स्तवं इदं नरादरेण ते पदं।
व्रजंति नात्र संशयं त्वदीय भक्ति संयुतम्॥ (१२)

अर्थ—पृथ्वीकी रक्षा करनेवाला (यह उदासी) एवम् भूप (राजा) रूप जो उपमारहित है, पृथ्वीकी कन्याश्रीजानकीजीके पति रघुनाथजीको मैं प्रणाम करता हूँ। मुझपर प्रसन्न हूजिए, मैं आपको

* यथा विनये—'सुखद सुप्रभु तुम्ह सों जगमाहीं। श्रवन नयन मन गोचर नाहीं' (पद १७७)। 'नाहिन और सरन लायक दूजो श्रीरघुपतिसम बिपति निवारन। काको सहज सुभाउ सेवकबस काहि प्रनतपर प्रीति अकारन...' (२०६)। 'भजिबे लायक सुखदायक रघुनायक सरिस सरनप्रद दूजो नाहिन (२०७), 'ऐसेउ साहिबकी सेवासों होत चोर रे...' (७२), 'है नीको मेरो देवता कोसलपति राम... तुलसीदास तेहि सेइय संकर जेहि सेव'—(१०८) इत्यादि देखिए।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नमस्कार करता हूँ, मुझे अपने चरणकमलोंकी भक्ति दीजिए। जो मनुष्य इस स्तुतिको आदरपूर्व्वक पढ़तेहैं वे आपकी भक्तिसे संयुक्त होकर अर्थात् भक्तिसहित आपके पदको प्राप्त होतेहैं-इसमें सन्देह नहीं।

नोट १—'भूपति' के दोनों अर्थ होसकतेहैं—राजाका रूप, यथा—'भूपरूप तब राम दुरावा। हृदय चतुर्भुजरूप देखावा'। ब्रह्माजीने भी स्तुतिकरके यों वर माँगाहै, यथा—'नृपनायक दे बरदानमिदं। चरनांबुज प्रेम सदा सुभदं—(लं० § ११०)। पुनः, शिवजीनेभी—'अनुज जानकी सहित निरंतर। बसहु राम नृप मम उर अंतर'—(लं० § ११४)। दूसरा, कानन-विहारी धनुर्धारी रूप, यथा—"तदपि अनुज श्रीसहित खरारी। बसतु मनसि मम कानन चारी"। सुतीक्ष्ण जीने स्तुतिमें 'काननचारी' और कोसलपति' दोनों शब्दोंका प्रयोग कियाहै—'जो कोसलपति राजिवनयना। करहु सो राम हृदय मम अयना'। पुनः, 'भूपति रूप' कहकर ऐश्वर्य्यरूपसे पृथक् माधुर्य्य द्विभुज नररूप दाशरथिरामे की वन्दना जनाई। २—'उर्विजापति' और भूपति' पद दिए क्योंकि पृथ्वीके दामाद हैं अतः उसका भार उतारने जारहेहैं। ३—खरा—भूपति' अनूपरूप सबका कारण है। राजरूपसे भक्तियाचना की, फिर स्तुति पढ़नेवालोंके लिए भक्तिसहित भगवत् धामकी प्राप्तिके लिए याचनाकी। इसीसे अंतमें स्तवका महात्म्य कहा।

पु० र० कु०—१ (क)—"पठन्ति ये स्तवं००' यह स्तोत्रका फल कहा। (ख)—"व्रजन्ति नात्र संशयं त्वदीय०" इति।—भक्तियुत होने पर फिर नीचे गिरनेका डर नहीं रहजाता, यथा—'जे ज्ञानमानविमत्त तव भवहरनि भक्ति न आदरी। ते पाइ सुर दुर्लभपदादपि परत हम देखत हरी॥ बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे। जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो स्मररामहे॥—" (उ० § १२)। २—इस स्तुतिमें तीन भाग किएहैं। 'भजामि', 'नमामि' कहकर प्रथम भागमें मनु-पार्थित मूर्त्तिका पूर्व स्वरूप अवतार कहा। दूसरे भागमें विष्णुभगवान्का अवतार स्वरूप कहा। और तीसरे भागमें राजकुमार रूपसे प्रार्थना करके जनातेहैं कि दोनों आप हीहैं। ३—राजा कहकर एवं जानकीपति कहकर तब वर माँगतेहैं जिसमें मिलनेमें सन्देह न रहे। यथा—"नृपनायक दे बरदानमिदं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चरनाम्बुज प्रेम सदा सुभदं ॥ बारबार बर माँगउँ हरषि देहु श्रीरंग। पदसरोज अनपायिनी भक्ति'' । ४—१२ श्लोकोंमें यह स्तुति कीगई। प्रथम श्लोकमें गुण वर्णन किये (२) दूसरेमें शृङ्गार कहा (३) तीसरेमें बीर (४) चौथेपाँचवेमें रामायण कही (६) छठेमें द्वैत अद्वैत विशिष्टाद्वैत कहा (७) सातवेंमें चरणसेवाका फल (८) आठवेंमें भजनकी विधि (९) नवेमें निर्गुण कहा (१०) दशवेंमें भगवत्प्राप्तिकी सुगमता अगमता दिखाई। (११) ग्यारहवेंमें वर माँगा और बारहवेंमें स्तुतिका माहात्म्य कहा।

५—प्रथम श्लोकमेंही कहाथा कि 'भजामि ते पदाम्बुजं' अतएव अंतमें वर माँगा कि 'पदाब्जभक्ति देहि मे। इस स्तुतिमें पदकमलका भजना कह फिर उनका महात्म्यभी कहा 'त्वदंघ्रिमूल ये नरा००' और अन्तमें उन्हींकी भक्ति माँगी।—'चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजइ मति मोरि'।

प्र०—'भक्तवत्सल' से अवतारके पूर्वकी कथा जनाई। पृथ्वी गोरूपसे शरणगई उसकी पुकार सुन अवतार लिया। 'अद्भुत' से निर्गुण और 'श्याम' से सगुण भाव व्यंजित किए। प्रफुल्लकंज लोचन से अखण्डानन्द, 'प्रडंब' से नित्यवासुदेव मनुशतरूपाधेय द्विभुज परात्पर ध्वनित किया। त्रिलोकनायक धनुष धरं अर्थात् त्रिलोकनाथ होतेहुएभी आपही धनुषबाण धारण किए। 'मुनीन्द्रसंतरंजनं' से 'मुनिमन मिलन बिसेष बन' और शर्भङ्गादि मुनियोंका मनोरंजन जनाया। 'अजादि देव सेवितं' से जाम्बवान आदि (ब्रह्मादिके अवतारों) से सेवित कहा। 'विशुद्धबोधविग्रहं' से अवधामयात्रा और 'समस्तदूषणापहं' से उपासकोंको अप्रिय उत्तरकाण्डकी कथा संगृहीत है। इत्यादि।'' (पु० र० कु०—एवं वै० के भाव इस विषयमें श्लोक (३) (४) में लिखे जाचुकेहैं]

☞पाठान्तर इसप्रकार है—

ना० प्र० श्याम, प्रभोऽप्रमेय, स्वकं, नतोहमु, जे संशय, संजुताः,—

मा० द०—स्याम, प्रभोप्रमेय, स्वकाम्, नतोऽहमु, ये संशयः, संयुताः, म्

बिनती करि मुनि नाइ सिर कहकर जोरि बहोरि।
चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि ॥४॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—मुनिने स्तुति करके माथा नवाकर फिर हाथ जोड़कर कहा कि हे नाथ ! मेरी बुद्धि कभी आपके चरणकमलोंको न छोड़े।

पु० र० कु—१ (क)—पूर्व कहा है कि 'जोरि पानि अस्तुति करत' अब यहाँ दुबारा हाथ जोड़ना कैसे कहा ? उत्तर यह है कि स्तुति करके अन्तमें जब उसका फल कहनेलगे तब कहाथा कि 'पठन्ति ये स्तवं इदं'। 'इदं' से जानपड़ताहै कि उँगलीसे इशारा करके फल कहा। अंगुल्यानिर्देश करनेसे करसंपुट छूटगया। अथवा, जब मस्तक नवाया तब दोनों हाथ अलग होगए। पुनः, 'बहोरि' का सम्बन्ध दोनों ओर है हाथ जोड़नेमें और वरमाँगनेमें। एकबार चरणोंकी भक्ति माँगी—'पदाब्जभक्ति देहिमे' और अबकी बार माँगतेहैं कि चरणकमलको कदापि न छोड़ूँ (अर्थात् अचलता माँगी)।

(ख)—खर्रा—जीवका स्वभाव मायावश ऐसा होगयाहै कि 'कबहूँ धनमय कबहूँ रिपुमय कबहुँ नारिमय भासै' अर्थात् इन्हींके अनुसंधानमें दिनरात लगारहताहै, इससे उसकी बुद्धि मलिन बनीरहतीहै, यथा—'सुत बित लोकईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी' –(उ०७०) अतः माँगाकि मति आपके चरणोंमें लगी रही। पुनः, (ख) तन इंद्रियाधीन, इन्द्रिय मनाधीन, मन बुद्धिके अधीन और बुद्धि आपके अधीन—'उर प्रेरक रघुबंसबिभूषन'। अतः माँगा कि बुद्धिमें ऐसी प्रेरणा कीजिए कि चरण कदापि न छोड़ै। कृपासिद्धि चाही। २—अत्रिजीकी स्तुति सुनी, उन्होंने वर माँगा। पर प्रभुने उत्तर न दिया। कारण कि प्रभु अपनी ओरसे माधुर्य्य ग्रहणकिएहुए मर्यादाका पालन कररहेंहैं आगे बिदा माँगते समय आप कहरहेहैं 'आयसु होइ जाउँ बन आना।०० सेवक जानि तजेउ जनि नेहू'। तब यहां स्पष्ट वर देना कैसे कहें ? पर मनमेंही वरदेना समझलेनाचाहिए। जनकजी और भरद्वाजजीके प्रसंगमेंभी ऐसा हुआहै और उत्तरकाण्डमें वशिष्ठजीके सम्बन्धमें भी चुप दिखाया है। पर जैसे वहां संतुष्ट होनेसे वरदेना जनाया वैसेही यहांभी समझलेनाचाहिए। इसीसे कविने न दोहराया।

१ जनक—बारबार मागउँ कर जोरे। मन परिहरइ चरन जनि भोरे।
सुनि बर बचन प्रेम जनु पोषे। पूरनकाम राम परितोषे॥

२. भरद्वाज—अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू।
सुनिमुनिबचन राम सकुचाने। भाव भगति आनंद अघाने।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३—"नाथ एक बरमागउँ राम कृपा करि देहु।
जनम जनम प्रभुपदकमल कबहुँ घटै जनि नेहु॥
अस कहि मुनि बसिष्ठ गृह आए। कृपासिंधुके मन अति भाए।"

नोट—किसी २ का यहभी मत है कि प्रथमबार कुछ न कहा तब फिर हाथजोड़कर माँगा तब प्रभुकी चेष्टासे उनकी प्रसन्नता जानकर वर देना समझलिया। वाल्मीकीयसे पता चलताहै कि अत्रिका प्रभुमें पुत्रभाव और अनुसुइयाजीका सीताजीमें सुता भाव था। प्रभु भाव-ग्राहक हैं, अतः 'एवमस्तु' कैसे कहते।

अनुसुइया के पद गहि सीता।
मिली बहोरि सुसील बिनीता॥ § ४ (१)
रिषिपतिनी मन सुष अधिकाई।
आसिष देइ निकट बैठाई॥ „ (२)

अर्थ—फिर सुशील विनम्र सीताजी अनुसूयाजीके * चरण पकड़कर

*अनुसूयाजी—ये अत्रिजीकी परम सती धर्मपत्नी हैं। अत्रिजीने रामचंद्रजीसे इनका परिचय यों दियाहै—(वा० सर्ग ११७ श्लो० ९-१३)—"दशवर्ष लगातार वृष्टि न होनेसे संसार दग्ध होनेलगा था तब इन्होंने अपने तपोबलसे फलमूल उत्पन्नकिए' गंगाको यहाँ लाईं और अपने व्रतोंके प्रभावसेही इन्होंने ऋषियोंके विघ्न दूर किए। देवकार्य्यनिमित्त इन्होंने दश रात्रिकी एक रात बनादी थी। इन्होंने दशहज़ारवर्ष तक बड़ा उग्र तप कियाथा।" इनके सतीत्वके प्रतापकी बहुतसी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। ब्रह्माविष्णुमहेशने इनके सतीत्वकी परीक्षाली। उसका फल पाया। तीनोंको इनका पुत्र आकर बनना पड़ा। कतक टीकाकारसे नागेशने रामाभिरामीटीका (वाल्मीकीयरामायण) में अनुसूयाजीके सम्बन्धमें वह कथा उद्धृत कीहै कि अनुसूयाजीकी कोई एक सखी थी उसको किसी अपराधसे मार्कण्डेय ऋषिने शाप देदियाथा कि तू सूर्य्योदय होते ही विधवा होजायगी। वह रोतीहुई अनुसूयाजीके पास आई। इन्होंने उसपर दया करके अपने तपोबलसे सूर्य्यका उदय होनाही बंद कर दिया। जिससे दशरात्रिकी एक रात्रि होगई। तब ब्रह्मादिक देवताओंने आकर उस सखीके पतिके मरनेका शाप स्थगित करदिया वह विधवा न होने पाई। ऐसा होनेपर सूर्य्योदय हुआ। इनके तपस्या और प्रभावकी विस्तृत कथाएँ महाभारत, मार्कण्डेय पुराण और चित्रकूट माहात्म्य में दीहुई हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अत्यन्त शील और नम्रतापूर्वक उनसे मिलीं। अत्रि ऋषिकी स्त्री अनुसूयाजीके मनमें विशेष सुख हुआ। आशीर्वाद देकर पास बिठालिया।

पु० र० कु०—(१) चरण स्पर्श किए; अतः आसिष दिया। और 'मिली बहोरि' अतः 'मन सुख अधिकाई' कहा। सीताजी आनन्दरूपा हैं, अतः सुख हुआ। (२) चरणस्पर्शकरके भेंटना यत्रतत्र कहागया है। यह रीतिसी जानपड़तीहै। यथा—गुरु पतिनिहि मुनितियन्ह समेता। मिली प्रेम कहि जाइ न जेता॥ बंदि बंदि पग सिय सबहीके। आसिर बचन लहे प्रियजीके॥ लागि २ पग सबनि सिय भेंटति अति अनुराग'—(अ०§२४६), करि प्रनाम भेटी सब सासू' (अ०§३१९)। स्त्रियोंकी चाल है कि दोनों हाथोंस चरणोंकी वंदना करतीहैं, पालगी करती हैं, यथा—"जाइ सासु पदकमल जुग बंदि बैठि सिर नाइ'। पुनः, (३) [भाव कि सीताजीने चरण पकड़े तब उन्होंने हृदयमें लगा लिया। जैसे 'करत दंडवत मुनि उर लाये' वैसे यहाँ।—(प्र०)। पहले 'पद गहे' फिर कंठसे लगकर मिली इसीसे वक्तालोग प्रशंसा करतेहैं।—खर्रा।] (४)—'आसिष देइ', यथा—'सदा सुहागिनि होहु तुम जब लगि महि अहि सीस', पुनः, 'अचल होउ अहिवात तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जलधारा'। इत्यादि। निकट बिठाना आदर है।—'अनुसूया समाश्लिष्य वत्से सीतेति सादरम्'। पुनः,

यथा—'उठे सकल जब रघुपति आए। विश्वामित्र निकट बैठाए'
'भरत बसिष्ठ निकट बैठारे। नीति धरममय उचन उचारे'
'कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा'
'जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा। बामभाग आसन हर दीन्हा'
'तब नृप दूत निकट बैठारे। मधुर मनोहर बचन उचारे'-(ब§२९०)

(५)—यहाँ मनवचनकर्मसे आदर दिखाया—'मन सुख अधिकाई', 'आसिषदेइ', बैठाई'।

दिव्य बसन भूषन पहिराए।
जे नित नूतन अमल सुहाए॥ § ४ (३)
कह रिषिबधू सरस † मृदु बानी।
नारि धर्म्म कछु ब्याज बषानी॥ ,, (४)

† सरल—(छ०, का०)। अर्थात् सीधीसादी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मातु पिता भ्राता हितकारी।
मितप्रद सब सुनु राजकुमारी॥ ,, (५)
अमितदानि भर्ता † बयदेही।
अधम सो नारि जो सेव न तेही॥ ,, (६)
धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपदकाल परिषिअहि चारी॥ ,, (७)

अर्थ—दिव्य वस्त्र और भूषण पहनाए जो नित्य नए, स्वच्छ और सुहावने बनेरहतेहैं ऋषिपत्नी अनुसूयाजीने रसीली कोमल वाणीसे कुछ पतिव्रत धर्म उनके बहानेसे बखान किये। हे राजकुमारी! सुनिए माता, पिता, भाई और हितकारी थोड़ाही (प्रमाण भर सुख) देनेवालेहैं। हे वैदेही। पति अतोल (सुख) दान देनेवालाहै। जो उसकी सेवा न करे वह अधम है। धैर्य्य, धर्म मित्र और स्त्री ये चारों विपत्ति के समय परखेजाते हैं।

पु० र० कु०—१ (क) दिव्य वस्त्र भूषण पहनाकर, अर्थात् अर्थ देकर, तब धर्मोपदेश किया। इसीसे धर्मसे मोक्षकी प्राप्ति आगे कहेंगी यथा—'बिनु श्रम नारि परम गति लहई' रहा काम वहभी इसी धर्ममें बतायाहै, यथा—सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं। अपने पतिसे रमण, यह कामहै। इस प्रकार अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों पदार्थ दिए। (ख)—आभूषण पहनाने और कथा कहनेकी शोभा माधुर्य्य में है। इसीसे अनुसूयाजीने जानकीजीका ऐश्वर्य्य कथन न किया, जैसे कि गंगा आदि ने कियाथा, यथा—'सुनु रघुबीरप्रिया वैदेही। तव प्रभाव जग बिदित न केही॥ लोकप होहिं बिलोकत तोरे। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे॥' २—(खर्रा) (i) सरस=रसभरी, सुधारसमयी। मृदु=कोमल अर्थात् कानोंको सुननेमें सुखद। यथा—'नाथ तवानन ससि श्रवत', तथा यहाँ अनुसूयाके मुखसे अमृतसम वाणी निकली जिसे जानकीजी पान कररहीहैं। (ii) कछु व्याज बखानी अर्थात् नारि धर्मके बहाने कुछ स्तुतिकी। पुनः, इसके बहाने से कुछ स्त्रीधर्म कहे। (३) (क)—दिव्यका भाव स्वयं कविने

† वैदेही—(का०, न० प्र०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

खोलदियाहै कि 'नित नूतन अमल सुहाए' हैं। दिव्य हैं अर्थात् देवताओंके योग्य हैं, सदा एकरस चमकदमक बनीरहेगी। प्रकृत वस्त्र भूषणमें तीन दोष हैं—पुराने, मलिन और शोभाहीन होजाना। इन तीनों दोषोंसे रहित जनाया। (ख)—वस्त्रसे षोड़शशृङ्गार और भूषणसे बारहों आभूषण सूचित किये। * (ग)—सीताजीने ऋषिपत्नीके दिएहुए आभरण वस्त्रको प्रीतिदान समझकर ग्रहण किया। ‡

४—"मातु पिता भ्राता हितकारी..."। (क) नैहर (मायका)

* १२ आभरण ये हैं—नूपुर, किंकिणी, चूड़ी, अँगूठी, कंकण, बिजायठ, हार, कंठश्री, बेसर, बिरिया, टीका और सीसफूल।

‡ १ यथा—'इदं दिव्यं वरं माल्यं वस्त्रमाभरणानि च। अङ्गरागं च वैदेहि महार्हमनुलेपनम् ॥१॥ मया दत्तमिदं सीते तवगात्राणि शोभयेत्। अनुरूपमसंक्लिष्टं नित्यमेव भविष्यति ॥२॥ अङ्गरागेण दिव्येन लिप्ताङ्गी जनकात्मजे शोभयिष्यसि भर्तारं यथा श्रीर्विष्णुमव्ययम् ॥३॥ सा वस्त्रमङ्गरागं च भूषणानि स्रजस्तथा। मैथिली प्रतिजग्राह प्रीतिदानमनुत्तमम् ॥५॥ अलंकुरु च तावत्त्वं प्रत्यक्षं मम मैथिली। प्रीतिं जनय मे वत्से दिव्यालंकार शोभिनी ॥६॥ सा तदा समलंकृत्य सीता सुरसुतोपमा...'—(वा० अ० स० ११८, ११९)। पुनः, यथा—'दिव्ये ददौ कुण्डले द्वे निर्मिते विश्वकर्मणा। दुकूले द्वे ददौ तस्यै निर्मले भक्तिसंयुता ॥'

२—मा० म०—(क) अनुसूयाजीने यह सोचकर कि—ये वनवासमें हैं, १४ वर्षतक इनको दूसरा वस्त्रभूषण न दियाजायगा और लक्ष्मणजी लड़केहैं पुनः वे चरणसे ऊपर दृष्टि नहीं करते अतएव वे इनके वस्त्रभूषणकी आवश्यकता जान नहीं सकते—इनको दिव्य भूषणवस्त्र दिए जो सदा एकरस नित नए बनेरहें। तीर्थ व्रतमें दूसरेका धान्य और फिर ब्रह्मधान्य ग्रहण करना योग्य नहीं, उसपर रामजी उदारचूड़ामणि और इससमयमें वानप्रस्थ अवस्थामें हैं, भोजनसे अधिक तो लेना ही न चाहिए। तब कैसे लिया? समाधान यह है कि रामजीने भोजनही लिया। पर जानकीजीने और भावसे भोजनसेभी अधिक लिया। वह यह कि अनुसूयाजी पृथ्वीके अंशमें उत्पन्न हैं अतः सीताजीने पुत्रिभावसे स्वीकार किया।

३—प्र०—राजकुमारी कहनेसे वात्सल्यभाव प्रबल जनाया और सुनयनादिकके साथ बहुतदिन अनुसूया रहीं यहभी ज्ञातहोताहै। अतः पुत्रिभावसे दिया लियागया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का प्रेम, आपत्काल और पतिकी कुरूपता ये तीनों पातव्रत्यके बाधक हैं। अतएव प्रथम इन बाधकोंको कहकर तब धर्म कहेंगी। (ख)—'मितप्रद। यों तो माता-पिताका स्नेह सदा संतानपर रहताही है पर शास्त्रानुसार माताका दुलार ५ वर्ष और पिताका १० वर्ष तक रहताहै। विवाहके पश्चात् उतना प्रेम नहीं रहता। भाईका प्रेम मातापितासे कम होताहीहै। इत्यादि। ये सभी किसी न किसी निमित्तिसे कोई पदार्थ देतेहैं। फिरभी ये सब प्रकारके सुख नहीं देसकते। अतः मितप्रद अर्थात् थोड़ा दान देनेवाला कहा † (ग)—अमितदानी—सर्वस्व देताहै। जो सुख माता-पिता आदि देतेहैं वह सब तो पति देताहीहै पर साथही परलोक-सुख देताहै पतिसे स्त्रीका लोक-परलोक दोनों बनताहै। अतः अमितदानी कहा।—'पति सेवत सुभगति लहै' यह परलोकका बनना और दानिसे लोकका बनना कहा। तन, मन, धन, माँग (सुहाग) सुख और कोखसुख देताहै जिससे उसकाभी उद्धार होताहै। अतः उसके दानकी मित नहीं।—(वै०)] (घ)—

४—एक व्यासजी काशीजीमें कहतेथे कि सुनयनाजी और अनुसूयाजी बहिन हैं और आज कजली तीज है। इस दिन माता कन्याको वस्त्राभूषण देतीहै। इसी विचारसे रामजी सीताजीको यहाँ लेकरआए। पर यह सर्वथा कपोलकल्पित भाव है। अनुसूयाजी कर्दमऋषिकी कन्या हैं, यह भा० स्कं० ४ अ० १ से स्पष्ट है। ऋषिकन्या यदि सुनयनाजी होतीं तो राजाको कदापि न ब्याही जातीं। दूसरे अनुसूयाजी सृष्टिके आदिमें हुईं और राजा जनक त्रेतामें। श्रीहारजनजी कहतेहैं कि रुद्रसंहिता (शिवपुराण) पार्वतीखण्डमें लिखाहै कि सुनयनाजी, कीर्ति (वृषभानुजा) और मयनाजी ये पूर्व जन्ममें पितृकन्यायें थीं जो सनकादिकके शापसे पृथ्वीपर जन्मीं। इस प्रकारभी अनुसूयाजीका इनसे नाता नहीं पायाजाता। वात्सल्यभावसे प्रीतिदान दियागया वह सीताजीने लिया, प्रीतिदानमें योग्य अयोग्यका विचार नहीं। वाल्मीकिजीका मत है कि वस्त्रभूषणसहित वसिष्ठजीने सीताजीको रामके साथ भेजाथा। पुनः, कजली तीज भाद्रपदमें होतीहै परन्तु वर्षाकालमें प्रभु चित्रकूटमें ही थे।

† 'मृदुना वचसा वत्से योषिद्धर्मं वदाम्यहम्। मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः॥ अमितस्य तु दातारं भर्तारं या न सेवते। साऽधमा मुनिभिः प्रोक्ता'—(शिवपु०) 'नातो विशिष्टं पश्यामि बान्धवं विमृशन्त्यहम्। सर्वत्र योग्यं वैदेहि तपः कृतमिवाव्ययम्'—(वा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'राजकुमारी' सम्बोधनका भाव कि चाहे वह राजकुमारीही क्यों न हो पर मातापिताभाई सब प्रमाणभरही देतेहैं, सब नहीं देसकते। मितप्रदके साथ राजकुमारी और 'अमितदानि भर्ताके' साथ वैदेही पद दिया। वैदेही पदका भाव कि पतिकी सेवामें तनमनसे लगजाय, देह सुधभी न रहे।

५—,धीरज धर्म मित्र अरु नारी...' इति।—विपत्ति आनेपर धैर्य्य बनारहे, धर्मसे च्युत न हो, मित्रका प्रेम न घटे किन्तु अधिक बढ़जाय, स्त्री पतिका अधिक प्यार, सम्मान और सेवा करके उसे प्रसन्न रक्खे; तब वे सच्चे और खरे हैं, यथा—'कुदिन हितू सो हित सुदिन हित अनहित किन होइ। ससि छबिहर रबि सदन तउ मित्र कहत सब कोइ'—(दो० ३२२)। अच्छे दिनोंमें इनके खरे होनेकी परख नहीं होसकती * [नोट—परखना शब्द प्रायः मणि, रुपया, सोना, आदिके लिए प्रयुक्त होताहै। जैसे पारिखी अग्निमें तपाकर या बजाकर या अन्य ढंगसे उनकी पहचान करताहै कि खरे हैं या खोटे वैसेही आपत्तिमें इनके खरे खोटेपन की परख होतीहै। यथा—कसे कनक मनि पारिषि पाये। पुरुष परिखिपहि समय सुभाये'—(अ० § २८२)। 'बिपति कालकर सत गुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा'—(कि० § ७)] ‡ ६ (क)—खरा—यहाँ कहना तो स्त्रीधर्म ही है पर प्रसंग पाकर धीरज, धर्म और मित्र इन तीनों-कोभी कहा। भाव यह है कि यह न समझना कि रामजी राज्यभ्रष्ट होगएहैं। (ख)—पुनः, यहाँ चारसे चारों वर्णभी जनाए' धीरज

* यथा—'आपत्सुमित्रं जानीयाद् युद्धे शूरं धने शुचिः। भार्यां क्षीणेषु वित्तेषु व्यसनेषु च बांधवः' इति प्रस्तावरत्नाकरे।—(पु० र० कु०)। इस श्लोकमेंभी 'जानीयाद्' शब्द है जो परखने या परीक्षाका अर्थ देताहै न कि प्रतीक्षा वा राह देखनेका। पुनः, यथा—'न च भार्या समं किंचिद्विद्यते भिषजां मतम्। औषधं सर्वं दुःखेषु सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥१॥ एवमेतद्यथार्थत्वं दमयंती सुमध्यमे। नास्ति भार्या समं मित्रं नरस्यार्तस्य भेषजम् ॥२॥ सुभिक्षं कृषके नित्यं नित्यं सुखमरोगिणम्। भार्या भर्तुः प्रिया यस्य तस्य नित्योत्सवं गृहे ॥३॥—(महाभारते नलदमयंतीसंवादे—वंदन पाठकजी)। ‡ ‡ 'परखना' राह देखने, प्रतीक्षा करनेकोभी कहतेहैं। आपत्कालमें मित्रकी राह देखना उचितही है। यदि सहायता करे तो खरा है नहीं तो खोटा।—(रा० प्र० श०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्षत्रियका, धर्म ब्राह्मणका, मित्र वैश्यके और स्त्री शूद्रकी। यहाँ क्षत्रिय वर्तमान है। भाव कि दुःख सहे, उपवास करे पर धर्ममें दृढ़ रहे—(रा० कु०)।

बृद्ध रोगबस जड धनहीना।
अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥ § ४ (८)
अैसेहु पतिकर किए अपमाना।
नारि पाव जमपुर दुष नाना॥ ,, (९)

अर्थ—बुड्ढा, रोगके वश, मूर्ख, निर्धन, अन्धा, बहिरा, अत्यन्त क्रोधी या अत्यन्त दीन—ऐसेभी पतिका अपमान करनेसे स्त्री यमपुर (नरक) में अनेक दुःख भोगतीहै।*

पु० र० कु०—१ 'ऐसेहु' का भाव कि इनपर दैवका तो अनादर है ही, उसपर यदि स्त्रीनेभी अनादर किया तब तो अत्यन्त है, असह्य है, अपमानकी सीमाहीहै। २-ऐसे लोग अपमानके पात्र होतेहीहैं, यथा—

"दीरघ रोगी दारिदी कटुबच लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान तेउ, होहिं निरादर जोग॥"

इसीसे 'अपमान' पद दिया। यहाँ ८ दोष गिनाए। एककी क्या यदि इन आठोंसे भी युक्त हो तो भी उसका निरादर न करे, उसके वचनका उल्लंघन न करे।—(खर्रा)। ३—लं० § ३० (१-५) से मिलान कीजिए—

"कौल कामबस कृपिन बिमूढा। अति दरिद्र अजसी अति बूढा॥
सदा रोगबस संतत क्रोधी। बिष्णु बिमुख श्रुति संत बिरोधी॥

* यथा—"दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जड़ो रोग्यधनोऽपिवा। पतिः स्त्रीभिर्न-हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी"—(भागवत)। 'दरिद्रं व्याधितं धूर्तं भर्तारं याव-मन्यते। सा शुनी जायते मृत्वा शूकरी च पुनः पुनः'—(पराशर सं०) अर्थात् निरादरका फल है कि बारंबार कुतिया या शूकरी होतीहै, परलोक नष्ट होताहै। भागवतके श्लोकमें 'वृद्ध, रोगवश, जड़, धनहीन' तो ज्योंकी त्यों आगए। 'अंध बधिर, क्रोधी और दीन' की ठौर 'दुःशील और दुर्भगा' शब्द हैं। अन्धे और बहिरेमें शील नहीं रहजाता। शील नेत्रोंमें रहताहै यह नेत्रहीन है। दोनों दशाओंमें स्त्रीको कलंक लगाताहै। बहिरा बात करते देखताहै तो समझताहै कि न जाने क्या गुप्तबात कररहीहै इत्यादि। क्रोध और दीन दशा दुर्भाग्यसेही होतेहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तनुपोषक निन्दक अघ खानी। जीवत सव सम चौदह प्रानी॥"

एकै धर्म एक ब्रत नेमा।
काय बचन मन पतिपद प्रेमा॥ § ४ (१०)
जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं।
बेद पुरान संत सब कहहीं॥ ,, (११)

* * *

उत्तम के अस बस मन माहीं।
सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं॥ ,, (१२)
मध्यम परपति देषै कैसे।
भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥ ,, (१३)
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई।
सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई॥ ,, (१४)
बिनु अवसर भय ते रह जोई।
जानेहु अधम नारि जग सोई॥ ,, (१५)
पतिबंचक परपति रति करई।
रौरव नरक कल्प सत परई॥ ,, (१६)
छन सुष लागि जनम सतकोटी।
दुष न समुझु तेहि सम को षोटी॥ ,, (१७)

☞*...* §४ (११) के बाद काशीकी प्रतिलिपिमें यह दोहा है—

उत्तम मध्यम नीच लघु सकल कहौं समुझाइ।
आगे सुनहिं ते भव तरहिं सुनहु सीय चितु लाइ॥५॥

अर्थ—तन,वचन और मनसे पतिके चरणोंमें प्रेम करना स्त्रीके लिए यह एकही धर्म एकही व्रत और एकही नियम है संसारमें चार प्रकारकी पतिव्रताएँ हैं वेद पुराण सन्त सभी कहतेहैं कि उत्तमके मनमें ऐसा (भाव) बसारहताहै कि स्वप्नमेंभी संसारमें दूसरा पुरुष हैही नहीं। मध्यम प्रतिव्रता पराये पुरुषको कैसा देखतीहै जैसा कि

... यह दोहा साफ क्षेपक है। इसका कोई प्रयोजन यहाँ नहींहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपना (सगा) भाई, बाप या बेटा हो। जो धर्मको विचारकर और कुल (की मर्यादा) समझकर रहजातीहै (धर्मको बिगड़ने नहीं देती, अपनेको रोके रहतीहै) वह निकृष्ट स्त्रीहै—वेद ऐसा कहतेहैं। जो मौका न मिलनेसे भयके वश (पतिव्रता बनी) रहजातीहै संसारमें उसे अधम स्त्री जानना। पतिसे छलकरनेवाली जो पराये पुरुषसे प्रेम करतीहै वह सैकड़ों कल्पों तक रौरव नरकमें पड़ीरहतीहै। क्षण-मात्रके सुखके लिए शतकोटि (अगणित) जन्मोंके दुःखको नहीं समझती, उसके समान दुष्टा कौन होगी ?

नोट—'एकै धर्म एक व्रत नेमा...' इति। (१) भाव यह कि जैसे शास्त्रों, पुराणों, आदि धर्मग्रन्थोंमें पुरुषोंके लिए अनेक धर्म व्रत और नियम कहेगएहैं वैसेही स्त्रीके लिए पतिव्रतधर्म छोड़ और कोई धर्म नहीं कहेगए। उसके लोकपरलोक दोनों के लिए यह एक साधन बतायागयाहै। यथा—स्त्रीणामार्यस्वभावानां परम दैवतं पतिः. श्रेष्ठ स्वभाववाली स्त्रियोंके लिए पतिही देवताहै—(वा० स० ११७ श्ल० २४)। पुनः यथा महानिर्वाणतंत्रे—'भर्तैव योषितां तीर्थं तपो दानं व्रतं गुरुः। तस्मात्सर्वात्मना नारी पतिसेवां समाचरेत्' अर्थात् पतिही तीर्थ तप, दान, व्रत, गुरु है; अतएव स्त्री सर्वभावसे तनमन से उसकी सेवा करे।

(२) भाव कि धर्म कर्म करनेको मना नहीं करते क्योंकि स्त्रियोंको व्रत करना लिखाहै, वरन् यह कहतेहैं इसधर्मके सदृश दूसरा धर्म नहींहै। यह स्त्रीका मुख्य धर्म है।

(३) 'खर्रा—'काय वचन मन' दीपदेहरी है। अर्थात् तन वचन और मन तीनोंसे उसका यही एक धर्म व्रत और नियम है कि तनमन वचनसे प्रतिपदमें प्रेम हो पुनः यथासंख्यसे भी लगा सकतेहैं कि शरीर के लिए यही एक धर्महै, वचनसे इसी व्रतमें तत्पर और मनमें यही नियम दृढ़ रहे। ☞ "जगपतिव्रता चारि बिधि अहहीं" से "दुखु न समुझ तेहि सम को खोटी" तक जो पतिव्रताओंके लक्षण कहेगएहैं ठीक वैसेही शिवपुराणमें पायेजातेहैं।* शिवपुराणमें जो पातव्रत्यधर्म अनेक

* यथा—"चतुर्विधास्ताः कथिता नार्यो देवि पतिव्रताः। उत्तमादि विभेदेन स्मरतां पापहारिकाः॥ १॥ उत्तमा मध्यमा चैव निकृष्टातिनिकृष्टिका। ब्रवे तासां लक्षणानि सावधानतया शृणु॥ २॥ स्वप्नेपि यन्मनो नित्यं स्वपतिं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्लोकोंमें कहाहै उसे गोसाईंजीने इस एक चौपाईमें खींचलिया—'एकै धर्म०० प्रेमा'। काय से अष्टप्रहर सेवामें तत्पर रहे और मन-भावते मधुर वचन कहकर मनको पतिमें सदा लीन रक्खे।—(पु० र० कु०)।

पु० र० कु०—१ उत्तमके अस बस मन माहीं..." इति।—भाव कि यह धर्म स्वाभाविकही उनके मनमें बसताहै कि स्वप्नमेंभी संसार में अपना पति छोड़ दूसरा कोई पुरुष नहीं अर्थात् उसे और सब जगत् स्त्रीमयही दिखातीहै †। 'बस' जनाताहै कि मनसे कभी टलती नहीं। 'सपनेहु' का भाव कि कुबुद्धि मनमें आनेकी सन्धिही नहीं अतः एकरस रहतीहै।

२—'मध्यम परपति देषहिं कैसे...' इति। (क) जो उत्तममें मनका विषय था, मध्यममें नेत्रका विषय हुआ। ये औरभी पुरुष मानतीं हैं, जैसे हमारे पति पुरुष हैं ऐसेही औरोंकेभी पति पुरुष हैं पर उनमें यह अपने भाई, पिता या पुत्रका नाता मानतीहैं इनके समान देखतीहैं। (ख)—'निज जैसे' का भाव कि सगे भाई बाप बेटेमें कामकी प्रवृत्ति नहीं होती।

(ग)—इनको मध्यम कहनेका कारण यह कि इनमें कामकी प्रवृत्तिका भय रहताहै, यथा—'भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥ होइ बिकल मन सकहिं न रोकी। जिमिरबिमनिद्रव रबिहि बिलोकी'॥

पश्यति ध्रुवम्। नान्यं परपतिं भद्रे उत्तमा सा प्रकीर्तिता॥ ३॥ या पितृभ्रातृसुतवत् परं पश्यति सद्धिया। मध्यमा सा हि कथिता शैलजे वै पतिव्रता॥ ४॥ बुद्ध्वा स्वधर्मं मनसा व्यभिचारं करोति न। निकृष्टा कथिता सा हि सुचरित्रा च पार्वति॥ ५॥ पत्युः कुलस्य च भयात् व्यभिचारं करोति न। पतिव्रताऽधमा सा हि कथिता पूर्वसूरिभिः॥ ६॥ या भर्तारं समुत्सृज्य रहश्चरति केवलं। ग्रामे वा शूकरी भूयाद् बकुली वा श्ववित्भुजा॥ ७॥" इति शिवसंहितायाम् तृतीय खण्डे।

† श्रीरूपकलाजी श्रीमीराबाईजीकी जीवनीमें लिखते हैं कि श्रीमीराबाईजी का यही भाव श्रीगिरिधरलालजीमें था कि एक वही पुरुषहैं और जगत्मात्र स्त्री है। इसी भावसे उन्होंने श्रीमहात्मा जीव गोसाईंजीका स्त्रीमुख न देखनेका पण छुड़ाया था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(घ)'जैसे' का भाव कि अपने बराबरवालेको भाई, बड़ेको पिता और छोटेको पुत्रके समान समझतीहैं। (ङ)—[खर्रा—'निज जैसे' का भाव कि अपने मनको मिटाकर तब बचतीहैं कि ये तो हमारे लड़केहैं, हमारे भाई हैं इत्यादि; नहीं तो केवल माननेसे नहीं बचसकतीं, यथा—'होइ बिकल...'। पर यह कुबुद्धि आतेही उसे निकाल डालतीहैं।—रा० कु०—]

३—'धर्म बिचारि समुझि कुल रहई...' इति। (क)—'धर्म विचारसे' परलोकका डर, 'समुझि कुलसे' लोकका डर। अर्थात् लोक परलोकका डर मानकर धर्ममें रहजातीहैं। 'समुझि कुल' अर्थात् हमारा पति और पिताका कुल उत्तम, यशस्वी, निष्कलंक, पवित्र इत्यादि ख्यात् है उसमें हम कलङ्क रूप पैदा हुईं, कुलकी नाक कटेगी, ऐसे कुलकी होकर हमारा अधर्ममें आचरण सर्वथा अयोग्य है, इत्यादि। यथा—हंसबंस दसरथ जनक रामलषनसे भाइ। जननी तू जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ'।

४—'बिनु अवसरु भय ते रह जोई...'। (क) अर्थात् मौका मिलजाय कि कोई घरमें न रहे या किसीको अन्यकामोंसे सावकाश ही न हो जो इसकी खोज करे तो यह अवश्य परपुरुषगमन करे। अथवा, पति आदिका भय है कि जानपाए तो मारही डालेंगे। (ख)—इसे कहा क्योंकि यह अपना धर्म स्वयं नहीं बचासकती, इसकेलिए 'अवसर न मिलने पावे' और 'भय' इन दो रखवालोंकी ज़रूरत हुई वेही इसके धर्मके रक्षक बने। (ग)—प्रथम तीन पतिव्रताएँ स्वय अपने धर्मकी रक्षक हैं, मनमें उनके पातव्रत्यका विचार है पर इसके मनमें पतिव्रतधर्मही नहीं है। निकृष्टका मन दूषित है फिरभी वह अपना स्त्रीधर्म समझतीहै इससे वह बचजातीहै। (घ)—'अधम' को भी पतिव्रतामें गिना क्योंकि पाप मनहीमें रहगया। ऐसी स्त्रियाँ प्रायः कलियुगहीमें होतीहैं—'गुनमंदिर सुन्दर पति त्यागी। भजहिं नारि परपुरुष अभागी'—(उ० § ९८)। इससे उस पापका दंड न हुआ—'मानस पुन्य होहि नहिं पापा'।

५—यहाँ तक चार प्रकारकी पतिव्रताएँ कहीं। आगे व्यभिचारिणी स्त्रीको कहतेहैं जो इनसे पृथक् है। पृथक् करनेका कारण यह कि उसने तनसे पाप कर्म करडाला। कर्मका उसे यह दंड मिला। यह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ऊपरसे दिखानेके लिए पतिसे प्रीति करतीहै पर भजतीहै, परपतिको, यही ठगना है। इसे रौरव नरक होताहै।*

नोट—१—वाल्मिकि और अध्यात्ममें भी यह संवाद है पर उनमें पतिव्रताओंका चतुर्विध्य वर्णन नहीं है। इसको यहाँ देकर पूज्य कविने उन रामायणोंमें वर्णित धर्मोंका सच्चा सच्चा हृदय खोलदियाहै।—(मा० हं०)।

२—मा० म०, करु० आदि कहतेहैं कि जैसे चार प्रकारकी स्त्रियाँ यहाँ कही गईं, इसी प्रकार इनसे चार प्रकारके भक्त दिखापहैं। (क)—उत्तम उपासक वे हैं जो जिस स्वरूपमें अनन्यभाव करतेहैं उसीमें भुक्ति मुक्ति और भक्ति सभी कुछ देखतेहैं, अन्य स्वरूपमें वे स्वप्नमेंभी नहीं। पर अपने इष्टकी प्रसन्नताहेतु सभी स्वरूप मानने योग्यहैं। यह उत्तम अर्थात् एक स्वरूपानन्य उपासक हैं। जो यह मानतेहैं कि जो ईश्वरके स्वरूप हैं वे सब एकही हैं, सभी भुक्ति मुक्ति भक्तिके दाताहैं; परन्तु अपने इष्टस्वरूपमेंही परायण हैं। यह नहीं है कि अपनी वृत्ति दूसरे स्वरूपोंमें चलीजाय। जैसे स्त्री दूसरोंकोभी पुरुष समझतीहै पर अपने चित्तमें उनके लिए विकार उत्पन्न नहीं होने देती।—ये स्वरूपानन्य उपासक हैं। निकृष्ट वे हैं जिनकी इच्छा और देवताओंकी उपासना की होतीहै पर गुरु आदिका धर्म विचार-

* १—मा० स्कं० ५ अध्याय २६ में नरकोंका वर्णन है। २८ नरकोंमेंसे रौरव नरक तीसरा है। इस नरकमें रुरु नामक कीड़े होतेहैं जो महातामसी सर्पसेभी अधिक क्रूर होताहै। यह कीड़े प्राणीको चारों तरफ़से काटतेहैं। २—यहाँ प्रसंग पाकर श्री पं० राजारामजी (पं० रामकुमारजीके शिष्य) की धर्मपत्नी 'पतिदासीजीकृत रामचरितके प्रसंगोंसे उपदेशके दोहे उद्धृत किएजातेहैं "दासी बरके नामसे बरतरु पूजैं नारि। साक्षात् वर नहिं भजहिं तिन्ह सम कौन गँवार ॥ ७ ॥ नैहर सासुर सर्वसुख सो सीता तृण जान। दासी बनगवनी हरषि पतिपद प्रेम प्रमान ॥ ११ ॥ दासी दुखकारण प्रगट यद्यपि कौशलनाथ। पै रानिन्ह सुतको तज्यो तज्यो न पति को साथ ॥ १२ ॥ दासी पति ते हठ किए कैकेइहिं दुखभार। बिधवापन सुत बिमुखता अपयश जगत् अपार ॥१५॥ दासी पति आदर बिना कहूं न तियको मान। नैहरहूं निदरी गई दक्षसुता जग जान ॥ १७ ॥ दासी सब निदरहिं सदा पतिबंचक अनुमानि। रामहुँ परसेउ पाँवते गौतमतिय जिय जानि ॥ २२ ॥"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर करते नहीं ये सामान्य उपासक हैं। चौथे न्यून वा अधम हैं।—(करु०)। (ख) वै०—उत्तम उपासक जैसे हनुमान्‌जी और सुतीक्ष्ण कि जो केवल रामरूपको ईश्वर मानकर भक्ति करतेहैं, दूसरे स्वरूपको क्षणभर दृष्टि उठाकर नहीं देखसकते। (देखिए मीराजीको जो संसारके सभी जीवोंको स्त्रीहीरूप समझतीथीं; केवल एक अपने गिरिधरलालको पुरुष मानतीथीं। जब पुरुष भाव ही किसीमें नहीं तो विकार कैसे उत्पन्न हो—'मोह न नारि नारिके रूपा'। (मा० स०) मध्यम एकको इष्ट जानतेहैं, औरोंको अंगदेव मानतेहैं। इत्यादि। (ग) ये चारों स्वकीयाके समान हैं और जो दूसरेके इष्टकी उपासना करने लगतेहैं वे परकीया हैं। वे भक्त नहीं रहजाते।—(प्र०)।

बिनु श्रम नारि परम गति लहई।
पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई॥ §४ (१८)
पति प्रतिकूल जन्म जहँ जाई।
बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥ ,, (१९)

अर्थ—जो छल छोड़कर पतिव्रतधर्मको ग्रहण करतीहै (दृढ़ पकड़तीहै) वह स्त्री विना परिश्रम परमगति पाजातीहै। जो पतिके प्रतिकूल है वह जहाँही जाकर जन्मलेतीहै वह जवानी पाकर विधवा होजातीहै। *

नोट—१ 'बिनु श्रम'—जप, तप, तीर्थ, योग, यज्ञ, वैराग्य, त्याग, कर्म, उपासना, ज्ञानादि सब परिश्रमरूप हैं। यथा—'कहहु भगतिपथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा'—(उ० § ४५) 'छाडि छल गहई'—जैसा भक्तिके विषयमें कहाहै—'सरल सुभाव न मन कुटिलाई'—(उ० § ४५)। 'पाइ तरुनाई' अर्थात् उसकी युवावस्थाही नष्ट होजातीहै, उसका सुख उसको नहीं प्राप्त होसकता २—यहाँ परिव्रतका माहात्म्य और पतिप्रतिकूलताकी दुर्गति कही। ३—भाव कि उसका उद्धार किसी जन्म में नहीं होनेका—(रा० कु०)।

* 'न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च। नारी स्वर्गमवाप्नोति केवलं पतिपूजनात्॥ स्वामिनः प्रातिकूल्येन येषु जन्मसु गच्छति। तारुण्यं प्राप्य सा नारी विधवा भवति वै ध्रुवम्॥' इति पराशरसं०॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ॥
सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं ।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ † कथा संसार हित ॥५॥

अर्थ—स्त्री स्वभाविकही अपवित्र है, पतिकी सेवासे वह शुभगति पाजातीहै। चारों वेद (पातव्रत्यका यश गातेहैं, आजभी भगवान्‌को 'तुलसी' प्रियहै। हे सीते! सुनो, तुम्हारा नाम स्मरण कर स्त्रियाँ पतिव्रतधर्म (पालन) करेंगी। तुमको तो राम प्राणप्रिय हैं, यह कथा (स्त्रीधर्मोपदेश) मैंने संसारमें भलेके लिए कहीहै। *

नोट—१ 'सहज अपावनि' को शुभगति' असंभव दोनों परस्पर विरोधी हैं पर इनको पतिसेवासे शुभगति 'सहज' होजातीहै। २—'सुभ गति', 'जसु गावत' और हरिहि प्रिय' पदसे जनाया कि पतिव्रत धर्मपालनसे तीनों बातें प्राप्त होजातीहैं—सद्गति लोकपरलोकयश और भगवत्‌का प्रियत्व। ३—'तुलसिका हरिहि प्रिय'—'तुलसिका' से जलंधर दैत्यकी स्त्री वृन्दाकी कथा सूचित की। उसके परमसतीत्व के प्रभावसे भगवान् शङ्कर उसके पतिसे न जीत सकेथे—'परम सती असुराधिप नारी। तेहि बल ताहि न जितहिं पुरारी'—ब० § १२२—§ १२३ में कथा दीगईहै। दिखाया कि दैत्यकुलकी स्त्रीके पातिव्रत्यका यह प्रभाव हुआ कि भगवान् उसे तुलसीरूपसे मस्तकपर धारण करते हैं ऐसी प्रिय है तो मनुष्य आदिकी स्त्रियोंके सतीत्वका क्या प्रभाव कहाजाय?

(४)—पु० र० कु०—(क) 'पति सेवत सुभगति लहइ' अर्थात् जीवन्मुक्त होजाती है। (ख) तुलसीके दृष्टान्तसे जनाया कि पतिव्रतधर्म से सहज अपावनी स्त्री परमपावनी होजातीहै, यथा—"रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी"। (ग)—जो बात कही उसके दोनों प्रमाण—शब्द

† 'कहेउँ'—(का०, न० प्र०)।

* यथा—'जगदम्बा महेशी त्वं शिवः साक्षात् पतिस्तव। तव स्मरणतो नार्यो भवन्ति हि पतिव्रताः। त्वदग्रे कथनेनानेन किं देवि प्रयोजनम्।, तथापि कथितं मेथ जगदाचारतः शिवे॥—" (शिव पु०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रमाण, प्रत्यक्ष प्रमाण दोनों—दिए। 'श्रुति अस कहई', 'गावहिं श्रुति चारि', यह शब्दप्रमाण है और 'अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय' यह प्रत्यक्ष प्रमाण है, सब जानतेहैं।

(घ) चार प्रकारकी पतिव्रताएँ बताईं, उसमें भी वेदादिका प्रमाण दिया—'बेद पुरान संत सब कहहीं' उत्तम, मध्यम और निकृष्ट (जो अपने धर्मकी रक्षा स्वयं करतीहैं) को कहकर फिर उसका भी प्रमाण दिया कि श्रुति अस कहई'। फिर अधम पतिव्रता (जो मनसे पतिव्रत नहीं है किन्तु पर पुरुषका चिन्तवन करतीरहती है) और व्यभिचारिणीके लक्षण और पतिव्रतका माहात्म्य एवम् व्यभिचारकी दुर्गति कहकर फिर प्रमाण दिया कि 'चारो वेद ऐसा कहतेहैं। इनका प्रमाण देकर जनाया कि पतिव्रत स्त्रियोंको वेद पुराण सन्तवचन आदिके सुननेका अधिकार है, यथा—'जदपि जोषिता अनधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी'—(ब० § १० ६) और पतिव्रताका धर्म है 'काय वचन मन पतिपद प्रेमा।'*

५—"सुनु सीता तव नाम सुमिरि···" इति।—(क) आदिमें जब धर्मोपदेश किया तब 'सुनु राजकुमारी' कहाथा और अब उनका ऐश्वर्य्य कहतीहैं। अतः 'सुनु सीता' कहा। (ख)—पु० र० कु०—(i) यह जो कहा कि 'तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं' यह भी 'संसारहित' कहा और जो स्त्रीधर्मकी कथा कही वह भी 'संसारहित'। संसारकी स्त्रियोंको उपदेश है कि पतिव्रत होना चाहें तो सीताका स्मरण करें। (ii) ऐसाही पार्वतीजीके विषयमें कहाहै, यथा—'पहिकर नाम सुमिरि संसारा। तिय चढिहहिं पतिव्रत असिधारा'।

सुनि जानकी परम सुषु पावा।
सादर तासु चरन सिरु नावा॥ § ५ (१)
तब मुनि सन कह कृपानिधाना।
आयसु होइ जाउँ बन आना॥ ,, (२)
संतत मो पर कृपा करेहू।
सेवक जानि तजेहु जनि नेहू॥ ,, (३)

* पतिव्रताका महात्म्य यथा—'सुतं पतंतं प्रसमीक्ष्य पावके न बोधयामास पतिं पतिव्रता॥ पतिव्रता शापभयेन पीड़ितो हुतासनश्चंदन पंकशीले॥' —(पु० र० कु०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—जानकीने सुनकर परम आनन्द पाया और आदरपूर्वक उनके चरणोंमें माथा नवाया। तब कृपासागर रामजीने मुनिसे कहा कि आज्ञा हो तो मैं दूसरे वनको जाऊँ। मुझपर निरंतर कृपा करते रहिएगा, सेवक जानकर प्रेम न छोड़िएगा।

पु० र० कु०—(१) 'अनुसूयाके पद गहि सीता' उपक्रम है और 'सादर तासु चरन सिरु नावा' उपसंहार। (२) ऋषिपत्नी इनको पाकर बड़ी सुखी हुईथीं अतः, ये भी बड़ी सुखी हुईं। 'रिषिपतनी मन सुख अधिकाई' वैसेही यहाँ 'जानकी परम सुख पावा'। यहाँ 'यो यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' इसको चरितार्थ किया। पुनः, पूजासे सुख और धर्मोपदेश सुन परम सुख हुआ। अर्थात् भूषणवस्त्र पानेसे सुख हुआ और यह परमार्थ उपदेश है अतः इससे परम सुख हुआ।

(३) 'सुनु सीता तव नाम' कहकर अनुसूयाजीने ऐश्वर्य्य प्रकट किया; पर इन्होंने अपने ऐश्वर्य्यको गुप्त रखा। अतः यहाँ कहा कि 'जानकी परम सुख पावा ।०० सिरु नावा'। इन्होंने माधुर्य्यही दृढ़ रखा। जैसा रामजीने मुनिसे माधुर्य्य बरता वैसेही इन्होंने अनुसूयाजीसे।

(४) ['सादर तासु चरन सिरु नावा'—विदा होनेपर भी प्रणाम कियाजाताहै इससे जनाया कि प्रणाम करके विदा हुईं, यथा—तासु चरन सिरु नाइ करि प्रेमसहित मति धीर। गरुड़ बैकुण्ठ० इससे यह भी जनाया कि आपका प्रत्युपकार मुझसे नहीं होसकता, यथा—मो पहिं होइ न प्रति उपकारा। तव पद बंदउँ बारहि बारा'।—(उ० § १२४-१२५)। सुशीलतासे कुछ बोलीं नहीं, माथा नवाया। 'अनुसूया के पद गहि सीता' आदिमें और अब अन्तमें फिर 'सिरु नावा]।

(५) 'तब' अर्थात् जब सीताजी प्रणाम करके विदा हो आईं, और इधर अत्रिजीभी पूजा स्तुति समाप्त कर चुके। अत्रि-राम-संवाद और अनुसूया-सीता संवाद दोनों एक साथ ही प्रारम्भ और समाप्त होगए।

(६) 'कृपानिधान' विशेषण दिया क्योंकि दण्डकारण्यमें औरभी ऋषियोंको सुख देनाचाहतेहैं। इस वनमें अत्रि मुनिही प्रधान हैं इसीलिए अन्य वन जानेमें उनकी आज्ञा ली, यथा—'प्रभुपद अंकित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अवनि बिसेषी। आयसु होइ त आवउँ देखी॥ अवसि अत्रि आयसु सिर धरेहू। तात बिगत भय कानन चरहू'। पुनः, अत्रिजीके आश्रम तक एकही वन है अतः 'जाउँ बन आना' कहा।

(७) 'संतत कृपा करेहू' 'तजेउ जनि नेहू', यथा—"स्नेहः प्रवासाश्रयान्" ऐसा कहा। अत्रिजीने कहाथा कि 'चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि'; वैसेही प्रभुने कहा कि 'सेवक जानि तजेहु जनि नेहू'। सेवक पर स्वामी कृपा स्नेह करतेहीहैं, यथा—'बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं'।

☞ यहाँ इस प्रकरणमें श्रीसीताजीकी निरभिमानता दिखाईहै। ये पतिव्रता शिरोमणि हैं यथा—'सतीशिरोमणि सिय गुन गाथा'। इनको कोई क्या उपदेश देगा कि 'लोकप होहिं बिलोकत जाके'। तो भी वे सादर अनुसूयाजीका पातिव्रतधर्मोपदेश सुनती रहीं और अन्तमें कृतज्ञता सूचित करतेहुए उन्होंने चरणोंमें मस्तक नवाया। इससे हम लोगोंको उपदेश ग्रहण करना चाहिए कि अपनेसे बड़ोंका उपदेश निरभिमान होकर आदरपूर्व्वक सुनाकरें चाहे हम उसे जानते भी क्यों न हों।

धर्म्मधुरंधर प्रभु कै बानी।
सुनि सप्रेम बोले मुनि ज्ञानी॥ § ५ (४)
जासु कृपा अज सिव सनकादी।
चहत सकल परमारथबादी॥ ,, (५)
ते तुम्ह राम अकाम पिआरे।
दीनबंधु मृदु बचन उचारे॥ ,, (६)
अब जानो मैं श्री चतुराई।
भजी तुम्हहि सब देव बिहाई॥ ,, (७)
जेहि समान अतिसय नहिं कोई।
ताकर सील कस न अस होई॥ ,, (८)

शब्दार्थ—परमार्थवादी=जो ब्रह्मके साक्षात् करनेमें प्रबल हैं। ब्रह्मके जाननेवाले ज्ञानी। यथा—'राम ब्रह्म परमारथ रूपा'। 'जेहि समान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अतिसय' यथा—"न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" इति श्वेताश्वतरे श्रुतिः"—(पु० र० कु०)।

अर्थ—धर्मधुरन्धर प्रभुके वचन सुनकर ज्ञानी मुनि प्रेमपूर्वक बोले। ब्रह्मा, शिव, सनकादि सभी परमार्थवादी जिसकी कृपाकी चाह करतेहैं; वही आप (जिनको निष्काम भक्त प्रिय और जो) निष्काम भक्तोंके प्यारे एवम् दीनबंधु रामने कोमल वचन कहे। अब मैंने आपकी वा लक्ष्मीजीकी चतुराई समझी कि सब देवताओंको छोड़कर तुम्हें भजनाचाहिए वा भजा। जिसके समान या अधिक कोई नहीं है उसका शील ऐसा क्यों न हो?

पु० र० कु०—१ (क)—"धर्मधुरन्धर प्रभु", यथा—"धर्मसेतु करुनायतन कस न कहहु अस राम"—(वसिष्ठ वाक्य अ § १४८) "सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ज्ञानी॥ कस न कहहु अस रघुकुल केतू। तुम्ह पालक सन्तत श्रुति सेतू॥ श्रुतिसेतु पालक राम तुम्ह००" [(अ० १२५-६) वाल्मीकि वचन]

(ख)—आप तो स्वयं सबपर कृपा करतेहैं सो मुनिसे कृपा माँगते हैं—'संतत मोपर कृपा करेहू' क्योंकि धर्मधुरन्धर हैं, मर्यादा नहीं छोड़ते। (ग)—"प्रभु" अर्थात् सब इनकी आज्ञा पालतेहैं। यथा—

"बिधि हरिहर ससि रबि दिसिपाला। माया जीव करमकुलि काला॥ अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई। योगसिद्धि निगमागम गाई॥ करि बिचार जिय देखहु नीके। राम रजाइ सीस सबहीके।-अ०§२५३

(घ) "मुनि ज्ञानी"के साथ 'सप्रेम' पद दिया क्योंकि प्रेम विना ज्ञानकी शोभा नहीं।‡

२—'संतत मोपर कृपा करेहू' का उत्तर 'जासु कृपा अज सिव०'
'सेवक जानि तजेउ जनि नेहू' ,,'ते तुम्ह राम अकाम पियारे'
'आयसु होइ जाउँ बन आना' ,, केहि बिधि कहउँ जाहु अब स्वामी

३—'चहत सकल परमारथबादी' का तात्पर्य्य कि-(१) रामकृपा

‡ १—"सोह न राम प्रेम बिनु ज्ञानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू।
'बहुरि लखन सिय प्रीति बषानी। सोक सनेह मगन मुनि ज्ञानी। (वसिष्ठ)
'निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी'।-सुतीक्ष्ण

२—पं० रा० ब० श०—माधुर्य्यमें न भूले। आशीर्वाद न देकर इसतरह बोले। क्योंकि ज्ञानी हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही परमार्थहै पुनः (२)—स्वार्थरत लोग तो स्वार्थके लिये चाहतेही हैं पर जिनकी दृष्टिमें स्वार्थ नहीं है, जो निष्काम हैं, वे भी आपको चाहते हैं। तात्पर्य कि जब सकाम और निष्काम दोनोंही आपको प्यार करते हैं तब हम स्नेह क्योंकर छोड़ सकतेहैं ?

४—'ते तुम्ह राम अकाम पिआरे'। अभिप्राय यह कि आपका भजन करके दास अकाम होजातेहैं तब आपको कौन कामना है कि जो मेरी कृपा आप चाहतेहैं। पुनः, भाव कि कामनासे तो सभी प्यारे होतेहैं पर आप कामनारहित होते हुएभी प्यारे हैं।—(खरी)।

'अब जानी मै श्रीचतुराई...' इति

पु० र० कु०—आपकी चतुराई जानी। क्या ? यह कि आप सबसे बड़े हैं इसीसे ऐसी विनम्र वाणी बोले। अर्थात् अपनी नम्रतासे श्रेष्ठता जनादी यह चतुराई है अथवा, 'श्री' (= लक्ष्मी) की चतुराई जाना कि क्यों सब देवताओंको छोड़कर आपकोही जयमाल पहनाया था। ऐसा करके उन्होंने जनादिया कि सबमें आपही बड़े हैं। पुनः, 'अब जानी' अर्थात् सुनी तो पहलेथी पर अब समझा।

२—दीनजी—यहाँ, श्री = लक्ष्मी। जो तुमको श्रीजीने पतिरूपसे ग्रहण किया उसकी चतुराई मैं अब समझा कि क्यों सबको त्यागकर आपके जयमाल डालाथा। यहाँ रामजीकी चतुराईका प्रसंग नहीं वे कोई चतुराई नहीं करतेहैं।

३—प्र०—(क) भाव यह कि आप अपने भक्तोंको अपनेसेभी अधिक मान्य देतेहैं और अन्य देवता भक्तोंको सेवककेहीसमान रखते हैं। वा, (ख)–आपने मृदुवचन कहे इससे मैंने आपको दीनबंधु जाना, अतएव हमारी चतुराईकी शोभा यही है कि आपकोही भजूँ।

(ग) नोट—मिर्ज़ापुर, पं० रा० गु० द्विवेदीजी, भा० द०, की प्रतियोंमें 'भजी' पाठ है। उसके अनुसार 'श्री' का अर्थ 'लक्ष्मी, वा, जानकीजी' है, यथा—'उभय बीच श्री सोहइ कैसी' § ६ (३)। लक्ष्मीजीने भगवान्‌को जयमाल पहनाया और श्रीजानकीजीने, स्वयम्वरमें जहाँ सब 'देव दनुज धरि मनुज सरीरा' आएथे, रामजीकोही मनवचनकर्मसे भजा और ब्याहा। अन्य टीकाकारोंने 'भजिय' पाठ रखाहै। पं० शिवलालपाठकभी 'भजी' पाठ देतेहैं, वैजनाथजीने 'भजी' पाठ देकर अर्थ कियाहै 'बरी' (= ब्याही)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(घ)—'जेहि समान अतिसय नहिं कोई...' समान ही नहीं है, 'अतिशय कहाँसे होगा। वा, 'अतिशय समान तो अभावमें कोई नहीं है'।—(प्र०) उसका शील ऐसा होना ही चाहिए अर्थात् नम्रता की बड़ाई बड़ोंमेंही होतीहै।

४—पं० रा० व० श०—वंदन पाठकजीकी प्रतिमें 'भजिअ' है। यह पाठ प्रधान है। भाव यह कि सबसे बड़ी चतुराई यह है कि आपका भजन करे, सबको छोड़े। दूसरा अर्थ यह है कि आपकी चतुराई मैं जानगया कि भक्तोंके साथ ऐसा बर्ताव क्यों करतेहो। वह यह है कि जिसमें आपका स्वभाव देखकर आपकाही होरहे।

केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी।
कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी॥ § ५ (९)
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा।
लोचन जल बह पुलक सरीरा॥ ,, (१०)

छंद—तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुषपंकज दिए।
मन ज्ञान गुन गोतीत प्रभु मैं दीष जप तप का किए॥
जप जोग धर्म्म समूह ते नर भगति अनुपम पावई।
रघुबीरचरित पुनीत निसिदिन दास तुलसी गावई॥

अर्थ—हे स्वामी! मैं किस प्रकार कहूँ कि 'स्वामी, अब जाइए'। हे नाथ! आपही कहिए, आप तो अन्तर्यामी हैं। ऐसा कहकर धीर मुनि प्रभुको देखनेलगे, नेत्रोंसे जल बहरहाहै, शरीर पुलकित है। शरीर परिपूर्ण रोमांचित है, निर्भर (परिपूर्ण, अतिशय) प्रेमसे पूर्ण हैं, नेत्रोंको मुखकमलमें लगाएहुएहैं, मनमें बिचारतेहैं कि मैंने कौनसे जप तप किए कि मन, ज्ञान, गुण और इन्द्रियोंसे परे प्रभुके मैंने दर्शनपाए * जप जोग और धर्म्मसमूहसे मनुष्य अनुपम भक्तिको

* १ वै०—अर्थ—ऐसे प्रभुको मैंने नेत्रभर देखा तो अब क्या बाक़ी रहा? अब इसी रूपको सदा अवलोकन करनाही उचित है अब जप तप आदि करनेसे क्या लाभ है। इससे अधिक कौन लाभ है जिसके लिए जप आदि करें। २—पु० र० कु०—जोड़के श्लोक यथा—'दान व्रत तपो होम जप स्वध्याय संयमैः। श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यै कृष्णा भक्तिर्हि साध्यते॥१॥ किं मयाचरितं भद्रं किं तप्तं परमंतपः किं वा याप्यर्हते दत्तं यद्रक्ष्याम्यद्य केशवं॥२॥ इति भागवते दशमे॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पातेहैं (तुलसीदासजी कहतेहैं कि) रघुवीर रामजीके पवित्र चरित्रको तुलसी दिनरात गाता है।

पु० र० कु०—१ 'केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी...' इति।—अर्थात् ऐश्वर्य्य माधुर्य्य दोनोंतरहसे कहते नहीं बनता। मिलानकरो जनकजीके विचारसे कि 'हम अब बन ते बनहि पठाई। प्रमुदित फिरब बिबेक बढाई'—(अ० § २०१) अथवा, (ख)—'स्वामी, नाथ अन्तर्यामी' इन तीनों बिधियोंसे ऐसा कहते नहीं बनता।

(ग) खर्रा—भाव कैसे कहूँ कि बनको जाओ क्योंकि आप तो सर्वत्र हैं, यथा—जहँ न होउ तहँ देउ कहि'। कदाचित् आप समझें कि मैं ऊपरसे कहता हूँ तो आप अन्तर्यामी हैं। पुनः, नाथके जानेसे सेवक अनाथ होजायगा, यह कैसे कहूँ कि मुझको अनाथ करके जाइए यथा—'जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ। करि अनाथ जन परिजन गाऊँ'—(कौसल्यावल्य अ० § ५६)

२—'लोचन जल बह' इति। प्रभुके आगमन पर भी मुनिके प्रेमाश्रु निकल पड़ेथे, यथा—'प्रेम बारि दोउ जन अन्हवाये'। और अब चलते समय भी। अर्थात् संयोग और वियोग दोनोंमें अश्रुप्रवाह चला, भेद केवल इतना है कि संयोगमें आनन्दके कारण और वियोग में दुःखके कारण आँसू बहे। (ख) 'यही दशा शिवजीकी हुईथी, यथा—भरिलोचन छबि सिन्धु निहारी।०० पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता ॥... भये मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी'—(ब० §४६)। वही भाव 'लोचन...प्रेम पूरन'का है। पुनः मयना आदिकी दशा, यथा—'सकल सखी गिरिजा गिरि मयना। पुलक सरीर भरे जल नयना' में आनन्द और दुःख दोनोंमें एकही दशा दिखाईहै।

(ख) 'मुनि धीरा' अर्थात् अधीर तो होगयहैं, तो भी धीरज धरेरहे।

३—(क)—'नयन मुख पंकज दिए', यथा—"देखि राम मुख पंकज मुनिवर लोचन भृंग। करत पान सादर०"। पुनः, यथा—"मुख सरोज मकरन्द छबि करत मधुप इव पान"। पुनः यथा—'अरविन्द सो आनन रूप मरन्द अनन्दित लोचन भृङ्ग पिये'—(क०)। जो भाव इन उदाहरणोंका है वही 'नयन मुख पंकज दिए' का है। अर्थात् नेत्र भृङ्गवत् हैं, श्रीराममुख कमल है, नेत्र-भौंरा मुख-कमलके मकरन्द-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रसको पान कररहाहै, और मुखकमल परही मड़ला रहाहै उसको छोड़ता नहीं।

(ख)—मुनिको दर्शनकी अत्यन्त कांक्षा थी, इसीसे ग्रन्थकारनेभी कई बार उनका देखना लिखा, यथा—(i)—'देखि राम छबि नयन जुड़ाने', (ii) 'भरि लोचन सोभा निरखि', (iii) 'अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा' (iiii) 'नयन मुख पंकज दिए'।

३—(क)—'मन०० मैं दीष जपतपका किये', यथा—'सब साधन कर सुफल सुहावा। लषन राम सिय दर्शन पावा'। मन ज्ञान (बुद्धि) और इन्द्रियोंकी गति वहाँ तक नहीं है और सत् रज तम तीनों गुण जिनसे सारी सृष्टिकी रचनाहै उनसेभी वह पृथक् है, गुणातीत है।

(ख) जो भक्ति जप-योग-धर्मसमूहसे मिलतीहै † वही चरितके गानसे प्राप्त होतीहै, यथा—'रावनारि जस पावन गावहिं सुनहिं जे लोग। रामभगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग'। अनुपमका भाव कि कर्म-धर्म, ज्ञान कोईभी इसके समान नहीं जिससे उपमा देसकें।

५—खर्रा—(क) जप=मंत्रजाप। यथा—मन्त्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा'। इससे उपासना कही। योग से ज्ञान कहा, यथा—'जोग ते ज्ञाना'। और, धर्म से कर्म। अर्थात् त्रयकाण्ड समूह जब किए जायँ तब भक्ति मिले। तात्पर्य्य कि त्रयकाण्डसे रामभक्ति परे है। (ख) जपयोग धर्म समूहसे लोग भक्ति पातेहैं उसी भक्तिको तुलसी रघुबीर चरित गाकर पातेहैं। यह कहकर आगे उसी चरितका माहात्म्य कहते हैं—'कठिन काल मल०'। अपने लिए जप आदि द्वारा भक्तिकी प्राप्ति नहीं कहते कारण कि कठिन काल०'।

र० ब०—'केहि बिधि००'। मुनिजीके इस चतुराईके कथनपर विचार करनेसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजीका कहा हुआ यह श्लोक याद आता है।

"मा गा इत्यपमङ्गलं व्रज सखे स्नेहेनहीनंवचः।

† यथा—'तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ज्ञान निपुनाई॥ नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना॥ भूत दया द्विज गुर सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई॥ जहँ लगि साधन बेद बषानी। सबकर फल हरिभगति भवानी॥'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तिष्ठेति प्रभुता यथाभिलषितं कुर्वत्युदासीनता ॥ अर्थात् हे प्रभो ! यदि कहूँ कि मतजाओ तो अपमङ्गल होताहै और जाओ इस वचन के कहनेसे स्नेहशून्य वचन पायाजाताहै और ठहरो इस वचनके कहनेसे प्रभुता पाई जातीहै तथा 'जैसी रुचि हो वैसाही कीजिए' ऐसा कहनेसे उदासीनता पाईजातीहै। अतः आप अन्तर्यामी हैं हम कुछ कह नहीं सकते। [नोट—यह भाव मा० म० का है उसीसे लियाहुआ जानपड़ताहै। 'कहि जैबो अनुराग हत रखिबो मेटे बाग। ताते हौं कछु ना कहौं कीजे जो प्रिय लाग।]

प्र०—भाव कि ईश्वर जानकर यह कहते नहीं बनता कि हमसे जुदा हो, राजकुमार जानकरभी नहीं कहते बनता क्योंकि आप कोमल हैं और वन कठोर और भयानक है। वा, (ख)—स्वामी हो, सेवक स्वामीको जानेको कैसे कहसके ? क्योंकि नाथके विना सेवक अनाथ होकर कैसे रहनाचाहेगा। पुनः, आपके जानेपर फिर कौन ठिकाना ? क्योंकि आपही प्राणोंके प्राणहैं।

(ग)—नेत्र मुखकमलमें लगादिए कि न जानेफिर ऐसा महत्भाग्य हो या न हो कि फिर इसका दर्शन हो।

(घ) 'जप तप का किये'=जप किया, कि तप किया ? अर्थात् मैंने तो कुछ भी न कियाथा, यह निर्हेतु कृपा प्रभुने मुझपर की। पुनः, 'का'=कौन; अर्थात् कौनसे ऐसे जपतप किए कि जिनका फल यह दर्शन हुआ।

(ङ) 'रघुबीर चरित पुनीत...' इति।—अब यहाँ प्रसङ्गकी समाप्ति करतेहैं। प्रायः मानसमें, अन्य रामायणोंकी तरह सर्ग या, अध्याय आदि, नहीं लिखेहैं प्रसङ्ग द्वारा अध्याय-समाप्तिमें वे अपना या और निवन्धकारोंका नाम रखतेहैं।

पु० र० कु०—वाल्मीकिजीके मतसे अयोध्याकाण्डकी इति यहाँ 'कठिन काल००' पर लगाई और अपनेमतसे भरतचरितपर समाप्ति की। वहाँ भरतचरित की समाप्ति सोरठामें की और यहाँभी सोरठामें ही इति लगाई। इसीसे ये छः दोहे इस काण्डके अन्य ४० दोहोंसे गिनतीमें पृथक् किएगए। जयन्तप्रसंगके बाद 'सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई। सीतासहित चले दोउ भाई' यह चौपाई है और अत्रि-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रसंगके बाद 'मुनिपदकमल नाइ करि सीसा। चले बनहि सुरनर मुनि ईसा' यह चौपाई है। नए प्रसंग का यहाँसे प्रारम्भ है।

खर्रा—अयोध्याकाण्डमें किसीका संवाद नहीं कहा इससे अरण्य के छः दोहों के भीतर सब संवाद कहदिए। अयोध्याकाण्डकी समाप्ति सोरठापर कीथी—भरत चरित करि नेम००'—अतः अरण्यकाण्डको सोरठेसे ही प्रारंभकरके—'उमा राम गुन गूढ़...' दूसरी इमि सोरठेही पर लगाई—'कठिन काल मल कोस००'।

कलिमल समन दमन मन राम-सुजस सुष मूल।
सादर सुनहि जे तिन्ह पर राम रहहिं अनुकूल॥§६ (क)
कठिन काल मलकोस धर्म्म न ज्ञान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर।६।(ख)

अर्थ—रामचन्द्रजीका सुन्दर यश कलिके पापोंका नाशक, मनका, दमनकरनेवाला और सुखकी जड़ है। जो इसे सादर सुनतेहैं उनपर रामजी प्रसन्न रहतेहैं। यह कठिन कलिकाल पापोंका ख़ज़ाना है, इसमें न तो धर्म है न ज्ञान न योग और न जप ही; इसमें जो सब आशाभरोसा छोड़कर रामहीको भजतेहैं वेही लोग चतुर हैं।

पु० र० कु०—(१)—"कलिमल समन...अनुकूल" इति। भाव वह कि कलिमल ग्रसित आदि लोगोंके पापोंको दूरकरके सुख देताहै और जो कलिमलरहित हैं, जिनका मन शान्त है और जो ब्रह्मानन्दकी भी चाह नहीं करते वरन् निष्काम होकर रामसुयश सुनतेहैं वे रामजी-की प्रसन्नता प्राप्तकरतेहैं। (२)—'कठिनकालमल कोसु'—मायोंका खजाना है अर्थात् इसयुगमें मनका झुकाव पापकी ही ओर रहेगा, मन पापमेंही आसक्त रहेगा।* (३)—धर्म न ज्ञान न जोग जप'

* यथा—'कलि केवल मलमूल मलीना। पापपयोनिधि जन मन मीना'—[ब०§२६ (४)], "सुनु ब्यालारि कराल कलि मल अवगुन आगार। गुनउ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार'—(भृशुण्डि-वाक्य§१०२);

"कलिजुग जोग न जग्य न ज्ञाना। एक अधार रामगुनगाना॥
सब भरोस तजि जो भज रामहिं। प्रेमसमेत गाव गुनग्रामहिं॥
सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नामप्रताप प्रगट कलि माहीं॥—(उ०§१०३)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात् ये कलिमल धोनेको समर्थ नहीं हैं, ये साधन निबह नहीं सकते। विशेष 'नहिं कलि करम न भगति बिबेकू' ब० § २६ (७) में देखिए विनय-पदमें इसके भाव स्पष्ट हैं—पद १५६ 'विश्वास एक राम नामको' देखिए। पुनः, कलि 'मलकोश' है वहाँ और कुछ है ही नहीं; अतः कहा कि धर्म' ज्ञान, योग, जप कुछभी नहीं है (४)—ते चतुर नर'—जो अपना हित विचारकर उसीपर आरूढ़ हो वह चतुर है। रामभजनसेही कलिमें निस्तार है यह समझकर उसमें लगना यही चतुरता है।

प्रभु-अत्रि-भेंट-प्रकरण समाप्त हुआ।

विराध-वध-प्रकरण

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा।
चले बनहि सुर नर मुनि ईसा॥ § ६ (१)
आगे राम अनुज पुनि पाछे।
मुनिबर बेष बने अति † काछे॥ ,, (२)
उभय बीच श्री ‡ सोहइ कैसी।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥ ,, (३)

अर्थ—मुनिके चरणकमलोंमें माथा नवाकर सुरनरमुनिके स्वामी

"काल धरम नहिं ब्यापहिं तेही। रघुपति चरनप्रीति रति जेही॥
हरिमाया कृत दोष गुन बिनु हरिभजन न जाहिं।
भजिय राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं॥" (३० § १०४)

† यही पाठ भा० द, काशी, पं० रा० गु० द्वि, आदि सभी प्राचीन प्रतिलिपियोंमें है। ना० प्र० ने 'बने अति काछे' पाठ दियाहै। 'काछना'=बनाना, सँवारना, पहनना। यथा—'गौर किशोर बेष बर काछे। कर सर बाम राम के पाछे', एई राम लषन जे मुनि संग आये हैं। चौतनी चोलना काछे सखि सोहैं आगे पाछे' इत्यादि। यहाँ 'काछे' और 'बने' से पुनरुक्ति समझकर संभव है कि पाठ 'आछे' कर दियागयाहै। यहाँ, बने'=बिराजमान् वा शोभित हैं। और 'काछे'=बनाए हुए। यथा—भुजदंड सर कोदंड फेरत रुधिरकन तन अति बने'।

‡ 'श्री' ही पाठ भा० द० एवं काशीकी प्रतिमें है, यही ठीक जानपड़ताहै। 'सिय—(पं० रा० गु० द्वि०, ना० प्र०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बनको चले। आगे रामचन्द्रजी हैं, पुनः पीछे छोटेभाई लक्ष्मणजी हैं, मुनिवरोंका सुन्दर वेष अत्यन्त बनाएहुए शोभित होरहेहैं। दोनोंके बीचमें श्रीजानकीजी कैसी शोभित होरहीहैं जैसे ब्रह्म और जीवके बीचमें माया (शोभित हो)।

मा० म०—'मुनिपद कमल नाइ००'। श्रीरामचन्द्रजी विना मुनिके स्पष्ट कुछ कहेहुए चलेगए। इससे दोनोंका नियम रहगया। अर्थात् बड़ेकी आज्ञा लेकर कार्य्य करना उचित है सो श्रीरामचन्द्रजीने आज्ञा माँगकर पूर्ण किया और मुनि भक्त हैं अतः उन्होंने स्वामीको जानेके लिए न कहा। इस प्रकार मुनिके प्रेमकी रक्षाभी होगई और इधर भूभार उतारने सुरनरमुनिकी रक्षाकरनेभी प्रभु चले।

पु० र० कु०—१ 'चले बनहि सुरनरमुनि ईसा' इति।—(क) 'बनहिं' अर्थात् चित्रकूटके वनसे अब दूसरे वनको चले' यथा—'आयसु होइ जाउँ बन आना'। यह नहीं कि अभी बसतीमें थे अब वनको चले। (ख) क्यों वनको चले? यह 'सुर नर-मुनि ईसा पदसे जनाया। तीनोंके स्वामीहैं, उनकी रक्षाके लिए समर्थ हैं, अतः रक्षा करनेके लिए चले। (ग)—यद्यपि प्रभु अपना ऐश्वर्य छिपाएहैं पर ये सब उन्हें ईश्वर ही समझतेहैं। अत्रिजी, सुतीक्ष्णजी, शरभङ्गजी, अगस्त्यजी, वाल्मीकिजी आदि महामुनियोंने, ब्रह्मादि देवताओंने, शबरी आदिने ईश्वरही प्रतिपादन करके स्तुति कीहै। अतः तीनोंको ईश कहा। ☞ अयोध्याकाण्डतक माधुर्य्यप्रधान ऐश्वर्य्य है, आगे ऐश्वर्य्यप्रधान माधुर्य्य है। इसीसे भरद्वाज और वाल्मीकिके मिलन प्रसंगमें आशीर्वाद देना लिखाहै, यथा—'दीन्ह असीस मुनीस उर अति अनंद अस जानि। लोचन गोचर सुकृत फल मनहुँ किये विधि आनि' इति भरद्वाजः। पुनः यथा—'मुनि कहँ राम दंडवत कीन्हा। आसिरबाद बिप्रबरदीन्हा' इति वाल्मीकिः। उनके ऐश्वर्य्य कथनपर रामजी सकुचतेहैं। यथा—सुनि मुनि बचन राम सकुचाने। भाव भगति आनन्द अघाने' इति भरद्वाजः। पुनः यथा—'सुनि मुनि बचन प्रेमरस साने। सकुचि राम मन महँ मुसुकाने' इति वाल्मीकि। पर ऐसा व्यवहार अरण्यकाण्डमें नहीं लिखा पायाजाता।

२—'अनुज पुनि पाछे' इति। दोनों भाइयोंका वेष एक-सा है, दोनों मुनिवेषमें और धनुषवाण तरकश धारण किएहुएहैं, अतः इन दोनों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को एकसाथ कहा। जानकीजीको दूसरी चौपाईमें कहा। पर 'पुनि' शब्द बड़ी चतुरताका है इससे जनाया कि रामजीके पीछे और भी कोई है तब उसके पीछे लक्ष्मणजी हैं। ३—'मुनिबर-बेष बने अति काछे' इति। 'बने अति काछे' से जनाया कि धनुषबाणादि भी धारण किएहुए हैं। इतनाही कहकर वह वेष कहदिया जो अ० § ११४ (६)—११५ में कहआएहैं। यथा - तरुन तमाल बरन तनु सोहा। देखत कोटि मदन मनु मोहा॥ दामिनिबरन लषन सुठि नीके। नखसिख सुभग भावते जीके॥ मुनिपट कटिन्हि कसे तूनीरा। सोहहिं करकमलनि धनुतीरा। जटामुकुट सीसन्हि सुभग उर भुज नयन बिसाल—(अ० § ११५)

नोट—'उभय बीच श्री सोहइ कैसी...'। बिल्कुल यही चौपाई अयोध्याकाण्डमें है, भेद केवल इतनाही है कि वहाँ सिय सोहति' कहा और यहाँ 'श्री सोहति'।—आगे रामु लषनु बने पाछे। तापस बेष बिराजत काछे॥ उभय बीच सिय सोहति कैसी। ब्रह्मजीव बिच माया जैसी। (अ० § ११२) अतः भाव वहीहैं जो वहाँ § १२२ (१-२) में लिखेगएहैं। पाठक वहाँ देखलें। यहाँ केवल इतना विचारकरनाहै कि 'सिय' की जगह 'श्री' क्यों रखाहै।—यह बराबर दिखायागयाहै कि बाल और अयोध्यामें विशेषकर माधुर्य्यही वर्णितहै, वही प्रधान है। पर अब पाँचकांडोंमें और खासकर अरण्यमें ऐश्वर्य्यही प्रधान है, माधुर्य्य यदाकदा और वहभी प्रभुकीही ओरसे है। यही कारण है कि इस कांडमें 'सीता' 'लछिमन' ऐश्वर्य्यद्योतक नामोंका प्रयोग होरहाहै और होगा। 'सिय' और 'लषन' ये माधुर्य्यसंबन्धी दुलार प्यारके नामोंकी इति अयोध्याकांडकी समाप्तिपरही होगई।—'सीयरामपद प्रेम अवसि०'। यही कारण है कि मंगलाचरणमेंही श्रीरामभूपप्रियं' पद दियागया। अयोध्याकांडमें 'उभय बीच सिय०' इस चौपाईके आगे पीछे प्रायः 'सिय' पदका प्रयोग हुआहै। यहाँ उसका नामभी नहीं। यही कारण है कि पूज्य कविने यहाँ वही चौपाई दी पर 'सिय' के बदले 'श्री' पद दिया।

पु० र० कु०—१ यहाँ अध्यात्मरामायणके निम्न श्लोकोंका भाव दिखानेके लिएही 'आगे राम...उभय बीच श्री...'यह चौपाई कहीगई है।—'तावेत्यविपिनं घोरं झिल्लीझंकारनादितम्। नानामृगगणाकीर्णं सिंहव्याघ्रादि भीषणम्॥ १०॥ राक्षसैर्घोररूपैश्चसेवितं रामहर्षणं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रविश्य विपिनं घोरं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ११ ॥ इतः परं प्रयत्नेन गंतव्यं सहितेन मे । धनुर्गुणेन संसज्य शरानपि करेदधत् ॥ १२ ॥ अग्रे यास्याम्यहं पश्चात्त्वमन्वेहि धनुर्धरः ॥ आवयोर्मध्यगा सीता मायैवात्मपरात्मनो ॥ १३ ॥ (आ० स० १) [अर्थात् इस वनमें ऐसा २ भय है अतः मैं आगे रहूँगा पीछे तुम धनुषबाण चढ़ाए चलो, बीचमें सीता चलें जैसे आत्मा परमात्माके बीचमें माया। वैजनाथजी इसका भाव यह कहतेहैं कि आत्मा और परमात्मा के बीच में अह्लादिनी माया अर्थात् भक्ति रहतीहै। जैसे भक्त लोग भक्तिपर दृष्टि रखतेहैं वैसेही तुम जानकीजीपर दृष्टि रखना। २—(खर्रा)—यहाँ सियशोभाकी उपमा 'ब्रह्मजीव बिच माया'से दी। ब्रह्मजीवके बीचमें मायाकीही शोभा अधिक देखपड़तीहै अर्थात् जगत्में सब मायाकाही चमत्कार है। अथवा, यहाँ उपमाका एक अंग व्यवधान ही लियागया। व्यवधानरूपिणी हैं यह जनाया।

सरिता बन गिरि अवघट घाटा।
पति पहिचानि देहिं बर बाटा ॥§६ (४)
जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया।
करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया ॥ ,, (५)

शब्दार्थ—'अवघट'=दुर्गम' जहाँ घाटकी सन्धि नहीं है, अटपट। 'देव'—दिव्य, सत्वगुणयुक्त महात्मा, सत्यसंध, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और बुद्धिमान् इत्यादि।—अ० §३०६ (८) देखिए।

अर्थ—नदी, वन, पहाड़ और अवघट घाट (सभी अपने) स्वामीको पहचानकर सुन्दर रास्ता देतेहैं। जहाँ जहाँ देव रघुनाथजी जातेहैं वहाँ वहाँ बादल आकाशमें छाया करतेहैं। अर्थात् जहाँ घाट नहीं है वहीं नदियाँ स्नानयोग्य घाट करदेतीहैं, जहाँ जल अथाह है वहाँ गोपदजल होजाताहै कि पार जासकें, वन पर्वतमें जहाँ मार्ग दुर्गम है वहाँ सुन्दर कोमल मार्ग बनजातेहैं।

पु० र० कु०—१—'पति पहिचानि' क्योंकि "सबके स्वामी हैं, भगवान् विराटरूप हैं"। यथा—"बिस्वरूप रघुबंसमनि...लोक कल्पना बेद कर अंग २ प्रति जासु"—(लं०§१४)। २—नदी वन आदि जड़ोंकी सेवा कही इसीसे 'देव रघुराया' कहा। ३—सरि-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तासे जल, गिरि और वनसे स्थल और मेघसे नभ अर्थात् जगत्में जो तीन प्रकारके जीव हैं—'जलचर थलचर नभचर नाना'—उन तीनोंसे सेवित और सुखकी प्राप्ति कही। ४—रा० कु०—यहां तक उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीनों प्रकारके जीवोंसे सेवित दिखाया। चेतन में उत्तम मुनि, मध्यम मेघ और निकृष्ट सरितादि जो जड़ हैं। ५—खर्रा—अरण्यकांडसे प्रभुका ऐश्वर्य्य वर्णन होचला है। और 'सरिता बन गिरि अवघट घाटा।००॥ जहँ जहँ जाहिं०' ये अरण्यकाण्डकी प्रथम चौपाइयाँ हैं; अतएव यहाँ प्रारंभसेही ऐश्वर्य्य कथन करचलेहैं।

☞ नोट—यहाँ दण्डकारण्यको प्रस्थान करतेमें 'देव' पद दिया। शरभंगजी इसी पदका प्रयोग करेंगे, यथा—'सो कछु देव न मोर निहोरा'। अगस्त्यजीके आश्रमपर जानेके समय 'सुरभूप' कहाहै, यथा—'मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा'। §११ (५)

मिला असुर बिराध मग जाता।
आवत हीं रघुबीर निपाता॥§६ (६)
तुरतहि रुचिर रूप तेहिं पावा।
देषि दुषी निज धाम पठावा॥ ,, (७)

अर्थ—विराध दैत्य रास्तेमें जातेहुए मिला, पास आतेही रघुकुल-वीर रामजीने उसको मारडाला। तुरन्तही उसने सुन्दर रूप पाया। उसको दुःखी देखकर (अर्थात् यह देख कि उसको किसी साधनका बल न था) अपने लोकको भेज दिया।*

---

* १—वाल्मीकीयमें लिखाहै कि विराधने अपनी कथा रामचंद्रजीसे स्वयं कहीहै। (क)—मैं जब राक्षसका पुत्र हूं। माताका नाम शतह्रदा है और मेरा विराध नाम प्रसिद्ध है। ब्रह्माको प्रसन्न करके मैंने वर प्राप्तकरलियाहै कि मैं किसी अस्त्रशस्त्रसे न मरसकूं न मेराकोई अंग कट या छिद सके।—(वा० स० ३)। मैं इस बीहड़ वनमें भ्रमण करता मुनियोंका मांस खाया करताहूं—(सर्ग २)। (ख)—(जब अपना वध निश्चय जाना तब वह विनम्र होकर कहनेलगा) हे पुरुषर्षभ! काकुत्स्थ! आपने मेरा वध किया। मोहवश मैंने आपको न जानाथा। अब मैं जानगया कि आप राम हैं और ये लक्ष्मणसीता हैं। मैं तुंबरु नामका गंधर्व हूं। रंभा में आसक्त होने और समयपर कुबेरजीकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु०—१ (क) 'मग जाता' पदसे जनाया कि यह रास्तेमें सबको लगताथा, कोई इस अ.रसे दण्डकारण्यको या यों कहिए कि दक्षिणको न जासकता था। यथा—'हठि सबहीके पंथहि लागा'; ठीक वही भाव यहाँ है। (ख) वीर हैं अतः आतेही मारडाला। एवं आतेही मारा इसीसे 'रघुबीर' कहा। (ग)—'आवतही' शब्दमें गोस्वामीजीकी भक्तिकी झलक देखपड़तीहै। जिन साक्षात् सीताका स्पर्श रावण नहीं करसका, जिनकी छायामात्र (मायासीता) रावणके हाथ लगी उनका स्पर्श, उनका हरण विराध द्वारा कैसे कहसकतेहैं? 'निपाता' पद दिया क्योंकि किसी अस्त्रशस्त्रसे वह न मर सकताथा। ज़मीनमें गिराकर जीता गाड़दिया।

[नोट—१ संभव है कि उस कल्पमें जिसमें विष्णुभगवान्ने रामावतार लिया उसमें वैसाही हो जैसा वाल्मीकिजीने लिखा और जिस कल्पका अवतार यहाँ शिवजी कहरहेहैं उसमें ऐसाही हो।—'कलपभेद हरिचरित सुहाये'। २—जो लोग इसे वाल्मीकिकाही अवतरण समझें वे भलेही इस प्रकार समाधान करसकतेहैं कि सीतारामभक्त होनेके कारण उन्होंने यह भाग लेलिया जो उन्होंने प्रथम कहाहै "ततः सज्यं धनुः कृत्वा रामः सुनिशिताञ्शरान्। सुशीघ्रमभिसंधाय राक्षसं निजघानह" (स० ३ श्ल० १०) अर्थात् यह कहतेहुए कि मैं तुम्हें युद्धमें जीता न छोड़ूंगा धनुषपर बाणका अनुसंधानकर उस राक्षसको मार डाला। और जो उठालेजाना उसके पीछे कहाहै वह उन्होंने छोड़ दिया।]

२—'तुरतहि रुचिर रूप तेहि पावा।००' इति। यह रुचिर रूप उसका पूर्वजन्मका गंधर्वरूप है। 'निज धाम' के दो अर्थहैं, उसका निजधाम गन्धर्वलोक जहाँसे वह च्युत हुआ था वहाँ भेजदिया जैसा

सेवामें न पहुँचनेसे उन्होंने कृपा करके शापानुग्रह यों किया कि जब रामचंद्रजी रणमें तेरा वध करेंगे तब तू फिर इसी पूर्व स्वरूपको प्राप्त होकर स्वर्गमें आवेगा। आपकी कृपासे शापसे मुक्त हो पूर्व रूप पाया, अब अपने लोकको जाताहूँ। गढ़ेमें मेरे शरीरको तोपकर आप शरभंगजीके आश्रमको पधारें।—(स० ४)।

२—अनुसूया-आश्रमसे चलनेपर विराधकुंड मिलताहै जो विराधवधस्थलका स्मारक है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाल्मीकि आदिका मत है, अथवा, साकेतलोक, बैकुण्ठ लोक आदि अपने धामको भेजा। पर यहाँ प्रसंगसे गंधर्वलोकही गृहीत है।**

विराधवध-प्रकरण समाप्त हुआ।

"शरभंगदेहत्याग-प्रकरण"

पुनि आए जहँ मुनि सरभंगा।
सुंदर अनुज जानकी संगा॥ § ६/१ (८)

देषि राम-मुष-पंकज मुनिबर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति धन्य जन्म सरभंग॥ § ७/१

शब्दार्थ—'शरभंग'—शर=चिता। लगाकर इन्होंने अपना शरीर भङ्ग किया जो नाम था वही चरितार्थभी हुआ।

अर्थ—फिर सुन्दर भाई और जानकीजीके साथ वहाँ आए जहाँ मुनि शरभङ्गजी थे। रामचन्द्रजीका मुखकमल देखकर मुनिश्रेष्ठके नेत्र रूपी भारे उसका मकरंदरस सादर पानकर कररहेहैं। शरभङ्गजीका जन्म अति धन्य है।

पु० र० कु०—१—'पुनि आए' पदसे विरोध-प्रसंगकी समाप्ति दिखाई। (ख) वाल्मीकिजी लिखतेहैं कि विराधवध करके राम लक्ष्मणजी सूर्य और चन्द्रके समान शोभित हुए † वही भाव गोस्वामीजी 'सुन्दर' विशेषणसे सूचित कररहेहैं। २—(क) जो सुकृतीहैं वे ही मुख-कमल देखतेहैं, यथा-'जिन्ह जानकी राम छबि देखी। को सुकृती

** मिलानके लिए ये उदाहरण दिएजातेहैं—१ "राम बालि निजधाम पठावा" २—"रघुपति चरनकमल सिरु नाई। गयउ गगन आपनि गति पाई॥" (कबं) ३—"बंदि रामपद बारहि बारा। पुनि निज आश्रमु कहुँ पगु धारा"—(शुक) ३—'पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं'—(लं० §११६)।

† 'ततस्तु तौ काञ्चनचित्रकार्मुकौ निहत्यरक्षः परिगृह्य मैथिलीम्।
विजह्रतुस्तौ मुदितौ महावने दिवि स्थितौ चन्द्र दिवाकराविव॥'—स०४-३४

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हम सरिस बिसेषी' (ब० § ३०९), 'ते पुनि पुन्यपुंज हम लेखे। जे देखे देखिहहिं जिन्ह देखे', को जानइ केहि सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे बिधि आनी'—(ब० § ३३४), 'जनक सुकृतमूरति०'—(ब० ३०९) तथा यहाँ रामदर्शनसे 'अति धन्य कहा। मारीच भी इसी दर्शनके विचारसे अपनेको धन्य मानताहै, यथा—'फिर फिर प्रभुहि बिलोकिहौं धन्य न मो सम आन'—(§ २६)। पुनः, (ख)—'अति धन्य'से जनाया कि अन्य ऋषियोंका जन्म धन्य है इनका अति धन्य'। अथवा, इससे कि भ्रमर रहरहकर मकरंद चूसताहै और ये विक्षेप-रहित पान कररहेहैं।

नोट—१—भौंरा रस पीता है। यहाँ 'पान करत' से मकरन्दका भी अध्याहार रूपकमें करलियागया। यथा—'अरबिंद सो आनन रूपमरंद अनंदित लोचन भृङ्ग पिये'-(क०) रूपही मकरन्द है। यहाँ परंपरित रूपक है।

२—वाल्मीकिजी, अत्रिजी एवम् अगस्त्यजी आदि ऋषियोंके मिलन-प्रसङ्गों में अगवानी आदि अनेक व्यवहार कथन किएगए; पर यहाँ शरभङ्गजीके आश्रमपर ये कोई व्यवहार न हुए। रघुनाथजी स्वयं ही उन तक पहुँचगए। कारण यह कि वाल्मीकिजी आदिको तो उनके शिष्यों या कोलभीलोंने खबरदी और शरभङ्गजीको आगमनकी खबर देनेवाला कोई न था। क्योंकि बीचमें विरोधके डरसे कोई भी इधरका मनुष्य उधर न जासकता था।

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला।
संकर मानस राजमराला॥ § ७/१ (१)
जात रहेउँ बिरंचि कें धामा।
सुनेउँ श्रवन बन ऐहहिं रामा॥ ,, (२)
चितवत पंथ रहेउँ दिन राती।
अब प्रभु देषि जुडानी छाती॥ ,, (३)

अर्थ—मुनिने कहा—हे रघुवीर! हे कृपालु! हे शङ्करजीके हृदयरूपी मानसरोवरके राजहंस! सुनिए। मैं ब्रह्मलोकको जाताथा (इतनेमें) सुना कि रामचन्द्रजी वनमें आवेंगे। दिनरात आपकी राह देखतारहा। हे प्रभो! अब आपको देखकर छाती ठंढी हुई।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु०—१ (क) 'रघुवीर' अर्थात् आप दयावीरहैं, सबपर दया करके दुष्टदलनके लिए चले, यथा—'सुरकाज धरि नरराजतनु चले दलन खलनिसिचरअनी'—(अ० § १२६); इसीसे 'कृपाला' भी कहा। पुनः, दानवीर हो सबको दर्शनानन्द देनेचले, यथा—'नयनानंद दानके दाता'—(सुं० § ४४)। पुनः, विद्यावीर और पराक्रमवीर हो इसीसे जो विराध किसी अस्त्रशस्त्रसे न मरसकता था उसे विलक्षण रीतिसे मारा। (ख) 'कृपाला'—अवतार, दर्शन, सुरमुनिनररंजन आदि इसी गुणके कारण हैं। भाव यह कि हमपरभी कृपा की नहीं तो इस मार्गसे आतेही नहीं। २—संकर मानस राजमराला' अर्थात् शिवजी जो जगत्के कल्याणकर्त्ता हैं वे भी आपका ध्यान करतेहैं। मानस श्लेषपद है बिना श्लेष रूपककी पूर्त्ति नहीं होगी। 'सेवक मन मानस मरालसे' 'जय महेस मन मानस हंसा,' 'जो भुसुंडि मन मानस हंसा' इत्यादि स्थलोंसे इसका अनुवर्तन है। यहाँ मन शब्द न रहनेका एक भाव आगे चौपाई ५ में दियाहै कि 'जनमन चोरा' हो। राजहंस मानसरोवरहीमें रहतेहैं। इससे रामजीकी प्राप्ति दुर्लभ दिखाकर यह जनाया कि हमपर बड़ी कृपा की कि ऐसे दुर्लभ होकरभी हमको सुलभ होगए, स्वयं आकर दर्शन दिए। जो शंकरजीके मनमें निवास करतेहैं, जिनका वे ध्यान करतेहैं, उनको मैंने नेत्रोंसे प्रत्यक्ष देखा।

३—"जात रहेउँ बिरंचिके धामा···'। इससे जनाया कि प्रभुका दर्शन ब्रह्मलोककी प्राप्तिसे अधिक है। ब्रह्मलोककी प्राप्ति हुई, उससे छाती शीतल न हुई। इससे उपदेश देतेहैं कि जीवका संताप श्रीरामदर्शन वा रामप्राप्तिसेही मिटताहै अन्यथा नहीं, यथा—'देखे बिनु रघुनाथपद पद जिय की जरनि न जाइ'।—विशेष § २ (७) में देखिए।

नोट—इनकी ब्रह्मलोकके जानेकी कथा इत्यादि वाल्मीकीयमें है *।

* "रामचंद्रजीने शरभंगजीके आश्रममें यह अद्भुत चरित देखा कि अपने हरे घोड़े जुतेहुए विचित्र सवार इन्द्र आकाशमें दीप्तमान है देवाङ्गनाओंसे सेवित है। गंधर्व आदि देवता और बहुतसे सिद्ध महर्षि उसकी स्तुति कररहेहैं और वह शरभंगजीसे बातें कररहाहै। रामजीको आतेहुए देखकर इन्द्र वहांसे यह सोचकर चलदिया कि वे हमें देखने न पावें, रावणवध होनेपर मैं उनका दर्शन करूँगा। तदनंतर रामचन्द्रजी शरभंगजीके आश्रमपर आए; स्वागत आदि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'चितवत पंथ रहेउँ दिनराती' से जनाया कि बहुत दिनोंसे निरंतर प्रभुकी राह देखरहेथे, यथा अध्यात्मे—'बहुकालमिहैवासं तपसे कृत-निश्चयः। तव संदर्शनाकांक्षी रामत्वं परमेश्वरः'। बहुतदिनसे निरंतर राह देखतेरहे इसीसे छाती जलरहीथी, दर्शन पाये तब संताप मिटा। मुमुक्षुको उपदेश है कि निरंतर इसी तरह लग्न लगाए। रामदर्शन सुखके आगे ब्रह्मलोककी प्राप्ति तुच्छ है।

नाथ सकल साधन मैं हीना।
कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥ § ७/१ (४)
सो कछु देव न मोहि निहोरा।
निज पन राषेहु जन मन चोरा॥ ,, (५)

अर्थ—हे नाथ! मैं समस्त साधनोंसे रहितहूँ। आपने मुझे अपना दीन सेवक जानकर कृपा की। हे देव! यह (कृपा) कुछ मुझ पर एहसान नहीं है। हे दासोंके मनको चुरानेवाले! आपने अपना पण रखाहै।

पु० र० कु०—१ "नाथ सकल साधन मैं हीना...'। (क)—ऐसाही अत्रिवाक्य है, यथा—'मन ज्ञान गुन गोतीत प्रभु मैं दीष जप तपका किए'। वही भाव यहाँ है। (ख) जिन साधनोंसे मुनिने सत्य-लोक, इन्द्रलोक आदि जीतलिएथे उनके रहतेहुएभी रामजीके दर्शन मिले और भक्तिभी। इस कृतज्ञताको जाननेके लिए बारंबार अपनेको मुनि दीन कहतेहैं। पुनः इतनी दीनताका कारण यह है कि प्रभु दीन-दयाल हैं, वे दोनोंपर विना साधनकेभी कृपा करतेहैं। (ग)—साधन होतेहुएभी साधनहीन कहनेका भाव यह है कि जिन साधनोंसे ब्रह्म-आदि लोकोंकी प्राप्ति होतीहै वह सब प्रभुके दर्शनके लिए कुछभी

होजानेपर मुनिसे इन्द्रके आगमनका कारण पूछा। उन्होंने यों बताया कि मैंने अपनी उग्र तपस्यासे ब्रह्मलोक जीतलियाहै। इन्द्र मुझे ब्रह्मलोक लेजानेके लिए आएथे पर जब मुझे मालूम हुआ कि नरश्रेष्ठ आप थोड़ीही दूरपर हैं तब मैंने यह निश्चय किया कि आप सरीखे प्रिय अतिथि, पुरुषसिंह, धर्मिष्ठ महात्माके दर्शन विना ब्रह्मलोकको न जाऊँगा।—"अहं ज्ञात्वा नरव्याघ्र वर्तमानमदूरतः। ब्रह्मलोकं न गच्छामि त्वामदृष्ट्वा प्रियातिथिम्॥ त्वयाहं पुरुषव्याघ्र धार्मिकेण महात्मना। समागम्य गमिष्यामि त्रिदिवं चावरं परम्॥"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं हैं, उन सब साधनोंसे दर्शनकी प्राप्ति कदापि नहीं होसकतीहै अतएव वे न होनेकेही समान हैं। तात्पर्य्य यह कि प्रभुकी प्राप्ति कृपा-साध्य है, क्रियासाध्य नहीं है। (घ)—खर्रा—महात्मालोग कहते बहुत हैं पर छिपातेहैं इससे जनाते हैं कि कर्मका अभिमान उनको नहीं है। सम्पूर्ण साधनोंसे मैं रहित हूँ अर्थात् जिस साधनसे आपकी प्राप्तिहो वह कोई साधन मुझमें नहीं है। अतः आगे कहा कि 'कीन्ही कृपा०' (ङ) 'जानि जन दीना' अर्थात् अपना जन और दीन जानकर आपने कृपा की कि दर्शन दिया। यथा विनये—'जब लगि मैं न दीन दयालु तुम मैं न दास तुम स्वामी। तब लगि जो दुख सहेउँ कहेउँ नहिं जद्यपि अंतरजामी'।

२—'जिन पन राख्यो जनमन चोरा'। निज पन' अर्थात् दीन-दयालुता, दीनबन्धुता, भक्तवत्सलता इत्यादि यथा—'दीनदयालु बिरद संभारी', 'एहि दरबार दीनको आदर रीति सदा चलि आई'। अतएव कहा कि 'सो कछु देव न मोहि निहोरा'। भाव यह कि दर्शनदेनेमें मुझपर आपका कुछ एहसान नहीं है क्योंकि यह तो आपकी प्रतिज्ञाही है, यदि दर्शन न देते तो प्रतिज्ञा भंग होती अतः प्रतिज्ञा की रक्षाकेलिए आपने दर्शन दिया। दर्शनकेलिए एहसान नहीं मानते, हाँ, आगे कुछ कृपा चाहतेहैं उसके लिए एहसान लेंगे। पुनः, (ख)—दो बातें कहीं 'निज पन राखेहु' और 'जनमनचोरा'। भाव कि दोनों बातें आप करतेहैं। पण भी रखतेहो और मनभी चुरालेतेहो। आपकी चोरीका प्रत्यक्ष प्रमाण दिखातेहैं। कि शंकरजीके मनकी ऐसी चोरीकी कि वह खोजे न मिला इसीसे 'संकर मानस राजमराला' में मन शब्द न दिया (ग) प्रथम 'संकरमानस राजमराला' कहकर तब 'जन मन चोरा' विशेषण देनेका यही भाव है कि मनकी चोरी दिखाना थी। ☞यह प्रसंग और ग्रंथोंमें बड़ा निरस है। देखिए गोस्वामीजीने उसे कैसा सरस करके दिखायाहै।

प्र०—१ 'जन दीन'का भावकि आर्त्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी इन चारों अधिकारियोंमेंसे आप दीनपर शीघ्र द्रवीभूत होतेहैं, यह दरबार दीन००'। आगे सुतीक्ष्णजीका वाक्य है—'सो प्रिय जाके गति न आन की'। २—'जनमन चोरा' का भाव कि मनही सब उपाधियोंका मूल है। आप कृपा करके उसीको हरलेतेहैं, तब भक्ति आदि सधते हैं।)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३—देवका भाव कि आप सबके राजाहैं नियन्ता हैं और सब रीति करनेको समर्थ हैं।—§ ६ (५) देखिए।

करु०—शरभंगजीके इन वचनोंमें षट्शरणागति पूर्ण है।—[अनुकूलका संकल्प और प्रतिकूलका त्याग इससे प्रगट है कि ब्रह्मलोक जाना न स्वीकार किया, प्रभुकी प्रतीक्षा करतेरहे।—'जात रहेउँ बिरंचि०० इत्यादि रक्षामें विश्वास—'निज पन राखेउ०'। गोप्तृत्व वर्णन—'सो कछु देव न मोर निहोरा' इत्यादि। आत्मनिक्षेप—'जब लगि मिलौं तुम्हहिं०' 'जोग जग्य तप०० प्रभु कहँ देइ००'। कार्पण्य—'नाथ सकल साधन मैं हीना...'।]

तब लगि रहहु दीन हित लागी।
जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी॥ ७/१ (६)
जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा।
प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा॥ ,, (७)
येहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा।
बैठे हृदय छाडि सब संगा॥ ,, (८)

शब्दार्थ—'सर' (शर)=चिता, यथा—'सूहो पैन्हि पी सँग सुहागिन बधूहै लीजो सुखके-समूहै बैठि सेज पै कि शर पै'—(देव)। 'संग'=संसर्ग, विषयोंके प्रति अनुराग, वासना, विकार, आसक्ति।

अर्थ—तब तक आप मुझ दीनके हितकेलिये यहाँ ठहरिये जब तक मैं शरीर छोड़कर आपसे (न) मिलूं। योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत (आदि) जो मुनिने किएथे, वे सब प्रभुको समर्पण कर भक्तिका वरदान माँगलिया। इस प्रकार शरभंगजी चिता रचकर हृदयसे सब संग छोड़कर उसपर बैठे।

पु० र० कु०—१—"तब लगि रहहु दीन हित लागी।००"। इति †। अर्थात् जैसे दीनजन जानकर कृपाकी, दर्शन दिया, वैसेही दीनजनके हितार्थ मुहूर्त्तभर स्थित रहिए। यहाँ निहोरा लिया। दर्शन तो प्रतिज्ञापालनके कारण आपने दिया और यह मेरी प्रार्थनासे कीजिए।

२—'जोग जग्य जप तप०० भगति बर लीन्हा' इति। यथा—'जहँ

†"एषपंथा नरव्याघ्र मुहूर्त्तं पश्य तात माम्। यावज्जहामि गात्राणि जीर्णां त्वचमिवोरगः॥" (त्वा॰ स ५ श्ल ३७)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लाग साधन बेद बषानी। सबकर फल हरि भगति भवानी'—[उ० §१२५ (७)] 'भक्ति बर लीन्हा' से जनाया कि समस्त धर्मसाधन भक्तिके बराबर न तुले तब भक्तिका वरदान माँगा। यदि वे सब भक्ति के बराबर तुल सकते तो 'भगति बर लीन्हा' न कहकर यह कहते कि सब देकर भक्ति ली। वाल्मीकीयमें शरभंगजीके वचन हैं कि मैंने अपने पुण्य कर्मोंसे अक्षय ब्रह्मलोक और इंद्रलोकोंको जीतलिया है वे सब मैं आपको अर्पण करताहूँ, आप उन्हें ग्रहण करें *। उसी कथनको यहाँ गोस्वामीजीने 'दीनताके साथ' (कहाजाना) लिखतेहैं, यथा—'नाथ सकल साधन मै हीना'। वाल्मीकिजीने १४ स्थानोंमेंसे एक स्थान इसेभी श्रीसीतारामजीके निवासका बतायाहै, यथा—"सबकरि मागहिं एक फल रामचरन अनुराग"। उस स्थानमें श्रीशरभङ्गजीकी गिनती आतीहै। अध्यात्म रा० स० १ श्लो० ६ से मिलान कीजिए—"समर्प्य रामस्य महत्सुपुण्यं फलं विरक्तः शरभंग योगी। चितिं समारोहयदप्रमेयं रामं ससीतं सहसा प्रणम्य ॥"

३—"बैठे हृदय छाड़ि सब संगा।" (क)—सब ताल्लुकात (आसक्ति, फलकी वासना, आदि) छोड़कर चितापर बैठे क्योंकि विकारोंके रहते हुए भगवान् हृदयमें वास नहीं करते। यथा—'जेहि सर काक कंक बक सूकर क्यों मराल तहँ आवत'। हृदय-निकेतको विकारों से रहित किया। (ख)—प्रथम कहा कि योगयज्ञादि सब देकर भक्ति माँगी, भक्तिकी प्राप्तिसे हृदयका मल धुल जाताहै। भक्तिजलरूपहै उससे मानों हृदयके विकारोंको धोडाला, यथा—'प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभ्यन्तरमल कबहुँ कि जाई'—(उ० §४८) हृदयमें भक्तिजल पहुँचनेसे हृदय शीतल हुआ—'अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती'—तब सीता-अनुज

* १—"अक्षया नरशार्दूल जिता लोका मया शुभाः। ब्राह्मयाश्च नाकपृष्ठयाश्च प्रतिगृह्णीष्वमामकान्"

२—रा० प्र० श०—शरभङ्गजीने योगादि सकाम कर्म कियेथे। वे अपने सब कर्मोंके अभिमानीथे; नहीं तो 'प्रभु कहँ देइ' कवि कैसे कहते। निष्काम कर्ममें देना कैसा, वह तो पहलेही समर्पण होचुका है। सकामहीके कारण कहा कि ब्रह्मलोकको जाताथा पर अब 'प्रभु देखि जुड़ानी छाती'। विविध कर्मोंकी वासनासेही अन्तःकरण जल रहाथा। भगवान्के दर्शनसे छाती जुड़ानी अर्थात् अन्तःकरण स्थिर हुआ, शान्ति मिली।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समेत प्रभुको मनमें वास कराया। (ग)—खर्रा—संग—'भावाभाव पदार्थानां हर्षाहर्ष विकारदः। समस्त वासना त्यागः स संगमिति कथ्यते' अर्थात् पदार्थोंमें भाव या अभाव, हर्षशोक आदि विकार उत्पन्न करनेवाले एवम् समस्त वासनाओंका त्याग संगका त्याग है।

प्र०—'जब लगि मिलौं तुम्हहिं तन त्यागी' इति। रूपमें समा जाना, ब्रह्ममें मिलजाना यह अर्थ यहाँ 'मिलौं' का नहीं है। सायुज्य मुक्ति वा कैवल्यपदको उन्होंने नहीं स्वीकार किया, यह बात कवि स्वयं आगे कहतेहैं—'बैकुण्ठ सिधारा', 'ताते मुनि हरि लीन न भयऊ।००'। यहाँ 'मिलौं' का अर्थ है 'आपके तद्रूप परिकरोंमें परिकर होकर मिलूँ'।

सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
मम हिय बसहु निरंतर सगुन रूप श्रीराम॥८॥

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा।
रामकृपा बैकुंठ सिधारा॥ ,, (१)
ताते मुनि हरि लीन न भयऊ।
प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ॥ ,, (२)

योगाग्नि—'असकहि जोग अगिनि तन जारा' ब०६३ (८) में देखिए।

अर्थ—श्रीसीताजी और भ्राता लक्ष्मणजीसहित नीलमेघकेसे श्याम शरीरवाले सगुण रूप श्रीरामजी आप मेरे हृदयमें सदा वास कीजिए। ऐसा कहकर योगाग्निसे शरीरको भस्म करदिया और श्रीराम कृपासे बैकुण्ठको चलदिए। मुनि इससे भगवान्में लीन न हुए कि उन्होंने प्रथमही भेद-भक्तिका वर माँग लियाथा।

पु० र० कु०—१ (क) 'सगुन रूप श्रीराम' अर्थात् निर्गुणरूपसे तो आप सबके हृदयमें बसतेही हैं, यथा—'सबके उर अंतर बसहु जानहु भाव कुभाव'। हमारे हृदयमेंभी बसेहुएहो, पर अब श्रीसीता-लक्ष्मणसहित अपने इस सगुणरूपसे भी बास कीजिए। यथा अध्यात्मे—'अयोध्याऽधिपतिर्मेऽस्तु हृदये राघवस्सदा। यद्वामाङ्के स्थिता सीता मेघस्येवतडिल्लता' (स० २)। (ख)—यहां मुनिके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मन बचन और कर्म तीनों दिखाए—'मम हिय बसहु०' में मन, अस-कहि' से बचन और योगाग्नि प्रगट करना यह कर्म। (ग)—जलद आकाशमें रहताहै यहाँ हृदय आकाश है। घनके साथ बिजली, यहाँ रामघनश्यामके साथ सीतालक्ष्मण दामिनि। मेघमें बिजली सदा नहीं रहती, यहाँ निरंतर साथ माँगा।

२—'रामकृपा बैकुंठ सिधारा' इति। (क) मुनि योग यज्ञादि बड़ी तपस्या करके ब्रह्मलोकके अधिकारी हुए और उसकी प्राप्तिकी। बैकुण्ठ ब्रह्मलोकसे बढ़कर है, सो रामकृपासे मिला। जो पदार्थ श्रीराम-कृपासे मिलताहै वह साधनसे अप्राप्य है। मुनिका जितनाभी साधन था वह तो भक्तिके बराबरभी न हुआ। दर्शन हुआ वह भी रामकृपासे, यथा—'कीन्ही कृपा जानि जन दीना'; बैकुण्ठ मिला सोभी रामकृपासे, अतएव दोनों जगह 'कृपा' पद दिया। (ख) पुनः, भाव यह कि तपसे ब्रह्मलोक मिलताहै, यथा—'जात रहेउँ बिरंचिके धामा' और भक्तिसे बैकुण्ठ मिलताहै अतएव जब भक्ति वर माँगा तब बैकुण्ठको जाना कहा।

"ताते मुनि हरि लीन न भयऊ।" इति।

पु० र० कु०—पहले लीन होनेकी इच्छा प्रगट की, यथा—'जब लगि मिलौं तुम्हहिं तन त्यागी'। मिलौं' से लीन होनेकी इच्छा जान पड़ी। परन्तु पीछे मुनिने भेद भक्तिका बर माँगलिया, यथा—'प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा'। अतएव हरिमें लीन न हुए। भेदभक्तिमें सायुज्य मुक्ति नहीं होसकती। उसमें तो सदा भगवान्‌में स्वामी वा सेव्य भाव रहताहै। सेवक स्वामी भाव तभी होसकताहै जब प्रभुसे अलग रहे। 'ताते उमा मोक्ष नहिं पावा। दसरथ भेद भगति मन लावा' (लं०§१११)। पुनः यथा—'सगुन उपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहँ राम भक्ति निज देहीं'।

गौड़जी—पहले जब सरभंगजीने कहा कि "तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलौं तुम्हहिं तनु त्यागी", उस समय तल्लीन होनेका विचार था, परन्तु तनुत्यागके पहले उन्होंने माँगा कि तीनों मूर्त्तियाँ मेरे हृदयमें निरन्तर बसें। यह सेवक-सेव्य भाव बिना और अलग शरीर हुए विना संभव न था। यह ईश्वरजीवकी अभेदता न थी, परतम और जीव, उपास्य और उपासकवाली भेद-भक्ति थी। इसीसे सरभंग बैकुंठ गये। परन्तु यह भी भगवानसे एक प्रकारसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मिलना ही हुआ क्योंकि वैकुंठः पुरुषः प्राणः" वैकुंठ और भगवानमें अभेद है।

रा० प्र० श—जैसे अभेदोपासनामें जीवन और विदेह दो प्रकारकी मुक्तियाँ हैं वैसेही भेदोपासना सारूप्य, सायुज्य; सामीप्य और सालोक्य चारप्रकारकी मुक्तियां मानीगईहैं, मुनिको सालोक्यकी प्राप्ति हुई।

मा० म०—जैसे जलमें जल मिलकर अभेदत्वको प्राप्त होताहै वैसेही आत्मा परमात्मामें मिलकर एकत्वको प्राप्त होजाताहै। इसीको लीन होना कहतेहैं। पर मुनिने लीन न होना चाहा क्योंकि अभेदत्वमें सुख नहीं है जैसे जलको जलकी प्राप्तिसे और कंदको कंदकी प्राप्तिसे कुछ सुख नहीं, सुख तो पीनेवालेकोही होताहै। हरिमें लीन होजानेपर भक्तिका अपूर्व सुख प्राप्त नहीं होता। अतएव इस महान् सुखसे वंचित रहकर ब्रह्ममें लीन होना मुनिने उत्तम नहीं समझा।

रिषि निकाय मुनिवर गति देषी।
सुषी भये निज हृदय बिसेषी॥ ६ (३)
अस्तुति करहिं सकलमुनि बृंदा।
जयति प्रनतहित करुना कंदा॥ ,, (४)

शब्दार्थ—'कंद'=मेघ, समूह।

अर्थ—ऋषिसमूह मुनिश्रेष्ठ शरभङ्गजीकी यह गति देखकर अपने हृदयमें विशेष सुखी हुए। सभी मुनिवृंद प्रभुकी स्तुति कररहेहैं कि "शरणागत हितकारी करुणाकन्द प्रभुकी जय हो"।

पु० र० कु० १—"रिषि निकाय मुनिबर गति देखी।" इति। (क) शरभंगजी पहले ब्रह्मलोकको जातेथे यह जानकर मुनिसमूहको सुख हुआ था, पर रघुनाथजीके दर्शन पाकर भक्तिवर लेकर जब उनको वैकुण्ठ जातेदेखा तब प्रथमसे अब अधिक सुख प्राप्त हुआ; क्योंकि ब्रह्मलोकसे वैकुण्ठ विशेष है। पुनः, विशेष सुखी कहकर जनाया कि मुनि मत्सररहित होतेहैं, दूसरेके सुखको देखकर वे सुखी होतेहैं। पुनः, जनाया कि शरभङ्गजी सबको प्रिय थे अतएव सबको बड़ा आनन्द हुआ।

(ख)—'गति देखी' से जनाया कि हरिरूप धारणकर हुए वैकुण्ठ

ŚRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY.
Jangamwadi Math, VARANASI,
Acc. No. 5231
CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को जातेहुए देखा। जैसा गृद्धराज जटायुजीके प्रसंगमें कहा है वैसाही यहाँभी समझलेना चाहिए। यथा—'गीध देह तजि धरि हरिरूपा। भूषन बहु पटपीत अनूपा' इत्यादि।

२—'अस्तुति करहिं सकल मुनिवृंदा।०'। 'जयति०' इसप्रकारकी स्तुति करनेका भाव यह कि अभी बहुतसे असुरोंसे लड़नाहै, अतएव आशीर्वादात्मक वचन कहा कि आपको शत्रुओंपर जय प्राप्त हो जिससे प्रणतका हित होगा। प्रणतहितका भाव कि हम सब भी आपकी शरण हैं हमारी रक्षा कीजिए।

नोट—१ वाल्मीकिजीने अनेक जातिके ऋषि यहाँ गिनायेहैं यथा—"शरभंगे दिवं प्राप्ते मुनिसंघाः समागताः। अभ्यगच्छन्त काकुत्स्थं रामं ज्वलिततेजसम् ॥१॥ वैखानसा बालखिल्याः संप्रक्षाला मरीचिपाः। अश्मकुट्टाश्च बहवः पत्राहाराश्चतापसाः ॥ २॥ दन्तलुखलिनश्चैव तथैवोन्मज्जकाः परे। गात्रशय्या अशय्याश्च तथैवानवकाशिकाः ॥३॥ सर्वे ब्राह्मया श्रियायुक्त दृढ़योगसमाहिताः। शरभङ्गाश्रमे राममभिजग्मुश्च तापसाः ॥" स० ॥ ६ ॥ इसीके अनुसार वही भाव सूचित करनेके लिए यहाँ 'निकाय' और "सकल मुनिवृंदा" पद दिए। अर्थात् जितनी जातिके ऋषि दण्डकारण्यमें थे उन सबके समस्त वृंद एक एक जातिका एक एक या अधिक वृंद था।

२—'प्रनतहित और करुणाकंद' विशेषण पूर्वापर प्रसंगके बीचमें देकर जनाया कि आगे मुनियोंपर करुणा करके उनके दुःखको शीघ्र दूर करेंगे, यथा—'करुनामय रघुबीर गोसाईं। बेगि पाइयहि पीर पराई'। आगे अस्थिसमूह देखकर करुणा आई और निश्चरनाशकी प्रतिज्ञा अब करनेहीवालेहैं। (ख) व० स० ६ में जो कहा है कि 'एवं वयं नमृष्यामो विप्रकारं तपस्विनाम्। क्रियमाणं वनं घोरं रक्षोभिर्भीमकर्मभिः ॥ ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः। परिपालय नो रामवध्यमानान्निशाचरैः ॥' उसका भाव इन दो शब्दोंमें प्रकट करदिया है।

"जेहि बिधि देह तजी सरभंग"-प्रकरण समाप्त हुआ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"बरनि सुतीछन प्रीति पुनि"-प्रकरण

पुनि रघुनाथ चले बन आगे।
मुनिबर बृंद बिपुल संग लागे॥ § ६ (५)
अस्थिसमूह देखि रघुराया।
पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया॥ ,, (६)
जानतहूँ पूछिअ कस स्वामी।
सबदरसी तुम्ह अंतरजामी॥ ,, (७)
निसिचर निकर सकल मुनि षाए।
मुनि रघुबीर नयन जल छाए॥ ,, (८)

अर्थ—रघुनाथजी पुनः आगे वनको चले। मुनिवरोंके बहुतसे वृन्द (प्रभुके) साथ लगे अर्थात् साथ होलिए। हड्डियोंका ढेर देखकर रघुनाथजीको मुनियोंपर बड़ी दया आई और उन्होंने मुनियोंसे पूछा (कि यह ढेर कैसा यहाँ लगा हुआहै)। (मुनियोंने उत्तरदिया कि) हे स्वामी! आप सर्वदर्शी (सर्वज्ञ) और अन्तर्यामी (हृदयकी जाननेवाले) हैं, आप जानतेहुए कैसे पूछतेहैं? निश्चरसमूहने सब मुनियोंको खाडाला है (उन्हींकी हड्डियोंका यह ढेर लगगया है। वा, ये सब निश्चरोंके खाएहुए मुनिनिकर हैं।) यह सुनकर रघुवीर रामजीके नेत्रोंमें जल भर आया।

पु० र० कु०—१"पुनि रघुनाथ चले बन आगे...'। (क) इससे एक प्रसंगकी समाप्ति और दुसरेका प्रारंभ दिखाया। पूर्व प्रसंग 'पुनि आये जहँ मुनि सरभंगा' पर प्रारम्भ हुआ। वह 'जयति प्रनतहित००' पर समाप्त हुआ। अत्रिजीके यहाँ से चलना कहा 'चले बनहिं सुर नर मुनि ईसा', मार्ग में विराधबध किया तब शरभंगजीके आश्रम पर जाना कहा। यहाँ कुछ देर ठहरना पड़ा, यथा—'तब लगि रहहु दीन हित लागी'। अतः अब 'पुनः चलना कहा। (ख) आगेका वन सुतीक्ष्णजीवाला वन है।

२—'मुनिबरवृन्द बिपुल संग लागे' इति।—क्यों संग लगे? (क) प्रभुकी अनुपम शोभा के दर्शनकी अभिलाषासे, यथा—'बालकवृन्द

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देखि अति सोभा। लगे संग लोचन मन लोभा'—(ब० §२१८.); पुनः यथा—'रामहि देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे'—(अ०); यथा यहाँ 'मुनिवृन्द संग लागे'। अथवा, (ख)—अस्थि दिखानेके लिए उसी राहसे ले चलनेको साथ हुए। अथवा (ग) अपने २ आश्रमोंपर लेजानेकेलिए साथ होलिए और इसीसे आगे कहा भी है कि 'सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह'। अथवा, (घ)—कुछ दूरतक उनको पहुँचानेके लिए साथ हुए। [नोट—जनस्थानके राक्षसोंके मारे जानेपर अगस्त्यजीने मुनियोंके साथहो लेनेका कारण बतायाहै कि इन्हींके बधके लिए इन्द्र शरभंगजी के पासगएथे और इसीलिए ऋषिवृन्द उपाय करके यहाँ लाएथे। *)

३--चित्रकूटसे लेकर अत्रि आश्रम तक बहुत मुनिथे, यथा—'सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई। उसके आगे विराधके भयसे कोई मुनि नहीं रहतेरहे इसीसे शरभंगाश्रम तक कोई मुनि न मिले। शरभंगजी और अगस्त्यजीके आश्रमोंके बीचमें बहुत से मुनि रहतेथे; अतएव 'वृन्द' पद दिया।

४—"अस्थिसमूह देखि रघुराया..." इति। (क)' अस्थिसमूह' पद दिया क्योंकि समूह अस्थिही पूछनेका हेतु है, दोचार हड्डियाँ पड़ी देखकर कोई नहीं पूछता क्योंकि उसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं होती। पुनः, (ख)—दूसरा कारण पूछनेका 'करुणा, दया। मुनियों की ऐसी दुर्दशा देख तरस आया उनको कृतार्थ करना चाहतेहैं। अधमके हाथसे मृत्यु होनेसे सद्गति नहीं होती। पुनः, (ग)—तीसरा कारण पूछनेका यह कि इस प्रकार नीतिकी रक्षाकी। विना अपराधके दंड देना अनीति है। जब मुनि अपने मुखसे राक्षसोंका अपराध कहें तब उनको दंडदिया जाय। देखिए बालिने अपने वधपर यही प्रश्न रघुनाथजीसे कियाहै—'कारन कवन नाथ मोहि मारा'। अर्थात् मेरा क्या अपराध है? नीति प्रतिपालनके विचारसे यहाँ 'रघुराया' कहा। (घ)—'अतिदाया' का भाव कि दया तो सब पर रहती है—'सब पर मोरि बराबर दाया'। पर वहाँ अस्थिसमूह देख 'अति दाया लगी

* यथा—"सभाज्य मुदिता रन्मं सागस्त्मा इदमब्रुवन्। एतदर्थं महातेजा महेन्द्रः पाकशासनः॥ ३४॥ शरभङ्गाश्रमं पुण्यमाजगाम पुरंदरः। आनीतस्त्वमिमं देशमुपायेन महर्षिभिः॥ ३५॥"—(सर्ग ३०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

५—'सकल मुनि खाए' अर्थात् अकाल मृत्यु हुई, अनेकालसे नहीं मरे, राक्षसोंके खानेसे मरेहैं अध्यात्ममें लिखाहै कि शिर आदि मनुष्योंके आकार देखपड़तेथे। † सबदर्सी अर्थात् सदा सब आपको निरावण दिखाई देताहै कुछ छिपा नहीं अंतर्यामी हो अतः हृदय कीभी जानतेहो। पुनः, सर्वदर्शीसे स्वरूपतः और अंतर्यामीसे स्व भावतः सब जानना सूचित किया। ७—'सुनि रघुवीर नयन जल छाए' अर्थात् करुणा हुई। करुणा होनेपर फिर दुःख तुरत दूर करतेहैं, यथा—'जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिबिध दुःख ते निरबहे'।

निसिचर-हीन करौं महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

अर्थ—(रघुवीरजीने) भुजा उठाकर प्रतिज्ञा की कि मैं पृथ्वीको राक्षसोंसे रहित करूँगा और समस्त मुनियोंके आश्रमोंमें जाजाकर सबको सुख दिया।

नोट—भुजा उठाकर प्रतिज्ञा करने की रीतिहै इस प्रकार प्रतिज्ञाकी सत्यता निश्चयकराईजातीहै, यथा—'चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई। सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई'—(ब० § ६४)। पुनः यथा—'पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल'। ऐसा करके जनाया कि अब आप सब निस्संदेह और निडर रहें' लोगोंने इसके अनेक भाव कहेहैं पर वे क्लिष्ट कल्पनाएँ हैं। *

पु० र० कु—१ पृथ्वीको निश्चरहीन करनेको कहा क्योंकि मुनियोंने कहाथा कि 'निसिचर निकर सकल मुनि खाए'। २—'जाइ जाइ सुख दीन्ह' से जनाया कि ये सब प्रभुकी राह देखरहेथे, जिसकी जैसी

† "ददर्श तत्र पतितान्यनेकानि शिरांसिसः। अस्थिभूतानि सर्वत्र रामो वचनमब्रवीत्॥ १९॥" (सर्ग २) पुनः, यथा—एहि पथ शरीराणि मुनीनां भावितात्मनाम्। हतानां राक्षसैर्घोरैर्बहूना बहुधा वने'—(वा० स ६)

* खर्रा—जिसमें सब देखलें। दूसरा भाव कि प्रतिज्ञा पूरी न करूँ तो हाथ ही काटडालूँगा। इत्यादि भाव पं० रामकुमारजीने दोहेमें कहेहैं—'इन बाहुन ते बध करब बाहुन रूप बनाय। युद्ध बाहु आधीन है इन्द्र बाहु के राय॥१॥ बध करि उपर पठाइहौं पन करिबे की रीति। वीरनमें भुज पूज्य है भुजन राखिहौं नीति॥२॥' ये ही भाव पं०, प्र० में हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अधिक अभिलाषा थी वैसाही अधिक दिन उसके यहाँ ठहरे। सबके यहाँ ठहरतेहुए दश वर्ष बितादिए। पुनः, 'जाइ जाइ' दो बार देकर वाल्मीकिजीने जो लिखाहै कि एक एकके यहाँ फिर फिर गए वह भाव भी जनादियाहै। यथा—'जगामचाश्रमांस्तेषां पर्यायेण तपस्विनाम् ॥२३॥ येषामुषितवान्पूर्वं सकाशे स महास्त्रवित्।'—(सं ११)।

नोट—इस दोहेमें यह दरसा दिया कि केकयीकी आज्ञाका पालन क्योंकर हुआ। महर्षि वाल्मीकिजीने लिखा है कि १० वर्ष यों बिता दिए उनके सर्ग ११ के—

'प्रविश्य सह वैदेह्या लक्ष्मणेनच राघवः। तदा तस्मिन्स काकुत्स्थः श्रीमत्याश्रममण्डले। उषित्वा स सुखं तत्र पूज्यमानो महर्षिभिः। जगाम चाश्रमास्तेषां पर्यायेण तपस्विनाम्॥ येषामुषितवान्पूर्वं सकाशे समहास्त्रवित्। क्वचित्परिदशान्मासानेक संवत्सरं क्वचित्॥ क्वचिच्च चतुरोमासान्पञ्चषट् चपरान्क्वचित्। अपरत्राधिकान्मासानध्यर्धमधिकं क्वचित्॥ त्रीन्मासानष्टमासांश्च राघवोन्यवसत्सुखम्। तत्र संवसतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषु वै॥ रमतश्चावानुकूल्येन ययुः संवत्सरा दश। परिसृत्य च धर्मज्ञो राघवः सह सीतया॥' इन श्लोकोंका अभिप्राय 'जाइ जाइ सुख दीन्ह' में भरा हुआहै। रामचन्द्रजीने क्रमसे एकएक महर्षिका आश्रम जाजाकर देखा, किसीमें दस मास रहे, कहीं १ वर्ष, कहीं चार, कहीं पाँच, कहीं छ, कहीं सात, कहीं आठ इत्यादि रीतिसे प्रसन्नतापूर्वक रमणकरते ऋषियोंको सुखदेते १० वर्ष बीतगए।

मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना।
नाम सुतीछन रति भगवाना॥ ९/३ (१)
मन क्रम बचन राम पद सेवक।
सपनेहु आन भरोस न देवक॥ ,, (२)
प्रभु आगवनु श्रवन सुनि पावा।
करत मनोरथ आतुर धावा॥ ,, (३)

सुजान = चतुर, प्रवीण, विज्ञ, भारी पंडित। 'आतुर' = शीघ्रता एवं आकुलतासे। 'देवक' = देवका, जैसे 'धंधक' = धंधेका। दीनजी कहतेहैं कि यह मिथिला प्रान्तसा प्रत्यय है इस प्रकार अब भी वहाँ बोलाजाताहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—अगस्त्य मुनिका सुजान शिष्य जिसका नाम सुतीक्ष्णथा भगवान्में उनका प्रेम था। वे मनकर्मवचनसे श्रीरामजीके चरणोंके-सेवक थे, स्वप्नमें भी किसी दूसरे देवताका आशाभरोसा नहीं था। प्रभुका आगमन (ज्योंही) कानोंसे सुनपाया (त्योंही वे) मनोरथ करते हुए आतुरतासे दौड़े।

पु० र० कु०—१ मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना...' इति। (क) गुरुसंबंधदेकर सुतीक्ष्णजीकी बड़ाई कही। फिर भगवान्में अनुरक्तिसे एवम् प्रभुकेलिए उनकी आतुरचालसेभी बड़ाई की। पुनः (ख)—गुरुका संबंध देकर निवृत्तिमार्गसेवी जनाया। (ग)—'नाम सुती' छन' अर्थात् अगस्त्यजीके अनेक शिष्यहैं इससे इनका नाम खोलकर कहा नहीं तो सन्देह होता कि कौन शिष्य अभिप्रेत है। नाम कहकर तब उनके गुण कहे कि "रति भगवाना॥००'। भगवान् शब्द निर्गुण और सगुण दोनोंका वाचक है अतएव आगे उनकी उपासना स्पष्ट करनेके लिए 'रामपद-सेवक' पद दिया। 'पद' शब्दसे सगुण स्वरूपका उपासक बताया, निर्गुणके 'पद' नहीं होते। यहाँ 'मन क्रमबचन' से श्रीरामजीका सेवक कहा और आगे तीनों बातोंको दिखावेंगे। (घ)—[खर्रा—सुतीक्ष्ण नाम है वैसा ही गुण है। अर्थात् इनकी बुद्धि कुशाग्रभागके समान तीक्ष्ण है। यह बात सुजान पदसे जनाया]

२—'सपनेहु आन भरोस न देवक' से श्रीरघुनाथजीमें अनन्यता दिखाई। यथा—'मोर दास कहाइ नर आसा। करइ त कहहु कहा बिस्वासा'।

३—'प्रभु आगवन श्रमन सुनि पावा।०० धावा' इति। यथा अध्यात्मे—'राममागतमाकर्ण्य सुतीक्ष्णः स्वयमागतः। अगस्तिशिष्यो रामस्यमंत्रोपासन तत्परः'। यहाँ केवल 'धावा' पद दिया। इससे जान पड़ताहै कि मुनि खड़ेहुएथे जब उन्होंने आनेका समाचार पाया; क्योंकि यदि बैठे होते तो 'उठि धावा' कहते जैसा अत्रि और अगस्त्यजीके प्रसंगमें कहाहै, यथा—'पुलकित गात अत्रि उठि धाए', 'सुनत अगस्तिय तुरित उठि धाए'। वेलोग बैठे हुएथे इससे उनका उठ धावना कहा।

प्र०—'सुतीक्ष्ण' का अर्थ है 'कामादि विकार संसारसे क्रूर और ज्ञान भक्तिमें सुंदर तीक्ष्ण कुशाग्र बुद्धिवाले'।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मा० हं—"यह संवाद अध्यात्ममें है सही पर ऐसा उत्तम और इतना प्रेम प्रचुर वहां नहीं दिखाई देता। गोसाईंजीका सुतीक्ष्ण प्रेममें बिल्कुलही मतवाला बना हुआ दिखाई देताहै आदर, विनय, विनोद और प्रेमकी दृष्टिसे देखनेपर सारे काव्यमें उसकी उपमा देनेके लिए जोड़ मिलसकेगा तो वह केवल एक गुहही है। हमारा मन तो यही कहताहै कि जिसे गोसाईंजीके स्वभावका अनुमान करना हो, वह सुतीक्ष्णकी ओर देखे। उसे वहाँ उनकी रामभक्तिका अल्पसा चित्र दिखपड़ेगा। काव्य दृष्टिसे भी यह संवाद काव्यकौशल्यका एक अप्रितम उदाहरण है।"

हैं/हे बिधि दीनबंधु रघुराया।
मोसे सठ पर करिहहिं दाया॥§३ (४)
सहित अनुज मोहि राम गोसाईं।
मिलिहहिं निज सेवककी नाईं॥ ,, (५)
मोरे जिय भरोस दृढ नाहीं।
भगति बिरति न ज्ञान मन माहीं॥ ,, (६)
नहिं सतसंग जोग जप जागा।
नहिं दृढ चरन कमल अनुरागा॥ ,, (७)

शब्दार्थ—'निज'=अपना खास, अपना, यथा—'कह मारुतसुत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार निज दास'—(लं०)।=सच्चा, यथा—'अब बिनती मम सुनहु सिव जो मोपर निज नेहु'—(ब०)।

अर्थ—हे विधाता! क्या दीनबंधु रघुराई मुझसे शठपर दया करेंगे। गोस्वामी रामचंद्रजी भाई लक्ष्मणसहित मुझसे अपने खास सेवककी तरह मिलेंगे। मेरेजीमें पक्का भरोसा (विश्वास) नहीं होता (क्योंकि) मेरे हृदयमें भक्ति, वैराग्य या ज्ञान कुछभी नहीं है, न सत्संग योग, जप, यज्ञ (कुछ भी) ही है और न (प्रभुके) चरणकमलोंमें दृढ़ अनुरागही है।

नोट—सं० १७२१ की प्रतिमें यही पाठ है। काशीकी प्रतिमें हे बिधि' पाठ है। पं० रामकुमारजीने इसीको रखाहै। 'हे' पाठ सम्बोधनार्थ है अर्थात् 'हे विधाता! क्या दीनबंधु रघुनाथजी...'। पं०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रामकुमारजी अर्थ करतेहैं कि "सुतीक्ष्णजी सोचतेहैं कि प्रभुके मिलने और दया करनेकी एक यही बिधि है कि रघुनाथजी दीनबंधु हैं। इसीसे वे मुझ शठपर दया करेंगे नहीं तो मेरे कुछ साधन नहीं है जिससे वे दर्शन दें। वाल्मीकिजीके १४ स्थानोंमेंसे 'गुन तुम्हार समुझहिं निज दोषा' इसमें सुतीक्ष्णजीका स्थान पड़ताहै। इस दीनके समझमें ऐसा आताहै कि 'हैं!' का अर्थ 'अरे', 'हे' भी होताहै। इस प्रकार 'हैं विधि' का अर्थभी 'हे विधि' है। दूसरा भाव जो पं० रामकुमारजीने लिखाहै वह 'है' वा हैं' पाठमें ही होसकताहै 'हे' से नहीं। अतएव 'हैं' पाठको दो भावोंका बोधक जानकर उसे अच्छा समझताहूँ। पं० रामकुमारजीने अपने एक खर्रेमें 'हे विधि' पाठ देतेहुए यह लिखाहै कि 'यह बोलचालकी रीति है। इससे कुछ यह आशय नहीं है कि वे विधिकी उपासना या भरोसा करतेहैं।

पु० र० कु०—'मोरे जिय भरोस दृढ नाहीं।००' यथा—'मन ज्ञान गुनगोतीत प्रभु मै दीष जप तप का किये" इति अत्रिवाक्यं। पुनः यथा—'नाथ सकल साधन मै हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना' इति शरभङ्गः। 'भक्ति, विरति न ज्ञान' का अर्थ यहाँ है—ज्ञान वैराग्यसहित भक्ति नहीं है। यह कहकर कि ऐसी भक्ति नहीं है फिर कहतेहैं कि भक्तिके कोई साधनभी मुझमें नहीं हैं—"नहिं सतसंग जोग जप जागा।' ये सब भक्तिके साधन हैं इनसे भक्ति प्राप्त होतीहै, यथा—'सब कर फल हरिभगति सुहाई। सो बिनु संत न काहू पाई'—'जप जोग धर्म समूहते नर भगति अनुपम पावई' (आ० §६)।

प्र०—भक्ति, विरति और ज्ञान तीनों अर्थात् तीनों साधनोंसे शून्य इसका भाव सुंदरकांडमें विभीषणशरणागतिवाक्य 'तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं' में खुलेगा। उससे मिलान करो।

एक बानि करुनानिधान की।
सो प्रिय जाके गति न आनकी॥ § ३/३ (८)
होइहैं सुफल आजु मम लोचन।
देखि बदनपंकज भवमोचन॥ ,, (९)

शब्दार्थः—बानि=टेव, स्वभाव। गति=पहुँच, दौड़, तदबीर, अवलंब,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शरण सहारा, भरोसा, यथा—'तुम्हहिं छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्हके मनमाहीं'।

अर्थ—करुणानिधान श्रीरघुनाथजीकी एक यह बानि है कि जिसको और किसीका आशा भरोसा नहीं वह उनका प्रिय है। भवके छुड़ाने वाले मुखारविन्दको देखकर आज मेरे नेत्र सुफल (कृतार्थ) होंगे!

पु० र० कु० १—'एक बानि करुनानिधानकी'। इससे जनाया कि श्रीरामजीके मिलनेमें साधन कारण नहीं है, करुणाही कारण है। २—'सोप्रिय जाके गति न आनकी' अर्थात् जो सब साधनोंसे हीन होकर अनन्य होजाय वही प्रभुको प्रिय है। सुतीक्ष्णजीको अनन्यता और दीनताका बल है, किसी साधन बल नहीं, यही बात प्रकरणके प्रारम्भ में परिचय देते समय कहआयेहैं, यथा—सपनेहु आन भरोस न देवक', है बिधि दीनबन्धु रघुराया'। पर विशेषतः इन्हें अनन्यताका ही भरोसा है इसीसे आदिमें भी अनन्यता इनकी कही और यहाँभी उसीका भरोसा दिखाया। शरभङ्गजीको दीनताका बल था, यथा—'कीन्ही कृपा जानि जन दीना' और 'तब लगि रहहु दीनहित लागी'। ३—श्रीमुखवचनभी इस बानिके विषयमें है, यथा—समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ'—[सुं० § ३ (८)]

४—'होइहैं सुफल आजु मम लोचन...। भगवान्के मुखारविन्द के दर्शनसे नेत्र सुफल होतेहैं। यथा—'करहु सफल सबके नयन सुन्दर बदन देखाइ'—(ब § २१८)। निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करउँ उरगारी।—(भुशुण्डीजी)। आज नेत्रोंके होने का सुन्दर फल मिलेगा इस कथनसे मुनिका अपनी अनन्यता और प्रभुकी बानिमें विश्वास दर्शित किया।

निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी।
कहि न जाइ सो दसा भवानी॥ ,, (१०)
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा।
को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥ ,, (११)
कबहुँक फिरि पाछे पुनि जाई।
कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥ ,, (१२)
अबिरल प्रेम-भगति मुनि पाई।
प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई॥ ,, (१३)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शब्दार्थ—'निर्भर'=पूर्ण भरा हुआ, यथा—'सबके उर निर्भर हरष पूरित पुलक सरीर। कबहिं देखिबै नयन भरि रामलषन दोउ बीर'—(ब०§३००)। दिशि (दिशा)=पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशाएँ एवं ऊर्द्ध (सिरके ऊपर) और अधः (पैरके नीचे)। पूर्व-पश्चिम उत्तर दक्षिण इनमेंसे प्रत्येक दो दिशाओंके बीचके कोणको विदिश कहतेहैं जैसे पूर्वसे दहिनावृत चलनेसे अग्निकोण, नैर्ऋत्यकोण, वायव्यकोण और ईशानकोण सिलसिलेसे विदिशाओंके नाम हैं। अविरल=घनी, सघन, अव्यवच्छिन्न, यथा—'रतिहोउ अविरल अमल सियरघुबीर पद नित नित नई'।

अर्थ—हे भवानी! वे ज्ञानी मुनि निर्भर प्रेममें मग्न हैं, उनकी वह दशा कही नहीं जासकती। उन्हें दिशा, विदिशा या रास्ता (कुछ भी) नहीं सूझरहाहै। मैं कौन हूँ, कहाँ जारहा हूँ, यह कुछ नहीं जान पड़ता अर्थात् इसका ज्ञान जातारहा। कभी लौटकर फिर पीछे जाने-लगतेहैं और कभी प्रभुके गुण गाकर नाचने लगतेहैं। मुनिको अविरल प्रेमाभक्ति प्राप्त है। प्रभु वृक्षकी आड़में छिपकर देखरहेहैं।

पु० र० कु०—१ 'निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी'। यहां भी दिखाया कि ज्ञानकी शोभा प्रेमसे ही है, यथा—'सोह न रामप्रेम बिनु ज्ञानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू'। २—'भवमोचन बदन पंकज' के स्मरण करतेही मूर्ति साक्षात्कार होनेसे निर्भरप्रेममें मग्न होगए। इनका प्रेम निराला है कि जिसकी दशा श्रीशिवजी अकथनीय बतातेहैं।

३—'कहि न जाइ सो दसा भवानी'—यहाँ शिवोक्ति रखीहै; क्योंकि प्रेमका जानकार इनसे बढ़कर कोई नहीं है, यथा—'प्रेम ते प्रगट होइ मैं जाना'। प्रेम-प्रसंगके अवसरोंपर इन्हींकी उक्ति, इन्हींका संवाद जहाँ तहाँ कविने दियाहै—'सुनु सिवा सो सुख प्रान मनते भिन्न जान जो पावई', 'बारबार प्रभु चहहिं उठावा। प्रेममगन तेहि उठब न भावा' प्रभुकरपंकज कपिके सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥ सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा०'—सुं०§३२ देखिए पुनः, यथा—'उमा जोग जप दान तप नाना ब्रत मख नेम। रामकृपा नहिं करहिं तसि जसि निहकेवल प्रेम'—(लं० §११७)

४—'दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। बूझा' (क)—यहाँ 'सूझा' और 'बूझा' पृथक् पृथक् भावसे दो शब्द दियेहैं। सूझना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आँखोंका विषय है, यथा—'लोचन सहस न सूझ सुमेरू' और बूझना मनका विषय है। तात्पर्य्य कि प्रेमकी प्रबलतासे भीतर-बाहरकी सभी इन्द्रियाँ शिथिल होगईं। (ख)—खर्रा—दिशि और विदिशाके पंथ विशेषहै और पंथसे अपनपौ विशेष है। अतः 'दिसि बिदिसि', 'पंथ' और 'को मैं' तीनों कहे। 'सूझता-बूझता नहीं' इससे जनायाकि लौटकर आश्रमको ही कभी २ चलेजातेहैं। मन एवं नेत्र दोनों भवबंधक हैं अतः इन दोनोंको प्रेममें मग्न कियेहैं। यथा—'बालकवृंद देखि 'अति सोभा। लगे संग लोचन मन लोभा'। इसी तरह संसारमें न सूझबूझ पड़े तब रामजीमें प्रेम होताहै और तभी वे यथार्थ मिलतेहैं।]

५—'कबहुँक फिर पाछे पुनि जाई।००' यह प्रेमाभक्तिका लक्षण है इसीसे आगे कहतेहैं कि 'अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई'। यथा भागवते एकादशे—"एवं व्रतः स्वप्रियनाम कीर्त्याजातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः। हसत्यथो रोदति रौति गायत्युन्मायन्नृत्यति लोक बाह्यः॥"

'प्रभु देखहिं तरु ओट लुकाई'

१—पु० र० कु०—(क) वृक्षकी आड़में छिपकर देखना कहतेहैं। सुतीक्ष्णजी भावमें मग्न भावमयी नृत्य और गान कररहेहैं और प्रभु तो भावके वश हैं ही। अतः खड़े देखनेलगे। वृक्षकी ओटमें छिपकर देखतेहैं जिसमें रंगमें भंग न हो। यदि मुनि देखलेंगे तो फिर नृत्य न करेंगे। (ख) इस ग्रंथमें प्रभुका तीन स्थलोंपर छिपना लिखा है—एकबार लताओटमें, यथा—'लता ओट तब सखिन्ह लखाये। स्यामल गौर किसोर सुहाये'—ब० §२३१ (३)। दूसरी बार यहाँ तरु ओट' में और तीसरे किष्किंधाकांडमें 'बिटप ओट' में यथा—'पुनि नाना बिधि भई लराई। बिटप ओट देखहिं रघुराई' (§७)। तीनों जगह पृथक् २ शब्द दिए—लता, तरु और विटप। (ग) तरु और विटपसे शान्तरस और लतासे शृङ्गाररस सूचित किया। यहाँ विटप-पद न देकर 'तरु' पद देनेका कारण यह है कि अयोध्याकांडमें लक्ष्मणजीके आवेश-प्रसंगमें विटपका रण वा वीररससे रूपक दियाथा इसीसे यहाँ उस पदकोभी नहीं दिया—'रनरस-बिटप पुलक मिस फूला'—वरन तरु पद दिया।—(विशेष कि० § ७ में देखिए।

२—श्रीनजी—जितनी अत्यन्त घनिष्ठ प्रेमसूचक लीलाएँ महाराजकी हुईं वे सब ओटसेही हुईहैं। बालिभी बड़ा भक्त था, सामनेसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कैसे मारते और उसकी इच्छाथी। सायुज्य मुक्ति पाने की सायुज्य मुक्ति शत्रुभावनासेही शीघ्र प्राप्त होतीहै।

३--पं०—जैसे माता-पिता छिपकर बालकका कौतुक देखें वैसेही प्रभु इनके प्रेमको देखतेहैं। ४—प्र०—(i) (एकाएक) मिलनेसे मुनिको अतिहर्ष होजानेसे नवीं दशासे आगे दशवीं दशापर पहुँच जानेका भय है जिसमें मृत्यु होतीहै। अतः छिपे। वा, (ii) इससे छिपे कि सातवीं भूमिका और अपना स्वाद न जातारहे।

अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा।
प्रगटे हृदय हरन भव भीरा॥ § ३ (१४)
मुनि मग माँझ अचल होइ बैसा।
पुलक सरीर पनस-फल जैसा॥ ,, (१५)
तब रघुनाथ निकट चलि आए।
देखि दसा निजजन मन भाए॥ ,, (१६)

शब्दार्थ:—'बैसा'=बैठ गया। 'भीरा'=डर। पनस=कटहल*। माँझ=में, यथा—'पुनि मंदिर माँझ भई नभबानी,' 'कैकेइ कत जनमी जग माँझा' 'भरतबचन सुनि माँझ त्रिबेनी'।

अर्थ—भव (संसार, आवागमन) के भयको मिटानेवाले रघुबीर श्रीरामजी अतिशय प्रेम देखकर उनके हृदयमें प्रगट होगए। मुनि मार्गमें अचल होकर बैठगए, शरीर कटहलके फलके समान पुलकित होगया। अर्थात् रोयें पूरी तरह खड़े होगये जैसे कटहलके फलके ऊपर काँटेसे खड़े रहतेहैं। तब रघुनाथजी पास चलेआये, अपने भक्तकी दशा देखकर मनमें प्रसन्न हुए।

पु० र० कु०—१—"अतिशय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे०" इति। (क)—जिसके हृदयमें जैसी भक्ति होतीहै वैसेही प्रभु उससे मिलतेहैं, यथा—जाके हृदय भगति जस प्रीती। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिरीती'

* कटहल'—यह एक सदा बहार घना पेड़ है। इसमें हाथ हाथ डेढ़ २ हाथ लंबे फल होतेहैं और घेराभी प्रायः इतनाही होता है। ऊपरका छिलका बहुत मोटा होताहै जिसपर बहुतसे नुकीले कंगूरे होतेहैं। यह वृक्ष नीचेसे ऊपर तक फलता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(ब०१८४) 'प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना, सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे आवत हृदय सनेह बिसेषे'। (ख) ऐसा कहकर प्रभुके इन वचनामृतको चरितार्थ कर दिखाया कि—'बचन करम मन मोरि गति भजन करइ निःकाम। तिन्ह के हृदय कमल महँ करौं सदा बिश्राम'। इस दोहेके सब अंग सुतीक्ष्णजीमें हैं।—(i) बचनकरम मन मोरि गति यथा—'मन क्रम बचन रामपद सेवक। सपनेहु आन भरोस न देवक' (ii)—'भजन करइ निःकाम', यथा—'अनुज जानकीसहित प्रभु चापबानधर राम। मम हिय गगन इन्दु इव बसहु सदा निःकाम'। पुनः, यथा—'निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी'। और प्रेम भजन है, यथा—'पन्नगारि सुनु प्रेम सम भजन न दूसर आन'। अतः हृदयमें प्रगट होगए।—[१—प्र०—हृदयमें प्रगट हुए क्योंकि उस समय मुनि वहिर्दृष्टि नहीं थे। अथवा, इस भयसे प्रगट हुए कि अतिशयप्रेममें दशवीं दशा न प्राप्त होजाय।] २—मा० स०—अतिशय प्रेम देखकर 'तरु ओट' से तमाशा देखनेलगे। पर वह प्रेम जब 'अतिशय' कोटिको पहुँचा तब प्रभुसे न रहागया, पैदल कुछ क़दम चलकर पास पहुँचने में कुछ समय लगता। प्रभु इस किंचित मात्र विलंबकोभी सहन न करसके इसीकारण प्रभु हृदय मेंही ध्यानद्वारा प्रकट होगए और 'प्रेम ते प्रगट होहि मैं जाना' इस जगत्-आचार्य्य श्रीशंकरजीके वचनको सत्य कर दिया। पर ध्यानद्वारा हृदयमें प्रकट होने मात्रसे प्रभुको संतोष नहीं हुआ, वे उसके निकट जाकर उसकी मनोवाञ्छित अभिलाषा पूर्ण करतेहैं। केवल विलंबके कारण पहले हृदयमें साक्षात् हुए।]

२—'प्रगटे हृदय हरन भव भीरा'। (क)—अभी हृदयमेंही अपना स्वरूप दर्शित किया, बाहर प्रत्यक्ष अभी नहीं प्रकट हुए। प्रकट रूपसे तो अभी 'देखहिं प्रभु तरु ओट लुकाई', वृक्षकी आड़में छिपेहैं, सामने नहीं हैं। हृदयमें प्रकट होना कहकर उसका फल दिखाया—'हरन भव भीरा' अर्थात् यह ध्यानका फल है। जिससे हृदयमें प्रभुका ध्यान बसताहै उसको भवका भय नहीं रहजाता। (ख)—प्रेममें मुनिको दिशाविदिशा कुछ न सूझतीथी पर उनकी आँखें खुली हुईथीं। जब हृदयमें प्रभु प्रगट हुए तब मुनि ध्यानमें मग्न होगए और उनकी आँखें बंद होगयीं। आँखें बन्द होनेपर रघुवीरजी निकटगए।

३—'पुलक सरीर पनसफल जैसा'। मिलान करो—'रनरस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बिटप पुलक मिस फूला'। कटहलकी उपमा देकर जनाया कि शरीर भरमें सघन पुलकावली हुई, रोंगटे पूर्णरूपसे खड़ेहोगए। पुनः, इस उपमासे यहभी जनाया कि जैसे कटहल भीतर रसीला होताहै, वैसे ही मुनिका हृदय 'रामसनेह सरस' है।—(खर्रा—कटहलके भीतर अनेक कोए हैं वैसे इनके हृदयमें प्रभु नहीं हैं मानों अनेक ब्रह्माण्डही हैं जिनको ये लेकर बैठगए हैं।]

४—'तब रघुनाथ०'। (क)—रघुनाथजी प्रधान हैं इससे इन्हीं का नाम दिया। पर हैं इनके साथ दोनों। यथा—'आगे देखि राम घनस्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा'। (ख)—पहले प्रगट होना कहा और अब चलकर आना कहा। कारण कि अन्तर्यामी रूप चलता नहीं है अतः उसका ध्यानमें प्रकट होना कहा। और, सगुण रूप चलताहै इससे अब 'चलि आए' कहा। निकट आने पर दशा देखपड़ी कि रोंगटे खड़ेहैं। ५—देखि दसा निज जन मन भाये'। 'देखिका भावकि वह दशा देखतेही बनतीहै, कहते नहीं बनती। पहले जो कहाथा कि 'कहि न जाइ सो दसा' उसीका निर्वाह यहाँभी है। †

† र० ब०—'(शाण्डिल्यसूत्र) तत्परिशुद्धिश्चगम्या लोक वल्लिङ्गेभ्यः'। (संस्कृतटीका) तत्परिशुद्धिः च लोकवल्लिंगेभ्यो गम्या। तस्याः बुद्धेः भक्तेश्च परिशुद्धिः सांसारिक प्रेमवत् चिह्नेभ्यः गम्या। यथा लोके प्रेमतारतम्यं तथैव भगवत्कीर्त्तनादौ पुलकाश्रुपातादिभिर्भावैः भगवत्प्रेमरूपायाः भक्तेः प्रामाण्यमनुमीयते। न केवलंलोकवच्चिह्नानि किन्तु महर्षीणां स्मृतिभ्योऽपितानिलिंगानि प्रायशो लक्ष्यन्ते"। अर्थ—भक्तिकी बुद्धिका परिशुद्धित्व अथच प्रेमभक्तिका प्रादुर्भाव तथा परिमाण सांसारिक प्रेमके जैसे लक्षणोंहीसे जाना जासकताहै। अर्थात् जैसे लौकिक रसोंके अनुभाव रोमांच अश्रुपातादिकसे संसारके रसोंके प्रादुर्भावका अनुमान तथा लक्षण मनुष्योंमें प्रतीत होजाता है। उसी प्रकार भगवत्प्रेमरूपाभक्तिके प्रादुर्भावका अनुमान ईश्वरके कीर्तिनादिकमें भक्तके रोमांच, प्रलाप, अश्रुपात, लय इत्यादि सच्चे अनुभवोंके चिह्नोंसे प्रतीत होजाताहै कि किस २ भक्तमें भक्तिप्रेम कितना २ है अर्थात् किस भक्तकी भक्ति किस कोटि तक पहुँचगईहै, यह जाना जासकताहै। इससे ऊँची कोटिकी शक्ति संपादनके लिए भक्तजन यत्न और अभ्यास बढ़ाकर पूर्ण भक्तिके उच्च पद पर पहुँचसकतेहैं। यह लौकिक प्रेम के उदाहरणमात्रही नहीं समझें किन्तु बड़े २ महर्षियोंके भी वचनोंसे ऐसाही पायाजाताहै कि रोमांच अश्रुपातादिकसे भक्तों की भक्तिके प्रादुर्भावका ठीक २ परिचय मिलताहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा।
जाग न ध्यानजनित सुष पावा ॥§३ (१७)
भूप-रूप तब राम दुरावा।
हृदय चतुर्भुज रूप देषावा ॥ ,, (१८)
मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें।
बिकल हीन मनि फनिबर जैसें ॥ ,, (१९)

शब्दार्थ—दुरावा=छिपाया। जगावा—ध्यानकी निवृत्ति जागना कहलातीहै, यथा—'बीते संबत सहस, सतासी। तजी समाधि संभु अबिनासी॥ रामनाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सती जगतपति जागे।' 'छाँड़े बिसिष बिषम उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे'।

अर्थ—रामजीने मुनिको बहुत प्रकार जगाया अर्थात् ध्यान छुटाना चाहा। ध्यानसे उत्पन्न होनेवाले सुखको प्राप्त हैं इससे वे न जगे।* तब श्रीरामजीने अपने राजकुमाररूपको छिपालिया और (उसके बदले) हृदयमें चतुर्भुजरूपका दर्शन दिया। तब (देखिए कि) मुनि कैसे व्याकुलहो उठे जैसे बड़ा श्रेष्ठ सर्प मणिरहित होजानेसे व्याकुल होजाय।

पु० र० कु०—१ (क) 'मुनिहि राम बहु भाँति जगावा।००' इति।—'बहु भाँति' अर्थात् उच्चस्वरसे पुकारा, हाथ पकड़कर हिलाया, इत्यादि। (ख)—'भूपरूप' अर्थात् धनुर्धारी द्विभुज राजकुमाररूप।

२—'हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा'। मुनि अकुलाइ उठा०॥००' इति। (क)—प्रथम कहा कि 'ध्यानजनित सुख पावा' अब बीचमें चतुर्भुजरूप दिखाया तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ, वे अकुला उठे। इससे जनाया कि जो सुख रामरूपके ध्यानमें है वह चतुर्भुज रूप (विष्णु, नारायण आदि) के ध्यानमें नहीं है। जनकपुरवासिनियोंके वचनसे मिलान कीजिए—

"विष्णु चारिभुज बिधि मुखचारी। बिकट बेष मुखपंच पुरारी॥

* यथा भागवते—"भगवद्दर्शनाह्लादबाष्पपर्याकुलेक्षणः। पुलकाचिताङ्ग औत्कण्ठ्यान् नाबुधन्नोदितोऽपि सः" "पुरुषं चतुर्भुजं शान्तं पद्मपत्रारुणेक्षणम्। दर्शयामास रामस्तु सुतीक्ष्णमुनये प्रभुः"।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपर देव अस कोउ न आही। यह छबि सखि पटतरिये जाही॥' (ब० §२१९)

हृदयमें चतुर्भुजरूप प्रकट किया, यह क्यों? मुनिको जगानेके लिए; उनकी अनन्यता विख्यात करनेके लिए, जिसमें लोग जान जायँ कि अनन्यता, कैसी होतीहै। इसी तरह भरतजीका प्रेम प्रगट किया जिसमें लोकको प्रेमकी शिक्षा हो यथा—प्रेम अमिय मंदर बिरह भरत पयोधि गँभीर। मथि प्रगटे सुर साधु हित कृपासिन्धु रघुबीर। (ख) यहाँ यह भी जनाया कि रामजीकेही चतुर्भुज आदि सब रूप हैं। दोनों में अभेद दिखाया। (ग)—पूर्व कहा कि 'मुनि मग माँझ अचल होइ बैसा' अर्थात् मुनिका बैठजाना कहाथा; अतः यहाँ उठ खड़ा होना कहा क्योंकि आगे प्रभुका देखनेपर उनके चरणोंपर 'लकुट इव गिरनाकहेगें। (घ)—जो पूर्व कहाथा कि 'सो प्रिय जाके गति न आनकी' उसका यह स्पष्ट चरितार्थ है। 'बिकल हीन मनि फनिबर जैसे'। यथा-'मनि लिए फनि जियै व्याकुल बेहालरे' वैसेही ये व्याकुल आर विह्वल होगए। (ङ) फणिवर मुनि, सर्पमणि रामभूपरूप चतुर्भुज रूप अन्य मणि रत्न पारस आदि हैं। जैसे सर्पका मणि कोई लेले और उसके आगे अनेक और मणि पारस इत्यादि रखदे तो वह सर्प कदापि सुखी नहीं होता वह तो अपनाही मणि पाकर सुखी होगा नहीं तो व्याकुल छटपटाता हुआ प्राणही छोड़देगा। वैसेही रामभूप-निजमणि खोनेपर मुनि व्याकुल होगए। पर उन्होंने चतुर्भुजमूर्त्ति को न ग्रहण किया—ऐसे रूपानन्य हैं।

नोट—१ यही अनन्यताहै कि अपने इष्टको छोड़कर दूसरेसे चित्त व्याकुल होजाय। यहाँ अनन्यताकी परख हुई।—(प्र०, रा० प्र० श०) २—करु०—उन्हीं रामचन्द्रजीने पहले द्विभुजरूप फिर चतुर्भुजरूप होकर हृदयमें प्रगटदर्शन दिए तब अकुलाना कैसा? तत्वस्वरूप तो एकहीथा केवल द्विभुज चतुर्भुज का भेद था परमानन्य उपासक एकही स्वरूपमें अनन्य हैं, वे रूपान्तर नहीं सहसकते। देखिए नृसिंह रूप धारणकरने पर लक्ष्मीजी उनको शान्त करने नहीं गईं, यही बोलीं कि ये हमारे उपासनाके रूपरूप नहीं हैं यद्यपिहैं भगवान्ही। ३—☞ पाठकोंको स्मरण रखना चाहिए कि परात्पर परब्रह्म साकेतविहारी श्रीरामकेही श्रीमन्नारायण, विष्णुभगवान्, महाविष्णु आदि सब सात्विक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रूप हैं वैष्णवोंमें सबको अभेद मानेनेकी आज्ञा है। भगवान्‌का द्विभुज रूप परात्पर नारदपंजरात्र आदि ग्रंथोंमें कहगयाहै जब वे प्रथम सृष्टि रचनेकी इच्छासे सगुण स्वरूप हुए और जलमें उन्होंने शयन किया अथवा, सृष्टि बनानेके बाद अन्तर्यामी होनेके कारण उनका 'नारायण'* नामपड़ा ईसाई और मुसलमानभी भगवान्‌का नराकार स्वरूप मानतेहैं। बाइबल और कुरानमें इसका स्पष्ट उल्लेख है और भारतवर्षमें तो सृष्टिके आदिसे ऋषि ऐसा कहतेआयेहैं। सुतीक्ष्णजी दाशरथी रामके उपासक हैं अतः वे अन्यरूपसे व्याकुल होगए। पर यहभी स्मरण रहे कि वैष्णव किसी अन्यरूपकी निन्दा नहीं करता। वे सब आदरणीय हैं पर पतिव्रताका अपने पतिमेंही अनन्य भाव होता है वैसेही भक्तको अपने पति (स्वामी) में अनन्यभाव रखनाचाहिए।

आगे देषि राम तन स्यामा।
सीता अनुज सहित सुषधामा॥ § ⅔ (२०)
परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी।
प्रेम मगन मुनिबर बडभागी॥ ,, (२१)
भुज बिसाल गहि लिये उठाई।
परम प्रीति राषे उर लाई॥ ,, (२२)
मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला।
कनक तरुहि जनु भेंट तमाला॥ ,, (२३)
राम बदनु बिलोक मुनि ठाढा।
मानहु चित्र माँझ लिषि काढा॥ ,, (२४)

अर्थ—सीताजी और लक्ष्मणसहित सुखके स्थान श्याम शरीर

* यथा—'नरतीति नरः प्रोक्ता परमात्मा सनातनः। नराज्जातानि तत्त्वानि नारायणीति विदुः बुधाः॥'—(महाभारत)। अर्थात् नरशब्द वाच्य सनातन परमात्मा है और नरसे उत्पन्न हुए तत्त्वोंको नार कहतेहैं; उनमें निवास करनेसे उस परमात्माका नाम नारायण पड़ा। द्विभुज प्रभुका परात्पर परब्रह्म होना प्रमाण सिद्ध है। यथा—'द्विभुजी कुण्डली रत्नमाली धीरो धनुर्धरः।' इति रामतापिनी उपनिषद्। पुनः, 'द्विभुजमेकवक्त्रं रूपमाद्यमिदं हरेः। इति पञ्चरात्रे। एवं 'परन्तु द्विभुजं ज्ञेयं०' इति संकर्षण संहितायाम्।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रामचन्द्रजीको आगे देखकर बड़ेही भाग्यवान् मुनिश्रेष्ठ प्रेममें मग्न होकर लकुटीकी तरह गिरकर चरणोंमें लगगए। प्रभुने अपनी लम्बी भुजाओंसे उन्हें पकड़कर उठालिया और परम प्रेमसे हृदममें लगाए रखा। मुनिसे भेंट करतेहुए कृपालु रामजी ऐसे शोभित होरहेहैं मानों सुवर्णके वृक्षसे तमालवृक्ष भेंट कर रहाहो। मुनि खड़ेहुए रामचन्द्र जीके मुखका दर्शन कररहेहैं। (ऐसे दिखरहेहैं) मानों तसवीरमें लिखकर उनकी शकल काढ़ी गईहै। अर्थात् टकटकी लगाए निमेष-रहित देखरहेहैं जैसे तसवीरके चित्रकी आँखें एकटक रहतीहैं, न शरीर हिले न कोई अंग।

पु० र० कु०—१ सीता अनुज सहित सुखधामा' इति। (क)—पहिले ध्यानमें सुख पाना कहा अब साक्षात् आगे देखपड़े तब 'सुख धामा' विशेषण दिया। तात्पर्य्य कि ध्यानसे साक्षात् दर्शनमें अधिक सुख है। (ख) पुनः, सुखधाम' से जनाया कि पहले ध्यानमें सुख हुआ था, फिर चतुर्भुजरूपका ध्यान हृदयमें प्रकट होनेसे दुःख होगया था, अब मुनि फिर सुखी हुए। (ख)—'परेउ लकुट इव' अर्थात् सष्टांग किया। जैसे छड़ी विना सहारे खड़ी की जाय,तो खड़ी नहीं रहसकती वरन् शीघ्र पृथ्वीपर गिर पड़तीहै वैसेही ये चरणोंपर गिरे। इसी तरह भरतजीके संबंधमें कहाहै-'पाहि नाथ कहि पाहि गुसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं"। लकुट पतला होताहै। इस पदसे जनाया कि मुनि तप आदिसे बहुत दुर्बल होगएहैं जैसे भरतजी वियोगसे कृश हो गएथे।—विशेष अ० § २३६ (२) एवं ब० § १४७ (७) में देखिए।

(ग) "प्रेम मगन मुनिवर बड़ भागी'।—चरणोंकी प्राप्तिके कारण इनको 'बड़भागी' कहा। प्रभुके चरणोंमें जो लगतेहैं वे ही बड़भागीहैं और प्रभुपद विमुख अभागीहै यह पद या इसका पर्याय सातोंकाण्डोंमें चरणोंके सम्बन्धमें प्रयुक्त हुआहै।

१—अतिसय बडभागी चरनन्हि लागी जुग नयनन्हि जलधार बही ॥ब०॥१॥
ते पद पखारत भागभाजन जनक जय जय सब कहैं ॥ ब० ॥२॥
भूरिभाग भाजन भयेउ मोहि समेत०० । जो...कीन्ह रामपद ठाँउ ॥अ४॥
चरन सरोज पखारन लागा ॥०० एहि सम पुन्यपुंज नहिं दूजा ॥अ०॥
सोइ गुनज्ञ सोई बड़भागी । जो रघुबीरचरन अनुरागी ॥ कि० ॥६॥
अहोभाग्य मम अमित अति...देखउँ नयन०० जुगलपदकंज ॥सुं६॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बड़भागी अंगद हनुमाना। चरनकमल चापतबिधि नाना ॥लं०॥७॥
अहह धन्य लछिमन बडभागी। रामपदारबिंद अनुरागी ॥उ०॥८॥

२—'ते नर नरक रूप जीवत जग भवभंजन पद बिमुख अभागी' इति विनये।

२—'परम प्रीति राखे उर लाई'। 'राखे' पदसे देरतक छातीसे लगाए रहना जनाया, यथा—'करत दण्डवत लिए उठाई। राखे बहुत बार उरलाई'। यहाँ अन्योय प्रीति दिखाई। मुनिने अत्यन्त प्रेमसे रामजी को हृदयमें रखा, यथा—'अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदय हरन भवभीरा ॥...जोग न ध्यानजनित सुख पावा'। वैसेही रामजी ने मुनिको देर तक हृदयसे लगारखा—'यो यथा मां प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्' इति गीतायाम् मुनिमें परम प्रेम है अतः परम प्रीतिसे आपभी मिले।

३—'मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला ।००'। (क)—यहाँ सेवक के मनोरथको पूर्ण किया। मनोरथ था कि 'मिलिहहिं निज सेवककी नाईं' वही यहाँ हुआ। दूसरा मनोरथ था कि होइहि सुफल आज मम लोचन, देखि बदन ०'वह मनोरथ भी पूर्ण हुआ; यथा—'राम बदन बिलोक मुनि ठाढ़ा'। दोनों मनोरथोंको यहाँ चरितार्थ कर दिखाया।

(ख)—कृपालु प्रभु मुनिसे मिलरहेहैं न कि मुनि कृपालुसे, मुनि तो चरणोंपर गिरेहैं। यही बात उत्प्रेक्षासे दिखाईहै कि मानों तमाल वृक्ष जो श्यामवर्ण है, स्वर्ण वृक्षसे भेंट रहाहै। यहाँ वर्णमात्रकीही उपमा नहीं है वरन् यहभी दिखाते हैं कि दोनों विदेह दशाको प्राप्त स्थावर सरीखे जड़वत् होगएहैं। इसीलिए जड़ वृक्षकी उत्प्रेक्षा की गई। (ग)—'सोह कृपाला' अर्थात् इस भेंटसे कृपाल प्रभुकी शोभा हुई। दीनोंपर दया करतेहैं; यह उनकी कृपालुता है। जिनके चरण स्पर्शके लिए ब्रह्मादिक तरसतेहैं वेही मुनिको उठाकर आलिङ्गन कर रहेहैं।*

४—यहाँ नवों प्रकारकी भक्तियाँ मुनिमें दिखाईहैं। (१)—श्रवण यथा—'प्रभु आगवन श्रवन सुनि पावा'। (२) कीर्तनं यथा—कबहुँक

* 'तमाल'—१५-१६ हाथ ऊँचा सुन्दर सहाबदार वृक्ष प्रायः पहाड़ों और कहीं कहीं यमुनातटपरभी पायाजाताहै श्यामतमाल कम मिलताहै। इसकी आबनूसकी तरह काली लकड़ी होतीहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नृत्य करइ गुन गाई'। (३) विष्णोःस्मरणं, यथा—'एक बानि करुना-निधानकी। सो अनन्य००'। (४) पाद सेवनं, यथा—'मन बच करम रामपद सेवक', (५)—अर्चन यथा—'पूजा बिबिध प्रकार'। (६) वन्दनं—'कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी।००'। (७) दास्यं—'अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक००'। (८) सख्यं यथा—होइहहिं सुफल आजु मम लोचन'; इसको सख्यमें लिया क्योंकि इसमें प्रतीति है जो मित्रमेंही होतीहै, यथा—'सुतकी प्रीति प्रतीति मीत की००' (विनय)। (९) आत्मनिवेदन, यथा—'परे लकुट इव०'। † विशेष§११ में देखिए।

१—'मानहुँ चित्र माँझ लिखि काढ़ा'। यथा विनये—'बिटप मध्य पुत्रिका सूत्र महँ कंचुकि बिनहि बनाये'। जाइ समीप राम छबि देषी। रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेषी'—ब० § २६३ (४) देखिए। 'राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से देख'—(ब० § २६०)।

तब मुनि हृदय धीर धरि गहि पद बारहिं बार।
निज आश्रम प्रभु आनि करि पूजा बिबिध प्रकार॥ १०/४

† (क) श्रीमद्भागवतकी नव प्रकारकी भक्तियोंमेंसे एक एक भक्तिका एक ही एक उदाहरण दियागयाहै जिसका भाव यह हुआ कि एकको एकही भक्ति प्राप्त हुई सब नहीं। यथा—"श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद्वैयासिकिः कीर्तने प्रह्लादः स्मरणे तदंघ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने॥ अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्यथ सख्येर्जुनः। सर्वस्वात्मनिवेदन बलिरभूत् कृष्णाप्ति रेषा परा॥"—[इसीको नाभाजीने यों लिखाहै—"पद पराग करुणा करो जे नेता नवधाभगति के॥ श्रवण परीक्षित, सुमति व्याससावक सुकीर्तन। सुठि सुमिरन प्रहलाद, पृथु पूजा, कमला चरननि मन॥ वन्दन सुफलकसुवन, दास दीपति कपीश्वर। सख्यत्व पारथ, समर्पण आत्म बलिधर॥ उपजीवी इन नाम के एते त्राता अगति के पद पराग०॥ १४॥"]—पर सुतीक्ष्णजीमें नवों भक्तियाँ हैं।—(खर्रा)।

(ख) पं० रामकुमारजीने दूसरी ठौर § १० (२७) 'परेउ लकुट इव चरननिहि को 'पाद-सेवन' का और 'को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा' को आत्मनिवेदनका उदाहरण लिखाहै।—§ ११ की पाद-टिप्पणी देखिए)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—तब मुनिने हृदयमें धीरज धरकर और बारंबार प्रभुके चरणोंको पकड़कर प्रभुको अपने आश्रममें लाकर अनेक प्रकारसे उनकी पूजा की।

पु० र० कु० १—'धीर धरि' क्योंकि प्रेमसे अधीर होगएथे यह साँवली मूर्ति देख सभीका धैर्य्य छूटजाताहै, यथा—
'देखि भानुकुलभूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान ॥ धरि धीरज इक सखी सयानी' 'मंजु मधुर मूरति उर आनी। भई सनेहसिथिल सब रानी ॥ पुनि धरि धीरज कुवरि हँकारी' 'पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना ॥ पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्ही' 'रामलषन उर कर बर चीठी। रहि गए कहत न खाटी मीठी ॥ पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची'। 'मूरति मधुर मनोहर देखी। भए बिदेह बिदेह बिसेषी ॥ प्रेममगन धरि धीरा' तथा यहाँ 'राम बदन बिलोक मुनि ठाढा। मानहुँ चित्रमाँझ लिखि काढ़ा'। तव०'।

२—'गहि पद बारहिं बार' इससे प्रेम दिखाया, प्रेमविवशकी यह दशा है।' यथा—'प्रेममगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा'—(सबरीजी)। पुनः, 'बारबार नावइ पदसीसा'—(सुग्रीव)। पुनः, 'देखि रामछबि अति अनुरागा। प्रेम बिबस पुनि-पुनि पग लागी'—(सुनयनाजी)।

३—खर्रा यद्यपि परमार्थमें लीन हैं तथापि व्यवहारभी प्रबल है। अतएव व्यवहारके लिए धैर्य्य धारण किया। चरणोंमें बारम्बार पड़कर आश्रमपर लाए। विविधि प्रकार अर्थात् षोड़शोपचार पूजन—आ० § २(८)–§ ३ में देखिए। वा, जो जो विधि शास्त्रोंमें और संहिताओंमें कहीगईहैं उसके अनुसार।

५—जो प्रारंभमें कहाथा कि 'मन क्रम बचन रामपद सेवक' तीनों प्रकार इस प्रसंगमें दिखायेहैं, यथा—मन—'सपनेहु आन भरोस न देवक'। कर्म—'परेउ लकुट इव', 'करि पूजा...'। वचन—'मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाचा...', 'कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी...' इत्यादि।

कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी।
अस्तुति करौं कवनबिधि तोरी ॥ § १०/४ (१)
महिमा अमित मोरि मति थोरी।
रबि सनमुष षद्योत अँजोरी ॥ ,, (२)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्याम तामरस दाम सरीरं।
जटा मुकुट परिधन मुनिचीरं॥ ,, (३)
पानि चाप सर कटि तूनीरं।
नौमि निरंतर श्रीरघुबीरं॥ ,, (४)

शब्दार्थ—'खद्योत'=जुगनू। अँजोरी=उजाला, प्रकाश। तामरस=कमल। दाम=समूह। 'परिधन' (परिधान)=नीचे पहननेका कपड़ा, धोती आदि। भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा' सीस जटा सरसीरुह लोचन बने परिधन मुनिचीर',।

अर्थ—मुनि कहतेहैं कि हे प्रभो! मेरी बिनती सुनिए। मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ। आपकी महिमाकी हद नहीं है और मेरी बुद्धि थोड़ी है। जैसे सूर्यके सामने जुगनूका प्रकाशसमूह श्यामकमलके समान श्याम शरीर, जटाओंका मुकुट और मुनिवस्त्र (वल्कल आदि) कटिसे नीचे धारण किएहुए, हाथोंमें धनुषवाण और कमरमें तर्कश कसेहुए श्रीरघुवीर आपको मैं निरंतर (सदा, विना किंचित अंतर या बीच पड़ेहुए) नमस्कार करताहूँ।

पु० र० कु० १—'अस्तुत करौं कवन बिधि तोरी। महिमा अमित००' इति।—पूजाके विषयमें कहा कि पूजा बिबिधि प्रकार' की अर्थात् षोड़शोपचार पूजन किया। पूजाके उपरान्त स्तुति करनी चाहिए, वहभी पूजाका अंग है। स्तुतिके विषयमें मुनि कहतेहैं कि मैं स्तुति किस प्रकार करूँ अर्थात् वह तो किसी प्रकार मुझसे नहीं बनती। कारण कि स्तुतिमें बड़ी बुद्धि चाहिए, यथा—'मुनिवर परम प्रबीन जोरि पानि स्तुति करत'। परम प्रवीण लोगही आपकी स्तुति करसकतेहैं और 'मोरि मति थोरी' अर्थात् मैं क्षुद्रबुद्धिका हूँ, तब कैसे कहसकूँ।

२—'रबि सन्मुख खद्योत अँजोरी'। यहाँ महिमा अमित मोरि मतिथोरी' उपमेय और 'रबि सन्मुख खद्योत अँजोरी' उपमान वाक्य हैं। जैसे सूर्य्यके प्रकाशके आगे जुगनूका प्रकाश नहीं होसकता वैसेही आपकी अतुलित महिमाके आगे मेरी बुद्धि किंचितभी प्रकाश नहीं करती। यह दृष्टान्त अलंकार है। ३—[खर्रा—सूर्य्यके सामने चन्द्रमा और तारागण मलिन पड़जातेहैं। वा, मणि सरीखे जानपड़तेहैं तब

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भला जुगनू की क्या बात ? शिवसनकादि, शेष शारदादिकी मति चन्द्रादि-सी है जब येही उस अपार महिमाके आगे कुछ नहीं कहसकते, दंग रहतेहैं तब मैं कैसे कुछ कहसकूँ। यहाँ दीनताके कारण अपनेमें प्रवीणमतिकी हीनता कही। जैसे गोस्वामीजीने अपनी अत्यन्त दीनता हीनता कही और काव्य उनका सर्वोपरि है वैसेही सुतीक्ष्णजीकी स्तुति जानिए।)

३—'जटा मुकुट परिधन मुनिचीरं', पानि चापसर कटि तूनीरं और श्रीरघुवीरं'—इन तीनों चरणोंका तात्पर्य्य यह है कि पिताके वचन पालनकरने लिए आपने मुनिवेष धारण किया पृथ्वीका भार हरनेके लिए वीररूप धारण किया। इन दोनोंमें आपकी शोभा है यह जताने केलिए 'रघुवीरं' के साथ 'श्री' विशेषण दिया।—(खर्रा—'श्याम तामरस०' से अवतार सूचितकिया। नोट—वैजनाथ आदि कई टीकाकारोंने दामका अर्थ 'माला' कियाहै।]

मोह बिपिन घन दहन कृसानुः।
संत सरोरुह कानन भानुः॥ § १० (५)
निसिचर करि बरूथ मृगराजः।
त्रातु सदा नो भव-खग बाजः॥ ,, (६)
अरुन नयन राजीव सुवेसं।
सीता नयन चकोर निसेसं॥ ,, (७)
हर हृदि मानस बालमरालं †।
नौमि राम उर बाहु बिसालं॥ ,, (८)

शब्दार्थ—नो=मेरी, निसेस=निशि—ईश=रातका स्वामी, चन्द्र।

अर्थ—मोहरूपी घने वनको जलानेके लिए अग्निरूप, सन्तरूपी कमलवनके (प्रफुल्लित करने को) सूर्य्यरूप, निश्चररूपी हाथियोंके झुंडके (दलन करनेके) लिए सिंह और भवरूपी पक्षी (को चंगुलमें लपेटकर मारडालने) के लिए बाज़रूप ऐसे आप मेरी सदा रक्षा करें लाल कमलके समान नेत्र और सुन्दर वेश वाले, सीताजीके नेत्ररूपी चकोरके चन्द्र, शिवजीके हृदयरूपी मानसरोवरके बालहंस, विशाल

† भा० द० और का० में यही पाठ है। ना० प्र० में 'राजमरालं' पाठ है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

छाती (वक्षःस्थल) और भुजाओंवाले रामचन्द्रजी—मैं आपको प्रणाम करताहूँ।

पु० र० कु—१ (क) 'मोह बिपिन घन दहन कृसानुः' संत ..' अर्थात् मोहादि दोषोंको नाश करके आप सन्तोंको सुखी करतेहैं। भीतरके शत्रुओं मोहदशमौलि आदिका विनाश कहकर तब बाहरके खलोंका नाश कहतेहैं—निसिचर करिबरूथ मृगराजः'। (ख)—मोह को वन का रूपक जहाँ तहाँ कई ठौर दियाहै, यथा—'सुनु मुनि कह पुरान बुध संता। मोह बिपिन कहँ नारि बसंता', 'बन बहु बिषम मोह मद माना'। (ग)—भीतर बाहरके शत्रुओंका नाश कहकर तब भवका नाश कहा।—(नोट—यहाँ परंपरित रूपक है।)

२—'अरुन नयन राजीव सुवेसं। सीतानयन चकोर निसेसं'।—कमलनयन हो, सुन्दर वेश है और सीता-नयन-चकोरके चन्द्र हो, यथा—अधिक सनेह देह भइ भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी'। 'अरुण' शृङ्गार और वीर दोनोंमें घटित होताहै।

३—यहाँ प्रथम शोभा कहकर बहुत पीछे 'सीतानयन चकोर निसेसं' कहाहै, यहभी साभिप्राय है। प्रथम ग्रीष्म, फिर वर्षा तब शरद होताहै। उसी क्रमसे यहाँ कहरहेहैं। 'ग्रीषम दुसह रामबनगमनू। पंथकथा खर आतप पवनू'—वनगमन ग्रीष्म है; यहां 'जटा मुकुट...' वनवेष प्रथम कहा। फिर निश्चरयुद्ध कहा—'निसिचर करिबरूथ मृगराजः; यह वर्षा है, यथा—'बरषा घोर निसाचर रारी। सुरकुल-सालि सुमंगलकारी' वर्षाके पश्चात् शरद है वह शरद क्या है—'राम-राजसुख बिनय बड़ाई। बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई'—(बा० § ४१)। और, यहाँ भी शरदके चन्द्र से मुखारवृन्दकी उपमा अंतमें दीहै। जैसे ग्रीष्म और शरदके बीचमें वर्षा वैसेही यहाँ वनगमन और सीतामिलापके बीचमें निश्चरवध आया। निश्चरवध हो तब सीताजी मिलें तब आपके मुखचन्द्रकेलिए उनके नयन चकोर हों। अतः प्रथम 'श्रीरघुवीर' कहकर इतने पीछे 'सीतानयन चकोर निसेसं' कहा। रावण मरे तब तो इनका दर्शन हो अतः राक्षसोंका मरण कहकर तब 'सीतानयन०' कहा।' पुनः, ४—यहाँ अग्नि, सूर्य्य और चन्द्र तीनों तेजस्वियोंकी उपमा दीं—'मोह बिपिनघन दहन कृसानुः। संत सरो-रुह कानन भानुः', 'सीतानयन चकोर निसेसं'। तीनों तेजस्वी हैं, यथा-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'तेजहीन पावक ससि तरनी'। येही तीन तेज और प्रकाशयुक्त हैं, इन तीनोंकी उपमा देकर सूचित किया कि आप सर्व-तेज-मय हैं।

५ (क)—'हरहृदिमानस बालमरालं'। बालकका पालनपोषण होताहै वैसेही शिवजी हृदयमें आपका पालन निरंतर करतेहैं।

(ख) 'नौमि राम उर बाहु बिसालं'। दासोंको भुजाओंसे उठाकर हृदयसे लगातेहैं; अतः उर और बाहुकी विशालता कही। यथा—'दीन वचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदय लगावा' सुं० § ४५ (२)। पुनः 'भुज बिसाल गहि लिये उठाई। परम प्रीति राखे उर लाई'। पहले पंजा वा चंगुल कहा। क्योंकि बाज चंगुल से पक्षियोंको झपटलेताहै। अब विशाल भुज कहा क्योंकि ये सर्वत्र पहुँचतीहैं ऐसी लंबी हैं कि भुशुण्डिने सर्वत्र उनको अपने पीछे देखा और विभीषणको दूरसेही उठालिया—सुं० §४५ (२) देखिए।

प्र०—हर हृदिमानस बालमरालं'। यहाँ बालहंस कहकर जनाया कि वे बालरूपके उपासक हैं—'बंदउँ बालरूप सोइ रामू'।

संसय सर्प ग्रसन उरगादः।
समन सुकर्कस † तर्क बिषादः॥ §१०/४ (९)
भवभंजन रंजन सुरजूथः।
त्रातु सदा नो कृपाबरूथः॥ ,, (१०)
निर्गुन सगुन बिषम सम रूपं।
ज्ञान गिरा गोतीतमनूपं ‡॥ ,, (११)
अमलमखिलमनवद्यमपारं।
नौमि राम भंजन महिभारं॥ ,, (१२)

शब्दार्थ—सुकर्कश=अत्यन्त कठोर, प्रचण्ड, खड्गसदृश काटनेमें तीव्र। तर्क—अत्रिस्तुतिमें देखिए। बरूथ=झुंड, समूह। अखिल=सम्पूर्ण, सर्वाङ्ग पूर्ण अखण्ड। अनवद्य=निर्दोष, बेऐब, अनिंद्य।

अर्थ—संसयरूपी सर्पको निगलजानेकेलिए गरुड़रूप, अत्यन्त कठिन तर्कनाओंके दुःखको नाश करनेवाले, भवको तोड़ने (ध्वंस,

† पं० शिवलालपाठक कह०, ने सकर्क सतर्क' पाठ दियाहै और वै०, एवं कोदोरामजीने 'सुकर्क सतर्क'। ‡ 'गोतीतमरूपं'—(क० न० प्र०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नष्टकरने, मिटाने) वाले, और देववृन्दको आनन्द देनेवाले-ऐसे कृपाके समूह आप मेरी सदा रक्षा करें। निर्गुण-सगुण विषम और समरूप, ज्ञान, वाणी और इन्द्रियोंसे परे उपमारहित, निर्विकार, अखिल, निर्दोष, अनंत, पृथ्वीके बोझके नाशक ऐसे रामचन्द्रजी आपको मैं प्रणाम करताहूँ।

पु० र० कु०—१-संसय सर्प ग्रसन उरगादः।...' इति। पूर्वार्द्ध में संशयरूपी सर्पका नाश कहा। विषका नाश बाकी रहा सो उत्तरार्द्ध में कहा। सर्प काटताहै तो लहरें उठतीहैं, संशयसर्पके ग्रसनेसे अनेक कुतर्कनाएँ रूपी लहरें उठा करतीहैं, यथा—'संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता' कुतर्कही लहरेंहैं। सर्प, सर्पका विष, संशय और उससे उठीहुई तर्कनाएँ दोनोंका नाश कहा। जब संशय और तर्कनाओंका नाश होताहै तब भवका नाश होताहै अतः दोनोंका नाश कहकर तब भव भंजन००' कहा। इन सबसे बचाया अतः अन्तमें कृपाबरूथ कहा। 'उरगादः' नामभी सार्थक साभिप्राय और उपयुक्त दियाहै। ग्रसत=ग्रास करतेहैं।, और उरगादा=सर्पको खानेवाला। 'कर्कशं कठिनं क्रूरं कठोरं निष्ठुरं दृढं इत्यमरः।' सु=अत्यन्त।

२ खर्रा—कर्कश तर्कका जो विषाद है उसके नाशक हो अर्थात् भक्तके हृदयमें कुतर्कना नहीं होनेपाती यथा—'दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई'। कुतर्कसे नरक मिलताहै, यथा—'कल्प २ भरि इक इक नरका। परहिं बिदूषहिं जे श्रुति तर्का'। कुतर्कको भयंकर नदी कहाहै जिसमें पड़कर मनुष्य बहही जाताहै, यथा—'नदी कुतर्क भयंकर नाना'। ३—यहाँ परंपरित रूपक और द्वितीय उल्लेख अलंकार हैं।

४—'निर्गुन सगुन बिषम समरूपं...' इति। (क)—निर्गुणभी सगुणभी, विषमभी समभी और दोनों रूप वाणी, ज्ञान और इन्द्रियोंसे परे, सबसे भिन्न है। ऐसे परस्पर विरोधी गुण एक साथ धारण किए होनेसे 'अनूप' हो। कोई उपमा चौदहो भुवनोंमें नहींहै। (ख)—पहले निर्गुण आदि विशेषण देकर अंतमें कहा 'नौमि राम भंजन महि भारं' भाव कि आप ऐसे होकरभी पृथ्वीका भार नष्ट करनेकेलिए अवतार लेतेहैं। ऐसा करके आप देवताआदि को आनन्द देतेहैं। अनूप यथा—'जयराम अनूप निर्गुन सगुन गुनप्रेरक सही'-(जटायु-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कृत स्तुति)। यहाँ यथासंख्य नहीं है जैसे 'तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ। एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा। एक रचइ जग गुनबस जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके।

नोट—विनायकीटीका एवं और भी दो एक टीकाकारोंने यहाँ यथासंख्यालंकार मानकर अर्थ कियाहै इस तरह कि 'आपका निर्गुण स्वरूप तो सदा एकरस विकाररहित होताहै और सगुणरूप सदा बदलनेवाला होताहै सगुण अर्थात् स्वीकार करने योग्य उत्तम गुणों सहितहैं और निर्गुण अर्थात् छोड़ने योग्य दुर्गुणोंसे रहित है'—(वि०टी०) पर यह अर्थ ठीक नहीं है। यह सब भगवान् रामचन्द्रजीके स्वरूपका वर्णनहै, सब उन्हींके विशेषण हैं। विरोधाभासालंकार है। यही भगवान्में विलक्षणताहै कि वे विरोधी गुणोंको धारण किएहैं। अ० §२१८ में विषम समका भाव स्पष्ट देवगुरुने इन्द्रसे कहाहै, यथा—

'जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पुन्य गुन दोषू॥ ३॥
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करहि सो तस फल चाखा॥ ४॥
तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा॥ ५॥
अगुन अलेख अमान एकरस। राम सगुन भये भरत प्रेम बस॥ ६॥
राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी॥ ७॥

निर्गुण आदि सबके भाव बाल और अयोध्यामें कईबार लिखेजाचुके हैं—(निर्गुण=तीनोंगुणोंसे परे। सगुण=कृपा, वात्सल्य आदि दिव्य गुणोंसे युक्त। भक्त अनेक भावनाओंसे प्रभुका स्मरण हृदयमें करतेहैं, अतः उनके हृदयमें सम हैं और अभक्त शत्रु मानतेहैं इसलिए उनके हृदयमें शत्रु बनकर विहार करतेहैं। इसीसे भक्त प्रह्लादकी रक्षाकी, हिरण्यक शिपुको मारा। पुनः, यथा—'कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसमहु चाहि'।—विशेष § २१८ (३-५) एवं § २८८ (६) में देखिए।

२—किसी २ ने ऐसा अर्थ कियाहै कि 'आपका निर्गुनरूप विषमरूप है, ध्यान धारण करनेमें अगम है और सगुण समरूपहै अर्थात् इसरूपसे आप सुगमतासे प्राप्त होतेहैं।

भक्त कल्पपादप आरामः।
तर्ज्जन क्रोध लोभ मद कामः॥ १४॥ (१३)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अति नागर भवसागर सेतुः ।
त्रातु सदा दिनकरकुलकेतुः ॥ ,, (१४)
अतुलित भुज प्रताप बलधामः† ।
कलिमल बिपुल बिभंजन नामः ॥ ,, (१५)
धर्म बर्म नर्मद गुन ग्रामः ।
संतत संतनोतु मम रामः ॥ ,, (१६)

शब्दार्थ—पादप=वृक्ष । आराम=बाग । तर्जन=धमकाने, भयप्रदर्शन, डाँट फटकार, डपटने, तिरस्कार करनेवाले । विपुल=समूह । विभंजन=विशेष अर्थात् पूर्ण रूपसे नाशकरनेवाले । नर्मद=आनन्द देनेवाले । वर्म=कवच, ज़िरहबख़्तर । संतनोतु=शं तनोतु=कल्याणका विस्तार करो या बढ़ाओ ।

अर्थ—भक्तोंके लिए कल्पवृक्षके बाग, क्रोध, लोभ, मद, कामको, धमकानेवाले (अर्थात् आप भक्तोंको दुःख देनेवाले क्रोधादिको नाश करते हैं), भवसागरके पार उतरनेके लिए सेतु (पुल बाँधनेमें) अत्यन्त चतुर, सूर्य्यवंशकी ध्वजा, आप सदा मेरी रक्षा करें । भुजाओंका प्रताप अतुलनीय है, बलके धाम ‡ कलिके पापसमूहका नाशक जिनका नाम है, धर्मके लिए कवच रूप, और जिनके गुणग्राम (यश) आनन्द देनेवाले हैं ऐसे आप रामचन्द्रजी मेरे कल्याणका निरन्तर विस्तार कीजिए ।

पु० र० कु०—१—"भक्तकल्पपादप-आरामः ।००" इति ।—(क)-भक्तोंकेलिए कल्पवृक्षके बाग़ हो । इस कथनका भाव कि पृथ्वीका भार उतारकर आपने सबको सुखी किया पर भक्तोंको सुख देनेके लिए आप अनेकरूप हैं और सर्वत्र हैं । बाग में एक दो वृक्ष नहीं वरन् अनेक होते हैं जिसमें भक्त जहाँभी जायँ तहाँही उसकी छायाका सुख मिले । (ख) कल्पवृक्ष केवल अर्थ, धर्म और काम देताहै, मोक्ष नहीं देसकता । पर आप मोक्षभी देतेहैं । यह बात "अति नागर भवसागर सेतुः' से जनादी । भवसागरसे पार होना, संसारबंधनसे मुक्त होना मोक्ष है ।

† 'धामं, नामं'—(का०), 'धामा, नामा'—(न० प्र०) ।
‡ वा—अतुलित बल और प्रतापकी धाम आपकी भुजा है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—'तर्जन क्रोध लोभमदकामः'। (क)—कल्पवृक्ष सम कहा और अर्थ धर्मादिकी प्राप्ति कही। प्राप्त होनेपर उनकी रक्षाभी चाहिए नहीं तो चोर लूट लेजायँ। अतः "तर्जन०" कहा। (ख)—अर्थका बाधक क्रोध है, धर्मका लोभ, कामका मद और मोक्षका बाधक काम है, यथा कलिमलग्रसे धर्मसब...भये लोग सब मोह बस लोभ ग्रसे सुभकर्म, 'सुभगति पाव कि परतियगामी' इत्यादि!

३—"अति नागर भवसागर सेतुः! त्रातु०" इति—(क)—चारों पदार्थोंके बाधकोंका नाश करके भवसागरका पुल बाँधकर भक्तोंको भवपार करतेहो। अति नागर' का भाव कि लंकाके लिए समुद्रमें पुल बाँधनेमें आप नागर हैं, यह सेतु आपने मर्यादासहित बाँधा यथा—'ममकृत सेतु जे दरसन करिहहिं।००' 'नागर' कहा क्योंकि समुद्रमें और कोई पुल न बाँध सकाथा; इसे सुनकर रावणभी घबड़ा उठा। उसे उसे बड़ा आश्चर्य और विस्मय हुआ तब दूसरेकी बात ही क्या? भवसागरके सेतु बाँधनेमें 'अति नागर' हो।—सुं० §५९ (४) देखिए। (ख) 'भवसागर सेतुः' कहकर जनाया कि वह सेतु कैसे बनाया और क्या है। सूर्य्यवंशमें अवतार लेकर सेतु बनातेहो। चरित ही सेतु है, यथा—'सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं'। (ग)—'त्रातु सदा'—किनसे क्रोध, लोभ, मद, काम और भव इन पाँचोंसे। सदा रक्षा चाहतेहैं; क्योंकि ये 'मुनि विज्ञान धाम मन करहिं निमिष महँ छोभ', 'विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदयका नर बापुरे'।

४—प्रथम भक्तोंकेलिए 'कल्पपादप आराम' होना कहा फिर भवसागरके सेतुरचनामें अति नागर कहा। इस प्रकार दो बातें कहकर जनाया कि आप भक्तोंको इहलोक और परलोक दोनोंमें सुख देतेहैं।

५—"अतुलित भुज प्रताप बलधामः।००' इति (क)—यहाँ चार चरणोंमें रूप, नाम, लीला और धाम चारों कहे। 'अतुलित भुज००' से रूप, 'कलिमल बिपुल बिभंजन नामं' से नाम, 'धर्म वर्म नर्मद गुनग्रामं' से लीला और 'सबके हृदय निरंतर बासी' से धाम। संतत संतनोतु मम रामः' को बीचमें रखकर जनाया कि रूप, नाम, लीला और धाम इन चारोंको हमारे हृदयमें बसाकर आप हमारे कल्याणको बढ़ावें, यथा—'केहरिसावक जनमन बनके'। (ख) 'कलिमल विभंजन नामः', यथा—'रामनाम नर केसरी कनककसिपु कलिकाल०'। 'नाम सकल कलि कलुष निकंदन'।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

६—धर्म वर्म, यथा—'माया मानुष रूपिणौ रघुवरौ सद्धर्म वर्मौ हितौ'—(कि०)। 'धर्म वर्म नर्मद गुनग्रामः' इति।—गुणग्रामकथन श्रवणसे धर्म जानाजाताहै इसीसे 'धर्मकी रक्षा है। ७—(खर्रा)—सुख विस्तार करनेपर ही स्तुतिकी समाप्ति की धर्म वर्म०'—राम गुणग्राम धर्मका कवच और मोक्ष सुखका दाताहै। वै०—'तर्जन क्रोध०'इति।—भाव यह कि कामादिकके आतेही आप ऐसा खेद प्राप्तकर देतेहैं कि वे ऊब कर आपही त्याग देतेहैं।*

जदपि बिरज व्यापक अबिनासी।
सबके हृदय निरंतर बासी॥ १४ (१७)
तदपि अनुज श्रीसहित खरारी।
बसतु मनसि मम काननचारी॥ ,, (१८)
जे जानहिं ते जानहु † स्वामी।
सगुन अगुन उर अंतरजामी॥ ,, (१९)
जो कोसलपति राजिवनयना।
करौ सो राम हृदय मम अयना॥ ,, (२०)

शब्दार्थ—बिरज = निर्मल, निर्दोष, विशुद्ध। = प्रकृति गुण रज तम आदि रहित।

अर्थ—यद्यपि आप विशुद्ध, व्यापक, नाशरहित और सब प्राणियोंके हृदयमें निरंतर वासकरनेवाले हैं, तोभी, हे खरारी! भाई लक्ष्मण और श्रीसीताजी सहित वनमें विचरनेवाले मेरे मन रूपी वनमें बसिए। आपको सगुण, निर्गुण हृदयमें रहनेवाले अन्तर्यामी रूप जो जानतेहों वे जानें पर मेरे हृदयमें तो जो कोशलके राजा कमलनयन राम हैं, वही घर बनाएँ।

* मा० शं०—'तरजन क्रोध लोभ मद कामं'। इसके एक एकके उदाहरण ये हैं—१—'भयेउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय बचन काम परितोषा'। २—'आसा बसन व्यसन यह तिनहीं। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं—(सनकादिक) ३—'भरतहि होइ न राजमद०'। ४—'बैठे सोह कामरिपु कैसे।'

† 'जानहु'—(का०, न० प्र०)। 'जानहुँ'—(भ० द०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु०—१ 'जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी...' इति। 'ब्यापक अबिनाशी' कहनेका भाव कि सबमें आप ब्यापक हैं पर सबके नाशसे आपका नाश होजाय सो बात नहीं है, आपका विनाश नहीं होता। पुनः, सबमें व्याप्त होने पर भी उनका विकार आपमें नहीं आता, आपमें मलिनता नहीं छूजाती, यह बात जतानेकेलिए 'विरज' कहा। सबके हृदयमें सदा वास करतेहो क्योंकि व्यापक हो; अतः निश्चयहै कि हमारे हृदयमें भी अवश्य आपका निवास व्यापकरूपसे है।—यही सिद्धान्त अगस्त्यजीका है, यथा—

'जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता। अनुभव गम्य भजहिं जेहि संता॥
अस तव रूप बखानौं जानौं। फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानौं॥'

पुनः, वेदसिद्धान्त यही है—जे ब्रह्म अज अद्वैत अनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं। ते कहहिं जानहिं नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं। पुनः, कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव अव्यक्त जेहि श्रुति गाव। मोहि भाव कोसलभूप श्रीराम सगुनसरूप॥—(इन्द्र वाक्य)

२—'तदपि अनुज श्री सहित खरारी। बसतु...' इति। (क) 'खरारी' का भाव कि जैसे दण्डकारण्यमें बसकर आपने खरको मारा वैसेही हमारे मनरूपी बनमें बसकर क्रोधादि विकारोंका नाश कीजिये।—'खर है क्रोध, लोभ है दूषन, काम बसै त्रिस्रन मैं'। यहाँ भाविक अलंकार है। यहाँ 'खरारी' भविष्य बात कही। भाविक लोगोंको भविष्य बातभी भूत सरीखी जानपड़तीहै। विशेष ब० §१६१ छन्द 'सोभासिन्धु खरारी' में देखिए।—[१ प्र०—हे खरारि काननचारी। हमारे मनमें बसो। भाव यह कि हमारा मन मानों एक संकल्पोंका वन है।—'केहरि सेवक जन मन बन के', 'पुरुषसिंह बन खेलन आए'।—ब० § ३१ (७) देखिए २—खरमें खरारिका एक भाव यह दियाहै कि जैसे खरारिके मारनेमें आपका दोष नहीं था वे सब आपसमें ही एक दूसरेको राम देखकर लड़मरे। वैसेही आपके बसनेसे मेरे मन-वनके दुष्ट आपही मरमिटेंगे। अतः वही रूप बसाइए। यथा—'तब लगि हृदय बसत खलनाना। लोभ मोह मत्सर मद माना॥ जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटिभाथा।'—(सुं० §४६)।]

(ख)—'तदपि' का भाव कि इसमें निहोरा देतेहैं, एहसान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लेतेहैं। कदाचित् कोई कहे कि ईश्वर तो सर्वभूतमय है वही तुमभी मानो, यथा—'जेहि पूछउँ सोइ मुनि अस कहई। ईश्वर सर्वभूतमय अहई' उसपर कहतेहैं कि जो ऐसा जानतेहैं सो जानैं उनके लिए वैसेही बसिए।

३—'जे जानहिं ते जानहु स्वामी...' अर्थात् मैं निर्गुण सगुण अन्तर्यामी नहीं जानता, मैं तो इसी रूपको सब कुछ जानता हूँ। ४—'जो कोसलपति राजिवनयना...' अर्थात् राम अन्तर्यामीभी कहलातेहैं, हमें उन अन्तर्यामी की चाह नहीं; जो कोशलपुरी अयोध्याके राजा हैं, कमलनयन हैं, वे राम हमारे हृदयमें घर बनाइए अर्थात् इस साक्षात् रूपसे बसिए।—यहाँ विशेषक अलंकार है।

५—पूर्व कहा कि 'बसतु मनसि मम काननचारी'। काननचारी रूपकी अवधि १४ वर्ष है उसमें वर्ष दिन रहगयाहै। आगे लौटकर अवधमें बसेंगे अतः काननचारी रूपका वर माँगकर यह वर माँगा कि 'जो कोसलपति०'। भाव कि अवध लौटने पर फिर भूपरूपसे बसिएगा। (ख)—पहले काननचारी रूपके बसानेके लिए मनको कानन कहा, फिर जब कोशलपति रूपसे बसनेका वर माँगा तब हृदयको भवन कहा क्योंकि वनविहारीरूप तो वनमेंही विचरताहै वह तो वनमेंही रहेगा और राजारूप राजधानीके महलोंमें रहाचाहे उसरूपके लिए महलही चाहिए। अतएव एक बार मनको वन और दूसरी बार भवनसे रूपक दिया।

मा० हं०—ग्रंथमें अनेक स्थलोंमें—'यत्सत्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः' 'एक अनीह', 'झूठउ सत्य जाहि बिनुजाने...इत्यादि—जीव ब्रह्मैक्य और मायावाद स्पष्ट उल्लिखित है। अतएव यह स्पष्ट है कि वेदान्त दर्शनमें गोसाईंजी श्रीशंकराचार्य्यजीकेही अनुयायी थे। परन्तु उनका खिंचाव ज्ञानमार्गकी ओर विशेषरूपसे नहीं दिखता। चाहे अपनी रुचिके कारण हो या देशकाल स्थितिकी अनुकूलतासे हो, उन्होंने रामचरितमानसमें ज्ञानकी अपेक्षा भक्तिकोही प्रधान्य दियाहै।

यद्यपि रामानुज अथवा वल्लभका द्वैतवाद गोसाईंजीको इष्ट न था तौभी उपासना उन्होंने इन्हींसे लीहै—यह बात नीचेदिएहुए प्रमाणोंसे सिद्ध होती है। * यह होते हुएभी इस वल्लभसंप्रदायका शिवविष्णुभेद गोसाईंजीका

* 'करम बचन मन छाँड़ि छल जब लगि जन न तुम्हार। तब लगि सुख

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मान्य न हुआ। तात्पर्य यह कि गीतावली निष्काम कर्मयोग, श्रीशंकराचार्यका ज्ञानयोग और वल्लभाचार्य्यका भक्तियोग इन तीनोंके संयोगसे बनाहुआ स्वामीजीका यह दार्शनिक योग एक अपूर्व तीर्थराज जैसा निर्माण इसका परिमाण बहुतही शुद्ध हुआ। उनके अनुयाइयोंको किसी प्रकारका भिन्न संप्रदाय प्रचलितकर द्वेष फैलानेका अवसर न मिलसका हम यही उत्कृष्ट लोकशिक्षाका लक्षण समझतेहैं।

अन्तमें कहना यही है कि कर्म ज्ञान और भक्तिका समुच्चयात्मक योग होना असंभव है इस शंकाका कोई कारण नहीं। इस समुच्चयको ही पराभक्ति, ज्ञानोत्तरा भक्ति इत्यादि अनेक नाम दियेगये हैं। सब साधनोंकी परिपूर्णता यही भक्ति है। अद्वैतसिद्धान्तके परस्कर्ता श्रीआदिशंकराचार्यनेभी अन्तमें इसी योगका अवलंबन इसप्रकार कियाहै—'सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामिकीनस्त्वम्। सामुद्रोहि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः' उन्हींके अनुयायी अद्वैत सिद्धिकर्ता श्रीमधुसूदन सरस्वती इसप्रकार कहगए हैं—

'ध्यानाभ्याससमाहितेन मनसा यन्निर्गुणं निष्क्रियं। ज्योतिः किंचनयोगिनो यदि परं पश्यंति पश्यंतु ते। अस्माकंतु तदेव लोचन चमत्काराय भूयच्चिरं। कालिंदी पुलिनेषु यत्कमपि तन्नीलं महो धावति। इसी मार्गका अवलम्ब गोसाईं जीने इस प्रकारसे कियाहै—

'जे जानहिं ते जानहु स्वामी। सगुन अगुन उर अन्तरजामी॥ जो कोसलपति राजिव नयना। करउ सो राम हृदय मम अयना'।

उक्त प्रकारसे विचार-परिवर्तन भासित होना संभव है परन्तु वह केवल भास है। वह विचार-परिवर्तन नहीं है किन्तु साधन परिपाक है। सगुणसे (अर्थात् कर्म और उपासनासे) निगुण (अर्थात ज्ञान) और फिर निर्गुणसे सगुण यह साधन परिपाकका क्रम है। यही पूर्णावस्था है और वही ज्ञानोत्तरा भक्ति कहीजातीहै ज्ञानका परिपाक भक्तिमें होना यही उसका फल है। श्रीशंकरजीकी रामभक्ति इसी प्रकारकी है, और उसीको अद्वैत भक्ति कहना चाहिए। वह अतीव दुष्प्राप्य है जैसा कि गीताजीमें कहा है—'वासुदेवः सर्वमिति समहात्मा सदुर्लभः'। स्वामीजीके निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन न जानइ कोइ' का आशयभी यही होनाचाहिए। भारतीय आध्यात्मिक वाङ्मयमें इसी भक्तिको महती गाईहुई दिखातीहै। स्वामीजीभी उसे इस प्रकार कहतेहैं—

सपनेहु नहीं किये कोटि उपचार। 'सेवक सेव्यभाव बिनु भव न तरिय उरगारि। भजहु रामपदपंकज भव सिद्धन्त विचारि।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'जे असि भगति जानि परिहरहीं । केवल ज्ञानहेतु स्रम करहीं ।
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी । खोजत आक फिरहिं पय लागी ' ।
'अस बिचारि जे मुनि बिज्ञानी । जाचहिं भगति सकल सुखखानी' ।
भा० स्कं० १० अ० १४ में भी वही मत इस प्रकार उदित है—
श्रेयःस्रुतिं भक्तिमुदस्यते विभो क्लिश्यन्ति ये केवल बोधलब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥

अस अभिमान जाइ जनि भोरें ।
मैं सेवक रघुपति पति मोरें ॥ (२१)
सुनि मुनि बचन राम मन भाए ।
बहुरि हरषि मुनिबर उरलाए ॥ ,, (२२)
परम प्रसंन जानु मुनि मोही ।
जो बर मागहु देउँ सो तोही ॥ ,, (२३)

अर्थ—ऐसा अभिमान भूलकरभी न मिटे कि मैं सेवक हूँ और रघुनाथजी मेरे स्वामी हैं । मुनिके वचन सुनकर रामजीके मनको वे अच्छे लगे । प्रसन्न होकर मुनिश्रेष्ठको उन्होंने फिर हृदयसे लगा-लिया । हे मुनि मुझे परम प्रसन्न जानो । जो वर माँगो वही मैं तुम्हेंदूँ ।

पु० र० कु—१—"अस अभिमान जाइ जनि भोरे ।००" इति ।—अभिमान आनेसे ज्ञानका नाश होताहै, यथा—'मान ते ज्ञान पान ते लाजा' । 'अस अभिमान' का भाव कि और प्रकारके अभिमान—(जाति, योवन, विद्या, बल, ऐश्वर्य्य आदि)—जायँ, नष्ट होजायँ क्योंकि उनके नष्ट हुए विना जीवको सुखकी प्राप्ति नहीं, यथा—'तुलसिदास मैं मोर गए बिनु जिय सुख कबहुँ न पावै'—(विनय) पर यह अभिमान सदा बना रहे, इस अभिमानके नाशसे सेवकधर्मका नाश है, सेवक होनेका अभिमान भूलकरभी न छूटे । देखिए लक्ष्मण जीने भी क्या कहाहै—'जौं तेहि आजु बधे बिनु आवौं । तौ रघुपति-सेवक न कहावौं', पुनः, आजु रामसेवक जस लेऊँ । भरतहि समर सिखावन देऊँ' । [भाव यह कि सेवक-सेव्य भाव सदा बनारहे । भुशुण्डिजीनेभी गरुड़जीसे यही कहाहै—'सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि । भजहु राम पद पंकज अस सिद्धान्त बिचारि' —(उ० § ११९) ।]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—'बहुरि हरषि मुनिवर उर लाये' इति।—एकबार उरमें लगा चुकेहैं, यथा—'भुज बिसाल गहि लिए उठाई परम प्रीति राखे उर लाई', अब फिर लगाया। अतः 'बहुरि' पद दिया। 'उर लाये' कि हम तो तुम्हारे हृदयमें बसेंगेही तुम हमारे उर में बसो।—(नोट—इससे अपना परम प्रेम और प्रसन्नता मुनिपर दर्शितकी जैसा आगे प्रभु स्वयं कहतेहैं।]

३—"परम प्रसन्न जानु मुनि मोही।००" अर्थात् प्रसन्न तो हम सदाही रहतेरहे, तुम्हारी विनय सुनकर आज तुमपर मैं परम प्रसन्न हूँ; अतः जो माँगो सो दें। तात्पर्य कि तुम हमारे निज जन' हो और 'जन कहँ कछु अदेय नहिं मोरे'।

'अस अभिमान जाइ जनि भोरे।००' इति। यह बात स्मरण रखने योग्य है कि भक्त किसी प्रकारकी मुक्ति नहीं चाहता वह तो यही चाहताहै कि मेरा सेवक स्वामिभाव कभी न छूटे। इसीसे कहाहै कि

'मुक्ति निरादरि भगति लुभाने'

देखिए श्रीहनुमान्‌जीने प्रभुसे क्या कहाहै—

"भवबंधच्छिदेत्तस्यै स्पृहयामि न मुक्तये।
भवान् प्रभुरहं दास इति यत्र विलुप्यते॥"

भाव यह कि भवबंधनके निवारण करनेवाली मैं उस मुक्तिको कदापि नहीं चाहता जिसमें यह भाव कि प्रभु स्वामी हैं और मैं दास इस भावका विलोप होजाताहै।

भगवान् कपिलदेवनेभी देवहूतिजीसे ऐसाही कहाहै—

"सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनम् जनाः॥"

अर्थात् सालोक्यादि पाँचों प्रकारकी मुक्तियोंको हमारे जन हमारे देनेपर भी नहीं ग्रहण करते।

पुनः यथा—न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्। न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पिताप्मेच्छति मद्विनान्यत्॥

अर्थात् मेरा अन्यभक्त जो मुझको आत्मसमर्पण कर देताहै ब्रह्माके पदको, महेन्द्र पदको, सार्वभौम राज्य एवं पाताल राज्यको तथा योगसिद्धि और मोक्ष तककीभी चाह नहीं करता, एक मुझीको चाहताहै। वैसेही सुतीक्ष्णजी यहाँ बारंबार सगुणस्वरूपकी भक्तिका वर माँगतेहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाचा ।
समुझि न परै झूठ का साचा ॥ §$\frac{१०}{४}$ (२४)
तुम्हहि नीक लागौ रघुराई ।
सो मोहि देहु दास सुषदाई ॥ ,, (२५)
अबिरल भगति बिरति बिज्ञाना ।
होहु सकल गुन-ज्ञान-निधाना ॥ ,, (२६)

अर्थ—मुनि कहतेहैं कि मैंने वरदान कभी नहीं माँगा, मुझे समझ नहीं पड़ता कि क्या झूठ है और क्या सत्य है। हे रघुराई! हे दासोंको सुख देनेवाले आपको जो अच्छा लगे वही दासोंको सुखदेनेवाला वर मुझे दीजिए। (प्रभु बोले कि) अविरल भक्ति, वैराग्य, विज्ञान और समस्त गुणों और ज्ञानके निधान हो।

१ पु० र० कु०—'मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाचा...' इति। मुनि ने माँगा था कि श्रीजानकीलक्ष्मणसहित हमारे उरमें बसिए—'बसतु मनसि मम काननचारी'। उसपरभी रामजी कहरहेहैं कि वर माँगो' इस कारण मुनि सोचमें पड़गए, विचार करने लगे कि इससे सुन्दर श्रेष्ठ कौन वर है जो मागूँ, क्या मेरे वर में कोई कसर रहगईहै, अवश्य होगी तभी तो प्रभु माँगनेको कहतेहैं। भगवान् यहाँ उनकी परमान्यता प्रकट करना चाहतेहैं। और स्वयंभी उनके आर्तताके रहस्यका आनन्द लेनाचाहतेहैं। कोई और ऐसा वर न समझ पड़ा, अतएव उन्होंने कहा कि मैंने तो कभी वर किसीसे माँगा नहीं इससे मेरे समझमें कुछ नहीं आता कि क्या उत्तम है। जो माँगा जाय इसलिए जो आपको अच्छा लगताहो और जो सेवकको सुखद हो वह स्वयं सोचकर दीजिए। भगवानने जो वर दिया—'अविरल भक्ति०', यही भक्तसुखदायी है और उनको प्रिय लगताहै और जब किसी पर परम प्रसन्न होतेहैं तभी यह वर उसे देतेहैं—ये सब बातें यहाँ जनाई।

२—कु०, वै०—भाव यह कि मुझे तो केवल आपका आशा भरोसा रहाहै। सो आपका दर्शन प्रथम २ आज प्राप्त हुआ इससे पहले माँगता किससे? किसी दूसरेसे कभी माँगाहोता तो समझा जाता कि वर माँगना जानतेहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा ।
अब सो देहु मोहि जो भावा ॥ § $\frac{१०}{४}$(२७)

अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम ॥
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम ॥ § $\frac{११}{५}$

अर्थ–जो बर प्रभुने दिया वह मैंने पाया, अब जो मुझे अच्छा लगता वह दीजिए। हे प्रभो रामजी ! भाई लक्ष्मण और जानकीजी सहित धनुषबाण धारी रामरूप मेरे निष्काम हृदय रूपी आकाशमें चन्द्रमाके समान सदा बसिए।

पु० र० कु० १—'अब सो देहु मोहि जो भावा' इति। (क)—जब भगवान्‌ने वर दिया तब समझपड़ा कि जगत् असत्य है, प्रभुही सत्य हैं, यथा—'उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि-भजन जगत सब सपना'। पुनः, (ख)—खर्रा—भाव यह कि जो आपने दिया वह मैंने अंगीकार किया। पर अब मुझे ये कुछ अपनी रुचिके आगे नहीं भाते जो अब उपजी है।

२—आदि मध्य अवसान तीनोंमें मुनिने एकही वर माँगा।

(१) 'तदपि अनुज श्री सहित खरारी। बसतु मनसि मम काननचारी' (आदिमें)
(२), जो कोसलपति राजिव नयना। करहु सो राम हृदय मम अयना' (मध्यमें)
(३) 'अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम। मम हिय००बसहु० (अंतमें)

तात्पर्य कि वनचारी हृदयसे मन रूपी बनमें बसिए, कोशलपति अर्थात् राजा रूपसे 'ममहृदय-अयनमें' बसिए और साकेतयात्रामें 'मम हिय गगन' में' बसिए इस प्रकार तीनबार हृदयमें बसना सिद्धफल है।

३—'मम हिय गगन इंदु इव' यहाँ हृदयको आकाश और प्रभुको चन्द्रमा कहा और माँगा कि अनुज जानकी सहित बसिए। प्रभु चंद्रमा हैं तो लक्ष्मणजी बुध और जानकीजी रोहिणी हुईं इस प्रकार रूपक पूरा हुआ, यथा—उपमा बहुरि कहउँ जिय जोही। जनु बुध बिच रोहिनि सोही"—(अ० § १२२)।

४—'बसहु सदा निहकाम'। भाव कि चन्द्रमा अष्टप्रहर आकाशमें नहीं रहता और साकेतमें विहारीजी सदा विहार करतेहैं; अतएव 'सदा' पद दिया। 'निष्काम'का भावकि यहाँसे जानेकी कभी कामना न कीजिए।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

५—स्तुति भरमें 'तनोतु', और 'नौमि' ये शब्द प्रयुक्त किएगएहैं। विकारोंसे रक्षा करनेकी प्रार्थना है और रूपको नमस्कार कियाहै। 'नौमि' में द्वितीयान्त' है और 'तनोतु' 'त्रातु' में प्रथमांत है—स्तुति भरमें स्तुतिकी पहली चौपाईमें 'नौमि' शब्दमें जो अहंकारात्मक 'मैं' आताहै उसका सँभाल दूसरी चौपाईमें तुरन्तही 'त्रातु' पदसे करते जातेहैं *।

* १—एक चौपाई (चार चरण) में 'नौमि' है तो दूसरीमें 'त्रातु है यह क्रम १४ अर्धालियोंमें बराबर चलागयाहै। १६ वीं अर्धालीमें 'संतनोतु' है। क्रमसे वे चरण यहाँ उद्धृत किएजातेहैं—

'नौमि निरंतर श्रीरघुवीरं'—§ १० (४), त्रातु सदा नो भव खगबाजः—(६), नौमि राम उर बाहु बिसालं'—(८), त्रातु सदा नो कृपा बरूथः'—(१०), 'नौमि राम भंजन महि भारं'—(११), 'त्रातु सदा दिनकरकुल केतुः'—(१४) और 'संतत संतनोतु मम रामः'—(१६)। जहाँ 'नौमि' पद दिया है वहाँ प्रभुके स्वरूप, सौन्दर्य्य वा शोभाका वर्णन है, यथा—

स्याम तामरस दाम सरीरं। जटा मुकुट परिधन मुनिचीरं॥ (३)
पानि चाप सर कटि तूनीरं। नौमि निरन्तर श्रीरघुबीरं॥—(४)
अरुन नयन राजीव सुवेसं। सीतानयन चकोर निसेसं॥ (७)
हरहृदिमानस बालमरालं। नौमि राम उर बाहु बिसालं॥ (८)
निर्गुन सगुन बिषम सम रूपं। ज्ञान गिरागोतीतमनूपं॥ (११)
अमल मखिलमनवद्यमपारं। नौमि राम भंजन महि भारं॥ (१२)

इसी प्रकार जहाँ त्रातुपद प्रयुक्त कियाहै वहाँ मोह, भव, संशय, तर्क, काम क्रोध लोभ आदिसे बचानेवाले विरदोंका स्मरण कराके उनसे रक्षाकी प्रार्थना कीहै!—

मोहबिपिनघन दहन कृसानुः। संत सरोरुहकानन-भानुः॥ (५)
निसिचरकरि बरूथ मृगराजः। त्रातु सदा नो भव खग-बाजः॥ (६)

इत्यादि।

२—पु० र० कु० जी यहाँ नवधा प्रेमा और परा भक्तियोंके उदाहरण मुनिमें दिखातेहैं। इनमेंसे नवधा तो § ९ (२०–२४) में भाजुकेहैं। केवल भेद इतना है कि यहाँ स्मरणका उदाहरण हे विधि दीनबन्धु०' और सख्यका 'मुनिहि मिलत अस सोह०' दियाहै। 'निर्भर प्रेम मगन' प्रेमा और 'दिसि अरु बिदिसि पन्थ नहिं सूझा... परा के उदाहरण हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्र०—१—'निहकाम'-पद हृदय, राम, और बसहु तीनोंके साथ लगताहै। हमारा हृदय निष्काम है—'ते तुम्ह राम अकाम पियारे'। पुनः, हमारे हृदयमें निष्काम बसिए अर्थात् इसे छोड़नेकी फिर कभी कभी कामना न कीजिए। २—'यह काम- पाठभी प्राचीन टीकाकारोंने दिया है जिसका अर्थ है—'यह मेरी अभिलाषा है'।

रा० प्र० श०,—प्रथम वर माँगा था कि 'बसतु मनसि मम कानन चारी'। फिर सोचे कि यह वनविहारी वेश तो १४ वर्षके लिए ही है, ऐसा न हो कि हमारे हृदयसे फिर निकल जाय तब माँगा कि 'जो कोसलपति राजिव नयना। करो सो राम००'। फिर मानों सोचे कि कोशलपति तो ११ हजार वर्षही रहेंगे यथा—'दश वर्ष शतानि च। रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति।' इति वाल्मीकीये। इसके बाद यह रूप हमारे अन्तःकरणमें रहे या न रहे अतएव माँगा कि 'मम हिय गगन इन्दु इव बसहु सदा'। चन्द्रमा और आकाश महाप्रलय तक रहतेहैं, अतः सन्तुष्ट होगए। २—निःकाम=चेष्टारहित।

नोट—सत्योपाख्यानमें मिलताहुआ श्लोक यह है—'सीतया सह रामत्वं लक्ष्मणेन च बाणभृत। मदीये हृदयाकाशे वसेन्दुरिव सदा। पर यहाँ 'निःकाम' पद अधिक है।

मा० म० (मयूख) पहले अभेद भावसे वर माँगा—'जो कोसल-पति०'। वह एक रूप मनमें व्याप्त था। परन्तु जब एक स्वरूपसे हृदय हरा न हुआ तब तीनों स्वरूपोंको हृदयमें वासकरनेकेलिए माँगा अनुजजानकी सहित० क्योंकि विना जानकीजीके हृदय हराभरा नहीं होगा अतः श्याम गौर मूर्त्तियोंको हृदयमें बसाया।

सुतीक्ष्ण प्रेम प्रकरण समाप्त हुआ।

"प्रभु-अगस्ति-सत्संग-प्रकरण"

एवमस्तु करि रमानिवासा।
हरषि चले कुंभज रिषि पासा॥ §११ (१)
बहुत दिवस गुर दरसनु पाए।
भए मोहि येहिं आश्रम आए॥ (२)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अब प्रभु संग जाउँ गुर पाहीं।
तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं॥ ,, (३)
देषि कृपानिधि मुनि चतुराई।
लिए संग बिहसे द्वौ † भाई॥ ,, (४)

अर्थ—श्रीनिवास भगवान् रामचन्द्रजी एवमस्तु (ऐसाही हो) कहकर प्रसन्न होकर अगस्त्य ऋषिके पास चले। (सुतीक्ष्णजी बोले) मुझे गुरुका दर्शन हुए और इस आश्रममें आए बहुत दिन होगए अर्थात् जबसे यहाँ आया दर्शन नहीं हुए। हे प्रभु अब आपके साथ गुरुजीके पास जाताहूँ। हे नाथ! इसमें आपका कुछ निहोरा (आपपर मेरा एहसान) नहीं। मुनिकी चतुरता देखकर कृपानिधान रामजीने साथ लेलिया और दोनों भाई (चतुरता पर) हँसपड़े।

पु० र० कु०—१ 'एवमस्तु करि रमा निवासा...' (क)—रमाका निवासहै जिनमें अर्थात् जो परम उदार हैं, यथा—'बारबार बर मागऊँ हरषि देहु श्रीरंग' ‡ :—[प्र०—तापनी आदिमें रमा' भी एक नाम सीताजीका कहाहै।] (ख) 'हरषि चलनेका' भाव कि रामजी को अगस्त्यजीके दर्शनोंकी उत्कंठा है इसीसे उनके पास जानेमें हर्ष होरहाहै। (ग) वाल्मीकिजी लिखतेहैं कि रामजी अगस्त्यजीके पास वार्तालाप और लोभकी आशासे जारहेथे वही प्रसंग गोसाईंजीने 'हरषि' शब्दसे जनादिया है। प्रमाण यथा—'एष लोकार्चितः साधु-र्हिते नित्यं रतः सताम्। अस्मानधिगतानेष श्रेयसा योजयिष्यति॥ ८७॥'—(स० ११)।

२—'भए मोहि पहि आश्रम आए' गुरुदर्शन हुए बहुत दिन हुए और इस आश्रममें आए बहुत दिन हुए। इस कथनसे सिद्ध हुआ कि इनका दूसरा भी आश्रम था, यथा अगस्त्यजी और वाल्मीकिजीकेभी दो दो आश्रम रहे।

† भा० द० ने ऐसाही दियाहै पर १६६१ के बालकाण्डकी लिपिके अनुसार शुद्ध रूप 'दोउ' होना चाहिए।

‡ खर्रा—वरदेनेमें 'रमानिवास' कहा। अथवा, विष्णु चतुर्भुज और राम द्विभुजमें भेद छुड़ानेकेलिए 'रमानिवास' कहा। अथवा, आकाशवाणीसे समझे थे कि विष्णुभगवान् आयँगे इससे यह पद दिया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३—'अब प्रभु संग जाउँ गुरु पाहीं...निहोरा नाहीं' इति। (क)—भेजने पहुचानेजातेहैं और इसका निहोरा नहीं भाव कि आपके निमित्त मैं साथ नहीं जाता। गुरु दर्शन करनेको कहतेहैं इससे रोकते नहीं बनता गुरुदक्षिणामें यह हमकोही देंगे। पुनः,हमारा निहोरा होता तो हम मना करते जब निहोरा नहीं तो कैसे मना करें। (ख)—संग चलनेका निहोरा नहीं है, यह चतुराई है। प्रभु किसीको संग नहीं लेते।

यथा–१ बरबस राम सुमन्त पठाये। सुरसरि तीर आप तब आये।

२ 'बिदा किये बटु बिनयकरि फिरे पाइ मन काम।

३ 'तब रघुबीर अनेक बिधि सखहि सिखावन दीन्ह। गवन तेइ कीन्ह

४ 'पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता। करि केहरि बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जौ आयसु होई। एहि बिधि पूछहिं प्रेमबस पुलकगात जल नयन। कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहिं कहि बिनीत मृदु बयन।'

५ 'जथा जोग सनमानि प्रभु बिदा किए मुनिबृन्द।'

६ 'राम सकल बनचर परितोषे। कहि मृदु बचन प्रेम पारपोषे॥ बिदा किये०।

पर ये इस बहाने दर्शनलाभार्थ संग जातेहैं कि मैं तो गुरुदर्शनको जाताहूँ (ग) चतुराई देखकर हँसे कि हमारे दर्शनार्थ साथ जातेहैं और भार गुरुपर डालतेहैं। * (घ)—'कृपानिधि' का भाव कि कृपाके

* १—मा० म०—तात्पर्य्य यह कि गुरुने आज्ञादीथी कि जबतक रामचन्द्रजी न आवें तब तक यहाँ न आना, श्रीरामचन्द्रजीके साथ आना। अतः संग जाकर उनकी आज्ञा पूरी करूँगा। यह उलटी बात होतीहै कि शिष्यद्वारा गुरुको रामप्राप्ति हो पर ऐसी आज्ञाही है। २—नोट—इस विषयमें यह कथा कहीजातीहै कि सुतीक्ष्णजीने अपने गुरु श्रीअगस्त्यजीको गुरुदक्षिणा देकर गुरुऋणसे उद्धार होजानेके विचार गुरुजीसे गुरुदक्षिणा माँगनेका आग्रह किया। यद्यपि गुरुदेवने बारम्बार यही कहा कि इसका हठ न करो मैं तुम्हें योंही उऋण किए देताहूँ तोभी इनने न माना। तब अगस्त्यजीने कहा कि अच्छा नहीं मानते हो तो जाओ गुरुदक्षिणामें श्रीसीतारामजीको लाकर हमें दर्शन कराना और विना उनके यहाँ न आना। यही कारण 'बहुत दिवस गुरु दरसन पाये' का है। आजकलके गुरु और शिष्योंको इस प्रसंगसे उपदेश ग्रहण करना चाहिए।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समुद्र हैं कृपा करके संग लिया। (ङ)—मन बचन कर्म तीनों कहे—'एवमस्तु' यह बचन है 'हरषि' यह मनका विषयहै और 'चले कर्महै।

पंथ कहत निज भगति अनूपा।
मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा॥ § ११ (५)
तुरत सुतीछन गुरु पहिं गयऊ।
करि दंडवत कहत अस भयऊ॥ ,, (६)
नाथ कोसलाधीसकुमारा।
आए मिलन जगत-आधारा॥ ,, (७)
राम अनुज समेत बैदेही।
निसिदिनु देव जपतहहु जेही॥ ,, (८)
सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए।
हरि बिलोकि लोचन जल छाए॥ ,, (९)

अर्थ—रास्तेमें अपनी अनुपम भक्ति वर्णन करते हुए देवताओंके राजा (रक्षक, पालक) मुनिके आश्रमपर पहुँचगए। सुतीक्ष्णजी तुरन्त गुरुजीके पास गए और दण्डवत करके इस प्रकार कहनेलगे—हे नाथ! कोशलराज दशरथजीके राजकुमार, जगत्के आधार रूप, आपसे मिलनेआपहैं। भाई और वैदेहीजी साहत रामचन्द्रजी आप हैं कि जिनका, हे देव! आप दिनरात जप करतेहैं। अगस्त्यजी यह सुनतेही तुरन्त उठ दौड़े। भगवान्को देखकर नेत्रोंमें जल भर आया।

पु० र० कु०—१—'पंथ कहत निज भगति अनूपा।००' इति। (ख)—कथावार्त्तामें मार्ग शीघ्र कट जाताहै, यथा—'बरनत पन्थ बिबिध इतिहासा। बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा॥ 'सीयको सनेह सील तथा कथा लंककी कहत चले चाय सो सिरानो पन्थ छन मैं'—(क० सुं० ८३)। तथा यहाँ भक्ति कहते कहते आश्रमपर पहुँचगए, मार्ग जान न पड़ा। (ख)—यहाँ 'सुरभूपा' कहा क्योंकि देवताओंके कार्य्यके लिए अगस्त्यजीसे राक्षसोंके मारनेका संमत करेंगे, शस्त्रास्त्र लेंगे। (ग)—'भक्ति' कहनेका भाव कि प्रभुने बिचारा कि हमारे संगका आनन्द इन्हें मिलनाचाहिए। पुनः, भाव कि मुनिको भक्तिकी चाहहै अतः भक्ति कही।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२-'तुरत सुतीछन गुरु पहँ गयऊ'। (क)-गुरुके पास गये, इससे सूचित किया कि रामचन्द्रजी बाहरही खड़े रहे। (ख) 'करि दंडवत कहत अस भयेऊ'—रामगमन सुनानेके पूर्व दण्डवत किया अर्थात् गुरुको दण्डवत करना यह रामागमन सुनानेसेभी अधिक है। (ग) 'तुरत' गुरु दर्शन हेतु एवं गुरुके भयसे कि वे यह न कहें कि पहले क्यों न जनाया जब वे आही गए तब जनानेसे क्या ?*

३—'नाथ कोसलाधीस कुमारा। आये मिलन००', इस प्रकार कहा; क्योंकि दर्शन करनेआए हैं ऐसा कहनेसे गुरु नाराज़ होते कि यह जानतेहो और कह भी रहेहो कि जिनका आप भजन करतेहैं, यथा—'निसि दिन देव भजतहौ जेही' तब दर्शन करना कैसे कहा ? जैसे कोई कहे किसी चेलेसे कि तुम्हारे गुरु तुम्हारे दर्शनको आएहैं तो शिष्यको कितना बुरा लगेगा। और, यदि कहें कि आपको दर्शन देनेआएहैं तो यह रामजीके प्रतिकूल है; मर्यादा पुरुषोत्तम इस रूपसे मुनियोंके दास हैं। अत, 'आए मिलन' कहा। †

४—(क)—यहाँ उपासनाचतुष्टय कहाहै। (१)—कोशलाधीश से धाम। (२)—कुमारसे रूप। (३)—जगत आधारासे लीला और (ख)—'नाम रूप लीला धाम' चारोंके उपासक हैं क्योंकि ये चारों नित्य हैं, यथा पंचरात्रे—"रामस्य नाम रूपं च लीलाधाम परात्परम्। एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्द विग्रहम्"। (ग)—५—'हरि बिलोकि लोचन जल छाये'। मुनि ऐश्वर्य्यको धारण कियेहैं और प्रभु माधुर्य्य को यह बात 'दोउ भाई' पदसे सूचित होतीहै। मुनि ऐश्वर्य्य जानतेहैं अतः 'उठि धाये' और ये माधुर्य्यमें दण्डवत् कररहेहैं।

६—मुनिकी पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंकी सफलता और सुख इस प्रसंगमें दिखातेहैं।—

(१)—'नाथ कोशलाधीश कुमारा।००' से श्रवण-इन्द्रिय। (२)—'हरि बिलोकि लोचन जल छाये से नेत्र-इन्द्रिय। (३)—'रिषि अति प्रीति लिये उर लाई' से त्वचा इंद्रिय। (४)—'सादर कुसल पूछि'से

* खर्रा—दंडवत करके दक्षिणा दीजातीहै। वैसेही रामजीका आगमन सुनाना मानों गुरुदक्षिणामें रामजीको दिया।

† वै०—'जगत् आधार' का भाव कि जिसकी एकपादविभूतिमें सब जगतकी रचना है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जिह्वा इन्द्रिय। (५)—'आसन बर बैठारे आनी'—फूलके आसन पर बिठानेसे नासिका इन्द्रिय।

रा० प्र० श०—मुनिसे जब कहा कि कोशलाधीशकुमार मिलने आएहैं तब मुनि न उठे। राजकुमारसे क्या प्रयोजन? पुनः, कोशलाधीशकुमार हैं। पुनः, लक्ष्मणजीभी जगदाधार हैं, यथा—'लच्छन धाम रामप्रिय सकल जगत आधार। गुरु बसिष्ठ तेहि राखेउ लछिमन नाम उदार'। एवं भरतजीको कहाहै कि भरत भूमि रह राउरि राखी'। इतने पर ध्यान न दिया तब फिर उन्होंने यों कहा कि जिनका मंत्र आप जपतेहैं वे सीता-लक्ष्मणसहित आएहैं। तब मुनि उठ दौड़े।

मुनि पद कमल परे द्वौ भाई।
रिषि अति प्रीति लिए उर लाई॥§ ११/५ (१०)
सादर कुसल पूछि मुनि ग्यानी।
आसन बर बैठारे आनी॥ ,, (१२)
पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा।
मोहि सम भाग्यवंत नहिं दूजा॥ ,, (११)
जहँ लगि रहे अपर मुनिबृंदा।
हरषे सब बिलोकि सुखकंदा॥ ,, (१३)

अर्थ—दोनों भाई मुनिके चरण कमलोंपर पड़गए अर्थात् साष्टाङ्ग प्रणाम किया। अगस्त्य ऋषिने अत्यन्त प्रेमसे उन्हें हृदयसे लगालिया ज्ञानी मुनिने आदरपूर्वक कुशल पूछकर उनको लाकर श्रेष्ठ आसन पर बिठाया। फिर अनेक प्रकारसे प्रभुकी पूजा करके बोले कि मेरे समान भाग्यवान् दूसरा नहीं। जहाँतक और मुनिसमूह थे वे सब सुखका आनन्दकन्द रघुनाथजीको देखकर प्रसन्न हुए।

पु० र० कु०—१—'मुनि पदकमल परे द्वौ भाई।००' इति।—विना चीन्हे संकोचवश सीताजी किसीको प्रणाम नहीं करतीं। (१) 'सकुचि सीय तब नयन उघारे', (२)—'गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी', (३)—'सकुची व्याकुलता बड़ि जानी'; (४)—'तन सकोच मन परम उछाहू', (५)—'पुनि पुनि रामहि चितव सिय सकुचत मन सकुचै न', (६)—'सीय सकुचबस उतरु न देई' (७)—'पितु

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कह सत्य सनेह सुबानी। सीय सकुच महि मनहु समानी', (८)—'कहति न सीय सकुच मनमाहीं',—इन उदाहरणोंसे उनका अत्यन्त संकोची स्वभाव प्रकट है। वसिष्ठजी पुरोहित हैं उन्हें पहचानती हैं अतः उनको प्रणाम किया, यथा—'सीय आइ मुनिबर पग लागी। उचित असीस लही मन माँगी', 'गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले राम कमल कर जोरी'।—[प्र०—यहाँ उपलक्षणसे श्रीजानकीजीका भी प्रणाम करना जाननाचाहिए। वा, कर्म-मात्रमें विवाह प्रतिज्ञानुसार पतियुत प्रणाम समझलें]

२—'सादर कुसल पूछ मुनि ज्ञानी'। सब जानतेहैं अतः ज्ञानी कहा। जाननेपरभी कुशल पूछना यह रीति है, शिष्टाचार है।

३—'पुनि करि बहु प्रकार प्रभुपूजा।००'' (क) उपचारके विषय में अनेक मत हैं—पंचोपचार शतोपचार, सहस्रोपचार इत्यादि, अत एव पूज्य कविने किसी उपचारका नाम न देकर 'पुनि करि बहु प्रकार कहा। (ख) भगवान्‌से मिले, उनकी पूजा की और उनका नाम जपते हैं—'निसिदिन देव जपत हौ जेही'—इनसे जीव बड़भागी होताहै; अतः मुनिने अपने भाग्यकी सराहना की—'मोहि सम भागवन्त नहिं दूजा'। पुनः, (ग) इन पदार्थोंकी प्राप्तिसे अपने भाग्यकी सराहना करना विधि है, यथा—

'मोर भाग राउर गुनगाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा'-(जनक)
'फिरत अहेरे परेउँ भुलाई। बड़े भाग पग देखेउँ आई'—(भानु प्रताप)
'अहो भाग्य मम अमित अति राम कृपासुखपुंज।—(विभीषणजी)
देखेउँ नयन बिरंचि सिव सेव्य जुगल पद कंज॥'

४—'जहँ लगि रहे अपर मुनि बृंदा। हरषे००' इति।—आतिथ्य करके अगस्त्यजी सुखी हुए। दर्शनसे सब मुनि सुखी हुए।

मुनि समूह महँ बैठे सनमुष † सबकी ओर।
सरद इंदु तन चितवत मानहुँ निकर चकोर॥ १२/६॥

शब्दार्थ—तन=ओर, तरफ, यथा—'बिहँसे करुनाऐन चितइ जानकी लखन तन'।

अर्थ—मुनिसमूहमें प्रभु सबकी ओर सम्मुखही बैठेहुएहैं (अर्थात्

† भा० द० की प्रति में प्रायः सर्वत्र सन्मुष' है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह भगवान्‌का रहस्य है कि सब उनको अपने सन्मुखही बैठे देखरहे हैं, पीठ किसीकी ओर नहीं दीखपड़ती मुनिसमूह इस प्रकार उनको एकटक देखरहेहैं) मानों चकोरोंका समुदाय शरदऋतुके चन्द्रमाकी ओर देखरहाहै ।*

पु० र० कु—१ चन्द्रसे किरण और किरणसे तापका नाश । मुख-चन्द्रमें वचन किरण हैं, यथा—'ससिकर सम सुनि गिरा तुम्हारी' । वचन-किरणसे भवका नाश, यथा—'तव रघुबीर कहा मुनि पाहीं... तव भय डरत सदा सो काला', 'काल बिलोकत ईस रुख भानु काल अनुहारि । रबिहि राउ राजहि प्रजा बुध व्यवहरहिं बिचारि' इति दोहावल्यां । २—'इन्दु परमैश्वर्य्य' अर्थात् चन्द्रमा बड़े ऐश्वर्य्यमान् ब्रह्माण्डके प्रकाशक हैं ।

नोट—यह भी पार्वतीजीके 'औरौ रामरहस्य अनेका । कहहु नाथ००' इस प्रश्नका उत्तरहै ।

गुरु (अगस्त्यजी) और शिष्य (सुतीक्ष्णजी) के आचरणका मिलान ।

अगस्त्यजी	सुतीक्ष्णजी
१ राम अनुज समेत बैदेही ।	मन बच करम रामपद सेवक ।
निसिदिन देव जपत हौ जेही ॥	सपनेहु आन भरोस न देवक ॥
२ सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए	प्रभु आगमन श्रवन सुनि पावा ।
	करत मनोरथ आतुर धावा ।
३ रिषि आत प्रीति लिये उर लाई	परम प्रीति राखे उर लाई
४ आसनबर बैठारेउ आनी	निज आश्रम प्रभु आनि करि—
५ पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा	करि पूजा बिबिधि प्रकार
६ मोहि सम भागवंत नहिं दूजा	प्रेम मगन मुनिवर बड़भागी
७ तुम्हरे भजन प्रभाव अघारी ।	महिमा अमित मोरि मति थोरी ।
जानौं महिमा कछुक तुम्हारी ॥	रबि सनमुख खद्योत अँजोरी ॥
८ यह बर मागौं कृपानिकेता ।	अनुज जानकीसहित प्रभु चापबानधर राम ।

* यथा—'स्थित्वा मुनिसमूहेषु, जानकीरामलक्ष्मणाः । तान् संर्वाश्च निरीक्षन्ते चकोराः शारदेन्दुवत् (वा०) । पुनः, यथा—'देखि इन्दु चकोर समुदाई । चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई', 'यकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा । रामचन्द्र मुखचन्द्र चकोरा ॥''

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बसहु हृदयश्री अनुज समेता ॥
९ 'जद्यपि ब्रह्म अखण्ड अनन्ता ।
अनुभवगम्य भजहिं जेहि संता ॥
अस तव रूप बखानौ जानौं ।
फिर २ सगुन ब्रह्म रति मानौं ॥'

मम हिय गगन इन्दुइव बसहु सदा निःकाम
"जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी
सबके हृदय निरंतर बासी ॥ से
"जो कोसलपति राजिवनयना
करउ सो राम हृदय मम अयना" तक

तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं ।
तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाहीं ॥§ १२/६ (१)
तुम्ह जानहु जेहि कारन आएउँ ।
ताते तात न कहि समुझाएउँ ॥ ,, (२)
अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही ।
जेहि प्रकार मारौं मुनि द्रोही ॥ ,, (३)

अर्थ—तब रघुवीरजीने मुनिसे कहा—हे प्रभो ! आपसे कुछ छिपा नहीं है । आप जानतेहैं कि जिस कारणसे मैं आया हूँ । हे तात ! इसीसे कुछ आपसे समझाकर न कहा । हे प्रभु ! अब मुझे वह मंत्र (सलाह) दीजिए जिस ढंगसे मैं मुनिद्रोही निश्चरोंको मारूँ ।

पु० र० कु०—१—'तब रघुबीर कहा' इति (क)—रामचन्द्रजी मुनिद्रोही रावणके वधका मंत्र पूछ रहेहैं इसीसे यहाँ 'रघुबीर' पद दिया । (ख)—'तुमसे कुछ दुराव नहीं इससे यह भी ज्ञात होताहै कि प्रायः औरसे ऐश्वर्य्य छिपातेहैं । २—'तुम्ह जानहु जेहि कारन आयउँ ।००' इति अर्थात् पिताकी आज्ञा पालनार्थ वनमें आयहैं, सो आप जानतेही हैं इससे कहकर नहीं समझाया । इन शब्दोंसे जनाया कि अपना भी कुछ प्रयोजन है, मेरी इच्छासेही वनवास हुआ । और आपके पास जिस प्रयोजनसे आया वहभी आप जानतेहैं, उसे विस्तार से नहीं कहता, सीधे सीधे कहेदेताहूँ । वह कारण यह है कि 'अब सो मंत्र देहु...' ।

नोट—मंत्र पूछनेका कारण है । आप निश्चर नाशकी प्रतिज्ञा कर चुकेहैं । अतः पूछा जिसमें ब्राह्मणवध—(रावण पुलस्त्यजीका नाती है)—की हत्या न लगे और मुनियोंका कार्य्यभी होजाय । इनके समान दूसरा ऋषि नहीं, रावणभी इनसे डरताथा क्योंकि ये इल्वल और वातापी ऐसे मायावी राक्षसोंको नाश करनेमें समर्थ हुए, समुद्र

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सोख लिया, इत्यादि इत्यादि। पुनः, यह गुरुवशिष्ठके बड़े भाई हैं। घटसे दोनोंकी उत्पत्ति हुई। प्रभुने लक्ष्मणजीसे इनका महत्त्व कहाहै कि 'इनके प्रभावसे राक्षस दक्षिण दिशाको भयसे देखतेहैं, ये सज्जनोंके कल्याणमें रत रहतेहैं। हमाराभी अवश्य 'कल्याण करेंगे'—(वा० स० ११-१२)। दीनजी इस संबन्धमें कहतेहैं कि—'एकबार महाराज रघुजीने कुवेरको पुष्पक विमान दानमें दिया। रावणके छीन लेनेपर कुवेरने उनसे पुकारकी। तब रघुजीने रावणको संदेसा कहला भेजा विमान कुवेरको लौटा दे नहीं तो हम तेरा नाश करेंगे। उसने अनसुनी करदी। तब रघुने धनुषपर वाण चढ़ाया कि यहींसे लंकाका नाश करदें। ब्रह्माजीने आकर इनका हाथ पकड़लिया और बोले कि हम उसकी मृत्यु श्रीरामजीके हाथसे लिख चुकेहैं हमारा लेख असत्य होजायगा आप ऐसा न करें। राजाने कहा कि वाण अमोघ है व्यर्थ नहीं जा सकता। उसपर ब्रह्माने उस वाणको माँग लिया और कहा कि इसीसे रामचन्द्रजी रावणका वध करेंगे और उसे लेकर ब्रह्माजीने अगस्त्य जीके पास रखदिया। जब राम-रावणका सात दिन तक लगातार द्वन्द्वयुद्ध हुआ और देवता घबड़ाए तब रामचन्द्रजीने अगस्त्यजीका स्मरण किया, उन्होंने आकर उस वाणका प्रयोग और आदित्यजीका पूजन बताया।''

खरदूषणादिके वधपर अगस्त्यजीने कहाहै कि ऋषि आपको इस स्थानपर इनके वधार्थ ही लाएथे। इससे यह ज्ञात होताहै कि मुनि पंचवटीमें रहनेको जो बतायेंगे—यही मंत्र है जो रामजीको मिला। पुनः, अध्यात्मरामायणमें लिखाहै कि मुनिने रामचन्द्रजीको दो अक्षय तूण और अक्षय वाण, इन्द्रका मुनिके पास स्थापित कियाहुआ धनुष और रत्नभूषित खड्ग दिए और कहा कि इनसे राक्षसोंका वध कीजिए। जिसलिए अवतार हुआ उसके योग्य स्थान पंचवटी है—(सर्ग ३ श्लो० ४५-४७)।

नोट ३—यहाँ रामचंद्रजीने मुनिको 'प्रभु' संबोधन करके जनाया कि आप बड़े समर्थ हैं जैसा ऊपर नोटमें कहागया।—'तुम्ह सन प्रभु दुराउ कछु नाहीं' और 'अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही'। अहा! कैसा माधुर्य्यमें ऐश्वर्य्य को छिपायाहै! पर मुनिभी एकही हैं उनके उत्तरमें उन्होंने तीनबार (उनसे एक बार अधिक) प्रभु' पद संबोधन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में दिया। 'मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी। पूछेहु नाथ मोहि का जानी' (नाथभी प्रभुका पर्य्याय है।) 'है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ', 'दंडक बन पुनीत प्रभु करहू'।

मुनि मुसकाने सुनि प्रभु बानी।
पूछेहु नाथ मोहि का जानी॥ § १२/६ (४)
तुम्हरेइ भजन प्रभाव अघारी।
जानौ महिमा कछुक तुम्हारी॥ ,, (५)

अर्थ—प्रभुके बचन सुनकर मुनि मुस्कराये। (और बोले कि) हे नाथ! क्या समझकर मुझसे पूछाहै? हे पापोंके नाशक (निष्पाप) आपकेही भजनके प्रभावसे मैं आपकी कुछ थोड़ी सी महिमा जानताहूँ।

पु० र० कु०—१ 'मुनि मुसकाने सुनि प्रभु बानी...' इति। (क) प्रभुकी वाणीपर हँसे कि समर्थ होकर असमर्थ कीसी वाणी बोलरहेहैं। हे नाथ! क्या जानकर पूछते हो? अर्थात् हमें भ्रममें न डालिये, हम जानतेहैं कि आप ब्रह्माण्डनायक हैं, आप नाथ हैं, मैं तो सेवक हूँ—'पूछेहु मोहि मनुज नाई' आगे मुनिने स्वयं इसीको स्पष्ट कहाहै। (ख) 'पूछेहु नाथ मोहि का जानी' का उत्तर आगे चलकर मुनि स्वयं देतेहैं कि 'संतत दासन्ह देहु बड़ाई। तातें मोहि पूछेहु रघुराई। (ग) भगवान् मोहित करनेवाले बचन बोलेहैं इसीसे मुनि आगे वर माँग रहेहैं कि हमारे हृदयमें बसिए जिसमें हमको भ्रम न हो। यथा—यह वर माँगौ कृपानिकेता। बसहु हृदय' पुनः, यथा—'भरत हृदय सियराम निवासू। तहँ कि तिमिरि जहँ तरनि प्रकासू'। प्रभुके माधुर्य्य से मोह होजातीहै, यथा—'पदनख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु-बचन मोह मति करषी'—(अ० § १००) [इसी तरह मोहमें डालने-वाले बचन सुनकर हनुमान्‌जीने त्राहि २ किया, यथा—'चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि २ भगवंत'—सुं §३२ देखिए। पुनः, इसी तरह वानरोंने कहाहै, यथा—'प्रभु जोइ कहहु तुम्हहिं सब सोहा। हमरे होत बचन सुनि मोहा॥ दीन जानि कपि किये सनाथा। तुम्ह त्रयलोक ईस रघुनाथा॥ सुनि प्रभुबचन लाज हम मरहीं। मसक कतहुँ खगपति हित करहीं॥'—(लं० § ११७)] ३ प्रभुके—'तुम्ह जानहु जेहि कारन आयेउँ' इन वचनोंका उत्तर यह है कि तुम्हरेइ भजन प्रभाव

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अघारी। जानौं महिमा कछुक तुम्हारी'। अर्थात् आपकी बात भला मैं क्या जानसकता हूँ आप जिसे अपना जन जानकर कुछ जनादें वही जीव जानसकताहै—'सो जानइ जेहि देहु जनाई'। आपके भजनके प्रभावसे कुछ महिमा जानताहूँ।—रोक्यो बिधि सोख्यो सिंधु घटजहू प्रभु नाम बल खारो भयउ भूसुर डरनि' इति विनये।

खर्रा—जो महिमा आगे कहतेहैं वह बड़ी भारी है उसकोभी मुनि 'कछुक' बतातेहैं तब वह महिमा नजाने कितनी भारी होगी—यह जनाया। यथा—'रघुपतिमहिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा॥' 'महिमा निगम नेति नित कहई'; तिमि रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा' इत्यादि।

३ 'पूछेउ नाथ मोहि का जानी' यहाँ कहकर फिर महिमा कही उसमें चराचर मात्रको जंतु कहाहै। जिसका भाव यह हुआ कि मैं भी एक जंतुके समान हूँ और राक्षसभी मायाके भीतर लिप्त जीव जंतु मायासे परे आपको क्या जानसकतेहैं? आपको क्या मंत्र देसकतेहैं?

नोट—१ प्रभुने भरद्वाजजीसे मार्ग पूछा यथा—'नाथ कहिए हम केहि मग जाहीं' (अ० § १०८)। वाल्मीकिजीसे स्थान पूछा, यथा—'अस जिय जानि कहिए सोइ ठाऊँ। सिय (अ० § १२५) और अगस्त्यजीसे 'मंत्र' पूछा। तीन ऋषियोंसे तीन पृथक् २ बातें पूछीं। प्रथमसे मार्ग पूछा क्योंकि उस समय वहाँ निवास इष्ट नहीं था, ठहरना नहीं था। वाल्मीकिजीसे स्थान पूछा क्योंकि भरतजीकी राह देखना है अतः कुछ समय निकटही निवास करना इष्ट था। और यहाँ मंत्र पूछा क्योंकि अब निश्चरहीन करनेकी प्रतिज्ञा करचुकेहैं उनका वध इष्ट है। इनके आश्रममें निश्चर नहीं आसकतेथे इससे इनसे बढ़कर कौन मंत्र देसकताथा?

यह तो सीधासादा उत्तर हुआ। अब देखिए कि 'मग' 'ठाउँ निवास' और 'मंत्र' ये तीन शब्द तीन मुनियोंके लिए अलग २ प्रयुक्त होनेमें क्या उपयुक्तता और विलक्षणताहै।

पूज्य कविने शब्दोंका कैसा निर्वाह पूर्वापर कियाहै, यह देख लीजिए। भरद्वाजजीको परमारथ पथ परम सुजाना' कहा था (ब० § ४३) अतः उनसे पथ' पूछा। वाल्मीकिजीको कहा कि 'रामायन जेहि निरमयउ'। रामायण=रामका अयन (घर, स्थान) अतः उनके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रसंगमें ठाउँ', 'निवास' 'निकेत' शब्दोंका प्रयोग प्रश्न और उत्तरमें हुआ। अगस्त्यजी राममंत्रके विधानमें परमनिपुणहैं, पूर्वोत्तर रामचरितके ऐसे ज्ञाता हैं कि शिवजी रामकथा सत्संग करने इनके पास जाया करतेथे—'रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस०'। जैसा पूर्व मंत्र देतेआप वैसाही देंगे। पुनः,सुतीक्ष्णजी का वचन है। निस दिन देव जपत हौ जेही'। जप मंत्रका होता है। मंत्र पूछना है इसीसे 'जपत' शब्द वहाँ रखकर दिखाया कि मुनि तभी उठे जब शिष्यने यह कहा और वाल्मीकिमें रावणवधके लिए मंत्र (आदित्यहृदय) बताना लिखाहै।

२—तीनों महात्मा प्रभुके प्रश्नपर हँसे—और तीनोंने प्रथम ऐश्वर्य्य देशमेंही इनके 'मग' 'ठाउँ' और 'मंत्र' का उत्तर दिया और जनादिया कि हमसे आप छिप नहीं सकते, हम आपको खूब जानते हैं *। ऐश्वर्यद्योतक शब्दोंमें इन प्रश्नोंका उत्तर देकर तब माधुर्य्यभावमें उत्तर दियाहै।

ऊमरि तरु बिसाल तव माया।
फल ब्रह्मांड अनेक निकाया॥ § १२/६ (६)

* १—'मुनिमन बिहँसि राम सन कहहीं। सुगम सकल मग तुम्ह कहँ अहहीं'' (भरद्वाज)

२—'सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ज्ञानी॥—अ० १२५ (६) से 'पूछेहु मोहि कि रहउँ कहँ। जहँ न होउ तहँ देहु कहि तुम्हहिं देखावउँ ठाउँ'

सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लषन समेता॥...

जाहि न चाहिय कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेह। राउर निजगेह' (§ १३१) तक।

३—'मुनि मुसकाने सुनि प्रभुबानी। पूछेहु नाथ मोहि का जानी॥' से 'संतत दासन्ह देहु बड़ाई। तातें मोहि पूछेंहु रघुराई' तक।

जिसे 'पथ' में सुजान कहा उसने पथका ऐश्वर्य्यमें उत्तर दिया, जो राम अयन बनाने में निपुण है उसने स्थानका ऐश्वर्यमय उत्तर दिया और जो राममंत्र जपमें निपुण हैं उनने गुप्त रीतिसे मंत्र दिया। मंत्र गुप्त चाहिए वैसेही यहाँ गुप्त उत्तर है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जीव चराचर जंतु समाना ।
भीतर बसहिं न जानहिं आना ॥ §१२/६ (७)
ते फल भच्छक कठिन कराला ।
तव भय डरत सदा सोउ काला ॥ ,, (८)
ते तुम्ह सकल लोकपति साईं ।
पूँछेहु मोहि मनुज की नाईं ॥ ,, (९)

अर्थ—आपकी विशाल माया गूलरके वृक्षके समान है, अनेक ब्रह्माण्डसमूह उसके फल हैं, चर-अचर सभी जीव गूलर फलके भीतर-के छोटे-छोटे जीव के समान हैं जो (ब्रह्माण्डरूपी फलके) भीतर बसतेहैं और (उसके बाहर और भी कोई वस्तु है यह) कुछ नहीं जानते। उस फलका खानेवाला 'कठिन' भयंकर काल है। यह काल भी आपसे भयभीत रहताहै। वही आप समस्त लोकवालोंके स्वामी होकर मुझसे मनुष्यकी तरह पूछ रहेहैं (कि मंत्र बताओ)।*

पु० र० कु०—१ जो कहा था कि 'जानौं महिमा कछुक' वह इन चौपाइयोंमें कहीगई। यह 'कछुक' है। २—इन वचनोंसे जनातेहैं कि आप माया, ब्रह्माण्ड और काल तीनोंके पति हैं। यथा—'सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया॥' 'तव माया' कहकर मायापति होना जनाया, 'ते तुम्ह सकल लोकपति साईं' से ब्रह्माण्डों-के स्वामी होना कहा और 'तवभय डरत सदा सोउ काला' से कालके भी नियन्ता स्वामी जनाया।

३—"ते फल भच्छक कठिन कराला।०० काला"। इति (क)—काल कठिन कराल है। समस्त ब्रह्माण्डों के जीवोंको खाजाताहै, उसे दया नहीं आती ऐसी कठिन कठोर निर्दयी है और ऐसा भारी रूप है कि ब्रह्माण्ड इसके पेटमें समाते चले जातेहैं-ऐसा कराल है।

(ख) ब्रह्माण्डोंकी फलसे उपमा देकर जनाया कि काल ब्रह्माण्डों को भक्षण करलेताहै, समूचाका समूचा; कुछ यह नहीं कि जीवोंकोही

* मिलान कीजिए भागवतके इन श्लोकोंसे—'त्वय्यव्ययात्मन् पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपाला बहुजीव संकुलाः। यथा जले संनिहते जलौकसोप्युदुम्बरे वा मशका मनोमये' ॥१॥ 'कालोयं परमाण्यादिर्द्विपरार्धान्त ईश्वरः नैवेशितुं प्रभुर्भूम्न ईश्वरो धाममानिनाम् ॥२॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

खाले, ब्रह्माण्ड बने रहजायँ। ब्रह्माण्डोंका भी नाश होजाताहै। (ग) तव भय डरत सदा सोउ काला', यथा—"जाके डर अतिकाल डराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥" पुनः, भाव यह कि, काल भी आप का रुख देखकर काम करता रहताहै, विना आपकी आज्ञाके नहीं खा सकता, चाहे भूखा भलाही रहजाय। पुनः, (घ)—जिन ब्रह्माण्डोंकी आयु पूरी हुई वेही पकेहुए फल हैं उन्हींको काल खाताहै, गूलरका वृक्ष मायाहै, यह वृक्ष रूपी माया बनीहै सब ब्रह्मांडरूपी फलोंके नष्ट होनेपर पुनः फलेगी।

४—'सकल लोकपति साई"। अनेक ब्रह्माण्ड हैं और प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा विष्णु महेश इन्द्र आदि हैं। यथा—'लोक लोक प्रति भिन्न विधाता। भिन्न बिष्नु सिव मनु दिसि त्राता॥'—(लं० § ८०)। इन सबके स्वामी एवं शासनकर्त्ता आपही हैं।

५—खर्रा--माया जड़ है; अतएव जड़ वृक्षकी उपमा दी, यथा—'जासु सत्यता ते जड माया'। वृक्षसे फल उत्पन्न होताहै वैसेही माया से ब्रह्माण्ड, यथा—सुनु रावन ब्रह्माण्ड निकाया—पाइ जासु बल-बिरचति माया।' वृक्ष में फल अनेक हैं, वैसेही यहाँ ब्रह्माण्ड निकाया यथासंख्य है। अथवा, अनेक फलोंका निकाय अर्थात् घोपा है।

यह बर माँगौं कृपानिकेता।
बसहु हृदय श्री अनुज समेता॥ § $\frac{१२}{६}$ (१०)
अबिरल भगति बिरति सतसंगा।
चरन सरोरुह प्रीति अभंगा॥ ,, (११)
जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता।
अनुभवगम्य भजहिं जेहि संता॥ ,, (१२)
अस तव रूप बषानौं जानौं।
फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानौं॥ ,, (१३)

अर्थ—हे कृपाके धाम! यह वर माँगताहूँ कि मेरे हृदयमें आप श्रीसीतालक्ष्मणसहित वास कीजिए। अविरल भक्ति, वैराग्य, सत्संग और आपके चरणकमलोंकी अटल प्रीति मेरे हृदयमें बसे। यद्यपि आप अखण्ड, अनन्त ब्रह्म हैं जो अनुभवसे प्राप्त होनेवालेहैं और जिनका सन्त भजन करतेहैं। ऐसा आपका रूप बखान करता और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जानताहूँ तोभी लौटलौटकर आपके इस सगुण ब्रह्मरूपमें प्रेम करताहूँ और करूँ।

पु० र० कु०—१—'यह वर मागौं कृपा निकेता। बसहु००' इति। (क) महिमा वा प्रभाव तो ब्रह्मरूपका वर्णन किया और माँगी भक्ति। इसीपर कहतेहैं कि 'जद्यपि ब्रह्म००' (ख) यहाँ अभी बीचमें वर माँगने का कोई मौका नहीं था क्योंकि प्रभुने तो मंत्र पूछाहै और ये उत्तरमें महिमा कहरहेहैं। बीचमें वरका क्या मौका? इसके विषय में पूर्व कह आयेहैं कि प्रश्न भ्रम डालनेवालाहै, परमेश्वर होकर मनुष्यकी तरह प्रश्न कररहेहैं। अतः, 'कृपानिकेत' सम्बोधन करके वर माँगा कि तीनों हमारे हृदयमें बसिए, बसनेसे फिर हमें मोह वा भ्रमका भय न रहेगा, यथा—'भरत हृदय सियराम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ भानु प्रकासू'।

२—'अस तव रूप बषानौं जानौं।००'। अर्थात् ऐसा आपका रूप है, इस प्रकार मैं बखान करता और जानता हूँ इसीसे आपसे बखान किया, रही मेरी प्रीति सो तो सगुण रूपमेंही है। ३—(क)—फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानौं' क्योंकि 'जेहि सुख लागि पुरारि असुभ बेष कृत सिव सुखद। अवधपुरी नरनारि तेहि सुखमहँ संतत मगन॥ सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहु लहेउ। ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहिं सज्जन सुमति'। (ख)—'बषानौं' यह बाहरका ऊपरी आचरण कहा और 'जानौं' यह भीतरका कहा अर्थात् यही नहीं कि ऊपरसे बनाकर कहताहूँ, ऐसी अन्तःकरणमें प्रतीतिभी है। ऐसाही वेद-स्तुतिमें वेदोंने कहाहै—'जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मनपर ध्यावहीं। ते कहहु जानहु नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं॥ करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर माँगहीं। मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं॥'। (ग)—दूसरा अर्थ इस प्रकार एक खर्रेमें है—कि हमें यहभी वर दीजिए कि आपका ऐसा स्वरूप जानता रहूँ और बखानभी करूँ तोभी सगुणहीमें मेरा प्रेम रहे। 'फिर फिर' के दोनों अर्थ लगतेहैं—लौट लौटकर एवं पुनः पुनः]। *

* १—प्र०—फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानौं' से सिद्ध हुआ कि निर्गुण का रस सगुण है, कर्मादि अंकुर और छिलका गुठलीके स्थान निर्गुण हुआ। २—फिरि फिरि अर्थात् जन्म जन्ममें सगुण ब्रह्ममें प्रीति मानूँ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संतत दासन्ह देहु बडाई ।
तातें मोहि पूँछेहु रघुराई ॥ § १२/६ (१४)
है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ ।
पावन पंचबटी तेहि नाऊँ ॥ ,, (१५)
दंडक बन पुनीत प्रभु करहू ।
उग्र साप मुनिबर कर हरहू ॥ ,, (१६)
बास करहु तहँ रघुकुलराया ।
कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया ॥ ,, (१७)

अर्थ—आप सदा सेवकोंको बड़ाई देतेआपहैं इसीसे, रघुराई !, आप मुझसे पूछरहेहैं। हे प्रभो ! एक परम रमणीय और पवित्र स्थान है, उसका पंचवटी नाम है। हे प्रभु ! दण्डकवनको पवित्र कीजिए * मुनिवर गौतमजीके शापका उद्धार कीजिए । हे रघुकुल-राज ! आप वहाँ निवास करें और समस्त मुनियोंपर दया करें।

पु० र० कु०—१ 'संतत दासन्ह देहु बड़ाई...' यह अपनेही प्रश्नका—'पूछेहु मोहि नाथ का जानी'—स्वयं उत्तर देरहेहैं। २—'है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन...' इति ।—मनोहरसे शृङ्गारयुक्त और पावनसे शान्त सूचित किया। ३—'दण्डकवन पुनीत प्रभु करहू बास करहु तहँ रघुकुलराया...' इति। इसका चरितार्थ आगे कर दिखा-

* दंडकवन' की कथा ब० § २३ (७) में दीजाचुकीहै। पंचवटीका वर्णन श्रीहनुमन्नाटकमें बड़ा सुंदर है—'एषा पञ्चवटी रघूत्तमकुटी यत्रास्ति पञ्चावटी। पान्थस्यैकघटी पुरस्कृततटी संश्लेषभित्तौ वटी ॥ गोदा यत्र नटी तरङ्गिततटी कल्लोलचञ्चत्पुटी। दिव्यामोदकुटी भवाब्धिशकुटी भूतक्रियादुष्कुटी ॥२॥ (अंक ३)। अर्थात् लक्ष्मणजी कहतेहैं कि हे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामजी ! जहाँ वटके पाँच वृक्ष हैं। इन पाँचोंके मूलमें सरस्वतीकुंड हैं और पथिकोंकी एकही घटी (चट्टी), शोभायमान तटोंवाली, स्त्रीपुत्रोंके निश्चयको दूरकरनेको औषधिरूप और जिसके समीप तरगोंवाले किनारोंसे युक्त, कल्लोलोंसे शब्दायमान जल निकलनेके मार्गवाली तथा मनोहर सुगंधिकी एक कुटी और संसारसागरको नौकारूप मनुष्योंकी सामान्य क्रियाओं से दुष्प्राप्य, गोदावरी नदीकीरूपहै। ऐसे स्थानमें यह पंचवटी है यहाँ कुटी कीजिए। दूसरा अर्थ—पंचतत्त्वोंकी नाशक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

याहै 'बास करहु' का भाव कि आपके वहाँ निवास करनेसे ही वह पवित्र होगा और मुनियोंका भय मिटेगा, आपको कुछ उपाय इन बातोंकेलिए नहीं करना होगा, निवासमात्रसे दोनों लाभ लोगोंको प्राप्त होजायँगे, यथा—'जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भए मुनि बीती त्रासा'।

४—मुनियोंपर दया करनेको कहतेहैं इसीसे 'रघुकुलराया' पद दिया। राजाका धर्म है कि दुष्टोंसे ब्राह्मणोंकी रक्षा करें। दंडकवन पावनकरनेमें 'प्रभु' पद दिया अर्थात् पावनकरनेकी सामार्थ्य आपको है चरणस्पर्शमात्रसे वह पवित्र होजायगा। पंजाबीजी कहतेहैं कि मुनिका आशय यह है कि आप समर्थ हैं हमारे आश्रममें बसनेसे सब सुपास है पर आपका कार्य्य न होगा क्योंकि यहाँ हमारे भयसे राक्षस नहीं आते। दूसरे यहाँ निवाससे अन्य ऋषि दूषण देंगे कि बड़े बड़ेके ही यहाँ ठहरतेहैं, हम गरीब हैं इससे हमारे यहाँ न रहे और वहाँ वासकरनेसे दोषभी न देंगे।

५ (क) श्रीरामचन्द्रजीने कहा था कि अब वह मंत्र बताइए जिससे मुनिद्रोहीको मैं मारूँ। इसका उत्तर मुनिने गम्भीरतापूर्वक दिया कि पंचवटीमें बसो, इससे सब बातोंका निर्वाह होगा। आप अधर्मसे बचे रहेंगे, वहाँके वाससे राक्षसोंसे विरोध होगा तब वे आपही मारे जायँगे। 'जेहि प्रकार मारौं' इस बातका उत्तरभी होगया; रामजीको अपराध न होगा, वहाँपर मुनिद्रोही स्वयं इनका अपराध करेंगे तब मारे जायंगे—'बिनु अपराध प्रभु हतहिं न काहू'। (ख)—

इस उत्तरमें मुनिकी साधुताभी बनीरही और मंत्र देनाभी होगया। सन्त किसीको वध करनेको अपने मुखसे नहीं कहते और पंचवटीका निवास स्वयं निश्चरवधका उपाय होजायगा।

(= मोक्षदातृ), जहाँ रूपरसादिकी निवृत्ति होजातीहै, मुमुक्षु के लिए एक विश्रामका स्थान और जहाँ समिधा तथा कुशाओंसे युक्त, स्त्रीपुत्रादिकोंके संचयको दूर करनेमें वज्रस्वरूप, प्राणियोंको मोहादिकसे निकालनेवाली, देवताओंके भ्रमण करनेसे शब्दायमान कुंजोंवाली तथा स्वाभाविक वासनाओंको दूर करनेवाली भवसागरके लिए नौकारूप; प्राणियोंकी सामान्य क्रियाओंसे दुष्प्राप्य और मुनियों की सभा ऐसी यह पंचवटी है यहाँ कुटी कीजाय।—(व्रजरत्नभट्टाचार्य्यकृत टीका।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नोट—'पंचवटी'। यह स्थान गोदावरीतटपर नासिकके पास है और अगस्त्यजीके आश्रमसे ८ कोशपर है।—(वा० सं १३)। यह बड़ा रमणीयस्थान है। वाल्मीकिजी लिखतेहैं कि मुनिने प्रभुसे कहा कि जो आपका अभिप्राय है वह वहाँ पूरा होगा वहाँ रहकर आप तपस्वियोंकी रक्षा करें—'अपि चात्र वसन्राम तापसान्पालयिष्यसि'। वही भाव यहाँ 'कीजै सकल मुनिन्ह पर दाया'। *—खर्रेमें लिखाहै कि यहाँ पंचोंका वट हैं अतः इसका पंचवटी नाम है। पर यदि पाँच वटके वृक्षके कारण यह नाम हुआ हो तो विशेष संगत होगा।

प्रभु-अगस्ति-सत्संग-प्रकरण समाप्त हुआ।

'दंडकवनपावनता-गीधमैत्री-पंचवटी' प्रकरण

चले राम मुनि आयसु पाई।
तुरतहिं पंचबटी निअराई॥ § १२/६ (१८)

गीधराज सैं ‡ भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ †।
गोदावरी निकट प्रभु रहे पर्नगृह छाइ॥ १३/७

शब्दार्थ—निअराना=निकट पहुँचना, पास होना, पास आना या जाना। यथा—रिष्यमूक पर्वत नियराई'।

---

* 'क्वाचित्के काले पंचवट्यामसुभिक्षेणदूयमाना मुनिव्रजा अशनाय गौतमान्तिकं समेत्यावादिषुः ततश्च तेन तपसः प्राबल्येनाधिककालं पालिता ऋषिनिवहाः परस्परं समामन्त्र जनस्थानं यातुमनसोपि मुनिराजगौतमभिया गन्तुमशक्या व्याजीकृत्य सर्वेमायारूपांगां निर्माय तद्धान्यागारे ममुचुः साच धान्यागारान्निवारयंती तस्य त्वगिन्द्रिमात्र ग्राह्यत्वेनैव पंचतांप्राप्ता ततोगोहत्यांतस्मिन् समारोप्यात्मीयायतनमगुः गतेषुतेषुच्छज्ञावगत्य तेभ्योयद वनस्यगार्ध्ये कैतवमकार्षुस्ते तद्वनं विनश्यताम् तत्रे च यातुधाना निवसन्त्वित्याकारकं शापं स ददौ'—(र० क०)।

‡ सों—(का०) † दढाइ'—(रा० गु० द्वि०, न० प्र०)। 'बढाइ'—(का०, भ० द०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—मुनिकी आज्ञा पाकर रामचन्द्रजी चले। तुरतही पंचवटीके के पास पहुँचगए। गृद्धराजसे भेंट हुई बहुत तरहसे प्रेमको बढ़ाकर प्रभु गोदावरीके पास पर्णशाला छाकर रहे।

पु० र० कु—'चले राम मुनि आयसु पाई...' इति।—'एवमस्तु करि रमानिवासा। हरषि चले कुंभजरिषि पासा' उपक्रम है और चले राम मुनि आयसु पाई' उपसंहार। § ११ (१) से § १२ (१७) तक अगस्त्य-सत्संग-प्रकरण रहा। 'हरषि चले' और जब अगस्त्यजी के यहाँ आए तब बैठगएथे, यथा—'आसनपर बैठारे आनी'। अतः अब पुनः चलनाकहा।

नोट—वाल्मीकिजी लिखतेहैं कि दूसरे विशालकाय पराक्रमी गृद्धको देखकर उससे उन्होंने पूछा कि तुम कौन हो? वह बहुत मधुर वाणीसे बोला 'वत्स! मुझे अपने पिताका मित्र जानो। पहलेही उसने इन्हें वत्स! सम्बोधन किया और पिताका मित्र अपनेको कहा अतएव प्रभुने विना कुछ और पूछे प्रथम उसकी पूजा की भाव-ग्राहक प्रभुकी जय! तब उसका नाम इत्यादि पूछे। उसने ब्रह्माकी सृष्टिकी आदिसे कथा कही और कहा कि अरुणका पुत्र हूँ। तुम्हारे यहाँ रहनेसे मैं सहायक होऊँगा, जैसा तुम चाहतेहो। तुम्हारे और लक्ष्मणके जानेपर मैं सीताकी रक्षा करूँगा। तत्पश्चात् प्रभुने उसका अभिनंदन और आलिंगन किया और बारंबार पितासे मित्रताकी कथा पूछी और सुनी।*

जब ते राम कीन्ह तहँ बासा।
सुखी भए मुनि बीती त्रासा॥ § $\frac{१३}{७}$ (१)

* (१) पद्मपुराण में मित्रताकी कथा कहीजातीहै कि एकबार संवत्सर सुनाते हुए वशिष्ठजीने राजासे कहा कि शनि अपना स्थान छोड़कर अबकी निकलेंगे जिससे १२ वर्ष वर्षा न होगी। राजा गुरुसे उनका मार्ग पूछकर उसी मार्गपर रथपर चढ़कर चले। मार्गमें शनिके मिलनेपर उसकी दृष्टि पड़तेही राजा गिरे तब जटायुने उनको अपनी पीठपर रोकाथा। (२) दूसरी कथा अग्नेय रामायण में कहीजातीहै कि कोशल्याजीके साथ विवाहके लिए बारात चली। रावण ने विघ्न डाला। जिस नदीसे राजा नावपर जारहेथे उसमें बाढ़ आई। नाव टूटी राजा बहतेहुए एक टापूपर जालगे। गुरु वसिष्ठभी साथ थे। उस समय यह चिन्ता हुई कि विवाहका समय निकट है कोसलपुर कैसे पहुँचें तब गृद्धराज ने उनको पीठपर सवार कर वहाँ पहुँचा दियाथा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गिरि बन नदी ताल छबि छाए।
दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए॥ § १३/७ (२)
षग मृग बृंद अनंदित रहहीं।
मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं॥ ,, (३)
सो बन बरनि न सक अहिराजा।
जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा॥ ,, (४)

अर्थ—जबसे रामचन्द्रजीने वहाँ निवास किया, मुनि सुखी हुए उनका डर जाता रहा। पर्वत, वन, नदी, तालाब शोभासे पूर्ण होगए और प्रतिदिन अत्यन्त सुहावने होरहेहैं। पक्षी-पशु समूह सुखी रहतेहैं, भौंरे मधुर गुंजार करतेहुए शोभा पारहेहैं। शेषनागभी उस वनका वर्णन नहीं कर सकते जहाँ रघुवीर रामजी प्रत्यक्ष विराजमान् हैं।

पु० र० कु० १ (क)—मुनिने प्रथम दण्डकारण्य पावनकरनेको कहा तब मुनियोंपर दया करनेको पर यहाँ रामजीके निवास करतेही प्रथम मुनियोंका भय मिटाना और सुखी होना कविने लिखा। कारण कि श्रीरामजीके मनमें मुनियोंका कार्य्य प्रधान है वे इसेही अति आवश्यक समझतेहैं उसकी प्रतिज्ञा करचुकेहैं, इसीसे मुनियों का सुखी होनाही प्रथम है। (ख) मुनिके 'कीजै सकल मुनिन्हपर दाया इस वचनका इस चौपाई—'जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भए मुनि बीती त्रासा'—में चरितार्थ है। दूसरी बात जो मुनिने कही थी कि दंडक बन पुनीत प्रभु करहू' इसका चरितार्थ अगली चौपाईमें है—'गिरि बन नदी...'। वनका सुहावन होना कहकर तब उनके आश्रित जीवोंका सुख कहा—'खगमृगवृन्द अनंदित रहहीं...'। (ग) 'खगमृग०' का भाव कि पक्षी बोलकर मृग, देखकर सुख दिखातेहैं। सब पशु परस्परका वैर भूलगए अतः सब सुखी हैं। यथा—'सहवासी काँचो भषैं पुरजन पाक प्रवीन। कालक्षेप केहि बिधि करहिं तुलसी खग मृग मीन'। २—'सो बन बरनि न सक अहिराजा...'। कारण न वर्णन करसकनेका यह कि वे दिनदिनप्रति अति होहिं सुहाए'। जो छटा आजहै वह कल नहीं रहनेकी अतः जो वे आज कहेंगे वह कल झूठी होजायगी। अथवा, अत्यन्त शोभा है इससे वर्णन नहीं कीजासकती।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३—'जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा' अर्थात् जिनके भजनके प्रभाव से मुनियोंके आश्रमोंमें पूर्ण शोभा होरहीहै, वे स्वयंही जहाँ प्रत्यक्ष विराजमान् होंगे वहाँकी शोभाका फिर कैसे कोई अन्दाजा करसकता है। अथवा, यहाँ अहिराज रघुवीररूपसे प्रगट विराजमान् हैं वेहीं लक्ष्मणजी देखकर वर्णन नहीं करसकते तब और कौन वर्णन करेगा? [यहाँ रघुवीर पद दिया क्योंकि यह निश्चरोंका वन है, यहाँसे उनका वीरत्व प्रगट होगा]

४—चित्रकूटमें प्रवर्षनमें देवताओंने कुटी बनाईथी, यथा—'रमेउ राम मन देवन्ह जाना। चले सकल सुरपति परधाना॥ कोल किरात वेष सब आए। रचे परनतृन सदन सुहाए॥" पुनः, 'प्रथमहिं देवन्ह गिरिगुहा राखी रुचिर बनाइ। रामकृपानिधि कछुक दिन बास करहिंगे आइ'। परन्तु यहाँ कुटी नहीं बनाई। क्यों? उत्तर—(१) खरके भयसे। भय सबको रहाहै यह बात खरदूषणादि के वधपर कविने स्पष्ट कहीहै, यथा—'जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सबके भय बीते'। (२)—यह उग्रशापसे शापित था यहाँ पर्णकुटी बनानेमें देवता समर्थ न थे अतः प्रभुने स्वयं कुटी छायी इन्हींके आगमनपर वह स्थान हराभरा होगया।

दंडकवनपावनता आदि प्रकरण समाप्त हुए।

"श्रीरामगीता"

एक बार प्रभु सुष आसीना।
लछिमन बचन कहे छलहीना॥ § १३/७ (५)
सुर नर मुनि सचराचर साईं।
मैं पूछौं निज प्रभु की नाईं॥ ,, (६)
मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा।
सब तजि करौं चरन-रज सेवा॥ ,, (७)
कहहु ज्ञान बिराग अरु माया।
कहहु सो भगति करहु जेहि दाया॥ ,, (८)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ईश्वर जीवहि †भेद प्रभु सकल कहौ‡समुझाइ ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ॥§ १४/८

अर्थ—एकबार प्रभु रामचन्द्रजी सुखसे बैठेहुएथे । लक्ष्मणजीने छलकपटरहित (सहज स्वभावसे) वचन कहे—हे सुरनर मुनि चराचरमात्रके स्वामी ! मैं निज प्रभुकी तरह आपसे पूछता हूँ । हे देव ! मुझसे वही समझाकर कहिए जिससे सबको छोड़कर मैं प्रभुके चरणरजकी सेवन करूँ । ज्ञान, वैराग्य और माया (वा स्वरूप) कहिए जिससे आप कृपा करतेहैं । ईश्वर; और जीवका भेद, यह सब समझाकर कहिए जिसमें आपके चरणोंमें अनुराग हो और शोक मोह भ्रम मिट जाय ।

पु० र० कु०—१—उमा शिव-संवाद-प्रसंगसे मिलान यथा—

पारबती सुभ अवसर जानी । गईं संभु पहिं०	एकबार
एकबार तेहि तर प्रभु०गयऊ। तरु बिलोकि उर	प्रभु सुख आसीना
अति सुख भयऊ	
प्रश्न उमाकी सहज सुहाई । छल बिहीन०	लछिमन कहे बचन००
बिश्वनाथ	सुरनर मुनि सचराचर
मम नाथ पुरारी	मैं पूछउँ निज प्रभुकी०
'हरहु नाथ मम मति भ्रमभारी', 'जेहि बिधि'	सोक मोह भ्रम जाइ
मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू	मोहि समुझाइ कहहु

२—(क)—'निज सेवकी नाई" । भाव कि आप तो सबकेही भ्रम दूर करके सबको सुख देतेरहतेहैं पर जैसे सन्देह दूर करने लिए सेवक निजस्वामीसे पूछताहै जिसमें पदार्थका यथार्थ ज्ञान होजाय वैसेही मैं पूछताहूँ । (ख)—'मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा" ।—पूछनेकी यही रीतिहै, जिज्ञासु अज्ञान बनकर पूछे यथा—

१ राम कवन प्रभु पूछौं तोही । कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही' (भरद्वाज)
२ नाथ धरेउ नर तन केहि हेतू । मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू । (गिरिजे)
३ एकबात प्रभु पूछउँ तोही । कहौ बुझाइ कृपानिधि मोही ।। (गरुड़)
४ संत असंत भेद बिलगाई । प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई ।। (भरतः)

† 'जीव'—‡ कहहु—(क०, न० प्र०, रा० गु० द्वि०) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तथा यहाँ ५—मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा।

(ग)—'सब तजि' का भाव कि संसारी नाते बाहरके तो छोड़ही चुके अब भीतरके विकारभी दूर कर दूँ।—(खर्रा)।

३—लक्ष्मणजी ज्ञान, वैराग्य और भक्तिके स्वरूप जानतेहैं, इन्होंने गुहसे कहाभी है, यथा—'बोले लषन मधुर मृदु बानी। ज्ञान बिराग भगति रस सानी'। यहाँ आपने लोकोपकार हेतु जान बूझकर पूछा है, यथा—'तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी कीन्हेउ प्रश्न जगतहित लागी'। मुख्य कारण यही है। [दूसरा कारण यहभी होसकताहै कि शास्त्रकी बातें पुनः पुनः देखना-सुनना विचारनाचाहिए, यथा—'सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिए' नहीं तो विस्मरण होजानेका भय है। तीसरे इस प्रकार कालक्षेप करनाचाहिए—यह दिखाया। व्यर्थ बातोंमें समय न बितावे।]

४ (क)—'ईश्वर जीवहि भेद प्रभु कहहु सकल समुझाइ।००' इति।—समुझाइ' आदिमें भी कहा, यथा—'मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा'। भाव यह कि ज्ञान, वैराग्य, माया, भक्ति ईश्वर-जीव भेद यह सब बातें समझाकर कहिए। 'समुझाइ' पदसे सबकी कठिनता दर्शित हुई। (ख)—ज्ञान विराग मायाको एक साथ रखा और भक्तिको अलग क्योंकि भक्तिके पास माया जा नहीं सकती। यथा—'भगतिहि सानुकूल रघुराया। तातें तेहि डरपति अति माया'—(उ०§ ११५)

५—'जाते होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ'। (क)—ज्ञानसे शोकका नाश होगा और वैराग्यसे मोहका। मायाका स्वरूप कहियेगा उससे भ्रम दूर होगा क्योंकि इससे निज-पर-स्वरूपकी विस्मृति होती है, यथा—'मायाबस सरूप बिसरायो'—(विनय)। भक्ति कहिए उससे चरणोंमें भक्ति होगी। (ख)—ज्ञान वैराग्यादि सभीको पूछनेका कारण बताया कि 'सब तजि करउँ चरनरज सेवा इन सबके जाननेपरही बन पड़तीहै। यथा—'जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती'।

१ रा० प्र० श०—'एक बार प्रभु सुख आसीना' इति।—(क) पूर्व यह कहकर कि 'जब तें राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भये मुनि बीती त्रासा। गिरि बन नदी ताल छबि छाये...।' तब यह कहतेहैं कि 'एक बार प्रभु सुख आसीना'। भाव यह कि—(i) अपने समान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुण स्वभाववालोंको देखकर सुख होताही है। यहाँ पाँच परोपकारी पूर्वसे उपस्थितथेही—मुनि, गिरि वन, नदी और पृथ्वी (जिनपर ये सब बसे हैं)। यथा—संत विटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह कै करनी'। छठे परोपकारी आप पहुँचे (आपका आविर्भाव, वनवास आदि सब परोपकार हेतुही है) अतः 'सुख आसीना' कहा। (ii) अपने आश्रितको सुखी देखकर स्वामीको सुख होताही है—'वेद धर्म रक्षक सुरत्राता'। मुनि वेद विहित कर्मधर्मोंका सदा मनन करते और उनके अनुकूल आचरण करतेहैं वे मुनि आपकी शरण पाकर सुखी हुए—'सुखी भये मुनि बीती त्रासा'। अतः आपभी 'सुखासीन' हैं। (iii) ज्ञानेन्द्रियाँ अपने २ विषयोंका सुख पातीहैं तब अन्तःकरण सुखी होताहै। यहाँ गिरिवन, नदी, ताल, खगमृग वृन्द आदि अपने रूपसे नेत्रोंको, पक्षी और भौंरे अपनी बोलीसे श्रवण का नदी और ताल स्पर्श से त्वाचा और रसनाको और पुष्प सुगन्ध से नासिकाके द्वारा अन्तःकरणको सुख देरहेहैं। अतः 'सुख आसीना' (ख)—'सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रकट रघुबीर बिराजा। ऐसे शोभायमान वनमें जहाँ टेसूके फूल फूले सामने नदीकी धारा, मयूर कोकिला आदिकी कूज, कमल जिनपर मर मिटनेवाले भ्रमर गूँजरहेहैं और अपना प्राणाधारभी साथ—इस शृङ्गाररसकी पराकाष्ठा वाली दशाको 'सुख आसीन कहना ही चाहिए। पुनः, (ग)—सुख आसीन कहनेका तात्पर्य्य यह है कि परस्पर प्रियाप्रियतमके बिपिन बिहारीकी यह अन्तिम दशाहै—वास्तविक क्रीड़ा तो किसी देशकालमें कदापि न्यून होती ही नहीं वह नित्य एकरस है—प्रकटमें जो दिखानाहै वह लीला मात्र है। २—तेरहवाँ वर्ष व्यतीत होनेको अब केवल तीन ही मास रहगएहैं। वसन्तपंचमीके पश्चात् के ये चरित्र हैं श्रीजनकजीके हरणका समय निकट है—'असित अष्टमी फागकी सीताहरन बखान'।—(रा० प्र० श०)।

३—'लछिमन बचन कहे छल हीना' इति। 'छलरहित' का भाव यह कि (क) ये प्रश्न जय विजय, परीक्षा, या अपनी बुद्धिकी चतुरता दिखानेके लिए नहींहैं। (ख) लक्ष्मणजी स्वयं सबके ज्ञाताहैं और उनकी रामजीके चरणोंमें अनन्य प्रीति है जैसा वे स्वयं कहचुके हैं—'मन क्रम बचन चरन रति होई। कृपासिंधु परिहरिय कि सोई'। तब

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भी यहाँ प्रश्न करना और कहना कि 'जाते होइ चरन रति' 'सब तजि करौं चरनरजसेवा'—यह अपना संदेह दूर करनेके लिए नहीं वरन् जीवोंके कल्याणके लिए है। श्रीलक्ष्मणजी जीवोंके आचार्य्य मानेजाते हैं। (ग) श्रीमुखसे सुनकर जो कुछ जानतेहैं उसमें औरभी दृढ़ होना चाहतेहैं (घ) रा० प्र० श० जी लिखतेहैं कि—यहाँ प्रश्न उससे कहरहेहैं कि जिसको 'तरकि न सकहिं सकल अनुमानी'। न्यायवालोंका प्रश्न संशय, तर्क, जल्प, वितण्डा और छलयुक्त होताहै छलहीन कहकर जनाया कि ये प्रश्न तार्किकोंकी भाँति केवल वाद-विवाद हेतु नहीं किन्तु अपने और जगत्मात्रकी प्रवृत्तिके कारण हैं। पुनः, 'छलहीना' कहकर जनाया कि इनके उत्तर जो कोई सुनेगा वह भी छलरहित होजायगा, उसे मायाकी असत्यका झलक जायगी।—विशेष ब० § ११० (६) में देखिए। २—कुछ लोगोंने 'छलहीन' लक्ष्मणजीका विशेषण मानाहै पर यह ठीक नहीं है जैसा कि शिव-पार्वतीसंवाद और इन प्रश्नोंके मिलानसे स्पष्ट है यह 'वचन' काही विशेषण है।

'मैं पूछौं निज प्रभुकी नाई'' इति। (क) रा० प्र०श०—इस चौपाईके पूर्वार्द्धमें ऐश्वर्य्य और उत्तरार्द्धमें माधुर्य्य है। भाव कि जो प्रश्न करेंगे वह ऐश्वर्य्य-माधुर्य्य-युक्त है (ज्ञान और भक्ति)। 'निज प्रभु' का भाव कि आप जो आज्ञा करेंगे वही हमारा कर्त्तव्य होगा, यथा—'मोहि समुझाइ कहउ सोइ देवा। सब तजि करउँ चरनरज सेवा'।

(ख) प्र०—'निज प्रभु' से अनन्यताकी ममता रखतेहुए प्रश्न किया क्योंकि 'रहै असोच बनै प्रभु पोसे'। भाव कि जैसे मैं 'निज प्रभु' समझकर पूछता हूँ वैसेही आप जो उत्तर दें 'वह प्रभु-सम्मित हो'। पुनः, भाव कि जैसे सेवक सीधी रीतिसे अपने स्वामीसे पूछता है वैसेही मैं सेवककी तरह पूछता हूँ।

५—रा० प्र० श०—'मोहि समुझाइ कहउ सोइ देवा। सब तजि करौं चरनरज सेवा'। भाव यह कि कठिन है समझाकर कहनेसे सर्वसाधारण इस तत्त्वज्ञानको समझकर वैसा आचरण करेंगे। 'सब तजि' यह उपदेश भावमें है अर्थात् जबतक जीव विषयवासनाका त्याग न करेगा तबतक श्रीरामजीके चरणोंकी सेवा उसे प्राप्त होना असंभव है।—'सबकी ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँधि बर डोरी'।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

६—'कहहु ज्ञान बिराग अरु माया...' इति।—यहाँ छः प्रश्न किए—ज्ञान, वैराग्य, माया, भक्ति, ईश्वर और जीव। और अन्तमें कहा कि 'जाते होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ'। इसका एक भाव पु० र० कु० का लिखागया। और भाव सुनिए—(क) आगे शीघ्रही वह लीला होनेको है जिससे सती और गरुड़को शोक, मोह और भ्रम होगया; इतर जीव किस गिनतीमें हैं। इन्हींसे बचनेके लिए ये प्रश्न हुएहैं। * (ख)—रा० प्र० श०—यहाँ प्रश्न तो छः किए पर उनसे अभिप्राय दोही प्रकट किए—एक कि 'चरणरति हो', दूसरे कि 'शोक मोह भ्रम जाय' कारण कि भक्तिका स्वरूप जाननेसे चरणोंमें प्रेम होता है और ज्ञान वैराग्य माया, ईश्वर जीवका भेद जाननेसे शोकादि दूर होतेहैं। (ग) शोक, मोह और भ्रम ये चित, मन और बुद्धिमें होतेहैं। ये तीनों आपमें लीन रहें। चतुष्टय अन्तःकरणमें मन, चित, बुद्धि और अहंकार ये चारों हैं उनमेंसे यहाँ अहंकार को नहीं कहा। कारण कि सेवामें अहंकार होना भक्तिका एक स्वरूप है, यथा—अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे' इसीसे तीनके विकारोंका दूर करना कहागया।—(वै०, प्र०)

थोरेहि † महँ सब कहौं बुझाई।
सुनहु तात मति मन चितु लाई॥ § १४/८ (१)

रा० प्र० श०—१ तीन स्थानोंमें तीनहीको शोकादिक हुए। बाललीलामें भुशुण्डिजीको मोह हुआ यथा—'जेहि बिधि मोह भयउ प्रभु मोही। सो सब चरित सुनावउँ तोही'। वनमें सतीको शोक हुआ, यथा—'नित नव सोच सती उर भारा;। रणमें गरुड़जीको भ्रम, यथा—'सो भ्रम अब मैं हित करि जाना'। २—छः प्रकारके उपकारी यहाँ एकत्र हैं, अथवा, जीव षट्विकारयुक्त है अतः छः प्रश्न किएगए। ज्ञान और मुनिका संबंध है—ज्ञान मननशीलोंके लिए है और मुनि सदा उनका मनन करतेही हैं। ३—गिरि और वैराग्य—'बुंद अघात सहैं गिरि कैसे। खलके वचन संत सह जैसे' शीतोष्णादि सहना वैराग्यवान्का काम है। माया और वनकी एकता यों कि दोनोंमें फँसकर मार्गसे भटक जानाहोताहै। भक्ति और नदीका स्वरूप एक है दोनों ताप और मलके नाशक हैं—'प्रेम भक्ति जल बिनु खगराई। अभ्यंतर मल कबहुँ कि जाई'। 'खग मृग बृंद...' में जीवोंका भेद कहा।

† थोरेहि—(क०, न० प्र०)। 'थोरेह'—(भ० द)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—हे तात ! मैं थोड़ेहीमें सब समझाकर कहताहूँ। तुम मन चित्त और बुद्धि लगाकर सुनो।

पु० र० कु०—१—श्रीलक्ष्मणजीने कहा कि 'मोहि समुझाइ कहौ। अतः प्रभुने कहा कि 'थोरेहि मह सब कहौं बुझाई'। २—थोड़ेही में कहनेका भाव कि इनकी व्याख्या बड़ी है, 'इनके समझनेका बिस्तार भारी' है। पुनः, थोड़ेमें कहतेहैं क्योंकि शूर्पनखा चलचुकी है, विस्तार का समय अब नहीं है।*

३—'सुनहु तात मति मन चितलाई' से यह सूचित किया कि यह विषय बहुत सूक्ष्म है, इसमें मन, बुद्धि और चित्त तीनों लगाने पड़ते हैं। [मनकी चंचलता छोड़कर बुद्धिसे निश्चय करे और चित्तसे ग्रहण करे—(खर्रा)]

पं०—थोड़ेमें समझा कहकर वक्ता और श्रोताकी उत्तमता दिखाई गूढ़ बातको थोड़ेमें कहकर समझा देना और श्रोताका थोड़ेमेंही समझ लेना दोनोंकी विशेषता और निपुण बुद्धिमत्ता दर्शित होतीहै।

मैं अरु मोर तोर तैं माया।
जेहिं बस कीन्हें जीव निकाया॥ § १४/८ (२)

* रा० प्र० श०—१—जैसा प्रश्न है कि 'मोहि समझाइ कहहु' उसीके अनुकूल उत्तर है 'कहौं बुझाई'। बुझौवल ग्राम्य भाषामें पहेलीको कहतेहैं जिसमें वस्तुका यथार्थ स्वरूप न कहकर केवल उसका लक्षण गूढ़रूपसे कहदिया जाता है। श्रोता अपनी बुद्धिसे उसे समझलेताहै। 'बुझाई' शब्दसे यहाँ वही वार्ता जान पड़तीहै। पुनः, 'सुनहु तात मति मन चित लाई से बुझौवल स्पष्ट है। यद्यपि लक्ष्मणजीने दो बार कहा कि समझाकर कहिए तथापि आपने मायादिकका स्वरूप विस्तारसे नहीं कहा परन्तु ऐसा तो अवश्य कहा जो समझमें आजावे, परन्तु जीवईश्वरका स्वरूप तो कुछभी नहीं कहा, केवल उनके गुणसे उनका स्वरूप लखाया कि प्रेरक होनेसे ईश्वर और अल्पज्ञ होनेसे जीव जानना।

२—अन्तःकरणमें जानेपर चितसे ग्रहण मनसे मनन और बुद्धिसे निश्चय करके उसपर तत्पर होजावे—'यह भाव 'मति मन चित लाई' का है। यही श्रवण, मनन और निदिध्यासन है। चौथा कारण अहंकार है उसको न कहा, इसका तात्पर्य्य कि अहंकारशून्य होकर यह सब करे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गो गोचर जहँ लगि मन जाई।
सो सब माया जानेहु भाई॥ १४/८ (३)
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ।
बिद्या अपर अबिद्या दोऊ॥ ,, (४)
एक दुष्ट अतिसय दुःषरूपा।
जा बस जीव परा भव कूपा॥ ,, (५)
एक रचै जग गुन बस जाकें।
प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें॥ ,, (६)

शब्दार्थ–गोचर=इन्द्रियोंका विषय, यथा 'इन्द्रयार्थश्च हृषीकं विषयीन्द्रियम् इत्यमरः। प्रेरणा=किसीको किसी कार्य्यमें लगानेकी क्रिया; कार्य्यमें प्रवृत्त या नियुक्त करना। प्रेरित=प्रेरणासे, प्रचालित, आज्ञासे।

अर्थ–मैं और मेरा, तू और तेरा यही माया है जिसने समस्त जीवों को वश करलियाहै। इन्द्रियों और इन्द्रियों का विषय एवं जहाँतक मन जाय, हे भाई! उस सबको माया जानो। उसका भेदभी एक विद्या दूसरी अविद्या, सो दोनोंको भी तुम सुनो। एक (अविद्या) बड़ी ही दुष्ट और अत्यन्त दुःखरूप है। जिसके वश होकर जीव संसार-कुएँमें पड़ाहै। एक (विद्या) जिसके वशमें गुण हैं वह जगत्की रचना करतीहै (सृष्टि उत्पन्न करतीहै) पर प्रभुकी प्रेरणासे उसको कुछ अपना बल नहीं है।

पु० र० कु–१ 'मैं अरु मोर तोर तैं माया...' इति। (क)—माया ब्रह्म और जीव अनिर्वचनीय हैं। इनका स्वरूप कारणसे नहीं कहते बनता। इसीसे कार्य्यद्वारा कहते हैं। मैं मोर इत्यादि ये सब मायाके कार्य्य हैं।—(खर्रा)। (ख)—यहाँ लक्ष्मणजीका प्रथम प्रश्न ज्ञान का है पर प्रभुने प्रथम मायाका स्वरूप कहा। इसी प्रकार आगे फिर क्रमभंग कियाहै, पहले भक्तिका प्रश्न कियागयाहै पर प्रभुने पहले ईश्वरजीवका भेद कहा। मायाको प्रथम इससे कहा कि ज्ञानका कथन करनेपर फिर मायाका स्वरूप कहते न बनता। अर्थात् ज्ञान होनेपर माया रहही नहीं जाती तब उसका स्वरूप कौन सुनेगा और कैसे कहा जायगा। दूसरे मायाका स्वरूप समझजानेपर फिर ज्ञानका स्वरूप

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शीघ्र समझमें आजाताहै। दोहावलीमें कहाहै कि विना मायाके स्वरूप ज्ञानका कथन असंभव है। यथा—'ज्ञान कहै अज्ञान विनु तम विनु कहै प्रकास। निरगुन कहै जो सगुन विनु सो गुरु तुलसीदास'—(२५१)। * (ग)—मैं प्रथम है पीछे तैं है, जब मैं कहनेवाला नहीं तब 'तैं' कौन कहेगा। इसीसे मैं और मोर तोर तैं इस प्रकार लिखा। (घ) 'जेहि बस कीन्हे' यथा—'हम हमार आचार बड भूरिभार धरि सीस। हठि सठ परबस परत जिमि कीर कोसकृमि कीस—(दो० २४३)।

२—(क) 'गो गोचर जहँ लगि मन जाई' इससे जनाया कि मन से मायाकी पहुँच बहुत अधिक है। पुनः, यह जनाया कि माया मनोमय है। इन्द्रियों और मनका वेग माया है। (ख) दृश्यमात्र जगत् मायाका ठहरा। अपरलोक नेत्रादि इन्द्रियोंके गम्य नहीं हैं पर मन अर्थात् अन्तःकरण वहाँ जासकताहै इसीसे बताया कि वहभी मायाहै (ग) पहले माया (का स्वरूप) कहा—'मैं अरु मोर तोर तैं माया' (२) फिर मायाका कार्य्य (कर्त्तव्य) कहा—'जेहि बस कीन्हे जीव निकाया'। (३) फिर मायाका विस्तार कहा कि 'गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु'। (४) फिर मायाका भेद कहा—'तेहिकर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ'। वह भेद यह है कि एक विद्या माया है दूसरी अविद्या माया है। एक दुष्ट अतिशय दुखरूपा है जिसके वशमें पड़कर जीव भवकूपमें पड़गया है। (घ) खर्रा—मन जहाँतक जाय वह माया है तब प्रश्न होताहै कि भगवत्में भी तो मन जाताहै तो वहभी माया हुआ। इसीसे कहतेहैं कि माया दो प्रकारकी है विद्या

* १ रा० प्र० श०—जीवका अनेक जन्मोंसे मायाका संबन्ध है उसका स्वरूप जानने में उसकी रुचि होगी। जन्म मरण आदिका कारण मायाही है। पुनः, मायाका स्वरूप जाननेसे विवेक (सद्सद् का ज्ञान) होनेसे असत् से वैराग्य और सत्में अनुराग होगा। अतएव मायाका स्वरूप प्रथम कहा। २—पां—लक्ष्मणजीके प्रश्न व्यतिक्रमसे हैं और रघुनाथजीका उत्तर अनुक्रमसे है। ३—शिला—श्रीरामजीने क्रमसे कहा और लक्ष्मणजीने व्यतिक्रमसे। इसमें भाव यह कि प्रश्नकर्ता जिज्ञासुको अजान (अज्ञान) बनकर पूछना चाहिए तभी वक्ता हर्षपूर्वक भली प्रकार कहताहै। ४—दीनजी—प्रथम मायाका वर्णन करके लक्ष्मजीके वैराग्यकी परीक्षाली।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

माया जीवमें दिव्य गुण उत्पन्न करती है, भगवान्में मन लगताहै, तब जीव मायासे पार होजाताहै, यथा-'राम दूरि माया प्रबल घटति जानि मन माँह ।०'—(दो० ६९)। 'हरिसेवकहि न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित तेहि व्यापै विद्या'। (ङ)—'जा बस जीव परा भवकूपा'। अर्थात् मैं और मोर तैं और तोर यही माया है जिसने समस्त जीवोंको वश कररखाहै। यही माया अतिशय दुष्टरूप है, यथा—'तुलसिदास मैं मोर गए बिनु जिय सुख कबहुँ न पावै'—(विनय) 'परा भवकूपा' के पड़ा शब्दसे जनाया कि अपनी ओरसे यह जीव भवकूपमें पड़ाहै इसीसे यह नहीं कहते कि 'निजबस करि नायो भवकूपा' अर्थात् प्रभु यह नहीं कहते कि मायाने अपने वश करके इसे भवकूपमें डाल दिया किन्तु कहतेहैं कि वह 'पड़गयाहै'। मिलान करो—

"सो माया बस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मर्कटकी नाईं॥"

३—(क) 'एक रचइ जग गुन बस जाके' अर्थात् यह माया त्रिगुणात्मिकाहै। प्रभु प्रेरित=प्रभुकी आज्ञासे, यथा—'लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया' (ख) 'नहिं निज बल ताके' अर्थात् प्रभुके बलसे सृष्टि रचना करतीहै। तात्पर्य्य कि माया जड़ है, यथा—'जासु सत्यताते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया', 'सो दासी रघुबीर कै समुझे मिथ्या सोपि। छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि'। 'सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा'।

श्रीमन्त जामदारजी—तुलसीदासजीने ज्ञानकी अपेक्षा भक्ति ही श्रेष्ठ मानी है और साधक बाधक प्रमाणोंसे वही मत सिद्ध किया है। ...गोस्वामीजीका ज्ञानभक्तिवादका तुलनात्मक संक्षेप इसप्रकार है—

जे ज्ञानमान-विमत्त तव भवहरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर-दुरलभ पदादपि परत हम देखत हरी॥
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।
जपि मान तव बिनु श्रम तरहिं भवनाथ सोइ समरामहे॥

प्रस्थानत्रयी सदृश ग्रन्थों पर ज़ोर देनेवाले व्याख्याता यही कहतेहैं कि सब पापोंकी जड़ अभिमानही है। (पर व्याख्याताओंका अहंकार स्वयं बढ़ताजाताहै)...भक्तिके अतिरिक्त अहंकार छूट नहीं सकता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और अहंकार छूटे विना ज्ञान जम नहीं सकता। अतः भक्तिके अभावमें ज्ञान न जमकर अहंकार ही जमताजाताहै। इसी कारण वेदान्तियोंका ज्ञानकी वातोंका अपचन होकर उनका अहंकार ज़ोरसे बढ़ताजाताहै। पश्चात् इस अहंकारकी वृद्धिका परिणाम स्वामीजीने बताया है—'अहंकार अति दुखद डहरुआ'...यह भक्तिशून्य ज्ञानका परिणाम अभिमान बढ़ानेमें न होता तो गीताका व्याख्यान संपूर्ण करनेपर श्रीकृष्णजीने अर्जुनजीको खासकर चेताया न होता कि 'इदं ते नातमस्काय नाभक्ताय कदाचन'।

उपर्युक्त सिद्धान्तकी सत्यतासत्यता समीकरणकी रीतिसे इस प्रकार दिखाई जासकतीहै 'मैं अरु मोर तोर तैं माया' अर्थात् 'मैं और मेरा'और'तू और तेरा' यही माया है इसलिए मैं+तूं=माया।—परन्तु मायाका 'मैं—तूं'—रूप कार्य्य जब प्रथमही निर्दिष्ट हुआ उस समय 'तू' यानी ब्रह्म और मैं यानी अहंकार इनके अतिरिक्त और कुछ भी तीसरा पदार्थ था ही नहीं इसलिये ब्रह्म+अहं=माया*। ब्रह्म=माया—अहं।—परन्तु ब्रह्म यानी (सत्य) ज्ञान, माया यानी भेदभान, अर्थात् अज्ञान, और—'अहं' यानी निरहंकारता हैं। ज्ञान=अज्ञान—निरहंकारता।

---

* अन्यरीतिसे भी यह समीकरण सिद्ध होताहै। ब्रह्ममें जो 'अहंब्रह्मास्मि' स्फूर्ति हुई वह ब्रह्मकी स्वगत शक्तिके कारण हुई। स्वगत शक्ति कहनेका कारण यह है कि अहंस्फूर्ति होनेके पहिले न तो ब्रह्मका न उसके उस शक्तिका नाम निर्देश होसकताथा। अहंस्फूर्तिके पश्चात्ही उस शक्तिको माया नाम लगाया गया। इससे यही हुआ कि अहं और ब्रह्म इस भेदका निर्देश माया शब्दसे कियागयाहै। तात्पर्य ब्रह्मकी अंगभूत (स्वगत) शक्तिको फलरूपसे माया नाम मिलाहै। इससे 'ब्रह्म+अहं=माया' यही सिद्ध हुआ। अब यह कहा जाय कि वह शक्ति ही 'ब्रह्मास्मि' इस स्फूर्तिका बीज, यानी प्रधान कारण, होनेसे उसीको माया कहना चाहिए तोभी ऊपरवाले समीकरणमें फरक नहीं होसकता। इसका कारण यह है कि उस बीजरूपमायानेभी केवल एक 'ब्रह्म' ही न बतलाकर 'अहं' कोभी स्पष्ट करदिया। इससे यही हुआ कि मायाने 'अहं' और 'ब्रह्म' इस द्वैतको पैदा किया; अतएव समीकरणमें दिखलाना हो तो मायाको इसी प्रकार दर्शाना होगा कि माया=ब्रह्म+अहं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परन्तु निष्काम प्रेमसे और कृतज्ञतासे परमेश्वरमें अहंकारका लय होना यही निरहंकारता कहलाती है। 'भक्ति' संज्ञा इसीकी है। इसलिये ज्ञान=अज्ञान+भक्ति—(१) † और 'ज्ञान'—भक्ति = अज्ञान।—(२) ‡ अब देखिए कि प्रारंभमेंके छंदके पूर्वार्धमेंका गोसाईंजीका सिद्धान्त समीकरण नं० २ से सिद्ध हुआ जाताहै और उत्तरार्ध समीकरण नं० १ से। समीकरण नं० २ और नं० १ के क्रमसे यही निश्चित होताहै कि भक्तिशून्य ज्ञान केवल दिल्लगी या बकझक समझना चाहिए। यह ज्ञान 'बंध्या कि गुर्वी प्रसववेदनाम्' ऐसाही है। उससे भक्तियुक्त अज्ञान अत्यन्त उपयुक्त समझना चाहिये। क्योंकि उस अज्ञानमेंसे यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होनेका संभव रहताहै। काकभुशुंडि-संवादमेंके 'ज्ञानहिं भक्तिहिं अंतर केता' इस प्रश्नपर कितना और कैसा प्रकाश गिरताहै वह पाठकोंको समझाने की अब हमें जरूरत नहीं दिखती।

ग्यान मान जहँ एकौ नाहीं।
देष ब्रह्म समान सब माहीं॥ १४/८ (७)
कहिअ तात सो परम बिरागी।
तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥ ,, (८)

अर्थ—ज्ञान वह है जहाँ एकभी मान न हो। सबमें ब्रह्मरूप एक-सा देखे। हे तात! वह परम वैरागी कहाजायगा जो सिद्धियों और तीनों गुणोंको तिनकेके समान त्याग दे।

गौड़जी—'ज्ञान...माहीं'। इस चौपाईमें विलक्षण रीतिसे गीताजी की बतायी ज्ञानकी परिभाषा दीगयीहै। गीतामें १३ वें अध्यायमें ज्ञानकी परिभाषा इस प्रकार की गयी है—

† मिलान कीजिए—'अपिचेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव समंतव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः'॥—(गीता ९। २५)। 'जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवइ सभय सरन तकि मोही॥ तजि मदमोह कपटछल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना'।

‡ श्रेयः स्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यंति ये केवल बोध लब्धये। तेषमिसौ क्लेशल एवशिष्यतेनान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥'—(भाग० १०। १४। ४) 'जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ न राम प्रेम परधानू'।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्य्यमात्मविनिग्रहो ॥७॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एवच,
जन्म मृत्यु जराव्याधि दुःखदोषानुदर्शनम् ॥८॥
असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु,
नित्यं च समचित्तत्व मिष्टा निष्टोपपत्तिषु ॥९॥
मयिचानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जन संसदि ॥ १० ॥
अध्यात्मज्ञान नित्यवं तत्त्वज्ञानार्थ दर्शनम् ॥
एतज्ज्ञानमिविप्रोक्तम् अज्ञानं यदतोऽन्यथा ।

इन पांचो श्लोकोंमें 'अमानित्वम्' से आरंभ किया है और तत्व ज्ञानार्थ दर्शनम्' पर समाप्त कियाहै और कहाहै कि यही ज्ञान है। गोस्वामीजीने 'अमानित्व' (मान जहँ एक उन्हीं) से आरंभ किया और तैत्वज्ञानार्थदर्शनम' (देष ब्रह्म समान सबमाहीं) से समाप्त किया। 'थोरेहि महँ सब कहउँ' की प्रतिज्ञा इस विलक्षणतासे पूरी कीगयी। यह चौपाई मानों इस संक्षिप्तलेखनका प्राकृतरूप है—और अद्भुत भाषान्तर है।

[अमानित्वं.....तत्व ज्ञानार्थ दर्शनम्। एतत् "ज्ञानम्"।] थोड़ेही में छः श्लोकोंके भाव आगये।

इसी प्रकार इस गीतामें थोड़ेमेंही 'अद्भुत शिक्षा दी गयी है। सभी अत्यन्त सारगर्भित हैं। सबके लिये प्रमाण है।

"ज्ञान मान जहँ एकौ नाहीं" इति।

पु० र० कु०—(क) मैं और मोर, तैं और तोर यही अहंकार या मान है। इनके रहते जीवको सुख नहीं, यथा—'तुलसिदास मैं मोर गए बिनु जीव सुख कबहुँ न पावै' (विनय)। ये जहाँ नहीं हैं वहाँ ज्ञान हैं और जहाँ ये हैं वहाँ माया है। इसीसे मायाका स्वरूप कहकर तब ज्ञानका स्वरूप कहा। इनके ग्रहणसे मायाके त्यागसे ज्ञान उदय होगा, यथा—'माया छन्न न देखिए जैसे निरगुन ब्रह्म'। (ख) प्रथम इन्द्रियों और मनके वेगको माया बताया—'गो गोचर जहँ०'। अब ज्ञानका स्वरूप कहतेहैं जिससे मन और इन्द्रियाँ स्थिर होतीहैं। (ग)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रेरकसीव'। ३—विरोधी स्वरूप ज्ञान यह कि हमारे और ईश्वरके बीचमें विरोध करनेवाला कौन है इसका ज्ञान। वही यहाँ माया है—'जा बस जीव परा भवकूपा'। ४—उपाय स्वरूप ज्ञान—ज्ञान वैराग्य भक्ति जो कही गई फलस्वरूप ज्ञान—'तिन्हके हृदय कमल महँ सदा करौं बिश्राम'।

अ० § ९३ (२-४) 'कहत रामगुन भा भिनुसारा' में लिखा जाचुकाहै कि इस ग्रंथमें ५ गीताएँ हैं और प्रत्येक गीताके अंतमें उसकी फलश्रुति है।—पृष्ठ ५२८ में वहाँ देखिए। यह श्रीराम-गीताहै। लक्ष्मणजीके प्रश्नपर रामचन्द्रजीका उपदेश हुआहै। इस गीताका फल भगवान् स्वयं कहतेहैं-तिन्हके हृदयकमल महँ सदा करउँ बिश्राम।' अद्वैतमें जीवत्व रहताही नहीं अतः अद्वैतसे अर्थ नहीं कियाजाता।

रा० प्र० श० (क)—असत् पदार्थोंसे वैराग्य और सतमें अनुराग होनेपर यह निश्चय हुआ कि जीव और ईश्वर दोनोंका स्वरूप मायासे भिन्न है—'ईश्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी'। यही रूप सच्चिदानंदकाभी है। जब दोनोंका रूप सत् है तो दोनोंका संबंधभी अनादिकालसे सत् ही है—उस संबंधका बर्ताव तो परमात्मा अपनी ओरसे यथोचित नित्य करताही है पर मायामें पड़कर जीव अपने सम्बन्ध और भावको सर्वथा भूल गयाहै। उसी संबंध और भावके प्रकाशके निमित्त दोनोंका यथार्थ स्वरूप कहतेहैं।

(ख) जिसके कारण दोनोंमें भेद पड़गया वह माया है। माया, ईश्वर और अपने स्वरूपको यदि जीव जानता तो इस दीन दशाको न पहुँचता—अतः अब 'जीव' नाम होनेका कारण कहा कि जो तीनोंको न जाने वह जीव कहलाताहै।

३—मायामें पड़ाहुआ असमर्थ है वह कदापि नहीं जानसकता *

* रा० प्र० श०—ईश्वरके सर्वशक्तिमान होनेसे उसकी माया परम प्रबल है। यथा—'सिव बिरंचि कहँ मोहई को है बपुरा आन'। जब ईश्वर कोटिवाले मायाके फंदेमें पड़जातेहैं तब औरोंका कहना ही क्या? यदि ब्रह्मादिक मायाका स्वरूप जानते तो कदापि उसके भ्रममें न पड़ते, एक बार नहीं बहुधा कामादिकके किसी न किसी झकोरेमें आही जातेहैं। जब विद्यामायावाले उसके चक्करमें पड़जातेहैं तब अविद्यामायावाला जीव उसको क्या समझेगा। २—श्रीभुशुण्डिजी कहतेहैं—'नारद भव बिरंचि सनकादी। जे मुनिनायक आतम-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जहाँ कहींभी जीवका मायाको जानना या उससे तरना लिखाहै वह केवल कृपासे ही, साधनसे नहीं। वही बात यहाँ दिखारहेहैं। यहाँ ज्ञानवैराग्यके उपरान्त साधनकी व्याख्या है।

४—'माया ईश न आपु कहँ जान' के 'जान' शब्दसे साधन वा अपने पुरुषार्थ द्वारा जाननेसे तात्पर्य्य है, कृपासे नहीं। कारण यह कि जो जाननेका यंत्र है—अन्तःकरण—वहभी तो मायाका कार्य्य है; मायाका कार्य्य मायाके कारणको कैसे जानसकताहै? यह बात दूसरी है कि 'सो जानइ जेहि देहु जनाई' जिसे प्रभु स्वयं जनादें वही जानसकता है—यह कृपा है, साधन या पुरुषार्थ नहीं।—(वै०)।

५—यह निश्चय हुआ कि जीव अपने बलसे न ईश्वरको जान-सकताहै न मायाको। रहा अपनेको जानना सो वह ऐसे गाढ़ अवि-द्यातममें पड़ाहै कि ज्ञान वैराग्य नेत्र कुछ काम नहीं देते। देखिए जीव तीन प्रकारके कहेगएहैं—'विमुक्त विरत और विषई' सनका-दिक विमुक्त, परीक्षित आदि विरत और संसारी विषयी हैं। वैराग्य साधन अवस्था है और ज्ञान उसका फल है उसपर कहतेहैं—'जो ज्ञानिनकर चित अपहरई। बरिआई बिमोह बस करई'। यह तो वैराग्यवान् ज्ञानियोंकी दशा है और विमुक्तकी दशा कि सन कादिक को क्रोध आगया उन्होंने जयविजयको शाप देदिया—इसीसे कहा है—'हरि इच्छा भावी बलवाना'। विरक्त विरत की यह दशा तब विषयी किस लेखेमें? ६—जीवका स्वरूप कहकर उत्तरार्द्धमें ईश्वरका स्वरूप कहा।

पा०—इस दोहेमें अद्वैत द्वैत विशिष्टाद्वैत तीनों मत घटतेहैं। अद्वैत इस प्रकार कि जबतक अपनेको मायाईश (मायाका ईश्वर) नहीं जानता तबतक जीव कहलाताहै। जब अपने रूपका पहचान-लिया तब बाँधने छोड़नेवाला, सबसे परे और मायाको आज्ञा देने-

---

वादी॥'—(मीमांसीक दोनों भाग जिनमें पुरुषार्थ मुख्य मानागयाहै वे सब इनमें आगए)—ऐसोंऐसोंको भी कहतेहैं कि मोह न डांव कीन्ह केहिकेही को जग काम नचाव न जेही॥ तृष्णा केहि न कीन्ह बौराहा। केहिकर हृदय क्रोध नहिं दाहा'। तात्पर्य्य यह कि यदि जीव अपने पुरुषार्थवश मायासे बच-नेका यत्न करे तब छूटे नहीं तो अधिक अधिक अरुझाई'। ३—जब जीव मायाको नहीं जानसकता तब ईश्वरका जानना और कठिन एवं असंभव है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रेरकसीव'। ३—विरोधी स्वरूप ज्ञान यह कि हमारे और ईश्वरके बीचमें विरोध करनेवाला कौन है इसका ज्ञान। वही यहाँ माया है—'जा बस जीव परा भवकूपा'। ४—उपाय स्वरूप ज्ञान—ज्ञान वैराग्य भक्ति जो कही गई फलस्वरूप ज्ञान—'तिन्हके हृदय कमल महँ सदा करौं बिश्राम'।

अ० § ६३ (२-४) 'कहत रामगुन भा भिनुसारा' में लिखा जाचुकाहै कि इस ग्रंथमें ५ गीताएँ हैं और प्रत्येक गीताके अंतमें उसकी फलश्रुति है।—पृष्ठ ५२८ में वहाँ देखिए। यह श्रीराम-गीताहै। लक्ष्मणजीके प्रश्नपर रामचन्द्रजीका उपदेश हुआहै। इस गीताका फल भगवान् स्वयं कहतेहैं-तिन्हके हृदयकमल महँ सदा करउँ बिश्राम।' अद्वैतमें जीवत्व रहताही नहीं अतः अद्वैतसे अर्थ नहीं कियाजाता।

रा० प्र० श० (क)—असत् पदार्थोंसे वैराग्य और सतमें अनुराग होनेपर यह निश्चय हुआ कि जीव और ईश्वर दोनोंका स्वरूप मायासे भिन्न है—'ईश्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी'। यही रूप सच्चिदानंदकाभी है। जब दोनोंका रूप सत् है तो दोनोंका संबंधभी अनादिकालसे सत् ही है—उस संबंधका बर्ताव तो परमात्मा अपनी ओरसे यथोचित नित्य करताही है पर मायामें पड़कर जीव अपने सम्बन्ध और भावको सर्वथा भूल गयाहै। उसी संबंध और भावके प्रकाशके निमित्त दोनोंका यथार्थ स्वरूप कहतेहैं।

(ख) जिसके कारण दोनोंमें भेद पड़गया वह माया है। माया, ईश्वर और अपने स्वरूपको यदि जीव जानता तो इस दीन दशाको न पहुँचता—अतः अब 'जीव' नाम होनेका कारण कहा कि जो तीनोंको न जाने वह जीव कहलाताहै।

३—मायामें पड़ाहुआ असमर्थ है वह कदापि नहीं जानसकता *

* रा० प्र० श०—ईश्वरके सर्वशक्तिमान होनेसे उसकी माया परम प्रबल है। यथा—'सिव बिरंचि कहँ मोहई को है बपुरा आन'। जब ईश्वर कोटिवाले मायाके फंदेमें पड़जातेहैं तब औरोंका कहना ही क्या? यदि ब्रह्मादिक मायाका स्वरूप जानते तो कदापि उसके भ्रममें न पड़ते, एक बार नहीं बहुधा कामादिकके किसी न किसी झकोरेमें आही जातेहैं। जब विद्यामायावाले उसके चक्करमें पड़जातेहैं तब अविद्यामायावाला जीव उसको क्या समझेगा। २—श्रीभुशुण्डिजी कहतेहैं—'नारद भव बिरंचि सनकादी। जे मुनिनायक आतम-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जहाँ कहींभी जीवका मायाको जानना या उससे तरना लिखाहै वह केवल कृपासे ही, साधनसे नहीं। वही बात यहाँ दिखारहेहैं। यहाँ ज्ञानवैराग्यके उपरान्त साधनकी व्याख्या है।

४—'माया ईश न आपु कहँ जान' के 'जान' शब्दसे साधन वा अपने पुरुषार्थ द्वारा जाननेसे तात्पर्य्य है, कृपासे नहीं। कारण यह कि जो जाननेका यंत्र है—अन्तःकरण—वहभी तो मायाका कार्य्य है; मायाका कार्य्य मायाके कारणको कैसे जानसकताहै? यह बात दूसरी है कि 'सो जानइ जेहि देहु जनाई' जिसे प्रभु स्वयं जनादें वही जानसकता है—यह कृपा है, साधन या पुरुषार्थ नहीं।—(वै०)।

५—यह निश्चय हुआ कि जीव अपने बलसे न ईश्वरको जान-सकताहै न मायाको। रहा अपनेको जानना सो वह ऐसे गाढ़ अवि-द्यातममें पड़ाहै कि ज्ञान वैराग्य नेत्र कुछ काम नहीं देते। देखिए जीव तीन प्रकारके कहेगएहैं—'विमुक्त विरत और विषई' सनका-दिक विमुक्त, परीक्षित आदि विरत और संसारी विषयी हैं। वैराग्य साधन अवस्था है और ज्ञान उसका फल है उसपर कहतेहैं—'जो ज्ञानिनकर चित अपहरई। बरिआई विमोह बस करई'। यह तो वैराग्यवान् ज्ञानियोंकी दशा है और विमुक्तकी दशा कि सन कादिक को क्रोध आगया उन्होंने जयविजयको शाप देदिया—इसीसे कहा है—'हरि इच्छा भावी बलवाना'। विरक्त विरत की यह दशा तब विषयी किस लेखेमें? ६—जीवका स्वरूप कहकर उत्तरार्द्धमें ईश्वरका स्वरूप कहा।

पां०—इस दोहेमें अद्वैत द्वैत विशिष्टाद्वैत तीनों मत घटतेहैं। अद्वैत इस प्रकार कि जबतक अपनेको मायाईश (मायाका ईश्वर) नहीं जानता तबतक जीव कहलाताहै। जब अपने रूपका पहचान-लिया तब बाँधने छोड़नेवाला, सबसे परे और मायाको आज्ञा देने-

---

वादी॥'—(मीमांसीक दोनों भाग जिनमें पुरुषार्थ मुख्य मानागयाहै वे सब इनमें आगए)—ऐसोंऐसोंको भी कहतेहैं कि मोह न डांव कीन्ह केहिकेही को जग काम नचाव न जेही॥ तृष्णा केहि न कीन्ह बौराहा। केहिकर हृदय क्रोध नहिं दाहा'। तात्पर्य्य यह कि यदि जीव अपने पुरुषार्थवश मायासे बच-नेका यत्न करे तब छूटे नहीं तो अधिक अधिक अरुझाई'। ३—जब जीव मायाको नहीं जानसकता तब ईश्वरका जानना और कठिन एवं असंभव है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाला और सीव अर्थात् मर्य्याद हुआ। द्वैत पक्ष यह है कि मायाको नहीं जाना अपनेको और ईश्वरको जाना। विशिष्टाद्वैत यह है कि रघुनाथजी लक्ष्मणजीसे कहतेहैं कि आप अपनेको मायाईश न जानें आप अपनेको जीव मानें।

मा० हं—यह ज्ञानोपदेश अध्यात्ममें अर० कांड सर्ग ४ श्लोक १७ से प्रारंभ होताहै। उसमेंकी कठिनता निकालकर उसीके आधारसे बहुतही सरल शब्दोंमें यह उपदेश गुसाईंजीने अपनी चौपाइयोंमें उतारलियाहै। शिक्षककी सच्ची शिक्षणकला यहाँ प्रतीत होतीहै।

रा० प्र० श०—ईश्वर जीव और मायाका स्वरूप पूछने और उसके अनुकूल उत्तर मिलनेसे यह निश्चय होगया कि प्रश्नोत्तर विशिष्टाद्वैतमतके अनुसार है। भक्ति केवल दो ही—द्वैत और विशिष्टाद्वैत-में उत्कृष्ट मानीगईहै और ज्ञानवैराग्यादिक तीनों मतोंमें रूपान्तरसे मानेगएहैं। श्रीलक्ष्मणजीका प्रश्न है—'कहहु ज्ञान बिराग अरु माया' श्रीरामजी क्रमभंग करके उत्तर देतेहैं। और मतोंमें ज्ञान और विवेकके स्वरूपमें कुछ भेद नहीं मानागया है। परन्तु अद्वैत मतावलंबी विवेकको ज्ञानका साधन बतलातेहैं। साधन चतुष्टय जो वेदान्तका है उसमें विवेक, वैराग्य और समादि षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुता येही चारों हैं; विवेकके उत्तर वैराग्य है। जब विवेक वैराग्यादि साधन नअवस्थामें लेलिये जावें तो प्रश्न वेदान्तकी रीति अर्थात् अद्वैत मतानुकूल होजाताहै; परन्तु उत्तरमें भक्तिकी श्रेष्ठता होनेसे अद्वैत और मायाका स्वरूप पृथक् बतलानेसे उपरोक्त दोनों मतोंका निराकरण करके केवल विशिष्टाद्वैतही सिद्ध होताहै।

नोट—किसीमें यों अर्थ कियाहै कि—'यह माया है ईशकी ताहि न अपनी जान। जो याको अपनी कहै ताहि जीव पहिचान॥'

(तु० प्रथावली, ना० प्र० स० से) पं० गिरधरशर्मा चतुर्वेदी अद्वैतवादी के विचार—प्रश्नके शब्द अत्यन्त स्पष्ट हैं। एकान्तमें बैठे प्रभु रामचन्द्रसे लक्ष्मणने ज्ञान, वैराग्य, माया, भक्ति, जीव, ईश्वर और उनके भेद तथा उन सबका स्वरूप समझानेकी प्रार्थना कीहै। अब भगवान् रामचन्द्रका उत्तर सुनिए 'थोरेहि महुँ सब कहौं बुझाई...मिलै जो संत होहिं अनुकूला'

यह प्रकरण अत्यन्त गंभीर और अति संक्षिप्त है। सब तत्वोंको बहुत थोड़ेमें समझायागयाहै। आरंभमें भगवान् प्रतिज्ञाभी यही करतेहैं कि मैं थोड़ेमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सब समझाकर कहताहूं तुम मन बुद्धि और चित्त तीनों वृत्तियोंको एकाग्र करके सुनो। प्रश्नके क्रमको छोड़ सबसे पहले भगवान् रामचन्द्रने मायाका निरूपण कियाहै, क्योंकि माया सबका कारण है इस हेतु मायाके निरूपणके विना औरोंका निरूपण कठिन है। मायाका स्वरूप संक्षेपमें यों बतायागया है कि मैं मेरा और तू तेरा यह माया है। जिसने सब जीवोंको वश कररखाहै। तात्पर्य यह हुआ कि अहंबुद्धि (अहंकार) ममबुद्धि (ममता) और मैं तू मेरा-तेरा आदि भेद-बुद्धि ये सब मायाके परिणाम हैं, इन्हीं बुद्धियोंके द्वारा मायाका परिचय होसकताहै। ब्रह्मसर्ववृत्तिशून्य स्वतंत्र, एरकस है, वहाँ न अहंवृत्ति होसकतीहै, न मम वृद्धि होसकतीहै। अपने से भिन्न कोई है ही नहीं फिर 'मम' (मेरा) किसको कहाजाय और विना भेदके मेरा और तेरा आदि भेदकी प्रतीतिभी सर्वथा नहीं बनसकती ऐसी स्थितिमेंभी जो एक विलक्षण अनिर्वचनीय शक्ति अहंता, ममता और भेद आदिकी सब प्रतीति करदेतीहै। वही मायाहै। इस मायाके संबंधमें आकरही जीव संसारी होताहै इसी प्रकरणमें अध्यात्म रामायणमें मायाका निर्वचन यों कियागयाहै।— अनात्मनि शरीरादावात्मबुद्धिस्तु या भवेत्। सैवमाया तपैवासौ संसारः परिकल्यते' अर्थात् आत्मरूप न होनेपरभी शरीरादिमें जो आत्मबुद्धि है वही माया है, और वही संसारकी कल्पना करतीहै। अहंबुद्धि सदा शरीर इन्द्रिय आदिको अन्तर्गत अवश्य रखतीहै शरीर इन्द्रिय, मन सबको छोड़कर शुद्ध आत्मा अहंबुद्धिका विषय नहीं होता, क्योंकि वह निर्गुण, निष्क्रिय है, और अहंबुद्धि गुण क्रियाको साथ लेकर ही प्रवृत्त होतीहै। सत्य तो यह है कि शरीर आदिको आत्माके साथ एकीकरण वा अभ्यास करानेवाली यह अहंबुद्धि ही है। इसीसे जहाँ अध्यात्मरामायणमें अनात्मामें आत्माभिमानको माया कहागयाथा वहाँ गोस्वामीजीने अहंबुद्धि कोही माया कहदिया। शब्दमें भेद है बात एकही है। इसपर किसीको यह संदेह होसकताहै कि केवल अन्तःकरण वृत्तिकोही माया कहतेहैं और जगत्को बनानेवाली प्रकृति कोई और ही है। इस संदेहको सर्वथा निराकृत करनेके लिए आगे श्रीगोस्वामीजी स्पष्ट करदेतेहैं कि गो गोचर अर्थात् इन्द्रियोंका विषय जो कुछ होसकता है और न केवल इन्द्रियोंका प्रत्युत मन भी जहाँ तक जासकताहै अर्थात् मनका भी जो कुछ विषय होसकताहै, । जहाँ तक इन्द्रियोंकी और मनकी पहुँचहै उस सबको माया ही समझो। इन्द्रियोंके विषय नाम और रूप, एवं मनके विषय, इनके संस्कार, इन सबको यहाँ स्पष्ट शब्दोंमें माया वा मायिक कहागयाहै। यह सब शांकर सिद्धान्तके अनुसार है। ३— आगे कहतेहैं कि उस मायाके दो भेदहैं—एक विद्या दूसरी अविद्या। एक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात् अविद्या जिसे अज्ञान वा अत्यंत दुष्ट और दुख रूप है, जिसके वशमें आकर जीव संसार रूप कूपमें गिराहुआहै। और एक अर्थात् दूसरी (अविद्या से भिन्न) विद्या संसारकी रचना करतीहै उसके वशमें गुण (सत्व रज, तम) हैं किन्तु वह प्रभुकी प्रेरणासे संसारकी रचना करतीहै, अपना बल उसके पास कुछ नहीं है। ४—वेदान्त शास्त्रमें ईश्वरकी उपाधिको शुद्ध सत्व प्रधान माया और जीवकी उपाधिको मलिनसत्वप्रधान अविद्या कहागयाहै। यहाँ श्रीगोस्वामीजीने ईश्वरकी उपाधिका विद्या शब्दसे उल्लेख करदिया। अविद्यासे विलक्षण होनेके कारण व सत्वप्रधान होनेकेकारणही संभवतः उसे विद्या कहागयाहै। अध्यात्मरामायणके आधारपरही यह तत्वनिरूपण है—अध्यात्मरामायणमें—

रूपे द्वे निश्चिते पूर्वे मायायाः कुलनंदन। विक्षेपावरणे तत्र प्रथमं कल्पयेज्जगत् ॥ लिंगाद्यब्रह्मपर्यंतं स्थूल सूक्ष्म विभेदतः। अपरं त्वखिलं ज्ञानरूपमावृत्य तिष्ठति ॥ इत्यादिके द्वारा एक विक्षेप शक्ति और दूसरी आवरण शक्ति यही मायाके हो स्वरूप बताएगएहैं। आवरण शक्तिस्वरूप ज्ञान नहीं होने देती और विक्षेपशक्ति आवृत्त वस्तुमें जगत्की कल्पना करातीहै। इस प्रकरणके साथ गोस्वामीजीकी प्रकृति चौपाईकी तुलना करनेपर यह सिद्ध होताहै कि यहाँ श्रीगोस्वामीजीने आवरण शक्तिको अविद्या पद से और जगदुत्पादक विक्षेपशक्तिको विद्यापदसे उल्लेख कियाहै। क्योंकि गोस्वामीजीके बताए विद्या और अविद्याके लक्षण इन्हीं दोनों शक्तियोंमें स्पष्ट मिलते हैं। यद्यपि विक्षेप शक्तिका विद्यापदसे व्यवहार अन्यत्र वेदान्त ग्रन्थोंमें देखा नहीं गया, किन्तु प्रकरण और लक्षणकी अनुकूलतासे यहाँ विद्या पदसे उसी शक्तिका ग्रहण असमंजसहो सकताहै। अविद्यासे विलक्षण और ईश्वरीय शक्ति होनाही उसके विद्या व्यवहारका हेतु होसकताहै। विद्या, जिसे ज्ञान कहतेहैं, इसी विक्षेप शक्तिके अंतर्गत है इसीलियेभी इसे विद्या कहना ठीक हो सकता है।

अथवा, एक दूसरीभी व्याख्या उक्त चौपाइयोंकी होसकतीहै। पहले माया का लक्षण कहकर आगे उसके दो भेद किएगए—'विद्या अपर अविद्या दोऊ अर्थात् मायाका एक भेद है विद्या और दूसरा भेद है 'दोऊ अविद्या' अर्थात् दोनों प्रकारकी अविद्या इनमेंसे विद्याको छोड़कर दोनों प्रकारकी अविद्याकाही स्वरूप पहले बताते हैं—'एक दुष्ट...'। ये दोनों अविद्याकेही स्वरूप हैं, जिन्हें अध्यात्म रामायणमें आवरणशक्ति और विक्षेप शक्ति कहागयाहै। एक जीवको भवकूपमें गिरताहै और दूसरी जिसके बसमें गुणहैं प्रभुकी प्रेरणासे संसारको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रचतीहै। यों दो प्रकारकी अविद्याएँ बताकर अब विद्याका स्वरूप कहते हैं-'ग्यान मान जहँ एकौ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं।' तात्पर्य यह कि इन दोनों अविद्याओंमेंसे जहाँ एकभी न रहे और जिसके द्वारा सबमें ब्रह्म रूपका दर्शन हो उसे ज्ञान अर्थात् विद्या समझो। ज्ञान और विद्या शब्दका एकही अर्थ सुप्रसिद्ध है। यह अविद्याका सर्वथा विरोधी है। ज्ञानका उदय होनेपर उसी क्षण अविद्या का आवरण दूर होजाताहै और विक्षेपशक्ति द्वारा उत्पादित जगत्भी क्रमशः प्रारब्धक्षय होनेपर लीन होजाताहै। यों विद्या यद्यपि अविद्याकी विरोधिनी है किन्तु वहभी अंतःकरणकी वृत्तिही है। और अन्तःकरण मायासे बनाहै। सुतरां यह ज्ञानरूप विद्याभी मायाके भीतरहीं आगई। इसलिए श्रीगोस्वामीजीने इसेभी मायाके भेदोंमें लिखा। यह व्याख्या सर्वांशमें वेदांत ग्रंथोंके व अध्यात्म रामायणके अनुकूल होतीहै, और गोस्वामीजीके शब्दोंका स्वारस्य इसमें अच्छा होताहै आगे वैराग्यका स्वरूप बतायागयाहै कि जो त्रिगुणात्मक (सत्व, रजस्तमोमूलक) सिद्धिका तृणके समान परित्याग करदेता है वह परम वैराग्ययुक्त समझाजाना चाहिए। ६—आगेके दोहेमें ईश्वर और जीवका स्वरूप बतायागयाहै। उसका तात्पर्य्य है कि जो अज्ञानवश अपनेको मायाका स्वामी नहीं समझता, प्रत्युत् अपनेको मायाके अधीन मानताहै और वैसाही कहताहै, वह जीव है। और जीवको बंधमोक्ष देनेवाला, सबसे पर और मायाका प्रेरकसीव—शिव अर्थात् ईश्वर समझनाचाहिए। इस दोहेसे बहुतोंको शंका होतीहै कि गोस्वामीजीने 'जीव और सीव' (शिव ईश्वर) को भिन्न बताया, तब अद्वैत कहां रहा? यह तो स्पष्ट द्वैतवाद है। किंतु यह शंका निर्मूल है। जीवका जीव भाव और ईश्वरका ईश्वर भाव रहनेतक व्यवहारिक भेद शंकरसिद्धान्तमेंभी माना जाताहै। जीवभाव और ईश्वर भाव दोनों दूर होकर जब केवल शुद्ध चैतन्यका भाव होताहै, तब अद्वैत होताहै। वह होता है अविद्या हटनेपर। जब तक अविद्या है तब तक भेदभी है। यही यहाँ गोस्वामीजीनेभी कहा है कि जो मायाके वशमें है वह जीव और जो मायाका प्रेरक है वह ईश्वर है। इससे मायाके द्वाराही तो भेद बतायागया, स्वरूपमें कोई भेद नहीं है। और 'ज्ञान मान जहँ एकौ नाहीं। देख ब्रह्मसमान सब माहीं' इस वाक्यमें स्पष्टही कहदिया कि ज्ञानके द्वारा अविद्याका नाश होजानेपर भेद नहीं रहता, सब ब्रह्मरूप भासित होताहै। अतः यहां भेदभावका गंधभी नहीं। यह सब शंकरसिद्धान्तके अनुसार है।

इसके आगे कहतेहैं कि धर्मसे वैराग्य उत्पन्न होताहै, योगसे ज्ञान होताहै

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और ज्ञानको वेदने मोक्षदाता बतायाहै जिसके द्वारा मैं (रामचन्द्र) शीघ्र द्रुत अर्थात् कृपालु होजाताहूँ वह भक्तको सुखदेनेवाली मेरी भक्ति है । यह भक्ति स्वतंत्र है, अपनी सिद्धिमें किसी दूसरेको अवलंब नहीं बनाती, किन्तु ज्ञान और विज्ञान इसके अधीन हैं । इस कार्यकारणभाव पर विचार करनेपरभी यही तात्पर्य्य निकलताहै कि यद्यपि गोस्वामीजी भक्तिमार्गके अनन्य शरण हैं—अपने उपर्युक्त समझकर उसी मार्गका उन्होंने आश्रयण कियाहै—तथापि दार्शनिक सिद्धान्त उनका यही है कि भक्तिसे ज्ञान होताहै और ज्ञानसे मोक्ष होताहै । यही शांकरवेदांतकाभी सिद्धान्त है । आगे भक्तिकी प्रशंसा और उसके साधनोंका निरूपण है जिसका प्रकृत विषयमें विशेष उपयोग नहीं । अस्तु रामायणमें तत्वज्ञानका यह सर्वमुख्य प्रकरण है; और यह अक्षरशः शांकरसिद्धान्तका अनुगामी है ।

डाक्टर सरजार्ज ए० ग्रियर्सन' के विचार—कविके माया शब्दके प्रयोगपर कुछ व्याख्या लिखनीचाहिए । कभी कभी यह उसका ऐसे शब्दोंमें उल्लेख करतेहैं जिससे यह निरूपित और व्यक्त होताहै कि वह ब्रह्मको मायासे छिपातीहै । यह शिव-उपासक वेदान्तियोंकी माया है जिसके ये कट्टर विरोधी थे । पर इस प्रकारके प्रयोग केवल उपमा आदिमें हुएहैं और इनके उपदेशके अंश नहीं है । यह प्रयोग उनके शिवपूजनका फल हो, पर अन्य स्थानोंमें इन्होंने इस शब्दके दो भिन्न अर्थ लिए हैं । एक तो उस जादूका जिसका राक्षसोंने रामकी सेनासे युद्ध करनेमें प्रयोग कियाथा और दूसरा ब्रह्म और मोहिनी शक्तिका सम्मिलन है (उ० § ७०) । सशरीर शक्ति ईश्वरके अधीन तथा एक प्रकार उन्हींकी प्रेरित है । इसी अंतिम योग्यतासे वह सारे संसारको नचातीहै पर उसी ईश्वरके भ्रूभङ्गसे वह स्वयं नटीके समान नाचने लगतीहै । वह अपने भुलावेमें लाकर सभीको, देवताओंकोभी, मूर्ख बनातीहै और जब कोई तपस्वी पुरुष घमंड करताहै तब ईश्वर उसे बहकानेको उसे भेजतेहैं । वह शरीर तथा सांसारिक मायाविनी होकर मनुष्योंसे पाप करातीहै । पर जिसमें सच्ची भक्ति है, वह उसके लिए अभेद्य है और वह उसके पास नहीं जासकती ।

तुलसीदासने यह भी शिक्षा दीहै कि ईश्वर शरीरधारी है । उपनिषद्के निर्गुण ब्रह्मको मानतेहुए जो सभी गुणोंसे हीन है तथा जिसके बारेमें केवल यही कहा जासकताहै कि वह 'यह नहीं है, वह नहीं है' इन्होंने यही निश्चय-किया कि ऐसे पुरुषका विचार मनुष्योंके मस्तिष्कके बाहर है और केवल उसी ईश्वरका पूजन होसकताहै जो निर्गुणसे सगुण होगयाहो—(उ० § १३) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धर्म ते बिरति जोग तें ग्याना।
ग्यान मोछप्रद बेद बषाना ॥§ १५/१ (१)
जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई।
सो मम भगति भगत सुखदाई ॥ ,, (२)
सो सुतंत्र अवलंब न आना।
तेहि आधीन ज्ञान बिज्ञाना ॥ ,, (३)

शब्दार्थ—'द्रवउँ'=पिघलता, पसीजता हूँ अर्थात् प्रसन्न होताहूँ।

अर्थ—धर्मसे वैराग्य और योगसे ज्ञान (होता है) और ज्ञान मोक्षका दाता है—ऐसा वेदोंने कहाहै। हे भाई! जिससे मैं शीघ्र प्रसन्न होताहूँ, वह मेरी भक्ति है जो भक्तोंको सुखदेनेवाली है। वह स्वतंत्र है, उसको दूसरेका अवलंब नहीं, ज्ञान और विज्ञान उसके अधीन हैं अर्थात् इन्हें भक्तिका अवलंब लेनापड़ताहै।

नोट—प्र० में यों अर्थ कियाहै कि "धर्मसे वैराग्य वैराग्यसे योग और योगसे ज्ञान००" और लिखाहै कि "विरतिसे योग" का अध्याहार कर लेना चाहिए। अथवा, यों अर्थ करें कि 'धर्मसे और विरति योगसे ज्ञान होता है"। कारणमाला अलंकार हुआ। 'ज्ञान मोच्छप्रद', यथा-ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः इति श्रुतिः।

पु० र० कु०—१ ज्ञान वैराग्यका स्वरूप कहचुके। अब दोनोंके साधन कहतेहैं कि धर्म करनेसे विरति होतीहै और योगसाधनसे ज्ञान होताहै। यथा अध्यात्मे—"वैराग्यं जायते धर्माद्योगाज्ज्ञान समुद्भवः। ज्ञानात्संजायते मोक्षस्ततो मुक्तिर्नसंशयः।

२—'जाते बेगि द्रवौं०' इति। इससे सिद्ध हुआ कि ज्ञान आदि साधनोंसे दीर्घकालमें कुछ होताहै जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीतामें कहाहै—"अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परांगतिम्।' पुनः, यथा—'बहूनां जन्मनामंते ज्ञानमान्मां प्रपद्यंते वासुदेवः सर्वमिति समहात्मा सदुर्लभः ॥१॥—(गीता)। "वासुदेवे भगवतिभक्ति योगः प्रयोजितः जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यत्तदहैतुकं" इति भागवते ॥२॥ वहां वह कठिनता और यहाँ यह सुगमता कि "बेगि द्रवउँ"। तात्पर्य्य कि "सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम", "सकृत प्रनाम किये अपनाये", "सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्मकोटि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अघ नासहिं तबहीं", "अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्००" और 'करउँ सद्य तेहि साधु समाना" इत्यादि भक्ति छोड़ और किसीमें यह बात नहीं है। ३—'सुखदाई' का भाव कि ज्ञानसाधनमें दुःख है, यथा—"ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहँ टेका॥ करत कष्ट बहु पावै कोई" और यहाँ "कहहु भगतिपथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥..."—(उ० § ४५)। पुनः, ज्ञानकी कठिनता यथा—'कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन विवेक। होइ घुनाच्छर न्याय जो पुनि प्रत्यूह अनेक'।

'ज्ञानपंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥
जौ निरबिघन पंथ निरबहई। सो कैवल्य परमपद लहई॥
अति दुर्लभ कैवल्य परमपद। संत पुरान निगम आगमवद॥
रामभजत सोइ मुक्ति गुसाईं। अनइच्छित आवइ बरियाईं॥
जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करइ उपाई
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरिभगति बिहाई॥"

४—'तेहि आधीन०' अर्थात् वह ज्ञान-विज्ञानके अधीन नहीं है वरन् ज्ञान-विज्ञान उसके अधीन हैं।

"सो स्वतंत्र अवलंब न आना।००"

रा० प्र० श०—इस चौपाईमें भक्तिकी उत्कृष्टता और ज्ञानादिकी न्यूनता फिर कही। अर्थात् भक्ति स्वतंत्र है, ज्ञान आदि परतंत्र हैं। स्वतंत्र और परतंत्रका भेद कौन नहीं जानता? यह कहकर फिर कहते हैं 'भक्ति तात अनुपम सुखमूला'। देखिए यह श्रीलक्ष्मणजीका चौथा प्रश्न था पर प्रभु उसका उत्तर सबके अन्तमें देतेहैं—इससेभी ज्ञात होताहै कि इससे बढ़कर और कुछ भी नहीं है। अर्थात् यह अन्तिम उपदेश है। स्वतंत्रका भाव कि प्रभुकी प्राप्ति करानेमें स्वतंत्र है, ज्ञान आदिकी सहायताकी ज़रूरत नहीं, उनका अवलंब लेना नहीं पड़ता। यह 'अवलंब न आना' से जनादिया। यथा—'भगति अवसहि 'बस करी'। भक्तिसे भगवान् स्वयं भक्तोंके वश होजातेहैं।

रा०प०—भाव यह कि जैसे स्त्रीको अपने पतिसे मिलानेमें दूतीका प्रयोजन नहीं और बिंब प्रतिबिंबके बीचमें किसीकी अपेक्षा नहीं वैसेही भक्ति और भगवन्तके बीचमें किसी दूसरे साधनकी अपेक्षा नहीं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(कारणकि भक्ति भगवान्‌का रूप ही है—'भक्ति भक्त भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक'। वह कभी पृथक् नहीं)।

खर्रा—वैराग्य धर्मसे और ज्ञान योगसे होताहै। भक्ति स्वतः उत्पन्न होतीहै पर साधन करनेसे औरभी दृढ़ होतीहै—'भक्त्या संजायते भक्त्या'! यह कृपासाध्य है।

भगति तात अनुपम सुषमूला।
मिलइ जो संत होंइ अनुकूला॥ §१५ (४)
भगति कि साधन कहौं बषानी।
सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी॥ ,, (५)
प्रथमहि बिप्रचरन अति प्रीती।
निज निज कर्म ‡ निरत श्रुति रीती॥ ,, (६)
यह कर फल पुनि बिषय बिरागा।
तब मम † धर्म उपज अनुरागा॥ ,, (७)

अर्थ—हे तात! भक्ति अनुपम (उपमारहित) और सुखकी जड़ है। यदि सन्त प्रसन्न हों तो वह प्राप्त होजातीहै! मैं भक्तिके साधन विस्तारसे वर्णनकरताहूँ जिस सुगम मार्गसे मनुष्य मुझे पासकतेहैं। पहले तो ब्राह्मणोंके चरणोंमें अत्यन्त प्रीति करे और वेदकी रीतिके अनुसार अपने अपने कर्ममें लगारहे। फिर इसका फल विषयोंसे वैराग्य होगा तब हमारे धर्म में प्रेम उत्पन्न होगा।

नोट—'अनुपम सुखमूला'। उपमारहित है अर्थात् प्रभुकी प्रीति या कैवल्यपदकी प्राप्तिमें कोई और साधन इस योग्य नहीं जिससे इसकी उपमा दीजाय और अनुपम सुखकी उपजानेवाली है यथा—'ताकर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह'। ब्रह्मसुखसे इसका सुख अधिक है तभी तो कहाहै—'सोई सुख लवलेस बारक जिन्ह सपनेहु लहेहु। ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहिं सज्जन सुमति'।—(उ० ८८) और ब्रह्मसुखहि बरबस मन त्यागा'। (ख) प्र०-कार इसे भक्तिका विशेषण मानकर यह अर्थ कहतेहैं कि 'अनुपम सुखमूला भक्ति अर्थात् पराभक्ति संतकृपासे मिलतीहै।

‡ रा० प० में 'और भ० द० में 'कर्म' पाठ है।
† कहीं कहीं 'चरन' पाठ है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु०—१ (क) श्रीलक्ष्मणजीने ज्ञान, वैराग्य, माया और भक्ति पूछी। प्रभुने माया, ज्ञान और वैराग्य कहे, ज्ञान वैराग्यके साधन कहे अब भक्त और भक्तिके साधन कहतेहैं। भक्ति अनुपम है तो उसकी प्राप्ति बड़ी कठिन होगी उसपर कहतेहैं कि मिलइ जो संत होइँ अनुकूला' अर्थात् इसका एक यही साधन है, यथा—'अस बिचारि जोइ कर सतसंगा। रामभगति तेहि सुलभ बिहंगा'। संत सहजही प्रसन्न होजातेहैं क्योंकि वे 'सरल चित जगहित' होतेहैं 'परउपकार वचन मन काया' यह उनका सहज स्वभाव है। (ख)—सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी' अर्थात् भक्ति-मार्ग सुगम है ज्ञानमार्ग अगम्य है। क्या पंथ है सो भी बताया कि सन्तोंकी प्रसन्नतामात्रसे यह प्राप्त होजातीहै। अब और भी बतातेहैं।

२—'प्रथमहि विप्रचरन अति प्रीती। इति। (क) विप्रचरणमें अत्यन्त प्रेम हो यह प्रथम साधन बताया। क्योंकि भक्ति सन्तोंके अधीन है—'मिलहि जो संत होइँ अनुकूला', 'सबकर फल हरिभगति सुहाई। सो बिनु संत न काहू पाई' (भुशुण्डिवाक्य § ११६)। संतदर्शन विप्रोंके अधीन है, यथा—'पुन्यपुंज बिनु मिलहिं न संता' और 'पुन्य एक जग महँ नहिं दूजा। मन क्रमबचन बिप्र पदपूजा'।

(ख)—'अति प्रीती' का भाव कि ब्राह्मणसे अधिक न बने, न उनकी बराबरी करे, उनका दास बनकर उनकी सेवा करे तब भक्ति प्राप्त होगी। इसीसे प्रथम विप्रचरणमें अत्यन्त प्रेम करनेको कहा।

(ग)—'निज निज कर्म निरत श्रुति रीती'। श्रुतिके अधिकारी ब्राह्मण हैं वे श्रुतिकी रीति बतायेंगे।

३—'यहि कर फल पुनि बिषय बिरागा', यथा—'धर्म ते बिरति'। विप्रचरण अनुराग धर्म है। धर्म करनेसे चित्त शुद्ध होजाताहै, उससे मन विषयोंसे विरक्त (उदासीन) होजाताहै। विराग और अनुराग दो पदार्थ हैं; विषयोंसे वैराग होगा, हमारे धर्म (भगवद्धर्म) में अनुराग होगा तब हमारी भक्ति करनेलगेगा।

४—ज्ञान और वैराग्यका साधन धर्म है—'धर्म ते बिरति योग ते ज्ञाना'। और, यहाँ दिखाया कि भक्तिका साधनभी धर्म है—'भक्तिके साधन कहौं बखानी।—निज निज कर्म निरत श्रुतिनीती'।

रा० प्र० श०--(१) प्रथम कहा कि 'मिलइ जो संत होइँ अनुकूला'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और फिर कहा कि 'भगतिके साधन कहौं बखानी'। भाव यह कि शीघ्रतर भक्ति प्राप्त होनेका उपाय सत्संग है; पर जो गाढ़तर उनके विधिनिषेधके झगड़ोंमें पड़ेहुएहैं अर्थात् जगत्मात्रके हितार्थ औरभी सुगम उपाय बतातेहैं। (२) प्रथम उपायमें किसी साधनकी अपेक्षा नहीं केवल संतकृपासे प्राप्य बताया। यदि उसमें यह प्रश्न किया जाय कि बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता' तो उसका उत्तर है कि उसमेंभी किसी साधनकी अपेक्षा नहीं। 'मिलहिं' शब्द स्वयं ही इस बातका प्रमाण है अर्थात् वे स्वयं प्राप्त होजातेहैं जब भगवत् कृपा होतीहै।

प्र०—अनुपमसुखमूला अर्थात् पराभक्तिकी प्राप्ति संतद्वारा कही और भक्ति (साधारण) की प्राप्तिके नव साधन कहे।

रा० प्र०शु०—'तब मम धरम उपज अनुरागा' इति।-अर्थात् जैसे पहले संसारी विषयमें अनुराग था वैसाही अनुराग अब प्रभुमें होगा। वाल्मीकिजीने १४ स्थान प्रभुके निवासके बताएहैं उनमें इसका मन लगेगा। अर्थात् अब उसकी दशा यह होजायगी कि—(१) संत सभा नित सुनहिं पुराना' (२) प्रभु प्रसाद पट भूषन धरही। (३) हरिहि निवेदित भोजन करही। (४) 'लोचन चातक तिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाखे॥ निदरहिं सिंधु सरित सरभारी। रूपबिंदु जल होहिं सुखारी'। (५) 'प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबाता। सादर तासु लहइ नित नासा'। (६) कर नित करहिं रामपदपूजा। (७) रामभरोस हृदय नहिं दूजा। (८) चरन रामतीरथ चलि जाहीं। इत्यादि येही सब भागवत-भगवद्धर्म हैं।

'प्रथमहिं बिप्रचरन अति प्रीती—

गौड़जी—यहाँ भगवान्ने विप्रचरनमें अतिप्रीति पहली शर्त रखी है। अन्यत्रभी कहा' सापत ताड़त पुरुष कहन्ता। बिप्रपूज्य अस गावहिं सन्ता। पूजिय बिप्र सीलगुन हीना। सूद्र न गुनगन-ग्यान-प्रवीना॥ गोस्वामीजी बन्दनामेंभी कहतेहैं'बन्दउँ प्रथम महीसुर चरना. मोहजनित संसय सब हरना।' और फिर अन्यत्रभी 'सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी' 'बिप्र जेंवाइ देहिं बहु दाना' बिप्र धेनु हित संकट सहहीं' इस प्रकारके प्रसंगोंसे कुछ विचारक गोस्वामीजीपर ब्राह्मणों के अनुचित पक्षपातका दोष लगाते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गोस्वामीजीने रामचरितमानसमें 'नानापुराण निगमागम सम्मत' बात लिखी है। पुराणोंमें रामायणमें, महाभारतमें तो 'विप्रोंका यत्र-तत्र महत्व है ही। श्रुतियोंमें भी 'विप्र' शब्द ऋषियोंके अर्थमें प्रयुक्त हुआहै। ऋषियों और विद्वानोंको पूज्य तो आर्य्य-समाज और जाति-पाँति तोड़कमंडल तक मानताहै। विप्र यहाँ आस्तिक विद्वान् ब्राह्मणके ही अर्थ में आयाहै। मोह जनित सब संसय हरनेवाले हैं। नास्तिक विद्वानों वा अविद्वानोंके अर्थमें नहीं प्रयुक्त हुआहै जो ब्राह्मण बनतेहैं। साथही यहाँ 'जन्मना' ब्राह्मणकी चर्चा है, जो कर्मणाभी ब्राह्मण हो। जो केवल कर्मणाके आधारपर ब्राह्मण बने उसकी चर्चा नहीं है। यह बात कलियुगके प्रसंगमें कहे' 'विप्र निरच्छर लोलुपकामी निराचार सठ वृषली स्वामी' से स्पष्ट होजाती है। तात्पर्य्य यह कि विप्र होकर निरक्षर नहीं होनाचाहिए, विद्वान् होना चाहिए। लोलुप नहीं होनाचाहिये, सन्तोषी होनाचाहिये। कामी नहीं होनाचाहिये, ब्रह्मचर्य्यपरायण होना चाहिये निराचार नहीं होनाचाहिये, सदाचारयुक्त होनाचाहिए, शठ नहीं होनाचाहिये, साधु होना चाहिये। वृषली पति नहीं होना चाहिये, शुद्ध विवाह संस्कारयुक्ता पतिपरायणा साध्वी स्त्रीका पति होना चाहिये। तात्पर्य्य यह कि विप्रको संस्कारयुक्त होनाचाहिये और कुलवन्ती' का पति होनाचाहिये। कलियुगके वर्णनके व्याजसे मानसकारने साफ बता दिया कि वह 'विप्र' किसे कहतेहैं। 'विप्र' वह विद्वान् जन्मना ब्राह्मण है जो सन्तोषी हो ब्रह्मचारी हो, आचारयुक्त हो, साधु हो और यदि गृहस्थ हो तो संस्कारयुक्ता सदाचारिणी ब्राह्मणी कुल-वतीका पति हो। न तो आजकलके ब्राह्मण बननेवाले नास्तिकोंपर यह परिभाषा घटतीहै और न निरक्षर शठ, आचारहीन धनलोलुप व्यभिचारियोंपर यह परिभाषा घटतीहै जो ब्राह्मणका नाम बदनाम करतेहैं। 'पूजिय बिप्र सील गुनहीना। सूद्र न गुनगन ग्यान प्रवीना। परन्तु तो भी यदि उक्त परिभाषाकी शर्तोंमेंसे आचारहीन (सील-हीन) शम दम तपस आदि गुणरहित (गुणहीन) भी ब्राह्मण हो, तब भी पूजा योग्य जन्मना ब्राह्मण ही होगा। ब्राह्मणोचित गुण, विद्या और चातुरी रखनेवाला शूद्र पूजा योग्य नहीं है। जिस तरह दुनियाँकी अदालतमें एक नालायक वकील भी मुकदमें की पैरवी कर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सकेगा परन्तु बड़ा चतुर और विद्वान् भी हो तोभी जिसके पास सनद नहीं है वह पैरवी करनेका अधिकारी नहीं है। जीवात्माका जन्म भिन्न वर्णों और परिस्थितियोंमें कर्म्मानुसार होताहै। जो ब्राह्मण होकर जन्मा उसे मानो विधाताने कर्म्मकी परीक्षामें पासकर लेनेपर पूज्यताकी सनद देदीहै। इसीलिये शूद्र में योग्यता कितनीही हो परन्तु वह इसी जन्मकी अर्जित है, पूर्वकी नहीं, इसीलिये उसको पूज्यताकी सनद प्राप्त नहीं है, वह पुजेगा नहीं।

भक्तिमें विप्रचरनमें अतिप्रीतिकी शर्त्त जरूरी है। विप्रके चरणोंमें अतिप्रीत न होगी तो 'मोह जनित संशय' नष्ट न होंगे। आस्तिकता न आवेगी, निज निज वर्णाश्रम धर्म्ममें निरत न होगा और सबसे बड़ी बात यह है कि श्रुतिकी रीतिसे अपने धर्म्ममें निरत न होगा। इस मार्गपर चलानेवाला मोहजन्य संशय हरनेवाला तो विप्र ही होगा। जब इसतरह गुरुके आदेशसे अपने अपने धर्म्मका पालन कर चुकेगा, तब विषयोंसे वैराग्य होगा। गुरुविप्रचरणमें अतिप्रीति करके जब सदुपदेशग्रहण और अभ्यास करेगा तब उसका फल होगा। विषयोंसे वैराग्य होनेपर भगवद्धर्म्म अनुराग उपजेगा। इसीलिये विप्र, संत, गुरुचरणोंमें अतिप्रीति पहली शर्त्त रखीगयीहै।

यहाँ ब्राह्मणोंसे पक्षपातकी कोई बात नहीं है। यहाँ तो प्राचीन हिन्दूसंस्कृतिके अनुकूल वर्णाश्रम धर्म और वैदिक रीतिके प्रतिपादनके साथही भक्ति बतलायीगयीहै। हिन्दूकी भक्ति इसी प्रकारकी हो सकतीहै।

नोट—वैष्णवरत्न श्री १०८ रूपकलाजीका सत्संग इसी विषयपर कुछ वर्ष हुए हुआ। वे फ़र्माते थे कि हमारे शास्त्रोंके अनुसार पूर्व जन्मोंमें किएहुए कुछ कर्म्मोंके भोगकेलिए उनके अनकूल, कुल जाति, संग इत्यादि प्राणीको प्राप्त होतेहैं। पूर्व कर्म्मोंके फलसे यदि किसीको ब्राह्मणकुलमें जन्म मिला तो और तीनों वर्णोंसे वह पूजनीय है चाहे उसके कर्म, धर्म, आचरण इस जन्ममें कैसेही क्यों न हो। हमारा धर्म है उसको पूजना, हमको अपना धर्म करना चाहिए; उसका धर्म वह जाने। हम अपने कर्मका फल पावेंगे वह अपने कर्मका फल पावेगा। हमारा धर्म यह नहीं है कि उसमें ऐब निकालें और अपना धर्म छोड़दें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रवनादिक नव भक्ति दृढाहीं ।
मम लीला रति अति मन माहीं ॥ § १५/२ (८)
संतचरन पंकज अति प्रेमा ।
मन क्रमबचनभजन दृढ नेमा ॥ ,, (९)

अर्थ—श्रवण आदि नवों भक्तियाँ दृढ़ होंगी, मनमें मेरी लीलामें अत्यन्त प्रेम होगा। सन्तोंके चरणकमलोंमें अत्यन्त प्रेम हो। मन, वचन और कर्मसे भजनका पक्का नियम हो।

पु० र० कु० १—'श्रवणादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं' से श्रीमद्भागवतमें कहीहुई नवधा भक्तिका ग्रहण है। यथा—श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्'।—(भा० स्कं ७ अ० ६)। २—'ममलीला रति अति मन माहीं' यहाँसे लेकर 'बचनकर्म मन मोरि गति०' इस दोहे पर्यन्त वही भक्ति है जो रामजीने सबरीजीसे कहीहै। दोनों प्रकारकी भक्तियोंका साधन विप्रचरणानुराग और धर्मसहित व्यवहार करते रहनाहै। इन्हींसे दोनों प्रकारकी भक्तियाँ उत्पन्न होतीहैं।

३—इस प्रसंगमें तीनमें अत्यन्त प्रेम करना कहा। (क) 'प्रथमहि बिप्रचरन अति प्रीती'। (ख) मम लीला रति अति मन माहीं। (ग) संतचरनपंकज अति प्रेमा। भाव यह कि प्रीति तो सभीमें होना आवश्यक है पर इन तीनोंमें अर्थात् विप्रचरण, मम लीला और संतचरणमें तो अतिशय प्रेम होनाचाहिए। इसी प्रकार तीनमें दृढ होना कहा। (क) 'श्रवणादिक नव भगति दृढाहीं' (ख) मन क्रम बचन भजन दृढ नेमा। (ग) सब मोहि कहँ जानै दृढ सेवा। इस कथनका तात्पर्य्य यह है कि भक्ति, भजनका नियम और सेवा ये दृढ़ रह पाते, कुछ दिनमें शिथिल होजातेहैं; अतएव कहा कि इनको शिथिल न पड़ने देनाचाहिए, इनमें दृढ़ रहना चाहिए।

सबरीजी के प्रति	लक्ष्मणजी के प्रति
१ प्रथम भगति संतन्ह कर संगा	संतचरनपङ्कज अति प्रेमा।
२ दूसरि रति मम कथा प्रसंगा	मम लीला रति अति मनमाहीं ॥
३ गुरपद पंकज सेवा तीसरि भक्ति अमान	गुरुपितुमातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानइ दृढ़ सेवा ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

४ चौथि भगति मम गुनगन करै कपट तजि गान
५ मंत्र जाप मम दृढ बिस्वासा
६ छठ दमसील बिरति बहुकर्मा
७ सातवँ सम मोहिमय जग देखा (इसके दोनों अर्थोंका ग्रहण हुआ)
८ आठवँ जथा लाभसंतोषा

मम गुन गावत पुलक सरीरा।
गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
मन क्रम बचन भजन दृढ नेमा
काम आदिमददंभ न जाके।
गुरु पितु मातु बंधु पतिदेवा। सब मोकहँ जानै दृढ सेवा॥—(यहाँ उपलक्षण है)
भजन करै निहकाम (बिनु संतोष काम बसाही)

९ नवम सरल सब सन छल हीना।
मम भरोस हिय हरष न दीना।

बचन करम मन मोरि गति

४—'मम लीला रति अति मन माहीं' इति। जब चरितमें अनुराग हुआ तब संतचरणमें प्रीतिहुई क्योंकि 'बिनु सतसंग न हरिकथा' कथाके सुननेसे, सत्संग करनेसे भजनमें दृढ़ नेम हुआ।

गुरु पितु मातु बंधु पति देवा।
सब मोहि कहँ जानै दृढ सेवा॥ १५/७ (१०)
मम गुन गावत पुलक सरीरा।
गदगद गिरा नयन बह नीरा॥ ,, (११)
काम आदि मद दंभ न जाके।
तात निरंतर बस मैं ताके॥ ,, (१२)

अर्थ—गुरु, पिता, माता, भाई, स्वामी और देवता सब मुझकोही जानकर सेवामें दृढ हो। मेरे गुण गातेहुए शरीरमें रोमांच हो, वाणी गद्गद होजाय, नेत्रोंसे जल (आँसू) बहें। काम आदि, मद और दम्भ जिसके नहीं, हे तात! मैं सदा उसके वश रहता हूँ।

पु० र० कु०—१ 'गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि...' इति।—अर्थात् रामजीही सब कुछ हैं, यथा—'तात तुम्हार मातु बैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही'।

'गुर पितु मातु न जानौं काहू। कहउँ सुभाव नाथ पतियाहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरे सबुइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥"

२—'मम गुन गावत पुलक सरीरा...', यथा, 'पुलक गात हिय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सिय रघुबीरा। नाम जीह जप लोचननीरू'—(भरत:) सबके अन्तमें गुणगानको कहनेका अभिप्राय यह है कि भागवतमें लिखाहै कि तब-तक धर्म करे जबतक हमारी कथामें प्रीति न हो।—(खर्रा)।

३ (क) 'काम आदि मद दंभ न जाके। इति।—ये सब कथाके बाधक है, यथा—'क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा। ऊसर बीजबये फल जथा' 'अति खल जे बिषई बक कागा। एहि सर निकट न जाहिं अभागा', 'तेहि कारन आवत हिय हारे। कामी काक बलाक बिचारे' (ख)—'तात निरंतर मैं बस ताके', यथा—'नाहं बसामि वैकुण्ठे योगिनाम् हृदये न तु। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥'

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्हके हृदय कमल महुँ करौं सदा बिश्राम ॥ § १६/१० ॥

भगति जोग सुनि अति सुष पावा।
लछिमन प्रभुचरनन्हि सिरु नावा ॥ ,, (१)
एहि बिधि गए कछुक दिन बीती।
कहत बिराग ज्ञान गुन नीती ॥ ,, (२)

अर्थ—जिनको वचन कर्म और मनसे मेरी ही गति है और जो कामनारहितहोकर भजन करतेहैं, उनके हृदयकमलमें मैं सदा विश्राम करताहूँ। भक्तियोग सुनकर लक्ष्मणजीने अत्यन्त सुख पाया और प्रभुके चरणोंमें माथा नवाया। इस प्रकार वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति कहतेहुए कुछ दिन बीतगए।

पु० र० कु०—१ (क) 'करौं सदा बिश्राम'। इसे निज गृह सूचित किया, यथा—'जाहि न चाहिये कबहुँ कछु तुम्हसन सहज सनेह। मनमन्दिर तिन्हके बसहु सो राउर निज गेह।' (ख)—ज्ञानका फल मोक्ष है और भक्तिका फल उरमें भगवान्‌का बास है, यह 'बचनकर्म मन मोरि गति०० करौं सदा बिश्राम' इस वाक्यमें परिपुष्ट सिद्धान्त कहा। (ग)—सबके अंतमें हृदयकमलमें विश्राम करना कहा। कारण कि 'सब साधनको एक फल जेहि जानेउ सोइ जान। त्यों त्यों मन मंदिर बसहिं राम धरे धनुबान'।

२—'भगति जोग सुनि अति सुखपावा'। (क)—भावकि ज्ञान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वैराग्य और माया ईश्वरजीव भेदको सुनकरभी सुख हुआ पर भक्ति-योग सुननेसे 'अति' सुख प्राप्त हुआ। पुनः, भक्ति सुखदाई है उससे शीघ्र प्रभु द्रवीभूत होतेहैं अतः इससे अत्यन्त सुख हुआ। (ख) 'सिरु नावा'—उपदेशके अनन्तर प्रणाम पुनः करना श्रुतिस्मृतिसन्त सबका सिद्धान्त है। यह कृतज्ञता सूचित करताहै। यथा—'मो पहिं होइ न प्रतिउपकारा, तव पद बंदउँ बारहिं बारा'। (ग) 'सब तजि करौं चरन रज सेवा' उपक्रम है और 'प्रभु चरनहिं सिरु नावा' उपसंहार।

४—'एहि बिधि गये कछुक दिन बीती'। भाव कि अन्यत्र महीना या वर्षका वर्ष बीता यहाँ कुछ ही दिन बीते क्योंकि अब बनवासके दिन थोड़ेही रहगएहैं।

५—'कहत बिराग ज्ञान गुन नीती' यथा—

"कहिय तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी"—(वैराग्य)

"ज्ञान मान जहँ एकौ नाहीं। देखब्रह्मसमान सब माहीं"—(ज्ञान)

"एक रचै जग गुन बस जाके', तृनसम सिद्धि तीनि गुन त्यागी" —(गुण)

'निज २ धर्म निरत श्रुतिनीती' .....—(नीति)

(ख) [भक्तिको कहकर फिर न कहा। वैराग्यका स्वरूप पातंजलिशास्त्रमें, ज्ञानका सांख्यमें, गुण भागवतोंके और राजनीति कही। नीतिपर समाप्ति की क्योंकि आगे शूपनखाके नाक कान काटनाहै। (खर्रा)]

☞ यहाँ 'पुनि लछिमन उपदेश अनूपा' अर्थात् श्रीरामगीता-प्रकरण समाप्त हुआ।

'सूपनखा जिमि कीन्ह कुरूपा'-प्रकरण

सूपनखा रावन कै बहिनी।
दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी॥ § १६/१० (३)
पंचबटी सो गइ एक बारा।
देखि बिकल भइ जुगल कुमारा॥ ,, (४)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भ्राता पिता पुत्र उरगारी ।
पुरुष मनोहर निरषत नारी ॥ § १६/१० (५)
होइ बिकल सक मनहि न रोकी ।
जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी ॥ ,, (६)

शब्दार्थ—'दारुन'=कठिन, क्रूर, क्रोधी स्वभाववाली ।

अर्थ—नागिनकीसी कठिन दुष्टहृदयवाली शूर्पनखा * जो रावणकी बहिन थी, वह एक बार पंचवटीमें गई । दोनों राजकुमारोंको देखकर व्याकुल होगई । भुशुण्डिजी कहतेहैं कि हे सर्पोंके शत्रु गरुड़जी ! भाई, पिता, पुत्र कोईभी सुन्दर पुरुष हो उसे स्त्री देखतेही व्याकुल होजाती है, मनको नहीं रोकसकती जैसे सूर्य्यकान्तमणि सूर्य्यको देखकर तेजको प्रवाहित करतीहै (यद्यपि सूर्य्यको सूर्य्यकान्तमणि के होनेतकका पता नहीं है) ।

नोट—१ यहाँ दुष्टहृदया और दारुणके लिए नागिनकी उपमा बड़ी उत्तम है । वह भयङ्कर होतीही है पर साथही ऐसी दारुणहृदया है कि अपनेही अंडोंबच्चोंको खाजातीहै । वैसेही यह सारे निश्चरवंशके नाशका कारण होगी । २—'रावणकी बहिन' कहकर वैधव्य जाना । दूसरे रावण जगत्-प्रसिद्ध है इससे उसका नाम दिया ।

पु० र० कु० १—'देखि बिकल भइ जुगल कुमारा' यहाँ कहा और आगे कहतेहैं कि 'रुचिर रूप धरि...' । इससे अनुमान होताहै कि उसने दोनों भाइयोंको देखा पर इन्होंने उसे नहीं देखा; क्योंकि यदि देखलेते तो रूप बनाते न बनता । 'युगल' का एक भाव यह भी है कि एकके स्त्रीहै वह न व्याहेगा तो दूसरा तो अवश्य व्याहलेगा (इससे कुलटा व्यभिचारिणीभी जनाया) ।

२—'भ्राता पिता पुत्र उरगारी' इति । (क) उरगारी संबोधनका

* शूर्पनखा रावणकी बहिन है । इसका व्याह कालखञ्जवंशी मायावी राक्षस विद्युज्जिह्वा से हुआथा रावणने उसको मारडाला । शूर्पनखाके विलाप करनेपर उसने खरदूषण त्रिशिरा और १४ हज़ार बलवान राक्षसोंकी सेना देकर जनस्थानमें इसे रखा । इसके नख सूपके समान थे अतः शूर्पनखा नाम पड़ा । खरदूषणभी इसके भाई हैं । यह स्वयं बलवती और स्वच्छन्दचारिणी थी ।—'अहं प्रभाव संपन्ना स्वच्छन्दबलगामिनी ।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भाव कि आपका सर्पही भोजन है तब तो आपके स्वामीके आगे अहिनी (साँपिनि) की दुर्दशा हुई।—(पं०)—(ख) 'भ्राता पिता पुत्र, अर्थात् इनके देखनेसे कामकी उत्पत्ति न होनीचाहिए; पर इनके साथ भी स्त्री रहे तो काम न व्यापे, यह कठिन है।—इसीसे मनुस्मृतिमें लिखाहै कि 'मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत्' अर्थात् इनके साथभी कभी एकान्तमें वास न करे) †

३—पुरुष मनोहर निरखत नारी॥ होइ बिकल...' भाव कि ये दोनों पुरुष मनोहर हैं। इसीसे वह मनको न रोक सकी, देखकर कामातुर होगई। स्मरण रहे कि वह दोनों पर रीझी है एक पर नहीं। यह बात कवि ने 'जुगल कुमारा' पदसे लक्षित करदियाहै।

गौड़जी—सुधारक-समालोचक इन पदोंको उद्धृत करके गोसाईं-जीका स्त्री-द्वेष सिद्ध करतेहैं। परन्तु गोस्वामीजीने तो नीतिके प्रसिद्ध श्लोकका अनुवाद दियाहै और ऐसे प्रसंगपर दियाहै जहाँ एक राक्षसीकी कामातुरताका आगेही चलकर वर्णन करतेहैं। सामान्य स्वभाव कहकर विशेषका उदाहरण देतेहैं, जो उद्देश्य है। जो कवि ऐसी पतिव्रताओंका वर्णन करताहै जिनकेलिए 'सपनेहुँ आनपुरुष जग नाहीं' कहाहै, वही उन अधम नारियोंकाभी वर्णनकर रहाहै जो सूपनखा-सी कामातुरा और निर्लज्जा होती हैं। ऐसी स्त्रियाँ संसारमें न होतीं तो अवश्य कविका स्त्रीद्वेष था।

"रावमनि द्रव जिमि रबिहि बिलोकी"

उपर्युक्त चरणोंके सब' शब्दका अर्थ करनेमें कितनेही टीकाकारों ने प्रायः असावधानता कीहै, यथा—बाबू श्यामसुन्दरदासने अर्थ किया है कि सूर्यमणि सूर्य्यको देखकर पिघलजातीहै'। वीरकवि पं० महावीरप्रसाद मालवीयने यह लिखाहै कि सूर्य्यको देखकर सूर्य्यकान्तमणि पसीजने लगतीहै' एवं यह कि मणि 'सूर्य्यको देखकर पिघलतीहै'। बाबा हरिहरप्रसादनेभी 'पसीजना' अर्थ कियाहै। बैजनाथजीने अक्षरार्थ न देकर केवल भावार्थ लिखदियाहै कि शूर्पनखा कामाग्निसे पीड़ित हुई। करुणासिन्धुजी महाराजने लिखाहै कि 'रविकी मणि वह है

† पाँड़ेजी 'भ्राताके तुल्य बराबरी अवस्थाका, पिताके समान अधिक अवस्थावाला और पुत्रके समान छोटी अवस्थावाला पुरुष हो उसकी मनोहरता देखकर'—ऐसा अर्थ करतेहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जिसमेंसे, सूर्य्यके सम्मुख होनेपर, अग्नि निकलतीहै किन्तु एक सूर्य्य-मणि होतीहै जब उसे सूर्य्यके सम्मुख करो तो उसमेंसे स्वर्ण द्रवता है'। और कई टीकाकारोंने 'द्रव' शब्द अर्थमें ज्योंका त्यों अर्थमें रखदिया है।

संपादकने दो तीन कोश देखे और कई महात्माओंसे इस विषयमें सत्संगकिया पर उसको कहीं सूर्य्यकान्तमणिका सूर्य्यके सम्मुख रखे जानेपर पिघलने या पसीजनेका प्रमाण न मिला। सर्वसम्मत यही मिला कि उसमें अग्नि प्रगट होतीहै उसमेंसे तेज प्रवाहित होताहै। अतएव यही निश्चय करना पड़ताहै कि टीकाकारोंने केवल भावको लेकर अर्थ करदियाहै।

हिंदी-शब्द-सागरमें सूर्य्यकान्तमणिके विषयमें ऐसा लिखाहै—'यह एक प्रकारका स्फटिक या बिल्लौर है। सूर्य्यके सामने रखनेसे इसमेंसे आँच निकलतीहै। रत्नपरीक्षा-ग्रन्थमें इसका गुण लिखाहै।—'चन्द्रकान्तमणि अमृत उपजावै। सूर्य्यकान्तमें अग्नि प्रजावै'।' इसको सूर्य्यमणि, रविमणिभी कहतेहैं।

एक महानुभावका मत है कि—'द्रव' शब्दके स्थानपर 'दव' शब्द होनाचाहिए। क्योंकि सूर्य्यकान्तमणि द्रवती (पसीजती) नहीं वरन जल उठतीहै वा अग्नि प्रगट करतीहै। जिसके प्रमाण ये हैं—

यद् चेतनोऽपि पादैः स्पृष्टः प्रज्वलित सवितुरिव कांतः।

तत्तेजस्वी पुरुषः परकृत विकृतिं कथं सहते ॥ ३७ ॥ (भर्तृहरि-नीतिशतकके) अर्थात् सूर्य्यकान्तमणि यदि अचेतनहै तौ भी सूर्य्यके किरणरूपी पादस्पर्श करनेसे जल उठतीहै। ऐसेही तेजस्वी पुरुष परकृत अनादरको कैसे सहें। इसके अतिरिक्त दो० ३७५ भी प्रमाणहै—'प्रभु सनमुख भये नीच नर होत निपट बिकराल। रविरुख लखि दरपन फटिक उगिलत ज्वाला जाल'।

'ऐसा अनुमान होताहै कि 'दव' शब्दमें किसी प्रकार स्याहीका जरासा विन्दु पड़जानेसे 'द्रव' शब्द पढ़ागयाहै। और उसीके अनुसार लोगोंने टीकाएँ लिखीहैं। इस ओर टीकाकारोंका ध्यान शायद नहीं गया कि वास्तवमें सूर्य्यकान्तमणि द्रवतीहै या नहीं'। अपनी सम्मतिको वे इस तरह पुष्ट करतेहैं कि 'होइ विकल' और 'द्रवित होना' इन दोनों शब्दोंमें विरोध भाव पायाजाताहै अर्थात् जो व्याकुल

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होगा। वह द्रवित न होगा और जो द्रवित होगा वह व्याकुल न होगा, और आगे चलकर सूर्य्यकान्तमणिका रूपकभी ठीक मिलताहै अर्थात् खरदूषणादि सेनासहित चले तब शूर्पनखाको आगे करलिया और विनष्ट हुए। इसी प्रकार सूर्य्यकान्तमणिभी अपने पीछेवाले पदार्थको जलाडालतीहै।'

प्राचीन एवं आधुनिक किसी प्रतिमें 'दव' पाठ नहीं है। 'द्रव' ही पाठ सर्वत्र है। हितोपदेशके 'सुवेषं पुरुष दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम्। योनिः क्लिद्यति नारीणां सत्यं सत्यं हि नारद'। पु० र० कु० जीने अपने संस्कृत खर्रों ऐसाही दूसरा श्लोक यह दियाहै—'सुस्नातं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं पितरं सुतं क्लिदन्ति योनयः स्त्रीणामापात्रमिवांभसा' इति नीतिः। और वंदनपाठकजीने यह श्लोक दियाहै—'सात्विकं भावमापन्ना मन्मथै न प्रपीडिताः। तरुणं पुरुषं दृष्ट्वा योनिर्द्रवति योषिताः॥ इति सत्योपाख्याने'।—इन श्लोकोंके अनुसार 'द्रव' शब्द बड़ाही उत्कृष्ट है भावभी आगया और भोंड़ी बात लेखमें न आई। कैसा मर्यादाका निर्वाह कियाहै। धन्य गोस्वामीजी! आपने ऐसे शब्द रखे कि स्त्री पुरुष बच्चा बूढ़ा कोईभी हो सबके सामने हर्षपूर्वक पढ़ा और कहा जासकताहै।

अब विचार करनाहै, 'रविमनि द्रव' की उपयुक्तता पर यह बात मान्य है कि सूर्यमणिसे अग्नि प्रगट होतीहै।

नोट—रबिमनि द्रव जिमि रबिहि बिलोकी' का भाव यह है कि स्त्रीकी ओरसे स्वयं सौन्दर्य्य और सुवेषको देखकर वासनाकी अग्निका उद्दीपन होनेलगताहै यद्यपि उस सुवेष और सौदर्य्यके नायककी ओरसे प्रवृत्ति तो क्या ध्यानतक नहीं होता प्रस्तुत प्रसंगमें इसी प्रकारकी प्राकृत नारि शूर्पणखाका वर्णन है जिसपर यद्यपि श्रीरघुनाथजीका ध्यानभी नहीं गया है तोभी अपनी ओरसे कामातुरा शूर्पणखा प्रवृत्त होतीहै।

श्रीस्वामी पं० रामवल्लभाशरणजी कहतेहैं कि 'द्रव' का अर्थ 'प्रवाहित होना' है और 'रविमणि द्रव' का अर्थ हुआ—रविमणिसे तेज प्रवाहित होताहै।

ब्रह्मचारी श्रीविन्दुजी—'द्रव' शब्द 'द्रु धातुसे बनता है जिसका अर्थ है—गति, गमन और मोक्ष! अतः 'द्रव का अर्थ चलना गमन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करना तथा निर्गत और प्रवाहित होना होता है। अमरका भी यही मत है, यथा—'प्रवाहोद्रावसन्द्रावस्यन्दावाविद्रवोद्रवः ॥' विप्रव और उपद्रव आदि बहुत प्रचलित शब्द हैं जिनका अर्थ गमन और चपलताही है।

उपर्युक्त पाद में 'द्रव' शब्द 'रविमनि' के साथ है। रविमणिके दो भेद हैं, एक सामान्य और दूसरा विशेष। सामान्य सूर्य्यकान्तमणि है जिससे सूर्य्यके सम्मुख होनेसे ज्वाला उत्पन्न होती है और विशेष स्यमन्तकमणि।

यदि रविमनि का अर्थ सूर्य्यकान्तमणि किया जाय तो भी 'द्रव' शब्द सार्थक होताहै और यदि स्यमन्तकमणि लिया जाय तो भी सूर्य्यकान्तमणिका अर्थ ग्रहण करनेपर उनका अनुवाद होगा कि जिस प्रकार सूर्य्यकान्तमणिसे उसके सूर्य्यविमुख होनेसे ज्वाला निकलती है।' 'द्रव' क्रिया अपने वास्तविक अर्थ में अपने संज्ञापद 'रविमनि' के सर्वथा अनुकूल हाकर आईहै। ज्वाला या तेजके लिए निकलना उद्गत होना बहिर्गत होना तथा द्रवीभूत होना आदि प्रयोग होताहै। ज्वाला अथवा अग्निके लिए जैसे उद्धार प्रयुक्त होता है वैसे 'द्रव' भी, यथा—'सोमकान्तो मणिः स्वच्छः सूर्य्यकान्तस्तथा न किम्। उद्धारेतु विशेषोस्ति तयोरमृत वह्नयः ॥ इस श्लोकमें अमृत और अग्नि, दोनोंके लिए 'उद्धार' पदका प्रयोग हुआ है। चन्द्रकान्तमणिके अमृत अथवा रसके वर्णनमें जिस प्रकार 'द्रव' पदका प्रयोग होसकता है। उसी प्रकार सूर्य्यकान्तमणिकी ज्वालाके लिए भी। क्योंकि निर्गत, निस्सृत और प्रवाहित होना ही उसका अर्थ है, जैसे—'सुधाकरकरस्पर्शाद्बहिर्द्रवति सर्वतः। चन्द्रकान्तमणेरतेन मृदुत्वं लोकविश्रुतम्'। यहाँ बाहर्द्रवति' का अर्थ बाहर निर्गत या प्रवाहित होना ही है। अतः जैसे रस या जलके निकलनेके लिए 'द्रव' शब्दका व्यवहार होसकता है वैसेही ज्वालाके लिए भी। जैसे रस और अमृत शब्द जलवाची है और भावोत्कर्ष तथा दशा, आनन्द शोभा और मोहके अर्थमें उनका व्यवहार होताहै उसी प्रकार द्रवका भी उसके गत्यर्थक होनेसे जैसे जल और तरल चल पदार्थोंके लिए व्यवहार होसकता है वैसेही परिणामपूर्वक गतिशीलताको प्राप्त होनेवाले मणि आदि दृढ़ पदार्थों और मनुष्यादि चर जीवोंके लिए भी अन्तष्करणके लिए जहाँ 'द्रव' शब्द आताहै उसका अर्थ होता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है दया भावापन्न होकर अस्थिर अथवा चकित्त होना। इसीको दुरना, पसीजना और रीझना कहतेहैं।

जिस प्रकार 'द्रु' धातुसे 'द्रव' बनता है उसी प्रकार 'सु' धातुसे 'स्रव' शब्द सिद्ध होताहै जिसका अर्थ भी प्रवाहित होना, पतित अथवा स्खलित होताहै। जलके लिए जैसे इसका प्रयोग होताहै वैसेही ज्वालमालाके लिएभी। स्वयम् गोस्वामीजीने विरहिणी श्रीजनकनन्दिनीसे उसका प्रयोग करायाहै, यथा—'पावकमय शशि स्रवत न आगी।' यहाँ अग्निके लिए 'स्रवत' कहाहै। वर्षाभी इसी प्रकारका शब्द है। जैसे जल-वर्षा वैसेही अग्नि उपल, वाण तथा स्वर्ण-वर्षाका भी प्रयोग प्रसिद्ध है। 'द्रव' की तरह ज्वालमालाके उद्धारकेलिए 'वमन' शब्दका भी गोस्वामीजीने विनय-पत्रिकामें प्रयोग कियाहै, यथा—'प्रबल पावक-महाज्वालमाला वमन।' अतः 'द्रव' का प्रयोग रविमणिसे ज्वल निर्गत अथवा प्रवाहित होनेके अर्थमें सर्वथा सङ्गत है और कविको अभिमत है।

सूर्य्यमणिका दूसरा अर्थ विशेष स्यमन्तकमणि है। यह मणि सूर्य्यनारायणने अपने प्रियभक्त और सखा सत्राजित्को दीथी। यह सूर्य्याभिमुख होनेसे प्रतिदिन आठ भार सोना प्रस्रव करती थी (जो सूर्य्यकिरणें उसमें प्रविष्ट होकर निकलती थीं उनका स्थूलरूप स्वर्ण होजाता था), यथा—आसीन्सत्राजितः सूर्य्य भक्तस्य परमः सखा।

प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादात्सूर्य्यस्तुष्टः स्यमन्तकम् ॥'

... ...

'दिनेदिने स्वर्णभारानष्टौ स सृजति प्रभो ॥'

—श्रीमद्भागवत

अतः स्यमन्तक मणिकोही विशिष्ट रूपसे सूर्य्यमणि अथवा रविमणि कहतेहैं। और, उससे स्वर्ण प्रवाहित होना प्रमाणित तथा प्रसिद्ध है। सुभाषित रत्नमालागारमें भी स्यमन्तकमणिको ही सूर्य्यकान्तमणि मानाहै। उसका गुणभी ऐसा ही था। उसमें इतना प्रकाश था कि उसका धारण करनेवाला दूसरा सूर्य ही प्रतीत होताथा,—'सतं विभ्रन्मणिं कण्ठे भ्राजमानो यथा रविः।'

दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक सिद्धान्तानुसार भी 'रविमनि' के लिए 'द्रव' शब्दका प्रयोग सर्वथा सार्थक सिद्ध होताहै। वैशेषिक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दर्शनकार भगवान् कणादका सिद्धान्त है कि अग्निमें निक्षिप्त हुए घटके परमाणु पहले द्रवीभूत होजातेहैं, पश्चात् अग्निके संयोगसे रूपान्तरमें परिणत तथा एकत्र हो समष्टिरूप धारण करतेहैं। अतः यह सिद्ध हुआ कि जब सूर्यकान्तमणिसे ज्वाला निकलेगी तब पहले सूर्यकिरणोंके योगसे उसके परमाणु अवश्य द्रवीभूत होंगे और तभी वे ज्वालारूपमें परिणत होंगे पदार्थोंका परिणाम या रूपान्तर विना उनके परमाणुके द्रवीभूत हुए नहीं होसकता। अतएव 'द्रव' क्रियाका प्रयोग 'रविमनि' के लिए परमतत्त्ववेत्ता महाकविने बहुत ही सार्थक कियाहै।

यदि 'द्रव' के स्थानमें 'दव' का प्रस्तोवित पाठान्तर मानें तो उसमें कई विप्रतियत्तियाँ उपस्थित होंगी। एक तो सब प्राचीन तथा अर्वाचीन प्रतियोंमें 'द्रव' ही पाठ है। दूसरे 'द्रव' का पाठ बनता नहीं। क्योंकि वह (दव) 'द्रव' ही का समानार्थवाची है। दोनों पर्यायी हैं 'द्रु, की भाँति 'दु' धातु भी, जिससे 'दव बनता है, गत्यर्थक है। यदि 'दव का वनाग्नि अर्थ ग्रहण करें तो वह सूर्यकान्तमणिकी ज्वालाके लिए सार्थक नहीं तीसरे वनाग्निके अतिरिक्त ज्वालाकी क्रियाके रूपमें मानस या अन्य अपने काव्यमें गोस्वामीजीने उसका प्रयोग नहीं कियाहै तथा और भी किसी कविने ऐसा नहीं किया है। अतः 'द्रव' ही पाठ शुद्ध और सार्थक है।

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई।
बोली बचन बहुत मुसुकाई॥ § १६/१० (७)
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी।
यह संजोग बिधि रचा बिचारी॥ ,, (८)
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं।
देखेउँ खोज लोक तिहुँ नाहीं॥ ,, (९)
तातें अब लगि रहिउँ कुमारी।
मन माना कछु तुम्हहिं निहारी॥ ,, (१०)

अर्थ—सुन्दर रूप धरकर प्रभुके पास जाकर, बहुत मुस्कुराती हुई ये बचन बोली। तुम्हारे समान कोई पुरुष नहीं और न मेरे समान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्त्री है, विधाताने यह संयोग विचारकर रचाहै *। मेरे योग्य पुरुष संसारभरमें नहीं है, मैंने तीनों लोकोंमें ढूँढ़ देखा। इसीसे अबतक कुमारी बनी रही। तुमको देखकर कुछ मन माना है।

पु० र० कु०—१ स्त्रीकी मुस्क्यान पुरुषकेलिए फंदा वा फाँसी कहीगईहै। इसीभावसे वह मुस्क्याई। २—'न मो सम नारी' में भाव यह कि जो स्त्री तुम्हारे पास है यह मेरे सामने कुरूपा है। ३—'बिधि रचा विचारी', यथा—'जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहि साँवर बर रचेउ बिचारी'। ४—'मम अनुरूप पुरुष जगमाहीं...'। इन वचनों से उसका कपट खुलगया कि वह राक्षसी है; क्योंकि तीनों लोकोंमें स्वच्छन्दरूपसे राजकुमारी या किसी भलेमानसकी कन्या इस प्रकार न घूमतीफिरती। इसी भावसे कविने यहाँ 'देखेउँ' पद दिया। जनकपुरमें जहाँ अष्टसखियोंका सम्वाद है वहाँ वे कहतीहैं—'सुरनर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा अस कहुँ सुनियत नाहीं'। अर्थात् वहाँ कवि 'सुनियत' पद देतेहैं जिसका भाव यह है कि वे सब परदेवाली और भलेमानसोंकी स्त्रियाँ हैं। खरदूषणके प्रसंगमेंभी देखनालिखाहै, यथा—'नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे सुने हते हम केते। हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुन्दरताई॥'—[वाल्मीकि जी कहतेहैं कि रामजीने जानलिया कि वह राक्षसी है तभी तो उन्होंने उससे कहाभी—'त्वं हि तावन्मनोज्ञाङ्गी राक्षसी प्रतिभासिमे' अर्थात् हे सुन्दरी! तुम तो मुझे राक्षसीसी जानपड़तीहो। यहाँ पूज्यकविने शिष्टताका कैसा मान कियाहै कि उन वचनोंको प्रभुके मुखसे नहीं कहलाया।]

५—ताते अब लगि रहिउँ कुमारी..'। (क) इन वचनोंसे पाया गया कि वह युवावस्थाका रूप धारणकरके आईहै जिसमें शीघ्र मनोकामना सिद्ध हो। छोटी अवस्था धारण करती तो मनोरथकी सिद्धि के लिए युवावस्था पहुँचनेतक रुकनापड़ता फिरभी न जाने कामना पूर्ण होती या न होती। आगेका संदेह मिटानेकेलिए युवावस्थाका रूप बनाकर आई। अपनी इतनी अवस्था होजानेका कारण प्रथमही

* 'भ्रत्वामायामयंरूपं लावण्य गुण संयुतम् उवाच मधुरं वाक्यं वस्त्रालङ्कार मंडिता॥ १॥ त्वत्समः पुरुषो नास्ति मत्समा नास्ति सुंदरी। संयोगः संविचार्यैवधात्रा विरचितोह्यम्॥ २॥'—(वा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कहचुकी कि ढूँढ़ती फिरी कोई पति होने योग्य पुरुष ही न मिला। अब आप मिले। (ख) 'कछु' का भाव यह कि तुमभी हमारे सदृश यथार्थतः हमारे अनुरूप नहीं हो। मन माना' से जनाया कि मैं अपना स्वयंवर करतीहूँ, यथा—'करइ स्वयंबर सो नृपबाला'। ☞ यहाँ यह बात देखनेयोग्यहै कि शूर्पणखाने प्रभुके लिए बहुवचन और अपने लिए एकवचनका प्रयोग कियाहै। कारण कि वह पति बनाने आई है। पुरुष स्वामी है और स्त्री दासीहै।

खर्रा—१ 'बिधि रचा बिचारी'=विधिने यही सोचकर रचाहै कि तुम मुझे अंगीकार करोगे। बिधिका रचना कहा क्योंकि रामचन्द्रजी विधिको मानते हैं, यथा प्रभु—'बिधि बचन कीन्ह चह साँचा'। २—कामासक्त होनेपर बिचारा कि जाकर मिलूँ पर वे मनुष्य हैं मैं राक्षसी हूँ, मुझसे उन्हें सुख न होगा। अतएव सुन्दर रूप धरकर गई। ३—'प्रभु पहिं' का भाव कि वे समर्थ हैं इसकी माया यहाँ न लगेगी। ४—'मुसुकाई' अर्थात् कटाक्ष हाव भाव करके। दीनजी—इसमें अभिसारिका नायिकाका भाव स्पष्टहै और 'मुसुकाई शब्दमें दाम्पत्यप्रेमका बीज प्रकट कियाहै। क्योंकि स्त्रीपुरुषमें प्रेमका प्रारंभ मुस्क्यानसेही होताहै। 'कछु' में व्यंग है। इसीसे पूर्व कहाहै कि 'देखि बिकल भइ जुगल कुमारा, नहीं तो एकही पर मुग्ध होती। पुनः, स्त्रीसुलभ अहंकारभी इससे प्रकट होताहै। इससे रूपगर्विता नायका पाईजातीहै—यह रसिकोंका अर्थ है। इसे भँवाकरभी अर्थ करतेहैं जो भक्तोंका अर्थ है—'यद्यपि अभी हमने आपको कुछ ही देखाहै, रूपमात्र ही, इतनेपरही मेरा मन मान गया।' इसमें आत्मसमर्पण है।

नोट—'रुचिर रूप धरि०' इति। यहाँ रुचिर शब्द बड़ा मनोहारी है। मानसमें कविने इस विशेषणका प्रभुके सम्बन्धी पदार्थों के साथही प्रायः प्रयुक्त कियाहै। यथा—'अवधपुरी अति रुचिर बनाई' (जन्मभूमि) 'बरनि न जाइ रुचिर अँगनाई। जहँ खेलहिं०—(बालक्रीड़ा भूमि', 'तेहि गिरि रुचिर बसइ खग सोई' (शिशुपनका साथका खिलाड़ी भक्त) 'सेज रुचिर रचि राम उठाये' (शय्या)। 'उर अति रुचिर नागमनिमाला', 'धृतकर चाप रुचिर कर सायक', 'रुचिर चौतनी सुभग सिर०' और 'उर श्रीबत्सरुचिर बनमाला' (आभूषण, धनुषबाण आदि)। 'छरस रुचिर ब्यंजन बहु जाती' (जेवनारमें विवाहके समय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वनवासमें प्रभु स्वयं 'रुचिर' शब्द प्रयोग करतेहैं, यथा—'तहँ रचि रुचिर परन तृनसाला। बास करउँ कछु काल कृपाला' एक 'सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुलीला। मैं कछु करब ललित नर लीला' इस उदाहरणसे ज्ञात होताहै कि प्रभुको 'रुचिर' शब्द परमप्रिय है इसीसे कविने वही शब्द उन्हें ठौर ठौरपर समर्पण कियाहै। यहां तक कि शूर्पणखा उनसे सम्बन्ध करने आई तो उसका भी 'रुचिर' रूपसे आनाकहाहै। मारीचभी 'परमरुचिर मृग' बनकर आताहै—§२६ (४) देखिए।

सीतहि चितइ कही प्रभु बाता।
अहै कुआर† मोर लघुभ्राता॥§१६/१० (१०)

अर्थ—सीताजीकी ओर देखकर प्रभुने यह बात कही कि मेरा छोटा भाई कुमार है।

नोट—इस चौपाईमें 'चितइ' और 'कुआर' वा 'कुमार' शब्दोंपर टीकाकारोंने अनेक भाव लिखेहैं। और 'कुमार' शब्दपर शंका उठाकर अनेक प्रकारसे उसके समाधानका प्रयत्न कियाहै। पहले टीकाकारोंके कुछ भाव देकर तब उनपर विचार कियाजायगा।

सीताजीकी ओर देखनेके भाव

(१) पु० र० कु०—(क) शूर्पणखाने कहाथा कि मेरा 'मन माना कछु तुम्हहि निहारी'। प्रभु सीताजीकी ओर देखकर जनातेहैं कि 'मोर मन माना इन्हहिं निहारी'; यहाँसे मेरा मन हटकर कहीं जाताही नहीं, यथा—'सो मन रहत सदा तोहि पाहीं, और मैं एकपत्नीव्रत हूँ मैं स्वप्नमेंभी परस्त्रीपर दृष्टि नहीं डालता, यथा—'मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहु पर नारि न हेरी'। (ख)—दोहा—'सूर्पनखा माया करि रुचिररूप मुसुकाइ। सीतहि चितये राम हम यह मायापति आइ॥' अर्थात् बहुत मुसुकाई'। प्रभु चितइ' कर जनातेहैं कि हम और ये मायाके ईश (मायापति) हैं, यथा—'मायापति सेवक सन माया।०', 'मायापति भगवान', सुरमुनि सभय देखि मायानाथ अति कौतुक करेउ' 'माया' सब सियमाया माहूँ'। अतएव तेरी माया यहां न चलेगी। (ग)—दोहा-'हास्य झुठाई तब बनै चितै वे माया ओर। सीतहि लखि पुनि आपु लघु इन सम रूप न तोर॥'। अर्थात् केवल ईश्वरमें 'हास्य झुठाई' नहीं बन पड़ते, जैसे

† 'कुआँर'—(छ०)। 'कुमार'—(क०, न० प्र०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

केवल ब्रह्म जगप्रपंच नहीं रचसकता, जब मायाका आश्रय लेता है तब 'हास्यझुठाई' करते बने। अतः 'सीतहि चितइ कही'। (घ)—

दोहा—"सीता मम पत्नी अहै सीतहि पर मम दीठि।
लषनहि कहेउ कुमार प्रभु सीतहि की रुचि मीठि ॥१॥
मम हित बिधि सीतहि रचेउ मम हित तोहि कहँ नाहि।
यह पतिब्रत की सींव है तू व्यभिचारिनि आहि ॥२॥

(ङ) प्रत्यक्ष दिखाते हैं कि हमारे स्त्री है और हमारा भाई कुमार है तब हम कैसे (एक औरको) व्याह लें। (च) कहीं लक्ष्मणजी यह न कहदें कि उनके स्त्री है, अतः इस प्रकार इशारा किया जिसमें लक्ष्मणजी जान जायँ कि यहां हास्य हो रहाहै।

(२) पाँड़ेजी—'चितइ' का भाव कि—(क) हमारे स्त्री है। (ख) इसका रूप देख। (ग) लक्ष्मणको थाँभनेके लिए। (घ) जानकीजी रावणकी इष्ट हैं अतएव उनका रुख देखतेहैं कि रावणसे विरोध करें या न करें। और (ङ)—"हास्यकी भाँति कि देखो स्त्रीकी ऐसी प्रकृति होतीहै"।

(३) मा० म०—रामचन्द्रजीने सीताजीकी ओर देखा उसकी ओर दृष्टि भी न की। प्रायः यही भाव औरोंनेभी लिखेहैं। इस चौपाई-की जोड़के जो श्लोक अध्यात्म और वाल्मीकि में ये हैं—'रामः सीता कटाक्षेण पश्यन् सस्मितमब्रवीत्। भार्याममैषा कल्याणी विद्यतेह्यनपायनी ॥१२॥ त्वंतुसापत्न्यदुःखेन कथं स्थास्यसि सुंदरि। बहिरास्ते ममभ्रातालक्ष्मणोऽतीव सुंदरः ॥१३॥ तवानुरूपो भविता पतिस्तेनैवसचर।'—(अध्यात्म स० ५)। अर्थात् रामजीने सीताकी ओर कटाक्ष करके मुसुकुराकर कहा कि यह कल्याणी मेरी स्त्री है जो मेरे पास सदा रहतीहै। तुम दूसरी पत्नी बनकर रहोगी तो सदा सवतके दुःख-से दुःखी रहोगी। मेरा भाई लक्ष्मण अत्यन्त सुंदर हैं जो बाहर बैठे हैं; वे तुम्हारे अनुरूप पति होंगे।

'स्वेच्छया श्लक्ष्णया वाचा स्मितपूर्वमथाब्रवीत् ॥१॥ कृतदारोऽस्मि भवति भार्येयं दयिता मम। त्वद्विधानां तु नारीणां सुदुःखा ससपत्नता ॥२॥ अनुजस्त्वेष मे भ्राता शीलवान् प्रियदर्शनः। श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥३॥ अपूर्वी भार्यया चार्थी तरुणः प्रियदर्शनः। अनुरूपश्च ते भर्ता रूपस्मास्य भविष्यति ॥४॥ एनं भज

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विशालाक्षि भर्तारं भ्रातरं मम । असपत्ना वरोरोहे मेरुमर्कप्रभा यथा ॥५॥'—(वा० स० १८)। अर्थात् एक 'चितइ' शब्दमें ही पूज्य कविने वाल्मीकि और अध्यात्मका भाव किस खूबीसे झलकादिया है। इतनाही नहीं वरन् उसमें अनेक भाव भरदिएहैं, जितने चाहें लगाते जायँ।

लक्ष्मणजीको 'कुआर' वा 'कुमार' कहनेके भाव—

१—पु० र० कु०—(क) पदकी मैत्रीकेलिए कुमार पद दिया। जैसे उसने कहाथा कि 'अब लगि रहिउँ कुमारी', वैसेही प्रभुने मिलताजुलता उत्तर दिया कि 'अहै कुमार'। कुमारीका व्याह कुमारके साथ उचितही है, दोनोंका जोड़ है—(पं०) (ख) कुमार का अर्थ लड़का (छोटा) और राजकुमारभी होताहै, उस अर्थमें भी लेसकतेहैं। यथा—'तुम्ह हनुमंत संग लै तारा। करि बिनती समुझाउ कुमारा' में सुग्रीवने छोटा जानकर यही 'कुमार' शब्द लक्ष्मणजीके लिए प्रयुक्त कियाहै। वैसाही यहाँ समझलें। [कविनेभी अभी २ 'कुमार' शब्द लक्ष्मणजीके लिए प्रयुक्त कियाहै। वैसाही यहाँ समझेलें। [कविने भी अभी २ 'कुमार' शब्द राजकुमार अर्थमें प्रयुक्त कियाहै—'देखि बिकल भइ जुगल कुमारा' पुनः, आगेभी कहाहै 'मुनि मख राखन गयो कुमारा']

२—मा० म०—भाव कि 'मार' (कामदेव) इनके अलौकिक द्वादश वर्षके व्रतको देखकर लजाता है, यहाँ हास्यरसके अंतर्गत नीतिका उपदेश है कि तुम्हारा तोष करनेवाला कोई नहीं, मुझे पत्नी विद्यमान ही है और मेरे भाईने कामको द्वादशवर्षके कठिन व्रतसे निरादरही किया।

३ पं०, प्र०—अर्थात् इनकी स्त्री नहीं है। यहाँ प्रत्यक्ष स्त्रीके अभाव से कुमार कहा। ४—दीनजी—यहाँ राजनीति है। नीतिके विचारसे राजनीतिका उत्तर देना अनुचित नहीं।

५—मा० शं०-हास्यरसमें मिथ्या बोलना दोष नहीं। पुनः, छलीके साथ छलमयी वार्ता करना नीतिहै। पुनः, 'शठं प्रति शठं कुर्य्यात्'।

६—करु०—स्त्रीरहित पुरुष विदेशमें है तो एक देशमें उसकी कुमार संज्ञा है, वह विवाह करले तो दोष नहीं और यहाँ ऐसा कहनेका अवसर है इत्यादि * अनेक भाव लोगोंने कहे हैं।

* १—'कुत्सितो मारं यस्मात् स कुमारः' अर्थात् जिसके आगे कामदेवकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यहाँ हास्य और व्यंगसे पूर्ण इस 'कुमार' शब्दका प्रयोग किया गया है। शूर्पनखा राक्षसी है, विधवा है और मायासे सुन्दर रूप बनाकर आईहै। इसपरभी झूठ बोलती है कि मैं कुमारी हूँ। जैसे उसने हँसीकी वैसेही उसको उत्तरभी हास्यरसयुक्त दियागया। इसीसे वाल्मीकिजीने श्रीरामजीको यहाँ 'वाक्यविशारद' विशेषण दियाहै—

इत्येवमुक्तः काकुत्स्थः प्रहस्यमदिरेक्षणाम्।
इदं वचनमारेभे वक्तुं वाक्यविशारदः॥ स० १७ श्ल० २९॥

अर्थात् वचनविशारद श्रीरामचन्द्रजीने उस मतवाली आँखोंवाली शूर्पणखाके इस प्रकार वचन सुनकर हँसकर वचन बोले।

पुनः, हँसकर उत्तर देना भी हास्य ही जनाताहै—'वाचा स्मित पूर्वमथाब्रवीत्'। 'कुमार' शब्दका तोड़ मरोड़ करनेसे पाण्डित्य छोड़ असली बात हाथ नहीं लगसकती। वे जनातेहैं कि जैसी तू विधवा होती हुई भी 'कुमारी' है वैसेही यह मेरा भाई विवाह होनेपरभी 'कुमार' ही है। यहाँ उनकी स्त्री साथ नहीं है इससे यह हास्य भी पूरा गठा। वाल्मीकि आदि रामायणोंसे यही अर्थ निश्चय सिद्ध होता है और कविने पहलेही 'अहिनी' से इसकी समता देकर अहिराजके योग्य और भी उसे करदिया। पूर्व वा० स० १८ के और अध्यात्मके उद्धृत श्लोकोंसे 'कुमार' का अर्थ 'विन ब्याहा' छोड़ और क्या लिया जासकताहै? और यही भाव शूर्पणखाके हृदयमें बैठानेके लिए ही इस शब्दका प्रयोग हुआहै। फिर आगे चलकर वाल्मीकिजी और भी स्पष्ट कहतेहैं कि यहाँ परिहास है, यथा—'इति सा लक्ष्मणेनोक्ता कराला निर्णतोदरी। मन्यते तद्वचः सत्यं परिहासविचक्षणः' अर्थात् शूर्पनखा परिहासमें प्रवीण न थी इससे वह लक्ष्मणजीकी बातको सत्य समझगई।

हास्यमें झूठ अनिंद्य है। प्रमाण यथा—गोब्राह्मणाय हिंसायां वृत्यर्थे प्राणसंकटे। स्त्रीषु नर्म विवादेषु नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्॥" अर्थात् गौ ब्राह्मणकी हिंसा होतीहो, प्राण संकटमें पड़ेहों, अपनी जीविका

सुन्दरता भी कुछ नहीं है। २—कुमारसे जनाया कि ब्रह्मचर्य्यव्रत धारण किएहैं वा, ब्रह्मचारी और इन्द्रियजित् हैं। ३—कुमार स्वामिकार्तिककोभी कहतेहैं, उनके ये मोर हैं। तू सर्पिणी है, विवाह सजातीयमें होताहै। ४—कु=पृथ्वी। मार=कामदेव। अर्थात् पृथ्वीपर कामदेवकेसमान सुन्दर है। —(पं०)। ५—कु=दुष्ट। कुमार=दुष्टोंको मारनेवाले।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जातीहो, स्त्रियोंसे हँसीदिल्लगीमें या झगड़ेमें झूठ निन्दनीय नहीं है।

श्रीमानसी बंदनपाठकजीकाभी यह मत है कि यहाँ हास्य प्रधान नहीं है मेरे स्त्री हैं। पुनः, यह श्लेष पद है। उसको सुझाना तो यही है कि इनके स्त्री नहीं है मेरे स्त्री है और साथही श्लेषार्थी होनेसे झूठभी नहीं। क्योंकि कुमार छोटे और राजकुमारकोभी कहतेही हैं।

पु० र० कु०—लक्ष्मणजीके पास क्यों भेजा ? उत्तर—१-इसमें भाव यह है कि वह तो दोनोंपर रीझी हुईहै। केवल प्रभुही पर रीझी होती तो यहीं सारा मामला भुगतान होजाता। लक्ष्मणजीपरभी रीझी है अतः वहाँ भेजना ज़रूरी समझा। पा—'लघुभ्राता' का भाव कि जैसे हम राजकुमार वैसेही यह, जैसे हम राज्य ऐश्वर्य्यके अधिकारी हैं वैसाही यह है और हमसे छोटा है इससे तेरे योग्य है।

मा० ६—'स्वामीजीकी शूर्पणखाकी तुलनामें अध्यात्मकार और वाल्मीकिजीकी शूर्पनखा बहुत ही भोलीसी दिखाई देतीहै। स्वामीजीकी शूर्पनखा यावनी अमलकी स्त्रियोंकी फसलमेंसे होनेके कारण अर्थात् वह बड़ी छिछोरी और षड्यंत्रवाली हुईहै। उसी सबब वह 'ताते अब लगि रही कुमारी। मन माना कछु तुम्हहिं निहारी' इसतरह ललक उठ सकी। इस निर्लज्जताके परिणाममें स्वामीजीके रामचन्द्रजीको भी प्रसंगवशतः 'सीतहि चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुमार मोर लघु भ्राता' इसतरह एक रंगेल अलबेलासा बनना पड़ा।

अपने अभिलषित ध्येयपर एकाग्र ध्यान रख उसके अनुसार चरित्र चित्रण करनेमें गोसाईंजीकी बराबरी कदा चित् ही कोई कवि करसके।'

गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी।
प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी॥ §१६/१० (११)
सुंदरि सुनु मैं उन्हकर दासा।
पराधीन नहिं तोर सुपासा॥ ,, (१२)
प्रभु समरथ कोसलपुर राजा।
जो कछु करहिं उन्हहिं सब छाजा॥ ,, (१३)

अर्थ—वह लक्ष्मणजीके पास गई। लक्ष्मणजीने उसे शत्रुकी बहिन जानकर और प्रभु (श्रीरामजी) को देखकर उससे कोमल वचन बोले। हे सुन्दरी! सुन, मैं तो उनका दास हूँ। पराधीन रहनेमें तेरा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुपास (निर्वाह, सुख) न होगा। प्रभु (रामजी) समर्थ हैं, अयोध्याके राजा हैं, वे जो कुछ करें उन्हें सब फबेगा।

पु० र० कु०—१ (क) रिपु भगिनी जानी'। उसके 'मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहुँ नाहीं' इन वचनोंसे जान गए। रिपु' कहा क्योंकि जबसे 'निसिचरहीन करौं महि भुज उठाइ पन कीन्ह' तभीसे सब शत्रु होचुके। यथा—'सेवक बैर अधिकाई' —[खर्रा—रिपुभगिनी जाननेका यह भी कारण होसकताहै कि पहले अगस्त्यजी आदिसे सुनाभी हो कि शूर्पनखा स्वतंत्र, बेमर्यादा, इस वनमें घूमाकरतीहै। दूसरे ऋषिपत्नी कोई इस प्रकार से स्वतंत्र विचरेगी और न ऐसी बातें करेगी और वनमें सिवाय मुनियों और राक्षसोंके दूसरा है नहीं जो आता।]

(ख)—'प्रभु बिलोकि बोले मृदुबानी' प्रभुकी ओर देखनेसे यह इशारा पाया कि इससे परिहास वा विनोदपूर्ण बात करें, नहीं तो भला इनसे कब आशा थी कि ये शत्रुकी बहिन जानकर उसकी दुष्टताको सहसकते। यहाँ 'पिहित' और 'सूक्ष्म' अलंकार हैं।

२ (क) 'मैं उन्कर दासा' क्योंकि लघुभ्राता हैं—'जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकरकुलरीति सुहाई'। (ख) 'पराधीन नहिं तोर सुपासा', यथा—'पराधीन सपनेहु सुखनाहीं'। रातदिन सेवा करते बीतेगी। इससे भारीदुःख कौन है—'दासी भविष्यसि त्वं तु ततो दुःखतरं नु किम्'—(अध्यात्मे)।

३ (क) १ 'प्रभु समर्थ कोसलपुरराजा...' समर्थका भाव कि 'समरथ कहँ नहिं दोष गुसाईं रबि पावक सुरसरिकी नाईं'। वे कई रानियाँ करलें तो भी उनको कोई दोष नहीं देसकता। किसी जातिकीभी स्त्रीको रानी बनानेसे उन्हें कोई जातिसे बाहर नहीं करसकता। (ख) कोसलपुरराजा'। भाव कि अवधेशजीकी ७०० रानियाँ थीं तो इनको दो में क्या कठिनता है? *

दीनजी—'सुंदरि सुनु...' यह व्यङ्गपूर्व वचन है। वे आचार्य्य हैं और सर्वज्ञ हैं अतः कहतेहैं कि बड़ी सुन्दरी हो न जो हमको खसम

* 'समृद्धार्थस्य सिद्धार्था मुदितामलवर्णिनी। आर्य स्यत्वं विशालाक्षि आर्या भव यवीयसी'—(वा० स० १८)। अर्थात् रामजी सबतरह ऐश्वर्य्यवान हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(पति) बनाने आईहो।—(नोट—'सुन्दरि' संबोधनमें यहभी भाव है कि तुम ऐसी सुन्दर हो कि रानी ही बनने योग्य हो दासी नहीं। तुम्हारी ऐसी सुंदरीको छोड़कर रामजी दूसरेसे प्रेम नहीं करेंगे तुम उन्हींकी स्त्री बनो। यथा—'को हि रूपमिदं श्रेष्ठं संत्यज्य वरवर्णिनि मानुषीषु वरारोहे कुर्याद्भावं विचक्षणः ॥१२॥'—(वा०, ।)

सेवक सुख चह मान भिषारी।
व्यसनी धन सुभगति बिभिचारी॥ १६/१० (१४)
लोभी जसु चह चार गुमानी।
नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी॥ ,, (१५)

व्यसनी = जिसे किसी बातका व्यसन (शौक, लत) हो; जुआरी नशेबाज, आदि। जुआ, स्त्रीप्रसंग, नृत्य गान, शिकार, आदि १८ व्यसन मनुजीने कहेहैं जिसमेंसे १० कामज और ८ क्रोधज हैं। जिसमें ये कोई भी व्यसन हो वह व्यसनी है।

अर्थ—सेवक सुखकी चाह करे, भिखारी प्रतिष्ठा चाहे, व्यसनी धन और व्यभिचारी (परस्त्रियगामी) सद्गति चाहे, लोभी यश चाहे और दूत अभिमानी हुआ चाहे, तो यह ऐसा जानपड़ताहै कि ये प्राणी आकाशसे दूध दुहलेना चाहतेहैं *।

नोट—'नभ दुहि दूध चहत' आकाशसे दूध दुहना, यह मुहावरा है। अर्थात् असम्भव या असाध्य बातको संभव करना चाहतेहैं, यह कैसे होसकतीहै। आशय कि मैं दास हूँ मेरे साथ रहकर सुख कैसे संभव है? सुख तो स्वामिनी बननेसे ही तुम्हें मिलेगा तुम स्वामीकी स्त्री जाकर बनो।

* 'सेवैव मानमखिलं ज्योत्स्नेव तमो जरेव लावण्यम्।
हरिहरकथेव दुरितं गुणशतमभ्यर्थिता हरति॥—(हितोपदेशे)
अर्थी लाघवमुच्छ्रितो निपतनं कामातुरो लाञ्छनम्।
लुब्धोऽकीर्तिमसंगरः परिभवं दुष्टोऽन्यदोषे रतिम्॥'—(नवरत्ने)
अर्थात् सेवा संपूर्ण मानको, चांदनी अन्धकारको, बुढ़ापा सुंदरताको, हरिहरकथा पापको, याचना सैकड़ों गुणोंको हरलेती है। ॥१॥ अर्थी लघुताको, उच्चस्थ पतनको, कामातुर कलंकको, लोभी अपयशको, रणविमुख अपमानको प्राप्त होताहै। और दुष्ट दूसरेके दोषोंमें रतिप्राप्त करताहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिला—यहाँ लक्ष्मणजीने छः बातें कहीं—सेवक सुख, भिखारी मान, व्यसनी धन, व्यभिचारी शुभगति, लोभी यश और चार गुमान—इनमेंसे तीन अपने लिए और तीन उसमें अयोग्य दिखाईं। १—सेवक सुख—भाव कि हम घरबार छोड़ शीत, गर्मी, वर्षा, हवा आदि सहतेहैं परस्त्रीभोग सुख कैसे योग्य होसकताहै? सुख-भोग और रामसेवा यह मुझमें अयोग्य है। २—भिखारी मान—तू कामासक्त होकर भिखारिनी बनकर याचना करने आई तुझे जवाब मिलगया तब तू हमसे अपना मान करानेआई; यह तुझमें अयोग्य है। ३—'व्यसनी धन' 'धन लाभ है और 'लाभ कि रघुपति भगति समाना'। परस्त्रीगामी होकर भक्ति भी बनीरहे यह कैसे संभव है ४—शुभगति व्यभिचारी तू व्यभिचारिणी है। रामजीको वर बनाना चाहा अब हमको पति बनाना चाहतीहै। यह शुभ चाल नहीं। ५—'लोभी यश' विना कुलजाति आदि जाने व्याह करना लोभ है, इससे यश नहीं मिलसकता। अतः ऐसा करना हमारे लिए अयोग्य है। ६—'चार गुमानी'। तुझे अपने सौंदर्य का बड़ा गुमान है। तब ऐसी गर्ववाली स्त्रीको कौन व्याहेगा। यह तुझमें अयोग्य है।

दीनजी—१ 'सेवक सुख' का भाव कि व्याह सुखकेलिए किया-जाताहै सो न मिलेगा। दूसरे मैं दास हूँ दासकी स्त्री सुन्दर हुई तो कठिनाईही पड़तीहै वह तो महलकेही लायक़ है। ३—तुझे व्यसन है प्रेम करनेका, रामजीसेभी प्रेम करतीहै और हमसेभी। प्राणधन बना-नेवाली कईके पास नहीं जाती—(पतिको प्राणधन कहतेहैं)। ४—एक तो तू विधवा। उसपरभी तू रामजीके पासगई फिर मेरे पास आई ऐसेको कौन स्वीकार करसकताहै? ऐसेकी गति बुरीही होतीहै। ५—लोभी=जिसकी इच्छा पूर्ण न हो। तुम्हारी पतिकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई इससे तुम्हारा अपयश होगा, यश न होगा और पति यशके लिए कियाजाताहै। ६ चार (सेवक) होकर चाहे कि स्वाभिमान कायम रहे सो नहीं रहसकता—यह आचार्यरूपसे फटकार है कि सुख और अभिमान ये दोनों अब न रहेंगे। सेवकको सुख मिलना, इत्यादि सब झूठ है इनको 'नभसे दूध दुहना' इस झूठसे प्रमाणित करना 'मिथ्या-ध्यवसित' अलंकार है 'सेवक सुख चह' यथा—'कथं दासस्य मे दासी भार्याभवितुमिच्छसि सोऽहमार्येण पत्नान्भ्रात्रा कमलवर्णिनि ॥ ९ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गौड़जी—यहाँ अन्वय करनेमें ['लोभी जस चह (अरु) चार गुमानी (होन चह)'] अन्तमें 'गुमानी' शब्दमें बाद 'होन चह' विवक्षित है। ऐसा माननेसे 'चार गुमानी' पाठ ठीक समझाजासकताहै परन्तु भिन्न प्रतियोंके पाठमें भेद है। यदि 'चार गुनानी' पाठ समझाजाय तो अर्थ होगा 'चार (जासूस और इसलिए चुगलखोर) 'गुनानी (गुणोंकासमूह) चाहे यदि पाठ 'चारु गुमानी' है तो अन्वय होगा—'लोभी चारु (सुन्दर) गुमानी (गर्व करने लायक) यश चह'।

पुनि फिरि राम निकट सो आई।
प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई॥ §१६।१० (१६)
लछिमन कहा तोहि सो बरई।
जो तृन तोरि लाज परिहरई॥ ,, (१७)

शब्दार्थ—तिनका तोड़ना=संबंध छोड़ना—यह मुहावरा है।

अर्थ—वह पुनः लौटकर रामजीके पास आई, श्रीरामचन्द्रजीने फिर लक्ष्मणजीके पास भेज दिया। लक्ष्मणजी बोले कि तुझे वही ब्याहेगा जो लज्जाको तिनकावत् तोड़कर त्याग देगा (वा, तिनका तोड़कर लज्जाको छोड़दे) अर्थात् निर्लज्ज होजाय।

नोट—१ कुलटा स्त्रीकी यही दशा होतीहै वह सभीको अपना पति बनातीहै। लक्ष्मणजीके इस रूखे उत्तरसे अब वह समझगई कि यह सब परिहास था। २—किसी २ महानुभावने यहां प्रश्न कियाहै कि प्रभुकी तो बानि है कि कोईभी कैसेही शरणमें आवे तो उसे नहीं त्याग करते। 'यथा—काम मोहित गोपिकन्ह पर कृपा अतुलित कीन्ह' इति विनये। शूर्पनखा शरण आई, चाहे काम, लोभ या किसी रीतिसे आई तब उसका त्याग क्यों किया? उत्तर यह है कि एक तो वह कपटवेष बनाकर आई, दूसरे वह व्यभिचारिणी बनकर आई। वह तो 'देखि विकल भइ जुगल कुमारा', अतएव वह किसीके कामकी न रही और न उसका शरण होना कहाजासकताहै। यही हाल उनका होताहै जो अनेक देवताओं की शरण दौड़ते हैं, कोईभी ऐसेकी रक्षा नहीं करता। जैसे द्रौपदी और गजेन्द्र जबतक दूसरोंका भरोसा करतेरहे तबतक भगवान्ने उनकी सहायता न की। यदि शूर्पणखा सत्यही प्रभुमें प्रेम करके उनकी शरण गईहोती तो शरणवत्सल भगवान् उसे अवश्य ग्रहण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करते।—(मा० म०, मयूख)। ३—यहां 'राम' शब्द 'रमु क्रीड़ायाम्' का भाव जनाताहै। प्रभु क्रीड़ा कररहेहैं। ४—दीनजी कहते हैं कि 'जो तृन तोरि...सो बरई' यह आचार्य्यरूपसे मानों वरदान है कि वह अवतार तुझको बरेगा जिसमें लाज न होगी। ५—लक्ष्मणजीके वचन सुनकर वह रामजीके पास लौट आई इससे जानागया कि उनकी बात इसको भाई, इसको मनमें जँची कि सत्य है बड़े की रानी बननेमें ये सब मेरी सेवा करेंगे और छोटेकी स्त्री बननेमें दासी बनना होगा। यथा-'इति सा लक्ष्मणेनोक्ता कराला निर्णतोदरी। मन्यते तद्वचः सत्यं परिहासानिचक्षणा'—(वा० स० १८)।

तब षिसिआनि राम पहिं गई।
रूप भयंकर प्रगटत भई॥ §१६/१० (१८)
सीतहि सभय देषि रघुराई।
कहा अनुज सन सयन बुझाई॥ ,, (१९)

अर्थ—तब वह खिसियाईहुई रामचन्द्रजीके पास गई उसने भयंकर रूप प्रकट कर लिया। सीताजीको भयभीत देखकर रघुनाथजीने भाई लक्ष्मणसे इशारेसे समझाकर कहा।

नोट—'रूप भयंकर प्रगटत भई'। कामकी हानि होनेपर क्रोध होताहीहै; इसकी कामना पूर्ण न हुई तब क्रोधमें भरकर वह भयंकररूप हो सीताजीको खाने दौड़ी यह कहतेहुए कि न यह रहेगी न सौतका डर रहेगा। यथा—'अद्येमां भक्षयिष्यामि पश्यतस्तव मानुषीम्। त्वया सह चरिष्यामि निःसपत्ना यथासुखम्॥१६॥ इत्युक्त्वा मृगशावाक्षीमलातसदृशेक्षणा। अभ्यगच्छन्सुसंक्रुद्धा महोल्का रोहिणीमिव॥१७॥'

पु.र.कु.—१'सीतहि सभय देखि रघुराई।' 'अभय' देना रामजीका व्रत है। जब कोई सभय होकर शरण हुआ उन्होंने अभय किया, यथा-'अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम'। पुनः यथा—'जानि सभय सुरभूमि सुनि बचन समेत सनेह' 'सभय देवकरुनानिधि जाने।...', 'सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीर...', 'सुरमुनि सभय प्रभु देषि मायानाथ अति कौतुक करेउ', इत्यादि। तथा यहाँ 'सभय देखि' निर्भय करनेका उपाय तुरंत रचदिया भयकी निवृत्तिके विचारसे 'रघुराई' पद दिया। २—दो-तीन बार घुमानेका कारण है—उसका अपराध सिद्ध करना।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—कहा अनुजसन सैन बुझाई' इति। यहां सूक्ष्म अलंकार है, यथा—'पर आशय लषिकै करै चेष्टा सोभिप्राय। उत्तर रूप अनूप जहँ तहँ सूक्ष्म कबिराय॥ लषन लखेउ रघुनाथ दिशि निश्चरि व्याहन काम। तर्जनि पर धरि तर्जनी पै चिलई तब राम॥' 'बेद नाम कहि अंगुरिन खंडि अकास। सूपनखा को पठए लछिमन पास—(बरवै)।

नोट—आनंदरामायणमें अँगुली से इशारा करना कहाहै—'वैदेही सभयां दृष्ट्वा अंगुल्या बोधितोऽनुजः' बरवै रामायणके अनुसार यहाँ इशारा यों किया कि-चार अँगुलियाँ दिखाकर वेदका अर्थ सूचित किया (क्योंकि वेद चार हैं) और वेद श्रुतिको कहतेहैं श्रुतिका अर्थ कान है। फिर अँगुली आकाशकी ओर घुमाकर आकाशका खण्डनभी जनाया। आकाश नाकको कहतेहैं।

दीनजी—यहां युक्ति अलंकार है। अपना मर्म लक्ष्मणजीको बताना था और शूर्पणखासे छिपानाथा। 'कहा अनुजसन सैन बुझाई' इससे जनाया कि लक्ष्मणजी इतने पास थे कि शब्द सुनसकें और उँगलीका इशारा देख सकें।

पं० रा० च० शुक्ल—कविलोग अपनी चतुराई दिखानेके लिए श्लेष, कूट, प्रहेलिका आदि लाया करतेहैं, पर परमभावुक गोस्वामीजीने ऐसा कहीं नहीं किया। केवल एक (इसी) स्थानपर ऐसी युक्तिपटुता है, पर वह आख्यानगत पात्रका चातुर्य्य दिखानेके लिए ही है। लक्ष्मणजीसे शूर्पणखाके नाक-कान काटनेके लिए राम इस तरह इशारा करतेहैं—'बेद नाम कहि अँगुरिन खंडि अकास। पठयो सूपनखाहि लषन के पास॥' (वेद=श्रुति=कान। आकाश=स्वर्ग=नाक)।

लछिमन अति लाघव सो नाक कान बिनु कीन्हि।
ताके कर रावन कहँ मनो चुनवती दीन्हि॥१७॥

शब्दार्थ—लाघव=हाथकी सफ़ाई, फुर्ती, सहजमें, जल्दी। यथा—'अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा'।

अर्थ—लक्ष्मणजीने बड़ी फुर्तीसे उसको विना नाककानका कर दिया मानों उसके हाथ रावणको चुनौतीदी अर्थात् ललकारा कि मर्द हो तो सामने आओ।

टिप्पणी—१ (क) 'ताके कर' में यह भी ध्वनि है कि नाककान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

काटकर उसके हाथ में धर दिया।—(पु०र०कु०)। (ख) नाक कान काटनेका भाव कि व्यभिचारिणीका यही दंड है। उसको रूप और यौवनका गर्व होताहै, नाककान काटनेसे कुरूपवती होजायगी। आजभी न्यायालयोंमें ऐसे मामले देखनेमें आतेहैं कि पति या जारने स्त्रीको दूसरे मनुष्यसे संग करते पा उसकी नाक काटडालीहै (ग) वंदन पाठकजी लिखते हैं कि नाक काटनेसे व्यभिचारिणीको विरूपकर दंड दिया और कान इसलिए काटा कि तूने इनसे सुना नहीं कि राम धर्मात्मा एक पत्नीव्रत हैं। (घ) पतिदासीजी लिखतीहैं कि 'सूपनखा गइ रामपहँ तजि वैधव्य विचार।

'दासी' याते नासिका काटे राजकुमार॥' पुनः, (ङ)—कानमें बहुतसे भूषण पहनेजातेहैं। नाककानसेही स्त्रीका शृङ्गार और शोभा होती है। इनके कटनेपर वह कुरूप होजातीहै। इस प्रकार उसकी अधर्म में प्रवृत्ति आपही मिटजातीहै। (च)—पं०—नाक कान उसने काटने कैसे दिया, हाथ पैर न हिलाया? इसका उत्तर गोस्वामीजी ने स्वयं दोदयाहै कि 'अति लाघव०' अर्थात् ऐसी फुर्त्ती की कि वह कुछ न करसकी। अथवा, वह सीताजीकी ओर झुका है उसने इनको पास आते, तलवार चलाते न देखा। अथवा, समझी कि अब मुझसे डरकर मुझे मनाने, मेरे कपोल आदि स्पर्शकरके मुझे प्रसन्न करने आपहैं। (छ) प्र०—कान=श्रुति, नाक=स्वर्ग। नाक-कान काटनेका भाव कि श्रुति-और-सुर-विरोधी रावणको चुनौतीदी।

नोट—(१) चुनवती=प्रवृत्ति बढ़ानेवाली बात, उत्तेजना, ललकार, प्रचार; यथा—'चतुरंगिनी सैन संग लीन्हे। विचरत सबहि चुनौती दीन्हे'। (२)—"सूपनषाकी गति तुम्ह देखी। तदपि हृदय नहिं लाज बिसेषी।" यह चुनौती है।

शूर्पणखा का नाककान काटना क्या अपमान है?

१—गौड़जी—आजकल कुछ सुधारक लोग अपनेको स्त्रीजाति पर अत्यन्त उदार दिखातेहुए यह भी कहतेहैं कि "सूपनखाके कान-नाक काटकर लक्ष्मणजी ने बड़ा ही कठोर दंड दिया। 'वैसे ताड़काको माराथा तो गुरुजीकी आज्ञा थी, परन्तु यहाँ श्रीरामचन्द्रजीने सूपनखाको क्षमा कर दियाहोता तो उनको अधिक शोभा देता। स्त्रीजातिका अपमान उचित न था।" वह इस बातको भूलजाते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं कि वह (दुष्ट हृदय दारुण जिमि अहिनी) राक्षसी थी और भयंकर रूप बनाकर सीताजीको उसने डराया और अपने विवाहके मार्गमें कंटक रूप सीताजीको खाजानेकी धमकीदी। उसे विवाहके प्रस्तावकी ढिठाई पर यह दंड नहीं दियागया। उसे दंड इसलिये दियागया। कि उसने मार डालनेकी, मृत्युकी, धमकी दी। श्रीरामचन्द्रजीको यह निश्चय था कि मृत्युदंडसे कममें ही वह भाग जायगी। इसीलिये उस ऋषि-मांस-पर वैधव्य व्यतीत करनेवाली राक्षसीको भी मृत्युदंड न देकर ऐसा दंड दिया कि उसके अपमानपर सभी सम्बन्धी राक्षस उबल पड़े। मृत्युदंडसे खरदूषण त्रिशिरा और रावणको उतनी उत्तेजना भी दिलानेवाला कौन मिलता जितनी उत्तेजना सूपनखाने दिलायी। नाककान काटकर छोड़ देना सूपनखाके साथ उतनी ही रिआयत थी जितनी जयन्तके साथ की गयीथी। क्षमा-याचना सूपनखाने कब की, जो उसे दीजाती? जो मुकाबलेमें आकर युद्ध करना चाहे, उसका सामना करके उसकी याचनाके विपरीत ही उसे क्षमा करना तो कायरता है।

रामरावण युद्धका हेतु पैदा करनेके लिये यह बीजारोपण था। सूपनखाके हाथसे रावणको मानो चुनौती दीगयीथी। अगर इसे रावणके पक्षवाले अनुचित अपमान मानें तो भी ठीक है। यह तो भगवान्की ओरसे मनुष्योचित दौर्बल्यका बड़ा ही उत्तम अभिनय समझा जानाचाहिये। इस स्थलपर तो अनुपम माधुर्य्य भर प्रदर्शित होताहै।

२—बाबू शिवनंदन सहाय—कविने शूर्पनखाको निर्लज्जताकी मूर्त्ति खड़ी कीहै और लक्ष्मणके हाथसे उसकी नाक और कान कटवाकर उसे यथोचित दंडभी दिलवायाहै। भक्त लक्ष्मणसिंहने लिखाहै कि "पिताकी प्रतिज्ञापालनके लिए राज परित्याग करदेनेकी प्रशंसा नहीं करनी तो असंभव है, परन्तु रावणके संग युद्ध करके, जिसका अपराध केवल यही मालूम होताहै कि उसने अपनी बहन प्रति अयोग्य अपमानका बदला लिया, इतने रुधिर प्रवाहको समर्थन करना दुष्कर है"। हमारे जानते यह अयोग्य अपमान तब होता जब राह चलते वा बैठे २ रामचन्द्र या लक्ष्मण उसकी बहनके साथ छेड़छाड़करते, हँसी मज़ाक उड़ाते या उसकी नाककान काटते। कोईभी सभ्य या शिष्टजन इस बातको सहन न करेगा कि जहाँ वह प्रियपत्नी, भ्राता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बन्धु या किसी औरहीके संग बैठा हो वहाँ एक कुल कलङ्किनी कामकी कुनारी पहुँचकर उससे प्रेमगाँठ जोड़ने—प्रीतिरीति करनेकी प्रार्थना करे, हठकरे और बल प्रयोग करनेपर उद्यत होजाय। लक्ष्मणने तो नाक कान काटना उचित समझा, परन्तु हमारे भाई लक्ष्मणसिंह ऐसी अवस्थामें क्या करते, उसका आदर करते या अपमान,—यह जानने-की हमारे पाठकोंको निश्चय बड़ी उत्कंठा होगी।

३—पं० रा० च० दूबे—शूर्पणखाके नाक-कान कटवाना भी स्त्री जातिका अपमान बताया जाताहै। होसकताहै। पर इसमें गुसाईं जी-का दोष क्या? उसके नाक-कान गोसाईं जीके जन्मसे हज़ारों लाखों वर्ष पूर्व कट चुकेथे। यह सज़ा अच्छी थी या बुरी, इसके जाँचनेका अधिकार हमको नहीं। इन बातोंमें सदा परिवर्तन होतारहताहै। जो आज अच्छा समझाजाताहै, वही कालांतरमें बुरा होजाताहै। आजभी अनेक दुष्टकर्मोंकी जो सजा बहुत कठोर समझीजातीहै, आगे चलकर उसका असभ्यतासूचक तक समझा जाना संभव है। आज हम उसे ऐसा नहीं समझते तो क्या आगामी पीढ़ियोंका इस समयके लोगोंको ऐसा दंड देनेपर खरा-खोटा कहना अच्छा होगा। एक बात और विचारणीय है। वह यह कि क्या जिसको हम सभ्यदंड कहतेहैं, उससे हमारी इष्ट-सिद्धि होतीहै? जेलखाने सुधारघर हैं या दुराचार और अनाचरकी पाठशालाएँ? कितने अभि-युक्त जेलखानेकी हवा खाकर सुधरकर निकलतेहैं और भविष्यमें निंदित कर्मोंसे बचतेहैं? यदि बहुत कम तो फिर क्यों उस पुराने दंड की जिससे एकहीके प्रति पाशविक क्रूरता होतीथी, पर बहुतोंको उससे शिक्षा मिलतीथी और फिर वैसा करनेका साहस न होताथा, निन्दा कीजाय। आजके समान तब अनेक प्रकारके अनाचारोंकी वृद्धि नहीं होनेदीजातीथी, जेलखानोंके ग्राम के ग्राम नहीं बसतेथे। सम्राट-अशोकके जन्मोत्सव पर केवल एक या दो बन्दी मुक्त होतेथे। कारण कि होतेही बहुत कम थे। अस्तु।

हमारा आशय सिर्फ यही है कि जो रिवाज जिस समय प्रचलित होताहै, उस समय वह साधारण प्रतीत होताहै। उसके दोष जनता को दिखाई नहीं देते। वह बुरा नहीं दिखाईदेता। आज भी यही है। सभ्यता-अभिमानी अमेरिकानिवासियोंको लिंचला (Lynch

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Law) में कोई दोष दृष्टिगोचर नहीं होता है। वह न्याययुक्त और गुणमय ही दिखाईदेताहै । पर दूसरेकी आँखोंमें वह काँटेके समान खटकताहै, अन्यायमूलक और पाशविक प्रतीत होताहै।

जैसे पुरुषों को कामका चेरा बतायाहै और यहाँ तक कहडाला है "नहिं मानहिं कोउ अनुजा-तनुजा" तो फिर यदि—सूपनखा रावन की बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जिमि अहिनी ॥ की कामांधताका ज़िक्र करतेहुए यह कहडाला कि—

"भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखति नारी।"

तो गुसाईं जीने पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके प्रति कौन सा घोर अन्याय किया! वे तो दोनोंको एकही लाठीसे हाँक रहेहैं।

मा० स०—कुछ लोगोंका कहना है "रामचन्द्रजीको चाहिएथा कि सूर्पणखाकी प्रार्थना स्वीकार करलेते। वे राजाथे, कई विवाह करलेना उनके लिए अयोग्य न था। वरन् इसको पत्नी बनालेनेमें उनका संबंध त्रैलोक्यविजयी रावणसे होजानेसे आगे बहुत लाभ संभव था।" हमारी समझमें यह शंका उन्हींलोगोंकी है जो एकपत्नीमें संतोष नहीं कर सकते वाजिन्हें पाश्चात्य सभ्यताने मोहित करलियाहै। उनकी यह कल्पना रामायणके सम्बन्धमें निरर्थक है। एकपत्नीव्रत तो रामायणकी मुख्य शिक्षाओंमेंसे है। राजा दशरथकी यदि कई रानियाँ न होतीं तो श्रीरामचन्द्रजीका वनवास क्यों होता। और, यदि पुरुषोत्तम रामजी बहुपत्नीवान् होते तो निश्चयही आज शंकाकरनेवाले यह प्रमाणित करते कि उन्हों (रामजी) ने अपने घरकेही अनुभवसे कुछ लाभ नहीं उठाया। आजकलकी दृष्टिसे भी। यह प्रश्न मूर्खताका है; क्योंकि आजभी पच्छाहीं रोशनीवाले दोनों पक्षोंका रज़ामन्दीसेही विवाह होना न्याय-संगत मानते हैं। प्रस्तुत प्रसंगमें न श्रीरामचन्द्रजी; राजी हैं न श्रीलक्ष्मणजी इसलिए विवाहका संबंधही कैसे होसकताहै? यदि कहाजाय कि भगवद्विभूतियोंपर मोहित होना भक्तिका एक प्रकार है और भगवान्को भक्तकाभी उद्धार करनाचाहिए नहीं तो भगवद्गुणों में एक त्रुटिसी पाईजातीहै। तो इसका उत्तर यह है कि वर्त्तमान समयमें भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम हैं, उनपर मोहित होनेकी सद्गति अवश्य होतीहै और यदि नीच वासनासेभी कोई भगवान् के निकट पहुँचे तोभी उसका भला हुए विना नहीं रहसकता। जनकपुरमें दोनों बंधुओंके रूपपर नगरकी सभी स्त्रियाँ मोहित होगईथीं और उनमेंसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनेकने भगवान्‌को पतिभावसेभी देखाथा; परन्तु भगवान्‌ने इस भाव से किसीको न देखा। श्रीरामावतारमें एक पत्नीव्रतकी मर्यादा है परन्तु इन मोहित होजानेवालोंके भावकी रक्षा भगवान्‌ने अपने कृष्णावतारमें की, जिसमें रामावतारमें उनपर मोहित होनेवाली स्त्रियाँ जो पत्नीत्व नहीं चाहतीथीं वरन केवल सखित्वकी अभिलाषिणी थीं वे गोपियाँ हुईं और जो पत्नीत्वकी अभिलाषिणी थीं वे सब रानियाँ हुईं। कहाजाता है कि गर्गसंहितामें शूर्पणखाके विषयमें विस्तृत कथा है। श्रीरामचन्द्रजीने उससे कहदियाथा कि इस अवतारमें हम तुम्हें ग्रहण नहीं करसकते अगले अवतारमें तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करेंगे। वही शूर्पणखा कुब्जा हुई। करुणासिंधुजीनेभी ऐसाही लिखाहै कि वह द्वापरमें कुबरी हुई। इसप्रकार भगवान्‌ने उसकी अभिलाषा भी पूर्ण करदी। शंका करनेवाले महानुभावको यह जानकर आशाहै कि संतोष हो।

ऐसी शङ्काकरनेवाले भूल जातेहैं कि यह मर्यादापुरुषोत्तम अवतार है जिसमें एकपत्नीव्रतकी मर्यादा स्थापित कीगईहै। श्रीरामजीही नहीं वरन् उनके सब भाई, परिजन और सारी प्रजा एकपत्नीव्रतथी—

"एक नारि व्रत सब नर भारी"

देखिए सीतावियोगके लगभग १००० वर्षबाद तक वे विना स्त्रीके रहे पर उन्होंने दूसरा विवाह न किया। यह व्रत पराकाष्ठाको पहुँच जाताहै जब हम सोचतेहैं यज्ञोंके समय जब ऋषियोंने उनसे दूसरा विवाह करलेनेकी राय दी तब भी उन्होंने उसे स्वीकार न की और यज्ञ के लिए स्वर्णकी सीता बनायी गईं।

शूर्पणखा विधवा है। परस्त्रीको माताके समान देखना शास्त्राज्ञा है—"मातृवत्परदारेषु", "जननी सम देखहिं 'परनारी'। उन्होंने स्वप्नमेंभी परायी स्त्रीपर दृष्टि नहीं डाली तब इसको कैसे स्त्री बनाते। अच्छा दूसरी दृष्टिसे भी देखिए—शूर्पणखा दोनों राजकुमारों पर मोहित हुई है। वह पहले रामजीके पास गई तब उन्होंने उसे लक्ष्मणजीके पास भेजदिया। यहाँ उसकी परीक्षाभी होगई। यदि वह सत्य ही विवाह करने आईथी तो लक्ष्मणजीके पास न जाती, यही कहती कि मैंने तो आपके लिए आत्मसमर्पण करदियाहै अब और कहां जा सकतीहूँ? पर वह कामकी चेरी उनको छोड़ लक्ष्मणजीके पास जातीहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

फिर वहांसे यहां आतीहै। रामसे विवाह करने आई अतः लक्ष्मणजी केलिए वह मातारूप है उसे वे कैसे ग्रहण करते और लक्ष्मणजीको पति बनानेगई अतः वह अनुजवधू सरीखी हुई; उसे रामजी कैसे ग्रहण करते—वह तो कन्या समान हुई। दोनोंको पति बनाना चाहा अतः स्पष्ट है कि वह निर्लज्ज है, कुलटा है।

इतनेपरभी प्रभु उसे क्षमाही करतेरहे क्योंकि वे तो 'निज अपराध रिसाहिं न काऊ'। पर जब वह सीताजीको खाने दौड़ी और वे भयभीत होगईं तब इस आततायिनीके अपराधको वे न सहसके—'जो अपराध भगत कर करई। रामरोष पावक सो जरई'। फिरभी उसको प्राणदण्ड न दियागया। स्त्री जानकर केवल इतनाही दंड दिया गया जो आजकलभी नेपाल आदि रजवाड़ों में दियाजाताहै। वाल्मीकीयमें इसका प्रमाण है कि ऐसी स्त्रियोंके लिए उस समय यही दण्ड था। उदाहरणमें वा० आ० स० ६९।११-१८ का प्रमाण है। अयोमुखी नामकी एक राक्षसी लक्ष्मणजीके आकर लपटगयी और बोली कि आओ हम तुम इस वनमें आयुपर्यन्त रमण करें। इसपर लक्ष्मणजीने उसके नाक कान-काट डाले। जो राजाका कर्त्तव्य है वही दंड शूर्पणखाकोभी मिला।

एक महानुभाव शूर्पणखाके नाककान काटनेके सम्बन्धमें यह कहते थे कि वह पुलस्त्यकुलोद्भव होने से ब्राह्मणी हुई और प्रभु क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय ब्राह्मणीके साथ विवाह नहीं कर सकता। अतः उन्होंने इसकी प्रार्थना स्वीकार न की। ऐसा विवाह प्रातिलोम्य विवाह कहलाताहै और उसकेलिए यही दंड देना राजाका कर्त्तव्य है। प्रमाण यथा—

सजातावुत्तमो दण्ड आनुलोम्ये तु मध्यमः।
प्रातिलोम्ये वधः पुंसो नार्याः कर्णादि कर्त्तनम्॥ (याज्ञवल्कः)।

दूसरी कल्पना कि त्रैलोक्यपतिको रावणसे लाभ पहुँचता उपहासास्पद है। —(संपादक)।

मुं० श्रीहरिजनलालजी—कुछ अनभिज्ञ लोग शूर्पणखाके कर्ण-

* प्राण न लेनेमें एक हास्य अवतारके कार्य्यकाभी है। रावणका उसके परिवारसहित उद्धार करनाहै। इसके द्वारा वह कार्य्य करनाहै। जैसे मारीचका वध न करके उसे प्रभुने लंकामें पहुँचादिया क्योंकि उससे सीताहरण आदि लीलामें काम लेनाथा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नासिकाके काटेजानेको श्रीरघुनाथजीके परमोज्ज्वल चरितमें धब्बा मानतेहैं। यहाँतकभी कहडालनेमें उनको संकोच नहीं होता कि—"प्रथम अपराधका आरंभ श्रीरामजीहीकी ओरसे हुआ। उन्होंने अनायास रावणकी भगिनीके नाक-कान काटलिए। ऐसे अहित और अनर्थपर यदि रावणने उनकी स्त्रीका हरण किया तो क्या अपराध किया? अतएव रावण अपराधी नहीं कहाजासकता।"

वर्त्तमान-समयानुसार उत्तर यह है कि उनका यह अनुमान सर्वथा अयोग्य है। श्रीरामजीने शूर्पणखा तथा रावण दोनों का परम हित कियाहै, अहित नहीं किया। शूर्पणखा विधवा थी, उसके पतिको स्वयं रावणने मारडालाथा यह कथा वाल्मीकि आदि रामायणोंमें सविस्तर दीहुई है। वह शूर्पणखा महात्मा रावण ऐसे प्रतापी वीर पुरुषकी बहिन होकर भी अपने वैधव्य धर्मके विरुद्ध काम करने तथा रावणके अनुपम पौरुष, और प्रतापजनित सुयशको कलंकित करके उपहास करनेको उद्यत हुईथी। अर्थात् कामविवश हो पर-पुरुषसे प्रसंग किया चाहती थी। इस अनर्थ से रोकनेके निमित्त उसके नाककान काटेगए। इसका कारण यह है कि स्त्रियों का धन स्वरूप है और स्वरूपमें प्रधान अंग नासिका है जिसके विना स्त्री कुरूप होजातीहै फिर उसे कोई ग्रहण नहीं करता; इस तरह वह पर-पुरुष-प्रसंगसे बचजातीहै। इसी विचारसे नाक-कान काटेगए जिसमें उसका वैधव्य धर्मसुरक्षित और रावणका सुयश सुरक्षित और प्रशंसनीय बनी रहे उपहासके योग्य न हो। परन्तु रावणने इस परमोपकारको न समझकर रघुनाथजीके साथ धृष्टता की; अतएव सुजनसमाज रावणहीको दोषका भागी कहते आरहेहैं और कहेंगे मारीचनेभी रावणसे यही कहाथा कि शूर्पणखा उनके पास गई ही क्यों थी? अर्थात् उसका उनके पास जाना राक्षसकुलकी मर्यादाका तोड़नाथा।

खर-दूषण-वध-प्रकरण

नाक कान बिनु भइ बिकरारा।
जनु श्रव सैल गेरु कै धारा॥ § १७/११ (१)
खरदूषन पहिं गइ बिलपाता।
धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता॥ ,, (२)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तेहि पूछा सब कहेसि बुझाई।
जातुधान सुनि सेन बनाई॥ १७/११ (३)

अर्थ—विना नाककानके वह बहुतही कराल दिखनेलगी, मानों (काले) पर्वतसे गेरूकी धारा बहरहीहो। विलापकरतीहुई खरदूषणके पास गई। (और बोली कि) अरे भाई! तेरे पुरुषार्थ और बलको धिक्कार है। उन्होंने पूछा कि क्या बात है कह तब उसने सब समझाकर कहा। निश्चरने सुनकर सेना सजी।

पु० र० कु०—१ कराल तो पूर्वही थी अब नाककान कटनेसे विशेष कराल होगई, क्योंकि तीन धाराएँ रक्तकी चलरही हैं। बिकराल= विकराल। र और ल सावर्ण्य होनेसे 'ल' का 'र' करलिया। यथा—'अस्थि सैल सरितानस जारा'। २—(पुरुषार्थ और बल दो बातें हैं अतः इसमें पुनरुक्ति नहीं है। पुरुषार्थ पुरुषत्व और पराक्रमवाचक है और बलसे सेना का बल एवं शारीरकबल। वा, यदि एकही अर्थ भी मानलें तो भी क्रोधके आवेशमें पुनरुक्ति नहीं मानी जायगी।—(प्र०) ३—गौड़जी—"बिलपाता" शब्दपरभी लोग शंका करते हैं कि "विलपाती" क्यों नहीं। यदि अन्त्यानुप्रासकी अन्तिम बढ़ीहुई मात्रा छोड़दें तो अन्वय इस प्रकार होताहै—"खरदूषन पहिं (एहि प्रकार) बिलपत वा विलपात गई (कि हे) भ्रात धिग् धिग् तव बल पौरुष"। इस गद्यरूपके देखनेसे यह स्पष्ट होजाताहै कि बिलपात, विलपत, बिलषात, बिलषत, रोवत, नाचत, गावत. कहत, बोलत आदि अपूर्ण या असमाप्त क्रियाओंमें लिङ्गभेदके चिन्हकी कोई आवश्यकता नहीं पड़ती; इसलिए यहां कोई अशुद्धि नहीं है और बिलपाताकी जगह बिलपाती नहीं चाहिए।

"तेहि पूछा सब कहेसि बुझाई।" इति। 'बुझाई' अर्थात् बताया कि दो भाई हैं, सुंदर स्त्री संग है, बड़े वीर जानपड़तेहैं, शस्त्रधारण किए हैं, इत्यादि। यहां कविने विस्तार नहीं लिखा क्योंकि आगे रावणसे यह फिर कहेगी; वहीं लिखेंगे।

धाए निसिचर निकर बरूथा।
जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा॥ §१७/११ (४)
नाना बाहन नाना कारा।
नानायुध धर घोर अपारा॥ ,, (५)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सूपनषा आगे करि लीनी।
असुभ रूप श्रुति नासा हीनी॥ १७/१६ (६)
असगुन अमित होहिं भयकारी।
गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी॥ ,, (७)
गर्जहिं तर्जहिं गगन उडाहीं।
देषि कटुक भट अति हरषाहीं॥ ,, (८)
कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई।
धरि मारहु तिय लेहु छडाई॥ ,, (९)

अर्थ—समूह राक्षसोंके झुण्डके झुण्ड दौड़े मानों पक्षयुत काजल के पर्वतोंके झुंड हों। अनेक तरहके आकाशके अनेक वाहन (सवारियाँ जैसे रथ, घोड़े, हाथी, ऊँट आदि), अनेक प्रकारके अगणित भयङ्कर अस्त्रशस्त्र धारणकिएहैं (वा वाहन में) रक्खेहैं। † अमंगलरूपिणी नाककान कटीहुई शूर्पनखाको उन्होंने आगे करलिया। अगणित भय-देनेवाले अपशकुन होरहेहैं, पर वे सबके सब मृत्युके वश हैं इससे उनको कुछ नहीं गिनते। गरजतेहैं, दपटतेहैं, आकाश में उड़ते (उछलते) हैं, सेना को देखकर योधा बहुतही प्रसन्न होतेहैं। कोई कहताहै कि दोनोंभाइयोंको जीताही पकड़लो, पकड़कर मारडालो, स्त्री छुड़ालो।

नोट—१ 'निकर बरूथा' अर्थात् प्रत्येक सेनापति अपना-अपना दल लिए था। ऐसी अनेक टोलियाँ थीं। २—'कज्जलगिरि' कहा क्योंकि काल है और शरीर पर्वतकार विशाल है। दूसरे, इससे जनाया कि इनमें कुछ सार नहीं है। ये ऐसे नष्ट होजायँगे जैसे पवनके झकोरेसे काजलका पहाड़, जो साररहित है।—(करु०) पुनः, महातमोगुणी जनाया।

पु० र० कु० १—'सूपनषा आगे करि लीनी..', यह अपशकुन

† मुद्गरैः पट्टिशैः शूलैः सुतीक्ष्णैश्च परश्वधैः। खड्गैश्चक्रै रथस्थैश्च भ्राजमानैः सतोमरैः॥ शक्तिभिः परिघैर्घोरैरतिमात्रैश्च कार्मुकैः। गदासि मुसलैर्वज्रैर्गृहीतैर्भीमदर्शनः॥ राक्षसानां सुघोराणां सहस्राणि चतुर्दश। निर्यातानि जनस्थानात्खरचित्तानुवर्तिनाम्॥—वा० २२।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उन्होंने अपनीही ओरसे करलिया और सब प्रारब्धवश हुए। समस्त अपशकुनोंके पहले इसीको नामलेकर गिनाकर सूचित किया कि समस्त अपर अपशकुनोंसे इसका आगे होना अधिक अपशकुन है। (ख) आगे करनेका कारण यह कि ये शत्रुका पता चलकर बतावे।

२—'असगुन अमित होहिं भयकारी। गनहिं न...' कालके वश होनेसे बुद्धि-विचार नहीं रहजाता, यथा—'काल दंड गहि काहु न मारा। हरै धर्म बल बुद्धि बिचारा।' इसीसे 'गवहिं न'। रावणको भी इसी प्रकार अपशकुन हुएथे उससे मिलान कीजिए। भटोंका सवारीपरसे गिरना, घोड़े हाथियोंका चिंघाड़कर पीछे भागना, अस्त्र शस्त्रका हाथसे गिरना इत्यादि अपशकुन हैं। *

३—'गर्जहि तर्जहि...'। अपशगुन होनेसे उत्साह भंग होजाताहै; पर इनका उत्साह भंग न हुआ, वरन इनका उत्साह बढ़ताहीजाताहै। 'गर्जहि तर्जहिं...' से जनाया कि उत्साहसे पूर्ण हैं। इसका कारण कवि स्वयं बतातेहैं कि अपशकुनकी पर्वा नहीं करते क्योंकि 'मृत्यु बिबस सब झारी'। अति हरषाहीं' का भाव कि सारी सेनाको हर्ष है; पर जो भट हैं उन्हें 'अति दर्ष' है।

—'कोउ कह जिअत धरहु दोउ भाई...' इति। भाव कि उनको पूर्ण विश्वासहै और निश्चयकिए हैं कि हम दोनोंको वध करेंगे; इसीसे ऐसा कहरहेहैं कि 'जियत धरहु' 'धरि मारहु' और सिय लेहु छड़ाई'। उन्होंने बड़ा भारी अपराध कियाहै, बधके योग्य हैं, पर शस्त्रास्त्रसे तुरत मरजायंगे कष्ट न होगा अतएव पकड़लो, क्लेश भोगवा भोगवाकर प्राण लेनाचाहिए। स्त्री छीनलेनेसे मानसी खेद होगा जिससे आपही मरजायंगे, यथा—'तव प्रभु नारि बिरह बलहीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना'।

---

* असगुन अमित होहिं तेहि काला। गनै न भुजबल गर्ब बिसाला॥
अति गर्ब गनै न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते।
भट गिरत रथ ते बाजिगज चिकरत भाजहिं साथ ते॥
गोमायु गीध कराल खर रव स्वान बोलहिं अति घने।
जनु कालदूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धूरि पूरि नभमंडल रहा।
राम बोलाइ अनुज सन कहा॥ § १७/११ (१०)
लै जानकिहि जाहु गिरिकंदर।
आवा निसिचर कटकु भयंकर॥ ,, (११)
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी।
चले सहित श्री सरधनुपानी॥ ,, (१२)
देषि राम रिपु दल चलि आवा।
बिहसि कठिन कोदंड चढावा॥ ,, (१३)

अर्थ—आकाशमण्डल धूलिसे भरगया तब रामजीने भाई को बुला कर कहा कि जानकीजीको लेकर पर्वतकी कंदरामें चलेजाओ, भयङ्कर निश्चरोंकी सेना आगईहै। सचेत रहना। प्रभुके वचन सुनकर लक्ष्मणजी श्रीजानकीजीसहित हाथोंमें धनुषवाण लिएहुए चले। यह देखकर कि शत्रुका दल चलकर आगया रामचन्द्रजीने हँसकर कठिन धनुष चढ़ाया।

पु० र० कु०—१ 'लै जानकिहि जाहु गिरिकंदर' इति।—सीताजी से घरपर रहने के लिये कहते हुए प्रभुने कहाथा कि डरपहिं धीर गहन सुधि आये मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाये'। अर्थात् तुम स्वाभाविक ही डरपोक हो, अतएव लक्ष्मणजीसे कहा कि इन्हें कंदरामें लेजाओ जिसमें हमारा और निश्चरोंका युद्ध इनको न देखपड़े। (अभी शूर्पणखाका भयंकर रूप देखकर भयभीत होही चुकीहैं और अब तो अनेक विकट राक्षस आरहेहैं।)। *

२ (क)—रहेउ सजग सुनि प्रभु कै बानी। चले००" इति। दो आज्ञाएँ दीगईं। एक तो यह कि जानकीजीको कंदरा में लेजाओ, दूसरी कि 'सजग रहना' दोनों का पालन किया। 'लेजाओ' अतः

* पं०—लक्ष्मणजीको क्यों भेजदिया? उत्तर—क्योंकि सीतारामजीको कंदरामें अकेली नहीं छोड़सकते, न जाने कोई निश्चर वहाँ पहुँचजाय। २—नीतिभी काममें लाए। लक्ष्मणने नाक-कान काटे हैं इन्हींसे वे लड़ पड़ेंगे और ये निश्चर उनके हाथसे मरेंगे नहीं। ३—तीसरे उनको एवं शूर्पनखाको अपना पराक्रम दिखानाहै जिसमें वह रावणसे जाकर कहे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चले, रहेहु सजग' अतः 'सर धनुपानी'। हाथमें धनुषबाण लेनेसे सजगता' दिखादी। (ख)—'सुनि प्रभु कै बानी चले' फिर दुबारा कहनेका मौका न दिया, न कुछ उत्तर दिया क्योंकि 'उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवक लखि लाज लजाई'।

३—"देखि राम रिपु दल चलि आवा। बिहँसि' इति। (क) प्रथम धूलि उड़ती हुई देखकर मालूम हुआ कि निश्चरकटक आरहाहै—'धूरि पूरि नभमंडल रहा...आवा निसिचर। अब ध्वजा पताका आदि दिखाईदिए। (ख)—'बिहँसि से उत्साहवृद्धि जनाई—(१) उत्साह हुआ, भय नहीं है क्योंकि क्षत्रिय हैं—'छत्री तन तन धार समर सकाना। कुलकलंक तेइ पामर जाना" (२)—आगे प्रभु कहेंगे 'हम छत्री मृगया बन करहीं'। बिहँसकर जनाया कि मानों बहुत अच्छा शिकार आगया। पुनः, (३)—कठिन कोदंडको बिहँसि चढ़ावा' अर्थात् कुछ श्रम नहीं हुआ पुनः, (४)—'बिहँसि' से अन्तःकरणमें कृपा सूचित की और 'कोदण्ड' चढ़ाकर बाहरसे कठोरता देखाई यथा—'चितइ कृपा करि राजिनयना' पुनः, (५) बिहँसे क्योंकि 'जिमि अरुनोपल निकर निहारी। धावहिं सठ खग माँस अहारी॥ चोंच भंग दुख तिन्हहिं न सूझा। तिमि धाये मनुजाद अबूझा।'—(लं०§ ३९)। पुनः, (६) जो प्रतिज्ञाकी थी उसका विधान अब आवना, रावणसे युद्धका आज श्रीगणेश हुआ क्योंकि खरदूषण रावणकी सीमाके रक्षक हैं। पुनः, (७) खरों—बिहँसे कि हमारे स्वरूपको नहीं जानते, इसीसे लड़नेआपहैं।

छंद ॥

कोदंड कठिन चढाइ सिर जट जूट बाँधत सोह क्यों।
मरकत सैल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों॥
कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिष सुधारि कै॥
चितवत मनहुँ मृगराज-प्रभु गजराज-घटा निहारि कै॥

शब्दार्थ—कठिन=जो दूसरेसे चढ़ाया न जासके; जिसे कोई काट न सके।

अर्थ—कठिन धनुष चढ़ाकर सिरपर जटाओंका जूड़ा बाँधते-हुए कैसे शोभा देरहेहैं जैसे नीलमके पर्वतपर करोड़ों बिजलियोंसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दो सर्प लड़रहेहों। कमरमे तर्कश कसकर अपने लंबे (आजानु) हाथोंसे धनुषको पकड़कर और वाणको सुधारकर इसतरहसे प्रभु शत्रुकी ओर देखरहेहैं; मानों गजराजोंका समूह देखकर सिंह देखरहाहो।

पु० र० कु०—१ (क) कोदंड चढ़ाकर कंधेपर लटकालिया तब दोनों हाथोंसे जटाएँ बाँधी। जटाएँ बाँधकर कमरमें तर्कश कसकर अपनी विशाल भुजाओंमें धनुष और तीक्ष्णवाण सुधारकर लिया। और उनकी ओर देखरहेहैं।

(ख) मरकतशैल और रामजीका श्यामल शरीर, करोड़ों विजलियाँ और सुनहली जटाएँ (तपस्वी महात्माओंकी जटाओंका अग्रभाग प्रायः सलाईपन लिए होताहै) सर्प और हाथ, परस्पर उपमान उपमेय हैं। दोनों हाथोंसे जटाओंको पकड़कर बाँधतेहैं यही मानों सर्पोंका विजलियोंसे लड़ना है।—[गौड़—किसी-किसी विशेष दशामें बालोंसे बिजलीकी चिनगारियाँ वास्तव निकलती भी हैं। परन्तु यहाँ लटोंके अग्रभागकी चमकसे ही अभिप्राय है।] (ग)—'सुधारिकै' क्योंकि आज इनका प्रथम प्रथम काम पड़ेगा, अभीतक रखेही रहेथे।

२—'चितवत मनहुँ मृगराज...', यथा—'मनहुँ मत्त गजगन निरखि सिंहकिसोरहि चोप'। भाव यह कि उनके दलनका उत्साह हृदयमें पूर्ण है। वे बहुतसे हैं; अतः गजराजघटा कहा। सिंह अकेला सबको दलडालताहै और यहाँ प्रभु अकेलेहैं।

दीनजी—टवर्ग, मूर्धन्य ष, ध, इत्यादि परुषावृत्तिसूचक शब्दोंका लाना तुलसीदासजीकी पूर्ण-साहित्य-मर्मज्ञता प्रगट करताहै।

पु० र० कु०—टवर्गके पाँचों अक्षर संस्कृतकाव्यग्रन्थोंमेंभी एकही ठौर पड़ते नहीं देखनेमें आते; पर श्रीगोस्वामीजीने एकही चरणमें देखिए 'ट, ठ, ड, ढ' चारोंको धरदियाहै—'कोदंड कठिन चढाइ सिर जटजूट...'।

आइ गए बगमेल धरहु धरहु धावत सुभट।
जथा बिलोकि अकेल बालरबिहि घेरत दनुज॥§ १८।१२

शब्दार्थ—'बगमेल'—ब० § ३०५ देखिए।

अर्थ—बड़ेबड़े योद्धा यह कहते हुए कि पकड़ो २ दौड़तेहुए निकट

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आगप जैसे बालसूर्य (उदय-समयके) को अकेला देखकर दैत्य घेर लेते हैं।

पु० र० कु०—सवारोंके दौड़को बगमेल कहतेहैं। यथा—'हरषि परस्पर मिलान हित कछुक चले बगमेल' (ब० § ३०५) 'बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल। सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल' (अ० § ३७)। 'सूर सँजोइल साजि सुवाजि सुसेल धरे बगमेल चले हैं—(क०)। तथा यहाँ 'आइ गये बगमेल'।

दीनजी नोट—यहाँ बगमेलका अर्थ है 'निकट'। और कामदेवके प्रसंगमें लगाम छोड़कर बेतहाशा दौड़ातेहुए लेजानेका अर्थ है। बगमेलके दोनों अर्थ हैं। जब चढ़ाई के या दौड़नेके साथ आताहै तब बाग छोड़नेका अर्थ देताहै।

पु० र० कु०—'बालरबिहि घेरत दनुज।' रविहि घेरतसे जनाया कि मारे तेजके समीप नहीं आसकते। इसीसे ये दूत भेजेंगे और जैसे रवि दनुजको जीत लेतेहैं वैसेही प्रभु इनको जीतलेंगे। *

२—इस प्रसंगमें रसोंके उदाहरण देखिए। यथा—

१ 'रुचिर रूप' शृङ्गार। २—'बोली बचन बहुत मुसुकाई'-हास्य

३ 'रूप भयंकर प्रगटत भई'—भयानक। ४ 'नाक कान बिनु भई बिकारा'—बीभत्स।

५ 'खरदूषन पहँ गै बिलपाता—करुणा। धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता—वीर

७ तेहि पूछा सब कहेसि बुझाई—शान्त। ८ सूपनखहि आगे करि लीन्ही—रौद्र

---

* हेमाद्रि आदि ग्रन्थोंमें उल्लेख है कि मंदेह नामक दैत्य प्रातः-काल सूर्य्यको अस्त्रशस्त्र लिए घेर लेतेहैं। सन्ध्या करते समय जो अर्घ्य दिया जाता है उसका बूँद २ बाणरूप होकर उन दानवोंको मारताहै। ये दैत्य २० हज़ार कहे जाते हैं। उसीका यहाँ उदाहरण है। यहाँ अकेले रामजी और १४ हज़ार निशचर हैं, सबका नाश होगा, रामजीका कुछ न बिगड़ेगा। पं० रामकुमारजी लिखतेहैं कि ब्रह्माजीने १० हज़ार दैत्य उत्पन्न किए और उनको शाप दिया कि तुम नित्य मरो और नित्य जियो। गायत्रीमंत्र जापकरके जो जल देतेहैं उससे ये मरतेहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी ।
थकित भई रजनीचर धारी ॥ १८/१२ (१)
सचिव बोलि बोले खरदूषन ।
यह कोउ नृपबालक नरभूषन ॥ ,, (२)
नाग असुर सुर नर मुनि जेते ।
देखे जिते हते हम केते ॥ ,, (३)
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई ।
देखी नहिं असि सुंदरताई ॥ ,, (४)
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा ।
बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ॥ ,, (५)

अर्थ—प्रभुको देखकर वे बाण नहीं चलासकतेहैं, निश्चरसेना स्तब्ध रहगईहै। खरदूषणने मंत्रीको बुलाकर कहा—ये कोई राजकुमार मनुष्योंमें भूषणरूप हैं। नाग, असुर, सुर, नर, और मुनि जितनेभी हैं हमने कितनेही देखडाले, जीतलिए या मारडाले। पर, हे सब भाइयो! सुनो, हमने तो जन्मभर (जबसे हम पैदा हुए तबसे आज तक) ऐसी सुन्दरता कहीं नहीं देखी यद्यपि इन्होंने हमारी बहिनको कुरूपा (बदसूरत, नकटी बूची) करडालाहै तथापि ये उपमारहित पुरुष वधकिएजानेयोग्य नहीं।

पु० र० कु० १—'प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई...' इति। (क) प्रभुका माधुर्य्य ऐसाही है, रूपको देखा कि मन उसीमें डूब गया मोहनी पड़गई यथा—

१ रामहि चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन ॥
२ जिन बीथिन बिहरहिं रघुराई। थकित होहिं सब लोग लुगाई ॥
३ थके नयन रघुपति छबि देखे। पलकनहू परिहरी निमेषे ॥
४ थके नारि नर प्रेम पियासे। मनहु मृगीमृग देषि दियासे ॥

तथा यहाँ ५—थकित भई रजनीचरधारी।

आपको देखकर मार्गकी तीक्ष्ण नागिनें और बिच्छियाँ विष छोड़ देतीहैं तब इन राक्षसोंपर कुछ देर उसका प्रभाव पड़ा तो आश्चर्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्या ? अतः 'सर सकहिं न डारी'। दूसरे, प्रभुका तेज देख ठिठक रहे। तीसरे रूपने मोहित करलिया। अतः 'सर सकहिं न डारी' और 'सचिव बोलि...' (ख)—'धारि'=मारने लूटनेवाली सेना। ऐसी सेनाभी छवि देखकर थकित होगई।

२—'सचिव बोलि बोले खरदूषन...' इति। यह कार्य्य भारी समझ पड़ा अतः मंत्रीकोही बुलाकर भेजा कि यह काम औरसे न होसकेगा, मंत्री जाकर ठीक समझादेगा। पुनः, राजा समझकर प्रतिष्ठापूर्वक मंत्रीको भेजा, यथा—'यह कोउ नृपबालक नर भूषन'। शूर्पणखासे सुनाभी है कि राजकुमार हैं, क्योंकि लक्ष्मणजीने उसे बतायाथा कि 'प्रभु समरथ कोसलपुरराजा'। नाम नहीं सुनाहै, इससे नाम न कहा केवल 'नृपबालक' कहा।

३ (क)—'नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे... सुंदरताई', यथा—

१ 'सुरनर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा अस कहुँ सुनियत नाहीं'॥
२ बालकबृन्द देखि अति सोभा। लगे संग लोचन मन लोभा॥
३ देखि भानुकुलभूषनहि बिसरा सखिनअपान॥
४ गइ सो पंचबटी इक बारा। देखि बिकल भइ जुगलकुमारा॥
५ खगमृग मगन देखि छबि होहीं। लिए चोरि चित राम बटोही॥
६ देखन कहँ प्रभु करुनाकंदा। प्रगट भये सब जलचरबृन्दा॥
तिनके ओट न देखिय बारी। मगन भये हरिरूप निहारी॥

तथा यहाँ राक्षस मोहित होगएहैं।

(ख)—'देखे जिते हते' अर्थात् नाग और असुरको देखा, देवताओंको जीता, और नरों एवं मुनियोंको मारा और खाया। पर इनमेंसे कहींभी ऐसा सौंदर्य्य न देखा।

४—'जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध...' इति। (क)—बहिनकी नाककान काटली, वह कुरूपा होगई, इस अपराधसे वे वधयोग्य हुए, यथा—'कीन्ह मोहबस द्रोह जद्यपि तेहिकर बध उचित' पर अनूप है इससे बध करना उचित नहीं' (ख) पुरुष अनूपा', यथा—'बिष्नु चारिभुज बिधि मुख चारी। बिकट बेष मुख पंच पुरारी अपर देव अस को जग माहीं। यह छबि सखि पटतरिये जाही।'

☞ दीनजी—१ अत्यन्त शोभापर इतना मुग्ध होना कि बहि-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नका अपमान करनेपरभी नष्टकरनेकी इच्छा नहीं रहजाती। 'शोभा-सिंधु खरारी' इत्यादिमें 'खरारी' शब्दका प्रयोग कियाहै स्मरण रहे कि कविने कुछ शब्द मुक़र्रर करलिएहैं, जैसे कि यहाँ 'सोभासिंधु खरारी' में, अत्यन्त सुन्दरता प्रकट करनेकेलिए 'खरारी' शब्द लातेहैं इसका प्रमाण यह प्रसंग है। इसीतरह जहाँ कथाका कोई प्रसंग मोड़तेहैं अर्थात् कुछ कहकर कुछ और कहना चाहतेहैं वहाँ 'संध्या' शब्द का प्रयोग करतेहैं। जैसे, पहले अभिषेकका सामान फिर 'साँझ समय सानंद नृप...'। अर्थात् इससे जनाया कि यहाँसे प्रसंग उलटा ही होगा। इसीतरह 'संध्या भई फिरी दोउ अनी' में रसपरिवर्तन सूचित करनेको दो विपरीत भावोंके जोड़में 'संध्या' शब्दका प्रयोग कियाहै। 'देखी नहिं असि सुन्दरताई'—शत्रु तो सदा निंदाही करताहै, कभी शत्रुकी प्रशंसा नहीं करता। यहाँ शत्रुके मुखसे यह एकबाल होना उनके सौंदर्य्य का परिपूर्णराशि होना प्रमाणित करताहै।

२—शास्त्रकी मर्यादा है कि जितने पदार्थ अद्भुत और स्वयं परिपूर्ण होतेहैं वे ईश्वरकी विभूति समझेजातेहैं—(यहाँ सौंदर्य्य पदार्थ परिपूर्ण है)—और उनका विनाश करना पाप समझा जाताहै इसी विचारसे खरदूषण ने कहा कि 'बध लायक नहिं पुरुष अनूपा'।

देहु * तुरत निज नारि दुराई।
जीअत भवन जाहु द्वौ भाई॥ १८/१२ (६)
मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु।
तासु बचन सुनि आतुर आवहु॥ ,, (७)

अर्थ—"छिपाई हुई अपनी स्त्री हमको तुरत देदो और जीतेजी दोनों भाई घर लौट जाओ।' मेरा यह कथन तुम उनसे जाकर सुनाओ और उनका वचन (उत्तर) सुनकर तुम शीघ्र जाओ।

पु० र० कु० १—'देहु तुरत निज नारि दुराई...' इति। शूर्पनखा ने यह बात बताई है दूसरे से नहीं मालुम हुई—'तेहि पूछा सब कहेसि बुझाई'। 'दुराई' अर्थात् जिसे हमारे डरसे तुमने छिपादीहै। देनेका मन नहीं है अतः कहा कि 'देहु देदो। पूर्व कहा कि वधलायक नहीं

* 'देहि'—(क०)। वंदनपाठकजीकी प्रतिमें 'देहु' के 'हु' पर हरताल लगाकर 'देहि' बनायाहै पर पं० रा० गु० द्वि की छपी गुटकामें 'देहु' है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं, अब कहतेहैं कि दोनों भाई जीवित घर लौटजाओ अर्थात् स्त्री ही लेकर हम तुम्हें छोड़देतेहैं स्त्रीलेलेनेसे वधका दंड होगया, यथा—"संभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू 'सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते'।—(खर्रा—स्त्रीका अपराध किया अतः उसके दंडमें स्त्री लेलेंगे, तुमको छोड़देतेहैं।

२—'तासु बचन सुनि आतुर आवहु' भाव कि देरतक खड़े रहने से अप्रतिष्ठा होतीहै शिला—'जाहु' अर्थात् न चले जाओगे तो हमारे कोई निश्चर भक्षण न करलें, हम तो छोड़ देतेहैं।

दूतन्ह कहा राम सन जाई।
सुनत राम बोले मुसुकाई॥ १८/१२ (८)
हम छत्री मृगया बन करहीं।
तुम्ह से षल मृग षोजत फिरहीं॥ ,, (९)
रिपु बलवंत देषि नहि डरहीं।
एक बार कालहु सन लरहीं॥ ,, (१०)
जद्यपि मनुज दनुजकुल घालक।
मुनिपालक षलसालक बालक॥ ,, (११)

अर्थ—दूतोंने रामचन्द्रजीसे जाकर कहा। सुनतेही रामजी मुस्कुराकर बोले। हम क्षत्रिय हैं, वनमें शिकार करतेहैं, तुम्हारे सरीखे दुष्ट रूपमृगों (पशुओं) को ढूँढ़तेफिरतेहैं। शत्रुको बलवान देखकर हम नहीं डरतेहैं एकबार काल (यदि वह लड़ने आवे तो उस) से भी लड़ें यद्यपि हम मनुष्य हैं पर दैत्यकुलके नाशक मुनियोंके पालक (पालन-पोषणकर्ता, रक्षक) और दुष्टोंके सालक (पीड़ा वा दुःख देनेवाले छेदन करनेवाले बालक हैं।

नोट—१ खर्रा—'दूतन्ह कहा'। यहाँ' दूतोंका जाना कहा और पूर्व कहाहै कि खरदूषणने मंत्रियोंको बुलाकर उनसे कहा कि हमारा संदेसा उनसे कहो। इससे जानपड़ताहै कि खरने मंत्रीसे कहा और मंत्रीने दूतोंको भेजा। २—वंदनपाठकजी—मंत्रियोंने दूतोंको भेजाहो वा कई मंत्री स्वयंही गएहों। एकसे अधिक गए इसीसे 'दूतन्ह' पद दिया।

पु० र०कु०—१'सुनत राम बोले'। इससे जनाया कि दूतोंने आकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यहभी कहा कि हमको आज्ञाहै कि शीघ्र लौटकर आओ, अतः तुरत उत्तर दो। इसीसे तुरत उत्तर दिया। २—'मुसुकाइ' का भाव कि —(क) तुम सीताको माँगतेहो, हम उन्हें इसी कार्य्यकेलिएही तो संग लाए हैं; क्योंकि तुमको निर्मूल करनाहै। अथवा, (ख)—तुम तो हमें जीता छोड़ देनेको कहतेहो पर हम तुमको अब जीता न छोड़ेंगे। वा, (ग) भगिनीके कुरूपकी बात क्या कहतेहो हम तो अब तुम सब काहो सिर काटेंगे। अथवा, (घ) मुस्करानेकी बातें न करके हमें डराना चाहतेहो सो हम डरनेवाले नहीं। यही आगे कहतेहैं—रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं'। अथवा, (ङ) हमको ऐसा निर्बल और अप्रतिष्ठित समझलियाहै कि हम स्त्री देकर चलेजायँगे। छोटा आदमी भी इज्जत लेनेसे मरजाताहै और हम तो क्षत्रिय हैं उसपरभी आपसे बलवान् शत्रु सन्मुख आ उपस्थित हुएहैं तो भी हम न लड़ें यह कैसे संभव है? यथा—'छत्री तन धरि समर सकाना। कुलकलंक तेहि पाँवर जाना। तुम्हारी क्या, हम तो कालभी आजाय तो उससे भी बराबर लड़ेंगे हटेंगे नहीं। 'देव दनुज भूपति भट नाना। सम बल अधिक होउ बलवाना॥ जौ रन हमै प्रचारै कोऊ। लरैं सुखेन काल किन होऊ॥ यह (च) हँसकर जनाया कि बालक समझते हो आगे प्राणोंके लाले पड़ेंगे तब पराक्रम जानपड़ेगा। यहाँ हँसना निरादरसूचक है।

दूतोंने क्या कहा?		क्या उत्तर मिला?
खरदूषणका बल कहा	१	हम छत्री मृगया बन करहीं...लरहीं
आप नरभूषण हैं	२	जद्यपि मनुज दनुजकुल घातक
यह कोउ नृपबालक	३	हम मुनिपालक खलसालक बालक हैं

'जद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा...दोउ भाई' ४ 'जौ न होइ बल घर फिरि जाहू...कदराई।

३—'तुम्ह से खल' अर्थात् जो परस्त्रीकी खोजमें रहतेहैं जैसे तुम और रावण, विभीषण नहीं।-(वै०—खोजत फिरहीं का भाव कि हमें तो ढूँढ़ना पड़ताहै और तुम तो विना परिश्रम आमिले तब तुमको कैसे छोड़ेंगे।) ४—'मुनिपालक खलसालक', यथा—'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे' इति गीतायाम्।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नोट—काष्ठजिह्वास्वामीजी 'दनुजकुलघालक' को खरदूषणका सम्बोधन मानतेहैं अर्थात् हे दनुजकुल के नाशक।' और कहतेहैं कि इससे जनातेहैं कि हमसे वैर करके माल्यवान आदि दनुजकुल भरका नाश करना चाहतेहो। वैजनाथजी अर्थ करतेहैं कि 'बालक परिवार-सहित दुष्टोंके नाशकर्त्ता हैं'।

जौं न होइ बल घर फिरि जाहू।
समर बिमुख मैं हतौं न काहू॥ १८/१२ (१२)
रन चढि करि अकपट चतुराई।
रिपु पर कृपा परम कदराई॥ ,, (१३)
दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ।
सुनि षरदूषन उर अति दहेऊ॥ ,, (१४)

अर्थ—यदि बल न हो तो घर लौट जाओ, लड़ाईमें पीठदिपहुए मुँह फेरेहुएको मैं कभीनहीं मारता। लड़ाईमें चढ़ाई करके कपट, चतुरता और शत्रुपर कृपा करना महान् डरपोकपन है। दूतोंने तुरंत जाकर सब कहा। सुनकर खरदूषणका हृदय अत्यन्त जल उठा।

पु० र० कु०—१ 'जौं न होइ बल...' यह खरदूषणके 'जीअत भवन जाहु दोउ भाई' इन वचनोंका उत्तर है। 'काहू' अर्थात् 'मत्तं प्रमत्तमुनमत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जडम् प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हन्ति धर्मवित्' इति भागवते। अर्थात् मतवाला, सनकी या झक्की और पागल, सोयाहुआ, बच्चा स्त्री, मूर्ख, शरणागत, रथहीन, होगयाहो, डराहुआ ऐसे शत्रुको धर्मवित् नहीं मारते। पु० र० यथा—'नायुधं व्यसन—प्राप्तं नार्त्तं नातिपरिक्षतम्। न भीतं न परावृत्तं सतां धर्म-मनुस्मरम्' इति मनुस्मृतौ अर्थात् शास्त्रहीन आर्त्त, अत्यन्त घायल, डरेहुए, और भागेहुए धर्मज्ञ पुरुष हाथ नहीं चलाते।

२—रन चढि करिअ कपट चतुराई' अर्थात् हमारे प्राण बचानेके बहाने अपने प्राण बचातेहो, अपने प्राणके लाले पड़ेहैं इसीसे हमपर दया जना रहेहो। (ख) 'परम कदराई' का भाव कि चढ़ाई करके कपटचतुराई करना कदराई है और शत्रुपर कृपा करना तो परम कादरता है।

'दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ...'। (ख)—आज्ञा थी कि 'तासु

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बचन सुनि आतुर आवहु'। अतः 'जाइ तुरत...' कहा। (ख) 'उर अति दहेऊ' अर्थात् जलाभुना तो पूर्वसेही था कि जब भगिनीको दशा देखी थी; अब कपटी, कादर बनाया, इससे अब अत्यन्त दाह हुआ। दाह हुआ था इसी का प्रभाव था कि 'कोउ कह जियत धरौ दोउ भाई', 'आइ गये बगमेल धरहु धरहु धावहु सुभट' इत्यादि। इसका प्रमाण, यथा—'उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए विकट रजनीचरा'। तात्पर्य्य कि निर्बल जानकर धर पकड़नेकी इच्छा की थी क्योंकि आगे लिखतेहैं कि 'जानि सबल आराति'।

छंद (हरिगीतिका)

उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा।
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा॥
प्रभु कीन्हि धनुष टंकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।
भए बधिर ब्याकुल जातुधान न ज्ञान तेहि अवँसर रहा॥

तोमर=भालेकी तरहका एक प्रकारका अस्त्र। इसमें लकड़ीके डंडेमें आगेकी ओर लोहेका बड़ा फल लगा रहताथा।=शर्पला, शापला। परशु=एक अस्त्र जिसमें एक डंडेके सिरेपर एक अर्द्धचन्द्राकार लोहेका फल लगारहताहै।=एक प्रकारकी कुल्हाड़ी जो पहले लड़ाई में काम आतीथी, फरसा; भलुवा। 'परिघ'=गँड़ासा लोहाँगी 'शक्ति'=एक प्रकारका प्राचीनकालका शस्त्र है। बरछी एक प्रकार की है जो भालेसे छोटी पर उसी आकारकी होतीहै और फेंककर चलाईजातीहै। 'शूल'=प्राचीनकालका एक अस्त्र है जो प्रायः बरछे के आकारका होताहै।=पट्टिश (शस्त्र या खाँड़ा। इसकी तीन मापें थी—उत्तम ४ हाथ, मध्यम ३॥ हाथ और अधम ३ हाथ लंबा होताथा मुठियाके ऊपर चलानेवालेकी कलाईके बचावके लिए एक जाली बनी होती थी दोनों ओर धार होतीथी और नोक अत्यन्त तीक्ष्ण होती थी। आजकल जिसे पटा कहतेहैं वह केवल लंबाईमें छोटा होताहै) —(प्र०)। 'टंकोर' (टंकार)=वह शब्द जो धनुषकी कसी हुई डोरी पर बाण रखकर खींचनेसे होताहै=धनुषकी कसीहुई प्रतंचा खींच वा तानकर छोड़नेका शब्द। 'भयावह'=भयंकर, डरावना।

अर्थ—हृदय जल उठा तब कहा कि पकड़लो। (सुनकर) निश-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चरोंके विकट योद्धा बाण, धनुष, तोमर शक्ति (सेंग), शूल-कृपाण (द्विधारा खड्ग), परिघ और फरसा धारण किएहुए दौड़पड़े। प्रभुने पहले धनुषका टंकार किया जो बड़ा कठोर और घोर भयंकरथा निश्चर टंकारसे बहिरे और व्याकुल होगए, उससमय उनको कुछ होश न रहगया। *

पु० र० कु०—१ यथा—प्रथम कीन्ह प्रभु धनुष टँकोरा। रिपुबल बधिर भयउ सुनि सोरा'। जिन्होंने स्वप्नमेंभी रणमें पीठ न दीथी वे भी मुड़ चले टंकार सुनकर व्याकुल होगए। (ख) कठोर है अतः बहिरे होगए, कठोर कानों केलिए। घोर भयकर्त्ता मनके लिए अतः 'भये व्याकुल'। (ग) न ज्ञान तेहि अवसर रहा अर्थात् कुछ देर बाद होश आया। जब टंकारका शब्द, जो कानोंमें गूँजरहाथा, जातारहा, यथा—'सुरनर असुर मुनि कर कान दीन्हे सकल बिकल बिचारहीं। कोदंड खडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं'।

पं० रा० व० श० (व्यास)—'प्रभु कीन्ह धनुष टँकोर प्रथम'। यहाँ 'प्रथम' का भाव यह भी है कि निश्चरोंसे युद्धमें आजही प्रथम २ टंकार शब्द कियाहै। पूर्व मारीच सुबाहु के युद्धमें टंकारकी आवश्यकता न पड़ीथी।

सावधान होइ धाए जानि सबल आराति।
लागे बरषन रामपर अस्त्रशस्त्र बहु भाँति॥
तिनके आयुध तिल सम करि काटे रघुबीर।
तानि सरासन श्रवन लगि पुनि छाँडे निज तीर॥ १९/१३

'आराति'=शत्रु—'पुनि उठि झपटहिं सुरआराती। टरइ न कीस चरन एहि भाँती', सुधि न तोहि शिरपर आराती। 'अस्त्र शस्त्र'—अस्त्र वह हथियार हैं जो दूरसे शत्रुपर फेंके या चलाये जातेहैं जैसे बाण, शक्ति, गोला इत्यादि और शस्त्र वह हैं जो फेंककर नहीं वरन् पाससे जिनसे आघात कियाजाताहै; जैसे खड्ग, तलवार आदि।

अर्थ—शत्रुको बली जानकर सावधान होकर धावा किया। बहुत तरहके अस्त्रशस्त्र रामचन्द्रजीपर बरसनेलगे। रघुवीरने उनके हथियार

* 'ततो रामेण क्रुद्धेन धनुष्टंकारकं कृतम्। धनुष्टंकार शब्देन राक्षसा बधिरीकृताः। बभूवुर्ज्ञानशून्याश्च दुर्दैवं मेनिरे निजम्'—(वा०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

काटकर तिलके समान टुकड़े टुकड़े करडाला। फिर धनुषको कान-पर्य्यन्त खींचकर अपने तीर चलाए।

पु० र० कु०—१ 'सावधान होइ धाए जानि...।' पहले असावधानसे धावा करबैठेथे यह जानकर कि निर्बल हैं। जब टंकारमात्रका यह प्रभाव देखा तब सावधान होकर चढ़ाईकी। २—'लागे बरषन रामपर अस्त्र शस्त्र...' ऐसाही वाल्मीकीयमेंभी कहाहै कि जैसे पहाड़पर मेघोंकी वर्षा हो यथा—'ते रामे शरवर्षाणि व्यसृजन्रक्षसां गणाः ॥१०॥ शैलेन्द्रमिव धाराभिर्वर्षमाणा महाघनाः।'—(स० २५)। वर्षासे पहाड़का नाश नहीं वैसेही वे प्रभुका कुछ न करसके।

३—'तिन्हके आयुध तिलसम...रघुबीर...तीर'। (क) राक्षसोंके आयुध काटनेसे 'रघुवीर' कहा। लोहेकारंग काला है अतः काटकर तिलसमान करना कहा, तिल काला और छोटा होताहै। (ख) 'पुनि छाँड़े निजतीर' अर्थात् पहले तीर छोड़कर उनके आयुध काटे, अब तीर छोड़कर उनको काटेंगे।

(तोमर छन्द) ❀

तब चले बान कराल, फुंकरत जनु बहु ब्याल।
कोपेउ समर श्रीराम, चले बिसिष निसित निकाम ॥१॥
अवलोकि षरतर तीर, मुरि चले निसिचर बीर।
भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ, जो भागि रनते जाइ ॥२॥
तेहि वधब हम निज पानि, फिरे मरन मन महुँ ठानि।
आयुध अनेक प्रकार, सनमुष ते करहिं प्रहार ॥३॥

'निसित' (निशित) लोहा,=चोखा, तेज, तीक्ष्ण, सानपर चढ़ेहुए। 'निकाम'=अत्यन्त, बहुत यथा—'निकाम श्याम सुन्दरं'। फुंकत'=फूँ फूँ शब्द करते जैसे सर्प बैल आदिके मुँहसे वा नथुनेसे बलपूर्वक वायु निकलनेपर शब्द होताहै। बाणका अग्रभाग सुवर्णमयी सर्पकी जिह्वासम लपलपाता दिखताहोगा।

❀'तोमर' छन्दके चारों चरणोंमें १२-१२ मात्राएँ होतीहैं और अन्तमें गुरु लघु वर्ण रहताहै। इसकांडमें छः छन्द और एक अर्धाली इसी एक जगह आए हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—तब भयंकर बाण चले मानों बहुतसे सर्प फुंकारते हुए जा रहेहैं। श्रीरामचन्द्रजी संग्राममें कुपित हुए।† अत्यन्त तीक्ष्ण पैने बाण चलानेलगे। बाणको बहुतही तीक्ष्ण देखकर वीर निश्चर मुड़चले। तीनों भाई (खर, दूषण और त्रिशिरा) बड़े क्रुद्ध हुए कि जो रणसे भागकर जायगा, उसे हम अपने हाथों वध करेंगे। तब वे मनमें मरना निश्चय करके लौटपड़े और सामने आकर अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्र चलानेलगे।

पु० र० कु—'तब चले बान कराल फुंकरत जनु बहु व्याल' इति। (क) राक्षसोंका अस्त्रशस्त्र बरसाना कहाथा और प्रभुके बाणोंको फुंकारतेहुए सर्पसे उपमा दी। इस भेदसे जनाया कि वर्षासे पर्वतका नाश नहीं और सर्पसे मनुष्योंका मरण होजाताहै, वैसेही उनके आयुध निष्फल हुए और प्रभुके आयुध उनका प्राणही लेलेंगे। सर्पके दृष्टान्त से उनका नाश जनाया। यथा—'राम बान अहिगन सरिस निकर निसाचर भेक। जब लगि ग्रसत न००'। फुंकरत' से सक्रोध और विषैले जनाया। (ख)—'तब चले बान' और 'चले बिसिख निसित' में बाणोंका चलाना भर कहा तीरका लगना न कहा। इससे जनाया कि इन्हें देखतेही वीर मुड़ चले, पीठ फेरनेपर बाणोंने उनका पीछा न किया क्योंकि प्रभु रणसे विमुखको नहीं मारते। प्रभुके वचनका चरितार्थ यहाँ है।—(खर्रा)।

[नोट—समरमें कोपकी शोभा है अतः 'श्रीराम' कहा। वा, रामजीकी विजयश्री इस समरमें होगी, यह जनाया। वा, श्रीके संबंधसे कोप हुआ। नहीं तो आप तो राम हैं आपको कोप कहाँ—(वंदन-पाठकजी)। २—सिसुपनते पितु मातु बंधु गुर सेवक सचिव सखाऊ। कहत राम बिधु बदन रिसौंहैं सपनेहु लखेउ न काऊ'

† कोपे, यथा (वा०स०)—'क्रोधमाहारयत्तीव्रं वधार्थं सर्वरक्षसाम् दुष्प्रेक्ष्यश्चाभवत्क्रुद्धो युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥३४॥ तं दृष्ट्वा तेजसाविष्टं प्राव्यथन्वनदेवता। तस्यरुष्टस्य रूपं तु रामस्य ददृशे तदा। दक्षस्येव क्रतुं हन्तु मुद्यतस्य पिनाकिनः ॥ ३५ ॥' अर्थात् सब राक्षसोंका वध करनेके लिये उन्होंने बड़ा क्रोध किया। प्रलयाग्निके समान वे दुष्प्रेक्ष्य होगए। उनके तेजको देखकर वनदेवता घबड़ागए। उनका क्रोधसे भरा रूप ऐसा दिखताथा जैसे दक्षके यज्ञके नाश के लिए महादेवजीका रूप था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(विनय)। यह उनका शील स्वभाव है पर नरनाट्य है और कोप रणकी शोभाहै अतः कोपे।)

२—'अवलोकि खरतर तीर मुरि चले निसिचर बीर'। मुड़ चले, पीछे लौटे, पीठ दी, इससे बाणोंकी तीक्ष्णता जनाई। 'वीर निश्चरों को देनेसे रघुवीरकी बड़ाई सूचित की, वे वीर न होते तो इनको यश न होता, यथा—'नहिं गजारि जस बधे सृगाला'—(लं० § २९)।

३—'भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ...' इति।—तीनों भाइयोंका क्रुद्ध होना कहकर जनाया कि ये तीन बाकी रहे, ये नहीं मुड़े। पुनः, यह कि ये तीनों मालिक हैं तीनों तीन दिशाएँ घेरेहैं, सेनाको घेरेहैं तीन तरफ़से और चौथी तरफ़ लड़ाई होरही है। भगतीहुई सेनासे बोले कि शत्रुसे बचोगे तो हम अपने हाथसे मारेंगे हमसे बचकर कहाँ जा सकोगे। यह सुनकर 'फिरे मरन मन महुँ ठानि'। भाव कि जीतने की आशा कौन कहे यहाँ तो अब जीवनकी आशा जातीरही।

४—'सनमुख ते करहिं प्रहार'। भाव कि मरना है, तो वीरोंकी सी मृत्यु क्यों न लें। यथा 'सनमुख मरन बीर की सोभा'।

रिपु परम कोपे जानि, प्रभु धनुष सर संधानि ॥
छाँडे बिपुल नाराच, लगे कटन बिकट पिसाच ॥४॥
उर सीस भुज कर चरन, जहँ तहँ लगे महि परन।
चिक्करत लागत बान, धर परत कुधर समान ॥५॥
भट कटत तन सत खंड, पुनि उठत करि पाषंड।
नभ उडत बहु भुज मुंड, बिनु मौलि धावत रुंड ॥६॥
षग कंक काक सृगाल, कटकटहिं कठिन कराल ॥

शब्दार्थ—चिक्करना=चिंघाड़ना जैसे हाथी चिल्लातेहैं, चीखमारना। 'कुधर'=भू+धर=पर्वत।

अर्थ—शत्रु को परमकुपित जानकर प्रभुने धनुषपर बाणका अनुसंधान करके (चढ़ाकर) बहुतसे नाराच नामके बाण छोड़े, विकट राक्षस कटनेलगे। छाती, सिर, भुजा, हाथ, पैर जहाँ तहाँ पृथ्वीपर कटकर पड़नेलगे। बाण लगनेपर चिंघाड़ते हैं, धड़ (सिररहित शरीर) पर्वतके समान गिररहेहैं। योद्धा कटकर सौ सौ टुकड़े

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होजातेहैं, फिर माया करके उठपड़तेहैं। आकाशमें बहुतसे भुजाएँ और सिर उड़तेहैं, बिना सिरके धड़ दौड़रहेहैं। पक्षी, चील, कौए, गीदड़, कठिन भयङ्कर कटकट्ट शब्द करतेहैं।

पु० र० कु० १—'रिपु परम कोपे जानि' इति। वीरोंको कोप तो प्रथमसेही था अब धिक्कारफटकार सुनकर परम कोप हुआ। पुनः, प्राणोंपर खेलनेवालेका कोप बहुत अधिक होहीजाताहै।

२—'प्रभु धनुष सर संधानि। छाँडे बिपुल नाराच' इति। (क)—प्रथम कहआए कि 'तानि सरासन श्रवन लगि पुनि छाँडे निज तीर' और अब दुबारा लिखा 'छाँडे बिपुल नाराच'। भाव कि प्रथम तीर छोड़े तब वीर भाग चले, भागनेपर बाण चलाना बंद करदिया; क्योंकि कहचुकेहैं कि 'समर बिमुख मैं हतौं न काहू'—इस अपने पूर्व वाक्यको यहाँ चरितार्थ कर दिखाया। जब वे फिर सम्मुख आए, तब पुनः बाण छोड़े।

(ख) अब बाणोंकी दूसरी किस्म है। नाराच तीर लोहेका होताहै इसमें पाँच पंख लगे रहतेहैं और शरमें चार पंख होतेहैं। नाराचका चलाना बहुत कठिन है।

३—'लगे कटन बिकट पिसाच...' इति। (क)—अब कटनेका ब्योरा देतेहैं। उर, शीश, भुज, कर, चरण कटकटकर भूमिपर पड़ने लगे। जब उर कटा तब बाण लगतेही चीखते चिंघाड़तेहैं और सिर कटा तब धड़ पृथ्वीपर पर्वतसरीखा गिरपड़ता है। जिनके उर शीश आदि पृथ्वीमें गिरे उनकेही धड़ पृथ्वीमें गिरे औरों के नहीं। यह प्रथम प्रकार हुआ।—(१)। 'भट कटत तन सतखंड। पुनि उठत करि पाखण्ड...' अर्थात् ये ऐसे मायावी हैं कि इनके तनके सौसौ टुकड़े होजातेहैं तोभी ये समूचे उठखड़ेहोतेहैं मानों शरीर कटाही न था। यही माया है। पाखण्ड=माया, यथा—'जब कीन्ह तेहि पाखण्ड भे प्रगट जंतु प्रचंड' यह दूसरी प्रकारके कहे।—(२)। 'नभ उड़त बहु भुज मुन्ड बिनु मौलि धावत रुंड' ये तीसरी प्रकारके हैं। जिनके भुज सिर उर आदि भी कटकर पृथ्वीपर गिरतेनहीं, आकाशमें ही उड़ने लगतेहैं उनके धड़ भी पृथ्वीपर नहीं गिरते आकाशमें ही उड़ते रहे—(३)। प्रथम पाँच टुकड़े होते थे—उर, सीस, भुज, कर, चरण। और जब बाणोंकी तीव्र धारा चली तब सौसौ टुकड़े हुए।—(४)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(ख)—'खग कंक काक श्रृगाल...' ये प्रथम प्रकारवाले राक्षसोंके खानेको आये। ये दूसरीप्रकारके वीरोंको नहीं खासकते और न तीसरी प्रकारके वीरोंको ये खासके।

छंद (हरिगीतिका)

कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच षप्पर संचहीं।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नंचहीं॥
रघुबीर बान प्रचंड षंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धर धरु धरु करहिं भयकर गिरा॥

अर्थ—गीदड़ कटकट करतेहैं, भूतप्रेत पिशाच खपड़ेमें रक्त-माँस जमा कररहेहैं। बेताल वीरोंकी खोपड़ियोंसे ताल बजातेहैं और योगिनियाँ नाचरहीहैं *। रघुवीरके प्रचण्ड बाण योधाओंके कलेजे, भुजाएँ और सिर टुकड़े-टुकड़े करतेहैं। (वे टुकड़े) जहाँ तहाँ गिरतेहैं, फिर वे निश्चर जी उठतेहैं और लड़तेहैं और धर पकड़ो, धरो, धरो ऐसा भयंकर शब्द करतेहैं।

पु० र० कु०—१ 'कटकटहिं जंबुक भूतप्रेत पिसाच...' इति।—जैसे 'खग कंक काक श्रृगाल' उधर मध्य संग्राममें आए वैसेही जंबू भूतप्रेत आदि भी मध्य संग्राममें वर्णनकिएगए। ६४ योगिनियोंका नाच होरहाहै।

२—'रघुबीर बान प्रचंड...' (क)—भगवान्‌के कोपसे बाणभी कोपको प्राप्त हैं।

(ख)—पूर्व जो प्रथम प्रकार कहा उनमें उनका उठना नहीं कहा गया और यहाँ उनका (सिर, भुज, उर, कर, चरणका) उठना कहतेहैं। सभी उठपड़तेहैं तो गृद्ध आदि खाते किसको हैं? उत्तर—जो अंग कटताहै वह पड़ारहताहै, दूसरा तैयारहोजाताहै, जैसे रावण के सिर बाहु और महिषासुरके सिर।

* १ 'बेताल'=पुराणोंके अनुसार भूतोंकी एक प्रकारकी योनि है। इस योनिके भूत साधारण भूतोंके प्रधान मानेजातेहैं और प्रायः श्मशानोंमें रहतेथे।

२—'योगिनी'=रणपिशाचिनी। आवर्ण देवता—ये असंख्यहैं; पर इनमेंसे ६४ मुख्य हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३—'धरु धरु धरु करहिं भयकर गिरा' इति। (क) राक्षसोंके हृदयमें जो बात प्रथमसेही गड़ीहुईहै वही कटने पर भी उनके मुखसे निकलती जारहीहै—(१) 'कोउ कह जियत धरहु दोउ भाई', (२) 'आइ गये बगमेल धरहु...', (३) 'उर दहेउ कहेउ धरहु'। तथा यहाँ (४) धरुधरुधरु'। (ख)--'करहि भयकर गिरा' जिसमें रामजी डर-जायँ, उनके हृदयमें भयसमाजाय।

अंतावरी गहि उडत गीध पिसाच कर गहि धावहीं।
संग्राम-पुर-वासी मनहु बहु बाल गुडी उडावहीं।

'अंतावरी'=अँतड़ी आतोंका समूह।

अर्थ—गृद्ध अंतड़ियाँ पकड़कर उड़तेहैं और (उसका नीचेका एक छोर) मानों संग्रामरूपी नगरके रहनेवाले बहुतसे बालक पतंग उड़ारहे हैं।

नोट—'कर गहि धावहीं'—यह उनका कौतुक है। २—गृद्ध अंतड़ी लिए आकाशमें पतंगसे जानपड़तेहैं अंतड़ीका छोर पकड़े पिशाच रणभूमिमें खींचतेहैं। यह मानों डोर है। पिशाच पुरवासी बालकहैं।

३☞ दीनजी कहतेथे कि इस प्रसंगमें तुलसीदासजी अपनी कवित्वशक्तिका प्रकाशन बहुत अच्छी तरहसे कियाहै। कविका कर्त्तव्य है कि वह असुन्दर वस्तुसेभी सुन्दरता निकालले। यहाँ तुलसीदास जीने विभत्ससूचक दृश्यसे माधुर्य्य निकालाहै और अन्तावरीको लेकर गीधका उड़ना एक वीभत्स दृश्य है, परन्तु इस दृश्यकीभी समता बालगुड़ी उड़ावन-रूपी माधुर्य्यमूलक घटनासे कीहै जिससे उनमें भी माधुर्य्य आगयाहै। इसी प्रकार अयोध्या कांडमें महाराज दशरथ की चिताको उपमा सुरापुर सोपान'से देकर निर्वेदमेंभी माधुर्य्य निकालाहै। और लंकाकाण्डमें रामचन्द्रजीके श्यामशरीरपर रक्तविंदुओंको देखकर (जो विभत्ससूचकहै) तमालपर रायमुनियोंका बिठालना माधुर्य्यरूपमें होगयाहै। ये बातें प्रकट करतीहैं कि तुलसीदासजीमें कविकर्मकी बड़ी सूक्ष्म कुशलता थी।

मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे।
अवलोकि निज दल बिकल भट तिसिरादि खरदूषन फिरे॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारहीं।
करि कोप श्री रघुबीर पर अगनित निसाचर डारहीं॥
प्रभु निमिष महँ रिपुसर निवारि प्रचारि डारे सायका।
दस दस बिसिष उर माँझ मारे सकल निसिचरनायका॥

शब्दार्थ—'पछाड़ना'=कुश्ती या लड़ाईमें पटकना, गिराना। यहाँ अर्थ है। बाणोंसे मूर्छित हो गिरेहुए। 'कहँरत'=कराहते वा पीड़ाके मारे आह आह करतेहैं। कृपाण=दुधारा खड्ग, सैफ। निवारि=रोककर, कटकर, नष्ट करके।

अर्थ—मारे गए, पछाड़ेगए, हृदय फाड़डालेगए हुए बहुतसे वीर पड़े कराहरहेहैं। अपनेदलको व्याकुल देख त्रिसिरा आदि योद्धा और खरदूषणने इधर मुँह फेरा (आमुके)। अगणित निश्चर कोप करके एकबार ही बाण, शक्ति, तोमर, परशु, शूल और कृपाण श्रीरघुबीरपर डालरहेहैं। प्रभुने पलभरमें शत्रुके बाणोंको निवारणकर ललकारके अपने बाण छोड़े। समस्त निश्चरनायकों (सेनापतियों) के हृदयमें दसदस बाण मारे।

पु० र० कु०—१'तिसिरादि खरदूषन फिरे'। (क) प्रायः सर्वत्र खरदूषण ही आदिमें लिखेगएहैं पर यहाँ त्रिशिराको आदिमें रखाहै। यहभी सहेतुक है। सब कामोंमें बड़ा भाई ही आगे रहताहै पर संकट पड़नेपर छोटेका धर्म है कि वह आगे आवे, बड़ेको दुःख न होने दे। इस कारण त्रिसिराको आदिमें रखा। (ख)—'खरदूषन पहँ गै बिलपाता' सुनि खरदूषन उर अति दहेउ' यहाँ तक 'मजीमामला' में वे आगे रहे। इज्जत आब्रूके काममें तीनोंको बराबर कहतेहैं, यथा—'भये क्रुद्ध तीनिउ भाइ और, संग्राममें त्रिशिराको आगे कहतेहैं—'त्रिसिरादि खरदूषन फिरे'। यथा—'कौसलेससुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा'।

२—'एकहि बारहीं। करि कोप श्रीरघुबीरपर अगनित निसाचर डारहीं' इति। (क)—एकबारगी बहुतसे अस्त्रशस्त्र सब मिलकर डालतेहैं जिसमें रोकते न बने' क्योंकि देखलिया कि ये आयुध रोकने में बड़े प्रवीण हैं, यथा—'तिन्हके आयुध तिल सम००'। पर यहाँ भी उनको धोखाही हुआ, उनका अनुमान ठीक न निकला। क्योंकि 'प्रभु

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निमिष महँ रिपु सर निवारि०'। (ख)—यहाँ 'श्रीरघुवीर पद दियाहै 'श्री' पद देकर यह जनाया। कि विजयश्री आपको प्राप्त है अथवा, जनाया कि ये श्रीमान् वीर हैं कि निमिषमात्रमें समस्त आयुधोंको काटडाला।

३—'दसदस विसिष उर माँझ मारे सकल निसिचरनायका' इति दशदश वाण मारनेका भाव—(१)—दशवीं दशा (मृत्यु) को प्राप्त करदिया। वा, (२) ये वीर रावणसमान बलीहैं। वहाँ 'दस दस बान भाल दस मारे, अतः यहाँभी दसदस मारे। वा, (३) तीस तीरसे रावणको अनेक बार मारा अतएव यहाँ तीनोंको दसदस वाण एक साथ मारे इस प्रकार एक वारमें ३० वाण हुए। ऐसा करके 'खरदूषन सो सम बलवंता' इसे चरितार्थ किया।

महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवधधनी॥
सुर मुनि सभय प्रभु देषि मायानाथ अति कौतुक कर्‍यौ।
देषहिं परस्पर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मर्‍यौ॥

अर्थ—योद्धा पृथ्वीपर गिरतेपड़तेहैं, फिर उठकर भिड़तेहैं, मरते नहीं, अत्यन्त घनी माया करतेहैं। प्रेत तो १४ हज़ार हैं और अवधके राजा रामजी अकेले—यह देखकर देवता डररहेहैं। प्रभुने सुर और मुनियोंको भयभीत देख उन मायापति ने अत्यन्त खेल किया—सब आपसमें एक दूसरेको रामरूप देख आपसमेंही सब शत्रुदल संग्राम करके लड़मरा।

पु० र० कु०—१ 'महि परत उठि... करत माया अतिघनी' इति। माया अति घनी यह कि १४ हज़ार सबके सब फिर फिर जी उठतेहैं। इनको शिवजीका वरदान था कि तुम किसीके मारे न मरोगे आपसमें लड़ोगे तभी मरोगे।

२—'सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि...' (क) यहाँ राक्षसोंको प्रेत कहा क्योंकि ये मरमर के फिर जी उठेहैं इसीसे जितनेके तितनेही बने रहतेहैं। (ख)—अवधधनी' इति। भाव कि इस समय देवताओंकी दृष्टि माधुर्य्यरूपमें है ऐश्वर्य्यपर नहीं है।

३—'सुर मुनि सभय देखि मायानाथ अति कौतुक कर्‍यो' (क)—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मायानाथका भाव कि राक्षसोंने अति घनी माया की और ये माया-पति हैं तथापि इन्होंने माया न की, इन्होंने एक कौतुक मात्र किया। पुनः, भाव कि वे कितनी माया करेंगे, यहाँ माया न लगेगी क्योंकि ये तो मायानाथ हैं। मायाकरना छल है, रामजी छली नहीं हैं, ये शुद्ध संग्राम कररहेहैं, ये अधर्मयुद्ध नहीं करते।

(ख)—'सुरमुनि सभय' का भाव। यहाँ पंचवटीके संग्राममें नर-नहीं हैं, सुरमुनि देखतेहैं। राक्षसोंके भयसे यहाँ साधारण मनुष्य न थे।

रा० प०—यह अद्भुत रस है। तीनोंकालमें आश्चर्य्य उत्पन्न करनेवाली बात है कि सब परस्पर एक दूसरेको राम ही देखतेथे। प्र०—कुछ लोगोंका कहनाहै कि इन सब निश्चरोंको शिवजीका वर-दान था कि ये किसीसे न मरेंगे, आपसमेंही लड़कर मृत्यु होगी अन्यथा नहीं। अतएव श्रीरघुनाथजीने मोहनास्त्र चलाया जिसका फल यह हुआ कि सब एकदूसरेको रामही दिखतेथे। इस भावमें 'मारे पछारे बिदारे' में शंकाही नहीं रहजाती। और अकंपन संग्राम-भूमिसे भागकर जब रावणके पास गया तब उसके भी वचनोंसे यही बात सिद्ध होतीहै, यथा (सर्ग ३१)—'सर्पाः पञ्चानना भूत्वा भक्ष-यन्तिस्म राक्षसान्। येनश्च गच्छन्ति राक्षसा भयकर्षिताः ॥ तेन तेनस्म पश्यन्ति राममेवाग्रतः स्थितम्। इत्थं विनाशितं तेन जन-स्थानमं तवानघ ॥'

राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्वान।
करि उपाय रिपु मारे छन महुँ कृपानिधान॥
हरषित बरषहिं सुमन सुर बाजहिं गगन निसान।
अस्तुति करि करि सब चले सोभित बिबिध बिमान॥ ३०/१४

अर्थ—सब रामराम कहतेहैं (राम है इसे मारो) शरीर छोड़तेहैं और मोक्षपद पातेहैं। दयासागर रामजीने ऐसा उपाय करके क्षण-भरमें शत्रुको मारडाला। देवता प्रसन्न होकर फूल बरसातेहैं और आकाशमें नगाड़े बजरहेहैं, सब देवता स्तुति करकरके अनेक प्रकारके विमानोंमें सुशोभित चलदिए।

रा० र० कु०—१ 'रामराम कहि तन तजहिं' इति। (क) यहाँ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नामके माहात्म्यसे मुक्ति होना कहा। ये रावणसे नहीं मरे, परस्पर युद्ध करके मरे इससे मुक्ति न होसकतीथी पर नामके प्रतापसे वे मुक्त होगए। लंकामें बाणका माहात्म्य कहा क्योंकि बाणों द्वारा मुक्ति होगी, यथा—'रघुबीर सर तीरथ सरीन्ह त्यागि गति पैहहिं सही'—(सुं०)।

(ख)—'कृपानिधान' पद दिया क्योंकि देवताओं, मुनियोंको, अभय किया और राक्षसोंको मुक्ति दी। निश्चरोंको क्लेश न भोगना पड़ा, क्षणमात्रमें कौतुक करके निर्वाण पद दिया—यह कृपा है।

२—'हरषित बरषहिं सुमन सुर'—पूर्णकाम हुआ अतः हर्षित बर्षहिं कहा, यथा—'भरत-राम संबाद सुनि सकल सुमंगल मूल। सुर स्वारथी सराहि कुल हरषित बरषहिं फूल' पूर्ण कार्य्य न होता तो मलिन हृदयसे बरसाते' यथा—'भरतहि प्रसंसत बिबुध बरषत सुमन मानस मलिन से'।

३—'अस्तुति करि करि सब चले सोभित बिबिध बिमान' इति। (क)—'करि करि' से प्रत्येकका पृथक् पृथक् स्तुति करना जनाया। (ख)—'सोभित बिबिध बिमान'। देवताओंके इस घोर निश्चरयुद्ध और उनके नाशसे आनन्द हुआ अतः शोभित है, यथा—बर्षा घोर निसाचर रारी। सुरकुल सालि सुमंगलकारी'। पुनः, भाव कि पहले भुज, सिर,मुण्डसे आकाश अशोभित था अब विमानोंसे सुशोभित है।

नोट—वाल्मीकिजी लिखतेहैं कि देवता और चारण एकत्र होकर फूलबरसाते दुंदुभी बजाते स्तुतिकरतेहैं कि तीन मुहूर्त्तमें इन्होंने कामरूप १४ सहस्र निश्चरोंको युद्धमें मारा; यह बड़ा अद्भुत कर्म है, अद्भुत पराक्रम है, दृढ़ता विष्णुके समान है। स्तुति करके गए तब ब्रह्मर्षि, राजर्षि और अगस्त्यजीने पूजा की और कहा कि इन्हीं पापियोंके वधके लिए महर्षि आकरके आपको यहाँ लाए और इसीलिए इन्द्र शरभंगजीके पास आएथे। आपने हम सबका वह काम किया, अब महर्षि धर्मानुष्ठान करेंगे। *

दीनजी—अनखसे रामनाम के उच्चारणका उदाहरण यह प्रसंग है।

* 'एतस्मिन्नन्तरे देवाश्चारणैः सह संगताः। दुन्दुभींश्चाभिनिघ्नन्तः पुष्पवर्षं समन्ततः॥ रामस्योपरि संहृष्टा ववर्षुर्विस्मितास्तदा। अर्धाधिकमुहूर्तेन रामेण निशितैः शरैः॥ चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां कामरूपिणाम्। खरदूषणमुख्यानां निहतानि महामृधे॥ अहोवत महत्कर्म रामस्य विदितात्मनः। अहो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जब रघुनाथ समर रिपु जीते।
सुर नर मुनि सबके भय बीते॥ § २०/१४ (१)
तब लछिमन सीतहि लै आए।
प्रभुपद परत हरषि उर लाए॥ ,, (२)
सीता चितव स्याम मृदुगाता।
परम प्रेम लोचन न अघाता॥ ,, (३)

अर्थ—जब रघुनाथजी संग्राममें शत्रुको जीते सुरनरमुनि सबके भय दूर हुए। तब लक्ष्मणजी सीताजीको लेआए। चरणोंमें पड़तेही प्रभुने उनको हर्षपूर्वक हृदयसे लगालिया। सीताजी परमप्रेमसे श्यामल कोमल शरीरका दर्शन कररहीहैं, नेत्र अघाते (तृप्त) नहीं होते।

पु० र० कु०—१ 'जब रघुनाथ...भय बीते' अर्थात् समरके समय भी उनको बड़ा भयरहा, यथा—'सुर मुनि सभय प्रभु देखि००' काण्ड के प्रारंभमें कहाथा 'अब प्रभुचरित सुनहु अतिपावन। करत जे बन सुरनर मुनि भावन' और 'चले वनहिं सुरनर मुनि ईसा वहीं सुर-नरमुनि पद यहाँ देकर यह बात पुष्ट करतेहैं कि इन्हींकी सहायताके लिये चलेथे और सहायता की।

२—(क)—'प्रभुपद परत'—सेवक भावसे (ख)—'सीता चितव स्याम मृदु गाता'—स्त्रीभावसे, यथा—'नारि बिलोकहिं हरषि हिय निज २ रुचि अनुरूप। जनु सोहत शृङ्गार धरि मूरति परम अनूप'। श्यामो भवति शृङ्गारः॥ (ग)—परम प्रेम लोचन न अघाता इति। प्रेम तो सदाही रहताहै पर इस समय घोर संग्राममें विजयकी प्राप्ति हुए रामजीको देखरही हैं अतः परम प्रेम'।*

वीर्यमहो दार्ढ्यं विष्णोरिव हि दृश्यते॥ इत्येवमुक्त्वा ते सर्वे ययुर्देवा यथागतम्। ततो राजर्षयः सर्वे संगताः परमर्षयः॥ सभाज्य मुदिता रामं सागस्त्या इदमब्रुवन्। एतदर्थं महातेजा महेन्द्रः पाकशासनः॥ शरभङ्गाश्रमं पुण्यमाजगाम पुरंदरः। आनीतस्त्वमिमं देशमुपायेन महर्षिभिः॥ एषा वधार्थं शत्रूणां रक्षसां पापकर्मणाम्। तदिदं नः कृतं कार्य्यं त्वया दशरथात्मज॥' स्वधर्मं प्रचरिष्यन्ति दण्डकेषु महर्षयः।—(वा० ३०)

* 'बभूव हृष्टा वैदेही भर्तारं परिषस्वजे। मुदा परमया युक्ता दृष्ट्वा रक्षोगणान्हतान्।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३—खरदूषण और रावणका समान युद्ध कहकर 'खरदूषन मोहि सम बलवंता' रावणके इस विचारको चरितार्थ कियाहै।

धाए निसिचर निकर बरूथा
जनु सपच्छ कज्जलगिरिजूथा
नाना बाहन नाना कारा
नानायुध धर घोर अपारा
असगुन अमित होइँ भयकारी
गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं
धूरि पूरि नभमंडल रहा
को ंड कठिन चढाइ जटजूट बाँधत सोह।क्यों
कटि कसि निषंग बिसाल भुजगहि चाप बिसिष सुधारिकै,
डर दहेउ कहेउ कि धरहु धावहु बिकट भट रजनीचरा
आइगए बगमेल
प्रभु कीन्ह धनुष टँकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा। भये बधिर ब्याकुल जातुधान
लागे बरषन राम पर अस्त्रशस्त्रबहु भाँति तिन्हके आयुध तिलस करिको रघुबीर॥
तानि सरासन श्रवन लगि पुनि छाँड़े निज तीर तब चले बान कराल फुँकरत जनु बहु ब्याल

१ चले बीर सब अतुलित बली
जनु कज्जल कै आँधी चली
२ चलेउ निसाचर कटक अपारा
चतुरंगिनी अनी बहु धारा
३ असगुन अमित होइ तेहि काला
गनहि न भुजबल गर्व बिसाला
केहरिनाद बीर सब करहीं
५ उठी रेनु रबि गयउ छिपाई
६ जटाजूट बाँधे दृढ माथे
७ कटितट परिकर कस्यो निषंककर कोदंडकठिन सारंग
कहहु दसानन सुनहु सुभट्टा
महहु भालु कपिन्हके ठट्टा
ऐही बी निसाचर अनी
कसमसात आई अति बनी
प्रथम कीन्ह प्रभु धनुषटकोरा
रिपुदल बधिर भयेउ सुनिसोर
कोटिन आयुध रावन डारे
तिल प्रमान करि काटि निवारे।
१२ तानेउ चाप श्रवन लगि छाड़ेउ बिसिख कराल
१३ चले बान सपच्छ जनु उरगा

रामं चैवाव्ययं दृष्ट्वा तुतोष जनकात्मजा॥
ततस्तु तराक्षससङ्घमर्दनम् सपुञ्ज्यमानं मुदितैर्महात्मभिः।
पुनः परिष्वज्य मुदान्वितानना बभूव हृष्टा जनकात्मजा तदा॥—(सर्ग ३०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कोपे समर श्रीराम चले बिसिष १४ रघुपति कोपि बान झरि लाई
निसित निकाम
अवलोकि खर—१५ चले निसाचर निकर पराई

भये क्रुद्ध—१६ { निजदल बिचल सुनी तेहि काना। फेरि सुभट लंकेस रिसाना
जो रन बिमुख फिरा मैं जाना सो मैं हतब कराल कृपाना।

फिरे मरन मन महँ ठानि १७ उग्रबचन सुनि सकल डेराने।
चले क्रोधकरि सुभट लजाने

सनमुख ते करहिं प्रहार १८ सनमुख मरन बीर की सोभा।
तब तिन तजा प्रानकर लोभा

छाड़े बिपुल नाराच लगे कटन १९ जहँ तहँ चले बिपुल नाराचा,
बिकट पिसाच लगे कटन भट बिकट पिसाचा
उर सीस भुज कर चरन जहँ तहँ २० कटहिं चरन उर सिर भुजदंडा
लगे महि परन

चिक्करत लागत बान धर परत २१ लागत बान बीर चिक्करहीं। घुर्मि
कुधर समान घुर्मि घायल महि परहीं
भट कटत तन सत खंड २२ बहुत बीर होइ सतषंडा
नभ उड़त बहु भुज मुंड २३ रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू
बिनु मौलि धावत रुंड २४ रुंड प्रचंड मुन्ड बिनु धावहिं

खग कंक काक श्रृगाल } २५ काक कंक लै भुजा उड़ाहीं
कटकटहि कठिन कराल } जंबुक निकर कटक्कटंकट्टहिं

भूतप्रेतपिसाच खप्पर संचहीं २६ जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं।
भूतपिसाचबधू नभ नंचहि
बैताल बीर कपाल ताल बजाइ भट कपाल करताल बजावहिं
जोगिनि नंचहीं।

धरु धरु करहिं भयंकर गिरा २७ धरु धरु मारु मारु धुनि गावहिं
अंतावरी गहि उड़त गीध २८ खैंचत गीध आँत तट भए
बिपुल भट कहरत परे २९ कहरत भट घायल तट गिरे
अवलोकि निजदल बिकल भट ३० रावन हृदय बिचारा भा
तिसिरादि खरदूषन फिरे निसिचर संहार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारहीं । } कोटिन चक्र त्रिसूल पजारइ
करि कोप श्रीरघुबीरपर अगनितनिसाचर डारही ॥ } ३१ बिनु प्रया
प्रभु निमिषि महँ रिपुसर निवारि प्रचार डारे सायक } सप्रभु काटि निवारइ

दस २ बिसिष उर माँझ मारे ३२ दस दस बान भाल दस मारे
महि परत पुनि उठि लरत ३३ उठहि सँभारि सुभट पुनि लरहीं
मरत न ३४ मरत न रिपु श्रम भयेउ बिसेषा
करत माया अतिघनी सुर डरत दस दिसि धावहिं कोटिन रावन
गर्जहि घोर कठोर भयावन ॥ ३५ डरे सकल सुर चले पराई
सुरमुनि सभयप्रभुदेखि मायानाथ } सुरसभय जानि कृपाल रघु-
अति कौतुक करेउ } ३६ पति चाप सर जोरत भये

'देखहिं परस्परामकरि संग्राम } पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा
रिपु दल लरि मरेउ' 'अति कौतुक } ३७ अति कौतुकी कोसलाधीसा
करेउ'
राम राम कहि तनु तजहि ३८ कहां राम रन हतउँ प्रचारी
पावहिं पद निरबान ३९ तासु तेज समान प्रभु आनन
हरषित बरषहि सुमन सुर बाजहिं ४० सुर दुन्दुभी बजावहिं हरषहिं।
गगन निसान' अस्तुति करि अस्तुति करहिं सुमन सुर बरषहिं
करि सब चले सोभित बिबिध बिमान

रा० प्र० ध—शूर्पणखाके प्रसंगमें नवों रस—

१ रुचिर रूप धरि प्रभु पहँ गई—ऋंगार । २—अहै कुमार मोर लघु भ्राता-हास्य । ३—नाक कान बिनु भइ बिकरारा—बीभत्स । ४—एकबार कालहु सन लरहीं—वीर । ५—कोपेउ समर श्रीराम—रौद्र । ६—उर सीस कर भुज चरन जहँ तहँ लगे महि परन—भयानक ७—देखहिं परस्पर राम करि संग्राम रिपु दल लरि मरयो—अद्भुत । ८—राम राम काह तन तजहिं—करुणा ९—'जब रघुनाथ समर रिपु जीते । सुर नर मुनि सबके भय बीते ।'—शान्त ।

पंचबटी बसि श्रीरघुनायक ।
करत चरित सुर मुनि सुखदायक ॥ § २०/१४ (४)

अर्थ—पंचवटीमें बसकर श्रीरघुनाथजी सुरमुनियोंको सुखदेने-वाले चरित करतेहैं ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु—'करत चरितं सुर मुनि सुखदायक' इति। यहाँ 'सुर मुनि' कहा और पूर्व प्रारंभसे 'सुर नर मुनि' तीनोंको कहतेआयेहैं अतः यहाँ 'नर पद का पूर्वसे ग्रहण हुआ। यथा—'अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर नर मुनि भावन', 'मुनिपदकमल नाइ करि सीसा। चले बनहिं सुर नर मुनि ईसा', 'सुर नर मुनि सबके भय बीते'।

खरदूषणवध प्रकरण समाप्त हुआ

"जिमि सब मरम दसानन जाना"-प्रकरण

धुआँ देषि षरदूषन केरा।
जाइ सुपनषा रावन प्रेरा॥ § २०/१४ (५)
बोली बचन क्रोध करि भारी।
देस कोस कै सुरति बिसारी॥ ,, (६)
करसि पान सोवसि दिन राती।
सुधि नहिं तव सिर पर आराती॥ ,, (७)

धुआँ= धुर्रा; धज्जी, नाश टुकड़े २ होना।=मृतक शरीर—यह बुन्देलखण्डी भाषा है।—(रा० प्र०) दीनजी इसे अवधी प्रयोग बताते हैं। क्रोधवेशमें आकर इस मुहावरेका प्रयोग लोग करतेहैं कि 'हम तुम्हारा धुआँ (नाश) देखेंगे—(पं० रा० व० श०) प्रेरणा= उस्काना, उत्तेजित करना।

अर्थ—खरदूषणका मरण देखकर शूर्पनखाने जाकर रावणको प्रेरित किया। बड़ा क्रोध करके वचन बोली—तूने देश और ख़ज़ाने की सुध भुलादी। मदिरा पीपीकर रातदिन सोया करताहै। मुझे ख़बर नहीं कि शत्रु सिरपर आगया।

पु० र० कु०—१ 'बोली बचन क्रोध करि भारी'। खरदूषनसे क्रोधपूर्वक बोली थी, यथा—'धिगधिग तव पौरुष बल भ्राता' और यहाँ 'भारी क्रोध करके बोली। २—'देस कोस कै सुरति बिसारी' और शत्रु ने तेरा देश तो दबा ही लिया अब कोश भी लेगा। देश कोश

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की खबर न लेते रहना, बेखबर या निश्चन्त रहना कि हमारा कोई क्या करसकताहै, हमने तो इन्द्र तकको पकड़कर बाँध लिया, और शत्रुकी खबरदारी न रखना यह सब नीति विरुद्ध है इसीसे आगे नीति कहतीहै।

३—खर्रा—शूर्पनखा बहिन है इससे उसके द्वारा धर्म्मोपदेश होना उचित है वाल्मीकिमें इसका प्रमाण है। केकयीके वर माँगनेपर महाराज दशरथने कहाहै कि रामको वन देकर मैं कौसल्याको क्या उत्तर दूँगा कि जिसने हमें माता, स्त्री और भगिनीके समान सुख दियाहै—धर्म्मोपदेशमें वह बहिन कीसी है। यथा-'यदायदा च कौसल्या दासीव च सखीव च ॥६८॥ भार्यावद्भगिनीवच्च मातृवच्चोपतिष्ठति। सततं प्रिय कामा मे प्रियपुत्रा प्रियंवदा ॥ ६९ ॥'—(स० १२)।

वै०—कोशमेंसे जनस्थान ख़ाली हुआ।

राज नीति बिनु धनु बिनु धर्मा।
हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा ॥ §२०/१४ (८)
बिद्या बिनु बिबेक उपजाए।
स्रम फल पढे किए अरु पाए ॥ ,, (९)
संग ते जती कुमंत्र तें राजा।
मान तें ज्ञान पान तें लाजा ॥ ,, (१०)
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी।
नासहिं बेगि नीति अस सुनी ॥ ,, (११)

रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।
अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन ॥२०/१५

'प्रनय'—प्रणय प्रीतिका आदि अंग है, यथा—'प्रणय प्रेम आसक्ति पुनि लगन लाग अनुराग। नेह सहित सब प्रीतिके जानब अंग विभाग। मम तव तव मम प्रणय यह प्रीति निरंतर होइ।'—(वै०)। प्रणय=प्रीतियुक्त प्रार्थना, नम्रता, विश्वास। सौहार्द परिचय अर्थात् जिसके साथ प्रीति करे उसमें अपनेमें अभेद समझना ऐसे प्रेमको प्रणय कहते हैं—(पं० रा० व० श०)। पती=जो मोक्षके लिए यत्न करे घर बार धन सब छोड़दे। संग=विषयोंमें आसक्ति। मान=गर्व, अभिमान, प्रतिष्ठा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—नीतिके बिना राज्य, धर्मके बिना धन की प्राप्ति, हरिको बिना समर्पण किए सत्कर्मके करने और बिना विवेक उत्पन्नकी हुई विद्याके पढ़नेका फल श्रममात्र है। अर्थात् ये सब व्यर्थ हैं। संगसे सन्यासी, बुरी सलाहसे राजा, मानसे ज्ञान, मदिरा पान करनेसे लज्जा, बिना नम्रताकी प्रीति और मदसे गुणवान का शीघ्र नाश होताहै--ऐसी नीति सुनी है।† शत्रु रोग, अग्नि, पाप, समर्थ स्वामी, और सर्प इनको छोटा करके न समझना चाहिए ‡—ऐसा कहकर वह अनेक प्रकारसे विलाप करती हुई रोने लगी।

पु० र० कु०—१ 'राज नाति बिनु', यथा—रज कि रहइ नीति बिनु जाने'। २—'धनु बिनु धर्मा से कर्मकांड, 'हरिहि समप बिनु सतकर्मा' से उपासना कांड 'विद्या बिनु बिवेक उपजाये'। से ज्ञान-कांड कहा। ज्ञान उत्पन्न हुआ तब विद्या का फल है। ३—'उपजाये' पदसे यह रूपक बना कि विद्यारूपी स्त्रीसे विवेक रूप पुत्र उत्पन्न किए बिना श्रमही फल है। जैसे वंध्यामें पुत्र उत्पन्न नहीं होसकता उससे पुत्रकी चाह करनेमें श्रममात्र होगा, वैसेही विवेक न हुआ तो विद्या बाँझ सरीखी है। ४—'धन बिनु धर्मा' यथा—सो धन धन्य प्रथम गति जाके'। धन है उसे धर्म में न लगाया तो उस धनका होना न होना बराबर है। उस धनकी प्राप्तिमें जो श्रम हुआ वह व्यर्थ ही समझना चाहिए।

५—'हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा' इति।—जो बिम्बमें क्रिया होती

† 'दौर्मन्त्रयान्नृपतिर्विनश्यति यतिः संगात्सुतो लालनात्।
विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात्॥
ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रयात्
मैत्री चाप्रणयात्समृद्धिरनयात्त्यागात् प्रमादाद्धनम्॥ इति भर्तृहरे अर्थात् बुरीसलाह से राजा, लगावसे सन्यासी, लाड़प्यार बेटा, न पढ़नेसे ब्राह्मण, बुरी बेटी से कुल. खलोंके संगसे चरित्र, मदिरासे लज्जा, देखभाल न करनेसे खेती, विदेशमें रहनेसे स्नेह, प्रणय के अभावसे मैत्री, अन्यायसे ऐश्वर्य, त्याग और भूल चूकसे धन नष्ट होजाता है।

‡ यथाऽग्नोऽङ्गे समुपेक्षितो नृभिर्नशक्यते रूढपदश्चिकित्सितुम्। यथेन्द्रियग्राम उपेक्षितस्तथा रिपुर्महान् बद्धबलोन चाल्पते॥—(भागवते) जातमात्रं न यः शत्रु व्याधिञ्च प्रशमं नयेत् अतिपुष्टांग युक्तोपि स पश्चात्तेन हन्यते'—(पंचतंत्र)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है वही प्रतिबिम्बमें होतीहै। ईश्वर बिम्ब है। बिना ईश्वरके अर्पण किए उसका फल जीवमें नहीं आप्राप्त होसकता। सत्ककर्मोंको हरिको समर्पण करना चाहिए। यथा—'क्लेश भूर्य्यल्प साराणि कर्माणि विफलानि च देहिनां विषयार्त्तानां न तथैवार्पितं त्वयि' इति भागवते अष्टमे।

६—यहाँ प्रथम विनोक्ति अलंकार है। एक २ के विना एककी न्यूनता कथन कीहै। यहाँ पूर्वोक्त (वर्ण्य) वस्तुओंका क्रम पलट कर अर्थात् विपरीति क्रमसे वर्णन हुआहै यह भी यथासंख्य अलंकार है और इसको विपरीत क्रमालंकारभी कहतेहैं।

७—'पान ते लाजा' अर्थात् मदिरा पीनेसे लज्जा जाती रहतीहै। प्रथम उसने यह कहा कि 'करसि पान सोवसि दिन राती' और फिर यहाँ 'पान ते लाजा' यह नीति कहकर जनाया कि तू निर्लज्ज होगया है, मेरी यह दुर्गति हुई तो भी तुझे लज्जा नहीं। यथा—'सूपनषाकी गति तुम्ह देखी। तदपि हृदय नहिं लाज बिसेषी'।

८ (क)—'नीति अस सुनी'। 'सुनी' से जनाया कि पढ़ी लिखी नहीं है, इसीसे सुनीहुई कहतीहै। (ख)—'रिपुरुज पावक' इति आतेही प्रथम कहा था कि 'सुधि नहिं तव सिर पर आराती' इसीसे यहाँ प्रथम 'रिपु' को गिनाया, इसीसे यहाँ प्रयोजनभी है तो उदाहरण मात्र हैं। (म) 'गनिय न छोट करि'। भावकि राम लक्ष्मण दोनों देखने में छोटेहैं उनकी छोटी अवस्थापर न भूलजाना। *

* (i) बाबा हरिदास ये सब बातें रावणमें यों घटातेहैं—१—पहले दाहेको लेतेहैं। 'रिपु रुज पावक...'। देवता अवसर पाकर बली हुए वानररूपसे वे प्रबल हैं, विभीषण औषधिरूप हैं उनका निरादर करतेहो; ग्यारहवें रुद्रको तुमने प्रसन्न नहीं किया वे हनुमान् हैं उनका तेज-पावक नगर जलादेगा; राम प्रभु हैं ब्रह्माके वचन सत्य करनेको नररूप धारण किया उनको तू नर समझताहै अहिराज लक्ष्मणजी हैं इन्हें छोटा समझा ये मेघनाद को मारेंगे। शूर्पनखाको लक्ष्मणजीके स्पर्शसे इतना ज्ञान उत्पन्न होगया। २—राजनीति बिनु...'। नीतिके अनेक अंग हैं उनमेंसे मुख्य है। देशका बराबर क्षण २ का हाल जानना पर सारा जनस्थान विनष्ट हुआ और तुझे न मालूम हुआ। लंका सोनेकी है पर धर्ममें धन नहीं लगाया अतः भस्म होगी। यज्ञ बहुत किए पर वे भगवान्को अर्पण न किए इससे व्यर्थ। विद्या पढ़ा, वेदपर भाष्य किया पर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रा० प्र० श०—'प्रीति प्रणय बिनु' इति। प्रीतिके आठ अंग हैं जिनमेंसे एक प्रणय है इन आठोंके अलग २ भेद हैं। प्रणय—'मम तव तव मम प्रणय यह'—मैं तुम्हारा हूँ तुम हमारे हो, मेरा तुम्हारा है, तुम्हारा मेरा है—यही प्रणय है। लंका छोड़ते समय विभीषणजीने भगवान्से कहा है कि—'देस कोस मंदिर संपदा। देहु कृपालु कपिन्ह कहँ मुदा। सब बिधि नाथ मोहि अपनाइये'। इसपर भगवान् ने कहा कि—'तोर कोस गृह मोर सब' अर्थात् तेरा कोश, गृह सब मेरा है—यह प्रणय है। जबतक यह बातें नहीं हैं, प्रीति न रहेगी।

सभा माँझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ २१/१५ (म)

अर्थ—सभाके बीचमें व्याकुल पड़ी हुई बहुत प्रकारसे रो रोकर कहरहीहै कि अरे दशकंधवाले रावण! तेरे जीतेजी क्या मेरी ऐसी दशा होनी चाहिए?

नोट १—अर्थात् तुझ ऐसे विश्वविजयी भ्राताके जीते रहतेहुए कोई मेरे नाक कान काटकर स्वच्छन्द सुखपूर्वक जीतारहे, यह न होना चाहिए, तेरे रहते मेरी दशा अनाथ विधवाकी-सी न होनीचाहिए। आशय कि तू चलकर उनसे जूझ, लड़कर उन्हें जीत जिससे मेरी छाती ठंढी हो या मरजा। यथा—'इमामवस्थां नीता तथाऽनाथा सती तथा'—(वा०)।

ईश्वरको न जाना। शिवजीको सिर चढ़ाकर कालको जीता यह यतीका काम किया पर मन विषयमें लिप्त है अतः योगभ्रष्टहै। मंत्री कुमंत्र देतेहैं। अभिमान है अतः ज्ञान नहीं होसकता। मदिरा पानकर निर्लज्ज होगयाहै तभी तो मेरी नाक कान कटनेपर लज्जा न आई और कुबेर अपने भाईकी पुत्रबधूसे बलात्कार करनेमें लज्जा न लगी। नम्रता नहीं है, इससे कोई तुझसे प्रीतिभी नहीं करता कि जो सहाय हो। राजपद है अतः जो भी गुण हैं वे सब चलेगए। ३—१६ बातें कहकर समझाया क्योंकि जीवोंमें १३ कलाके तेजसी होतेहैं और देवता और ईश्वरमें तो अनन्त कलायें हैं। तब तेरी कला कब काम देंगी।'

(ii) यहाँ राजा और शत्रु ही वर्ण्य हैं। यती, ज्ञान, लज्जा चौपाईमें रज, पावक आदि दोहे में अवर्ण्य हैं। धर्म वर्ण्य अवर्ण्य के एक हैं दीपक अलंकार है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—'दशकंधर' सम्बोधनकरके जनातीहै कि तेरे तो दश शिर हैं, तेरे रहते एक सिरवालेने मेरी यह दुर्दशा कर दी। ३—'असि' से ऐसाभी भाव कहतेहैं कि अभीतक मुँहपर कपड़ा ढाँपेहुएथी अब मुँह खोलकर इशारा करके, दिखाकर कहतीहै कि ऐसी दुर्दशा मेरी हो। मुँह छिपाये न होती तो अबतक रावण चुप न बैठा रहता।

सुनत सभासद उठे अकुलाई।
समुझाई गहि बाँह उठाई॥ § $\frac{२१}{१५}$ (१)
कह लंकेस कहसि निज बाता।
केइ तव नासा कान निपाता॥ ,, (२)

अर्थ—यह सुनतेही सभासद अकुला उठे, उसे समझाया और बाँह पकड़कर उसे उठाया। लंकापति रावणने कहा कि अपनी बात तो कह कि किसने तेरे नाक कान काट लिए।

पु० र० कु०—१। 'अकुलाई'। क्योंकि त्रैलोक्यविजयीकी बहिनके नाककान काटनेवाला कोई साधारण पुरुष नहीं होसकता। सभी रावणसे काँपतेहैं, ऐसा कौन करेगा।

२—'समुझाई गहि बाँह उठाई'। 'समझाया, बाँह पकड़कर उठाया अर्थात् इतना करनेपर तब उठी नहीं तो उठतीही न थी। ३—इस कथनसे कवि जनातेहैं कि राक्षसोंमें मर्यादाका विचार बहुत कम है। यह स्वतंत्र वनमें विचरण करतीहुई रामजीसे कामकी वार्ता करने लगी, और यहाँ आकर सभाके बीचमें पड़ीहै, सभासदोंने हाथ पकड़कर उठाया।

४ (क)—'कह लंकेस'। लंकाको राजा है, राजा नीतिज्ञ होतेहैं, नीतिको मानतेहैं; अतः नीतिको सुनकर उसे ग्रहणकर पूछा। इसीसे 'लंकेश' कहा। (ख)—'निज बाता' का भाव कि अभीतक और सब इधरउधरकी कही पर अपनी बात ज़राभी न बतायी। (ग) सभासदों के समझानेसे न समझी तब रावणने स्वयं समझाया और पूछा। इसीको प्रेरितकरने आईथी—'सूपनखा तब रावन प्रेरा' इसीसे इसके पूछनेपर कहेगी।

अवधनृपति दसरथ के जाए।
पुरुषसिंघ बन खेलन आए॥ § $\frac{२१}{१५}$ (३)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी।
रहित निसाचर करिहहिं धरनी॥ ११/१५ (४)
जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन।
अभय भए बिचरत मुनि कानन॥ ,, (५)
देषत बालक काल समाना।
परम धीर धन्वी गुन नाना॥ ,, (६)
अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता।
षलबधरत सुरमुनि-सुषदाता॥ ,, (७)

अर्थ—अवधके राजा दशरथके पुत्र जो पुरुषोंमें सिंहवत हैं वनमें शिकार खेलनेआएहैं। मुझे उनकी करनी यह समझ पड़ीहै कि वे पृथ्वीको निश्चिरहीन करदेंगे। जिनकी भुजाओंका बल पाकर, हे दशमुख! वनमें मुनिलोग निर्भय होकर विचर रहेहैं। देखनेमें बालक हैं पर हैं कालके सदृश महा धीर, धनुषविद्यामें निपुण और अनेक गुणयुक्त हैं। दोनों भाइयोंमें अतोल बल और प्रताप है खलोंके वधमें तत्पर हैं, देवता और मुनियोंके सुखदेनेवाले हैं।

प० र० कु०—१—'अवधनृपति दसरथके जाये' यह कैसे जाना? लक्ष्मणजीके वचनसे। यथा—'प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा'। इस प्रसंगसे उसने इन्हें दशरथपुत्र कहा। २—'पुरषसिंह बन खेलन आए' और 'रहित निसाचर करिहहिं धरनीसे जनाया कि उसने रामजीका उत्तर जो खरदूषण को उन्होंने भेजा था सुनाहै। हम छत्री वन मृगया बन करहीं। तुम्हसे खल मृग खोजत फिरहीं', इससे और खरदूषणादि के नाशको समझकर उसने कहा कि निश्चररहित करदेंगे 'रहित निसाचर करिहहिं' अर्थात् पृथ्वीका भार उतारेंगे। *

३ 'जिन्हकर भुजबल पाइ दसानन...', यथा—'जब ते राम कीन्ह

* खरा इस प्रसंगमें रावण और कुम्भकर्ण दोनोंका प्रसंग निकलताहै। पूर्व जन्ममें जब रावण हिरण्यकश्यप था तब जो पुरुष (नर) सिंह हो अवतीर्ण हुएथे वेही अब नृपति रूप हैं। पुनः जो वन खेलनेवाले शूकर रूप अवतीर्ण हुएथे वेही नृपति रूप होकर आयेहैं पहले वन (=जलमें शूकर रूपसे खेले अब वन (जंगल) में खेलने आये। बन खेलनेसे शेष लक्ष्मणजीभी साथ आएहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तहँ बासा। सुखी भए मुनि बीती त्रासा॥' ४—'देखत बालक काल समाना।' यथा—'मुनिपालक खल सालक बालक' यहाँ तक रामजी का उत्तर सुना हुआ कहा और परम धीर धन्वी गुन नाना' यह अपने आँखों देखी (युद्धमें) कही। प्रभुने जो खरदूषणको उत्तर दिया था वह और युद्धका पराक्रम इसके हृदयमें विध गयाहै। वही सब कह रहीहै। परम धीर क्योंकि सेनासे घिरनेपरभी हँसतेही रहे।

दीनजी—'पुरुषसिंह बन खेलन आए' इति। वह उन्हींको सिंह समझतीहै और सबको नामर्द समझतीहै। इस शब्द (पुरुष सिंह) को देकर गोस्वामीजीने स्त्रीके उस मनोभावका अच्छा प्रदर्शन कियाहै जिस मनोभावसे स्त्री किसी पुरुषपर आसक्त होतीहै। अर्थात् इस पुरुषके सिवा उसे संसारभरमें कोई पुरुषही नहीं दिखाई पड़ता। खेलन=सैर करने।

सोभाधाम राम अस नामा।
तिन्ह के संग नारि एक स्यामा॥ § २१/१५ (८)
रूपरासि बिधि नारि सँवारी।
रति सत कोटि तासु बलिहारी॥ ,, (९)

शब्दार्थ—श्यामा=सोलह वर्षकी अवस्थाकी 'शीतकाले भवेदुष्णा ग्रीष्मे च सुखशीतला। सर्वावयव शोभाढ्या सा श्यामा परिकीर्त्तिता'—(प्रदीपोद्योते)। जिसके अभी पुत्र न हुआहो।=जो अपने मध्यस्थ युवावस्थामें ही। इत्यादि।

अर्थ—शोभाके धाम हैं, उनका राम ऐसा नामहै, उनके साथ एक श्यामा स्त्री है, जो रूप (सौंदर्य्य) की राशि है। ब्रह्माने उस स्त्रीको सँवारकर बनायाहै, सौ करोड़ (असंख्य) रति उसपर निछावर हैं।

पु० र० कु० १—'सोभाधाम राम अस नामा' इति। (क) शूर्पनखा स्वयं इनको देखकर मोहित हुईहै और अपने भाई खरदूषणकोभी यह कहते सुनाहै कि 'हम भरि जन्म सुनौ सब भाई। देखी नहिं अस सुंदरताई', अतः देखी सुनी दोनोंके प्रमाणसे 'शोभाधाम' कहा। जान पड़ताहै कि वह शोभा इसके हृदयमें गड़गईहै इसीसे प्रथम यही कहा (ख)—'तिन्हके संग नारि एक स्यामा' अर्थात् यह रामकी भार्या है।

२—'रूपरासि' अर्थात् जैसे राम शोभाधाम वैसेही ये रूपकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राशि ही हैं।—'रति सत कोटि तासु...' इति। भाव की ब्रह्माण्ड प्रति एकही 'रति' होतीहै, सौ करोड़ ब्रह्माण्डोंकी 'रतियाँ' एकत्र होजायँ तोभी उस रूपराशिको नहीं पासकतीं, वे सब तुच्छ हैं इसके रूपपर निछावर हैं। अर्थात् एक ब्रह्माण्डकी कौन कहे सौ करोड़ ब्रह्माण्डोंमें ऐसी सुंदर स्त्री नहीं मिलसकती।

गौड़—पहले शूर्पणखाने नीतिके वाक्य कहकर रावणकी शासन बुद्धिको उभारा। फिर वह रावणके कामी स्वभावको उत्तेजित करनेके लिये प्रसंगसे 'नारि इक स्यामा' की भी सूचना देतीहै। अपने अपराधको ध्वनिसे बतातीहै कि शोभाधाम हैं, इनपर रीझी थी, परन्तु वह हमारी ओर क्यों निगाह डालनेलगे क्योंकि साथमें तो अप्रतिम सुन्दरी मौजूद थी। राक्षस राक्षसीका अत्यन्त कामवश होना भी व्याजसे दिखाया है।

दीनजी—'रूपराशि' जो। सपत्नी होनेगईथी उसीके मुखसे स्त्रीका सौन्दर्य्य परिपूर्ण वर्णन होना जनाताहै कि कैसा अपूर्व सौंदर्य्य होगा यद्यपि यहाँ रावणको उत्तेजित करनेके लिएही यह कहागयाहै तोभी वह (uppermost idea) सर्वोपरि बात जो मनमें होतीहै किसी न किसी तरह निकल ही आतीहै, रुकती नहीं।

तासु अनुज काटि श्रुति नासा।
सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा॥ § २१/१५ (१०)
षरदूषन सुनि लगे पुकारा।
छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा॥ ,, (११)
षरदूषन तिसिरा कर घाता।
सुनि दससीस जरे सब गाता॥ ,, (१२)

शब्दार्थ—'लगे पुकारा' मुहावरा है। फरियाद सुनकर सहायता करना=सहाय हुए।

अर्थ—उसके भाई ने नाक कान काटे। तेरी बहिन हूँ यह सुनकर हँसी करते थे। मेरी पुकार लगने पर अर्थात् फर्याद सुनकर खरदूषण उनसे भिड़े, सारा कटक उन्होंने क्षण भरमें मारडाला, खरदूषन और त्रिशिराके मारनेवाले—यह सुनकर दशशीशका सारा शरीर जल उठा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु०—(क)—'तासु अनुज काटे श्रुति नासा' यह रावणके 'केहि तव नासा कान निपाता' का उत्तर है। शूर्पनखाके नाक-कान काटनेके समय कविने कहा था 'लछिमन अति लाघव सों नाक-कान बिनु कीन्हि। ताके कर रावन कहँ मनहुँ चुनौती दीन्हि'। 'तासु अनुज काटे००' यह कहनाही मानों चुनौती दिया। (ख) 'सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा' अर्थात् तुमको कुछ नहीं समझते। 'सुनि' से शंका होतीहै कि किससे सुना? इस शब्दसे वह जनातीहै कि मैंने उनसे अपना नाम और तुम्हारा सम्बन्ध बताया तब मुझसे यह सुनकर मुझसे हँसी मसख़री करनेलगे कि तू अपना विवाह हमारे साथ करले जब मैं क्रुद्ध हुई तब मेरा नाक कान काट लिया। (ग) यहाँ लक्ष्मणजीका नाम उसने नहीं लिया। 'तासु अनुज कहा—कारण कि (१) नाम न जानती थी, लक्ष्मणजीने रामजीका नाम बताया पर अपना नाम न बताया था और रामजीनेभी उनका नाम न बताया था; यही कहा था कि "अहइ कुमार मोर लघु भ्राता"। अथवा ये शत्रु हैं, शत्रुका नाम न लेना चाहिए।

२—'खर दूषन सुनि लगे पुकारा।००'। यथा—'करि उपाय रिपु मारे छनमहँ कृपानिधान'। तथा यहाँ 'छनमहँ···मारा' कहा। यहाँ रामजीकी करनी स्पष्ट कही, अभी तक मुँदी ढकी कही थी।

३—'सुनि दससीस जरे सब गाता' इति। जब 'सभामाँझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ' तब 'सुनत सभासद उठे अकुलाई।०'। और जो कहा था कि तोहि जिअत दसकन्धर मोर कि अलि गति होइ' उसपर 'कह लंकेस कहसि निज बाता' या यों कहिए कि रावणका बैरी सुनकर सभी व्याकुल हुए और खरदूषणवध सुन रावण व्याकुल हुआ। अब जो सुना कि खरदूषणको उन्होंने मारडाला तब सोचसे 'जरे सब गाता' सारा शरीर जल उठा, अत्यन्त दाह हुआ। यथा—"सूखहिं अधर जरहिं सब अंगू। मनहु दीन मनिहीन भुअंगू'।

४—इस दोहे भरमें नाम, रूप, लीला गुण और धाम ये पाँचो कहे हैं यथा—(१) 'सोभा धाम राम अस नामा' में नाम। (२) 'अवधनृपति' से धाम' (३) 'दसरथके जाये' से रूप। (४) 'परम धीर धन्वी गुन नाना' यह गुण और (५) 'समुझि परी मोहि उन्हकर करनी। रहित निसाचर करिहहिं धरनी' यह लीला।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुनः, ५—इस दोहेमें नवरसात्मक मूर्त्ति कहीहै, यथा—

१—शृङ्गार—"सोभाधाम राम अस नामा। तिन्हके संग नारि इक स्यामा॥ रूप रासि बिधि नारि सँवारी। रति सतकोटि तासु बलिहारी"॥

२—सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा

३—करुणा—अभय भये बिचरत मुनि कानन

४—रौद्र—देखत बालक काल समाना

५—वीर—परम धीर धन्वी गुन नाना

६—भयानक—खलबधरत

७—वीभत्स—तासु अनुज काटे श्रुति नासा

८—अद्भुत—छन महँ सकल कटक उन्ह मारा

९—शान्त—सुरमुनि सुखदाता।

इस प्रकार इस प्रसंगरूपी समुद्रसे १४ रत्न निकले। ५+९=१४। नाम, रूप, लीला गुण और धाम—ये पाँच हुए। और, शृङ्गार आदि नवोरस दोनों मिलकर १४ हुए।

६—'खरदूषण त्रिशिरा कर घाता...' इति। पहले उसने कहा कि खरदूषणादिको क्षण भरमें मारा। फिर उसी बातको कविने दुहराकर लिखाहै। तात्पर्य्य कि पहले वचन सुनतेही रावण सूख गया, उसके होश ठिकाने न रहे तब सूर्पणखाने सब लड़ाईका वृत्तान्त कहा और अबकी तीनों भाइयोंका नाम लिया कि तीनों मारेगए। इसीसे कवि ने दोहराया।

सूपनषहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहु भाँति।
गएउ भवन अति सोच बस नींद परै नहिं राति § २२/१६

अर्थ—शूर्पनखाको समझाकर बहुत तरहसे अपना बल बखान (फिर) अपने महलमें गया अत्यन्त शोचके वश रातमें नींद नहीं पड़रहीहै।

पु० र० कु०—'सूपनषहिं समुझाइ करि बल००' इति। सूर्पनखाके 'तोहि जियत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ' इन वचनोंका प्रभाव रावणके दिलपर बहुत पड़ाहै इसीसे उससे सब हाल सुनकर अब उसे समझाया बहुभाँति बलका बखानकर उसे धीरज दिया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(२) पहले शूर्पणखाको सभासदोंने समझायाथा अब रावणने स्वयं समझाया। 'बल बोलेसि बहु भाँति' जैसा अध्यात्म और वाल्मीकिमें हैं।

(३) 'गयेउ भवन अति सोच बस नींद' इति। समझाकर घर गया अब उसे अत्यन्त चिन्ता व्याप गईहै। अत्यन्त शोचका प्रमाण देतेहैं कि 'नीद परै नहिं राति'। कहाँ तो निश्चन्त सोया करताथा, यथा—'करसि पान सोवसि दिन राती' और अब दिनकी बात क्या रातमें भी सारी रात नींद न पड़ी। अति शोचके कारण ऐसा हुआ, यथा—'निसि न नींद नाह भूख दिन भरत बिकल सुठि सोच', श्रमित अति भूप निन्द्रा अति आई। सो किमि सोव सोच अधिकोई'—(कपटी मुनि)

खर्रा—अन्तःकरणमें भय है मुखसे बल बोलताहै। सूर्पणखाके 'तोहि जियत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ' इन वचनोंके कारण बल बखाना और समझाया और जो उसने कहा था कि 'छन महँ सकल कटक उन्ह मारा' इससे सोचविचारमें पड़गयाहै। रावणने अपना शोच गुप्त रक्खा इसका कारण आगे स्पष्ट करतेहैं कि वह भगवत्के हाथसे मरना चाहता है।

सुर नर असुर नाग षग माहीं।
मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं॥ २२/१६ (१)
षर दूषन मोहि सम बलवंता।
तिन्हहिं को मारइ बिनु भगवंता॥ ,, (२)

अर्थ—देवता, मनुष्य, दैत्य, नाग और पक्षियोंमें मेरे सेवकोंकी बराबरीकरनेवाला (जोड़का) कोई नहीं है, खरदूषण (तो) मेरे समान बलवान थे उन्हें सिवाय भगवान्के और कौन मारसकताहै?

पु० र० कु० १—'सुर नर असुर नाग खग माहीं...' इति।—(क) यहाँ सुरनर' का नाम दिया 'मुनि' को छोड़ दिया। क्योंकि मुनि किसीसे युद्ध नहीं करते, यहाँ रावण-युद्धका प्रसंग कहरहाहै उसमें मुनियोंकी गिनती नहीं। शृङ्गार शोभाके प्रकरणमें 'मुनि' पद रखाहै, यथा—सुरनर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा अस कहुँ सुनिअत नाहीं', नागअसुर सुर नर मुनि जेते। देखे सुने हते हम केते'। (ख)—शूर्पणखाने यही कहा कि 'छनमहँ सकल कटक उन्ह मारा' और यहाँ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रावणभी वही सिद्ध करताहै 'तिन्हहिं को मारइ...' पूर्वापरसे मार-नाहीं सिद्ध है। अतः 'मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं' का अर्थ है कि उनमें कोई मार नहीं सकता तो मेरे समान बली खरदूषणको कौन मारसकताहै ?

२—'खरदूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि...' इति। अर्थात् मेरे साधारण सेवकको तो कोई तीनोंलोकोंमें छूभी नहीं सकता फिर भला खरदूषणको मारना यह तो असम्भव ही है। भगवन्त ही मार-सकतेहैं दूसरा नहीं। 'भगवन्त' पदका भाव कि जिसे तीनों लोकोंकी उत्पत्ति और प्रलय का सामर्थ्य है वह भगवान्ही हैं।

नोट—'नहिमे विप्रियं कृत्वा शक्यं मघवता सुखम्। प्राप्तं वैश्र-वणेनाप नयमेननविष्णुना॥ कालस्य चाप्यहं कालो दहेयमपि पाव-कम्॥'—(वा०), में जो इन्द्र कुवेर, विष्णु, काल, अग्निको गिनाया है उसकी ठौर यहाँ 'कोउ' अधिक व्यापक और रुचिकर है। पुनः, वहाँ रावण सोचताहै कि मेरा अप्रिय करनेको समर्थ कोई नहीं और यहाँ 'मोरे अनुचर कहँ'—पाठक स्वयं विचार देखें कौन अधिक अच्छा है, कौन वाणी अधिक बलवती है। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं' अर्थात् उनके सामने कोई खड़ा नहीं रहसकता; यथा—'एक एक जग जीतिसक ऐसे सुभट निकाय' (ब० § १८०)।

सुररंजन भंजन महिभारा।
जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥ §२२३/१६ (३)
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ।
प्रभुसर प्रान तजे भव तरऊँ॥ ,, (४)
होइहि भजनु न तामस देहा।
मन क्रम बचन मंत्र दृढ एहा॥ ,, (५)
जौं नररूप भूपसुत कोऊ।
हरिहौं नारि जीति रन दोऊ॥ ,, (६)

अर्थ—देवताओंको आनन्द देनेवाले, भूभारको भंजन (तोड़ने, चूरचूर) करनेवाले भगवान्ने यदि अवतार लियाहै तो मैं जाकर हठपूर्वक वैर करूँगा और प्रभुके वाणोंसे प्राण छोड़कर भवपार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हूँगा। तामसी शरीरसे भजन न होना (अतः) मन कर्म वचनसे पक्का मंत्र यही है। और, यदि मनुष्य रूप कोई राजपुत्र होंगे तो दोनोंको रण में जीतकर स्त्रीको हर लूँगा।

पु० र० कु०-'जौं भगवन्त लीन्ह अवतारा। जौं००"। 'तौ' कहकर अवतारमें सन्देह जनाया।

(ख)—बैर हठि करऊँ' का तात्पर्य्य कि ईश्वर तो किसीसे बैर नहीं करते अतः मैं हठपूर्व्वक अपनी ओरसे उनसे बैर करूँगा। (ग) 'प्रभु सर प्रान तजे००' और 'हरिहौं नारि००' से स्वार्थ और परमार्थ दोनों सिद्ध देखे।—'रघुबीर सर तीरथ सरीरन्ह त्यागि गति पैहहिं सही'। ईश्वरको जीतनेको नहीं कहता और जीत लेनेमें निश्चय है—जीति रन दोऊ'।

२—होइहि भजन न तामस देहा।००" यथा—'तामस पद कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मनमाहीं'। भवपार होनेके दो उपाय हैं—प्रीति और विरोध। इनमेंसे 'विरोध' उपायको इसने निश्चय रखा और प्रीतिका निराकरण किया।

३—"जौं नररूप भूपसुत कोऊ।००"! (क) अर्थात् ईश्वरके अतिरिक्त और जो कोई मनुष्य रूप भूपसुत होगा तो उसे जीत लूँगा। (ख) मेरी मृत्यु और किसीके हाथ नहीं, इन्होंने खरदूषणको मारा तो क्या हुआ?

पं० रा० गु० द्वि०—'मंत्र दृढ पहा' इति। रावणने मुख्य सिद्धान्त यही मनमें पक्का रखा, इसका प्रमाण यह है कि उसे १६ बार बैर छोड़ रामभजनकरनेका उपदेश दियागया तबभी उसने किसीकी नहीं सुनी, अपने मनकीही की। अतः 'दृढ़' पद दिया। वे १६ उपदेश ये हैं। मारीच, गृद्धराजका अरण्यमें; श्रीजानकीजी, हनुमानजी, मंदोदरी, विभीषण (३ बार), माल्यवान, लक्ष्मणजीका पत्र द्वारा, शुक—ये ६ उपदेश सुंदरकांडमें; और मन्दोदरी (३ बार), प्रहस्त, अंगद, माल्यवान्, कालनेमि और कुम्भकर्णका—ये ८ उपदेश लंकामें हुए।—

मा० हं—रावण विरोधी भक्त था ऐसी कहावत है। जो कुछ हो परन्तु हम निश्चयसे कहसकतेहैं कि गोसाईंजीका रावण वैसा न था। रामजीसे बदला लेनेके निश्चयसे शूर्पनखा रावण तक पहुँची और उसे सीताहरणके लिए तैयार कासकी। यदि रावण विषय लोलुप न होता तो शूर्पनखाका यत्न अवश्यही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विफल होता। रावणकी दुर्भर विषयलालसाका यही पहला प्रमाण लिया जासकताहै। बाद, रावण विचार करने लगा कि यदि रामजी कोई मनुष्य होंगे तो सीता स्वयंको पच (?) सकेगी, परन्तु जो वे ईश्वर हों तो सीताहरणसे निस्संदेह उसके प्राणोंपर बीतेगी। इस दूसरे विचारसे उसे एक तीसरा ही विचार सूझा—प्राण हानि भी अच्छीही होगी, क्योंकि तामस देहसे ईशभक्ति कुछ भी बन नहीं सकती, इसलिए संसार पार होनेके लिए रामजीकेही हाथसे मरनेमें भला होगा। अब देखिए कि इस विचारमें भक्तिका नामनिशान तक नहीं। केवल एक विषय-वासनासे प्रेरित होकर रावण साधकबाधक दृष्टिसे परिणाम की ओर देखता जारहा है। तामस देहसे ईश्वरभजन न होसका इससे साफ़ प्रतीत होता कि उसे उसके अनंत घोर कृत्योंका स्मरण हुआ जिससे उसका हृदय दहल उठा जिसे पश्चाताप कहतेहैं सो यह नहीं। यदि यह यथार्थ पश्चाताप होता तो इन्द्रियलौल्यकी जड़ कायम रखकर रावण सीताहरणके लिए प्रवृत्त ही न होता। इस विचारके लिए यह प्रमाण देखिए—'सुररंजन भंजन महिभारा... हरिहउँ नारि जीति नर दोऊ', अन्तकी चौपाईमेंके विचारको रावण का अन्तिम निश्चय समझना चाहिए। भक्तिका अथवा पश्चात्तापका ऐसा अश्लील पर्यवसान होना कभीभी संभव नहीं।—विशेष देखो § २३ (८) में।

पं० रा० च० शुक्ल—जिस प्रकार राम राम थे, उसी प्रकार रावण रावण था। वह भगवानको उन ललकारनेवालोंमेंसे था जिसकी ललकारपर उन्हें आना पड़ाथा। बालकांडमें गोस्वामीजीने पहिले उसके उन अत्याचारोंका वर्णन करके जिनसे पीड़ित होकर दुनिया पनाह माँगतीथी, तब रामका अवतार होना कहाहै वह उन राक्षसोंका सरदार था जो गाँव जलाते थे, खेती उजाड़तेथे, चौपाए नष्ट करतेथे, ऋषियोंको यज्ञ आदि नहीं करनेदेतेथे, किसीकी कोई अच्छी चीज़ देखतेथे तो छीनलेतेथे और जिनके खाएहुए लोगोंकी हड्डियोंसे दक्खिनका जंगल भरापड़ाथा। चंगेज़खाँ और नादिरशाह तो मानों लोगोंको उसका कुछ अनुमान करानेके लिए आएथे। राम और रावणको चाहे अहुरमज़्द और अह्रमान समझिए चाहे खुदा और शैतान। फ़र्क़ इतनाही समझिए कि शैतान और खदाकी लड़ाईका मैदान इस दुनियासे ज़रा दूर पड़ताथा और रामरावणकी लड़ाईका मैदान यह दुनियाही है।

ऐसे तामस आदर्शमें धर्मके लेशका अनुसंधान निष्फलही समझ पड़ेगा। पर हमारे यहाँकी पुरानी अक्लके अनुसार धर्मके कुछ आधार विना कोई प्रताप और ऐश्वर्य्यके साथ एक क्षण नहीं टिकसकता, रावण तो इतने दिनोंतक पृथ्वी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पर रहा। अतः उसमें धर्मका कोई न कोई अंग अवश्य था। वह अंग अवश्य था जिससे शक्ति और ऐश्वर्य्यकी प्राप्ति होतीहै। उसमें कष्ट-सहिष्णुता थी। वह बड़ाभारी तपस्वी था। उसकी धीरतामें कोई संदेह नहीं। भाई, पुत्र जितने कुटुम्बी थे, सबके मारे जानेपरभी वह उसी उत्साहसे लड़तारहा। अब रहे धर्मके सत्य आदि और अंग जो किसी वर्गकी रक्षाके लिए आवश्यक होतेहैं। उनका पालन राक्षसोंके बीच वह अवश्य करता रहाहोगा। उसके विना राक्षस-कुल रह कैसे सकताथा? पर धर्मका पूरा भाव लोकव्यापकत्वमें है। यों तो चोर और डाकूभी अपने दलके भीतर परस्परके व्यवहारमें धर्म बनाएरखतेहैं। लोक-धर्म वह है जिसके आचरणसे पहले तो किसीको दुःख न पहुँचे, यदि पहुँचे भी तो विरुद्ध आचरण करनेसे जितने लोगोंको पहुँचताहै, उससे कम लोगोंको। सारांश यह कि रावणमें केवल अपने लिए और अपने दलके लिए शक्ति अर्जित करनेभरको धर्म था, समाजमें उस शक्तिका सदुपयोग करनेवाला धर्म नहीं था रावण पंडित था, राजनीति-कुशल था, धीर था, वीर था, पर सब गुणोंका उसने दुरुपयोग किया। उसके मरनेपर उसका तेज रामजीके मुखमें समागया। सत्से निकलकर जो शक्ति असत्‌रूप होगईथी वह फिर सत्‌में विलीन होगई।

चला अकेल जान चढि तहवाँ।
बस मारीच सिंधुतट जहवाँ॥ §२२/१६ (७)

अर्थ—रथपर चढ़कर अकेलाही वहाँको चला जहाँ समुद्रके किनारे मारीच रहताथा।

नोट—१ मारीचके पास रावण कहाँ गया? यह बात महाभारत वनपर्व अ० २७८ में मार्कण्डेय रामायणमें दीहै कि रावण त्रिकूट और काल पर्वतोंको लाँघताहुआ गोकर्णक्षेत्रमें गया जहाँ उसका पुराना मंत्री रामचन्द्रजीके भयसे तपस्वी वेशमें रहताथा 'तहवाँ जहवाँसे जनाया कि मारीच अब दूसरे देशमें रहताहै।

२—अकेला गया जिसमें किसीको ख़बर न हो, बैरीको कोई पता न देदे जिससे काममें अड़चन पड़जाय। यह बात मानी हुईहै कि जब किसी भेदको कोई दुसरा जानजाता है तो वह कभी न कभी अवश्य खुलजाता है।

'जिमि सब मरम दसानन जाना' यह प्रसंग समाप्त हुआ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'पुनि माया सीताकर हरना'-प्रसंग

इहाँ राम जसि जुगुति बनाई।
सुनहु उमा सो कथा सुहाई॥ § $\frac{२२}{१६}$ (८)

लछिमन गए बनहि जब लेन मूल फल कंद।
जनकसुता सन बोले बिहसि कृपा सुषबृंद॥ $\frac{२३}{१७}$

अर्थ—यहाँ रामचन्द्रजीने जैसी युक्ति बनाई, हे उमा! वह सुन्दर कथा सुनो। जब लक्ष्मणजी कंदमूलफल लेनेगए तब दया और आनन्दकी राशि रामजी हँसकर जानकीजीसे बोले।

नोट—पंचवटीका प्रसंग 'पंचवटी बसि श्रीरघुनायक। करत चरित सुरमुनि सुखदायक' § २० (४), इस चौपाई पर छोड़कर फिर शूर्पनखाका रावणके पास जाना...इत्यादि प्रसंग लंका और मारीचाश्रम तकके, कहे। अब पुनः पंचवटीका प्रसंग उठातेहैं। अतः 'इहाँ' पद दिया। पुनः 'इहाँ' से जनाया कि जिस समय उधरका चरित लंका आदिमें होरहाथा उसी समय यहाँ यह चरित हुआ। एक साथ लिखे या कहे न जासकतेथे।

२ पु० र० कु०—(क) 'इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा...' इति। 'उमा' संबोधन देकर कथाका पता दिया कि यह कथा उमामहेश्वर सम्वादमें है। उमामहेश्वर संवाद अध्यात्म में भी है अतः यह कथा वहाँ भी है।—§ २३ (१) में देखिए।

(ख) 'राम' अर्थात् ये सब चराचरमें रमण करतेहैं, अतएव सब समयके सारे वृत्तान्त जानतेहैं। रावणके भीतरका अभिप्राय और उसका मारीचको साथ लेकर आनेका विचार यह सब वे जानगए इसीसे रावणके आगमनके पूर्व ही यह उपाय किया जो आगे वर्णित है।

(ग) 'जनकसुता सन बोले बिहसि कृपा सुखबृन्द'।—'कृपासुखबृन्द' हैं; अतएव सबपर कृपा करके सबके सुखके हेतु यह लीला करनाचाहतेहैं।

३—'बिहँसि'—कि अब निश्चरनाशकी युक्ति बनी। वा, स्वयं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

माया करना है रावणको ठगनेके लिए—'माया हास…' ☞ स्मरण रहे कि गोस्वामीजीके 'इहाँ' और 'उहाँ शब्दोंका प्रयोग बड़ा विलक्षण है' अयोध्याकाण्डमें इसकी चोखाई खूब देखनेमें आतीहै। 'इहाँ' पद देकर कवि अपनेको उस स्थानपर सूचित करतेहैं और 'उहाँ' से जनातेहैं कि हम उनके साथ नहीं हैं, जिनकी कथा हम लिखरहेहैं। सदा अपनेको भगवत और भागवतके साथही रखतेहैं। और, जहाँ भागवत और भगवत दोनोंका प्रकरण पड़ताहै (भरतजी और रामजी) वहाँ या तो दोनों जगह 'इहाँ' ही का प्रयोग कियाहै—टीकाकार पण्डितोंने उनके भावको न समझकर इहाँ का उहाँ करदिया है—या अपनेको परमभागवतके साथ दिखाकर—'मोते अधिक संत करि लेखे' को चरितार्थ कियाहै।

४ खर्रा—(क) 'जुगुति' का भाव कि प्रभुको कपट नहीं भाता, यथा—'मोहि कपट छल छिद्र न भावा'। रावणने कपट किया, मारीच कपटमृग बना; अतः रामजीनेभी उसके साथ कपट किया। वह कपटका मृग हमको देताहै, हम उसको मायाकी सीता देंगे। (ख)—यहाँ उमाको सावधान करतेहैं कि अब वह लीला होतीहै जिसे देख तुम मोहित होगईथीं—'खोजइ सो कि अज्ञ इव नारी'। देखलो वह सब खोजना और विलाप झूठ है कि नहीं? प्रभुने तो स्वयं ही मायाकी सीता बनवाकर उसका हरण कराया और आपही वियोगमें रोए। (ग) यह प्रसंग वाल्मीकीयमें नहीं है, इसीसे और किसी वक्ताका संबोधन न दिया। (घ) 'सोहाई' का भाव कि बड़ोंके हृदयकी बात है (जो उन्हें भावे सो सुंदर है। उन्हें कपटके बदले कपट भाया)।

५—पं०—(क) दूसरा भाव 'उमा' को सम्बोधन करनेका यह है कि तुमने कहाथा कि 'जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयालु राखेहु जनि गोई' सो अब प्रभुका यहाँ अति गोप्यचरित कहतेहैं वह सुनो। 'सोहाई' क्योंकि इस कथामें ईश्वरके हृदयकी अगाधता कहनीहै। (ख) बिहँसिका भाव कि रावणके वधकेलिए स्त्रीको लंका भेजनेमें यद्यपि हँसीहै तोभी परोपकारहेतु हम तुम हँसी सहें। वा, लंका भेजनाहै अतः हसकर उनको प्रसन्न कररहेहैं। वा, हँसकर जनाया कि यह कष्ट और लीला हमारेलिए हँसीखेल है; इसीसे 'सुखवृन्द' पद दिया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला ।
मैं कछु करबि ललित नर लीला ॥ § २३/१७ (१)
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा ।
जौं लगि करौं निसाचर नासा ॥ ,, (२)

अर्थ—हे प्रिये ! हे सुन्दर पतिव्रत धर्म का पालन करनेवाली और सुशीले ! † सुनो। मैं कुछ 'ललित' नरलीला (नरनाट्य) करूँगा। जबतक मैं निशचरोंका नाश करूँ तबतक तुम अग्निमें निवास करो ।‡

दीनजी—'ललित नर लीला', इसमेंभी साहित्यिक मर्म है। ललित अलंकारमें जो कुछ कहाजाताहै वह स्पष्ट शब्दोंमें न कहकर उसके प्रतिबिंब भावमें कहाजाताहै। जैसे अयोध्याकांडमें 'लिखन सुधाकर लिखगा राहू'— राज न हुआ वनवास हुआ, इस घटनाको दूसरी घटना करके वर्णन किया। भाव कि जैसा ललित अलंकारमें वर्णित होताहै उसी प्रकार यहाँसे आगेतककी हमारी सब लीला ललित अलंकारमें समझनाचाहिए। इसी अभिप्रायसे आगे 'प्रतिबिंब' शब्द दियाहै जो ललित अलंकारका वाचक है यथा—'ललित अलंकृत जानियें कह्यो चाहिये जौन। ताहीके प्रतिबिंब ही वर्णन कीजै तौन'।

पु० र० कु० १—'सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला' इति।—एवं समस्त गुणोंकी खानि हैं, इन्हीं गुणोंका स्मरणकर और मुखसे कहकहकर प्रभुने सीताहरणपर विलाप कियाहै, यथा—'हा गुन खानि जानकी सीता॥ रूप सील ब्रत नेम पुनीता॥" इत्यादि।

२—सब विशेषण यहाँ साभिप्राय हैं। अब रावणके वधका समय आगया। सीताहरण द्वाराही उसकी मृत्यु होगी क्योंकि 'बिनु अपराध प्रभु हतहिं न काऊ। जौ अपराध भक्तकर करई। राम रोष

† अर्थ—आप अपने व्रतमें सदा सुन्दर सुशील हो अर्थात् हमारा वचन मानती हो।

‡ यथा अध्यात्मे—'उवाच सीता मे कान्ते शृणु जानकि मे वचः ॥१॥ अग्नावदृश्यरूपेण वर्षं तिष्ठ ममाज्ञया। रावणस्य वधान्ते मां पूर्ववत्प्राप्स्यसे शुभे ॥३॥ श्रुत्वा रामोदितं वाक्यं साऽपि तत्र तथाऽकरोत्। मायासीतां बहिः स्थाप्य स्वयमन्तर्दधेऽनले ॥४॥'—(सर्ग ७)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पावक सो जरई'। इसको चरितार्थ करनेके लिए सीताजीको रावण-वधतकके लिए अलग करेंगे। अतः कहते हैं 'प्रिया,व्रत रुचिर,सुसीला अर्थात् मैं तुमको अपनेसे पृथक् करता हूँ इससे यह जानना कि तुम मुझे अप्रिय हो वरन् तुम हमारी सर्वदा प्रिया हो, कार्य्यके निमित्त ऐसा कहता हूँ। (२) जो वे कहें कि ऐसा करनेसे हम दूषित होजायँगी, उसपर कहतेहैं कि 'नहीं, तुम तो 'व्रत रुचिर' हो। (३) खलके यहाँ रहनेसे शीलका नाश होताहै उसपर कहतेहैं कि तुम 'सुशीला' हो, तुम्हारे शीलका नाश नहीं होसकता' अथवा, (४) तुम हमारी प्रिया हो, व्रत रुचिर हो, सुसीला हो; तुम हमारे वचनोंका पालन करो। 'व्रत रुचिर' कौन व्रत है? उत्तर—एकै धर्म एक व्रत नेमा कायवचन मन पति पद प्रेमा'।

३—'मैं कछु करब ललित नर लीला'।—'ललित' अर्थात् जिसमें ऐश्वर्यकी छटामात्रभी नहीं, किंचित ऐश्वर्य्यका मेल जिसमें नहीं है।

४—'तुम पावक महँ करहु निवासा'। (क)—अग्निमें निवास करनेको कहतेहैं क्योंकि अंतमें इसीकी साक्षी देकर इसीमेंसे इनको प्रकट कराना होगा, यथा—'सीता प्रथम अनल महँ राखी। प्रगट कीन्ह चह अन्तरसाखी' (लं०)। पुनः, 'पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ'। * (ख)—खर्रा—भाव कि तुमभी ऐश्वर्य्य न रक्खो; कहीं उसके दुःख देनेपर शाप न देदो कि वह भस्म होजाय जो हमारी प्रतिज्ञाही जाय।

* १ पां—दूसरा भाव यह कि अग्निको अपना पिता मानतेहैं क्योंकि अग्निके दिएहुए पिण्डसे इनका जन्म हुआ;। और, स्त्री अपने पिता अथवा पतिके घर शुद्ध रहतीहै।

२—पं०-अग्निमें रखा क्योंकि (क) और किसी तत्वमें रखनेसे इनका तेज न छिपता। वा, (ख)—अग्नि सीताका पिता है इसतरह कि रावणने जब ऋषियोंसे कर मांगा तब उन्होंने अपना रुधिर एक घटमें देकर भेजा कि इसके द्वारा तेरी मृत्यु होगी। ऋषियोंका कोपही अग्नि है। उससे सीताजीकी उत्पत्ति हुई। वा, (ग)—लङ्कादहन करनाहै अतः अग्निमें शक्तिको रखा। इत्यादि।

३—शिला—रामजी तपस्वी रहे तब सीताजी भोगस्थानमें रहना कब स्वीकार करसकतीहैं, यथा—'तुम्हहिं उचित तप मोकहँ भोगु'। अतः, पहलेसे उनके अनुकूल तपस्थान अग्निमें निवास करनेको कहा जिसमें साथका हठ न करें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जबहिं राम सब कहा बषानी।
प्रभुपद धरि हिय अनल समानी ॥ १ २३/१७ (३)
निज प्रतिबिंब राषि तहँ सीता।
तैसइ सील रूप सुबिनीता ॥ „ (४)
लछिमनहूँ यह मरमु न जाना।
जो कछु चरित रचा भगवाना ॥ „ (५)

शब्दार्थ—समाना=प्रवेश करना।

अर्थ—जैसेही रामजीने सब बखानकर कहा वैसेही प्रभु के चरणों को हृदयमें धरकर वे अग्निमें समागईं। सीताजीने अपना प्रतिबिंब वहाँ रखा जिसमें वैसी ही शील, सुंदरता और अत्यन्त विनम्रता थी भगवान्‌ने जो कुछ लीला रची उस भेदको लक्ष्मणजीनेभी न जाना।

१ पु० र० कु०—'जबहिं राम सब कहा बषानी। प्रभुपद००' इति (क) पूर्व 'व्रत रुचिर' कहा उसीको यहाँ चरितार्थ किया। व्रत रुचिर है, 'काय बचन मन पतिपद प्रेमा' अतः 'पतिपद धरि हिय' कहा। (ख) पतिपद हृदयमें धरना धर्म है। पुनः, इन चरणोंसे गंगा निकली हैं—'नख निर्गता सुरवंदिता त्रैलोक्यपावन सुरसरी' अतएव इनके धारण करनेसे अग्निमें शीतलता बनीरहेगी।—(खर्रा)

२—"निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता...'। रामचन्द्रजीने स्पष्ट न कहा कि प्रतिबिंब यहाँ रखदो। पर उन्होंने पतिरुख देख ऐसा किया 'पति रुख लषि आयसु अनुसरहू' इस शिक्षाको यहाँ चरितार्थ किया। स्त्रीमें चार गुण विशेष हैं—शील, स्वरूप, विनीत और व्रत रुचिर) इसीसे इन चारोंको यहाँ कहा।

३—(क) 'लछिमन गए बनहि जब लेन मूल फलकंद' इतनीही देरमें यह सब चरित रचागया। जब वे आगए तब वक्ता कहतेहैं कि 'लछिमनहू यह मरम न जाना'। क्यों न जाना! इसका कारण प्रथम ही कहदिया कि 'निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसइ सीलरूप सुबिनीता'।

यहाँ सूक्ष्मरीतिसे प्रकरणकी समाप्ति दिखाई। लक्ष्मणजी प्रातः-काल स्नान, संध्या, पूजन करके वनको गए। रावण प्रातःकाल उठकर मारीचके यहाँ गया, वहाँ से मारीचको लेकर मध्यान्हमें सीताहरण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करनेगया, अतएव मध्याह्नके पूर्वही सीताजीका अग्निमें स्थापन हुआ। 'लछिमन गए बनहिं०' उपक्रम है और 'लछिमनहू यह मरम न जाना' उपसंहार है।

(ख)—लक्ष्मणजीको यह लीला न जनाई क्योंकि उनके जान-लेनेसे विरह न करते बनता। प्रभुने महारानीजीसे कहाहै कि 'मैं कछु करब ललित नर लीला' यदि लक्ष्मणजीको जनादेते तो लीलाका वह लालित्य जातारहता। इसीसे वहाँ ललित पद दिया। पुनः,

(ग)—खर्रा—नारदशापवाले अवतारमें नारद वचन सत्य करना है कि 'नारि बिरह तुम्ह होब दुखारी'। ये जानलेंगे तो नारदवाक्य सत्य न होपायँगे।

(४)—'जो कछु चरित रचा भगवाना' (१) भगवान् वह है जो विद्या अविद्याको जाने, यहाँ माया सीता बनीं इसको आपही जानतेहैं। (२) भगवान्ने यह चरित लक्ष्मणजीसे गुप्त रखा अतः गोस्वामीजी ने भी अक्षरोंमेंही गुप्त कहा अर्थात् यह न कहकर कि जो यह चरित रचा' यह कहा कि जो कछु चरित रचा'। 'कछु' क्या? यह गुप्त रखा है, स्पष्टवाचक शब्द यहाँ नहीं दिया। धन्य गुसाईंजी!

२—वै०—ऋषिकन्या वेदवतीने प्रभुकी प्राप्तिके लिए अखण्ड तप किया। उसको देखकर ज़बरदस्ती उसे पकड़कर लंका लेजाना चाहा तब उसने शाप देदिया कि तेरा नाश मेरे द्वारा होगा। यह कहकर उसने अपना शरीर छोड़दिया। वही यहाँ सीताजीका प्रतिबिंब है, उसीमें सीताजीका आवेश हुआ। इसी कारण सीताजीको अग्निमें निवास करनेको कहागया।

३—प्र० "प्रतिबिंब अव्यवहित देशमें रहता है व्यवहितमें रहना असंभव है। असंभवको संभव कर दिखाना यही ईश्वरता है।' (ख) 'लछिमनहूँ' का भाव कि ये ईश्वरकोटिमें रामरूप हैं जब उन्होंनेही न जाना तो अपर देवादि किस गिनतीमें हैं।

नोट—बालकाण्ड कैलाशप्रकरणमें दिखाया जाचुकाहै कि श्रीपार्वतीजीके दो प्रश्न यह हैं कि औरौ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिवेका और जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयालु राखहु जनि गोई'। उन प्रश्नोंका उत्तर यहाँ भी तीन स्थलों पर दिया गयाहै—(१) मुनिसमूह महँ बैठे सनमुख सबकी ओर' (२)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'लछिमनहू यह मरम न जाना' (३) 'मायानाथ अस कौतुक करयो। देखहिं परस्पर राम'। ये सब गुप्त रहस्य हैं। पहला और तीसरा प्रथम प्रश्नका उत्तर है और दूसरा दूसरे प्रश्नका।

☞ रा० प्र० श०—उमा आदि संबोधन दो ही स्थानोंमें हैं, या तो उनके गुप्त प्रश्नोंपर या 'जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई' इस प्रश्नके उत्तरमें। जैसे—औरउ एक कहौं निज चोरी। सुनु गिरिजा००' या 'मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोई', या 'छन महँ सबहिं मिले भगवाना। उमा मरम यह काहु न जाना'—ये सब इस प्रश्नके उत्तर हैं। और 'उमा जे रामचरन रत गत ममता मद क्रोध' यह गुप्त प्रश्न। यह तो रघुनाथजीके रहस्यकी बात हुई। परन्तु जहाँ श्रीजानकीजीकी महिमा कहीहै वहाँ केवल रघुनाथजीका ही जानना लिखा है। वह भी ग्रंथभरमें केवल दो ही स्थानोंमें—एक तो बालकांडमें जानी सिय बर त पुर आई। निज महिमा कछु प्रगटि जनाई।००'—सियमहिमा रघुनायक जानी'। दूसरे अयोध्याकांडमें—'सीय सासु-प्रति बेषु बनाई।' लखा न मरम राम बिनु काहू'।—ये सब भी 'जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई' का ही उत्तर है।

दसमुष गयउ जहाँ मारीचा।
नाइ माथ स्वारथरत नीचा॥ §२३/१७ (६)
नवनि नीच कै अति दुषदाई।
जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई॥ ,, (७)
भयदायक षल कै प्रिय बानी।
जिमि अकाल के कुसुम भवानी॥ ,, (८)

अर्थ– दशमुख (रावण) वहाँ गया जहाँ मारीच था और माथा नवाया (क्योंकि) स्वार्थपरायण (स्वार्थ ही जिसको प्रिय है) और नीच है। नीचका नवना (दीनता) नम्रता अत्यन्त दुःखदायी होताहै जैसे अंकुश, धनुष, सर्प और बिल्लीका। हे भवानी! दुष्टकी प्रिय वाणी भयदेनेवाली होतीहै जैसे विना समय (ऋतु) के फूल।

पु० र० कु०—१ (क) 'चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिंधुतट जहवाँ' उपक्रम है और 'दसमुष गयो जहां मारीचा'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उपसंहार है। (ख) 'दशमुख' का भाव कि इसके सामने एक मुख-वाले मारीचकी कुछ न चलेगी।

२—(क)—'नाइ माथ स्वारथरत नीचा'। अर्थात् भक्तिसे मस्तक नहीं नवाया, स्वार्थवश प्रणाम किया † क्योंकि नीच है, नीचलोग स्वार्थ-साधनार्थ ऐसा करते हैं। इसीकी व्याख्या आगे कवि स्वयं करतेहैं। यदि भक्तिसे प्रणाम करता तो आगे फिर मारनेको न तैयार होता। (ख)—राजा गुरु, देवता, साधु, ब्राह्मणको मस्तक नवाये, यह धर्म है; अन्यको मस्तक नवाना उचित नहीं है। जिस रावणके संबंधमें कहाहै कि 'रवि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी ॥०० आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता'—(ब० §१८१), वह दूसरेको जो अपने अधीन है माथा नवावे, यह नीचता है।

३—"नवनि नीच कै अति दुखदाई।००" इति। (क) नम्रित होनेमें अंकुशादिकी उपमा दी और मधुर बोलनेमें कुसुमकी उपमा दी। दो बार उपमा देकर जनाया कि मधुर वचन कहकर प्रणाम कियाहै। अतः दोनोंकी उपमादी। खल स्वार्थ हेतु प्रिय वचन बोलतेहैं, यथा—'बोलहिं मधुर वचन जिमि मोरा। खाहिं महाअहि हृदय कठोरा'। प्रिय वाणीकी उपमा प्रायः फूलकी दीजातीहै, यथा—'बाउ कृपामूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला', 'मातुबचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुरतरुके फूला'(अ० §५२)। पर खलकी वाणी प्रिय होनेपर भी भयदायक है, यह जनानेके लिए 'अकालके कुसुम' की उपमा दी। विना समयके, ऋतुके पहले या पीछे, फूल निकलना अपशकुनसूचक है, राजाप्रजाको भय उपजानेवाला है। (ख)—अंकुश नया और हाथी के मस्तकपर धँसा, धनुष जब विशेष नया (जैसा खींचकर वाण चढ़ाने और निशाना करने पर लचता है) कि किसी का घात किया, सर्प झुका कि लपककर काटा, बिल्ली दबकी (सिमिटकर बैठी) कि मूसा आदिको लिया। सब दूसरेको दुःख देनेके लिये ही नवतेहैं।—(शिला)। पुनः, (ग) अंकुश और धनुष दूसरे-के प्रेरनेसे दुःख देतेहैं, सर्प और बिल्ली स्वतः भी दुःख देनेहैं और

† ययौ मारीचसदनं परंपारमुदन्वतः। (निजार्थे) तत्परीभूतः प्रणिपत्य पुनःपुनः (आध्यात्मे)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दूसरेकी प्रेरणासे भी। रावणको शूर्पणखाने प्रेरित किया और फिर अपनी इच्छासेभी रावणने। यही निश्चय किया। (घ)—'भयदायक खल कै प्रिय बानी' से जनाया कि कठोर वाणी तो भयदायक होतीही है, यथा—'बचन बज्र जेहि सदा पिआरा'। जब कठोर बोलतेहैं तब उनके लिए वज्रकी उपमा देतेहैं, और 'प्रिय' में अकालके फूल क्योंकि यह उनकी प्रकृतिके विरुद्ध है जैसे वह फूल प्रकृतिके नियमके प्रतिकूल हैं। अतः, दोनों भयदायक। "दुर्जनैरपिरुक्तानि समतानि प्रियाणि च। अकाल कुसुमानीव भयं संजनयन्ति मां' इति नीतिः"।‡

नोट—नम्रता और प्रियवाणी ये दोनों गुण हैं और सुखदायक हैं परन्तु खलमें इनका होना स्वार्थसाधनके प्रयोजनसेही होताहै। अतः उसमें ये अवगुण और दुःखदायी कहेगए। यहाँ उदाहरण, लेश और विरोधाभास अलंकार हैं। बिल्ली सर्प आदि झुके कि समझ लो कि घात करना ही चाहतेहैं। रामचन्द्रजीके लङ्कामें पहुँचतेही वही बिना समयके फलफूल हुए यह रावणके लिए अपशकुन हुआ, रामजीको लाभ हुआ—'सब तरु फरे रामहित लागी। रितु अनरितु अकालगति त्यागी'। अकालके कुसुमकी उपमा देकर जनाया कि मारीचवध होगा और निश्चरकुलका नाश—यह प्रियवाणीका फल हुआ।

मा० हं०—पूर्वोक्त [§ २२ (३-६) का लेख देखिए] विचारोंसे स्वामीजीने (? का) अपना रावण कहींसेभी लिया हुआ नहीं है। उनका रावण कभी कामी, कभी क्रोधी, कभी बकध्यानी, कभी स्त्रियों-को डरानेवाला, कभी उनसेभी डरनेवाला—इस प्रकारका हुआहै। इसीलिए स्वयं गोसाईंजी कहतेहैं कि अध्यात्म और वाल्मीकि की अपेक्षा उनके रावणसे विशेष डरकरही रहना भला है। क्योंकि

"नवनि नीच की अति दुखदाई। जिमि अकालके कुसुम…"

‡ "अकालके कुसुम" यथामत्स्यपुराणे—"अद्भुतानि प्रसूयन्ते तत्र देशस्य-विद्रवा। अकाले फलपुष्पाणि देशविद्रवकारकः ॥१॥ दुर्जनैरुच्यमानानि सम्म-तानि प्रियाण्यपि। अकाल कुसुमानीव भयं संजनयन्तिहि ॥२॥" अर्थात् देशमें भयानक काल उपस्थित होनेपर अजब-अजब बातें पैदा होने लगतीहैं। अकाल के फलफूल देशमें भयानकता उपजानेवाले होतेहैं। यदि दुर्जनोंके मुँहसे प्रिय सम्मतियाँ भी निकलें तो अकाल कुसुमोंकी तरह अवश्य भय पैदा करतीहैं।

मा० म० इसे पद्मपु० का और पु० र० कु० मत्स्य पु० का श्लोक कहतेहैं!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यानी 'अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयङ्करः' । इन सब कारणोंसे एवं कवि-परिचय * से ज्ञात होताहै कि गोसाईंजीने अपने रावणका वर्णन अकबरका लक्ष्य करके बनायाहै ।

करि पूजा मारीच तब सादर पूछी बात ।
कवन हेतु मन व्यग्र अति अकसर आएहु तात ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—अकसर [एक+सर (प्रत्यय)] अकेले । व्यग्र=उदास ।

अर्थ—तब मारीचने पूजा करके आदरपूर्वक बात पूछी । हे तात ! किस कारण तुम्हारा मन अत्यन्त चिन्तित है जो तुम अकेले आएहो ।

पु० र० कु०—रावणने स्वार्थवश होकर अपनी मर्यादा छोड़दी, माथा नवाया । मारीचने अपनी मर्यादा रखनेके लिए पूजाकी । पूजा करके तब आगमनका हेतु पूछा । इसी प्रकार पूछनेकी रीति है, यथा—"चरनपखारि कीन्ह अति पूजा । मोहि सम आज धन्य नहिं दूजा ॥ केहि कारन आगमन तुम्हारा । कहउ सो करत न लाउब बारा" इति दशरथवाक्यं विश्वामित्रं प्रति । पुनः, यथा—"करि पूजा समेत अनुरागा । मधुरबचन बोलेउ तब कागा !' नाथ कृतारथ भएउँ मैं तव दरसन खगराज । आयसु होइ सो करउँ अब प्रभु आयेउ केहि काज ।...",

* गोसाईंजीकी रामायणका काल अकबर बादशाहीका था । उस अमलदारीकी जो भीतरी बातें थीं वे धूर्तताकी थीं, फलस्वरूप हिन्दूधर्मकी ग्लानि. राजपूत स्त्री-पुरुषोंकी घोर विडंबना, जातिव्यवस्था पर प्रहार, बालविवाहको रुकावट, विधवाविवाह प्रोत्साहन, यावनी धर्मका प्रचार; फारसीभाषा और मुसलमानी प्रथाओंका मनमाना फैलाव, 'कंटकं कंटकेनैव' की राजनीति इ० इ० हैं । मोगलोंकी अमलदारीका हेतु और उसके भावी परिणाम; गोस्वामीजीके व्यापक निरीक्षणमें शीघ्रही आचुके । ये ही अत्याचार गोसाईंजीके दैनिक दृश्य बनगए और इन्हीं दृश्योंपर उन्होंने रावणके अत्याचारकी छाप लगादी और दूसरेही क्षण बड़े त्वेष से 'जिन्हके यह आचरण भवानी । ते जानहु निसिचर सब प्रानी' इस असंबद्ध चौपाईको बीचहीमें घुसेड़कर उन्होंने अपने रावणको ध्वनित कर दिया ।...अकबरकालीन देशस्थितिका वर्णन गोसाईंजीने (कवित रामायणमें) कैसी हृदयस्पर्शी वाणीसे कियाहै—शंकाकार उसे अवश्य देखें ।-(मा०हं०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दसमुष सकल कथा तेहि आगें।
कही सहित अभिमान अभागें॥ २४।१८ (१)
होहु कपट-मृग तुम्ह छलकारी।
जेहि बिधि हरि आनौं नृप नारी॥ ,, (२)

अर्थ—भाग्यहीन दशाननने अभिमानसहित सारी कथा उसके सामने कही। फिर बोला कि) तुम छलकरनेवाले कपटमृग बनजाओ, जिस प्रकारसे मैं रामजीकी स्त्रीको हरलाऊँ।

नोट—अभिमानसहित बोलनेके सम्बन्धसे 'दशमुख' कहा; मानों दशों मुखोंसे कहरहाहै। रामसे बैर ठाना अतः अभागा कहा। †—रामबिरोध न उबरसि सरन बिष्नु अज ईस'। जहाँ यह सुझाना होता है कि बैर करोगे तो दशशीश काटेजायँगे वहाँ प्रायः 'दशशीश' पद देते हैं।

† यथा—'बेद पढ़ै बिधि संभु सभीत पुजावन रावनसों नित आवैं। दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरहि ते सिर नावैं॥ ऐसेहु भाग भरे दसभाल ते जो प्रभुता कबिकोविद गावै। रामसे बाम भये ते बामहि बाम सबै सुख संपति लावै॥'—(क०)।

नोट—अकंपनने आकर जब रावण खरदूषणादिके नाशका समाचार कहा और वह सुनकर बोला कि मैं अभी दोनोंको मारने जाताहूं—गमिष्यामि जनस्थानं रामं हन्तुं सलक्ष्मणम्'; तब अकंपनने दोनोंका बल प्रताप बखानकर कहा कि तुम उनको नहीं जीतसकते—'नहि रामो दशग्रीव शक्यो जेतुं रणे त्वया। रक्षसां वापि लोकेन स्वर्गः पापजनैरिव'—(वा० ३१)। यह कहकर उसने रावणसे उनके मारनेका यही उपाय बताया कि तुम उनको धोखा देकर उनकी सुन्दर स्त्रीको हरलाओ उसकी सुंदरताको देवी, गन्धर्वी, अप्सरा, पन्नगी कोई भी नहीं पासकता, सीताके विना रामचन्द्रजी जी नहीं सकते।—'अयं तस्य वधोपायस्तन्ममैकमनाः शृणु। नैव देवी न गन्धर्वी नाप्सरा न च पन्नगी। तुल्या सीमन्तिनी तस्य मानुषी तु कुतो भवेत्। तस्यापहर भार्यां त्वं तं प्रमथ्य महावने। सीतया रहितो रामो न चैव हि भविष्यति'—इस सलाहको रावणने पसन्द किया। इसीसे सीताहरणका विचार उसके जीमें हुआ। अध्यात्ममें शूर्पणखाका ही यह सलाह दीहुईजान पड़तीहै। और मानसमें रावणका स्वयं अपना यह विचार जानपड़ताहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु०र०कु०—(क) 'तेहि आगे' अर्थात् इसीसे कहा, और किसीसे न कहा एकान्तमें इससे कहा, (ख) 'सहित अभिमान' यह कि वे राजकुमार हैं, उनका छलना क्या ? हमने तो देवताओं तकको छलसे वश करलिया। (ग)—होहु कपटमृग तुम्ह छलकारी...नृपनारी'। शूर्पनखाने कहाथा कि 'अवध नृपति दसरथके जाये। पुरुषसिंह बन खेलन आए' और 'तिन्हके संग नारि एक स्यामा' यही मारीचको समझाकर कहाकि तुम कपटमृग बनजाओ, राजा हैं शिकार करेंगे; तुम उन्हें शिकारके बहाने सीताके निकटसे बहुतदूर लेजाकर करदो फिर स्त्रीका हरण हमारे हाथ है, हमने उसकी विधि सोच लीहै, यती बनकर हरण करूँगा। उन्होंने हमारी बहिनको कुरूप किया हम उनकी स्त्री हरेंगे। (घ) छलकारी यथा—प्रगटत दुरत करत छल भूरी' पुनः रामजीके स्वरमें बोला यह छल किया।

तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा।
ते नर रूप चराचर ईसा॥ § २४/१८ (३)
तासों तात बयरु नहिं कीजै।
मारे मरिअ जिआए जीजै॥ ,, (४)

अर्थ—तब मारीचने (वा मारीचने पुनः) कहा कि हे दशशीश ! सुनो, वे मनुष्यरूपमें चराचरके स्वामी हैं। हे तात ! उनसे वैर न कीजिए। उनके मारनेसे मृत्यु और जिलानेसे जीना होताहै।

पु० र० कु०—१ 'तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा...' इति।—'पुनि' शब्द देकर जनाया कि एक बार पहले कहकरउसे वैरसे निवारण करचुकाहै; अब 'पुनि'समझाताहै। यथा—'एकमुक्तो दशग्रीवो मारीचेन स रावणः। न्यवर्तत पुरीं लंकां विवेश च गृहोत्तमम्'। [पहले अकंपन ने जनस्थानसे भागकर लंकामें आकर रावणको खबरदी तब वह मारीचके यहाँ गया और मारीचके समझानेपर लौट आयाथा। (वा० ३१) इस कथाको 'पुनि' शब्दसे जनाकर वाल्मीकिके मतकीभी रक्षा की। दूसरा अर्थ 'पुनि' का तत्पश्चात् है।] २—'दशशीश'। जब कथा उसने मारीचसे कही तब 'दसमुख' पद दिया, यथा—'दसमुख सकल कथा तेहि आगें। कही सहित अभिमान अभागें'। कथा मुखसेही कहीजातीहै। जब उसको वैरसे निवारण करनेकी बात

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कही तब 'दससीस' पद दिया; भाव कि वैर करनेसे दशो सिर काटे जायँगे, यथा—'तव सिर निकट कपिन्हके आगे। परिहहिं धरनि राम सर लागे'।

३—'ते नररूप चराचर ईसा' इति।—भाव कि तुम उन्हें नृप समझते हो, यह भूल है। वे नृप नहीं हैं; नररूप धारण किएहुए चराचरके ईश हैं।

४—'तासों तात वैर नहिं कीजे...'। वैर बराबरवालेसे करे, बड़ेसे करनेसे हानि है, यथा—'प्रीति बिरोध समान सन करिय नीति अस आहि'। पुनः यथा—नाथ बयरु कीजिय ताही सों। बुधि बल सकिय जीति जाही सों॥ तुम्हहिं रघुपतिहिं अन्तर कैसा। खलु खद्योत दिनकरहि जैसा॥ तासु बिरोध न कीजिय नाथा। काल करम जिव जाके हाथा॥—(लं० ५ §)

५—(खर्रा) 'मारे मरिय जियाये जीजै'। भाव कि त्रिदेवरूप हैं, शिवरूप मारनेमें विष्णुरूप पालने या जिलानेमें और ब्रह्मारूप रचना करनेमें—सुबाहुको मारा, खरदूषणादि उनके मारनेसे मरे, हम उनके जिलानेसे जीवित हैं नहीं तो कबका मारडाला होता।

मुनि मख राषन गएउ कुमारा।
बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा॥ § $\frac{२४}{१८}$ (५)
सत जोजन आएउँ छन माहीं।
तिन्ह सन बयरु किए भल नाहीं॥ ,, (६)
भइ मम कीट भृंग की नाई।
जहँ तहँ मैं देषौं दोउ भाई॥ ,, (७)

शब्दार्थ-'फर'=नोकीला अग्रभाग जो शरीरको बेध देताहै, गाँसी।

अर्थ—वह कुमार मुनि (विश्वामित्र) की यज्ञकी रक्षाको गए थे। रघुनाथजीने विना फलका बाण मुझे मारा। क्षण भरमें मैं सौ योजन (४०० कोस) आगिरा (वा सौयोजन चौड़े समुद्रके पार यहाँ आया) उनसे वैर करना अच्छा नहीं है। मेरी दशा भृंगवाले कीड़ेकीसी * होगई, मैं जहाँ तहाँ दोनों भाइयोंकोही देखताहूँ।

* 'भृंग'—एक प्रकारका कीड़ा जिसे बिलनीभी कहते हैं। इसके विषयमें यह प्रसिद्ध है कि यह किसी कीड़ेके ढोलेको पकड़कर लेआताहै और उसे मट्टी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु—१ 'बिनुफर सर रघुपति मोहि मारा...' इति। अर्थात् मुझे जीता रखा कि आगे सीताहरणमें इससे काम चलेगा और मेरे भाई सुबाहुको मारडाला बचानेके लिएही फररहित बाणसे मुझे लंका तटपर फेंकाथा और अब फरसहित मारेंगे तो मेरा मरण अवश्य होगा जैसे सुबाहुका हुआ, यथा—'बिन फर राम बान तेहि मारा। सतजोजन गा सागर पारा। पावकसर सुबाहु पुनि मारा। बक्सरसे दक्षिणसमुद्र ४०० कोश है और सागर भी ४०० कोश चौड़ा है। 'मारे मरिय जियाये जीजै'को यहाँ चरितार्थ किया। [नोट—कोष्ठकका अर्थ बालकाण्डके 'सत जोजन गा सागर पारा' के समानाधिकरणके विचारसे दियागयाहै। वहाँ इसपर विचारभी कियागयाहै।] २—'कुमारा' से यहभी जनाया कि जब उनकी कौमारावस्था थी तबकी यह बात है। और अब तो वे बहुत बड़े होगयहैं। ये यज्ञरक्षाके लिए गयथे और मैं सेनासहित यज्ञ विध्वंस करने गयाथा।

३—'भइ मम कीट भृंगकी नाई' इति। (क) जैसे कृष्णभगवान् कंसको सर्वत्र देखपड़ते थे वैसेही इसे 'राम-लक्ष्मण' सर्वत्र देख पड़तेहैं। तात्पर्य कि मैं भयके मारे उनके समीप नहीं जासकता। (ख) 'देखौं दोउ भाई' कहा क्योंकि यज्ञरक्षामें दोनों भाई साथ थे। (ग) भृंग और कीटका दृष्टान्त दिया क्योंकि भृंग कीड़ेको चारों ओर फिराता और उसे शब्द सुनाता है वैसेही रामबाणने इसे भँवाया चक्रकी तरह यहाँ फेंका अतएव भयभीत सर्वत्र उन्हींको देखताहै।—[खर्रा—जो कीट भृङ्गीसे छूटा तो भयके मारे उसे सर्वत्र भृङ्गी ही देखपड़ताहै। भृङ्गी कीटको उड़ाले जाताहै वैसेही बाण मुझे उड़ालाया। केवल भय होता तो कंसकी उपमा देते, भृङ्गीकी न देते।]

नोट—दूसरीबार जब रावण मारीचके पास गया तब उसने अपना पूर्व वृत्तान्त कहतेहुए यहभी कहा कि पूर्व बिना फरके बाणसे तो मैं इधर आगिराथा तथापि मुझे कुछ ग्लानि न हुईथी और मैं मृगरूप धरकर दण्डकारण्यमें मुनियोंको डरवाता और खातारहा। उसके उपरान्त जो अद्भुत बात हुई वह सुनो। एकबार मैं दण्डकारण्यमें

से ढक देताहै और उसपर बैठकर और डंक मारमारकर इतनी देरतक और इतने जोरसे भिन्नभिन्न शब्द करताहै कि वह कीड़ाभी इसीकी तरह होजाताहै।—(श० सं०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तपस्वी रामके समीप गया और उनके पराक्रमको भूलकर पुराना वैर यादकर मैं उनको सींगोंसे मारनेको बढ़ा। उन्होंने तीन बाण चलाए मेरे दो साथी मारेगए। मैं किसी तरह भागकर बचा। २—बस उसी समय भयभीत होकर मैं बुरे कर्मोंको छोड़कर योगाभ्यासी तपस्वी होगयाहूँ। वृक्षवृक्षमें चीर, कृष्ण मृगचर्म और धनुर्धारीरामको पाश लिए यमराजके समान देखता हूँ। एकबारगीही सहस्रों रामको एवं सारे वनको राममयही देखताहूँ। यद्यपि वे यहाँ नहीं हैं तोभी सर्वत्र वेही मुझे देखपड़तेहैं। स्वप्नमेंभी उन्हें देखकर मैं घबड़ाताहूँ। जिन शब्दोंमें रकार आदिमें है उन्हें सुनकर मैं भयभीत होजाताहूँ। (वा० ३९) *

जौं नर तात तदपि अति सूरा।
तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा॥§ २४/१७ (८)

जेहिं ताडका सुबाहु हति षंडेउ हर कोदंड।
षरदूषन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड॥ २५/१९

अर्थ—हे तात! यदि वे मनुष्यही हों तोभी बड़ेही शूरवीर हैं। उनसे वैर करके पूरा न पड़ेगा जिन्होंने ताड़का, सुबाहुको मारकर शिवका धनुष तोड़ा और खरदूषणत्रिशिराका वध किया; क्या मनुष्य ऐसा प्रतापी बलवान होसकताहै?

पु० र० कु० १—'जौं नर तात तदपि अति सूरा...' इति। रावणके 'जेहि बिधि हरि आनहुँ नृपनारी', इन वचनोंका यह उत्तर है। ये वचन रावणकी 'खातिरी' के लिए कहे। (ख) इन शब्दोंसे स्पष्ट किया कि मारीचको इनके अवतारमें निश्चय है, मनुष्य होनेमें संदेह है। 'जौं नर' रावण की खातिरीके लिए कहे। स्वयं ईश्वरही जानताहै,

* 'वृक्षेवृक्षेहि पश्यामि चीरकृष्णाजिनावरम्। गृहीत धनुषं रामं पाशहस्तमिवान्तकम्॥ अपिरामसहस्राणि भीतः प श्यामिरावण। रामभूतमिदं सर्वमरण्यं प्रतिभाति मे। राममेवहि पश्यामि रहिते राक्षसेश्वर। दृष्ट्वा स्वप्नगतं राममुद्भ्रमामीव चेतनः॥ रकारादीनि नामानि रामत्रस्तस्य रावण। रत्नानि च रथाश्चैव वित्रासं जनयन्ति मे॥'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यथा—'ते नर रूप चराचर ईसा'। पुनः रावणने 'नर' कहा—'जिहि बिधि हरि आनौं नृपनारी'। इसीसे इससे भी कहा कि जौं नर अति सूरा' अर्थात् शूरोंमें सर्वोपरि हैं।

२—'जेहि ताड़का सुबाहु...बरिबंड', अर्थात् ये सब काम मनुष्यों से होनेवाले नहीं हैं यथा—'मारग जात भयावन भारी। केहि बिधि तात ताड़का मारी॥ घोर निसाचर बिकट भट समर गनै नहिं काहु। मारे सहित सहाय किमि खल मारीच सुबाहु॥

कमल पीठि पबि कठिन कठोरा। नृपसमाज महँ सिवधनु तोरा॥। सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौसिक कृपा सुधारे॥' खर-दूषणवधसे रावणको स्वयंही मालूम होगया कि ये नर नहीं हैं। मारीच ताड़का सुबाहु आदिका वध पूर्वसेही जानताथा और खरदूषणादिका वध रावणसे उसने सुना, यथा—'दसमुख सकल कथा तेहिं आगे। कही', नहीं तो रात्रिभरमें इससे और कौन आकर कहनेवालाथा।

३—मारीचने पहले अपना हाल कहकर तब अपनी माता और भाईका हाल कहा। प्रथम ताड़का वध हुआ अतः प्रथम उसे कहा। आधे दोहे (पूर्वार्द्धमें बालकाण्ड और आधे (उत्तरार्ध) में अरण्यकांड कहा।

जाहु भवन कुल कुसल बिचारी।
सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी॥ §२५।१९ (१)
गुरु जिमि मूढ करसि मम बोधा।
कहु जग मोहि समान को जोधा॥ ,, (२)

अर्थ—अपने कुलकी कुशल समझकर घर लौट जाओ। यह सुनकर रावण जल उठा और बहुत गालियाँ दीं। रे मूर्ख! गुरुकी तरह मुझे ज्ञानोपदेश करताहै* कह तो,संसार में मेरे समान कौन योद्धा है।

* वा० ३१में मारीचकी शिक्षा पढ़नेयोग्य है अतः कुछ अंश उद्धृत किया जाताहै—

सीतामिहानयस्वेति को ब्रवीति ब्रवीहिमे। रक्षोलोकस्य सर्वस्य कः शृङ्गं छेत्तुमिच्छति॥४३ प्रोत्साहयति यश्च त्वां स च शत्रुरसंशयम्। आशीविषमुखाद्दंष्ट्रामुद्धर्तुंचेच्छतित्वया॥४४ कर्मणानेन केनासि कापथं प्रतिपादितः। सुखसुप्तस्य ते राजन्प्रहृतं केनमूर्धनि॥४५

विशुद्धवंशाभिजनाग्रहस्तस्तेजोमदः संस्थितदोविषाणः।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु०—सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी। गुरु जिमि...' इति।—१—मारीचने बारंबार वैर छोड़नेका उपदेश किया—

(क) तासों तात बैर नहिं कीजै। मारे मरिय जियाये जीजै॥

(ख) सतजोजन आयेउँ छनमाहीं। तिन्ह सन बैर किए भल नाहीं॥

(ग) जौं नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहिं बिरोधि न आइहि पूरा॥

इसीसे वह जल उठा। वैर-निवृत्तिका उपदेश जो देताहै उसपर क्रुद्ध होताहै—

(क) 'मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही'—(हनुमन्तः)

(ख) बूढ़ भपसि नतु मरतेउँ तोही। अब जनि नयन दिखावसि मोही'—(मालवन्तः)

(ग) पुनि दसकंठ रिसान अति तेहि मन कीन्ह बिचार।
रामदूत कर मरउँ बरु यह खल रत मल भार॥—(कालनेमिः)

२—दूसरे वीरकी बड़ाई जो डरताहै उसपर क्रोध करताहै—

(क) रिपु उत्कर्ष कहत सठ दोऊ। दुरि न करउ इहाँ है कोऊ॥

(ख) आन बीर बल सठ मम आगे। पुनि पुनि कहसि लाजपति त्यागे।

उदीक्षितुं रावण नेहयुक्तः स संयुगे राघव गन्धहस्ती ॥४६
असौ रणान्तः स्थितिसंधिवालो विदग्धरक्षो मृगहा नृसिंहः।
सुप्तस्त्वया बोधयितुं न शक्यः शराङ्गपूर्णो निशितासिदंष्ट्रः॥४७
चापापहारे भुजवेगपङ्के शरोर्मिमाले सुमहाहवौघे।
न राम पातालमुखेऽतिघोरे प्रस्कन्दितुं राक्षसराजयुक्तम् ॥४८

अर्थात् हमसे यह कहो कि सीताको लंकामें लानेके किये कौन कहताहै कौन राक्षसोंके लोकका शृंग काटनाचाहताहै ॥४३॥ जो आपको इस विषयमें प्रोत्साहित करताहै वह आपका शत्रु अवश्य है इसमें सन्देह नहीं क्योंकि वह विषधर सर्पके मुखसे विषवाला दाँत तुम्हारे हाथों उखड़वाना चाहताहै ॥४४॥ हे राजन् इस जानकीके हरणरूप कर्मसे तुम्हें कुकर्म-पथमें चलना किसने सिखलायाहै अपने घरमें सुखस्वरूप सोतेहुए यह थपेड़ा किसने जमाया ॥४५॥ विशुद्ध इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न मानो सूड़, तेजही महामद है, दीर्घबाहुही दोनों दाँत है ऐसे मधान्ध रामचन्द्ररूपी मदान्ध हाथीको आप छोड़नेयोग्य नहीं हो ॥४६॥ हे रावण रणके मध्यकी स्थितिकेकिये उत्सुकताही वार है रणमें चतुर राक्षसही मृग है तिनके नाशकरनेवाले तीक्ष्ण बाणही अंग हैं, तीक्ष्ण असिही दाँत है ऐसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तब मारीच हृदय अनुमाना।
नवहि बिरोधे नहि कल्याना॥ § २५/१६ (३)
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी।
बैद बंदि कबि भानस † गुनी॥ ,, (४)

भानस गुणी=महानस अर्थात् रसोईके काममें गुणवान। महानस से अपभ्रंश 'भानस' 'म्हनस' और 'मानस भी होसकताहै।

अर्थ—तब मारीचने हृदयमें विचार किया कि शस्त्री (शस्त्रका पूरा ज्ञाता), भेदी, समर्थ स्वामी, शठ (मूर्ख), धनवान्, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया इन नवसे वैर करनेसे कल्याण नहीं होता।

नोट—१ चाणक्यनीतिमें ऐसाही कहाहै—'शस्त्री प्रभेदी नृपतिश्शठो वैद्यो धनी कविः। वंदी गुणीतिव्याख्यातैर्नवभिर्न विरुद्धयताम्॥ भेद इतनाहै कि यहाँ'भानस गुणी'है और श्लोकमें केवल'गुणी'नवाँहैं।

२—शास्त्री जो शास्त्र विद्यामें निपुण है एवं शस्त्रधारी। मर्मी जो अपना गुप्त भेद जानताहै जैसे विभीषण रावणके नाभिमें अमृतकुंडका होना जनाताथा। समर्थ जैसे राजा। शठ वह है जो अपना हानि लाभ स्वयं नहीं जनाता। भानसगुणी रसोई करनेवाला। इनसे विरोध करनेसे शस्त्री सिरही काटलेगा, मर्मी शत्रुसेभेद बतादेगा, राजा जीता न छोड़ेगा, मूर्ख मित्रभी हो तो शत्रुता करलेगा, धनी रुपयेके बलपर अनेक मुकद्दमे लगाकर वा दूसरों को लालच देकर बैरीको कष्ट देगा वैद्य उलटी दवा न-देदे, भाट और कवि संसारमें अकीर्ति फैलादेंग, रसोइया विष मिलादेगा।

सोतेहुए रामचन्द्ररूपी सिंहको आप न जगाइये॥४७॥ हे राक्षसराज रावण! धनुषके चढ़ानेमें जो भुजाओंको ज़ोर करनापड़ताहै वही कीचड़ जिसमें है और बाणोंका चलाना जिसमें लहरें हैं ऐसे अतिधीर रामरूपी पातालमुखमें कूदनेयोग्य आप नहीं हो॥४८॥

† भानस गुनी पं० शिवलाल पाठक और काशिराजकी प्रतिमेंभी है। काष्ठजिह्वास्वामीने इसका अर्थ रसोइया लिखा है, पं० रामगुलाम द्विवेदीने भानस' गुनी पाठ दियाहै। वन्दन पाठकजीने 'मानस गुनी' का अर्थ ज्योतिषी आर सगुणिया कियाहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

४—शिला—रावण शस्त्री है मारही डालेगा; इसके हाथमें शस्त्र है। मेरा मर्म जानता है कि कितना बल है। राजा है ढूँढ़कर मारेगा। शठ है इसे विचार नहीं कि मेरे उपदेशपर न चलनेसे कुलका नाश होगा बात काटनेसे वैर विसाहेगा। धनवान् है दूसरेके पास जाछिपूँ तो ऐश्वर्यके बलसे मुझे लेकर मारेगा, दूसरोंको धन देकर मरवाडालेगा दी और कवि कवितामें अगणगण डालकर उससे अकल्याण करतेहैं वैसेही यह पंडित है मेरा नाश करेगा। मानस गुणी अर्थात् सगुणिया वा ज्योतिषी है जहाँ जाकर छिपूंगा जानलेगा।—(पर यहाँ शस्त्री प्रस्तुत है अतः उसे प्रथम कहा। शेष सब नीति उपदेशमें कहेगए। यह अभिप्राय नहीं है कि ये सब बातें रावणमें हों ही।—मा० स०]

५—मा० म०—किसका कल्याण नहीं है? शस्त्रीसे विरोध करनेसे शास्त्ररहितका मर्मीसे कमसल अर्थात् जारजका, प्रभुसे अनुगामीका, शठसे साधुका, धनीसे निर्धनका, वैद्यसे रोगीका, बंदीसे सूरका, कविसे राजाका मानसगुणीसे खानेवालेका कल्याण नहीं। इन नवका कल्याण नहीं होता। सबकाही अकल्याण हो यह बात नहीं।

उभय भाँति देषा निज मरना।
तब ताकिसि रघुनायक सरना॥ § २५/१९ (५)
उतरु देत मोहि बधब अभागे।
कस न मरौं रघुपति सर लागे॥ ,, (६)
अस जिय जानि दसानन संगा।
चला रामपद प्रेमु अभंगा॥ ,, (७)
मन अति हरष जनाव न तेही।
आजु देषिहौं परम सनेही॥ ,, (८)

अर्थ—दोनों प्रकारसे अपना मरण देखा तब रघुनायककी शरण ताकी। वह अभागा उत्तर देनेसे मारडालेगा, रघुनाथजीके बाण लगनेसेही क्यों न मरूँ? हृदयमें ऐसा समझकर रावणके साथ चला, रामजीके चरणोंमें उसका अटल प्रेम है, मनमें अत्यन्त हर्ष है कि आज परम स्नेहीका दर्शन करूँ।

पु० र० कु०—१ 'उभय भाँति देखा निज मरना...' इति। अर्थात्

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जो इसके राज्यमें न बसे, इससे विरोध न करे वह भलेही बच जाय यह नीति तो औरोंके लिए है। और, हमारी तो दोनों प्रकार मृत्युही होनीहै। इससे विरोध नहीं करते तोभी नहीं बचसकते और विरोध करतेहैं तो भी मारेजायँगे। उधर रामजीके हाथ इधर इसके हाथ।

नोट—शरण ताका क्योंकि वैरभावसेभी शरण होनेपर निजधाम देतेहैं—'बैर भाव मोहि सुमिरित निसिचर'। रामाज्ञामें कहाहै—'इत रावन उत रामकर मीचु जानि मारीच। कपट कनक मृग वेषु तब कीन्ह निसाचर नीच'।—(प्र०)। हनुमन्नाटकमें यों कहाहै—'रामादपि च मर्तव्यं मर्तव्यं रावणादपि। उभयोर्यदिमर्त्तव्यं वरं रामो न रावणः' ॥२४॥ (अंक ३)॥ वा० ४० में रावणके ये अंतिम वचन हैं—आसाद्यतं जीवित संशयस्ते मृत्युध्रुवो ह्यद्यमया विरुध्यतः 'एतद्यथावत्परिगण्य बुद्धया वदत्र पथ्यं कुरु तत्तथात्वम्' अर्थात् रामका भय है तो मेरे हाथों मृत्यु निश्चय जाना अतः 'उभय,।

२—'उतरु देत मोहि बधब अभागे।००' इति। रावण प्रश्नका उत्तर माँगताहै—'कहु जग मोहि समान को जोधा'। मैं उत्तर दे सकताहूँ कि 'बड़े योधा हो तब चोरी करनेको क्यों कहतेहो, युद्ध करके सीताजीको जीतलाओ; धनुष तोड़कर क्यों न लेआप, यथा—"जनकसभा अगनित महिपाला। रहे तुम्हउ बल अतुलबिसाला॥ संजि धनुष जानकी बिवाही। तब संग्राम जितेहु किन ताही॥"। ३—'अभागे' अर्थात् यह भाग्यहीन होगया, इसका सर्वस्व नाश होगा।

४—"कस न मरौं रघुपति सर लागे" अर्थात् रघुपतिके बाणसे मरनेका योग लगा मुक्तिहोगी यथा—'रघुबीर सर तीरथ सरीरन्ह त्यागि गति पैहहिं सही'। अध्यात्ममें कहाहै कि दुष्टके हाथसे मरनेसे नरक होगा इससे रामजीके हाथ क्यों न मरूँ, यथा—"यदि मां राघवो हन्यात्तदा मुक्तो भवार्णवात्॥ ३५॥ मां हन्याद्यदि चेद्दुष्टस्तदमिश्रिरयो ध्रुवम्। इति निश्चत्यमरणं रामादुत्थाय वेगतः॥ ३६॥"—बाणकी शरण मुक्तिके लिए ली अतएव बाण द्वारा इसे मारकर प्रभु मुक्ति देंगे।

५—'अस जिय जानि दसानन संगा।००' इति।—तब मारीच हृदय अनुमाना' उपक्रम है और 'अस जिय जानि' उपसंहार। 'प्रेम अभंगा' कहा क्योंकि मरणपर्यन्त इसका प्रेम भंग न हुआ; ऐसा ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बनारहा, यथा—'प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा । सुमिरेसि राम समेत सनेहा ॥ अंतर प्रेम तासु पहिचाना' ।

६—"मन अति हरष जनाव न तेही ।००" इति ।—अति हर्ष' का भाव कि रघुनाथजीके बाणसे मरूँगा यह समझकर हर्ष हुआ और 'आज देखिहउँ परम सनेही' यह समझकर 'अति हर्ष' हुआ। (२) जीवके स्त्री पुत्र आदि स्नेही हैं और ईश्वर परम स्नेही हैं कि जो गर्भमेंभी संग नहीं छोड़ते ।

(३) उससे प्रकट नहीं करता। क्योंकि यदि वह जानले तो संदेह करेगा कि दुःखके समय इसे सुख क्यों हुआ, यह अवश्य छल करेगा, इसके मनमें कुछ कपट है, ऐसी शंका होनेपर वहाँ न ले जायगा, स्वयंही मेरा वध करेगा ।

☞ स्मरण रहे कि रावणने अपना मंत्र, प्रभुने अपनी युक्ति और मारीचने अपना मुक्तिका योग, तीनोंने गुप्त रक्खा । तभी तीनों सफल मनोरथ हुए । रावणने कुलरहित मोक्ष पाया, रावण मायासीताद्वारा छलागया और मारीचने मुक्ति पाई । यदि दूसरेको जनादेते तो सफल न होते । यथा—'जोग जुगुति जप मंत्र प्रभाऊ । फल इतनहिं जब करिय दुराऊ'—(ब० §१६७) ।

छंद

निज परम प्रीतम देषि लोचन सुफल करि सुष पाइहौं । २५/१९
श्रीसहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं ॥
निर्बानदायक क्रोध जाकर भगति अवसहि बस करी ।
निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुषसागर हरी ॥

अर्थ—अपने परम प्रियतम (प्यारे) को देखकर नेत्रोंको सुफल करके सुखपाऊँगा । श्रीजानकीजीसहित और भाई लक्ष्मण समेत कृपाके स्थान (रामचन्द्रजीके) चरणोंमें मन लगाऊँगा । जिसका क्रोध मोक्षका देनेवाला है और जिसकी भक्ति उसे अवश्यही वश करलेनेवाली है † वही आनन्दसिन्धु भगवान् अपने हाथोंसे बाण (धनुषपर) लगाकर मुझे वधकरेंगे ।

† रा० प० 'अवसहि'=जो वशमें होनेवाला नहीं अर्थात् मनको । २–पांडेजी 'अवस'=किसीके वश नहीं=राम । पाठमें 'व' है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु०—१ 'निज परम प्रीतम देखि...'। 'निज' का भाव कि और सब स्नेही अपने नहीं हैं और ये स्नेही अपने हैं। सच्चे स्नेही हैं, कभी साथ नहीं छोड़ते।

'श्रीसहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन...' इति। पूर्व केवल रघुनाथजीके दर्शनसे सुख पाना लिखा इसलिए अब तीनोंको कहते हैं।—[यहाँ सहित और समेत दो शब्द आए हैं। ऐसाही प्रयोग और भी स्थानोंमें हुआहै, यथा—'तेहिं अवसर नारदसहित अरु रिषिसप्त समेत। समाचार सुनि तुहिनगिरि गवने तुरत निकेत'—(ब० §९७)]। यहाँ 'श्रीसहित' में यहभी भाव है कि पूर्व जब मैंने देखा था तब वे श्रीसहित न थे और अब शक्तिसहित उनके दर्शन होंगे। इसके बाद साथ ही विचार उठा कि जो भाई उस समय साथ थे वह भी तो साथ हैं अतः फिर अनुज समेत' पद दिया।]

३—'निर्वानदायक क्रोध जाकर भगति अवसहि००' इति क्रोध और भक्ति दोनोंसे अपनी भलाईही है। क्रोधसे यों कि 'निज पानि सर००', मुझे अपने हाथोंसे बाण चलाकर मारेंगे, मैं मुक्त होजाऊँगा। और भक्ति तो ऐसी सबल है कि उससे तो प्रभु अवश्यही वश होजाते हैं। यथा—'रीझे बस होत खीझे देत निज धाम रे'—(विनय)।

४—'बधिहि सुखसागर हरी' इति (१) सुखसागर हैं, वे मेरा वधकरेंगे तो मैं भी उस सुखसागरमें प्राप्त होजाऊँगा, ईश्वरमें मिलकर सुखसागर होजाऊँगा, यथा—'सरिताजल जलनिधि महँ जाई। होइ सुखी जिमि जिव हरि पाई'। (२)—दर्शनसे सुखकी प्राप्ति कही—'निज परमप्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं' और वधसे सुखका सागर होना कहा। तात्पर्य कि जब जुदा रहा तब सुख पाना कहा, जब निर्वाणपदकी प्राप्ति हुई तब वही होगया। दर्शन और वध दोनोंमें आनंद कहा। (३) 'हरी' का भाव कि 'भक्ताना क्लेशं हरतीति हरिः'। जन्ममरणके क्लेशको छुड़ादेंगे।

मम पाछे धर धावत धरे सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहौं धन्य न मो सम आन॥

अर्थ—धनुषबाण धारण किएहुए मेरे पीछे मुझे पकड़नेको दौड़ते हुए प्रभुको मैं पीछे फिरफिरकर देखूँगा—मुझसा धन्य कोई नहीं!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु० १—'धर धावत'=धरने (पकड़ने) को धावते, यथा—'कपट कुरंग संग धर धाए' जब नहीं पकड़ मिलेगा तब मारेंगे इसीसे 'धरे सरासन बान' धायँगे। यथा—'कपट कुरंग कनकमनिमय लखि प्रिय सो कहति हँसि बाला। पाये पालिबे जोग मंजु मृग मारेहु मंजुल छाला' इति गीतावल्यां।—[ऽ०—वा, 'धर धावत'=पीछा पकड़ेहुए दौड़ते जैसा शिकारियोंकी रीति है।

२—'फिरि फिरि प्रभुहि...' इति। (क)—दर्शनका उत्साह भारी है अतएव ग्रंथकारभी बारंबार उसका उत्साह लेखनी-द्वारा कहरहेहैं—(१) 'आजु देखिहौं परम सनेही'। (२) निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं'। और, (३) 'फिरि फिरि...'। (ख)—'धन्य न मो सम आन'—सुकृती पुण्यवान् धन्यः' सुकृतसे भगवान्का दर्शन मिलताहै, यथा—'जिन्ह जानकी राम छबि देखी। को सुकृती हम सरिस बिसेषी'। पुनः, भाव कि शिवादिक प्रभुके पीछे धावतेहैं (अर्थात् उनका ध्यान करतेहैं) और प्रभु मेरे पीछे धावेंगे। अतः मेरा भाग्य उनसेभी बड़ा है। 'फिरि फिरि' का भाव कि इनका दर्शन योगियोंकोभी एकबारभी दुर्लभ है और मुझे बारंबार दर्शन होंगे अतः मेरे समान वेभी भाग्यशाली नहीं।

तेहि बन निकट दसानन गएऊ।
तब मारीच कपट मृग भएऊ॥ २६/२० (१)
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई।
कनक-देह मनि-रचित बनाई॥ ,, (२)
सीता परम रुचिर मृग देषा।
अंग अंग सुमनोहर बेषा॥ ,, (३)

अर्थ—जब रावण उस वनके निकट पहुँचा तब मारीच कपटमृग बनगया। अत्यन्त विलक्षण है, कुछ वर्णन नहीं कियाजासकता। मणियोंसे जटित सोनेकी देह बनाईहै। सीताजीने परम सुन्दर हिरन देखा, उनके अंग अंगका वेष अत्यन्त मनकोहरनेवाला था।

पु० र० कु०—१ 'तेहि बन निकट दसानन गएऊ...' इति। (क)—'पंचबटी बसि श्रीरघुनायक। करत चरित सुरमुनि सुखदा-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यक' और 'तेहि बन निकट दसानन गएऊ' का संबंध है। इसी प्रकार 'होहु कपटमृग तुम्ह छलकारी' का और 'तब मारीच कपट मृग भयऊ' का संबंध है। (ख)—मृग ही बना क्योंकि इसका चर्म कामका होताहै, शूकरादि मृगों (पशुओं) का चर्म एक तो कामका नहीं दूसरे सुन्दर नहीं। मृगको देखकर सीताजी रामचन्द्रजीको प्रेरित करेंगी। सिंह शूकरादि निकट नहीं जासकते उनसे भय होताहै।

२—'अति बिचित्र कछु बरनि न जाई' अर्थात् विचित्र होता तो कुछ कहतेभी, पर यह तो 'अति विचित्र' है, अतः कुछ कहा नहीं जाता। इतनाही कहतेहैं कि कनककी देह मणिरचित बनाईहै और बनाव कुछ नहीं कहतेबनता। मृग प्रायः स्वर्णवर्णके होतेहैं अतः स्वर्णकी देह बनाई।

नोट—वाल्मीकिजी लिखतेहैं कि दण्डकारण्यमें पहुँचकर जब रामजीका आश्रम देखपड़ा तब अपने रथसे उतरकर रावणने मारीच से कहा कि यही केलोंसे घिराहुआ उनका आश्रम है अब जिसलिए आपहैं वह काम शीघ्र करो।—यह 'वन निकट' पदसे जनायागया।

३—'सीता परम रुचिर मृग देखा...' इति। (क)—श्रीरामलक्ष्मणजीनेभी देखा पर वे बोले नहीं। जानतेहैं, यथा—'तब रघुपति जानत सब कारन'। (ख)—'खर्रा—मायाकी सीता, मायाका मृग। अतः मायाकी दृष्टिमें माया है, जहाँ मन जाताहै वहीं हरजाताहै।

नोट १—हनुमन्नाटक अङ्क ३ श्लो० २६ से मिलान कीजिए—देहं हेममयं हरिन्मणिमयं शृङ्गद्वयं वैद्रुमाश्चत्वारोऽपि खुरा रदच्छदयुगं माणिक्यकान्तिद्युति। नेत्रे नील सुतारके सुवितते तद्वच्चलं प्रेक्षितं तत्तद्रत्नमयं किमत्र बहुना सर्वाङ्ग रम्यो मृगः ॥२६। अर्थात् स्वर्णकी जिसकी देह है, हरित मणियोंकी सींगें हैं, मूँगेके चारों खुर हैं; स्वच्छ एवं माणिक्यकी कान्तिके समान दाँत हैं, नीले सुन्दर पुतलियोंवाले नेत्र हैं और उन्हींके अनुकूल जिनका चंचल अवलोकन है वैसे रत्नोंसे युक्त बहुत क्या कहाजाय उसका सर्वांग शरीर रमणीय है।

२—वा० ४२-४३ में वर्णन इसके मनोहर वेषका है—'नीलमणिके समान सींगें, मुख कहीं सफ़ेद कहीं काला, मुख लालकमल और कान नीलकमल सम, गर्दन कुछ ऊँची, वैदूर्यमणिकेसमान खुर, चाँदीके सैकड़ों बिन्दुओंसे चित्रित, पीठ लालकमलकेसरसदृश होंठ मुक्ताम-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

णिसे चित्रित, बाल चाँदीके, सोनेके रोएँ, प्रौढ़ सूर्य्यके सदृश वर्ण, शङ्ख और मुक्ताकी कान्तिवाला पेट था * इसीको यहाँ 'अति विचित्र', परसु रुचिर' और'सुमनोहर' और 'कनकदेह मणिरचित'से जनायाहै।

'सुमनोहर' सत्यही इसने सीताजीका मन हरलियाथा यथा—"अहो रूपमहो लक्ष्मीः स्वर संपच्च शोभना। मृगोऽद्भुतो विचित्राङ्गो हृदयं हरतीवमे'—(वा० ४३) अर्थात् अहा कैसा रूप है, कैसी श्री है, स्वर कैसा सुंदर है, अद्भुत मृगा है विचित्र अंग है, मेरे मनको हरे लेताहै।

सुनहु देव रघुबीर कृपाला।
येहि मृग कर अति सुंदर छाला॥ (४)
सत्यसंध प्रभु बधि करि एही।
आनहु चर्म कहति बैदेही॥ ,, (५)

अर्थ—वैदेहीजी बोलीं कि हे देव! हे कृपाल रघुबीर! सुनिए। इस मृगका चर्म (खाल) बड़ाही सुंदर है। हे सत्यप्रतिज्ञ प्रभो! इसको मारकर इसकी खाल लाइए।

पु० र० कु०—'देव' अर्थात् दिव्य हो, सब जानतेहो कि राक्षस मृग बनकर आयाहै। रघुबीर हो, वीरका धर्म है दुष्टका वध करना। कृपालु हो, दुष्टोंको मारकर मुनियोंपर कृपा कीजिए; यह मुनिद्रोही है, यथा—'लै सहाय धावा मुनिद्रोही" पुनः, मुझपरभी कृपा कीजिए इसका चर्म लेआइए। पुनः, इसपरभी कृपा कीजिए, मुक्ति दीजिए पशुकी गति उसके हाथकी बात नहीं है, आपके हाथसे वध होनेसेही मुक्त होसकेगा। आप सत्यसंध हैं, निश्चर-वधकी प्रतिज्ञा करचुकेहैं उस प्रतिज्ञाको पूरी कीजिए। जो कहो कि यह राक्षस है इसका चर्म

* 'मणिप्रवरशृंगाग्रः सितासितमुखाकृतिः। रक्तपद्मोत्पलमुख इन्द्रनीलोत्पलश्रवाः॥ किंचिदत्युन्नतग्रीव इन्द्रनीलनिभोदरः। मधूकनिभपार्श्वश्च कंजकिंजल्कसंनिभः॥ वैदूर्य संकाशखुरस्तनुजंघः सुसंहतः। इन्द्रायुधसवर्णेन पुच्छेनोर्ध्वं विराजितः॥ मनोहर स्निग्धवर्णो रत्नैर्नाना विधैर्वृतः। क्षणेन राक्षसो जातो मृगः परमशोभनः॥ रोप्यैर्बिन्दुशतैश्चित्रं च प्रियनंदनः। राजीवचित्रपृष्ठः स विरराज महामृगः...' मुक्तामणि विचित्राङ्गं ददर्श परमङ्गना। तं वै रुचिर दन्तोष्ठं रुप्यधातु तनूरुहम्॥' इत्यादि।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कैसे लावेंगे उसपर कहतेहैं कि आप 'प्रभु' (समर्थ) हैं, झूठको भी सत्य कर सकतेहैं। इसकी छाल 'अति सुंदर' होगी क्योंकि यह 'अति विचित्र' है।—(सत्यसंध, रघुवीर, कृपाला सबका चरितार्थ आगे दिखावेंगे)।

तब रघुपति जानत सब कारन।
उठे हरषि सुर काजु सवारन॥ १२६ (६)
मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा।
करतल चाप रुचिर सर साँधा॥ ,, (७)

शब्दार्थ—परिकर=कटिबंधनं। साँधना=तीरको धनुषपर लगाकर निशाना साधना, लक्ष्यकरना=बाणको धनुषमें लगाना।

अर्थ—तब रघुनाथजी, जो सब कारण जानतेहैं, देवकार्य सँभालने के लिए प्रसन्नतापूर्वक उठे। मृगको देखकर कमरको वस्त्रसे बाँधा, और हाथोंमें सुन्दर धनुषपर सुंदर बाण चढ़ाया।

पु० र० कु० १—'जानत सब कारन'। प्रभु सब जानतेहैं कि यह मारीच है और इसके साथ रावणभी आयाहै, यथा—'जद्यपि प्रभु जानत सब कारन'।'राजनीति राखत सुरत्राता'। पुनः,यथा—'सो माया रघुबीरहि बाँचा। लछिमन कपिन्ह सो मानी साँची'।—(वाल्मीकि और अध्यात्ममेंभी स्पष्ट कहाहै कि यह मारीच है।)

२—'उठे हरषि सुरकाज सँवारन' अर्थात् यदि देवकार्य्य न सँवारना होता तो वहींसे मारदेते जैसे जयन्तको। पर बिना यहाँसे उठकर दूर गए रावण आवेगा नहीं न सीताहरण होगा न उसका वध होगा और न दैवकार्य्य होगा।

३—'मृग बिलोकि००, रुचिर सर साधा'। मृग परम रुचिर है, यथा—'सीता परम रुचिर मृग देखा' अतः 'रुचिर' मृगके लिए 'रुचिर-सर' का अनुसंधान किया जिसमें मायाशरीर बेधकर सत्य शरीरको भी बेध दे।

☞ देखिए रामजीके लिए मृगभी आताहै तो वह परमरुचिर बनकर (जैसे पूर्व शूर्पणखा 'रुचिर रूप' धरकर आईथी) और प्रभु मारनेचले सो भी 'रुचिर सर' से। मानों राक्षस जानते थे कि "रुचिर" श्रीरामजीको अत्यन्त प्रिय है। विशेष आ० §१६ (७) के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नोटमें देखिए। आगे लंकाकाण्डमें प्रभुके काममें मृगचर्म आवेगा तब वहांपर उसेभी 'रुचिर' दिखायाहै, यथा—'तापर रुचिर मृदुल मृगछाला। तेहि आसन आसीन कृपाला'—(लं० §१०)

प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई।
फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई॥ §३६/२० (८)
सीता केरि करेहु रखवारी।
बुधि बिबेक बल समय बिचारी॥ ,, (९)

अर्थ—प्रभुने लक्ष्मणजीसे समझाकर कहा कि हे भाई! वनमें बहुतसे निश्चर फिरतेहैं। तुम बुद्धि विवेक बल और समयका विचार करके सीताकी रखवाली करना।

पु०र०कु०—१'कहा समुझाई।'क्या समझाया सो काव स्वयं कहतेहैं कि'फिरत००'। २—'बुधि बिबेक बल समय बिचारी'का भाव कि समय विचारकर बुद्धि, विवेक और बलसे काम लियाजाय तो कोई कार्य्य संसारमें कठिन नहीं सब सुलभ होजातेहैं,' यथा—'पवनतनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिज्ञान निधाना, तब—'कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं तात होइ तुम्ह पाहीं॥'—(सुं० §३०)। भाव कि जैसा मौक़ा, स्थिति, प्रयोजन आपड़े वैसा विचारकर करना।

वै०—समय यह कि रावणसे वैर करचुकेहैं। छलरूपसे कोई आवे तो बुद्धि विवेकसे विचार करलेना सहसा विश्वास न कर लेना। सामना करे तब बलसे काम लेना। पं० रा० ब० श०—बुद्धिसे विचारना, विवेकसे सोचसमझ लेना, बल अनुमानकर काम करना। इनका चरितार्थ आगे दिखावेंगे।

प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी।
धाए रामु सरासन साजी॥ §३६/२० (१०)
निगम नेति सिव ध्यान न पावा।
माया मृग पाछे सो धावा॥ ,, (११)

अर्थ—प्रभुको देखकर मृग भाग चला। रामचन्द्रजीने धनुष सजा (चिल्ला चढ़ा) कर उसका पीछा किया। वेद जिसको 'नेति कहते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं, जिसे शिव ध्यानमें नहीं पाते वही प्रभु मायामृगके पीछे दौड़े।*

पु० र० कु०—१ (क) 'प्रभुहिबिलोकि चला मृग भाजी।००' अर्थात् दोनोंने परस्पर एक दूसरेको देखलिया। यथा—'मृग बिलोकि परिकर कटि बाँधा' और यहाँ 'प्रभु बिलोकि०' और जो पूर्व कहाथा कि 'फिरि २ प्रभुहि बिलोकिहौं' उसको यहाँ चरितार्थ किया। (ख)—बाण पहलेही धनुषपर लगायाथा सो (लक्ष्मणजीको) समझानेके लिए उतार लियाथा इसीसे अब फिर कहा कि 'धाए राम सरासन साजी' (ग)—जिसको वेद और शिव नहीं पाते वह मृगको नहीं पाते यह माधुर्य्य लीलाकी शोभा है। यह लालित्य दिखाया—'करब ललित नर लीला'।

२—वेद 'वाणी' रूप हैं। 'निगम नेति' अर्थात् जहाँ वेदरूपी वाणी नहीं पहुँचसकती। शिवजी ध्यानमें नहीं पाते। ध्यान मनसे होताहै, यथा—'मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहर कीन्ह'। अतः 'शिव ध्यान न पावा' का भाव कि जहाँ शिवजीका मन नहीं पहुँचपाता—"यतोवाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' 'मन समेत जेहि जान न बानी' तरकि न सकहिं सकल अनुमानी' का जो भाव है वही यहाँ सूचित किया।—[भागा क्योंकि रावणका कार्य्य निकट मरनेसे न होगा।—(प्र०)]

कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई।
कबहुँक प्रगटै कबहुँ छपाई॥§ २६/२० (१२)
प्रगटत दुरत करत छल भूरी।
येहि बिधि प्रभुहि गयौ लै दूरी॥ ,, (१३)

* (गीतावली पद २०२)—बैठे हैं राम लषन अरु सीता।
पंचबटी बर पर्नकुटी तर कहैं कछु कथा पुनीता॥ १॥
कपट कुरंग कनकमनिमय लखि प्रियसों कहति हँसि बाला।
पाए पालिबे जोग मंजु मृग मारेहु मंजुल छाला॥ २॥
प्रिया बचन सुनि बिहँसि प्रेमबस गवहिं चापसर लीन्हे।
चल्यो सो भाजि फिरि फिरि हेरत मुनिमख रखवारे चीन्हे॥ ३॥
सोहति मधुर मनोहर मूरति हेम हरिन के पाछे।
धावनि नवनि बिलोकनि बिथकनि बसै तुलसि उर आछे॥ ४॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तब तकि राम कठिन सर मारा।
धरनि परेउ करि घोर पुकारा ॥ § २६/२० (१४)

पुकार=शब्द, चीत्कार ।

अर्थ—कभी पास आजाता और फिर दूर भागजाता, कभी प्रकट होता कभी छिपजाता, इस प्रकार प्रकट होते छिपते बहुत छल करते-हुए वह प्रभुको दूर लेगया। तब रामजीने ताककर कठिन बाण मारा वह घोर (भयंकर) शब्द करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा।

पु० र० दु० १—'कबहुँ निकट पुनि दूर पराई', यह काम शरीरसे कररहाहै और 'कबहुँक प्रगटै कबहुँ छुपाई' यह काम मायासे करताहै। निकट आजाताहै, प्रगट होजाताहै जिसमें निराश होकर लौट न जायँ; और, दूर भागजाताहै एवं छिपजाताहै जिसमें मार न लें। रावणने कहाथा कि 'होहु कपटमृग तुम्ह छलकारी' 'छलकारी' को यहाँ चरितार्थ कररहाहै। *

२—'येहि बिधि प्रभुहि गयौ लै दूरी' अर्थात् अब समझगए कि रावणका कार्य्य अच्छीतरहसे होसकताहै तब रामजीने ताककर कठिन बाण मारा। 'कठिन सर' अर्थात् जिससे बच न सके।—(इसीको हनुमन्नाटकमें 'दिव्य बाण' लिखाहै)। बाण लगनेपर चिंघाड़ करना था सो न करके उसके बदले लक्ष्मणजीका नामलेकर पुकारा जिसमें लक्ष्मणजी चले आवें। ऋषियोंका इसमें मतभेद है कि कितनी दूर लेगया अतएव केवल 'दूरी' पद देकर सबके मतकी रक्षा की गईहै।

* यथा हनुमन्नाटके अङ्क ४—'आन्दोलयन्विशिखमेककरेण सार्धं, कोदण्डकाण्डमपरेण करेण धुन्वन्। सन्नह्य पुष्पलतया पटलं जटानां, रामो मृगं मृगयेत वनवीथिकासु ॥ १ ॥ हस्ताभ्यासमुपैति लेढि च तृणं न स्पृश्यता गाहते। गुल्मान्प्राप्य विवर्तते किसलयानाघ्राय चाघ्राय च ॥ भूयस्त्रस्यति पश्यति प्रतिदिशं कण्डूयते स्वां तनुं। दूरं धावति तिष्ठति प्रचलति प्रान्तेषु मायामृगः॥२॥' अर्थात् एक हाथसे बाणचलातेहुए और दूसरे हाथसे धनुषके (धुन्ध) बड़े शब्दको करतेहुए, पुष्पोंकी लतासे जटाजूटको बाँधकर महाराज रामचन्द्रजी वनकी गलियोंमें मृगको ढूँढने लगे। वह मायामृग कभी तो भागता-भागता हाथोंसेही ग्रहण करने योग्य होकर तृणोंको चाटताहै, कभी घासको छूतातक नहीं, कभी लता गुच्छोंको पाकर नवीन पत्तोंकी सुगंधिको सूँघकर लौटनेलगताहै, फिर बारंबार चारों दिशाओंको देखने लगताहै, कभी खड़ा होजाताहै और कभी इधर-उधर को चलने लगताहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लछिमन कर प्रथमहि लै नामा।
पाछे सुमिरेसि मन महुँ रामा॥ § २६/२० (१५)
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा।
सुमिरेसि राम समेत सनेहा॥ ,, (१६)
अंतर प्रेमु तासु पहिचाना।
मुनि दुर्लभ † गति दीन्हि सुजाना॥ ,, (१७)

अर्थ—पहले लक्ष्मणजीका नाम लेकर पीछे मनमें रामजीका स्मरण किया। प्राण छोड़ते समय अपनी (राक्षसी) देह प्रगट की और रामजीको प्रेमसहित स्मरण किया, सुजान प्रभुने उसके अन्तःकरणके प्रेमको पहचानकर उसको, मुनियोंको भी दुर्लभ, मुक्ति दी।

पु० र० कु०-१-'प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई॥ सीता केरि करेहु रखवारी।' अतएव पहले 'लक्ष्मण' नाम पुकारकर लिया, जिसमें वे भी वहाँ न रह जायँ—चले आवें, तब रावण जाकर कार्य्य साधे। 'राम' नाम मनमें धीरेसे लिया, यथा—"लषन पुकारि राम हरुये कहि मरतहु बैर सँभारेहु"—(गी० २०५) पुनः, यथा—"सुकृत न सुकृती परिहरै कपट न कपटी नीच। मरत सिखावन सो दियो गीधराज मारीच॥" इति दोहावल्याम्। पुनः, छलके लिए लक्ष्मणका नाम लिया और मुक्तिके लिए रामनाम लिया—'जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा'।*

२—"प्रान तजत०० राम समेत सनेहा" इति।—(क)—प्राण निकलनेके समय बेहोशी आगई इसीसे निजदेह प्रगट कर दी। वा, अपने स्वामीका काम करके अब प्राणपयानके समय निजदेह प्रकट की। छल छूटगया; लक्ष्मणजीका नाम छलके लिए लिया सो भी छोड़ा, अब केवल रामजीका स्मरण किया।

† दुर्लभ—भा० द०।

* मा० मं०, करु०, वै०—दूसरा भाव कि लक्ष्मणजी आचार्य्य हैं, विना आचार्य्य के प्रभुकी प्राप्ति नहीं। अतएव लक्ष्मणजीका नाम ले मानों उनका शरण गया तब रामजीका स्मरण किया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३—तनसे इसने छल किया कि माया का मृग बना। पुनः, वचन से छल किया कि लक्ष्मणजीका नाम लेकर पुकारा। केवल मनसे शुद्ध है, मनमें प्रेम है; अतः 'अन्तर प्रेम तासु पहिचाना', यथा—रहति न प्रभुचित चूक किए की। करत सुरत सय बार हिये की'।

४—'मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना'। मनकी गति जानी, अतः सुजान कहा, यथा—'राम सुजान जान जनजीकी', 'स्वामि सुजान जान सबही की। रुचि लालसा रहनि जनजीकी'।

बिपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुनगाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहुँ दीनबंधु रघुनाथ॥ २७/२१

अर्थ—देवता बहुत फूल बरसातेहैं और प्रभुके गुणगाथ गारहेहैं। रघुनाथजी ऐसे दीनबन्धु हैं कि असुरको अपना पद दिया।

पु० र० कु०—१ कौन गुणगाथ गातेहैं? यह उत्तरार्द्धमें कहतेहैं कि 'निजपद...'। अर्थात् 'अधम उद्धारणादि गुण गाए।' 'असुर' गौ द्विज आदिका भक्षण करनेवाला, मदिरा पीनेवाला, उसकोभी हृदयका प्रेम पहचानकर मुनियोंकोभी दुर्लभ ऐसी मुक्ति दी; प्रेम ऐसाही पदार्थ है। मारीच अपनी मुक्ति करानेमें असमर्थथा इसीसे 'दीनबन्धु' विशेषण दिया अर्थात् वह दीन था।

२—पूर्व मृगको या चर्मलानेके लिए कहतेहुए जो विशेषण सीताजीने दियेथे उनका चरितार्थ इस प्रसंगमें यों हुआ—

देव—'तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुरकाज सँवारन॥
रघुबीर—'खलबधि तुरत फिरे रघुबीरा'।—(२)
कृपाला—निज पद दीन्ह असुर कहँ दीनबन्धु रघुनाथ'।—(३)
सत्यसंध—'तब तकि राम कठिन सर मारा'।—(४)
प्रभु हैं—चर्म लाए। चर्म लानेका प्रमाण लं० १० में है—'तापर रुचिर मृदुलमृगछाला' तेहि आसन आसीन कृपाला'। पुनः,यथा—'हेम कोहिरन हनि फिरे रघुकुलमनि लषन ललित कर लिये मृगचरम' (५)

सूक्ष्मरीतिसे मारीचवधप्रकरणकी समाप्ति यहाँ दिखाई।

षल बधि तुरत फिरे रघुबीरा।
सोह चाप कर कटि तूनीरा॥§ २७/२१ (१)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आरत गिरा सुनी जब सीता ।
कह लछिमन सन परम सभीता ॥ (२)
जाहु बेगि संकट अति भ्राता ।
लछिमन बिहसि कहा सुनु माता ॥ ,, (३)

अर्थ—दुष्टको मारकर रघुबीर तुरत लौटे, हाथोंमें धनुष और कमरमें तर्कश शोभा पारहेहैं। जब सीताजीने दुःखभरी वाणी सुनी तब अत्यन्त भयभीत होकर लक्ष्मणजीसे बोलीं। शीघ्र जाओ, भाई बड़े संकटमें हैं लक्ष्मणजीने हँसकर कहा कि हे माता! सुनिए।

पु० र० कु०—१ 'खल बधि तुरत सिरे रघुबीरा...' इति। (क)—रामकृपासे मुक्ति हुईथी, पर वह दुष्ट था मरण-पर्यन्त उसने छल न छोड़ा † इसीसे वक्तालोग उसे 'खल' कहतेहैं। अधमकी मुक्ति होतीहै पर उसका कुनाम नहीं जाता। (ख) 'तुरत फिरे' क्योंकि उसने लक्ष्मणजीका नाम लेकर पुकाराथा, इससे चिन्ता है कि आश्रमपर कुछ छल होनेही चाहताहै * (ग) खलको मारकर लौटे अतः 'रघुबीर' कहा। (घ) 'सोह चाप कर कटि तूनीरा'—धनुषबाण तर्कशकी शोभा अब हुई जब खलको मारकर लौटे। अतः 'सोह' कहा।

२—'आरत गिरा सुनी जब सीता...' इति। (क) आरत गिरा, अर्थात् 'त्राहि त्राहि लक्ष्मण', यथा—'आतुर सभय गहेसि पग जाई।

† 'स प्राप्तकालमाज्ञाय चकार च ततः स्वनम्। सदृशं राघवस्येव हा सीते लक्ष्मणेति च' अर्थात् मारीचने बाण लगकर गिरनेपर विचार किया कि रावणका काम कैसे करूँ कि जिसमें लक्ष्मणजी भी छोड़कर चलेआवें। उसी समय ऐसा विचारकर रामजीके स्वरसे 'हा सीते' 'हा लक्ष्मण' ऐसा कहा।

* 'हा सीते लक्ष्मणेत्येव माक्रुश्यतु महास्वनम्। ममार राक्षसः सोऽयं श्रुत्वा सीता कथं भवेत् ॥२४॥ लक्ष्मणश्च महाबाहुः कामवस्थां गमिष्यति। इति संचिन्त्य धर्मात्मा रामो हृष्ट तनुरुहः ॥२५॥ तत्र रामं भयं तीव्रमाविवेश विषादजम्। राक्षसं मृगरूपं तं हत्वा श्रुत्वा च तत्स्वनम् ॥२६॥' (वा० ४४) अर्थात् हा सीते! हा लक्ष्मण चिल्लाकर यह मराहै। यह सुनकर सीताकी क्या दशा हुईहोगी। महाबाहु लक्ष्मण किस अवस्थामें होंगे—यह सोचकर रामचन्द्रजीके रोंगटे खड़ेहोगए। भयभीत होकर रामजी चले।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्राहि त्राहि दयालु रघुराई॥' सुनि कृपालु अति आरतबानी''प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि। आरत गिरा सुनत प्रभु अभय-करैंगे तोहि'। (ख)—'परम सभीता' से जनाया कि देह काँपनेलगी, अश्रुपात होरहाहै, रोएँ खड़ेहोगएहैं। (ग)—३—'जाहु बेगि संकट अति भ्राता'। यहाँ 'परमसभीता' का कारण कहा कि तुम्हारे भाईपर बड़ाभारी संकट आपड़ाहै। इससे जनाया कि मारीचके शब्द अति-संकटमें जैसे शब्द उच्चारण होतेहैं वैसेही हैं और यह कि रामजीके स्वरसे मिलतेहुए स्वरमें उसने लक्ष्मणजीको पुकाराथा।—(व्या-सजी—'अति' का भाव कि जब उन्होंने समझलिया कि बिना तुम्हारी सहायताके जीवित नहीं बचसकते तब तुमको सहायताकेलिए पुकारा)*

४—'लछिमन बिहसि कहा सुनु माता' इति। लक्ष्मणजीको मालूम है कि राक्षस मारागया। 'बिहँसना' असंभव बातपर है, यह जानतेहैं कि रामजीपर संकट पड़नहीं सकता, संकट पड़ना असंभव है। वे यहभी जानतेहैं कि यह रामजीके शब्द नहीं हैं' यथा—'न स तस्य स्वरो व्यक्तं न कश्चिदपि दैवतः। गन्धर्वनगरः प्रख्या माया तस्य च रक्षसः।'—(वा० ४५)। पुनः, खर्रा—लक्ष्मणजीके 'बिहँसने' से उन्होंने दूसरा भाव समझा पर इनका माताभाव दृढ़ रहाहै इसीसे इनने 'माता' संबोधन किया।

पं० रा० च० दूबे—कविने यहाँभी कैसा उच्च आदर्श स्थान स्त्रियोंका दरसायाहै। 'मारीच मरते समय श्रीलक्ष्मणजीकानाम उच्च स्वरसे पुकारताहै। यह आर्तनाद श्रीसीताजीके कर्णगोचर होताहै। पतिपरायण किसी अशुभकी शंकासे विह्वल होजातीहै 'और 'कह लछिमन सन परम सभीता...'। 'लछिमन बिहँसि कहा सुनु माता' आहा, कैसा उदार मान है! माताशब्दमें कैसा उच्च भाव है! क्या पाश्चात्य-लेखक इस भावको प्रदर्शित करनेमें समर्थ हुएहैं? अस्तु! ३—सीतादेवी उस समय ऐसी कातर होगईं कि उनको यह उपदेश

* यथा—रघुबर दूरि जाइ मृग मार्‍यो। लखन पुकारि राम हरुए कहि मरतहुँ बैर सँभार्‍यो॥१॥ सुनहु तात! कोउ तुम्हहिं पुकारत प्राननाथकी नाईं। कह्यो लषन हत्यौ हरिन कोपि सिय हठि पठयो बरिआई॥२॥ बन्धु बिलोकि कहत तुलसी प्रभु 'भाई! भली न कीन्हीं। मेरे जान जानकी काहू खल छल करि हरि लीन्हीं'॥३॥—(गी० आ० ६)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बुरा लगा।–'मरम बचन सीता जब बोला...'। उन मर्मवचनोंकी ओर केवल संकेतकर साफ़-साफ़ न लिखना भी कविके उच्च आदर्शको ही दरसाताहै। कवि उन शब्दोंको लेखनी-द्वारा अंकित न करके दिखलाताहै कि सतीका आदर्श उसकी दृष्टिमें कितना ऊँचा है। उस आदर्शके साथ ये शब्द शोभा नहीं पाते। वीर लक्ष्मणके समान तुनक-मिज़ाज जो किसीकी बात सहन नहीं करसकतेथे, देवीके शब्दोंको सुनकर दमबख़ुद होजातेहैं। उत्तर तक नहीं देते। वह एजे Ajax की तरह यह नहीं कहउठते कि 'स्त्री! तेरा चुप रहना ही सबसे अच्छा भूषण है'। बल्कि 'बन दिसि देव सौंपि सबकाहू...' ऐसे कठोर वचन सुनकर भी वही आदर, वही भक्ति, वही स्नेह झलकतारहाहै। भाईकी आज्ञाका उल्लंघन होताहै। यह भी मालूम है कि सीताजीको सुनसान आश्रममें अकेले छोड़ना उचित नहीं। पर देवीकीही आज्ञाका पालन कियाजाताहै और जब इस आज्ञा-उल्लंघनका इस प्रकार जवाब तलब होताहै—'आयेहु तात बचन मम पेली' तब लक्ष्मण भाभीकी चुगली नहीं खाते। केवल इतनाही कहदेतेहैं—'नाथ कछु मोहि न खोरी'।

भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई।
सपनेहु संकट परै कि सोई॥ §$\frac{२७}{२१}$ (४)
मरम बचन जब सीता बोला।
हरिप्रेरित लछिमन मन डोला॥ ,, (५)
बन दिसि देव सौंपि सब काहू।
चले जहाँ रावन ससि राहू॥ ,, (६)

शब्दार्थ—डोलना=विचलित होना, दृढ़ न रहजाना।

अर्थ—जिसकी भौं फिरनेसे (इशारा मात्रसे) सृष्टिका नाश होताहै, क्या उसे स्वप्नमें भी संकट पड़सकताहै? (कदापि नहीं)। जब सीताजीने मर्म वचन कहा तब प्रभुकी प्रेरणासे लक्ष्मणजीका मन डाँवाडोल होगया। वन और दिशाओं आदिके सब देवताओंको सौंपकर लक्ष्मण वहाँको चले जहाँ रावणरूपीचन्द्रमाको ग्रसनेवाले राहु रामजी थे।

नोट १—'भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई...' इति। भाव कि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जिसके भ्रूविलासमात्रसे चराचरमात्रका नाश होताहै उसका नाश कौन करसकताहै ? भ्रूके कटाक्षमात्रका यह बल है तब शरीरके बलकी क्या कही जासके (पु० र० कु०) । इशारेमें किंचित श्रम नहीं क्योंकि भ्रकुटि तो साधारणतयाही फिरतीहै । २—पुनः, 'सृष्टि लय' से 'उत्पत्ति, पालन और संहार' तीनों आगए । 'सृष्टि'=सृष्टि-रचना और उसका पालन ।—(प्र०) ☞ 'भृकुटि विलास सृष्टि लय' इन ४ शब्दोंमें जितना बल भराहुआहै वह वाल्मीकीयके ५ श्लोकोंसे कहीं बढ़कर है, पाठक स्वयंदेख लें ।*

'मरम बचन जब सीता बोला'

पु० र० कु०—'बोला' पुल्लिङ्ग है । 'सीता बोली' ऐसा लिखना चाहिए था 'बोला' कहना अनुचित है । इस अपने कथनसे कवि यह भाव दर्शित करतेहैं कि सीताने लक्ष्मणको अनुचित बात कही । अयोग्य कहा है, तो हम उचित पद कैसे धरें । अनुचित बात लिखने योग्य नहीं इससे उसे लिखा नहीं, केवल भावसे दर्शित करदियाहै ।

गौड़—'मरम बचन जब सीता (द्वारा) बोला (गया)' 'इस प्रकार अन्वय होनाचाहिए । यह तो मायाका खेल था । सीताजी हों और लक्ष्मणजीको मर्म्म वचन कहें यह तो असंभव था । इसीलिये यहाँ कर्म्मवाच्य पद दियागया कि कर्म्मवाच्यमें कर्मकी प्रधानता

* अब्रवील्लक्ष्मणस्त्रस्तां सीतां मृगवधूमिव । पन्नगासुरगंधर्व देव दानव राक्षसैः ॥१०॥ अशक्यस्तव वैदेहि भर्ता जेतुं न संशयः । देवि देव मनुष्येषु गन्धर्वेषु पतत्रिषु ॥११॥ राक्षसेषु पिशाचेषु किन्नरेषु मृगेषु च । दानवेषु च घोरेषु न स विद्येत शोभने ॥१२॥ न त्वामस्मिन्वने हातुमुत्सहे राघवं विना । अनिवार्य्यं बलं तस्य बलैर्बलवतामपि ॥१४॥ त्रिभिर्लोकैः समुदितैः सेश्वरैः सामरैरपि । हृदयं निवृत्तं तेऽस्तु तापस्त्यज्यतां तव ॥१५॥ अर्थात् हरिणीकी तरह डरीहुई सीतासे लक्ष्मणजी बोले—नाग, असुर, गन्धर्व, देव, दानव, और राक्षस कोईभी रामजीको नहीं जीत सकते । हे देवि ! देवी, देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पक्षी, राक्षस, पिशाच, किन्नर, पशु, और दानव कोईभी रामके सामने नहीं खड़ा होसकता । मैं तुमको अकेली नहीं छोड़सकता । तीनों लोकके बलिष्ठ मिलकरभी युद्धमें रामजीको नहीं जीतसकते । अतः तुम अपने मनका दुःख दूरकरो ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रहतीहै। कर्त्तापदको नहीं। लक्ष्मणजीके देखने-सुननेमें सीता-द्वारा ही वचन बोला गया। परन्तु कवि बड़े कौशलसे माया-सीताको गौण कर्तृपद देकर मानों छिपाताहै, परदेमें रखताहै।

पु०र०कु०—१ वाल्मीकीय सर्ग ४५ में जो मर्म वचन बोलना लिखा है उसे पूज्य कविने न लिखा, केवल 'मरम बचन' इतना मात्र लिखकर छोड़ दिया; आशयसे दिखाया कि जब 'लछिमन बिहसि कहा सुनु माता' तब उनके हँसनेपर कुपित हुईं कि रामजीकी आर्त्तवाणी सुनकरभी हँस रहाहै, इससे जान पड़ताहै कि चाहतेहो कि उन्हें कुछ हो जाय तो हमको सीता प्राप्त होजायँ। [नोट—जिसे अनुचित जानकर पूज्य कविने नहीं लिखा उसे यह दीन उद्धृत नहीं करसकता जो चाहे वहाँ देखले। हाँ, 'मर्म वचन' से जनाया कि ये हृदयमें भिदने और घाव करनेवालेहैं। ऐसा हुआभी यथा—'इत्युक्तः परुषं वाक्यं सीतया रोमहर्षणम्' अर्थात् कठोर वचन सुनकर उनके रोंगटे खड़े होगए—(श्लो० २७)]

२—(क) 'हरि प्रेरित लछिमन मन डोला' इति। भाव कि माया द्वारा उनकी बुद्धि नहीं प्रेरित होसकतीथी उनका मन प्रभुकी प्रेरणासे विचलित हुआ। 'हरिप्रेरित' पद देकर आज्ञाभंग दोष निवारण किया।—[☞ 'हरि प्रेरित' पदसे उस शंकाको दूरकिया कि यदि लक्ष्मणजीको रामजीकी प्रभुतापर इतना विश्वास था तो क्यों गए? कहीं छिप रहते] (ख) 'मन डोला' सीताजीको छोड़कर रामजीके पास जानेकी इच्छा हुई। गौड़—परतमकी मायाका लक्ष्मणजीको भी पता नहीं था। इसीलिए प्रेरणा हुई। नहीं तो आज्ञाका उल्लंघन उनसे असंभव था।

नोट—पाँडेजी आदिने 'सीता बोली' 'मति डोली' पाठ रखाहै। गोस्वामीजीके गूढ़भावोंके न समझनेसेही हमलोग इस प्रकार पाठ बदलतेहैं, यह हमारी बड़ी भूल है। पं० रामकुमारजी एवम् गौड़जीने इसका भाव स्पष्ट करदियाहै।

३—'बन दिसि देव सौंपि सब काहू'। (क)—रामजीने आज्ञा दीथी कि 'सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिवेक बल समय बिचारी' यहाँ तीनों प्रकारसे रक्षा दिखातेहैं। (i) वनदेव, दिशिदेव आदिको सौंपा यह बुद्धिसे रक्षा की। (२) 'भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई...' यह विवेकसे रक्षाकी और (३) रेखा खींच उसके भीतर सीताजीको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रखा यह बलसे रक्षा की। यह मन्दोदरीके वचनसे स्पष्ट है--'राम अनुज लघु रेख खँचाई। सोउ नहिं लाँघेउ असि मनुसाई'—(लं० ३५)। तथा आनन्दरामायणमें—'तत्क्रूरवचनं तस्याः श्रुत्वा ज्ञात्वा महद्भयं। ततः सधनुषः कोट्यारेखांकृत्वा समन्ततः ननामच पुनस्सीता'। समग्र वनदेवताओंको सौंपना वाल्मीकिजीभी लिखतेहैं—'रक्षन्तु त्वां विशालाक्षि समग्रा वनदेवताः'। हनुमन्नाटकसेभी रेखाका खिंचाना स्पष्ट है, यथा—'सव्याहरद्धर्म्मिणि देहि भिक्षामलंघयल्लक्ष्मणलक्ष्मलेखाम्। जग्राह०' अर्थात् रावणके भीख माँगनेपर ज्योंहीं सीताजीने लक्ष्मणजीके धनुषके चिन्हकी रेखाका उल्लंघन किया...' (अंक ४)

(ख) देव, दिक्पाल आदिने रक्षाकी ? कारण वे सब तो रावण से डरतेथे; दूसरे वे चाहतेभीथे कि हरण हो जिसमें उसका सारा कुल नष्ट हो वैसे एक रावणही मारा जाता। ऐसा न होता तो वे पहले ही आकर लक्ष्मणजीको ख़बर देदेते।

४—'चले जहाँ रावन ससि राहू'। (क) यहाँ 'रवि राहू' न कहकर 'शशिराहू' कहा। कारण कि रामजी सूर्य्यवंशी हैं, [सूर्यवंशी रामजी उसे मारेंगे उसके तेजको हरलेंगे जैसे सूर्य्य चन्द्रमाके तेजको; यथा—'प्रभु प्रताप रबि छबिहि न हरिही'—(अ० २०६) 'तासु तेज समान प्रभु आनन'] अतः यहाँ सूर्य्यका ग्रास कैसे कहें। पुनः, चन्द्रमा सकलंक है, यथा—'जनम सिंधु पुनि बंधु बिष दिन मलीन सकलंक', सूर्य्य कलंकी नहीं है—(रावण कुल-कलंक है, यथा—'रिषि पुलस्ति जस बिमल मयंका। तेहि ससि महँ जनि होहु कलंका' सूर्य्य-राहुकी उपमा यहाँ उपरोक्त कारणोंसे अयोग्य जानकर न दी। [खर्रा—यह निश्चर और चन्द्रमाभी निशि+चर यह निश्चरराज और वह निशि-पति (राकेश, शर्वरीश); यह जगज्जननीका हरनेवाला वह गुरुतियगामी-इत्यादि। अतएव दोनोंका जोड़ खूब अच्छा है।] (ख) राहु पूर्ण चन्द्रको ग्रसताहै, अतः रावणको पूर्णचन्द्रसे उपमा देकर जनाया कि अब उसका भोग पूर्ण होचुका। अब यह माराजायगा। (ग) जैसे चन्द्रका ग्रासकर्त्ता राहुही है वैसेही रावणके वधकर्त्ता रामही हैं दूसरा कोई नहीं। (घ) चन्द्रमाका अपराध राहुने नहीं किया वरन् राहुका अपराध चन्द्रने किया वैसेही रामका अपराध रावणने किया रामजीने उसका अपराध नहीं किया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सून बीच दसकंधर देषा ।
आवा निकट जती के बेषा ॥ § $\frac{२७}{२१}$ (७)
जाकें डर सुर असुर डेराहीं ।
निसि न नीद दिन अन्न न षाहीं ॥ ,, (८)
सो दससीस स्वान की नाईं ।
इत उत चितइ चला भडिहाईं ॥ ,, (९)
इमि कुपंथ पग देत षगेसा ।
रह न तेज तन बुधि बल लेसा † ॥ ,, (१०)

शब्दार्थ—'सून' = शून्य, सूना, एकान्त, सन्नाटा । = रेखा । बीच= अवसर, मौक़ा, अवकाश, दूरी ।

अर्थ—इसी बीचमें सन्नाटा देखकर रावण यतीवेषसे पास आया । जिसके डरसे देवता दैत्य डरतेहैं, रातको नींद नहीं पड़ती और दिनमें अन्न नहीं खानेपाते (अर्थात् नींद और भूख दोनों जातीरहीं) वही दशसिरवाला रावण कुत्तेकी तरह इधरउधर ताकता हुआ चोरीके लिए चला । हे पक्षि-स्वामी गरुड़ । इसी प्रकार कुमार्गमें पैर रखतेही शरीरमें तेज, बुद्धि और बल लेशमात्र नहीं रहजाते ।

—'सून बीच दसकंधर देखा । आवा निकट जाती...'—

पु० र० कु०—१ (क) सून (शून्य) के बीचमें दशकंधने देखा तो शून्यसे बाहर करनेकेलिए यतीके वेषसे आया । अथवा, शून्य और बीच देखा कि दोनों भाई अब दूर निकल गएहैं तब वह आया, यथा—'सठ सूने हरि आनेसि मोही । अधम निलज्ज लाज नहिं तोही' 'जानेउँ तव बल अधम सुरारी । सूने हरि आनेहि परनारी' (लं० २९) । (ख)—'दशकंधर देखा' का भाव कि दशों ग्रीवाओंको फेर-फेरकर देखताथा—(खर्रा) । (ग)—आशयसे पायाजाताहै कि रावण छोटा (सूक्ष्म) रूप धारण किएहुए देखतारहाथा । लक्ष्मणजीका रेखा खींचनाभी उसने देखा और उनका दूर निकलजानाभी ।—(खर्रा)

नोट १—यतीका वेष धारण करनेके कई कारण होसकतेहैं—१ इस वेषपर विश्वास सबका होताहै । २—रेखासे बाहर निकालनाहै

† रा० प० में 'रह न तेज बल बुधि लवलेसा' पाठ है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और अन्य वेषमें सन्देह होगा बाहर न निकलेंगी। ३—जलन्धर रावणवाले अवतारमें यतीही द्वारा छल करनेका शाप वृन्दाका है। उसने कहाथा कि तुमने हमको यतीरूपसे छला तुम्हारी स्त्रीको मेरा पति इसी रूपसे छलेगा।

नोट २—महाभारतवनपर्व अ० २७९ मार्कण्डेयरामायणमें लिखतेहैं कि रावण सिर मुँड़ापहुए त्रिदंडधारी संन्यासीका रूप धारण करके गयाथा। इससे सिद्धहोताहै कि वैष्णवसम्प्रदाय बहुत प्राचीन कालसे चलाआरहाहै। यह लोगोंकी भूल है जो श्रीरामानुजाचार्य्य स्वामीकेही समयसे वैष्णवसम्प्रदायको समझतेहों।* पुनः, वाल्मीकिजी लिखतेहैं कि वह उज्ज्वल काषाय (गेरुवे) वस्त्र पहनेथा, शिखाभी थी, छाता और उपानही (जूती) धारण किए, और बाएँ कंधेपर दंड एवं कमण्डल लिए था। संन्यासी अतिथि और उसमें ब्राह्मणके चिह्नदेखकर उसका सीताजीने सत्कार किया।—(सर्ग ४६)।

पु० र० कु०—२ 'जाके डर सुर असुर डेराहीं...' इति। (क) सुर और असुरसे स्वर्ग और पातालको गिनाया मर्त्यलोकको न कहा, क्योंकि देवता और राक्षसोंके सामने इनकी गिनतीही क्या, यथा—'जितेउ सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं'।

३—'सो दससीस स्वानकी नाईं...' इति। (क) कुत्ता जब

* एक पारसी जजने मुझसे प्रश्न कियाथा कि रामोपासनाको प्राचीन कैसे कहतेहो। राम तो त्रेतामें हुए? अतः इस प्रसंगमें इस संदेहके दूर करदेनेका योग्य स्थान समझकर यहाँ कुछ इशारामात्र लिखाजाताहै।

श्रीध्रुवजी और प्रह्लादजी तो सत्ययुगमें हुए, यदि रामोपासना उस समय न थी तो ये रामनाम क्यों रटतेरहे, यह उपदेश नारद-द्वारा उन्हें कैसे हुआ? यह तो प्रत्यक्ष प्रमाण हुआ। दूसरा प्रमाण रावणका वैष्णवयतीवेष है अर्थात् श्रीरामजीके आविर्भावके समयभी वैष्णव थे। तीसरा प्रमाण वेदोंकाभी लीजिए-ऋग्वेद मण्डल ७ अनुवाक ८६ में मंत्ररामायण प्रकरणके १४१वें मंत्रमें श्रीराम-मन्त्रोद्धारका वर्णन है। नीलकण्ठ सूरिजीने 'मंत्ररहस्य प्रकाशिका' नामक व्याख्याभी कीहै। अगस्त्यजीने इसी मंत्रसे समुद्र सोखलियाथा, शिवजीने कालकूट हालाहल पीलिया। स्वयं शिवजीने इसका जप करके इसके द्वारा काशीके जीवोंकी मुक्तिका वरदान श्रीरामजीसेही पाया—प्रमाण यथा—'श्रीरामस्य मनुंकाश्यां जजाप वृषभध्वजः'—(रामतापिनी)। इत्यादि।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चोरी करने चलताहै तब इधरउधर भयसे ताकता चलताहै । पुनः, (ख) श्वानकी उपमासे जनाया कि यतीके वेशसे कुत्तेका काम करताहै तब इसकी विजय कहाँ होसकतीहै, यथा—'सार्दूलको स्वाँग करि कुकुरकी करतूति। तुलसी तापर चहत है कीरति बिजय बिभूति'।—(दो० ४१२) कुत्ता चोरी करे तो उसे भडिहाई कहतेहैं ।

४—'इमि कुपंथ पग देत... रह न तेज...' इति (क) बुद्धि बल और तेजसे विजय प्राप्तहोतीहै, यथा—'बुधि बल जीति सकिय जाही सों। (लं०), 'देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहा जानकी जाहु...' —(सुं०)। (ख) जैसे रावणके तेज बल बुद्धिका नाश हुआ ऐसेही कुमार्गमें पैर रखनेसे बुद्धि, बल, तेजका नाश होताहै। यह कुमार्गका प्रभाव है। सीताकी चोरी कुमार्गपर चलनाहै, यथा—'रे त्रियचोर कुमारगगामी'। तेजका नाश यह कि चोरकी तरह जारहाहै—'सो दससीस श्वानकी नाई। इत उत चितइ चला भडिहाई'। बलका नाश, यथा—'जानेउँ तव बल अधम सुरारी। सूने हरि आनेहि परनारी', 'रामानुज लघु रेख खँचाई। सो नहिं नाघेउ असि मनुसाई' चला उताइल त्रास न थोरी'। बुद्धि नष्ट होगई क्योंकि वह समझताहै कि राजकुमारोंको जीतलूँगा और पहले तो उन्हें पताही न लगेगा।

दीनजी—'इमि' पद प्रकट करताहै कि कवि इतने उस विचारमें मग्न होगयेहैं कि मानों स्वयंही उस नीतिको समझारहेहैं ।

प्र०—रावण राजाहोकर भिक्षुक बना और चोरी करनेगया अतएव उसका तेज और बल नष्ट होगया।

नानां बिधि करि † कथा सुहाई।
राजनीति भय प्रीति देषाई॥ §२७/२१ (११)
कह सीता सुनु जती गोसांई।
बोलेहु बचन दुष्ट की नांई॥ ,, (१२)
तब रावन निज रूप देषावा।
भई सभय जब नाम सुनावा॥ ,, (१३)

अर्थ—अनेक प्रकारकी सुन्दर कथाएँ रचकर कहीं। राजनीति,

† ('कहि'—रा० प०, रा० गु०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भय और प्रेम दिखाया, सीताजी बोलीं—हे यती गोसाईं ! सुनो, तुम दुष्टके-से वचन बोलेहो' तब रावणने अपना रूप दिखाया। जब नाम सुनाया तब डर गईं। (अर्थात् रूप देखकर न डरी थीं पहले सुना भी न था अब उसको सामने देखा अतः डरगईं।)

पु० र० कु०—१'नाना बिधि करि कथा सुहाई...' (क) 'सुहाई' से शृङ्गाररसकी कथाएँ सूचित कीं; सीताजीके अंगोंकी शोभा कहने लगा, इन्द्र और अहल्याके प्रेमकी कथा कही, अहल्याने इन्द्रकी इच्छा पूर्णकी, इत्यादि इसी प्रकार नानाविधिकी कथाएँ सुनाईं।

(ख) 'राजनीति भय प्रीति दिखावा' अर्थात् ऐसा राजनीतिमें लिखाहै कि स्त्रीरत्नको राजा ग्रहणकरे, जो तुम हमारा वचन न मानोगी तो हम शाप देदेंगे, हम तुम्हारे रूपपर मोहित होकर आएहैं, तुमपर हमारी अत्यन्त प्रीति है,हमारा तिरस्कार न करो। तुमको वनमें अकेली छोड़दिया यह नीतिविरुद्ध किया। यहाँ देवगंधर्वादिकाभी गम्य नहीं, यह निश्चरोंका निवासस्थान है, यहाँ तुम्हारेलिए भय है। राजमहलों में रहनेयोग्य हो, हमसे प्रेम करनेसे हम तुम्हारी रक्षा सदैव करेंगे। इत्यादि। राजनीति, भय और प्रीति तीनों दिखाए। यथा—'भय अरु प्रीति नीति देखराई। चले सकल चरनन सिरु नाई।'

२—'कह सीता सुनु जती गुसाईं...'। सीताजी कितना साधुको मानतीहैं, यह बात यहाँ दिखाईहै कि उस दुष्टको यतीवेषमें ऐसे वचन कहतेहुए सुनकरभी उसको दुष्ट न कहकर उसके वचनको 'दुष्टकी नाईं' कहा; जैसा कोई दुष्ट बोले ऐसा तुमने कहाहै। यह न कहा कि तू बड़ा दुष्ट है। 'गोसाईं' अर्थात् यती तो इन्द्रियजित होते-हैं उन्हें ऐसे वचन शोभा नहीं देते; उनका तो स्त्रीमें माताभाव रहना चाहिए।

३—'तब रावण निज रूप दिखावा...' इति। (क) 'तबका भाव कि यतीरूपसे तुम हमारे वचन अयोग्य मानती हो तो लो हम अपना असली रूप दिखातेहैं इस रूपसे हमें ग्रहण करो। हम त्रलोक्यविजयी राजा हैं। (ख) 'भई सभय जब नाम सुनावा' से पायागया कि रूपसे नाम अधिक भयदायक था, यथा—'को धौं श्रवन सुनेसि नहिं मोही। देखौं अति असंक सठ तोही'। सीताजी रावणका नाम सुनेहुए थीं कि वह बड़ा दुष्ट है अतः 'भई सभय जब नाम सुनावा'।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कह सीता धरि धीरजु गाढा ।
आइ गएउ प्रभु रहु खल ठाढा ॥ §$\frac{२७}{२१}$ (१४)
जिमि हरि-बधुहि छुद्र ससु चाहा ।
भयसि कालबस निसिचरनाहा ॥ ,, (१५)
सुनत बचन दससीस रिसाना ।
मन महु चरन बंदि सुख माना ॥ ,, (१६)

अर्थ—सीताजीने भारी धीरज धरकर कहा—'रे दुष्ट! खड़ा रह, प्रभु आगए, जैसे सिंहकी स्त्रीकी तुच्छ खरगोश चाह करे, वैसेही हे निशचरराज! तू कालके वश हुआहै।' वचन सुनतेही रावण क्रुद्ध हुआ। मनमें चरणोंकी वंदना करके सुखी हुआ।

पु० र० कु०—१ 'कह सीता धरि धीरजु गाढा...'। (क) पहले यती मानकर बोली थीं, जब रावणने नाम और रूप प्रकट किया तब डरगई, डरके मारे वचन नहीं निकलता इससे बड़ा धैर्य्य धारण करके तब बोलना कहा। 'गाढ़ा' से जनाया कि बहुत डरीहैं इसीसे बहुत धीरज धरनापड़ा। (ख) 'आइगए प्रभु' अर्थात् तेरे मारनेके लिए वे समर्थ हैं। कैसे समर्थ हैं यह आगे कहती हैं—'जिमि हरि बधू...'। अर्थात् सिंहिनीकी चाह खरगोश करे तो उसकी जो दशा हो वही तेरी होगी तू शश है वे तेरे लिए सिंह हैं। (ख) रहु खल ठाढा'। देखिए, जब साधुवेष था तब 'दुष्टकी नाईं' कहा, दुष्ट न कहा। अब जब साधुवेष छोड़दिया तब उसको 'खल' संबोधन किया।

२—'जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा...'इति। (क) यथा—'को प्रभु संग मोहि चितवनहारा' सिंहबधुहि जिमि ससक सियारा', 'को मां धर्षयतुं शक्तो हरेर्भार्य्यांशशो यथा' इति वाल्मीकीये। जो वचन सीताजीने अवधमें कहेथे कि 'प्रभु संग मोहि को चितवन हारा। सिंहबधुहि जिमि ससक सिआरा'—उन्हीं वचनोंको यहाँ कहकर चरितार्थ करतीहैं।

(ख) 'निसिचरनाहा' का भाव कि तू ही नहीं किन्तु निशचर-कुलसहित तू कालके वश हुआहै—'काल राति निसिचर कुलकेरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी।'

३—रावणने जानकीजीको भय दिखायाथा, यथा—'राजनीति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भय प्रीति दिखावा' 'भई सभीत जब नाम सुनावा'। अब जानकीजी उसको भय दिखारहीहैं—'आइगए प्रभु...' रावणको ये वचन सुनकर भय प्राप्त हुआ सो आगे स्पष्ट है।—'चला गगन पथ आतुर भय रथ हाँकि न जाय'।

४—'सुनत बचन दससीस रिसाना...' इति। (क) रामजीकी प्रशंसा और अपनी न्यूनता सुनकर क्रोध हुआ—रामजीको 'हरि' और इसको 'क्षुद्र शश' कहाहै। यथा—'आपुहि सुनि खद्योत सम रामहि भानु समान। परुष बचन सुनि काढि असि बोला अति खिसिआन'।

'सुन बीच...चरन बंदि...'

मा० हं—इस वर्णनसे स्पष्ट दिखताहै कि रावणकी उत्छृंखलतासे जब सीतादेवी उसपर बिगड़ीं उस समय उनके पातिव्रत्यके तेजसे चकित होकर रावणने उनको मानसिक प्रणाम किया। वह प्रणाम मानसिक-शुद्धिका नहीं कहलायाजाता। 'डाँटे पै नव नीच' इस प्रकारका यह नमस्कार था। यदि वह सच्चे सत्वशुद्धिसे होता तो उसकी सत्वशुद्धि दूसरेही क्षणमें उसे छोड़ चली न जाती। वह नमस्कार मानभंगकी लज्जासे कियाहुआथा, न कि भक्ति अथवा पश्चात्तापसे। २—यदि यह प्रणाम सच्चे पश्चात्तापके आँचका होता तो बादमें रावण मित्र ही स्वरूपमें दिखाईदेता। मानभंगकी लज्जाके स्थानमें अपने पूर्व पापोंकी लज्जा यदि उसे मालुम हुईहोती तो भगवती सीताकी शरणमें जाकर उसने उनसे क्षमाही माँगी होती परन्तु गोसाईंजी कहतेहैं—'क्रोधवंत तब रावण लीन्हेसि रथ बैठाइ...'। इस दोहेसे रावणकी स्थिति इतनी स्पष्ट होरहीहै कि शंकाकी जगह ही नहीं रहसकती। दोहेमेंके 'क्रोध' और 'भय' शब्द बड़ेही महत्त्वपूर्ण हैं। मनके सकाम रहे बिना ये विकार कभीभी उत्पन्न नहीं होते ऐसा सिद्धान्त है। अर्थात् यह निर्विवाद सिद्ध है कि रावणके मनमें पश्चात्ताप और भक्तिका लेशमात्रभी न था, दूसरे प्रकारसे देखनेपरभी रावणका पक्ष हीनही दिखताहै। यदि मानलियाजाय कि उसने सीताहरण भक्तिपुरस्सर किया, तो क्रोध और भयकी उपपत्ति कैसी जम सकती? भक्तिकी भावनासे उसने सीताहरण किया होता तो उसका मन बड़ाही शान्त रहता, क्योंकि भक्तिमें उद्वेग पैदा होही नहीं सकता। पश्चात् लंकामेंभी उसने सीतादेवीको फुसलानेका निःसीम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रयत्न किया। इस प्रयत्नकी मंज़िल आखीर यहाँतक पहुँची कि 'सीता तै मम कृत अपमाना। काटौं तव सिर कठिन कृपाना...'।—(सुं०)। पश्चात्ताप और भक्तिकी अल्प-सी रेखाभी यदि रावणके मनको स्पर्श-कर निकलीरहती तो ऐसी गलकटियोंकी वृत्ति उसके मनको क्या छू भी सकतीथी! अन्ततक भी ऐसी लहरने उसके मनको स्पर्श नहीं किया। उसकी मृत्यु केवल बदला लेनेकी भावनामेंही हुई। क्या 'कहा राम रन हतउँ प्रचारी' इस उक्तिसे औरभी कोई बात स्थापित होस-कती है? स्वामीजीका रावण इस प्रकारका हुआहै। रज और तमका तो वह केवल पुतला है। सत्वगुण क्या चीज़ है वह जानता-ही नहीं। हमारे मतसे वह हदसे बाहर विषयी, मानी, खूनी और निर्लज्ज दिखाता है—मंदोदरीका शोक रावण मरणपर देखिए।

क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगन पथ आतुर भय रथ हाँकि न जाइ॥§ २८/२२

अर्थ—तब क्रोधमें भरकर, रावणने उन्हें रथमें बिठालिया। आका-शमार्ग से शीघ्रता और व्याकुलताके साथ चला, डरके मारे रथ हाँका नहीं जाता।

पु० र०कु०१—किस प्रकार रथमें बिठाया इसमें मतभेद है इससे पूज्य कविने सबके मतकी रक्षाकरनेके लिए केवल रथमें बिठाना लिखतेहैं। २-'भयरथ हाँकि न जाय', यथा-कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ। भयबस अगहुड़ परै न पाऊ' इससे जनाया कि सीताजीके वचन सुनकर उसे डर व्याप्त होगया, उसका शरीर शिथिल पड़गया; इसीसे हाथ काम नहीं देते।

३—रथ कहाँ था? यहाँ मायामय रथ प्रकट करलिया, प्रथम इसका होना नहीं पायाजाता। जब वह सीताजीके पास आकर बातें कररहा था।

नोट—वाल्मीकिजी रथपर आना स्पष्ट लिखतेहैं। नृसिंहपुराणमें जटायुके पक्ष काटनेपर पुष्पकयानपर सवार होना लिखाहै। जिस रथ-पर आयाथा उसे गृध्रराजने तोड़डाला। पं० रामकुमारजी कहतेहैं कि रथ अदृश्य रहा और प्रमाण देतेहैं—'सच मायामयोदिव्यः खरयुक्तः खरस्वनः प्रत्यदृश्यतहेमांगो रावणस्य महारथः' इति वाल्मीकीये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीसीताहरण-रहस्य

भगवान्‌के चरित्रोंके रहस्य कौन जानसकताहै? वही कुछ जान सकताहै जिसे वे कृपा करके जगादें—'सो जानइ जेहि देहु जनाई'; नहीं तो किसीका भी सामर्थ्य नहीं जो उसे जानले। जान ले तो वह रहस्यही क्या हुआ? श्रीसीताजी आदि-शक्ति हैं, श्रीरामजीसे उनका वियोग कभी किसी कालमें नहीं है, दोनों अभिन्न हैं, एकही होते हुए भक्तोंके लिए युगल स्वरूपसे विराजमान हैं।—'गिरा अरथ जलबीचि सम देखियत (कहियत) भिन्न न भिन्न'। माधुर्य्यमें पति-पत्नी-भाव-से श्रीरामजीको वे अतिशय प्रिय हैं। ऐसी परम सतीशिरोमणिके हरणमें क्या रहस्य है, यह तो यथार्थ उस नरनाट्यके करनेवाले ही जानें। देखिए जिनके एक सींकके बाणसे पीछा किएजानेपर इन्द्रपुत्र जयन्त त्रैलोक्यमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र आदि किसीकीभी शरण न पासका, क्या वे रावणको घर बैठे नहीं मार सकतेथे? अवश्य मार सकतेथे। पर ऐसा होता तो आज हमको उनके चरित्र-गान करके भवपार होनेका अवसर कहाँसे मिलता? उनके दिव्य गुणों-करुणा, भक्तवत्सलता इत्यादिको हम कैसे विश्वासपूर्वक स्मरण करके अपने-को कृतार्थ समझ सकते?

स्मरण रहे कि यहाँ जो कुछ लिखाजारहाहै वह प्रधानतया धार्मिक वा भक्ति भावसेही लिखाजारहाहै।

यह चरित जानबूझकर कियागयाहै। गोस्वामीजीने तो इसे स्पष्ट शब्दोंमें कहदियाहै और वाल्मीकिरामायणसेभी स्पष्ट है कि श्रीराम-लक्ष्मण दोनोंने जानलियाथा कि यह कपटमृग मारीच ही है। यथा—

तब रघुपति जानत सब कारण। उठे हरषि सुरकाज सँवारन॥

यदि जानबूझकर ऐसा न हुआ होता तो क्या रावण परम-सती-शिरोमणियोंकी भी सिरताज श्रीवैदेहीजीके कभी हाथ लगा सकता-था? अनुसूयाजीसे त्रिदेवकी न चली, तब इनके आगे रावणकी क्या चलती? बा० अ० ५।२२ में श्रीजानकीजीने रावणसे यह स्पष्ट कहाहै कि तुझे भस्म करदेनेकी शक्ति मुझमें है तो भी मैं तुझे भस्म नहीं करती, क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा नहीं है और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ऐसा करनेसे मेरी तपस्या भंग होगी। यथा—"असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्। न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा ॥२०॥ नापहर्तुमहं शक्या तस्यरामस्य धीमतः। विधिस्तववधार्थाय विहितोनात्र संशयः ॥२१॥—(वा० सुं० २२)। यह बात न होती तो क्या जो सीताजी हनुमान्‌जीकी पूँछमें अग्नि लगाए जानेपर अग्निको 'शीतो भव हनुमतः' यह आज्ञा देकर हनुमान्‌जीके लिए अग्निको शीतल कर देनेको समर्थ थीं, क्या वे रावणको भस्म करदेनेको समर्थ न थीं? अवश्य समर्थ थीं।

यह सीताहरणचरित्रही हमारी समझमें वाल्मीकि रामायणमें छिपहुए परधामयात्रा चरितका बीज है। इसीके बलपर १० हजार वर्षसे अधिक राज्य करके अन्तमें श्रीसीताजीके त्यागकी लीला करके अवधवासियोंपर या यों कहिए कि समस्त प्रजापर अपना परम ममत्व दिखायाहै—'अति प्रिय मोहि यहाँके बासी' 'ममता जिन्हपर प्रभहि न थोरी'—ब० § १५ (१-३) देखिए। यह लीला नहीं तो और क्या है? कि १०००० वर्ष तक कोई चर्चा नहीं और जब परधाम-यात्राकी इच्छा हुई तब एक धोबी-द्वारा उनके विषयमें अपवाद सुनाजाता है और उसीपर उनका त्याग कियाजाताहै।

हमारे परमपूज्य महाराज श्री १०८ पं० रामवल्लभाशरणजी (जानकीघाट, श्रीअयोध्याजी) ने इस विषयमें दो रहस्य बताये थे जो यहाँ लिखेजातेहैं—१-रावणने देव, यक्ष, गन्धर्वादिकी कन्याओंको जबरदस्ती ला-लाकर उनसे विवाह किया। कितनीही देवियाँ उसके यहाँ कैद थीं—अपने अपने घरोंकी यह शोचनीय दशा देवताओंने आकर प्रभुसे बारबार कही। इन देवियोंकी दारुण विपत्ति सुनकर करुणावश महारानीजीने उनके संतोष एवं सान्त्वनाकेलिए स्वयं रावणके यहाँ कैद होना स्वीकार किया।

२—सुतीक्ष्णजीके आश्रमसे चलते समय महारानीजीने प्रभुसे कहाथा कि आपने दण्डकारण्यके ऋषियोंसे उनकी रक्षाकेलिए निशिचरवधकी प्रतिज्ञा कीहै और अब दण्डकवनको चलरहेहैं, मुझे वहाँका जाना अच्छा नहीं लगता, क्योंकि बिना अपराधके दण्डकारण्याश्रित राक्षसोंको मारना योग्य नहीं, यह पाप है। बिना अपराधके मारनेवाले वीरकी लोकमें प्रशंसा नहीं होती। यथा—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"प्रतिज्ञातस्त्वया वीर दण्डकारण्यवासिनाम् । ऋषीणां रक्षणार्थाय वधः संयति रक्षसाम् ॥ बुद्धिर्वैरं विना हन्तुं राक्षसान्दण्डकाश्रितान् । अपराधं विना हन्तुं लोको वीर न कामये ॥"—(वा०आ०९।१०,२५) । यद्यपि प्रभुने उस समय यही उत्तर दिया कि मुझे सत्य सदा प्रियहै, मैं जो प्रतिज्ञा करचुका उसे नहीं छोड़सकता । मैं अवश्य राक्षसोंका वध करके मुनियोंको अभय करूगा । तथापि सीताहरणमें यह रहस्य कहा जासकताहै कि रावणको सापराध ठहरानेकेलिए यह चरित हुआ । और, इस प्रकार "बिनु अपराध प्रभु हतहिं न काहू ॥' जो अपराध भगतकर करई । रामरोष पावक सो जरई ॥"इस वाक्यकोभी चरितार्थ करदिखायाहै ।

इस प्रकार लोक-वेद दोनोंसे उनका यह कार्य्य (रावण-वध) अनिन्द्य वा निर्दोष होगया और इससे प्रियाकाभी मान्य रहा ।

३—यह भाव तो ऐश्वर्य्य और भक्तिभावसे हुए । अब एक और भाव जो एक पतिव्रताशिरोमणि (पं० श्रीराजारामजीकी धर्म्मपत्नी) ने सीताहरणके बारेमें कहाहै उसे उन्हींके शब्दोंमें सुनिए—

"पति पर आयसु जनि करहु अस परिणाम बिचार ।
'पतिदासी' मृगछालहित सिय दुख सही अपार ॥"

अर्थात् यह बात पतिव्रताके धर्मके प्रतिकूल है कि वह पतिको आज्ञा दे । श्रीपतिदासीजी पतिव्रताओंको सीताहरणका उदाहरण देकर उपदेश देतीहैं कि पतिको कभी भूलकर आज्ञा न देना । वे अपने इस दोहेकी टिप्पणीमें लिखतीहैं कि-'पतिपर आज्ञा करना बिलकुल मना है । यथा—'सर्पिर्लवण तैलोदिक्षयेपिच पतिव्रता, पतिं नास्ति न ब्रूयादायासेषु न योजयेत्' इति काशीखण्डे । अर्थात् घी, लोन, तेलके न रहनेपरभी पतिव्रता स्त्री पतिसे लानेको न कहे । सीताने पतिको मृगचर्म लानेकी आज्ञादी, यथा—'आनहु चर्म कहत बैदेही' । यहाँ यह शंका होतीहै कि सीताजी तो पतिव्रताशिरोमणि हैं, इनके तो नाम-स्मरण करनेसे प्राकृत स्त्रियाँ पतिव्रतका पालन करतीहैं, यथा—"सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं।०" तब उन सीता-जीने जानबूझकर कैसे आज्ञा दी, जिसका परिणाम उनको भोगना पड़ा ? इसका समाधान यह है कि रामजीने पुरुषोंके उपदेशके बहुत चरित किए; इसी प्रकार यह चरित स्त्रियोंके उपदेशकेलिए हुआहै ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसमें उपदेश यह है कि जब किंचित आज्ञा करनेसे साक्षात् श्रीजानकीजीको ऐसा दण्ड सहना पड़ा, तब जो स्त्रियाँ पतिका अनेक प्रकार से निरादर करतीहैं उनकी क्या दशा होगी ? इसपर पुनः बहिनें यह प्रश्न करेंगी कि स्त्रियाँ बाहर नहीं निकलतीं और गृहस्थीकी अनेक वस्तुओंका एकत्र करना पतिके अधीन है, तब बिना कहे कार्य्य कैसे होगा ? उत्तर यह है कि उपरोक्त श्लोकका अभिप्राय यह नहीं है कि पतिको सूचना न दीजाय; किन्तु 'ले आओ, ला दो' ऐसा न कहा-जाय। यदि आवश्यकता हो तो इस रीतिसे कहाजाय कि अमुक वस्तु नहीं है। अभिप्राय दोनोंका एकही है पर इस प्रकार कहनेमें आज्ञा नहीं पाईजाती।"—(अप्रकाशित)।

यही भाव स्वयं श्रीसीताजीके प्रतिबिंबके इन शब्दोंसे ध्वनित हो-रहाहै—"कामवृत्तमिदंरौद्रं स्त्रीणामसदृशं मतम्। वपुषा त्वस्य सत्त्वस्य विस्मया जनितो मम ॥'—(वा० आ० ४३।२१) अर्थात् अपनी इच्छा की पूर्त्तिकेलिए जो मैं आपसे यह कहरहीहूँ, यह कठोर है और स्त्रियों के लिए अनुचित है, यह मैं जानतीहूँ तथापि इस मृगको देखकर मुझे बड़ा विस्मय उत्पन्न होगयाहै, अतः आप इसे ले आवें—"आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति ॥"

इसी संबंधमें यहाँ एक और बात यहभी लिखनी उचित जानपड़-तीहै कि आज्ञा देनेमें तो महारानीको वाल्मीकिके अनुसार बहुत संकोच हुआहै परन्तु इससेभी अधिक गर्हितकर्म महारानीने लाचार-होकर पतिकी आज्ञाके उल्लंघनका कियाहै। वनगवनके समय श्री-रघुनाथजीकी आज्ञा थी कि घर रहकर माताओंकी सेवाकरो परन्तु महारानीने देखा कि घर रहनेमें वियोगदुःख सहा न जायगा प्राण त्याग करना पड़ेगा और आज्ञा न मानकर साथ रहकर आज्ञाके उल्लंघनका पाप भुगतना पड़ेगा। इन दोनोंमें वियोग अधिक दुःखदायी प्रतीत हुआ और संयोगके साथ आज्ञा न माननेके पापका परिणाम सहन करना उन्हें कम कठिन जँचा। श्रीरघुनाथजीने ध्वनिसे दोनों बातें श्रीजी के सामने रक्खीं और उनपर छोड़दिया कि जो चाहें कबूल करलें। यथा—आपन मोर नीक जो चहहू। बचन हमार मानि गृह रहहू ॥

यहाँ 'नीक' में भाव यह है कि न तुम्हारा हरण होगा न आगे झंझट बढ़ेगा—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'कहौं सुभाव सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखौं तोहीं ॥
गुरु श्रुति संमत धरम फल पाइअ बिनहि कलेस।
हठ बस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेस ॥

'जो हठ करहु प्रेमबस बामा। तौ तुम्ह दुख पाउब परिनामा ॥...
'नर अहार रजनीचर करहीं। कपट बेष बिधि कोटिक धरहीं ॥...

सहज सुहृद गुरु स्वामि सिष, जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हित हानि ॥'

इन पदोंसे यह स्पष्ट होताहै कि भगवान्‌ने भावी संकटपर विचारकरके महारानीको चितावनी दी कि प्रेमके वश होकर हठ करोगी तो अन्तमें बड़ा दुःख उठाना पड़ेगा,—केवल रावण-द्वारा हरण और लंकावासही नहीं बल्कि दसहजार बरस पीछे अपयशके परिणामसे बनवासभी करनापड़ेगा और चिर-वियोग-दुःख उठानापड़ेगा। इतनी भारी चितावनी परभी महारानीने सद्यः वियोग-जात-दुःख उठानी कबूल नहीं किया और पति-आज्ञाका उल्लंघन किया और उसके परिणामको जो स्वामीने बतारक्खाथा सच्चे सत्याग्रहीकीतरह सहना स्वीकार करलिया। सीताहरण-चरितके व्याजसे महारानीको इस पापका कितना घोर दण्ड दिलायागया यह सोचकर कलेजा काँप उठताहै। हरण और केवल दस ग्यारह महीने तक काही वियोग नहीं बल्कि पार्थिव-जीवनके अंत दस-ग्यारह सौ बरसोंका चिर-वियोग जिसमें कि न केवल पतिकी आज्ञा थी बल्कि राजाकी ओरसे बनवास का निरपराध दण्ड था।

और भी भाव सुनिए—४—भृशुण्डिजी, शिवजी आदिने मायाका हरण-माया-सीताका हरण होना स्पष्ट कहा है। यही बात गोस्वामीजीनेभी स्पष्ट शब्दोंमें कहीहै—

'पुनि माया सीताका हरना', 'निज प्रतिबिंब राषि तहँ सीता'। श्रीवैजनाथजी लिखतेहैं कि ऋषिकन्या वेदवतीने प्रभुकी प्राप्तिकेलिए अखण्ड तप किया उसको देख रावणने जबरदस्ती उसे पकड़कर लंका लेजाना चाहा। उस समय उसने शाप दिया कि तेरा नाश मेरे द्वारा होगा यह कहकर उसने अपना वह शरीर छोड़दिया। वही यहाँ सीताजी का प्रतिबिंब है। उसीमें सीताजीका आवेश हुआ। (वेदवतीकी कथा वाल्मीकीय उत्तरकाण्डमें है। वेदवतीका शाप सत्य करनाहै और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसको तपस्याका फलभी देनाहै। इन बातोंकी पूर्त्तिकेलिए सीता-हरण-चरित रचागया।) पं० रामकुमारजीने § २२ (८) में कहाहै कि रावणने कपट किया। उसने प्रभुको कपटका मृग दिया अतः प्रभुने उसे कपटकी सीता दी। जैसे को तैसा! परम कौतुकी कृपाला! छलने आया और स्वयं छल गया। वास्तवमें हमारे मित्र प्रोंफेसर श्रीरामदासजी गौड़ने जैसा कहाहै वैसाही है कि 'मायामानुषरूपिणौ'. दोनों भाई मायाकी सीता, मायामृग, मायाका संन्यासी, मायाका रथ, मायाका विलाप और विरह कथा सभी कुछ दोनों ओरसे मायाका खेल था।

इसमें महामाया और ईश्वरी-मायाके साथ राक्षसी-मायाकी लीला होरहीहै, ईश्वरी अथवा दैवी-माया तामसी किंवा राक्षसी-माया से खेलरहीहै। मूर्ख राक्षस खुश है कि मेरी माया चलगयी और इन मनुष्योंको मैंने मोहितकरके स्त्रीहरण करलिया परन्तु यह नहीं जानता कि मैं स्वयं ईश्वरी-माया-जालमें बेतरह फँसगयाहूँ और मेरी बुद्धिका हरण कबका होचुकाहै। जब लक्ष्मणजीकोही परतमकी मायाका पता नहीं है तब देवदनुजादिकी तो बातही क्या है—

'सिव बिरंचि कहँ मोहई को है बपुरा आन?'

५—श्रीसीताहरणका एक रहस्य यहभी होसकताहै, जिसका बीज इस काण्डके आदिमें बोदियागयाहै कि—जयन्तने किंचित सीतापराध किया, उसपर सींकास्त्र चलाकर प्रभुने दिखायाथा कि देवराजपुत्रको भी त्रैयोक्यमें बचनेकी जगह न मिली तब सीताहरण करनेवालेको त्रैलोक्यमें कब कहीं शरण मिल सकती है। सीताहरण होनेसे देवताओंको पूर्ण विश्वास होजायगा कि अब रावण मारागया इसमें संदेह नहीं और निश्चरोंको भय होगा कि 'नहिं निसिचर कुल केर उबारा'

६—एक और रहस्य यह भी कहाजाताहै कि रावण ब्राह्मण है, ब्राह्मणका वध करनेसे ब्रह्महत्या लगतीहै। इन्द्रको वृत्रासुरके वधसे घोर ब्रह्महत्या लगीथी। पर धर्मशास्त्रकी आज्ञा यहभी है कि आततायीका वध करना उचित है, इसमें दोष नहीं। परस्त्रीहरण करने-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाला आततायी है। अतः स्त्रीहरण द्वारा इस दोषकाभी निवारण हुआ। *

☞ सीताहरण चैत्र शुक्ल ८ शुक्रवारको मध्याह्नकालमें हुआ, यथा हनुमन्नाटकके—'अर्धरात्रेदिनस्यार्धं अर्धचंद्रेऽर्धभास्करे। रावणेन हृता सीताऽकृष्णपक्षे सिताष्टमी' अर्थात् देवदिनके आधे अर्थात् चैत्र-मासमें, अर्धरात्रे अर्थात् पितरोंकी आधीरातमें अकृष्ण अर्थात् शुक्ल-पक्षमें, अर्धचन्द्रे अर्थात् जब कि अष्टकलायुक्त चन्द्रमा होताहै तब, अर्धभास्करे अर्थात् मध्याह्न समयमें, सिताष्टमी अर्थात् शुक्रवारसहित अष्टमीके दिन रावणने सीताहरण किया। पुनः, यथा—'चैत्रमास सिताष्टम्यां मुहूर्ते वृन्दसंज्ञके। राघवस्य प्रियां सीतां जहार दशकंधरः' इति वाराहे। उस समय विन्दुयोग था। वाल्मीकिमें जटायुने कहाहै।

हा जगदेक † बीर रघुराया।
केहि अपराध बिसारेहु दाया॥ § २८/२२ (१)
आरतिहरन सरनसुखदायक।
हा रघुकुल सरोज दिननायक॥ ,, (२)
हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा।
सो फलु पाएउँ कीन्हेउ रोसा॥ ,, (३)
बिबिध बिलाप करति बैदेही।
भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही॥ ,, (४)

* आततायी छः होतेहैं। प्रमाण यथा—'अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणि धनापहः। क्षेत्रदारा हरश्चैव षडेते आततायिनः॥'—(वसिष्ठस्मृति ३।१६) अर्थात् घर जलानेकेलिए आयाहुआ, विष देनेवाला, हाथमें हथियार लेकर मारनेके लिए आयाहुआ, धन लूटकर लेजानेवाले और स्त्री या खेतका हरणकर्त्ता—ये छः आततायीहैं। मनुस्मृति ८। ३५०, ३५१ में मनुजीने कहाहै कि आततायी को वेधड़क जानसे मार डाले, इसमें कोई पातक नहीं है।—(गीतारहस्य)

† 'जग एक'—(भा० द०), इसमें 'दे'वा'ये'पर हरताल देकर 'ए' बनाहै। 'जगदेक'—(पं० रा० गु० द्वि० ना० प्र०)। जगदेक—(गौड़जी) हनुमन्ना-टकमेंभी 'जगदेक वीर' शब्द आएहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बिपति मोरि को प्रभुहि सुनावा।
पुरोडास चह रासभ खावा॥ § २८/२२ (५)
सीताकै बिलाप सुनि भारी।
भये चराचर जीव दुषारी॥ ,, (६)

पुरोडाश—१ यव आदिके आटेकी बनीहुई टिकिया जो कपाल में पकाई जातीथी। इसके टुकड़े काटकर यज्ञमें देवताओंकेलिए मंत्र पढ़कर आहुति दीजातीथी। यह यज्ञका अंग है। २—हवि। ३—वह हवि या पुरोडाश जो यज्ञसे बच रहे। ४—यज्ञ भाग।—(श० स०)

अर्थ—हा जगत्के एकही (अद्वितीय) वीर रघुराज! किस अपराधसे दया भुलादी। * हे (आर्त्तके) दुःखके हरनेवाले! हे शरणागतको सुख देनेवाले! हा! रघुकुलकमलके सूर्य्य! हा लक्ष्मण! तुम्हारा दोष नहीं ‡ मैंने क्रोध किया उसका फल पाया। वैदेही (राजाविदेहकी कन्या) अनेक प्रकारसे विलाप कररहीहैं—कृपाके समूह वे स्नेही दूर निकल गएहैं। मेरी विपत्ति उनको कौन सुनावेगा? यज्ञकी खीरको गधा खाना चाहताहै। सीताजीका भारी विलाप सुनकर जड़ चेतन सभी जीव दुःखी होगए।

नोट—१ यहाँ पाँच चौपाइयों (अरधालियों) में सीताजीका राम विरहमें विलाप कहाहै। और, आगे श्रीरामजीका विलाप श्रीजानकीविरहमें दस चौपाइयोंमें कहाहै—'हागुनखानि' से 'मनहु महाबिरही अति कामी' तक। इससे अनुमान होताहै कि यहभी एक कारण श्रीहनुमानजीके इन वचनोंका हुआ—'तुम्हते प्रेम रामके दूना'। २—'तुम्हार नहिं दोषा' कहकर लक्ष्मणजीको निरपराध सूचित किया, दोष अपना स्वीकार किया कि और क्षमा माँगतीहैं—जैसा किया वैसा मैं भोग रही हूँ। बहुत विलाप करनेपरभी प्रभु न पहुँचे तब कहतीहैं कि 'भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही' अर्थात् वे दूर चलेगएहैं हमारे वचन नहीं सुन पाते नहीं तो अवश्य पहुँचते या वहींसे सहायता करते। ३—'वैदेही' पद

* यथा हनुमन्नाटके (अंक ४)-'हा राम हा रमण हा जगदेकवीर हा नाथ हा रघुपते किमुपेक्षसे माम्'।

‡ यथा अध्यात्मे-'हा लक्ष्मण महाभाग त्राहि मामपराधिनीम्। वाक्शरेणाहतस्त्वंमे क्षंतुमर्हसि देवर'।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देकर जनाया कि शोकमें देहकी सुध जातीरहीहै। ४—मा० म० 'पुरोडास चह रासभ खावा' का भाव लिखतेहैंकि जैसे रासभ इन्द्रहव्य खाना चाहताहै परन्तु जैसे न पानेसे बिना खायेही मरजाय वैसेही रावणकी गतिहै क्योंकि गदहेको इन्द्रहव्य कदापि नहीं प्राप्त होसकती।

पु० र० कु०—'सीताकै बिलाप००' इति। (क)—चर' का सुनना और दुःखी होना तो ठीक है अचरका सुनना कैसा? उत्तर 'अचरसे उनके अधिष्ठात्री देवताओंका सुनना अभिप्रेतहै। यथा—'सयल सकल जहँ जगि जगमाहीं। लघु बिसाल नहिं बरनी सिराहीं॥ बन सागर सब नदी तलावा। हिमगिरि सब कहँ नेवति पठावा। कामरूप सुन्दर तनुधारी। सहित समाज सहित बननारी। गए सकल तुहिनाचल गेहा। गावहिं मंगल सहित सनेहा॥'

(ख) रामचन्द्रजीके वियोगमें चराचर दुःखी हुए, यथा—'बागन बिटप बेलि कुँभिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं। सहि न सके रघुबर बिरहागी।' वैसेही यहाँ जानकीजीके वियोग और विलापसे इनकी दशा होगईहै। इससे जानागया कि अचरभी दुःखी हुए और उन्होंने सुना भी। रघुवंशसे मिलान कीजिए—'नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तानिजहुर्हरिण्यः' अर्थात् मोरोंने नाचना, वृक्षोंने फूलों को और हरिणियोंने ग्रहण किएहुए कुशको छोड़दिया। (ग) चराचर जीव दुःखी हुए, यह कहकर जनाया कि उनके किए कुछ न हुआ। जिससे कुछ बन पड़ा उसको आगे कहतेहैं।

२—मिलान कीजिए गीतावली पद २०६ से—

'आरत बचन कहति बैदेही। बिलपति भूरि बिसूरि 'दूरि गए मृग सँग परम सनेही'॥ १॥ कहे कटु बचन, रेख नाँघी मैं तात छमा सो कीजै। देखि बधिक बस राजमरालिनि लषन लाल छिनि लीजै॥ २॥ बनदेवनि सिय कहन कहति यों छल करि नीच हरी हौं। गोमरकर सुरधेनु, नाथ! ज्यों त्यौं पर-हाथ परी हौं॥ ३॥ तुलसिदास रघुनाथ नामधुनि अकनि गीध धुकि धायो। पुत्रि पुत्रि! जनि डरहि, न जैहै नीचु? मीचु हौं आयो॥ ४॥—(गी० आ० ७)

नोट—'जगदेक बीर' यह बात धनुषयज्ञ, जयन्त प्रसंग और खरदूषणवधसे जानतीहैं और हनुमान्‌जीसे सुन्दरकाडमें इसीको कहाभी है कि किंचित् अपराध शक्रसुतने किया तब तो आपने ऐसा पराक्रम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसे दिखाया अब मेरा दुःख क्यों नहीं मिटाते, वही पुरुषार्थ यहाँ दिखाइए। रघुराया अर्थात् इस कुलमें रघु ऐसे होगए जिनके पराक्रम को रावण मानगया पर आप तो उस कुलके सिरताज हैं अतएव रक्षा कीजिए। शरणसुखदायक हो मैं शरणहूँ आर्त्त हूँ मेरा दुःख दूर करके सुख दीजिए। रघुकुलकमलके सूर्य्य हो, हमारा हरण सुनकर रघुकुलमात्र संकुचित होजायगा उसको बचानेकेलिए मुझे शीघ्र छुड़ाइए, उसका दुःख दूरकरके उसे प्रफुल्लित कीजिए। पहले कहा कि 'केहि अपराध बिसारेहु दाया' फिर अपना अपराध समझकर उसके लिए पश्चात्ताप करतीहैं जैसा गीतावलीसेभी स्पष्टहै।

"दाम्पत्य-प्रेम"

श्रीसीताजीका कितना प्रगाढ़ प्रेम श्रीरामजीमें था, यह वनयात्रा-समय देखनेमें आयाहै। परन्तु सीताहरणसे लेकर लंकाविजयके बाद पुनर्मिलापतक इसका लीलाके रूपमें अधिक परिचय मिलताहै। वे रामजीके विरहमें कैसी विकल थीं यह बात उनके विलाप और सुंदर काण्डमें विशेष रूपसे देखनेमें आतीहै। उनके प्रेमको जाननेवाले एक रघुनाथजीही हैं दूसरा नहीं। उन्होंने श्रीमुखसे यह कहाहै—

"प्रेम तत्त्वकर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा॥"

प्रेमकी पहिचान है कि वह अपने प्रेमपात्रको दहला देताहै चाहे वह उससे कितनीही दूर क्यों न हो। प्रेमी और प्रेमपात्र ये दोनों अन्योन्याश्रित शब्द हैं। जो प्रेमी है वही प्रेमपात्रभी है। जितनाही अधिक प्रेमपात्र व्याकुल हो उतनाही अधिक प्रेमीका प्रेम समझना चाहिए। ठीक यह बात यहां देखलीजिए—इधर महारानीजी स्वामीकी विरहमें परमव्याकुल हैं तो उधर स्वामी रघुनाथजी उनसे अधिक उनकेलिए व्याकुल हैं। महाविरही अति कामीकी नाईं बेसुध होरहेहैं, 'लतातरु पाती' 'खगमृग पशु' इत्यादिसे पूछते, रूप गुण आदिका बखान करते, उन्मत्त और स्त्रैणकी भाँति विलाप करतेचलेजारहेहैं। महारानीजीसे अधिक विलाप उनका मानसमें दिखायागयाहै—'तुम्ह तें प्रेम राम के दूना'। आ०§२८ (१-५) और सुं०§१३ (१०) देखिए। यह सब क्यों? क्योंकि भगवान्‌का बाना है कि "ये यथा मांप्रपद्यन्ते तांस्तथैव

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भजाम्यहम्' । इसीको यहां चरितार्थ कररहेहैं और हमलोगोंको इस चरितसे उपदेश देरहेहैं कि यदि तुम हमारे लिए व्याकुल होगे तो हम तुम्हारे लिए तुमसे द्विगुण व्याकुल होंगे ।

यह लीला विशेषकर भक्तोंकेलिए कीगईहै और उन्हें वियोग-शृङ्गारका एक जीताजागतारूप दिखायागयाहै । यहाँका वियोग-शृङ्गार कृष्णावतारके वियोग शृङ्गारसे कहीं ऊँची कोटिका है । परन्तु है यह लीलामात्र, क्योंकि महारानीसे तो वास्तविक वियोग कभी हुआही नहीं वह तो अलक्ष्यरूपसे अग्निके भीतर निहित निरन्तर उनके साथ हैं—'लछिमनहू यह मरम न जाना । जो कछुचरित रचेउ भगवाना'। उनका वियोग तो कभी होही नहीं सकता । शक्तिमानसे शक्ति कभी अलग नहीं होसकती' सूर्य्य से किरणें मिलीहुईहैं चाहे वह ९ करोड़ मील तक क्यों न विस्तृत हों । भगवान्‌की शक्तिका विस्तार अनन्त देश और अनन्तकालमें होतेहुएभी वह कभी भगवान्‌से अलग नहीं होसकती । महारानी तो भगवान्‌की अनन्तशक्तिकी मूलश्रोत हैं वह तो भगवान्‌के अन्तरकी अन्तरतम हैं वह कभी अलग नहीं होसकतीं । राजा राजधानीमें बैठा हजारों कोस अपनी राज्यकी सीमामें अपनी शक्तिसे शासन चलातारहताहै परन्तु उसकी वास्तविक शक्ति तो बराबर उसीके पास मौजूद है । भगवान्‌की शक्तिसे भगवान्‌का वियोग नहीं होसकता यद्यपि रावणको मारनेकेलिए उसका एक अंश मायारूप होकर अपने शत्रुके यहाँ चलाजाताहै और उसके नाशके समयतक उसके यहाँ बनारहताहै । दाम्पत्यप्रेमकी इस सचाको, जिसमें कि किसी देश या कालमें उसी तरह वियोग नहीं है जिस तरह सूर्य्यमें रात्रिका अत्यन्ताभाव है, शब्दोंके द्वारा कल्पनामें लाना असम्भव है । इसी अगाध, अनन्त, अचिन्त्य और कल्पनातीत दाम्पत्यप्रेमके केलि और विहारकाही नाम अनन्त विश्वकी रचना, जीवन और संहार है । इस विश्व वा भवसागरवाले महानाटकका अभिनय है ।—'भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई । राम बाम दिसि सीता सोई ॥' इस चिरन्तन अनादि अनन्त लीलामें वास्तविक वियोग कहाँ है ? जो कुछ वियोग दिखायाजाताहै वह तो लीला और खेलका एक नगण्य अंग है जो केवल भक्तोंकी खातिर भक्तवत्सल भगवान् द्वारा अभिनीत होताहै । भक्तवत्सल भगवान् की जय ! जय !! जय !!!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गीधराज सुनि आरत बानी ।
रघुकुलतिलकनारि पहिचानी ॥ § २८/२२ (७)
अधमनिसाचर लीन्हे जाई ।
जिमि मलेछ बस कपिलागाई ॥ ,, (८)
सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा ।
करिहौं जातुधानकर नासा ॥ ,, (९)
धावा क्रोधवंत खग कैसे ।
छूटै पवि पर्वत कहुँ जैसे ॥ ,, (१०)
रेरे दुष्ट ठाढ किन होही ।
निर्भय चलेसि न जानेहि मोही ॥ ,, (११)

अर्थ—गृध्रराजने दुःखभरी वाणी सुनकर पहिचाना कि यह रघुकुलतिलक रामचन्द्रकी पत्नी है। नीच निश्चर इसे लिएजाताहै जैसे म्लेच्छके वशमें कपिला गाय पड़ीहो। हे सीते पुत्रि! डरे मत, मैं निश्चरका नाश करूँगा। वह पक्षी क्रोधमें भराहुआ कैसा दौड़ा जैसे पर्वतको तोड़नेको वज्र छूटताहै। रेरे दुष्ट! तू खड़ा क्यों नहीं होता? निडर चलदियाहै, मुझे नहीं जानता?

नोट १-(क) 'गीधराज सुनि'। °०-यहाँ गीधराज पद दिया क्योंकि रावण राजा है राजासे राजा लड़ताहै। अथवा, राजकुमारीकी सहायता करनाहै यह राजाके योग्य कार्य्यहै, गौको म्लेच्छसे छुड़ानामें राजधर्म है। (ख)—'सुनि आरतबानी?।' इति। 'हा जगदेक बीर रघुराया। हा रघुकुल सरोज दिन नायक' इन आर्त्तवचनोंसे जाना कि रघुकुलतिलकरामजीकी धर्मपत्नी हैं।

२—'रघुकुलतिलकनारि' कहकर 'अधम निसाचर लीन्हे जाई' पद देकर इसकी बड़ी अयोग्यता जनाई। अर्थात् कहाँ तो रघुकुलमें शिरोमणि राम और कहाँ यह निश्चरोंमें अधम म्लेच्छ। म्लेच्छसे गऊकी रक्षाकरना राजा, प्रजा सभीका कर्त्तव्य और धर्म है। यह म्लेच्छका राजा है, मैं गृद्धराज हूँ, मेरा धर्म है रक्षाकरना। †

† गी० २०६ यथा—'गोमर कर सुरधेनु नाथ ज्यौं त्यौं परहाथ परीहौं ॥६॥'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३—'सीते पुत्रि'। पुत्रकी स्त्री कन्यासमान है, यथा—'अनुजवधू भगिनी सुतनारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी'। अतः 'पुत्रि' कहा। 'करिहौं जातुधानकर नासा'—सीधा अर्थ यही है कि निश्चरका नाश करूँगा * यह कहकर सीताजीको अभय देकर प्रसन्न किया। 'पुत्रि' शब्दमें कैसा माधुर्य्य और वात्सल्य झलकरहाहै।

पु० र० कु०—१ 'छूटै पवि पर्वत कहँ जैसे'। अर्थात् ऊपरसे पंख समेटकर वज्रसमान छूटा। वज्र गिरनेसे पर्वत चूरचूर होजाताहै वैसेही यहाँ 'चोचनि मारि विदारेसि देही'। २—'रेरे दुष्ट ठाढ़...' इति।—रावण दुष्ट था अतः उसे सभी दुष्ट कहतेहैं। यथा—'कह सीता सुनु जती गुसाईं। बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं॥' 'रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होई'—(जटायू)। 'यह दुष्ट मारेउ नाथ भे सकल सनाथ'—(इन्द्र)। 'परद्रोह रत अति दुष्ट पायो सो फल पापिष्ट—(इन्द्र)। 'न जानहि मोही' अर्थात् यह नहीं जानता कि मैं इसका रखवालाहूँ रक्षक हूँ।—[इन शब्दोंसे जानपड़ताहै रावण जानताथा कि गृद्धराज जटायु बड़ा पराक्रमी और बलवान था पर इस समय जरा अवस्था को प्राप्त है।

गोस्वामीजी और नारिजातिका आदर्श

पं० रामचन्द्रजी—कविने रामायणकी रचना करकेही यह दरसा दिया कि उसकी दृष्टिमें स्त्रीका पद कितना ऊँचा है। एक स्त्रीके अपमानके बदलेमें हजारों योद्धा अपनी जीवन-लीला समाप्त करतेहैं। उसीके प्रतिकारमें सीताहरण होताहै। फिर उनकी रक्षा, उनकी मान-

---

तुलसिदास रघुनाथनाम धुनि अकनि गीध धुकि धायो। पुत्रि पुत्रि जिन डरहि न जेहै नीच मीचु हौं आयो॥७॥

* १-'करिहौं जातुधानकर नासा'। यहाँ सरस्वतीकृत विलक्षण शब्द पड़ेहैं, सरस्वती उसकी वाणी यों अर्थ सिद्धकर सत्य करतीहैं—'यातुधानके करसे अपना नाश करूँगा' अर्थात् तेरे लिए मैं आत्मसमर्पण करताहूं।—(पु०र० कु०)। २—दीनजी—यदि अनुस्वारका विचारा न करके लें तो यह एक प्रकारका आशीर्वाद मानों देरहेहैं कि तुम्हारा यह कुछ न करसकेगा वरन तुम्हारेही द्वारा इसका नाश होगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मर्यादाको पददलित करनेके प्रयत्नको विफल करनेकेलिए लंकामें रक्तकी नदी बहतीहै।

२—सुनसान स्थानहै। एक अकेली अबला पर्णकुटीमें बैठीहै। रावणसा प्रतापी सम्राट उसके रूपलावण्यकी कथापर मुग्ध हो उसको उठाने तथा अपनी भगिनीके अपमानका बदला लेनेआताहै। पर उसे इतना साहस नहीं होता कि सम्मुख जाकर प्रेमभिक्षाकी याचना करे। अतः यतीका वेष करके जाताहै। ३—पर जब इस प्रकार सफल मनोरथ नहीं होता तब अपना असली रूप दिखाताहै। पर उत्तर क्या मिलताहै?—'जिमि हरि बधू छुद्र ससचाहा...'। ४—इसका प्रभाव कामांध पर क्या पड़ताहै?—'सुनत बचन दससीस लजाना। मन महुँ चरन बंदि सुखमाना'। ५—पर प्रतिकारमिश्रित कामकी ज्वाला हृदयमें दहकरहीहै जिसमें पड़कर यह विचार भस्म होजाताहै और वह श्रीसीताजीको बलात् लेजाताहै। वे कातरध्वनिसे विलापकरती जातीहैं। यह क्रन्दनका शब्द जटायुके कर्ण कुहरमें पड़ताहै। बेचारा जरासे अशक्त होरहाहै। तोभी—'गीधराज सुनि आरत बानी...' 'सीते पुत्रि करेसि जन त्रासा। करिहौं जातुधान कै नासा'। ६—एक अबला हरी जारहीहै एक अशक्त वृद्धपक्षी या नवीन दृष्टिके मतानुसार कोई वृद्ध अनार्य्य सरदार यह दृश्य देखताहै। वह कातर हो उठताहै। वह इस अनाचारको सहन नहीं करसकता और अबलाके बचनेमें अपने प्राणोंकी आहुति देदेताहै। क्या पाश्चात्य शिवेलरी (Chivalry) में इसकी समानता मिलती है? वहाँ तो किसी रमणीकी सहायताके उपलक्षमें यह मानीहुई बात है कि आगे चलकर प्रेमको भिक्षा माँगी जायगी। भारतके तुच्छ जीवभी अबलाके रक्षार्थ अपने प्राणोंकी परवा नहीं करते। 'पुत्रि' शब्दमेंभी कैसा माधुर्य्य, कैसा वात्सल्य-स्नेह झलक रहाहै।—आगे देखिए § २७ (१-३) में।

आवत देषि कृतांत समाना।
फिरि दसकंधर कर अनुमाना॥ §$\frac{२८}{२२}$ (१२)
की मैनाक कि षगपति होई।
मम बल जान सहित पति सोई॥ „ (१३)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जाना जरठ जटायू एहा ।
मम कर तीरथ छाडिहि देहा ॥ ,, (१४)
सुनत गीध क्रोधातुर धावा ।
कह सुनु रावन मोर सिखावा ॥ ,, (१५)
तजि जानकी कुसल गृह जाहू ।
नाहित अस होइहि बहुबाहू ॥ ,, (१६)
रामरोष पावक अति घोरा ।
होइहि सकल सलभ कुल तोरा ॥ ,, (१७)

अर्थ—यमराज वा कालके समान आतेहुए देखकर दशकन्ध रावण फिरकर मनमें अनुमान (अटकलसे विचार) करनेलगा—या तो मैनाक पर्वत होगा या पक्षियोंका स्वामी गरुड़ होगा। पर यह तो अपने स्वामी विष्णुसहित मेरे बलको खूब जानताहै। (पास आनेपर) जाना (वा, अच्छा मैंने जानलिया) कि यह तो बुड्ढा जटायु है, मेरे हाथरूपी तीर्थमें यह शरीर छोड़ेगा। यह सुनकर गृध्र क्रोधसे शीघ्र दौड़ा और बोला—हे रावण ! मेरा सिखावन सुन। जानकीको छोड़कर खैरियतसे घर चले जाओ। नहीं तो, हे बहुतसे भुजाओंवाले ! ऐसा होगा कि रामचन्द्रजीके क्रोधरूपी अत्यन्त भयङ्कर अग्निमें तेरा सारा वंश पतिंगा (की तरह जलमरेगा) होजायगा।

नोट १—'की मैनाक कि खगपति... सहित पति सोई' इति।—मैनाक हमारा बल जानताहै कि इन्द्र हमारे डरसे भागा भागा फिरता है और वह तो इन्द्रके वज्रके भयसे समुद्रमें जा छिपाथा तब भला मेरा सामना क्या करसकताहै ? और गरुड़ है तो इसपर सवार होकर अनेक बार इसके स्वामीने मुझपर चक्र चलाया तोभी मेरा कुछ न बिगड़ा अतः वह जानबूझकर अब क्यों सामना करेगा। *

* १—यथा—"विष्णुचक्रनिपातैश्च शतशोदेवसंयुगे। अन्यैः शस्त्रैः प्रहारैश्च महायुद्धेषु ताडितम् ॥१०॥ अहताश्च समस्तैस्तं देवप्रहरणैस्तदा। अक्षोभ्याणां समुद्राणां क्षोभणं क्षिप्रकारिणम् ॥ ११ ॥"—(वा० अ० ३२)। पुनः यथा—"ऐरावतविषाणाग्रैरापीडमकृतव्रणौ। वज्रोल्लिखित पीनांसौ विष्णुचक्र परिक्षतौ" (वा० सु० ११) २—हनुमन्नाटक अंक ४ श्लो० ९ से मिलान कीजिए, यथा—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—'मम कर तीरथ छाँडिहि देहा।' रावणका अभिमान इसीसे स्पष्ट है कि वह अपने मुख अपने हाथोंको तीर्थकी उपमा देरहाहै। हाथोंका तीर्थसे रूपक बाँधा। भाव यह कि लोग मोक्षकेलिए अपना शरीर अयोध्या, काशी, प्रयाग, मथुरा आदि तीर्थोंमें छोड़तेहैं। रावण गर्वसे सोचताहै कि यह हमारा सामना करनेको आरहाहै तो अवश्य इसे अपने प्राण देनाहै, यह मारा जायगा, मानों हमारे हाथोंसे वध होनेकोही यह तीर्थ समझकर आयाहै। जरा अवस्थामें क्लेश होताहै इसीसे वह मरनेकी इच्छाकरताहै।

३—'सुनत गीध' इति। पूर्व कहा कि 'दसकंधर कर अनुमाना' और अब कहतेहैं कि 'सुनत…'। इससे जानपड़ताहै कि अनुमान मनमें ही नहीं किया किन्तु मुखसे कहा भी। अथवा, 'की मैनाक कि खग-पति होई। मम बल जान सहित पति सोई' यह अनजान है और समीप आकर पहचाननेपर गर्वमें आकर ये वचन प्रकट है—'जरठ जटायू पहा। मम कर तीरथ छाँडिहि देहा'। इन्हींको जटायुने सुना तब बहुत क्रोधयुक्त होगया। यह दूसरा भाव और अर्थ हनुमन्नाटकके अनुसारभी ठीक जानपड़ताहै। इस प्रकार 'जाना'=अहा! मैं जानगया।

४ पु० र० कु०—(क) 'क्रोधातुर धावा' से ज्ञात होताहै कि रावण खड़ाहोकर विचार करनेलगाथा तब जटायुभी धीरा होगया, पर जब उसने ऐसे वचन कहे तब वह पुनः शीघ्रतासे दौड़ा और पास पहुँचकर उपदेशदिया। रावणने 'जरठ' कहाहै और बूढ़े उपदेशदेने-योग्य होतेही हैं अतः उपदेश दिया, यथा—'मनहु जरठपन अस उपदेसा' (अ०)।

(ख)—'तजि जानकी कुसल गृह जाहू।' अर्थात् नहीं छोड़ने

"मैनाकः किमयं रुणद्धि पुरतो मन्मार्गमव्याहतं
शक्तिस्तस्य कुतः सवज्रपतनाद्भीतो महेन्द्रोदपि॥
तार्क्ष्यः सोऽपि समं निजेन विभुना जानाति मां रावणं
हा ज्ञातं स जटायुरेष जरसा क्लिष्टो वधं वाञ्छति॥"

अर्थात् मेरे स्वच्छन्दमार्गको क्या यह अगाड़ीसे मैनाक पर्वत रोकताहै? उसकी क्या सामर्थ्य है? वह तो वज्र लगनेके भयसे इन्द्रसे डरताहै। तो क्या यह गरुड़ है? वहभी अपने स्वामीसहित मुझ रावणको जानताहै। ओ हो! जानलिया यह जटायु ही, बुढ़ापेसे क्लेशित होकर मरनेकी इच्छा करताहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तो अभी एक तो हमारे हाथों तुम्हारी कुशल नहीं और फिर रामरोष पावकसे कुल समेत तुम्हारी कुशल नहीं।

(ग) 'नाहित अस होइहि बहुबाहू'। रावणको अपने बाहुबलका बड़ा अभिमान है * इसीसे "बहुबाहु" कहा। अर्थात् ये सब काट डाले जांयगे।

(घ) "होइहि सकल सलभ कुल तोरा' इति। पतंगोंका संयोग दीपकसे है पर यहाँ 'दीपक' न कहकर 'रामरोष पावक' कहा। कारण कि बहुत पतिंगोंके आपड़नेसे दीपक बुझभी जाताहै। यहाँ 'सकल··· कुल' बहुतसे पतिंगे हुए उनके जलानेकेलिए 'अति घोर पावक' कहा जिसमें कोई बचे नहीं और आग बुझे नहीं। ऐसा ही अन्यत्र कहाहै—'निसिचर निकर पतंगसम रघुपति बान कृसानु। जननी हृदय धीर धरु जरे निसाचर जानु'—(हनुमद्वाक्य) 'लषनरोष पावक प्रबल जानि सलभ जनि होहु'—(ब०§६६)।—[नोट—वाल्मीकीयमें ऐसाही है—'समित्रबन्धुः सामात्यः सबलः सपरिच्छदः। शलभाइव नश्यन्ति रामरोषस्य पावके'।]

पं० रा०चं०शुक्ल—"की मैनाक कि खगपति होई"। संदेह विशुद्ध अलंकार वहीं कहाजासकताहै जहां सदृश वस्तु लानेमें कविका उद्देश्य केवल रूप, गुण या क्रियाका उत्कर्ष या अपकर्ष दिखाना रहता है। ऐसा संदेह वास्तविक भी होसकताहै पर वहाँ अलंकारत्व कुछ दबासा रहेगा। जैसे 'की मैनाक०' में जो संदेह है, वह कविके प्रबंध कौशलके कारण वास्तविक भी है तथा आकारकी दीर्घता और वेगकी तीव्रताभी सूचित करताहै।

उतरु न देत दसानन जोधा।
तबहिं गीध धावा करि क्रोधा॥ § २८/२२ (१८)

---

* यथा—१ 'चला भवन निरषत भुज बीसा'। २—'ममभुजसागर बल जलपूरा। जहँ बूड़े बहु सुरनर सूरा'। ३—'भुज बिक्रम जानहिं दिगपाला। सठ अजहू जिन्हके उर साला'। ४—हरगिरि मथन निरखु मम बाहू। पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू'। ५—'कहसि न खल अस को जगमाहीं। भुजबल मैं जीता जेहि नाहीं'। ६—'निज भुज बल मैं बयरु बढ़ावा'। इत्यादि।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा।
सीतहि राखि गीध पुनि फिरा॥ § २९/२२ (१९)
चोचन्हि मारि बिदारेसि देही।
दंड एक भइ मुरुछा तेही॥ ,, (२०)
तब सक्रोध निसिचर खिसिआना।
काढेसि परम कराल कृपाना॥ ,, (२१)
काटेसि पंख परा खग धरनी।
सुमिरि रामु करि अद्भुत करनी॥ ,, (२२)

शब्दार्थ—कच=बाल,केश।'बिदारना'=विदीर्णकरना,फाड़डालना।

अर्थ—योद्धा दशमुख उत्तर नहीं देता। तब गृद्ध क्रोधकरके दौड़ा। बाल पकड़कर उसको विनारथका करदिया, वह पृथ्वीपर गिरपड़ा, (तब) गृध्र सीताजीको (अपने स्थान पर) रखकर फिर लौटा। चोंचोंसे मार मारकर उसके शरीरको विदीर्ण करडाला। उसे एक दंड भर मुर्छा आगई। तब खिसियाये हुए निश्चरने क्रोधपूर्वक महाभयङ्कर खड्ग निकाला और उसके पक्ष (पखने) काटडाले। पक्षी रामजी को स्मरणकरतेहुए अद्भुत करनी करके पृथ्वी पर गिर पड़ा।

नोट—'जोधा' पद देकर जनाया कि योधा करनी करतेहैं, बकते नहीं, यथा—'सूरसमर करनी करहिं कहि न जनावहिं आप'। अतः उत्तर न दिया। पर उत्तम भाव यह है कि वीर है तबभी घबड़ागया उत्तर नहीं निकलता।

पु० र० कु० १—'तबहिं गीध धावा करि क्रोधा'। गृद्धराजका तीनबार धावना और तीनों बार क्रोध करना लिखागया। यथा 'धावा क्रोधवंत खग कैसे, सुनत गीध क्रोधातुर धावा' और यहाँ 'धावा करि क्रोधा'। इसका तात्पर्य यह है कि बीच २ में रुक जाताथा प्रथम जब रावण अनुमान करनेलगा तब रुकगया, फिर रावणको समझाने लगा तब ठहरगया। (२) प्रथम क्रोध सीताहरण पर हुआ, दूसरा क्रोध उसके अभिमानपूर्वक बोलनेपर हुआ और तीसरी बार उसके उत्तर न देनेपर क्रोधावेश हुआ।

२--'धरि कच' से जनाया कि उसके सिरपर उड़तारहा इससे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बाल पकड़ना ही सुगम जानपड़ा। *—[बाल पकड़कर धरना कहा गया। क्यों? क्योंकि यह मर्मस्थल है, इनके पकड़ने खींचनेसे अत्यन्त पीड़ा होतीहै जिससे मनुष्य तुरंत काबूमें आ जाताहै।—दीनजी]

३—"चोचन्हि मारि बिदारेसि देही।०० मुरुछा००"। पूर्व जो कहा था "छूटै पबि पर्वत कहँ जैसे" उसको यहाँ चरितार्थ किया। देह विदीर्णकरनेके लिए 'पवि पर्वत' की उपमा है। इसी प्रकार 'आवत देखि कृतान्त समाना' की उपमा 'मुर्छित' करनेके विचारसे दीगई। इस चौपाई का भाव कि उसने रावणको मृतप्राय कर दिया। ब्रह्माके वरसे वह मर नहीं सकता, नहीं तो मृत्युमें संदेह न था। देही=देह, शरीर, यथा—'पिता मंदमति निंदत तेही। दच्छसुक संभव यह देही', 'कर समान नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत जेही'।

गौड़जी—एक दंड तक मूर्छित रहा। फिर इस दशामें सीताजी स्वयं क्यों न भाग गयीं गीधने स्वयं सीताजीको लेकर आश्रममें क्यों न पहुँचाया? बात यह थी कि माया सीताको तो रावणके नाशके लिए उसके साथ जाना ही था। गीधको भी यह बुद्धि इसीसे न आयी।

(क) पु० र० कु०—४—'काढेसि परमकराल कृपाना'। यह वही है जिससे सीताजीको डरवावेगा, यथा—'सीता तैं कृतमम अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना'। यहाँ जटायुने उसका अपमान किया। अतः खिसियाकर उसकेलिए कठिन कृपाण निकाला। वैसेही सीताद्वारा अपमानित होनेपर वहाँ निकालेगा। यहाँ पंख काटलिए वहाँ मदोदरी आदिके समझानेसे कुछ दिनकी अवधिदी। (ख) इस कृपाणका नाम चंद्रहास है—चंद्रहास हरु मम परितापं', 'तथा क्रोधादशग्रीव चन्द्रहासं खरंमहत्। पक्षौ पादौच पाश्वौ च वेगेनोद्धृत्य सोच्छिनत्'' (र० ब०)

५—'काटेसि पंख परा खग धरनी'।—पंखही द्वारा पक्षीका जीवन है, पंख कटनेपर बड़ा कष्ट होताहै, यथा—'कर मीजहिं सिर धुनि पछिताहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं', 'जथा पंख बिनु खग अति

* पु० र० कु०—पं० रामगुलाम द्विवेदीजी यह भाव कहतेथे कि—"धरि कच' से चोटी मुड़ाना हुआ, खिसियाया यह मुँहमें कालिख लगी, खच्चर रथमें जुतेहैं यही गदहेपर सवार होनाहै और लंका दक्षिण है उसी ओर जाही रहाहै वा, शैव है अतः भस्म रमाये है यही कालिख है।"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दीना'। भोजन नहीं मिलता, यथा—'कबहुँ न मिल भरि उदर अहारा। आजु दीन्ह बिधि एकहि बारा'—(संपातीवाक्यं)। इसीसे पक्षही काट डाला कि कष्ट झेलकर मरे।—(रामजी शत्रु हैं उनका पक्ष लिया। अतः पक्ष काटे)। सिर क्यों न काटलिया? अपनी दुर्दशा समझकर मारा नहीं, पक्ष काटे जिसमें कष्ट झेलझेलकर तड़प-तड़पकर मरे। पुनः, हरिच्छासे ऐसा हुआ। सीताजीने कहाथा कि 'बिपति मोरिको प्रभुहि सुनावा, जटायु सुनानेके लिए जीते रखेगए।

६—(क) अद्भुत करनी' यही कि त्रिलोकविजयी रावणसे लड़ा, जीतेजी सीताजीको न लेजाने दिया यथा गीतावली (आ० ८)—

"फिरत न बारहि बार पचार्‌यो। चपरि चोंच चंगुल हय हति रथ खंडखंड करि डार्‌यो॥१॥ बिरथ बिकल कियो छीनि लीन्ह सिय घन-घायनि अकुलार्‌यो। तब असि काढ़ि काटि पर पाँवरु लै प्रभुप्रिया परार्‌यो॥२॥ रामकाज खगराज आजु लरयो जियत न जानकि त्यागी। तुलसिदास सुर सिद्ध सराहत धन्य बिहग बड़भागी॥३॥"†

(ख)—"सुमिरि राम" यथा हनुमन्नाटके—"ईषत्स्थितासुरपत-द्भुवि राम राम रामेति मन्त्रमनिशं निगदन्मुमुक्षुः॥१३॥" अर्थात् मोक्ष की इच्छासे राम राम राम इस मंत्रको निरंतर जपते हुए वह पक्षी, जिसमें अब कुछ ही प्राण शेष है, पृथ्वीपर गिरपड़ा।

सीतहि जान चढाइ बहोरी।
चला उताइल त्रास न थोरी॥§३३ (२३)
करति बिलाप जाति नभ सीता।
ब्याध बिबस जनु मृगी सभीता॥ ,, (२४)
गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी।
कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी॥ ,, (२५)
एहि बिधि सीतहि सो लै गएउ।
बन असोक महँ राषत भयेऊ॥ ,, (२६)

† दीनजी—'अद्भुत' का यहाँ यही force है कि जो रामजीके सोचेहुए लीलामें हितकारीभी होकर अच्छी नियतसेभी बाधा करताहै, उसकीभी वे दुर्दशा करादेतेहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शब्दार्थ—'उताइल'=(उतायल) उतावलीसे, जल्दी जल्दी।

अर्थ—सीताजीको फिर रथपर चढ़ाकर बहुत शीघ्रतासे चला, उसे बहुत डर लगरहाथा (कि कहीं राम आ न जायँ या और कोई उनका सहायक न बीचमें आपड़े) आकाशमें सीताजी विलाप करती-हुई जारहीहैं, मानों व्याधके वशमें पड़कर मृगी सभीत हो। पर्वतपर बैठे हुए बंदरोंको देखकर हरिनाम लेकर वस्त्र डालदिया। इस प्रकार वह सीताजीको लेगया और अशोकवनमें रखा।

पु० र० कु०—१ 'व्याध बिबस जनु मृगी सभीता' इति। पहले जटायु द्वारा 'अधम निसाचर लीन्हे जाई। जिमि मलेच्छ बस कपिला गाई' ऐसा कहा और अब कहतेहैं कि 'व्याध बिबस०'। कारण कि गायको म्लेच्छके हाथोंसे सभी छुड़ातेहैं, वहाँ गृद्धराज छुड़ानेको गया। और, व्याधाके हाथोंसे हरिणीको कोई नहीं छुड़ाता वैसे ही अब इनको कोई छुड़ानेवाला नहीं है।*

नोट—"कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी' इति। हनुमन्नाटकमें लिखाहै कि रामजी और लक्ष्मणजीका नाम लिया कि इनको देदेना—'आकृष्यमाणाऽऽभरणानि मुक्त्वा सैरध्रजी मारुतिमद्रिमौलौ। उवाच रामाय सलक्ष्मणाय वराय देयानि सदेवराय'॥ अर्थात् पर्वतपर हनुमान्-जीको देखकर आभूषणोंको उनके पास फेंककर कहा कि लक्ष्मणसहित मेरे पतिको देदेना। और महाभारतमें पाँच वानरोंको बैठे देख वस्त्र डालदेना भर लिखाहै—'सा ददर्श गिरप्रस्थे पंच वानरपुंगवान्। तत्र वासो महद्दिव्यमुत्ससर्ज मनस्विनी" पर वहाँ वही भाव है जो किष्किंधामें कहाहै—'मंत्रिन्ह सहित इहाँ इकबारा। बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा॥ गगनपंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता॥ रामराम हा रामपुकारी। हमहिं देखि दीन्हेउ पट डारी'। वा० स० ५४ में किष्किंधाके इन चौपाइयोंकासा लेख है, यथा—"ददर्श गिरि शृङ्ग-स्थानपञ्चवानरपुंगवान् ॥१॥ तेषां मध्ये विशालाक्षी कौशेयं कनकप्रभम्। उत्तरीयं वरारोहा शुभान्याभरणानि च ॥ २ ॥ मुमोच यदि रामायशंसे युरिति भामिना। वस्त्रमुत्सृज्य तन्मध्ये निक्षिप्तं सहभूषणम् ॥ ३ ॥" अर्थात् पाँच वानरोंको एक पर्वतशृङ्गपर बैठे देखकर वस्त्रमें आभूषण

* गी० २०६, यथा—"कहे कटु बचन रेख नाँघी मैं तात क्षमा सो कीजै। देखि बधिक बस राजमरालिनि लषनलाल छिनि लीजै ॥ २ ॥"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लपेटकर यह सोचकर गिरादिया जिसमें ये मेरा पता रामजीको बता-सकें। रावण घबड़ाहटके मारे सीताजीके इस कामको न समझ सका।

पंजाबीजी 'कहि हरिनाम'के कई भाव लिखतेहैं। हरिनाम श्लेषार्थी है अतः उसे देकर जनाया कि—हे हार (= वानरो), यह पटभूषण हरि (राम) को देना जो भूभार हरनेको आरहे हैं और तुम्हारे दुःख-को भी बालिवध करके हरण करेंगे; यह भी कहना कि मेरा हरण हुआ है। और यह भी जनाया कि मैं दुःखके हरनेवाले हरि रामचन्द्रजीकी पत्नी हूँ मेरा दुःख शीघ्र हरें।

"पटडारी" से श्रीसीताजीकी सावधानता सूचित करतेहैं कि वे रावणके मरणका उपाय करतीजातीहैं और वह नहीं समझपाता। —(खर्रा)।

२—'बन असोक महँ राखत भयऊ'। अशोक वनमें रखा जिसमें इनका शोकदूर होजाय, रामविरहमें शरीर न त्याग दें। वा, यह बाग रावणको प्राणोंसे अधिक प्रिय है; अतः सम्मानार्थ उसमें रखा।

हारि परा षल बहु बिधि भय अरु प्रीति देषाइ।
तब असोक पादप तर राषिसि जतनु कराइ॥
जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरि नाम। २९/२३

अर्थ—बहुत तरहसे डर और प्रीति दिखाकर वह दुष्ट हारगया तब अशोकवृक्षके नीचे उनको यत्नपूर्वक रक्खा। जिस प्रकार श्रीरामजी कपट मृगके साथ दौड़े चलेथे वही छबि सीताजी हृदयमें रखकर हरि नाम रटतीरहतीहैं।

नोट—'बहु बिधि प्रीति' से वह सब जनादिया जो वाल्मीकिजी ने पूरे सर्ग (५५) में दियाहै। भय यह कि १२ मासमें मुझे स्वीकार न किया तो मार डालूँगा, यथा—'सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं रोमहर्ष-णम्॥ २३॥ प्रत्युवाच ततः सीतां भयदं दर्शनं वचः। शृणु मैथिलि मद्भावयं मासान्द्वादश भामिनि॥ २४॥ कालेनानेन नाभ्येषि यदिमां चारुहासिनि। ततस्त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति लेशशः॥ २५॥— (स० ५६)। अर्थात् मारकर तुम्हारा जलपान करूँगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु०—१ (क) अशोकवनमें क्यों रखा ? इसका कारण यहाँ लिखतेहैं कि 'हारि परा००' अशोकवनमें बहुतसे दिव्य स्थान बनेहैं उनमें जब ये न रहीं तब अशोकवृक्षके नीचे रखा ।—(वा० स० ५५-५६ से स्पष्ट जानपड़ताहै कि उसने महलोंमें रखना चाहा और दिव्य रमणीय महल दिखाकर इनको लुभाना चाहा । पर वे किंचितभी प्रसन्न न हुईं और उससे कठोर वचन कहे तब अशोकवनमें रक्खा ।) (ख) खर्रा—वनवास धर्म समझकर यहाँ रहना उचित समझा । (ग) 'जतनु कराइ'—उनकी अनुकूल सेवाका एवं इसका कि कोई उनके पास न जासके ।

२—'जेहि बिधि कपट कुरंग००' अर्थात् धनुषबाण हाथोंमें लिए, तर्कश कमरने बाँधे, आगे २ मृग पीछे २ आप उसे पकड़ने वा मारने को जारहेथे । वही छबि,यथा—'मम पाछेधर धावत धरे सरासन बान' 'कपट कुरंग संग धर धाये' ।

३—'श्रीराम' से जनाया कि कपट कुरंगके पीछे धावा करतेहुए वे बड़े शोभाको प्राप्तथे; अतः उसी छबिको हृदयमें धारण किया ।

४—'रटति रहति हरि नाम' । (क) 'रटति' से निरन्तर रटना जनाया, यथा—'नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट ।' (ख) पुनः जनाया कि नामके बलसे जीतीहैं, यथा—'लोचन निज पद जंत्रित प्रान जाहिं केहि बाट' । (ग) नाम रटनेसे पुनः नामी (मूर्त्ति, रूप) की प्राप्ति होगी, यथा—'देखिय रूप नाम आधीना' । नाम और रूप ये दोनों न होते तो न जीवित रहतीं । (घ)—'हरि नाम'—त्वेशं हरतीतिहरिः । यहाँ नाम रटनेकी विधिका उपदेश देरहेहैं कि दृष्टि और मनभी दूसरी ओर न जाय और न दूसरेसे बात करे । तब रूपकी प्राप्ति शीघ्र होतीहै ।

नोट—किसीका मत यह भी है कि यहाँ 'हरि' नाम कहा क्योंकि पतिका नाम नहीं लेसकतीं । हरि रामजीके राशिका नामभी है ।—(प्र०) पर सुग्रीवजीके वचनोंसे 'राम' नाम लेना पायाजाताहै—'राम राम हा राम पुकारी' और नृसिंहपुराणमें 'सीतापि दुःखिता तत्र स्मरन्ती राममेव सा' से रामनामका स्मरण सिद्ध है ।

यहाँ 'पुनि माया सीताकर हरना'-प्रकरण समाप्त हुआ ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"श्रीरघुबीर-विरह-वर्णन"-प्रकरण

रघुपति अनुजहि आवत देषी।
बाहिज चिंता कीन्हि बिसेषी॥ § २९/२३ (१)
जनकसुता परिहरिहु अकेली।
आएहु तात बचन मम पेली॥ ,, (२)
निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं।
मम मन सीता आश्रम नाहीं॥ ,, (३)

अर्थ—रघुनाथजीने भाईको आते देखकर ऊपरसे (देखावमात्रकी) बहुत चिन्ता की। हे तात! तुमने जानकीजीको अकेली छोड़दिया। मेरी आज्ञाको टालकर यहाँ चलेआए। निशचरोंके झुण्ड वनमें फिरते हैं। मेरे मनमें ऐसा आताहै कि सीता आश्रममें नहीं हैं।

पु० र० कु०—१ 'रघुपति अनुजहि आवत देखी...' इति। (क) यहाँ प्रथम रामजीका लक्ष्मणजीको देखना कहा क्योंकि वे चिन्तातुर हैं, उनकी दृष्टि पंचवटीकीही ओर है, कहीं लक्ष्मणजी आर्त्तनाद सुनकर आश्रम छोड़ न दें यह चिन्ता लगीहुईहै, यथा—'खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा'। (ख) 'बाहिज चिंता कीन्हि बिसेषी' अर्थात् चिन्ता तो मारीचके नाम लेकर पुकारनेपरही उत्पन्न होगईथी अब उसका प्रभाव यथार्थ देखा कि सत्यही लक्ष्मणजी कुटी छोड़कर चलेआए। अतः अब 'बिशेष' चिन्ता की। (ग) 'बाहिज'—बाह्यका अपभ्रंश है।= बाहरसे, ऊपरसे, यथा—'बाहिज नम्रदेषि मोहि साई" (अ०§१०४)। चिन्ता जब होतीहै तब मनसे, यह मनका विषय है, इसीसे कवि कहतेहैं कि इनके मनमें चिन्ता नहीं हैं, चिन्ताकी बात केवल मुखसे कहीभर है; मुखसे ऐसी बात कही मानों चिंता हो। चिंताकी जो बात कही वह आगे है। (घ) कविने लेख-द्वारा चिन्ताकी विशेषता दिखायी। प्रथम कम थी अतः एक चरणमें जनायाथा अब अधिक है अतः दो चौपाइयोंमें दिखायी। (ङ) केवल बाहिज चिन्ता है क्योंकि लीला प्रथमही वैसी रच रक्खीहै 'कछु करब ललित नरलीला'।—[वंदनपाठकजी—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर्म वाहिज है तथापि दिव्य है, यथा—'जन्म कर्म च मे दिव्यं' इति गीतायाम्]

२—(क)—'जनकसुता परिहरिहु' और' 'आपहु वचन मम पेली' अर्थात् हमारा और जानकीजी दोनोंका निरादर किया। सीताजी अपने संदेशद्वारा इनको निरपराध ठहरायँगी। यथा—'अनुज समेत गहेहु प्रभुचरना'। यदि इनका अपराध होता तो इनको त्याग देतीं इनका नाम न लेतीं और न ऐसा संदेसा भेजतीं। (ख) चिन्ता क्या है और उसका कारण दोनों कहरहेहैं। 'जनकसुता' कहकर चिन्ताका कारण जनकमहाराजका सम्बन्ध जनाया। दूसरा कारण 'परिहरेहु०' इत्यादिमें है। यथा—'किं नु लक्ष्मण वक्ष्यामि समेत्य जनकं वचः ॥११॥ मातरं चैव वैदेह्या विना तामहमप्रियम्।'—(वा० स० ६४)।

"मम मन सीता आश्रम नाहीं'। वा० स० ५७ यथा—'मनश्च मे दीनमिहाप्रहृष्टं चक्षुश्च सव्यं कुरुते विकारम्। असंशयं लक्ष्मण नास्ति सीता हृता मृता वा पथि वर्तते वा ॥ २३ ॥" अर्थात् मेरा मन बहुत दीन और हर्षरहित होरहाहै; बाईं आँख फड़ककर अपशकुन जनारहीहै; अतः निःसन्देह सीता आश्रममें नहीं हैं, या तो उनका हरण होगया, या वह मारीगईं या कोई लिए जारहाहै। रामचन्द्रजीके बाएँ अंग फड़करहेथे—'स्फुरते नयनं सव्यं बाहुश्च हृदयं च मे। दृष्ट्वा लक्ष्मण दूरे त्वां सीताविरहितं पथि'—(स० ५९)।

गहि पदकमल अनुज कर जोरी।
कहेउ नाथ कछु मोहि न षोरी॥ § २९/२३ (४)
अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ।
गोदावरि तट आश्रम जहवाँ॥ ,, (५)

अर्थ—भाई लक्ष्मणजीने चरणकमल पकड़कर और फिर हाथ जोड़कर कहा कि हे नाथ! मेरा कुछभी दोष नहीं है। भाई सहित प्रभु वहाँ गए जहाँ गोदावरीके किनारे आश्रम था।

नोट—'कछु मोहि न खोरी' अर्थात् इसमें दोष सीताजीका है जैसा उन्होंने स्वयं कहाहै—'हा लछिमन तुम्हार नहिं दोषा। सो फल पायउँ कीन्हेउँ रोषा' ☞ देखिए! गोस्वामीजीका कैसा उच्च आदर्श है! उनको लोकशिक्षाकेलिए जैसे सीताजीके मुखसे निकलेहुए 'मर्म'

Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वचनोंका उल्लेख करना सर्वथा अयोग्य जानपड़ा वैसेही यहाँ लक्ष्मणजीसे उन वचनोंका रामजीके उत्तरमें अपनेको निरपराध साबित करनेकेलिएभी कहलाना सर्वथा अनुचित जानपड़ा। उनको यह न भाया कि जो वाल्मीकिजीने आधे सर्गमें उत्तर दिलायाहै उसे यहाँ लिखकर अपना आदर्श गिरादेते। कैसा भोलाभाला, बड़ेभाई और बड़ी भावजका पूर्ण सम्मान रखनेवाला और सुशील उत्तर है—इसपर सैकड़ों उत्तरभी निछावर हैं। 'मोहि न खोरी' में क्या नहीं आगया?

आश्रम देखि जानकी हीना।
भए बिकल जस प्राकृत दीना॥ § $\frac{२९}{२३}$ (६)
हा गुनखानि जानकी सीता।
रूप सील ब्रत नेम पुनीता॥ ,, (७)
लछिमन समुझाए बहु भाँती।
पूछत चले लता तरु पाती॥ ,, (८)

शब्दार्थ—पाती=पंक्ति, यथा—'जासु बिरह सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुनगन पाती'।

अर्थ—आश्रमको जानकीजीसे रहित (खाली) देखकर व्याकुल हुए जैसे साधारण मनुष्य व्याकुल होतेहैं। हा गुणोंकी खानि जानकी हा रूप, शील, व्रत और नियममें पवित्र सीते! (तुम कहा गई, क्या हुईं?) लक्ष्मणजीने बहुत तरहसे समझाया वे लताओं और वृक्षोंकी पंक्ति (कतार) से पूछतेहुए चले।

नोट—सूने आश्रमका वर्णन गीतावली (आ० ९) में देखिए।—हेम को हरिन हनि फिरे रघुकुलमनि लषन ललित कर लिए मृगछाल। आस्रम आवत चले सगुन नभ गए भले फरके बाम बाहु लोचन बिसाल॥१॥ सरित जल मलिन सरनि सूखे नलिन अलि न गुंजत कल कूजैं न मराल। कोलिनि कोल किरात जहाँ तहाँ बिलखात बन न बिलोकि जात खगमृगमाल॥२॥ तरु जे जानकी लाए ज्याये हरि करि कपि, हेरैं न हुँकरि झरैं फल न रसाल। जे सुक सारिका पाले मातु ज्यों ललकि लाले तेऊ न पढ़त न पढ़ावैं मुनिबाल॥३॥ समुझि सहमे सुठि प्रिया तौ न आई उठि तुलसी बिबरन परनतृनसाल। औरै सो समाजु कुसल न देखौं आज गहबर हिय कहैं कोसलपाल॥४॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु०—'पूछत चले लता तरु पाती'। भाव कि (क) निर्जन वन है यहाँ और कौन है जिससे पूछते। यहाँ उन्माद संचारी-भाव है। जड़-चेतनका ख्याल नहीं रहगया। पुनः, (ख)—अयोग्यसे पूछना दिखाया, इसीसे आगे 'बिलपत' पद दियागयाहै।

खर्रा—१ 'जानकी सीता' में पुनरुक्ति नहीं है क्योंकि यहाँ विलाप है, विषादमें यह दोष नहीं लियाजाता। यथा—'विषादे विस्मये कोपे हर्षे दैन्येवधारणे। प्रसादे चानुकंपायां पुनरुक्तिर्नदूष्यते'। २—वाल्मीकि, अध्यात्म इत्यादिमें बहुत लिखाहै कि किस प्रकार समझाया। वही यहाँ 'बहुभाँती' से जनादिया। † ३—[जानकी कहकर

† वा० आ० ६१ में लक्ष्मणजीने यों समझायाहै कि आप शोक न करें, मेरे साथ सीताजीको ढूढें, वे वनमें गई होंगी या किसी तालाबपर होंगी जहाँ कमल खिलरहेहोंगे, या नदीतटपर होंगी..... जहाँ जहाँ उनके होनेकी संभावना हो वह सब स्थान हमलोग ढूँढें। इत्यादि।—२ इस आएहुए दुःखको यदि आप न सहेंगे तो प्राकृत मनुष्य कैसे सहसकेंगे। आप धैर्य्य धारण करें। आपत्ति किसपर नहीं आती? सभीपर आतीहै और फिर चलीजातीहै। यह प्रकृतिका स्वभाव है। आप अपने पौरुष को विचारें और शत्रुके नाशका प्रयत्न करें—(सर्ग ६६)। इसीतरह बराबर जहाँ तहाँ समझायाहै। पुनः,३ (वा० कि० सर्ग १)... पातालमेंभी रावण होगा तोभी वह अब जीता नहीं रह सकता, उसका पता लगाना उचित है, तब या तो वह सीताकोही देगा या अपने प्राण। वह अपनी माताके गर्भमेंभी यदि पुनः प्रवेश करके बचना चाहे तो भी वह मुझसे बच नहीं सकता... इत्यादि। यथा—'संस्तम्भ रामभद्रं ते मा शुचः पुरुषोत्तम। नेदृशानां मतिर्मन्दा भवत्यकलुषात्मनाम्॥ स्मृत्वा वियोगजं दुःखं त्यज स्नेहं प्रियं जने। अतिस्नेह परिष्वङ्गाद्वर्तिरार्द्रापि दह्यते॥११६॥ यदि गच्छति पातालं ततोऽभ्यधिकमेव वा। सर्वथा रावणस्तात न भविष्यति राघव॥११७॥ प्रवृत्तिर्लभ्यतां तावत्तस्य पापस्य रक्षसः। ततो हास्यति वा सीतां निधनं वा गमिष्यति॥११८॥ यदि याति दितेर्गर्भं रावणः सह सीतया। तत्राप्येनं हनिष्यामि न चेद्दास्यति मैथिलीम्॥११९॥ स्वास्थ्यं भद्र भजस्वार्यं त्यज्यतां कृपणा मतिः। अर्थो हि नष्टकार्याणैरयत्नेनाधिगम्यते॥१२०॥ उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात्परंबलम्। सोत्साहस्य हि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम्॥१२१॥ उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु। उत्साहमात्रमाश्रित्य प्रतिलप्स्याम जानकीम्॥१२१॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जनकमहाराजसे संबंध और सीतासे अपने हृदयको शीतल करनेवाली जनाया]

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी।
तुम्ह देखी सीता मृगनयनी ॥ (९)
खंजन सुक कपोत मृग मीना।
मधुपनिकर कोकिला प्रबीना ॥ ,, (१०)
कुंदकली दाडिम दामिनी।
कमल सरद ससि अहिभामिनी ॥ ,, (११)
बरुनपास मनोज धनुहंसा।
गजकेहरि निज सुनत प्रसंसा ॥ ,, (१२)
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं।
नेकु न संक सकुच मन माहीं ॥ ,, (१३)
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू।
हरषे सकल पाइ जनु राजू ॥ ,, (१४)

शब्दार्थ—"कपोत" उस कबूतरको कहतेहैं जिसकी गर्दन सुंदर होती है जिसे लक्का कबूतर कहतेहैं।

अर्थ—हे पक्षियो! हे मृगो! हे भ्रमरोंकी पंक्ति! तुमने मृगनयनी सीताको देखाहै? खंजन, तोता, कबूतर, हरिण, मछली, भौंरोंका समूह, सुंदर स्वरमें निपुण कोयल, कुंदकली, अनार, बिजली, शरद्-ऋतुके कमल और चन्द्रमा, नागिन, वरुणकी फाँसी वा फंदा, कामदेव-का धनुष, हंस, गज, सिंह ये सब आज अपनी प्रशंसा सुनरहेहैं अर्थात् तुम्हारे सामने ये लज्जित होतेथे इनसे कोई कवि तुम्हारे अंगकी उपमा (उन्हें महातुच्छ जानकर) नहीं देतेथे। बेल, सुवर्ण, केला सब प्रसन्न होरहेहैं, ज़रामी शङ्का और संकोच मनमें नहीं है। हे जानकी! सुनो। आज तेरे बिना सभी प्रसन्न होरहेहैं मानों राज्य पाया हो।*

* 'हे वृक्षाः पर्वतस्था गिरिगहनलतावायुना वीज्यमाना रामोहं व्याकुलात्मा दशरथतनयः शोक शुक्रेण दग्धः। बिम्बोष्ठी चारु नेत्रा सुविपुलजघना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नोट—खंजन, हिरन और मीनकी उपमा आँखोंके लिए कवि प्रायः दिया करतेहैं। इसी प्रकार शुकतुण्डसे नासिका, कपोत और कण्ठ (ग्रीवा, गर्दन) भ्रमरावलि और काले बाल, कोकिल और स्वर वा वचन, कुन्दकली और अनारदाने,—दाँत, बिजली और मुस्क्यान एवं दाँतोंकी कान्ति, दामिनि और वर्ण, शरदकमल और चन्द्रमा-मुख, नागिन और चोटी लट, वरुणपाश और कण्ठकी रेखाएँ मनोजचाप और भृकुटि, हंस और गज-चाल, सिंह और कमर, श्रीफल और पयोधर, कनक और वर्ण, कदली और जंघे—परस्पर उपमान और उपमेय होतेहैं।

"खंजन सुक कपोत मृग००" के उदाहरण क्रमसे

१ नेत्र—"खंजन मंजु तिरीछे नयननि", "मनहुं इंदु बिंब मध्य कंज मीन खंजन लखि मधुप मकर कीर आप तकि २ निज गोहैं"—(गी०)। ३—"चारु चिबुक सुकतुंड विनिंदक सुभग सुउन्नत नासा"—(गी०)। ४—"जहँ बिलोक मृगसावक नयनी"। ५—"पुनि पुनि रामहिं चितव सिय सकुचति मन सकुचै न। हरत मनोहर मीन छबि प्रेमपियासे नयन॥" पुनः, "प्रभुहि चितइ पुनि चितइ महि राजत लोचन लोल। खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु-मंडल डोल"। ६—'कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं", "कुटिल केस जनु मधुपसमाजा" ७—"सकुचि सप्रेम बालमृगनयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी" ८—"बर दंतकी पंगति कुंदकली अधराधरपल्लव खोलनकी"—(क०) ९—कुलिस कुंदकुडमल दामिनिद्युति दसननि देखि लजाई" पुनः, 'दामिनि बरन लषन सुठि नीके' १०,११—"सरद सरबरीनाथ मुख सरद सरोरुहनयन"। 'भृकुटि १४ मनोजचाप छबिहारी"। १५ "हंसगमनि तुम नहि बन जोगू"। १६—'जनकसुताकै सुधि भामिनी। जानै कहु करिवर गामिनी'। १७ 'कहरि कटि पट पीतधर'। १९—'इन्हते लहि दुति मरकत सोने' 'मरकत कनक बरन बर जोरी'।—(पु० र० कु०)।

बद्धनागेन्द्रकांची, हा सीता केन नीता ममहृदयगता को भवान् केन दृष्टा ॥१॥ मध्योऽयं हरिभिः स्मितं हिमरुचा नेत्रे कुरंगीगणैः, कान्तिश्चम्पक कुडमलैः कलरवो हा हा हृतः कोकिलैः। मातर्नैर्गमनं कथं कथमहो सैवभज्याधुना, कान्तारे सकलैर्विनाश्य पशुवन्नीतासि भो मैथिलि ॥२॥' इति हनुमन्नाटके ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२०—'जंघा जानु आनु केदलि उरु कटि किंकिन पटपीत सुहावन'—(गी० ३०८), 'गूढ़ गुलफ जंघाकदली जति'—(गी०)।

☞ कपोत, दाडिम, अहिभामिनी, वरुनपास, श्रीफलके उदाहरण गोस्वामीजीके ग्रंथोंमें नहीं मिले।

पां०—१ चंचलता, सफेदी और स्याहीकी रेखकेलिए खंजनके साथ; जलमें भरी विशाल और उभरी हुईमें मृगके साथ और आँखके आकार और चमकमें मीनकीउपमा। २-कुंदकी कली, अनारदाने समान मिले सटेहुए पंक्तिवाले और बिजलीकी सी कान्ति दाँतोंमें। ३—शरद कमल मुख, शरदचन्द्र मुखमंडल। इत्यादि, उपमेयका कहना अयोग्य समझा इससे न कहा।—[पुनः, वरुणपाशकी मन्द हास्यसेभी कोई उपमा देतेहैं क्योंकि स्त्रीकी हँसी पुरुषकेलिए फाँसी कही जातीहै। कमल हाथ पैर मुख सभीकेलिए प्रयुक्त होताहै। अनारदाने सघन और ललाई कोरपर लिपहुए। वैसेही दाँत सघन सटेहुए और जड़में ललाई लिपहुए दामिनिकी उपमा शरीरके वर्णसेभी दीजातीहै, यथा—'स्याम सरोज जलद सुंदर बर दुलहिनि तड़ित बरन तन गोरी'। करुणासिंधुजी वरुणपाशको नेत्रोंके कटाक्ष एवं नाभिकी और वैजनाथजी छूटेहुए वस्त्रोंकी उपमा कहतेहैं।]

खर्रा—१ 'नेकु न संक सकुच मन माहीं' इति—शंका इस बातकी नहीं कि जानकीजी आवेंगी और संकोच नहीं कि हम सीताजीके अंगके सदृश नहीं अर्थात् अपनी न्यूनताका संकोच नहीं रह गया। तुम्हारे रहते सबकी निंदा होतीथी, ये निंदा सुनाकरतेथे अब अपनी प्रशंसा सुनतेहैं। यह सहेतुक है इसलिए संजल्प है। आगे जो 'प्रिया बेगि प्रगटसि००' यह वाक्य मुद्रा व्यंजित किया। यहाँ हेतुपूर्वक पूर्ण अभिधेय कहा अतएव संजल्प हुआ। २—खगमृगसेही प्रारंभ करनेकाभाव कि इन्हींसे खबर मिलेगी खगमें जटायु, मृगमें सुग्रीव। ३—पहलेके लिए कहा कि 'सुनत प्रसंसा' और श्रीफल आदिके लिए कहा कि'नेकु न संक००'। कारण कि ये अंग जिनके ये उपमान हैं सदा आवरणमें (ढके) रहतेहैं और वे सब निरावरण हैं। अतएव यहाँ संकोच और शंक पद दिए।* भाव कि इन उपमानोंको लज्जा वा शंका नहीं है। ये बाहर स्पष्ट देखपड़तेहैं।

* यथा नाटके—'अरण्यं सारंगैर्गिरि कुहर गर्भाश्च हरिभिर्दिशो दिग्मा-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

४—'हरषे सकल पाइ जनु राजू' इति। (क)—पहले श्रीफल, कनक और कदलि तीनकाही हर्ष कहा; अब सबका हर्ष कहतेहैं। जब इनसे पूछा और ये न बोले तब रामजीने कहा कि हे सीते! ये मानों राज्य ऐसा पागए कि बोलतेही नहीं। (ख)—'आजू' का भाव कि यह प्रथम दिवसका विरह है। अतएव कहा कि आज राज पागए इसीसे 'बेगि' प्रकट होकर तुरत इनके राज्य पानेका हर्ष हरण करलो, बहुत दिन इनका हर्ष न रहनेदो, इनको जीतकर राज्य लेलो। राजाको जीतने अथवा राज्य खाली होनेपर राज्यपर बैठजानेसे राज्य मिलताहै। वही यहाँ कहरहेहैं—'सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू॥' उपमान उपमेयका ताबेदार है सो आज उपमेयके न रहनेपर राज करनेलगा, यह अनखकी बात है सो आगे कहतेहैं—'किमि सहि जात अनष तोहि पाहीं'।

५—स्त्रियोंके जिन अंगोंकी उपमा कवि जिस वृक्ष, पक्षी, पशु फल आदिसे प्रायः दियाकरतेहैं, उनको वनमें मार्ग चलतेहुए देखनेसे उन अंगोंका स्मरण होआताहै जिससे विरहका उद्दीपन होताहै और रामजी नरनाट्यकरतेहुए मनुष्यसरीखे उन्हें देखकर व्याकुल होतेहैं। उन्हीं उपमानों का नाम यहाँ देकर उनसे उपमेयों का बोध करायाहै।

नोट—१ पूज्य कवि बालकाण्डमें सीताजीकी शोभाके बारेमें लिखआपहैं कि 'सिय सोभा नहिं जाइ बषानी। जगदंबिका रूप गुनखानी॥ उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृत नारि अंग अनुरागी॥ सीय बरनि तेइ उपमा देई। कुकबि कहाइ अजस को लेई॥' माताके अंगोंका वर्णन पुत्र कैसे करसकताहै? दूसरे जितनी उपमाएँ हैं वे सब लघु हैं और प्राकृत स्त्रियोंकेलिए दीजाचुकीहैं। तब उनकी शोभा क्योंकर वर्णन कीजासकतीहै? यहाँ पतिके मुखसे पत्नीके, जगत्पिताके मुखसे जगत्माताके अंगोंकी शोभाका वर्णन गुप्तरीतिसे करदियाहै। और

तंगैः श्रितलपि वनं पंकजवनैः। प्रियाचक्षुर्मध्यस्तन वदन सौंदर्य्य विजितैः सतां माने म्लाने मरणमथवा दूरशरणम् ॥१॥ वक्रं वनांते सरसीरुहानि भृंगाक्षमालाजगृहुर्जपाय तेणीदृशस्तेव विलोक्य वेणीमंगं भुजंगाधिपतिर्जुगोप ॥२॥ स्वर्णं सुवर्णं दहनेस्वदेहं चिक्षेपकान्तिवतदंतपंक्तिं विलोक्यतूर्णं मणिबीज पूर्णं फलं विदीर्णं ननु दाडिमस्य ॥३॥'—(पु० र० कु०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपने पूर्व वचनोंका निर्वाह यहाँभी कियाहै इसप्रकार कि 'सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू॥ किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं'।

२—दीनजी—इन चौपाइयोंमें (६ से १३ तक) श्रीसीतामहारानीजीके अंगोंका वर्णन बड़े सुंदरढंगसे रूपकातिशयोक्ति अलंकारद्वारा मर्यादासहित उनके प्रतिसेही करायाहै। यह शृङ्गारकी मर्यादा है। दूसरेको किसी स्त्रीके अङ्गोंका वर्णन करना शिष्ट मर्यादाके विरुद्ध है। यह वियोग शृङ्गारका एक अंश है। ग्यारह अवस्थाओंमेंसे यह 'गुणकथन' अवस्था है।

३—रा० प्र० श०—केशवदासजीने कहाहै—'चारि चतुष्पद चारि खग मूल चारि फल चारि। बेशौ पूरी पुण्य है मिलै जो ऐसी नारि'॥

जैसे जानकीजी रामजीके नामरूप गुणका स्मरण करतीरहीं वैसेही रामजीनेभी उनका स्मरण किया। परस्पर मिलान—

नाम—	हा जग एक बीर रघुराया	हा गुनखानि जानकीसीता
गुण—	भारति हरण शरणसुखदायक	रूप शील व्रत नेम पुनीता
रूप—	जेहि बिधि कपटकुरंग...	खंजन शुक कपोत...
	बिबिध बिलाप करति बैदेही—	एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी

किमि सहि जात अनष तोहि पाहीं।
प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं॥ §३२३ (१५)
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी।
मनहु महाबिरही अति कामी॥ ,, (१६)
पूरनकामु राम सुषरासी।
मनुज चरित कर अज अबिनासी॥ ,, (१७)

शब्दार्थ—'अनष'=ईर्ष्या, अपमानजनित क्रोध।

अर्थ—तुमसे अनख कैसे सहाजाताहै? हे प्रिये! शीघ्र प्रगट क्यों नहीं होती हो। इस प्रकार (चराचरके) स्वामी ढूँढते और विलाप करतेहैं मानों महाविरही और बड़ेही कामी हैं। श्रीरामजी पूर्णकाम और आनन्दकी राशि, अजन्मा और विनाशरहित हैं, वे मनुष्यके-से चरित कररहेहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

खर्रा—'किमि सहि जात अनष तोहिपाहीं।०" इति।—भाव कि (क)-सहता तो वह है जो दबनेवाला हो, कमज़ोर हो, वा बराबरका न हो। पुनः, (ख)—तुमसे सहाजाताहै पर हमसे तो उनकी ईर्ष्या नहीं सहीजाती। तुम 'सर्वसहा' पृथ्वीकी कन्या हो और हम चक्रवर्तीके राजकुमार हैं; अतएव तुम सह सकतीहो पर हम नहीं सहसकते। पुनः, (ग)—तुम्हारे न रहनेसे सब प्रसन्न हैं। तुमसे सभी ईर्ष्या करनेवालेहैं तब तुम क्यों नहीं ईर्ष्या करके प्रकट होजातीहो। जो कम होताहै वह छिप बैठताहै, यथा—'दरस लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोर बहोरी'। तुम तो कम नहीं हो तब तुम क्यों छिपी बैठी हो। गुलाम, ताबेदार राज्य खाली पाकर उसपर बैठगयाहै, यह अनखकी बात है जो सहनेयोग्य नहीं है।

पु० र० कु०—१ "एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी" अर्थात्—'पूछत चले लता तरु पाती। हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनयनी'॥ एहि बिधि खोजत और 'हा गुनखानि जानकी सीता' से 'प्रिया बेगि प्रगटेसि कस नाहीं' तक 'एहि बिधि बिलपत' प्रसंग है। २—'स्वामी' अर्थात् वक्ता कहतेहैं कि जो यह चरित कर रहेहैं वे हमारे सबके और चराचरमात्रके स्वामी हैं,यथा—'सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी'। ३—'मनहु महा बिरही अतिकामी' अर्थात् ब्रह्माण्डमें जितने विरही और कामी हैं मानों उनसबसे ये बढ़चढ़कर अधिक विरही और कामी हैं। ४—'पूरन काम राम सुखरासी।०० (क) मनुष्योंके-से चरित करतेहैं। मनुष्य जन्मते मरतेहैं पर ये जन्ममरणरहित हैं इनका आदि अन्त नहीं, यथा—'आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमान निगम अस गावा॥' (ख)—'पूर्णकाम' हैं, इनकी सब कामनाएँ पूर्ण हैं, कोई कामना नहीं है तब वियोग और स्त्रीकेलिए विलाप कैसे सिद्ध होसकताहै? आनन्दराशि हैं उनको दुःखका लेश नहीं तब विरहसे दुःखी कैसे कहे जासकतेहैं?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"पुनि प्रभुगीधक्रिया जिमि कीन्ही"-प्रकरण

आगे परा गीधपति देषा।
सुमिरत रामचरन जिन्ह रेषा॥ २९/२३ (१८)

कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।
निरषि राम-छबिधाम-मुष बिगत भई सब पीर॥ ३०/२४

अर्थ—गृद्धराजको आगे पड़ा देखा। वह रामका स्मरण करताथा जिनके चरणोंमें (वा, रामजीके चरणोंका स्मरण करताथा कि जनमें) चिन्ह हैं। कृपासिंधु रघुबीरजीने अपना करकमल उसके सिरपर फेरा। शोभाधाम रामजीका छविपूर्ण मुख देख सब पीड़ा दूर होगई। *

नोट—रा० प० में 'चिन्ह रेषा' पाठ है पर काशिराजकी प्रतिमें 'जिन्ह' है और यही अन्य प्राचीन पोथियोंका पाठ है। पं० रामकुमारजीके दो खर्रोंमें दो तरहके अर्थ इसके मिले १—जिन रामजीके चरणरेखाओंका गीधराज स्मरण कररहाथा उनने गीधराजको आगे पड़ा हुआ देखा। २—जिन रामजीके चरणरेखाओंका स्मरण कररहाथा उन रामजीने करकमल सिरपर फेरा। अर्थात् इस चरणको दीपदेहरीन्यायसे 'आगे परा गीधपति देखा' और अगले दोहे दोनोंमें लगाकर अर्थ कियाहै। श्रीमान् गौड़जीकी राय है कि—'अन्तिम चतुष्पदीका तीसरा चरण अन्वय करनेमें दीपदेहरीन्यायसे दोबार यों पढ़ाजाना

* १ यथा—'गृद्धराजं तदा रामः स्वयं पस्पर्श पाणिना। स्पर्शनाद्वीतपीडः स सद्यो जातश्च गृध्रराट्॥' अध्यात्ममें गोस्वामीजीके भाव भरे 'निरखि राम छबिधाम मुख' ये शब्द नहीं हैं।

२—गीतावलीमें लिखाहै कि प्रभु आगे बढ़गए उसके नाम रटनेका शब्द सुनकर लौटपड़े और प्रियाका विरह, उसको देखकर, भूलगए। यथा—'प्रभुकी दशा सो समों कहिबे को कबि उर आह न आई॥ रटनि अकनि पहिचानि गीध फिरे करुनामय रघुराई। तुलसी रामहिं प्रिया बिसरि गई सुमिरि सनेह सगाई॥'—(पद २१०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चाहिए—पूरनकामु राम सुखरासी। मनुजचरितकर अज अबिनासी आगे परा गीधपति देखा। आगे परा गीधपति देखा। सुमिरत रामचरनजिन्ह रेषा इस चौपाईका अन्वय यों होगा—'पूरनकाम,सुखरासी,अज, अबिनासी राम (ने) मनुजचरित कर (के) आगे गीधपति परा देखा। गीधपति देखा (कि) आगे (सोइ) रामचरन परा, जिन्ह (की) रेखा सुमिरत (है)।' भाव यह कि भगवान्‌ने मनुजचरित किया कि विरहीकी तरह पूछने फिरे। यह लीला करके कुछ बढ़े तो आगे जटायु को पड़ादेखा पड़े-पड़े जटायुनेभी देखा कि जिनकी रेखाओंका स्मरण कररहाहूँ वही, चरणारविन्द मेरे सामने आपड़ाहै। कराह रहाथा। मरणासन्न था उठकर चरण छूनेकी ताब न थी। चरणोंको केवल देखभर सका। इतनेमें भगवान्‌ने उसे अपने कर-कमलोंसे उठाया।'दीनजीका अर्थ ऊपर कोष्टकवाला है। वीरकविजी और बा० श० सु० दासजीने 'जिन्ह' का अर्थ 'जो' कियाहै पर ऐसा प्रयोग कहीं मुझे नहीं मिला। और कई टीकाकारोंने तो अर्थमें अड़चन पड़ते देखकर 'चिन्ह' पाठ करदियाहै पर चिन्ह और रेखा एकही बात है।

२—'चरन जिन्ह रेषा' से यह भी जनाया कि वह सगुण ब्रह्म-रामका स्मरण करताहै, निराकारका स्मरण नहीं करता, निराकारके चरण कहाँ? ☞ यह बात स्मरण रखने योग्य है कि श्रीसीताराम युगल सरकारके प्रत्येक चरणकमलमें २४, २४ चिह्न हैं। इतने चिह्न भगवान्‌के किसी और अवतार वा स्वरूपमें नहीं हैं। वे ४८ चिह्न पाद-टिप्पणीमें दिपजातेहैं † इनकी विशेष व्याख्या श्री १०८ सीताराम-

† श्रीचरणचिह्न—'ध्यावहीं मुनीन्द्र सियपदकंज चिह्नराज संतन सहायक सुमंगल संदोहहीं। ऊर्ध्वरेखा[1] स्वस्तिक[2] अरु अष्टकोण[3] लक्ष्मी[4] हल[5] मूसल[6] शेष[7] सर[8] जन-जिय जोहहीं ॥१॥ अंबर[9] कमल[10] रथ[11] बज्र[12] यव[13] कल्पतरु[14] अंकुश[15] ध्वजा[16] मुकुट[17] मुनि मन मोहहीं। चक्रजू[18] सिंहासन[19] अरु यमदंड[20] चामर[21] यों छत्र[22] नर[23] जयमाल[24] बामपद सोहहीं ॥२॥ सरयू[25] दक्षिणपद गोपद[26] महि[27] कलश[28] पताका[29] जंबूफल[30] अर्धचन्द्र[31] राजहीं शङ्ख[32] षट्कोण[33] तीनकोण[34] गदा[35] जीव[36] बिन्दु[37] शक्ति[38] सुधाकुण्ड[39] त्रिबली[40] सुध्यान काजहीं ॥३॥ मीन[41] पूर्णचन्द्र[42] वीणा[43] वंशी[44] औ धनुष[45] तूण[46] हंस[47] चंद्रिका[48] विचित्र चौबीस बिराजहीं। एते चिन्ह जनककिशोरी-पद-पंकजमें 'तपसी' मंगलमूल सब सुख साजहीं ॥ इनका वर्णन महारामायणमें विस्तारसे है। जो चिह्न रघुनाथ-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शरण भगवान्प्रसाद रूपकलाकृत नाभाजीके भक्तमालकी टीका एवं लालाभगवान्दीनजीके 'श्रीरामचरणचिह्न' में है।

३—'सुमिरत' क्योंकि घायल होनेसे पीड़ाके कारण आँखें बंद हैं इससे जो चरणचिह्न देखेथे उनका मनमें स्मरण कररहाहै।—(प्र०) करस्पर्श करतेही नेत्र खोलदिए।—(खर्रा)।

पु० र० कु०—१ 'करसरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर' यह करकमलका स्पर्श तो रामजीकी ओरसे हुआ; यथा—'परसा सीस सरोरुहपानी', 'प्रभुपद पंकज कपि के सीसा'। 'कर [illegible] सिर परेउ और कपीसु [illegible] सरोज मेरे'। और, उत्तरार्द्धमें 'निरखि राम...' अर्थात् उनका दर्शन यह भक्तकी ओरसे कहा। दोनोंके अन्तमें 'बिगत भई सब पीर' यह पद दिया। तात्पर्य कि चाहे श्रीरामजी अपने करसरोजका स्पर्श करें और चाहे उनका दर्शन हो भक्तकी तो दोनों तरहसे समस्त पीड़ा जाती-रहतीहै। यथा—'कर परसा सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गई सब पीरा' (कि०§ ८) पुनः, यथा—'सीतल सुखद छाँह जेहि करकी मेटति ताप पाप माया। निसि बासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसिदास छाया'।—[मयूख (पं० शिवलालपाठक)—'बिगत भई सब पीर', यह सब पीर रावण द्वारा पहुँचे हुए घावों की है जो दूर हुई। परन्तु जानकीजीका दुःख हृदयमें करकही रहाहै वह दुःख नहीं गया; इसीसे आगे करुणारसपूरित वचन कहेहैं—'लै दच्छिन दिसि गपउ गुसाईं। बिलपत अति कुररी की नाईं''।] २—'सब पीर' अर्थात् काल, कर्म, गुण, स्वभाव और माया कृत जितनी पीड़ाएं हैं, यथा—'कालकर्म गुन सुभाव सबके सीस तपत' (विनय) 'फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा'। शरीर-की ये सब पीड़ाएँ मिटगईं। ३—'यहाँ करका सरोजसे रूपक दिया या यों कहिये कि करके साथ 'सरोज' पद दिया और कई स्थलोंमें

जीके दक्षिणपदमें हैं वही श्रीसीताजीके वामपदमें हैं और जो श्रीरामजीके बाएँ चरणकमलमें हैं वेही श्रीजानकीजीके दक्षिणपदकंजमें हैं। भगवद्भक्तोंको इनका वा इनमेंसे अपनी कामनाके अनुकूल दो चार छः का नित्य स्मरण बहुत लाभ-दायक होताहै। [श्रीचरणचिह्नोंका चित्रभी दियाजायगा, यदि तबतक तैयार होसका नहीं तो पीछे जब तैयार होगा भेजाजायगा।]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विना इस विशेषणके केवल 'कर' या 'पानी' कहा। यहाँ सरोजपद देकर भक्त जानकर कृपा करना सूचित कियाहै। और जहाँ व्यवहार या युद्धका प्रसंग है वहाँ कोई विशेषण नहीं देते। यथा—'कर परसा सुग्रीव सरीरा' और 'बालि सीस परसा निज पानी' इसने तो कठोर वचन कहेथे और शरणागतको माराथा।

तब कह गीध बचन धरि धीरा।
सुनहु राम भंजन भव भीरा॥ § ३०/२४ (१)
नाथ दसानन एह गति कीन्ही।
[illegible] ॥ ,, (२)
लै दछिन दिसि गएउ गोसाईं।
बिलपति अति कुररी की नाईं॥ ,, (३)

शब्दार्थ—'कुररी'=टिटिहरी-(श०सा०)-पानीके किनारे रहनेवाली एक छोटी चिड़िया जिसका सिर लाल, गरदन सफेद पर चितकबरे, पीठ खैरै रंगकी, दुम मिले-जुले रङ्गोंकी और चोंच काली होतीहै। इसकी बोली कड़ुवी होतीहै और सुननेमें टीं० टीं की ध्वनिके समान जान पड़तीहै। (श०सा०) इसको कराकुल भी कहतेहैं।

अर्थ—तब धीरज धरकर गृध्रराज बोले—हे भवभयभंजन राम। सुनिए। हे नाथ! दशमुखवाले रावणने मेरी यह दशा कीहै। उसी दुष्टने जानकीजीको हरलिया। हे गोसाईं! वह उन्हें दक्षिण दिशाको लेगया। जानकीजी कुररी पक्षीकी तरह अत्यन्त विलाप करतीरहीं।

पु० र० कु० १—'तब कह गीध बचन धरि धीरा'। प्रभुके मुखारविन्दकी छविही ऐसी है कि देखकर सुध-बुध जातीरहतीहै; यहाँभी वैसाही हुआ 'निरखि राम छबि' धीरज न रहगया, अतः 'कह धरि धीरा' कहा।

यथा—(क)-केहरि कटि पटपीत धर सुखमा-शील निधान। देखि भानुकुल भूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान। 'धरि धीरज इक आलि सयानी'।-(ब०§२३३)

(ख)—'मंजु मधुर मूरति उर आनी। भई सनेह सिथिल सब रानी॥ पुनि धीरज धरि कुअँरि हँकारी।

(ग)—राम लषन उर करबर चीठी। रहि गए कहत न खाटी मीठी॥ पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(घ)—पुलकित तनु मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना॥ पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्ही।

२—'सुनहु राम भंजन भवभीरा'। इति। मुखारबिन्दके दर्शनसे भवका नाशहै, यथा—'देखि बदन पंकज भवमोचन'। इसीसे प्रथमही 'भंजन भवभीरा' विशेषण दिया।

३—'नाथ दसानन यह गति कीन्ही००' इति।—यहाँ पहले कहा कि रावणने मेरी यह दशाकी, पीछे कहा कि सीताहरण किया। इस क्रमसे कहनेका तात्पर्य्य यह कि मेरे जीतेजी (सामर्थ्य रहतेभर) वह सीताजीको न लेजापाया, यथा—गीतावल्याम्—'राम काज खगराज आज लर्‍यो जियत न जानकि त्यागी। तुलसिदास सुर सिद्ध सराहत धन्य बिहँग बड़भागी।'—(गी० २०७)।

४—देखिए 'यह गति कीन्ही' के साथ 'दशानन' कहा और 'जनकसुता हरिलीन्ही' के प्रसंगसे उसे 'खल' कहा, तात्पर्य कि मुझे अपनी इस गति का इतना दुःख नहीं है जितना जानकीके हरणका है। भक्तलोग अपनेको दुःख देनेवालेको गाली या बुरा शब्द नहीं कहते, दूसरेको दुःख देने पर भलेही उसको बुरा कहें। परस्त्रीहरणसे 'खल' कहा—(पं० रा० व० श०) पुनः दशाननसे जनाया कि वह बड़ा वीर है दशसिर और बीस भुजाएँ हैं, इसीसे मुझे उसने परास्तकरदिया।

५—'लै दछिन दिसि गयउ गोसाईं।००'। 'गोसाईं' अर्थात् आप पृथ्वीभरके स्वामी हैं, आपसे बचकर वह कहाँ जासकताहै? जहाँ लेगयाहै वह आप जानतेही हैं। ६—सीताजीने विलापकरते हुए कहाथा 'बिपति मोरि को प्रभुहि सुनावा' सो आगे यहीं गृद्धराज सुनारहेहैं कि 'बिलपत०'। ७—"बिलपत अति कुररीकी नाईं" इति। जटायु स्वयं पक्षी है अतः उसने पक्षीकी उपमा दी। पुनः,कुररी आकाशमें शब्द करतीजातीहै वैसेही जानकीजीको रावण आकाश मार्गसेले गया, आकाशमेंही उसका विलाप होरहाथा, मानों कुररी विलाप कररहीहो।

दरस लागि प्रभु राषेउँ प्राना।
चलन चहत अब क्रिपानिधाना॥§ ३०/२४ (४)
राम कहा तनु राषहु ताता।
मुष मुसुकाइ कही तेहिं बाता॥ ,, (५)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—प्रभो ! आपके दर्शनोंकेलिए प्राण बचाएरखे। हे कृपानिधान ! अब वे चलना चाहतेहैं। रामचन्द्रजी बोले—हे तात ! शरीर रखिए। तब उसने मुखमें मुस्कुराकर यह बात कही—

पु० र० कु०—१ (क) 'राखेउँ प्राना'—भीष्मपितामहने उत्तरायण दक्षिणायन सूर्य्यके भेदसे प्राण रोकरखाथा, वैसेही इसने प्रभुके दर्शनार्थ प्राण रोके। दर्शन होगया अतएव अब प्राण छूटने चाहताहै। (ख) 'कृपानिधाना' का भाव कि जिसलिए मैं प्राण रोकेरहा वह आपने कृपाकरके पूरा करदिया, मुझे दर्शन दे दिया। (ग) गृद्धराजकी दो लालसाएँ थीं इसीसे वह पछताताथा कि शरीर छूटनाचाहताहै, मैं प्रभुका दर्शन न करपाया और न सीताकी सुध देसका। इन दोनों अभिलाषाओंकी पूर्ति प्रभुने करदी, यथा—'मरत न मैं रघुबीर बिलोके। तापसबेष बनाए। चाहत चलन प्रान पाँवर बिनु सिय सुधि प्रभुहि सुनाये॥ बार बार कर मीजि सीस धुनि गीधराज पछिताई। तुलसी प्रभु कृपाल तेहि अवसर आइ गये द्वौ भाई...' इति गीतावल्याम् †। अतः 'कृपानिधाना' कहा।

२—'राम कहा तनु राखहु ताता...' इति। 'तात' सम्बोधन करके गीतावलीके भजनका अभिप्राय यहाँ सूचित किया अर्थात् हमारे पिता नहीं हैं आपने हमें पिताका सुखदिया, आपके पुत्र नहीं है तो हम आपको पुत्रका सुख देंगे। यथा—'मेरे जान तात कछू दिन जीजै। देखिये आप सुवन-सेवा सुख मोहि पितुको सुख दीजै'।

३ (क)—'मुष मुसुकाइ' यहाँसे 'राखउँ नाथ देह केहि खाँगे' तक यह जनातेहैं कि मेरे मरणके समान चारों पदार्थ नहीं हैं। अर्थ धर्म और कामसे बढ़कर मोक्ष है सो तुम्हारे नामसे मिलती है, जिनके नामसे मुक्ति मिलतीहै वही आप मेरे सामने प्रत्यक्ष खड़ेहैं। यथा—

† गीतावलीके पूरे पदका भाव श्रीहनुमन्नाटकमें है—'न मैत्री निर्व्यूढा दशरथनृपे राज्यविषया न वैदेही त्राता हठ हरणतो राक्षसपतेः। न रामस्यास्येन्दुर्नयनविषयोऽभूत्सुकृतिनो जटायोर्जन्मेदं वितथमभवद्भाग्यरहितम्॥१३॥' (अंक ४)! गी० २११ के प्रथम चरण ये हैं—'मेरे एकौ हाथ न लागी। गयो बपु बीति बादि कानन ज्यों कलपलता दव लागी॥१॥ दशरथ सों न प्रेम परिपाल्यो हुतो जो सकल जग साखी। बरबस हरत निसाचरपति सो हठि न जानकी राखी॥२॥...'।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'बोलेउ बिहग बिहसि रघुबर बलि कहौं सुभाय पतीजै। मेरे मरिबे सम न चारि फल, होंहि तौ क्यों न कहीजै'—(गी० २१४)। (ख)—मुस्काने का भाव कि आप मेरी परीक्षा लेरहेहैं?—(प्र०)।

जाकर नाम मरत मुष आवा।
अधमौ मुकुति होइ श्रुति गावा॥ § ३०/२४ (६)
सो मम लोचन गोचर आगे।
राखौं देह नाथ केहि खाँगे॥ ,, (७)

शब्दार्थ—'खाँगे'=कमी, घटी, कसर, टोटा।

अर्थ—जिसका नाम मरते समय मुखपर आनेसे अधमभी मुक्त होजाताहै—यह वेद कहतेहैं, वही मेरे नेत्रोंका विषय होकर मेरे आगे प्राप्तहै। (तो) हे नाथ! अब क्या बाकी रहा। किस कमीकेलिए शरीर बनापरखूँ।

पु० र० कु०—१ 'मुख आवा' अर्थात् मरण समय मुखसे नाम निकलना दुर्लभ है, यथा—'जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं'—(बालि:)। २—'अधमौ मुकुति होइ...', यथा—'अपत अजामिल गज गनिकाऊ। भए मुकुत हरिनाम प्रभाऊ॥' ३—'गोचर आगे' इति।—गोचरसे तो आगेका अर्थ होगया फिर आगे क्या? भाव कि गोचर तो दृष्टिकी पहुँचमें कहींभी होनेसे कह सकतेहैं पर आप अत्यन्त निकट प्राप्त होगए—(खर्रा)। ४—'राखौं देह नाथ केहि खाँगे' अर्थात् इस देहसे ईश्वरकी प्राप्ति होगई अब और किस पदार्थ की प्राप्ति बाकी रही जिसकेलिए शरीर बनाये रखूँ। भाव यह कि अब कोई भी वस्तु हमको अपेक्षित नहीं।

☞ गी० २१२ से मिलान करें—'राघो गीध गोद करि लीन्हो। नयनसरोज सनेह सलिल सुचि मनहुँ अरघजल दीन्हो॥१॥ सुनहु लषन खगपतिहि मिले बनमें पितु मरण न जान्यो। सहि न सक्यो सो कठिन बिधाता बड़ो पछु आजुहि भान्यो॥२॥ बहु बिधि राम कह्यो तन राखन परम धीर नहिं डोल्यो। रोकि प्रेम अवलोकि बदन बिधु बचन मनोहर बोल्यो॥३॥ तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहौं। जाको नाम मरत मुनि दुर्लभ तुम्हहिं कहाँ पुनि पैहौं'॥४॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुनः, गी० २१३—'नीके कै जानत राम हियो हों।
प्रनतपाल सेवक कृपालचित पितु पटतरहि दियो हों ॥१॥
त्रिजगयोनिगत गीध जनमभरि खाइ कुजंतु जियो हों।
महाराज सुकृतीसमाज सब ऊपर आजु कियो हों ॥२॥
श्रवन बचन मुख नाम रूप चख राम उछंग लियो हों।
तुलसी मो समान बड़भागी को कहि सकै बियो हों ॥३॥'

भक्तप्रवर निषादराजने जिस मृत्युकी सराहना और कामना प्रकटकीथी वह उन्हींके शब्दोंमें सुनिए—(अ० १८९)—

'समरुमरनु पुनि सुरसरि-तीरा। रामकाज छनभंगु सरीरा ॥
भरत भाइ नृप मैं जन नीचू। बड़ेभाग अस पाइअ मीचू ॥

गृद्धराजको ये सभी विधियाँ प्राप्त हुईं बल्कि इनसे अधिक, वह इस तरह कि समरमरण (त्रैलोक्य विजयी राजा रावणसे लड़कर जो पूर्वका सरकारी सखा है) और रामकाज तो प्रत्यक्ष हैं, रहा 'सुर-सरि तीर' सोभी, वरन् उससे अधिक उसे प्राप्त है क्योंकि जिनके चरणकमलका मकरंद सुरसरिरूपसे पृथ्वीपर और शङ्करजीके मस्तकपर विराजमान है—(मकरंद जिन्हको संभुसिर सुचिता अवधि सुर बरनई। ते पद पषारत भाग भाजन जनक०'।)—वे चरणकमल ही स्वयं उसके शरीर से सटे हुए उपस्थित हैं जिनमें अनेकों सुरसरि हैं, एक की बात ही क्या ? कार्य्यकी कौन कहे कारणही आप्राप्त हुआ अपने कार्य्यके सहित। निषादराज की सराही हुई मृत्युके तो सब लक्षण यहाँ हैं ही पर साथही उनसे अधिक बातें यहाँ गृद्धराजको प्राप्त हैं जैसा वे स्वयं कहरहेहैं 'श्रवन बचन, मुखनाम, रूप चष, राम उछंग लियो हों।' अर्थात् गृद्धराज कहतेहैं कि आप मुझसे शरीर रखनेको कहतेहैं, भला आपही कहिए कि मुझे जो अलभ्य और असंभव महर्षियोंकोभी असंभव लाभ आज प्राप्त है क्या दीर्घजीवी होनेसे, इस शरीरको रखनेसे वह कभीभी फिर प्राप्त होसकेगा ? कदापि नहीं। आज आप मुझे गोदमें लिए बैठेहैं, मेरे मुखसे आपका नाम उच्चारण होरहाहै, आपके मुखारविन्दका दर्शन मुझे होरहाहै, आपके मधुर मनहरण वचन मेरे श्रवणगोचर होरहे हैं, आप मुझे पिता कहरहेहैं—ऐसा सुअवसर फिर कहाँ ? अतएव वे कहतेहैं कि 'राखौं देह नाथ केहि खाँगे", क्या कोई बात बाकी है ? है तो बतलाइए ! प्रभु इसका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्या उत्तर देते ? वे चुप होगए। और ये कहतेहैं कि 'प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहौं'।

प्रेमी पाठकवृन्दने अधिकता देखली। और भी देखिए कि दशरथ-जीकोभी अग्निसंस्कार रामजी द्वारा न प्राप्त हुआ और इनका मृतक-संस्कार श्रीरामजीने स्वयं किया। ऐसी मृत्यु तो किसीकी भी नहीं हुई, ऐसा अतिशय भाग्यशाली दूसरा कौन होगा। फिर इनका यश क्यों न समस्त लोकोंमें निरंतर बनारहेगा। श्रीमहात्मा जटायुजीकी जय ! जय !! जय !!!

जल भरि नयन कहहिं रघुराई।
तात कर्म निज ते गति पाई॥ § ३०/२४ (८)
पर-हित बस जिन्हके मन माहीं।
तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥ ,, (९)
तनु तजि तात जाहु मम धामा।
देउँ काह तुम्ह पूरन कामा॥ ,, (१०)

अर्थ—नेत्रोंमें जल भरकर रघुनाथजी कहरहेहैं। हे तात ! आपने अपने कर्मसे सद्गति पाई। जिनके मनमें परायेका हित बसताहै अर्थात् जो दूसरेका भला करनेमें लगेरहतेहैं उनको संसारमें कुछभी दुर्लभ नहीं है †। हे तात ! तन त्यागकर मेरे धामको जाइए। आपको क्या दूँ आप तो पूर्णकाम हैं।

पु० र० कु०—१—"जल भरि नयन कहहिं रघुराई।००"।—(क) जटायूके दुःखसे आँसू भर आए। पुनः सीताजीका दुःख सुननेसे नेत्र सजल होगए, यथा—'सुनि सीता दुःख प्रभु सुखअयना। भरि आये जल राजिव नयना'। (ख) खर्रा—'रघुराई' का भाव कि सब दानियों में शिरोमणि हैं, राजा हैं रघुकुलके; इतने बड़े होकरभी कैसा उपकार मानतेहैं कि नेत्रोंमें जलभर लाए।

२—'तात करम निज ते गति पाई' यह गृद्धराजके इन वचनोंका

† "हरिध्यानरताः सर्वे परोपकृतिनस्तथा। प्रपन्नाः पादमूलं ते विष्णोर्नारायणस्य हि। पिबन्ति नद्यः स्वयमेवनाम्भः स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः। नादन्ति सस्यं खलु वारिवाहाः परोपकाराय सतां विभूतिः॥"—(सत्योपाख्याने)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उत्तर है कि 'जाकर नाम मरत मुख आवा००'। अर्थात् जो तुमने कहा कि तुम्हारे नाम से मुक्ति होतीहै सो तुम मेरे समान खड़े हो, यह बात यहाँ नहीं है, तुम्हारी मुक्ति न मेरे नामसे, न मेरे रूपसे हुई, तुमने तो अपने कर्मसे मुक्ति पाईहै। किस कर्मसे ? यह आगे कहतेहैं—'परहित...।'

२—'परहित बस जिन्हके मनमाहीं।००' अर्थात् परोपकारसे चारों फल प्राप्त होतेहैं। 'गतिपाई'यह मोक्ष है और जग दुर्लभ कछु नाहीं' से अर्थ, धर्म और कामकी प्राप्ति इस संसारमें जनायी।

४—'तन तजि तात जाहु मम धामा००' इति। गृद्धराजके 'नाथ दसानन यह गति कीन्ही' इस वचनपर प्रभुने कहा कि 'तन राखहु ताता'। पर, जब उसने शरीर रखना न स्वीकार किया तब कहा कि 'शरीर छोड़कर हमारे धामको जाओ।'

५—'तुम्ह पूरन कामा'। पूर्णकाम इससे कहा कि 'देह प्रानते प्रिय कछु नाहीं'; उस देह और प्राणको सेवाकरने भरकेलिए रखा—सीता-की सुधदी और दर्शन किए। और जो प्रभुने कहा कि हम तुम्हारी सेवा करेंगे, यह स्वीकार न किया। सेवा करानेकेलिए शरीर न रखा। पुनः, यह प्रभुका स्वभाव है कि "निज करतूति न समुझिये सपने। सेवक सकुच सोच उर अपने"। उसके अनुकूलही ये वचन कहेगएहैं। देनेको गृद्धराजको सर्वस्व देदिया और फिरभी कहतेहैं कि 'देउँ काह०'—यह उदारताका स्वरूप है।

गौड़जी—"परहित···माहीं। तिन्ह···नाहीं।" इति।—इसका एक भाव यहभी है कि परहितनिरत मुक्त पुरुष भी जगत्में अपनी इच्छासे जब चाहें आसकतेहैं। फिर कभी जगत्का उपकार करने की इच्छासे तुम अवतार लेना चाहो तो तुम्हारेलिये कोई कठिनाई नहीं है। इस जरा जर्ज्जर शरीरको जो इस समय पीड़ाका कारण है, छोड़ देना भी अच्छा है।

नोट—देखिए गृद्धराजजी तो अपनी इस परमभाग्यशाली मृत्यु-को प्रभुकी कृपाही कहतेहैं। क्यों न हो ? वे तो भक्तराजों और हरि-वल्लभोंमें गिनेगए हैं, वे ऐसा क्यों न कहते ? भक्तके मुखसे तो यही शोभा देताहै जैसा वे कहरहेहैं—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"त्रिजगजोनिगत गीध जनम भरि खाइ कुजंतु जियो हौं।
महाराज, सुकृतीसमाज सब-ऊपर आजु कियो हौं॥"

पर प्रभु इनकी इस दीनताको खूब समझतेहैं वे उसको अपनेसे भी अधिक यश देतेहैं, उलटे अपनेको उनका ऋणिया कहनेलगतेहैं जैसा कि वानरसेनासे रावणवधके पीछे कहाहै, हनुमान्‌जीसे सुंदरकांडमें कहाहै और यहाँ गृद्धराजसे कहरहेहैं—'तात करम निज ते गति पाई'; यह तो गति अपनी करनीसे पाई। और हमारे लिए प्राण दिए यह ऋण हमपर बनाहै।

सीताहरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ।
जौं मै राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ॥ ३१।२५

अर्थ—हे तात! सीताहरणकी बात पितासे जाकर न कहना। जो मैं राम हूँ तो दशमुखवाला रावण कुलसहित आकर स्वयं कहेगा।*

नोट १—'जनि कहहु' का कारण गी० २१५ में है—"मेरो सुनियो तात सँदेसो। सीयहरन जनि कहेहु पितासों ह्वैहै अधिक अँदेसो॥१॥ रावरे पुन्य प्रताप अनल महँ अलप दिननि रिपु दहिहैं। कुल समेत सुरसभा दसानन समाचार सब कहिहैं॥२॥"। ऐसाही अंगदजीने कहा है—"दिन दस गये बालि पहँ जाई। बूझेउ कुसल सखा उरलाई॥ रामबिरोध कुसल जसि होई। सो सब तोहि सुनाइहि सोई॥"—(लं० §२०)। २—ये पिताके सखा थे इससे भय था कि ये अवश्य जाकर कहेंगे अतएव मना किया।

पु० र० कु०—'जौं मै राम त कुल सहित' यहाँ उसी बातकी प्रतिज्ञा प्रभु कररहेहैं जो उनके भक्तके मुखसे निकलीहै—'होइहि सकल

---

* १ यथा—"तात त्वं निज तेजसैव गमितः स्वर्गं व्रज स्वाति ते।
ब्रूमस्त्वेकमिमां वधूहृतिकथां तातान्तिके मा कृथाः॥
रामोऽ यदि तद्दिनैः कतिपयैः ब्रीडानमत्कन्धरः।
सार्धं बन्धुजनेन सेन्द्रविजयी वक्ता स्वयं रावणः॥"—(हनुमन्नाटक अ० ५ श्ल० १६)

२—यहाँ प्रथम पर्य्यायोक्ति अलंकार है। सीधे यह न कहा कि मैं रावणका कुलसहित नाश करूँगा उसे इस प्रकार घुमाकर कहा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सलभ कुल तोरा'। 'जो मैं राम हूँ तो'—यह शपथ वा प्रतिज्ञाकी एक रीति है। भक्तके वचनकी सिद्धिकेलिए 'कुल सहित" कहा, यथा—'होइहि सकल सलभ कुल तोरा'।

गीध देह तजि धरि हरिरूपा।
भूषन बहु पटपीत अनूपा॥ § ३१/२५ (१)
स्याम गात बिसाल भुजचारी।
अस्तुति करत नयन भरि बारी॥ ,, (२)

अर्थ—गृद्धराज जटायुने गृद्ध-शरीर छोड़कर हरिरूप धारण किया—बहुतसे आभूषण और उपमारहित (दिव्य) पीताम्बर पहने हुएहैं, श्याम शरीर है, विशाल चार भुजाएँ हैं—नेत्रोंमें जलभरेहुए स्तुति कररहाहै।

नोट—१ इस चौपाईके कुछ भाव और मिलान स्तुतिके अन्तिम छन्द और § ३२ में भी देखिए।

२-हरिरूपासे चतुर्भुजरूपसे यहाँ अभिप्रायहै। और आगे इसीको स्पष्ट कियाहै। यथा—'स्यामलगात बिसाल भुजचारी'। चार भुजा विष्णुभगवान्केहीहैं—वैकुण्ठनिवासी वा क्षीरक्षयीवासी। पं०शिवलाल पाठकने मयूखमें यह शंका उठाकर कि चतुर्भुजरूप होकर रामधामको जानाकहा यह विरोधसा दिखताहै क्योंकि रामधाममें द्विभुज स्वरूप से जाना उचित था। इसका समाधान यह करतेहैं कि यहाँसे चतुर्भुज रूपसे जायँगे जब इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ इत्यादि सब पार हो जायगे तब चतुर्भुजसे द्विभुज होकर तब परमधाममें प्रवेशकरेंगे। बाबा रामचरणदासजी लिखतेहैं कि अभी वैकुण्ठमें चतुर्भुजरूपसे जटायु निवास करेंगे जैसे इन्द्रलोकमें दशरथजी महाराज और जब प्रभु अपने परविभूतिलोकको जायँगे तब ये दोनों वहाँसे प्रभुके साथ उस लोक को जायँगे। बाबा हरिहरप्रसादजीने हरिरूपसे चतुर्भुजरूपका अर्थ नहीं लेनाचाहाहै इसीसे 'बिसाल भुजचारी' के अर्थमें बहुत खींच की है। जो सर्वथा—यहाँ अभिप्रेत नहीं है। इसीलिए यहाँ वे भाव नहीं दियेजाते। एक भाव जो उन्होंने यह दियाहै कि कई कल्पकी कथा मिश्रित है, इससे चतुर्भुजपार्षदोंमें मिलनेवालोंमें वह जटायु होगा। पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी मयूखसे सहमत हैं, वेभी यही कहतेथे कि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वैकुण्ठ तक चतुर्भुजही रूप रहताहै उसके आगे जानेपर द्विभुजरूप होताहै।

☞ यहाँ पर पं० रामकुमारजीके कुछ भाव उन्हींके दोहोंमें उद्धृत किएजातेहैं जो हालहीमें प्राप्त हुएहैं और बालकाण्डकी टिप्पणीमें नहीं आएहैं। ये दोहे भगवान् रामचन्द्रजीके आविर्भावके समय चतुर्भुजरूपसे दर्शन देनेके संबन्धके हैं—पाठक बालकाण्डमें उस प्रसंगमें लिखलें कि इसपर आ० § ३१ (१) देखिए। और, आ० ९ (१८) 'हृदय चतुर्भुजरूप दिखावा' में भी ये भाव पढ़ लेनाचाहिए।

१ शंका—'प्रथमहि बालकरूप धरि प्रगटे किन सुरराउ।
अद्भुत रूप दिखावनो याको लख्यो न भाउ॥'

समाधान—

'परखत पूरब ज्ञान मनु है धौ भूली माय।
निज स्वरूप ते प्रगट भए अवरहु भाव सुहाय॥
बर दीन्हो जेहि रूप ते जो नहिं देखै मातु।
मानै सुत सब जगत सम होइ न ज्ञान को घात॥
भावी विरह न राखिहै प्राण रूप यह जान।
कौसल्या-हितकारि पद देत ध्वनी यह मान॥
जिमि अद्भुत मम रूप तिमि अद्भुत करिहौं गाथ।
जनमकाल सब लखन मनो रूप दिखायो नाथ॥'

२—शंख कमल को शस्त्र कैसे कहा? उत्तर—

मोह रूप दसमौलि दर नासत वेदस्वरूप।
कमल प्रफुल्लित हृदय करि नासत शोक अनूप॥'

अर्थात् बाह्यान्तर-शत्रुओंका निधनकरनेवालेहैं।

३—'कल्प चतुर्थ प्रसंग में रामजन्म को हेतु।
मनु-स्वयंभु-तप देखि प्रभु आए तजि साकेत॥
तेइ दशरथ अरु कौशिला भए अवध महँ आइ।
जन्मकाल केहि हेतु प्रभु विष्णुरूप दरसाइ?'

उत्तर—

'विष्णु आदि त्रयदेवता सोऊ मेरेहि रूप।
निजमाता के बोधहितधर्‍यो चतुर्भुज रूप॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यहै बोध दृढ़ करम पुनि है करि विश्वसरूप। विष्णु आदि सब देव से लखु मम रूप अनूप॥ चारि भुजा ते सूच हरि चतुर्व्यूह मोहि जान। वासुदेव आदिक तथा विश्वादिक हूँ मान॥ मात्रा चारिजो प्रणवके चारि भुजा मम अंग। अंगी पूरण ब्रह्म तिमि लखु ममरूप अभंग॥ चारौ कर ते नाशिहौं चारौ दुःख के हेतु। कालरु कर्म स्वभाव गुण जनु प्रभु सूची देतु॥ त्रेता त्रय पद धरमके यद्यपि हैं जग माहिं। चारों पद पूरण करौं चारौं कर दरसाँहिं॥ चारि भुजा ते सूच प्रभु नृप नयके पद चारि। सो सब मेरे हाथ हैं जानत बुध न गँवार॥ चारिहु विधि मोहि भजत जन चारिभुजा तेहि हेतु। हरत दुःख दै ज्ञान पुनि धन दै मोक्षहु देतु॥ भक्ति परीक्षा करन हित प्रभु निजरूप दुराइ। द्विभुज राम साकेत मनु भए चतुर्भुज आइ॥ (यथा)—'भूपरूप तब राम दुरावा। हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा॥'

सूचत प्रभु धरि चारि भुज चारि वेद मोहि ग्रीव। तेहि प्रतिकूलहि मारिहौं राखौं तिनकी सींव। निज भक्तनको चारि फल चारि भुजाते देहुँ। चारि रूप अति चपल मन ध्याताके हरि लेहुँ। सूचत प्रभुभुज चारिते चारि खानि मै कीन। जारज अंडज स्वेदज उद्भिज सो कहि दीन॥

छंद (हरिगीतिका)

जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।
दससीस-बाहु-प्रचंड-षंडन चंड-सरमंडन मही॥
पाथोद गात† सरोज मुष राजीव आयत लोचनं।
नित नौमि रामु कृपालु बाहु बिसाल भवभयमोचनं॥१॥

शब्दार्थ—सही = सत्य, प्रमाणिक। = शुद्ध। प्रचंड = तीखे, प्रखर, प्रबल। चंड = तीक्ष्ण = उद्धत, कुपित।

अर्थ—हे राम! जिनका उपमारहित रूप है, जो निर्गुण हैं, सगुण हैं और सत्यही शुद्ध गुणोंके प्रेरक हैं ‡ ऐसे आपकी जय हो। दशशीश

†भा० द० में 'गाद' पाठ है, अन्य सबमें 'गात' है। गादका अर्थ यहाँ कुछ समझमें नहीं आता अतः इस तिलकमेंभी 'गात' ही रखागया।

‡ १—बैजनाथजी अर्थ करतेहैं कि आपका रूप निर्गुण (व्यापक) सगुण (अवतार आदि एवं विराट आदि) और त्रैगुण तीनोंका प्रेरक है अतः अनुपम है। २—उपरोक्त अर्थमें अनुपमता यह है कि सगुण, निर्गुण, गुणप्रेरक सभी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(रावण) की प्रचंड भुजाओंको खण्डन करनेकेलिए तीक्ष्ण और कुपित बाण धारण करनेवाले, पृथ्वीको भूषित करनेवाले, सजल (श्याम) मेघवत् शरीर, कमलसमानमुख और लालकमलके समान बड़े नेत्रवाले, कृपालु, आजानुबाहु (घुटने तक लंबी भुजा) और भव-भयके छुड़ानेवाले राम मैं आपको नित्यही नमस्कार करताहूं।

पु०र०कु० १—"जयराम रूप अनूपनिर्गुन",यथा-'उपमा न कोउ कह दासतुलसी कतहुँ कह कबि कोबिद कहैं'।'जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूपसिरोमने'। निर्गुण अर्थात् गुणोंसे पृथक् हो त्रिगुणातीत, सत्वरजतम मायिक गुणोंसे रहित, सगुण गुणके सहित हो, और गुणोंके प्रेरक हो। जब सगुण कहा तब गुणके वश होना पाया गया, अतः गुणका प्रेरक कहकर बताया कि वे गुणोंके वश नहीं हैं, गुण उनके वशमें हैं, ब्रह्मा विष्णु महेश जो त्रिगुणमय हैं वे इनके आज्ञाकारी हैं, यथा—'बिधिहरिहर बंदित पद रेनू'—(मनु)।

२—"दससीस बाहु प्रचंड" अर्थात् रावणने अपनी प्रचण्ड भुजाओंसे मेरे पक्ष काटेहैं उन भुजाओंके काटनेको आपके बाण चण्ड अर्थात् कोपे हुएहैं। प्रचण्डको 'चण्ड' से नाश करनेवालेहैं, यथा—'दससीस बिनासन बीस भुजा कृत दूरि महामहि भूरि रुजा। तात्पर्य्य यह कि रावणको मारकर पृथ्वीको आप भूषित करेंगे। यहाँ रावणके बाहुको इससे कहा कि आगे चलकर रामजीकी भुजाओंका वर्णन है।*

३—'पाथोद गात सरोज मुख···भवभय मोचनं'। यहाँ सब अंगोंको कहकर अन्तमें 'भव भय मोचन' पद देकर जनाया कि इस पदका अन्वय सबके साथ है, सभी अंगोंसे इसका संबंध है, यह सब-का विशेषण है। अर्थात् सभी अंग प्रभुके भवभयके छुड़ानेवालेहैं।

हैं; एकही रूपमें सब बातें; न निर्गुणही कहसकें न सगुण और फिरभी यही रूप दोनोंका आधाररूप है।

* यह भाविक अलंकार है। दूसरे कारण ये हैं कि (१)—यहाँ दिव्य शरीर होनेसे दिव्य ज्ञान प्राप्त है। (२)—आशीर्वादात्मक स्तुति है, यह आशी-र्वादही है कि ऐसा होगा। (३)—राम सत्यसंध हैं, वे प्रतिज्ञा कर चुकेहैं अतः निस्संदेह है। (४) लीला नित्य है, सदा ऐसा होताआयाहै, वह जानताहै अतः भविष्य कहा, यथा लक्ष्मणवाक्य—प्रगटी धनु विघटन परिपाटी'।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(१)—श्याम गात भवभयमोचन है यथा—'श्यामल गात प्रनत भव मोचन'। (२) मुख, यथा—'होइहैं सफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भवमोचन'। (३) नेत्र यथा राजीव विलोचन भव-भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई'। (४) 'बाहु', यथा—'सुमिरत श्रीरघुबीरकी बाहैं। होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहैं"—(गी०)।—(खर्रा—'आयत लोचनं' अर्थात् आकर्णपर्य्यन्त। कानोंके पास तक लंबे)।

४—'रामकृपाल' का भाव कि मुझसे अधम पक्षीपर भी आपने कृपाकी। बाहु विशालहैं, अर्थात् आजानबाहु हो। पुनः, विशालता यह कि जहाँ ही दासपर संकटपड़ताहै वहीं आपकी भुजाएँ संकट निवारणकेलिए रक्षाको प्राप्तहैं।

नोट १—'जय राम' इस प्रकारसे स्तुति रावण वधके पहले और पश्चात् एवम् राज्याभिषेकपरभी हैं। जैसे—(क) 'जय राम रूप अनूप००'—यहाँ। (ख) 'जयराम सदा सुखधाम हरे००'—(ब्रह्मा कृत); 'जय राम सोभाधाम दायक प्रनत बिस्राम' (इन्द्रकृत)। (ग) 'जयराम रमारमणं०' (शिव कृत;) 'जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने'—वेदस्तुति। पर इस काण्डमें अत्रिजी आदिने जो स्तुतियाँ कीं उनमें यह रीति नहीं है। प्रथम और अंतिम स्तुति इस प्रकारसे प्रारंभकी हुई (वनवासके पश्चात् और रावणवधके पूर्व) यहीहै।

अतः यह भाव भी यहाँ संगत है कि रावणवधकी प्रतिज्ञा करनेके पश्चात् अब सीताहरण होनेके कारण उससे युद्ध होना निश्चय है। अतः गृद्धराज आशीर्वादात्मक वचनोंसे स्तुति प्रारंभ कररहेहैं। दूसरे, गृद्धराज रामजीको पुत्र मानतेथे ही अतएव पितासरीखे आशीर्वाद देरहेहैं। इस समय हरिरूपसे यह आशीर्वाद है और देवताओंके वचन सत्य होतेहैं अतः ये अवश्य सत्य होंगे।

बलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमेकमगोचरं।
गोविंद गोपर द्वंद्वहर बिज्ञानघन धरनीधरं॥
जे राममंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनं।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि पलदल गंजनं॥ § ३१॥२

शब्दार्थ—अव्यक्त—अदृश्य। द्वंद्व—दो परस्पर विरुद्ध वस्तुओंका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जोड़ा जैसे शीत उष्ण, सुखदुःख, पाप पुण्य, जन्म मरण इत्यादि। गोविन्द=इन्द्रियोंके प्रेरक, उनको सत्ताके देनेवाले; भगवान्‌का नाम।

अर्थ—प्रमाणरहित बलवाले, अनादि, अजन्मा, अदृश्य, अद्वितीय अगोचर, गोविन्द, इन्द्रियोंसे परे, जन्म मरण आदि द्वन्द्वों के हरनेवाले पृथ्वीके आधार, विज्ञानसमूह (वा विज्ञानके, मेघ) जो संत राममंत्र जपतेहैं उन अनन्तदासोंके मनको आनन्ददेनेवाले † निष्काम जिनको प्रियहैं और जो निष्काम भक्तोंके प्रिय हैं, कामादि दुष्टोंकी सेनाको नाश करनेवाले—हे राम! ऐसे आपको मैं नित्य नमस्कार करताहूँ।

पु०र०कु—१—"अगोचरगोविन्द गोपर००"इति। गोविन्द अर्थात् इन्द्रियोंसे जानेजातेहो—'विद् ज्ञाने'। गोपर अर्थात् इन्द्रियोंसे परे हो गोविन्द गोपर=जो इन्द्रियोंसे परे हैं वही आप हमारे नेत्र-इन्द्रियके विषय होरहेहैं। सगुण निर्गुणके भेदसे गोविन्द और गोपर कहा।*

२—'विज्ञानघन' विज्ञानसमूह, यथा—'ज्ञानअखण्ड एक सीताबर' धरनीधर=पृथ्वीके आधार—कमठ रूपसे, वराहरूपसे। ३—अकाम प्रिय=जिनको कुछभी कामना नहीं, अर्थात् निष्काम भक्तोंके आप प्यारे हैं, यथा—'ते तुम राम अकाम पियारे'। इसीसे कामादि खलसेना जो षट विकार रूपी शत्रु हैं उनके नाशकर्त्ता हो। पुनः, भाव यह कि सकाम लोगोंको तो आप स्वाभाविक ही प्रिय लगतेहैं क्योंकि उनकी कामनाओंको आप पूर्ण करतेहैं। पर जो निष्काम हैं उनकोभी आप प्रिय हैं यद्यपि उनको किसी पदार्थकी कामना नहीं है। यथा—'जिन्हहिं न चाहिए कबहुँ कछु तुम्हसन सहज सनेह। ४—खर्रा—अकामियोंको प्रिय हो और कामादि खलदलके नाशक हो—इस प्रकार कहा क्योंकि प्रभु 'कामी' बनकर खोजरहेहैं।

छन्द—जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म ब्यापक बिरज अज कहि गावहीं।
करि ध्यान ग्यान बिराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं॥

† दूसरा अर्थ—संतों एवं अनंत दासोंके मनको आनंददेनेवाले। अर्थात् विरक्त और गृहस्थ सब भक्तोंको।

* १ प्र०—अनादि—बालकाण्डमें मंगलाचरणमें जो कहा है—'अशेषकारणपरं' उसीभावसे अनादि। गोविन्द=इन्द्रियोंकी यावत् शक्ति और उनके विषय हैं उनमें अन्तर्यामी रूपसे प्राप्त। २—रा० प्र० श०—गोविन्द=इन्द्रियोंके भोक्ता।=इन्द्रियोंके स्वामी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सो प्रगट करुनाकंद सोभाबृंद अग जग मोहई।
मम हृदय पंकज भृंग अंग अनंग बहु छबि सोहई ॥३॥

अर्थ—जिसे वेद निरंजन, ब्रह्म, व्यापक, निर्विकार, अजन्मा कहकर गातेहैं। जिसे मुनि अनेकप्रकारसे ध्यान, ज्ञान, वैराग्य, योग (आदि साधन) करके पातेहैं वही आप करुणाकन्द (दयारूपी जलकी वर्षा करनेवाले मेघ), शोभाकेसमूह प्रकट होकर चराचरको मोहित कररहेहैं, शरीरके अंगअंगमें बहुतसे कामदेवोंकी छबि शोभा देरहीहै—सो मेरे हृदयरूपी कमलके भ्रमर हुजिए।

पु० र० कु० १—जिसका वेद गुणगान करतेहैं, मुनिजन ध्यान धरतेहैं ऐसे दुर्लभ, सो करुणा करके प्रगट हुएहो, तो हमपर करुणा करके हमारे हृदयमें वास कीजिए। भगवान्के अवतारका कारण करुणा है कपिल सूत्रमें ऐसा उल्लेख है।

२—'सोभाबृन्द अगजग मोहई' अर्थात् शोभाके समूह प्रगट हुए हो इसीसे स्थावर जंगम सभीको मोहित कररहेहो, यथा—'देखत रूप चराचर मोहा' 'लिए चोर चित राम बटोही'।

३ खर्रा—पहले निर्गुणरूप कहा। अब उसीको विस्तारसे कहतेहैं कि 'मुनि जेहि पावहीं' अर्थात् जिसका अनुभव करतेहैं।

छन्द

जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।
पस्यंति जं जोगी जतनु करि करत मन गो बस सदा॥
सो राम रमानिवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी।
मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी ॥४॥

अर्थ—जो अगम्य और सुगम, निर्मलस्वभाव, (वा, स्वाभाविकही निर्मल), विषम और सम, और सदा शान्त है। जिनको योगी यत्न करके देखतेहैं और सदा मन और इन्द्रियोंको वशमें किएरहतेहैं। वही सदा दासोंके वश और त्रिलोकके स्वामी रमानिवास रामचन्द्रजी! और जिनकी पवित्र कीर्ति (यश) संसारदुःखकी नाशक है वही आप मेरे हृदयमें बसिए।

पु० र० कु० १—'अगम सुगम'। निर्गुण सगुण भेदसे यथा—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'निर्गुन सगुन बिषम सम रूपं'—एक अगम दूसरा सुगम। अथवा, कुयोगियोंको अगम्य और योगियोंको सुगम, यथा—'कुयोगिनां सुदुर्लभं' और 'पश्यन्ति यं योगी जतन करि'। इस कथनसे स्वभावमें विषमता पाईजातीहै अतः कहा कि स्वभाव निर्मल है, विकाररहितहै। अथवा, निर्मल स्वभाववालेको सुगम और मलिन स्वभाववालेको अगम।

२—'असम सम' अभक्त भक्त भेदसे। यथा—'जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पुन्य गुन दोषू॥ तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा' पुनः, यथा—'बेद बचन मुनिमन अगम ते प्रभु करुना ऐन। बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन'। इनसेभी विषमता पाईगई अतः कहा कि 'शीतल सदा'।

३—'त्रिभुवनधनी...' भाव कि तीनों लोक आपके अधीन हैं, ऐसे होतेहुएभी आप दासोंके वशमें हैं, उनकेलिए अवतार लेतेहैं, पवित्र कीर्तिको फैलातेहैं, यथा—'सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जनहित तन धरहीं'।

४—'पस्यंति जं जोगी...' इति। कामक्रोधादिके वश होनेसे रूप नहीं देखसकते अतः मन और इन्द्रियोंको वशकरके देखना कहा, यथा, 'मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना'।

☞ ५ (क)—प्रथम ही स्तुतिके प्रारंभमें कहा कि आपही निर्गुण हैं आपही सगुण हैं इसीसे दोनों रूपोंकी व्याख्या स्तोत्रभरमें की। 'जेहि श्रुति निरंजन...' इस छन्दमें निर्गुणका वर्णन किया और 'जो अगम सुगम...' इसमें सगुणका वर्णन किया।

(ख)—ब्रह्म और विष्णु दोनोंके अवतार होतेहैं जैसा बालकाण्डमें श्रीशिवजीने पार्वतीजीसे कहाहै—'ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद। सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत वेद' और 'विष्णु जो सुरहित नरतनु धारी'—(§ ५०)। इस स्तुतिमें दोनों अवतारोंका वर्णन है, 'विष्णुके छन्दमें 'रमानिवास' पद देकर इस छन्दमें विष्णुके रामावतारकी स्तुति होना स्पष्ट करदिया। दोनोंके अवतारोंमें हृदयमें निवास माँगकर जनाया कि दोनों आपही हैं।

(ग)—प्रभुने कहाथा कि 'देउँ काह तुम्ह पूरन कामा' इसपर गृद्धराजने 'ममउर बसउ' और 'अबिरल भक्ति' माँगी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

खर्रा—१ इस स्वतमें चार छन्द हैं। जानपड़ताहै कि इनमें चारों वेदोंका अभिप्राय पृथक् २ (एक एक छन्दमें एक एकका) दर्शित किया-गयाहै। २—गृद्ध्रराजके छन्दमें कई बातें स्मरण रखनेयोग्यहैं। इसमें कई नियम भंग हुएहैं। देखिए, एकही चौपाईपर छन्द कहीं और ग्रंथ-भरमें नहीं आया। पुनः, छन्दोंमें अंतकी चौपाईके शब्द प्रायः सर्वत्र आएहैं पर यहाँ ऐसा नहीं हुआ। वैसेही गृद्ध्रराजकी गतिमें यह अद्भुत बात हुईहै कि 'धरि हरि रूप' अर्थात् यहीं हरिरूप होगया—गति तो दशरथजी, शबरीजी, शरभंगजी इत्यादि कई भक्तोंने पाई', पर यह सारूप्यमोक्ष यहीं पृथ्वीपरही प्रत्यक्ष इन्हींको मिला। प्रभुकेलिए शरीर समर्पण करदिया उसीका यह फल है, उसीसे यह अद्भुत गति और यह विलक्षणता यहाँ दिखरहीहै।—§ ३२ का नोट भी देखिए।

अबिरल भगति मागि बर गीध गएउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥ §

अर्थ—अविरल भक्तिका वरदान माँगकर गृद्धराज भगवद्धामको गया। रामचन्द्रजीने उनकी क्रिया विधिपूर्वक जैसी उचित थी अपने हाथोंसे की।

पु० र० कु०—१—देखिए मुक्ति तो भगवान्ने अपनी ओरसे दी, यथा—'तन तजि तात जाहु मम धामा', पर भक्ति माँगनेपर मिली, यथा—'भगति माँगि बर' इससे मुक्तिसे भक्तिका दर्जा अधिक पाया-गया, यथा—'प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही॥ भगतिहीन गुन सब सुख कैसे। लवन बिना बहु व्यंजन जैसे'—(उ० § ८३)', मुक्तिं ददाति कर्हिचित् नहि भक्ति योगं' इति भागवते। विशेष § १० (२१) में देखिए।

२—'तेहि की क्रिया जथोचित...'। यथोचित=शास्त्रोक्त रीतिसे, जैसा कुछ शास्त्रमें विधान है। रामजी गृद्ध्रराजको पिताके समान मानतेथे अतः उसकी क्रिया स्वयंकी। लक्ष्मणजीसे दाहकर्म न कराया क्योंकि पिताकी क्रिया का ज्येष्ठपुत्र विशेष अधिकारी कहागयाहै।

३—इस स्तोत्रमें नाम, रूप, लीला और धाम चारोंका महत्व कहा-है।—(१) नाम—'ये राममंत्र जयंत संत००'। (२) रूप—'जय राम रूप अनूप...'। (३) लीला—'दससीस बाहु प्रचंड खंडन चंड

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर००'। (४) धाम—'मागि बर गीध गयउ हरिधाम'।

नोट १—दोहावलीके निम्न दोहे गृद्धराजकी गतिपर स्मरण रखने योग्य हैं—'दसरथते दसगुन भगति सहित तासु करि काज। सोचत बंधु समेत प्रभु कृपासिंधु रघुराज॥' अर्थात् दाहकर्म होनेपर जैसे प्राणीका शोक कियाजाताहै वैसेही प्रभुने शोकभी किया। 'प्रभुहि विलोकत गोदगत सिय हित घायल नीचु। तुलसी पाई गीधपति मुकुति मनोहर मीचु॥'रघुबर बिकल बिहंग लषि सो बिलोकि दोउ बीर। सिय-सुधि कहि सियराम कहि देह तजी मतिधीरा। 'मुये मरत मरिहैं सकल घरी पहरके बीच। लही न काहू आज लगि गीधराजकी मीच॥'

२—'क्रिया यथोचित कीन्हीं'वा०स०६८में लिखाहै कि रामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे जटायुके मरनेपर कहा—यह पक्षी बहुत वर्षोंसे दण्डकारण्यमें बसतारहाहै, आज वह मारागया, काल बड़ा प्रबल है उससे किसीकी नहीं चलती। देखो, आज यह हमारा उपकारी मारा गया! सीताकी रक्षा करनेके कारण बली रावणने इसे मारा। अपने पिता, पितामहसे आया हुआ गृध्रोंका राज्य हमारेलिए त्यागकर हमारेलिए इसने अपने प्राण अर्पण कर दिए। धर्मात्मा सज्जन, सूर, शरणागतरक्षक पक्षिसमाजमें भी पाएजातेहैं। सीताहरणका आज मुझे वैसा शोक नहीं है जैसा हमारे निमित्त प्राण न्योछावर करदेनेवाले इस गृद्धका—'सीताहरणजं दुःख न मे सौम्य तथागतम्। यथा विनाशो गृध्रस्य मदकृते च परंतप' जैसे महाराजा दशरथ हमारे पूज्य और मान्य हैं वैसेही ये पक्षिराजभी हैं—'राजा दशरथः श्रीमान्यथा मम महायशाः। पूजनीयश्चमान्यश्च तथायंपतगेश्वरः।'लक्ष्मण! लकड़ी एकत्र करो मैं इन गृद्धराजका जो मेरेलिए मारे गए, अग्निसंस्कार करूँगा। यज्ञ करनेवालोंको अग्नि होत्रियों, युद्धमें सम्मुख लड़नेवालों और पृथ्वी दान करनेवालोंको, जो-गति प्राप्त होतीहै तुम उसीको प्राप्त हो मैं तुम्हारा संस्कार कररहा-हूँ। ऐसा कहकर अपने बान्धवोंकी तरह दुःखी होकर उसका संस्कार किया। उसको पिण्डदान दिया। उसके लिए उन मंत्रोंका जप किया जो ब्राह्मण मृतप्राणीको स्वर्ग प्राप्तिकेलिए जपाकरतेहैं, गोदावरीमें स्नान करके उनकेलिए जल दिया—'ततो गोदावरीं गत्वा नदीं नर वरात्मजौ। उदकं चक्रतुस्तस्मै गृध्रराजाय तावुभौ॥'—(वा० स० ६८)। ३—भा० द० का पाठ 'कृपा' है। का० का 'क्रिया' है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कोमल चित अति दीनदयाला।
कारन बिनु रघुनाथ कृपाला ॥ ९३३/१२६ (१)
गीध अधम खग आमिष भोगी।
गति दीन्ही जो जाचत जोगी ॥ ,, (२)
सुनहु उमा ते लोग अभागी।
हरि तजि होहिं विषय अनुरागी ॥ ,, (३)

अर्थ—रघुनाथजी अत्यन्त कोमलचित अत्यन्त दीनदयाल और कारणरहित कृपालु हैं। गृद्ध्र अधम पक्षी, मांसका खानेवाला—उसको वह गति दी जो योगी माँगा करतेहैं। हे उमा! सुनो; वे लोग अभागे हैं जो भगवान्‌को छोड़कर विषयोंसे अनुराग करतेहैं (विषयासक्त होतेहैं)।

पु० र० कु० १—"कोमलचित अति दीनदयाला।००' इति।—'अति' दीपदेहरी है। भाव कि कोमलचित्त और दीनदयाल कहीं २ मिलतेहैं और ये तो अत्यन्त कोमलचित्त हैं और अत्यन्त दीनदयाल हैं। कोमलचित हैं अतः गृद्ध्रराजका दुःख देखकर न सहसके सुनतेही आँसू भरआए और शरीर रखनेको कहा। दीनदयालु हैं अतः मुक्ति दी, अपने हाथोंसे कृपा की। और लोग कारणसे कृपालु होतेहैं और ये कारणरहित कृपालु हैं, यथा—'हेतुरहित जग जुग उपकारी।'

२—'गीध अधम खग आमिषभोगी।०' यहाँ 'आमिषभोगी' कहकर मांस-भक्षणको दोष ठहराया। अधम और मांसभोजीको मुक्ति नहीं मिलती, ऐसेको भी मुक्ति दी और कैसी मुक्ति? 'जो जाचत जोगी' अर्थात् योगी लोग अष्टांगयोग साधन करके जिसकी याचना करते हैं। यह कारणरहित कृपा लुता है। 'गति दीन्ही', यथा—'खल मनुजाद द्विजामिषभोगी। पावहिं गति जो जाचत जोगी'—(लं०)।

३—"सुनहु उमाते लोग अभागी।' (क)—विषयको त्यागकर श्रीरामपदानुरागी होनेसे मनुष्य भाग्यमान् कहाजाताहै, भगवान्‌के धामको जाताहै और हरिको त्यागकर विषयानुरागी होनेसे नरकको प्राप्त होताहै अतः उनको अभागी कहा। यथा—'अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमंद ते परम अभागी॥ 'देहिं परम गति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सो जिय जानी। अस कृपालु को कहहु भवानी॥" (ख)—'ते लोग' का भाव कि जब गृद्धने गति पाई तो मनुष्यको गति पानेमें सन्देह ही क्या होसकताहै? मनुष्य देह तो 'साधनधाम मोक्षकर द्वारा' है इसे 'पाइ न जेहि परलोक सुधारा' 'सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि २ पछताइ। कालहि कर्महि ईश्वरहि मिथ्या दोष लगाइ—(अ§४३)।

४—खर्रा—(क) यहाँ तो जटायुने सीताजीके लिए शरीरही दे दिया तब 'कारन बिनु कृपालुता' कैसी? उत्तर—जीवमें जो पुरुषार्थ है वह रामकृपासे है, यथा—'सुनि संपाति बंधु कै करनी। रघुपति महिमा बहुबिधि बरनी'। (ख)—'गीध अधमखग' कहनेसे अधमोद्धारण संबन्ध लगगया। ☞ इससे उपदेश ग्रहण करनाचाहिए कि भक्त भूलकरभी कभी यह न समझे कि यह कार्य मेरी करनीसे हुआ, यह विचार उठा कि गिरा, भक्ति गई। देखिए जटायुमहात्माने अपनेको अधम जन्तु-भक्षक इत्यादि कहा और प्रभुके दर्शन एवं अपनी सबको ईर्ष्या करानेवाली सद्गतिकाभी कारण प्रभुकी कृपाही मानी और क्यों न मानते? ऐसा कहना उनके योग्यही था। यही नहीं यदि कभी कोई आपके पुरुषार्थकी प्रशंसा करे तो उसे अपना शत्रुही समझिए। दूसरा भक्तभी उसमें प्रभुकी करनी, और वत्सलता देखेगा। यही कारण है कि जटायुके भाई सम्पातीनेभी बन्धुकी करनीको 'रघुपति महिमा' कही और पूज्यकविभी इस गतिमें प्रभुकीही प्रभुता, कृपालुता आदि कहरहे हैं—'गतिदीन्ही' कहतेहैं, न कि 'सबरी गति पाई'।—(पूर्वभी इस विषयमें लिखाजाचुका है)।

'पुनि प्रभु गीध क्रिया जिमि कीन्ही' प्रसंग समाप्त हुआ।

'कबंध-वध'-प्रकरण

पुनि सीतहि षोजत द्वौ भाई।
चले बिलोकत बन बहुताई॥ §$\frac{३२}{२६}$ (४)
संकुल लता बिटप घन कानन।
बहु षग मृग तहँ गज पंचानन॥ ,, (५)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शब्दार्थ—बहुताई'=बहुतायत, अधिकता, सघनता। संकुल=घनी, परिपूर्ण, समूह।

अर्थ—फिर दोनों भाई सीताजीको ढूँढ़तेहुए चले वनकी बहुतायत और घनता देखतेजातेहैं। लताओं और वृक्षोंसे भरपूर वह वन सघन है, उसमें बहुतसे पक्षी, मृग, हाथी और सिंह हैं।

पु० र० कु०—१-'पुनि सीतहि खोजत दौ भाई...' इति। (क)—खोजतेसे प्रसंग छोड़ाथा, यथा—'एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी' वहींसे फिर प्रसंग उठाया। बीचमें गृद्ध्रराजके पास देर लगी। पुनः, उनसे सीताजीकी ख़बर मिलगई, अतः अब विरहमें कुछ बीच पड़ गया। कुछ कमी उसमें आगई। पहले 'खोजत' और 'बिलपत' दोनों बातें दिखाईं अब विलाप नहीं करते, केवल खोजतेहैं—यह विरहमें कमी जनारहाहै। (ख)—'चले बिलोकत बन बहुताई' से भी विरह की कमी सूचित होतीहै। कहाँ तो 'पूछत चले लता तरु पाती' अब उनसे पूछते नहीं अब उन्हें देखते जारहेहैं।

२—ख़बर तो मिलगई कि रावण लेगया पर यह न मालूम हुआ कि किस स्थानको लेगया, केवल दिशाका निश्चय हुआ, यथा—'लै दच्छिन दिसि गयउ गुसाईं' न जाने कहाँ छिपारखाहो। इसीसे कहतेहैं कि 'पुनि सीतहि खोजत०'। ३—'बन बहुताई' वही है जिसकी आगे व्याख्या है—'संकुलता०'।†

आवत पंथ कबंध निपाता।
तेहिं सब कही साप कै बाता॥ § ३२/२६ (६)
दुर्बासा मोहि दीन्ही सापा।
प्रभुपद पेषि मिटा सो पापा॥ ,, (७)

अर्थ—रास्तेमें आतेहुए कबन्धको मारा। उसने सब शापकी बात कही। मुझे दुर्वासाने शापदियाथा, प्रभुके चरण देखनेसे वह पाप मिटगया।

† यथा—तां दिशं दक्षिणां गत्वाशरचापासि धारिणौ। अविप्रहतमैक्ष्वाकौ पंथानं प्रतिपेदतुः॥२॥ गुल्मैर्वृक्षैश्च बहुभिर्लताभिश्च प्रवेष्टितम्। आवृतं सर्वतो दुर्गं गहनं घोर दर्शनम्॥ ३॥—(वा० स० ६९)। अर्थात् दोनों भाई दक्षिण दिशाकी ओर गए। वह मार्ग अनेक गुल्मों और लताओंसे भरा और घिराहुआथा देखनेमें भयानक और प्रवेश करनेमें कठिन था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'तेहि सब कही सापकै बाता'

किसी पुराणमें कथाहै कि दुर्वासा ऋषिका भयङ्कर स्वरूप देखकर कबंध अपने रूपसौंदर्य्यके अभिमानसे उनपर हँसाथा। कोई कहतेहैं कि इन्द्रसभामें नाचगान कररहाथा, दुर्वासाजीको देखकर हँसा उससे तालमें चूकगया तब मुनिने शाप दिया। और कोई कहतेहैं कि दुर्वासा इसके गानपर प्रसन्न न हुए तब यह उन्हें अनभिज्ञ कहकर हँसा इसपर मुनिने शाप दिया कि राक्षस होजा।

वाल्मीकि रा० में स्थूल-शिरा ऋषिका शापदेना कहाहै।—'ऋषीन्वनगतान्राम त्रासयामि ततस्ततः। ततः स्थूलशिरानामहर्षिः कोपितो-मया॥ सचिन्वन्विविधं वन्यं रूपेणानेन धर्षितः। तेनाहमुक्तः प्रेक्ष्यैवं घोरशापाभिधायिना॥४॥ एतदेवं नृशंसं ते रूपमस्तु विगर्हितम्।' (स० ७१) आनन्द रा० में मिलताजुलता यह श्लोक है—'रक्षो भवेति शप्तोहं मुनिना प्राह मां पुनः॥ छेत्स्यतस्ते महाबाहू तदाशापात् प्रमोक्ष्यसे'॥

(कथा)

जनस्थानसे तीनकोसपर क्रौञ्चवन है, यहाँसे तीनकोस पूर्वकी ओर जाकर क्रौञ्चवनको पारकरनेपर मतङ्गऋषिका आश्रम देख-पड़ताहै जो बड़े भयानक वनमें है। इस वनके बाद फिर एक गहनवन मिला उसमें कबन्ध रास्तेपर मिला।

वाल्मीकिजी लिखतेहैं कि वह नीलेमेघके समान भयानक था उसके न मस्तक था न गला ही, शरीरके रोएँ तीक्ष्ण थे, छातीमें एक भयानक आँख थी और चारकोस लम्बी भुजाएँ थीं। भयानक मुँह फैलाकर दोनों भाइयोंकी ओर वह खानेको लपका, त्योंही दोनोंने उसकी एक-एक भुजा कंधेसे काटकर अलग करदी। बाहुके कटनेपर वह पृथ्वीपर घोर शब्द करताहुआ गिरपड़ा और बड़ा दीन होकर पूछा कि आपलोग कौन हैं। परिचय देनेपर वह बहुत प्रसन्न हुआ। और अपना हाल लक्ष्मणजीसे यों कहा—

मैं इन्द्र, सूर्य्य और चन्द्रमाके समान सुन्दर अचिन्तनीय रूपवाला था, बड़ा पराक्रमी और महाबलवान् था। पर ऋषियोंको भयानकरूप धरकर डरवाया करताथा। अन्ततोगत्वा स्थूलशिरामुनि ने (जिनको मैंने फूल चुनते समय इस रूपसे डरवाया था) मुझे शाप देदिया कि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तेरा सदैव यही निन्दित रूप बनारहे। मेरी प्रार्थनापर उन्होंने शापानुग्रह यों किया कि जब रामचन्द्रजी तेरी भुजाएँ काटकर तुझे जलायंगे तब पुनः अपने असलीरूपको प्राप्त होगे। मैं दनुका पुत्र हूँ। २—मुनिके शापके पश्चात् मैंने तपकरके ब्रह्माजीसे दीर्घायु पाई तब इस अभिमानसे कि अब इन्द्र मेरा क्या करसकताहै, मैंने इन्द्रको ललकारा। उन्होंने ऐसा वज्र मारा कि मेरा मस्तक और जंघे शरीरमें घुसगए मैंने प्रार्थनाकी कि मेरा सिर मुख तो वज्रसे टूटगए मैं बिना खाए कैसे जीवित रहूँगा तब उन्होंने मुझे एक योजन लंबी भुजाएँ और मेरे पेटमें एक तीक्ष्णदाँतवाला मुँह मुझको दिए जिसके द्वारा मैं चारकोसतकके पशु-पक्षी आदिको पकड़कर खाजाताथा। जो भी सुन्दर पदार्थ देखनेमें आता उसे मैं इस विचारसे खींच लाता कि एक न एक दिन रामचन्द्रजीभी मेरी पकड़में आजावेंगे तब मेरा यह शरीर छूटेगा। अब आप मेरा अग्निसंस्कार सूर्य्यास्तके पूर्वही करदीजिए। शरीर जलतेही उसका दिव्य शरीर अग्निमेंसे प्रकट हुआ, हंसोंके रथपर तेजस्वी प्रकाशमय शरीरसे सुशोभित था। उसने शबरीजी और सुग्रीवका पता दिया।

पु० र० कु०—'प्रभुपद पेखि मिटा सो पापा' इति।—इससे जाना गया कि शाप और अनुग्रह दोनों कहे। मुनिने अनुग्रह किया कि रामदर्शन होगा, उससे पाप शाप मिटजायगा। शापरूपी पापका प्रायश्चित्त रामचरणदर्शन हुआ।

सुनु गंधर्ब कहौं मैं तोही।
मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही॥ § ३२/२६ (८)

मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव॥§२७

अर्थ—हे गन्धर्व! सुन, मैं तुझसे कहताहूँ। मुझे ब्राह्मणकुलसे वैर करनेवाला नहीं सुहाता। मन कर्म वचनसे कपट छोड़कर जो भूदेव (ब्राह्मणों) की सेवाकरताहै मुझ समेत ब्रह्मा शिव आदि सभी देवता उसके वश होजातेहैं।*

* "कर्मणा मनसा वाचा भूदेवं यस्तु सेवयेत्। सर्वेवशंगतास्तस्य देवा मरुद्गणाः सदा"॥—(र० ब० इसे हितोपदेशका लिखतेहैं)। पुनः, यथा—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु०-१ 'मोहि न सुहाइ ब्रह्मकुल द्रोही' अर्थात् हम ब्रह्मण्यदेव हैं, ब्राह्मणद्रोही हमारा द्रोही है। अतः, मैं तुम्हें वध करताहूँ। (ख) पुनः, भाव कि ब्राह्मणके वैरीका मैं वैरी हूँ और उनके भक्तका मैं भक्त हूँ; मैं और त्रिदेव सभी ब्राह्मणभक्तके वश रहतेहैं, यथा—'जौ बिप्रन्ह बस करहु नरेसा। तब तुव बस बिधि बिष्नु महेसा'। पर यहाँ दोहेमें बिरञ्चि और शिवका नाम दिया, विष्णुका नहीं, ऐसा करके अपनेमें और विष्णु और नारायणमें अभेद दर्शाया। (ग) 'जोकर' अर्थात् जाति वा वर्णाश्रमका नियम नहीं, कोई भी हो पर मनकर्मवचनसे कपट छोड़कर सेवा करे। कपटसे सेवा हो तो वह हमें नहीं वश कर सकता; क्योंकि 'मोहि कपट छल छिद्र न भावा' ब्राह्मणसे कपट करना भगवान्से कपट करनाहै क्योंकि वे भगवान्के रूप हैं, यथा—'मम मूरति महिदेवमई है'। (घ) मन कर्म वचन अर्थात् मनमें उनकी भक्ति रखे, तनसे सेवा करे, वचनसे मधुर बोले, स्तुति करे। स्वार्थकी चाह कपट है, यथा—'स्वारथ छल फल चारि बिहाई'। स्वार्थवश या दिखानेकेलिए न करे।

२—प्र०-भाव कि गंधर्व आदि देवताओंकी ब्राह्मण-अपमानसे यह दशा पहुँचजातीहै अन्य जीव किस गिनतीमें हैं, इसीसे जानलो कि ब्राह्मणद्रोही हमको नहीं भाता।

सापत ताडत परुष कहंता।
बिप्र पूज्य अस गावहि संता॥ § ३३/२७ (१)
पूजिअ बिप्र सील गुन हीना।
सूद्र न गुनगन ग्यान प्रबीना॥ ,, (२)

शब्दार्थ—'कहंता'=कहनेवाला।

अर्थ—सन्त ऐसा कहतेहैं कि शापदेताहुआ, मारताहुआ और कठोर वचन कहनेवाला ब्राह्मणभी पूज्य है। शील और गुणसे रहित ब्राह्मण पूजनीय है, गुणगण और ज्ञानमें निपुण शूद्र (पूजनीय) नहीं है।*

'किं तस्य दुर्लभतरमिहलोके परत्रच। यस्य विप्राः प्रसीदंति शिवोविष्णुश्च सानुगः॥' (भागवते चतुर्थे)—(पु० र० कु०)

* यथा भागवते—'विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः। घ्नंतं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः॥'—(स्कं० १०-६४।४१)। पुनः, 'पतितोऽपि द्विजः पूज्यो नार्च्यः शूद्रो महामतिः'—(शुक्रनीतिः)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु० १—कबन्धने पहले दुर्वासाका शाप देना कहाथा इसीसे प्रभुने शापसेही प्रारंभकिया। फिर ताड़ना और परुषवचन बोलना कहा। २—तीन बातें दोषकी कहीं उसपरभी विप्रको पूज्य कहा। तीनों बातें स्वयं अपने ऊपर बीतीं—नारदने शाप दिया और कठोर वचन कहे यथा—'मैं दुर्वचन कहे बहुतेरे' 'साप सीस धरि हरषि हिय प्रभु बहु बिनती कीन्ह'—(ब० § १३७) भृगुजीने लातमारी तो भी भगवान्ने उनकी प्रतिष्ठा ही की और मृगचरणचिन्ह आजदिन वक्षस्थलपर धारणकिए ब्राह्मणभक्तिका उदाहरण देरहेहैं। लात मारनेपर उलटे उनके पैर दबानेलगे कि चोट न लगी हो मेरी छाती कठोर है आपके चरण कोमल हैं। यथा—'उर मनिहार पदिककी सोभा। बिप्रचरन देखत मन लोभा'। परशुरामजी कटु वचन कहतेगए तबभी यही कहा कि 'छमहु बिप्र अपराध हमारे', 'कर कुठार आगे यह सीसा'॥

३ (क)—'पूजिय बिप्र सील गुन हीना...' यह कहकर जनाया कि ब्राह्मण जातिसे (जन्मसे) पूजनीय है और शूद्रजातिसे नहीं पूजनीय है। इन दोषोंसे वह अपूज्य नहीं होजाता और न उसे दोषी समझना चाहिए। गुण अर्थात् सम दम तप शौच आदि। (ख)—विप्रके संग क्षत्रिय वैश्यको न कहकर शूद्रकोही कहा। इसकाकारण यह है कि शीलगुणहीन होनेसे ब्राह्मण शूद्र-तुल्य है तथापि शूद्रको न पूजे पर शूद्रतुल्य ब्राह्मणको पूजे।

पं०रा०चं०शुक्ल—गोस्वामीजी कट्टर मर्यादावादी थे, यह पहले कहा जाचुकाहै मर्यादाका भंग वे लोककेलिए मंगलकारी नहीं समझतेथे। मर्यादाका उल्लंघन देखकरही बलरामजी वरासनपर बैठकर पुराण कहते हुए सूतपर हल लेकर दौड़ेथे। शूद्रोंके प्रति यदि धर्म और न्यायका पूर्णपालन किया जाय, तो गोस्वामीजी उनके कर्मको ऐसा कष्टप्रद नहीं समझतेथे कि उसे छोड़ना आवश्यक हो। यह पहले कहाजाचुकाहै कि वर्णविभाग केवल कर्मविभाग नहीं हैं, भावविभागभी है। श्रद्धा, भक्ति, दया, क्षमा आदि उदात्त वृत्तियोंके नियमित अनुष्ठान और अभ्यास केलिएभी वे समाजमें छोटी बड़ी श्रेणियोंका विधान आवश्यक समझतेथे। इन भावोंके लिए आलम्बन ढूँढ़ना एकदम व्यक्तिके ऊपरही नहीं छोड़ागयाथा। इनके आलम्बनोंकी प्रतिष्ठा समाजने करदीथी। समाजमें बहुतसे ऐसे अनुन्नत अन्तःकरणके प्राणी होतेहैं, जो इन आलम्बनोंको नहीं चुनसकते। अतः उन्हें स्थूलरूपसे यह बतादिया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गया कि अमुक वर्ग यह कार्य्य करताहै, अतः वह तुम्हारी दयाका पात्र है; अमुक वर्ग इस कार्य्यके लिए नियत है, अतः वह तुम्हारी श्रद्धाका पात्र है। यदि उच्च वर्गका कोई मनुष्य अपने धर्मसे च्युत है, तो उसकी विगर्हणा उसके शासन और उसके सुधारका भार राज्यके या उसके वर्गके ऊपर है, निम्न वर्गके लोगोंपर नहीं। अतः लोक-मर्य्यादाकी दृष्टिसे निम्नवर्गके लोगोंका धर्म यही है कि उसपर श्रद्धाका भाव रक्खें;न रख सकें तो कम-से-कम प्रकट करतेरहें। इसे गोस्वामी जीका Social discipline समझिए। इसी भावसे उन्होंने कहाहै—

पूजिय बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुनगन ग्यान प्रबीना॥

जिसे कुछ लोग उनका जातीय पक्षपात समझतेहैं। जातीय पक्ष-पातसे उस विरक्त महात्मासे क्या मतलब जो कहताहै—

'लोग कहैं पोचु सो न सोचु न सँकोचु मेरे।
ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौं॥'

काकभुशुण्डिकी जन्मान्तरवाली कथा द्वारा गोस्वामीजीने प्रकट करदियाहै कि लोकमर्य्यादा और शिष्टताके उल्लंघनको वे कितना बुरा समझतेथे।

श्रुतिप्रतिपादित लोकनीति और समाजके सुखका विधान करने-वाली शिष्टताके ऐसे भारी समर्थक होकर वे अशिष्ट सम्प्रदायोंकी उच्छृङ्खलता, बड़ोंके प्रति उनकी अवज्ञा चुपचाप कैसे देखसकतेथे।

ब्राह्मण और शूद्र, छोटे और बड़ेके बीच कैसा व्यवहार वे उचित समझतेथे यह चित्रकूटमें वसिष्ठ और निषादके मिलनेमें देखिए।—[अ० ३।२४२ (६) देखिए]। केवट अपनी छोटाईके विचारसे वशिष्ठ ऐसे ऋषीश्वरको दूरहीसे प्रणाम करताहै, पर ऋषि अपने हृदयकी उच्चताका परिचय देकर उसे बारबार गले लगातेहैं। वह हटताजाताहै, वे उसे बरबस भेंटतेहैं। इस उच्चतासे किस नीचको द्वेष होसकताहै? यह उच्चता किसे खलनेवाली होसकती है?

कहि निज धर्म ताहि समुझावा।
निज पद प्रीति देषि मन भावा॥ § ३३/२७ (३)
रघुपतिचरन-कमल सिरु नाई।
गएउ गगन आपनि गति पाई॥ ,, (४)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शब्दार्थ—'निज'=प्रधान, मुख्य, सच्चा, विशेष।

अर्थ—अपना खास धर्म कहकर उसे समझाया। अपने चरणोंमें उसका प्रेम देखकर मनको भाया अर्थात् उसपर प्रसन्नहुए। रघुनाथजीके चरणोंमें माथा नवाकर,अपनी गति पाकर वह आकाशको गया।

पु० र० कु०—१—'निजधर्म'=ब्रह्मण्यधर्म, द्विजभक्ति। २—'निज पद प्रीति देखि।' ब्राह्मणभक्तिका फल हरिपदप्रीति है; यथा—'भूत दया द्विज गुर सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई॥ जहँलगि साधन बेद बखानी। सबकर फल हरि भगति भवानी'। जब ब्राह्मणधर्म कहकर समझाया तब तत्क्षण रामपदप्रीति उत्पन्न होगई। उपदेशका फल तुरत लगाहुआ देख प्रसन्न हुए, अतः 'मनभावा' कहा। यथा—'सबके बचन प्रेमरससाने। सुनि रघुनाथ हृदय हरषाने'।*

३—'रघुपतिचरनकमल सिरु नाई।००' इति। (क) धर्मोपदेश सुननेके पश्चात् चरणोंमें माथा नवाया अब स्वर्गको जारहाहै। (ख)—चरणदर्शनसे पाप मिटा, यथा—'प्रभुपद पेषि मिटा सो पापा',तब प्रभुके चरणोंमें प्रीति हुई, यथा—'निजपद प्रीति देखि मन भावा'। अतः चरणोंको माथा नवाकर स्वर्गको चला। अथवा, (ग)—प्रथम पाप मिटा तब धर्मकी प्राप्ति हुई, यथा—'कहि निज धर्म ताहि समुझावा'। धर्मका फल है—रामचरणानुराग सो प्राप्त हुआ, यथा, 'जपजोग धर्म समूह ते नर भगति अनुपम पावई'। तब चरणोंमें माथा नवांया कि इन चरणोंकी प्राप्ति मेरे हृदयमें सदा रहे।

४—'आपनि गति' अर्थात् पूर्व गन्धर्व था वही गन्धर्व होगया। गोस्वामीजीके वचन बड़े सँभालके हैं। वाल्मीकिजी पूर्वरूप होना और कोई गन्धर्व रूप होना कहतेहैं और अध्यात्ममें परमपद पाना कहाहै—'याहि मे परमं स्थानं योगिगम्य सनातनम्। इत्युक्तो राघवं नत्वा विष्णोः पदमगात्पुनः'। अतः 'आपनि गति' कहा।

'वधि कबंध'-प्रसंग समाप्त हुआ

* प्र०—'अथवा,वर्णाश्रम धर्म कि छोटेको बड़ेकी बराबरी न करनाचाहिए वा, निज निश्चित तत्व'। पर यहाँ प्रसङ्ग 'ब्राह्मण पूज्य हैं इसी धर्म' का है और प्रभुने इस धर्मका पालन स्वयं करके दिखायाहै अतः यह उनका निजधर्म है; ब्रह्मण्यदेव कहलातेभी हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"सबरी गति दीन्ही"-प्रकरण

ताहि देइ गति राम उदारा।
सबरी के आश्रम पगु धारा॥ §$\frac{३३}{२७}$ (५)

अर्थ-उदार रामजी उसको गति देकर शबरीजीके आश्रमको पधारे।

पु० र० कु०—१ विराध, शरभंग, खरदूषणादि १४ सहस्र राक्षसोंको, मारीच, गीधराज और कबन्धको इतनोंको गतिदेते चले-आरहेहैं और अब शबरीजीको गति देनेजारहेहैं अर्थात् खोजखोजकर गति देतेहैं अतः 'उदार' विशेषण दिया। यथा—'देखि दुखी निज धाम पठावा'—(विराध), 'रामकृपा बैकुण्ठ सिधारा'—(शरभंग), 'रामराम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान'—(खरदूषणादि), 'मुनिदुर्लभ गति दीन्हि सुजाना'—(मारीच), 'अबिरलभगति माँगि बर गीध गयउ हरिधाम'; और 'गयउ गगन आपनि गति पाई'। शबरी गति, यथा—'तजि जोगपावक देह हरिपद लीन भइ जहँ नहिं फिरे'।

२—'पगु धारा'=पधारे। यह मुहावरा आदर सूचित करताहै, इसका प्रयोग मानसमें बड़े लोगों (गुरुजनों) के आगमनके समय कियागयाहै यथा—'सब समेत पुर धारिय पाऊ' (अ०§ २४७), 'पुर पगु धारिय देइ असीसा' (अ० § ३१८), 'धन्य भूमि बन पंथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाउँ तुम्ह धारा' (अ० § १३५), इत्यादि। तथा यहाँ 'सबरीके आश्रम पगु धारा'।

३—आश्रम मुनियोंके, भगवद्भक्तोंके स्थानको कहतेहैं। शबरीजी परम भागवता हैं, यथा—'सकल प्रकार भक्ति दृढ़ तोरे'। अतएव सभी वक्तालोग शबरीजीके निवासस्थानको 'आश्रम' कहरहेहैं। और, सबरीजी अपनेको अधम, कुजाति आदि समझती और कहतीहैं, अपनी कुटीको घर कहतीहैं जैसे कोलकिरातोंके घर वनमें होतेहैं तोभी वे कुटी या आश्रम नहीं कहलाते वैसेही ये अपनी कुटीको मानतीहैं।

नोट—यह मान शबरीजीको वाल्मीकि और अध्यात्म रामायणमें भी दियागयाहै, यथा—'अपश्यतां ततस्तत्र शबर्या रम्यमाश्रमम्'—(वा० ७४), 'शनैरथाश्रमपदं शबर्या रघुनन्दनः'। यह आश्रमभी श्रीम-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तङ्गऋषिके आश्रममेंही जानपड़ता या उन्हींका आश्रम है जिसमें अब शबरीजी रहरही हैं जैसा कबन्धके वचनसे सिद्ध होताहै। यथा—'तेषां गतानामद्यापि दृश्यते परिचारिणी। श्रमणी शबरी नाम काकुत्स्थ चिरजीविन ॥ त्वांतु धर्मे स्थिता नित्यं सर्वभूतनमस्कृतम्। दृष्ट्वा देवोपमं राम स्वर्गलोकं गमिष्यति'।

सबरी देषि राम गृह आए।
मुनि के बचन समुझि जिय भाए ॥ § ३३/२७ (६)
सरसिज लोचन बाहु बिसाला।
जटा मुकुट सिर उर बनमाला ॥ ,, (७)
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई।
सबरी परी चरन लपटाई ॥ ,, (८)
प्रेम मगन मुष बचन न आवा।
पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा ॥ ,, (९)

शब्दार्थ—'जिय भाए'=मन प्रसन्न होगया, यथा—'निजपद प्रीति देखि मन भाए' 'समुझि'—विचारकर, यादकरके।

अर्थ—रामजीको घरमें आएहुए देख मुनिके वचन स्मरणकर शबरीजी मनमें प्रसन्न हुईं'। कमलनयन, विशालभुज (आजानुबाहु), सिरपर जटाओंका मुकुट और हृदय (वक्षस्थल) पर वनमाला धारणकिएहुए सुन्दर साँवले और गोरे दोनों भाइयोंके चरणोंमें लपट पड़ीं। प्रेममें डूबी हैं, मुँहसे वचन नहीं निकलता, बारबार चरणकमलोंपर सिर नवारहीहैं।

पु० र० कु० १—'मुनिके बचन समुझि जिय भाये'। श्रीमतङ्गजीने कहाथा कि तुम इसी आश्रममें रहो तुम्हें रामदर्शन होगा उन्हीं वचनोंका स्मरणकरके कृतकृत्यहोरहीहैं, रामजीका आगमन अपने पुण्यप्रभावसे नहीं मान रहीहैं, सोचतीहैं कि मेरे ऐसे पुण्य कहाँ! यह तो मुनिके आशीर्वचनका प्रभाव है। *

* अद्य प्राप्ता तपः सिद्धिस्तव संदर्शनान्मया। अद्य मे सफलं जन्म गुरवश्च सु जिताः॥ अद्य मे सफलं तपः तं स्वर्गश्चैव भविष्यति। त्वयि देववरे राम पूजिते पुरुषर्षभ ॥ तवाहं चक्षुषा सौम्य पूता सौम्येन मानद। गमिष्याम्यक्षयाँल्लोकांस्त्वत्प्रसादादरिन्दम ॥ चित्रकूटं त्वयि प्राप्ते विमानैरतुलप्रभैः। इतस्ते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—'सरसिज लोचन बाहु बिसाला...' इति।—प्रभुने शबरीजीको शृङ्गाररूपसे दर्शन दिए। विश्वामित्रजीके साथ जातेसमय वीररूप-कहा और विभीषणजीके मिलापमेंभी वीररूपकहा—इनदोनोंमें वीररूप काही काम था क्योंकि दोनों शत्रुओंसे पीड़ित हैं। स्त्रियोंको शृङ्गार-रूपकीही भावना प्रायः रहतीहै अतः यहाँ शृङ्गाररूप कहागया।—[लोचनसे शृङ्गार जब शुरू होताहै तो वह शृङ्गार भावना जरूर सूचित करताहै।—(दीनजी)]

३—'सबरी परी चरन लपटाई'। प्रेमकी विह्वलतासे चरणोंमें लपटना कहा। यथा—'जाइ जननि उर पुनि लपटानी'—(पार्वती), 'बहु बिधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी॥' (कौसल्या); तथा यहाँ सबरी परी चरन लपटाई'।

४—'प्रेम मगन मुख बचन न आवा...' 'प्रेम मगन' यह मनकी दशा है, 'वचन न आवा' वचन और 'पुनि पुनि पदसरोज सिरनावा' यह तनकी दशा है। मन वचन कर्म तीनोंसे प्रममें डूबीहुईहैं। (ख) 'पुनि पुनि सिरनावा' यह प्रेमके मारे, यथा—'देखि रामछबि अति अनुरागी। प्रेम बिबस पुनिपुनि पगलागी'-'तब मुनि हृदय धीरधरि गहिपद बारहि बार', 'बारबार नावइ पदसीसा। प्रभुहि...'। (ग) ये सब प्रेमकी दशाएँ हैं, यथा—'कोउ कछु कहइ न कोउ कछु पूछा। प्रेमभरा जल निज गति छूछा'—(प्र०)।

खर्रा-'उर बनमाला'। वनमालामें तुलसीभी होतीहै, यथा—'सुंदर पटपीत बिसद भ्राजत बनमाल उरसि तुलसिका प्रसून रचित बिबिध

दिवमारूढा यान्हं पर्यचारिषम्॥ तैश्चाहमुक्ता धर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभिः। आगमिष्यति ते रामः सुपुण्यमिममाश्रमम्॥ सते प्रतिग्रहीतव्यः सौमित्रिसहितोऽतिथिः। तंच दृष्ट्वा वरांल्लोकानक्षयांस्त्वं गमिष्यसि॥ एवमुक्ता महाभागैस्तदाहं पुरुषर्षभ। मया तु संचितं वन्यं विविधं पुरुषर्षभ'—(वा० स० ७४)। ये वचन शबरीजीके रामप्रति हैं। इनसे मतङ्गजीकी परधामयात्रा रामजीके चित्रकूटमें आनेपर होना सिद्ध होतीहै। वे कहगएथे कि तुम्हारे इस पुण्याश्रममें रामचन्द्रजी भ्रातासहित आवेंगे, तुम दोनोंका अतिथि-सत्कार करना; उनके दर्शन पाकर तुम अक्षय श्रेष्ठलोकको प्राप्त होगी। उसी दिनसे आपकी प्रतीक्षामें पंपासरके तीरके अनेक प्रकारके जंगली फल संचित करकर रखनेलगीथी।

टीकाकारोंने दसहज़ारवर्ष पूर्वही ऋषिका परलोकगमन लिखाहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बिधि बनाई'—(गी०), इसके पूर्व कहीं वनमालाका नहीं वर्णन किया गया। जानपड़ताहै कि मुनियोंने पहनायाहै। इसे दिखाकर सबरीजीको जनातेहैं कि तुम सोच न करो, हमने तो दैत्य (जलंधर) की स्त्रीको पावनकरके धारण कियाहै (फिर तुम्हें क्यों न धारण करेंगे) यहाँके ध्यानमें धनुष बाण आदि नहीं कहेगए क्योंकि सबरी वीररसकी उपासक नहीं है।—(गीतावलीसे स्पष्ट है कि सबरीजी वात्सल्यरसकी उपासक थीं। यथा—'सो जननि ज्यों आदरी सानुज राम भूखे भायके॥', 'अति प्रीति मानस राखि रामहि रामधामहिं सो गई। तेहि मातु ज्यों रघुनाथ अपने हाथ जलअंजलि दई॥'—(आ० पद १७)। 'वनमाला' यथा—'तुलसी कुंद मंदार पारिजात सरोरुह। पंचभिर्गथितं माला वनमाला विभूषितः'॥ दोहा—'तुलसी अरु मंदार पुनि पारिजात एक होय। कुन्द कमल ग्रंथित जहाँ बनमाला कहि सोय'।

सादर जल लै चरन पषारे।
पुनि सुंदर आसन बैठारे॥ §$\frac{३३}{२७}$ (१०)

कंदमूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु षाए बारंबार बषानि॥ § $\frac{३४}{२८}$

अर्थ—आदरपूर्वक जल लाकर (दोनोंके) चरण धोए, फिर सुन्दर आसनपर उनको बिठाया। अत्यन्त रसीले और स्वादिष्ट कन्दमूल फल लाकर रामजीको दिए। प्रभुने बारम्बार उनकी प्रशंसा करतेहुए प्रेमपूर्वक उन्हें खाया।

पु० र० कु०—१—चरण-प्रक्षालन आदि खड़ेका व्यवहार है। २—'सुन्दर आसन'—पुष्प आदिका वा और पवित्र सुन्दर आसन। ३—'कंदमूल फल सुरस अति०'। 'सुरस अति' का भाव कि सरस तो सभी मुनियोंके कन्दमूल फल रहे पर इनके अत्यन्त सुरस हैं, इससे इनके प्रेमको भी अति सरस जनाया यथा—'जानत प्रीति रीति रघुराई। नाते सब हाते करि राखत राम सनेह सगाई॥ घर गुरु गृह प्रिय सदन सासुरे भइ जब जब पहुनाई। तब तब कहि सबरी के फलन की रुचि माधुरी न पाई।' इति विनये। जो रस इनमें है उसके जानकार भी प्रभु ही थे। इसीलिए ऋषियोंके फलोंका बखान न करके शबरीके ही फलोंकी प्रशंसा सर्वत्र कीहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

४—प्रेम सहित प्रभु खाये बारंबार बखानि'। भाव कि फलों की मिठाई प्रधान नहीं है, प्रधान है यहाँ प्रेमकी मिठाई जो फलोंमें आगई है। 'बारंबार' अर्थात् जितने बार मुखमें ग्रास लेतेहैं, कमसेकम उतनी बार तो अवश्यही प्रशंसा करतेहैं। भोजनकी प्रशंसा करनेका निषेध भारतमें कियागया है? पर यहाँ तो प्रेम है, प्रेममें नेम नहीं रहजाता। अथवा, यहाँ इसीसे 'प्रभु' पद दिया कि वे तो समर्थ हैं और 'समरथ कहँ नहिं दोष गोसाईं"। वे ईश्वर हैं, दोष जीवोंकेलिए है। शबरीके फल की प्रशंसा अवध मिथिलामेंभी की, यथा—'घर गुरु गृह प्रिय सदन सासुरे०', क्योंकि यहाँ प्रेमहीप्रेम है।

३—खर्रा—कुछ महात्माओंका मत है कि लक्ष्मणजीने फल नहीं खाए और यहाँ भी कुछ स्पष्ट नहीं लिखाहै कि लक्ष्मणजीनेभी खाए। अन्य स्थानोंमें खानेका स्पष्ट उल्लेख कियाहै। यथा—(क) निषादराजके यहाँ "सिय सुमंत्र भ्राता सहित कन्दमूल फल खाइ'। (ख) भरद्वाज मुनिके यहाँ 'सीय लषन जन सहित सोहाये। अति रुचि राम मूल फल षाये' और (ग) वाल्मीकिजीके यहाँभी 'सिय सौमित्रि राम फल खाए' स्पष्ट लिखागया। यहाँ स्पष्ट न लिखनेका कारण यह है कि अध्यात्ममें लक्ष्मणजीका १२ वर्ष भोजन न करना कहाहै। परन्तु गीतावलीमें दोनोंका खाना लिखाहै।—'केहि रुचि केहि छुधा सानुज माँगि माँगि प्रभु खात। बालक सुमित्रा कौसिलाके पाहुने फल साग के। सुनु समुझु तुलसी जानु रामहिं बस अमल अनुरागके॥ गीतावली का यह पूरा पद (२१६) पढ़ने योग्यहै।*

* "सबरी सोइ उठी फरकत बाम बिलोचन बाहू। सगुन सुहावने सूचत मुनि मन अगम उछाहु॥ मुनि आगमन उर आनंद लोचन सचल तनु पुलकावली। तृनपर्नसाल बनाइ जल भरि कलस फल चाहन चली॥ मंजुल मनोरथ करति सुमिरति बिप्र बर बानी भली। ज्यों कल्पबेलि सकेलि सुकृत सुफूल फूली सुखफली॥ १॥ प्रानप्रिय पाहुने ऐहैं राम लषन मेरे आजु। जानत जन जिय की मृदु चित राम गरीबनिवाजु॥ मृदु चित गरीबनिवाज आजु बिराजिहैं गृह आइकै। ब्रह्मादि संकर गौरि पूजित पूजिहौं अब जाइकै॥" लहि नाथ हौ रघुनाथ बानो पतित पावन पाइकै॥ दुहुँ ओर लाहु अघाइ तुलसी तीसरेहु गुन गाइकै॥ २॥ दोना रुचिर रचे पूरन कंद मूल फल फूल। अनुपम अमियहु तें अंबक अवलोकत अनुकूल॥ अनुकूल अंबक अंब ज्यों निज डिंभ हित सब आनि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाल्मीकि अध्यात्म और मानसमें कहीं जूठे फलोंका खाना नहीं लिखाहै, पर भक्तमालमें जूठे फलका खाना कहाहै, यथा—"ल्यावै बन बेर लागी रामकी औसेर फल चाखे धरि राखे फिरि मीठे उन्हीं योग हैं। मारगमें रहे जाइ लोचन बिछाइ कभू आवें रघुराई दृग पावें निज भोग हैं।'—(भक्तिरसबोधिनी टीका क० ३५)। कुछलोगों का मत है कि वृक्षका एक बेर लेकर चखतीथी यदि वह मीठा होता

कै। सुन्दर सनेह सुधा सहस जनु सरस राखे सानि कै॥ छन भवन छन बाहर बिलोकत पंथ भूपर पानि कै। दोउ भाइ आये सबरिका के प्रेमपन पहिचानि कै॥३॥ स्रवन सुनत चली आवत देखि लषन रघुराउ। सिथिल सनेह कहे, है सपना विधि कैधों सतिभाउ॥ सति भाउ कै सपनो? निहारि कुमार कोसल-राय के। गहे चरन जे अघहरन नतजन बचनमानसकायके॥ लघुभागभाजन उदधि उमग्यो लाभसुख चित चाय कै। सो जननि ज्यों आदरी सानुज राम भूखे भाय के॥ ४॥ प्रेम पट पाँवड़े देत सुअरघ बिलोचन बारि। आस्रमलै दिए आसन पंकज पायँ पखारि॥ पदपंकजात पखारि पूजे पन्थस्रम विरहित भये। फलफूल अंकुर मूल धरे सुधारि भरि दोना नये॥ प्रभुखात पुलकित गात स्वाद सराहि आदर जनु जये। फल चारिहू फल चारि दहि परचारि फल सबरी दये॥ ५॥

सुमन बरषि हरषे सुर, मुनि मुदित सराहि सिहात। केहि रुचि केहि सुधा सानुज माँगि माँगि प्रभु खात॥ प्रभु खात मांगत देत सबरी राम भोगी जागके। पुलकत प्रसंसत सिद्ध सिव सनकादि भाजन भागके॥ बालक सुमित्रा कौसिला के पाहुने फल सागके। सुनु समुझि तुलसी जानु रामहि बस अमल अनुराग के॥ ६॥ रघुबर अँचइ उठे सबरी करि प्रनाम कर जोरिहौं। बलि बलि गई पुरई मंजु मनोरथ मोरि॥ पुरई मनोरथ स्वारथहु परमारथहु पूरन करी। अघ अवगुनन्हि कीं कोठरी करि कृपा मुद मंगल भरी॥ तापस किरातिनि कोल मृदु मूरति मनोहर मन धरी। सिर नाइ आयसु पाइ गवने परमनिधि पाले परी॥ ७॥

सिय सुधि सब कही नखसिख निरखि २ दोउ भाइ। दै दै प्रदच्छिना करति प्रनाम न प्रेम अघाइ॥ अति प्रीति मानस राखि रामहि रामधामहि सो गई। तेहि मातु ज्यों रघुनाथ अपने हाथ जल अंजलि दई॥ तुलसी भनित सबरी प्रनति रघुबर प्रकृति करुनामई। गावत सुनत समुझत भगति हिय होय प्रभुपद नित नई॥ ८॥"

—(गी० १७)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तो उसीके बेर लेकर रखलेतीथी और वही प्रभुको खिलाए। जूठेमें यह आपत्ति है कि मर्यादा पुरुषोत्तम ऐसा न करते। यह कहनाभी उचितही है पर साथही यह भी है कि शबरीजी इनको राजकुमार नहीं समझतीथीं, भगवान्‌ही समझतीथी—यह सभी रामायणोंसे सिद्धहैं और भगवान प्रेमके भूखे हैं, उनके लिए क्या जूठा क्या अनूठा। प्रेमी ही इस बातको समझ सकताहै दूसरा नहीं। दूसरे इसका उत्तर क्या है कि "जिस हाथसे बेर खाया, उसी जूठे हाथसे फिर तोड़े तब वे फल भगवान्‌के योग्य रहे? क्या वे भी जूठे नहीं तो अनूठे कहलायँगे 'क्या शबरी बार २ वनमें हाथ धोनेकेलिए जललिए रहतीथी? कदापि नहीं'—इस प्रश्नका उत्तर प्रेमियोंको क्या दियाजायगा हमारे समझमें नहीं आता। यह कहनापड़ताहै कि यह (प्रेम) गली कुछ और ही है। आजभी जहाँ कट्टर कर्मकाण्डी उपासक भगवान्‌को विना चखे भोग लगातेहैं वहाँ हम देखतेहैं कि प्रेमी विना चखे कभी प्रभुको कोई पदार्थ अर्पण नहीं करते यद्यपि लोक व्यवहारमें तो किंचितभी चखलेनेसे वह पदार्थ भगवान्‌के योग्य नहीं समझाजाता। प्रेम-पंथमें अधर्म भी धर्ममें गिनाजाताहै जैसे वसुदेवजीने कंससे प्रतिज्ञा कीथी कि सब लड़के दे देंगे पर प्रतिज्ञा छोड़ नन्दजीके यहाँ कृष्णजीको पहुँचादिया। यह अधर्मभी धर्मही मानाजायगा। पद्मपुराणमें लिखाहै कि शबरी बेरोंकी परीक्षा लेकर मीठे बेर रखतीथी।

प्रमाण यथा—"प्रम्नावशिष्टमुच्छिष्ट भुक्त्वा फल चतुष्टयम्।
कृतारामेण भक्तानां शबरी कबरी मणिः॥" इति प्रेमपक्षने
"फलमूलंसमादाय परीक्ष्य परिभक्ष्य च।
पश्चान्निवेदयामास राघवाय महात्मने॥" इति पद्मपुराणे

अर्थात् प्रेमसे अवशिष्ट जूठे चार फलोंको भोजन करके श्रीरघुनाथजीने शबरीको भक्तोंकी चूड़ामणि बनादी॥१॥ फल और मूल लाकर और खाकर उनकी परीक्षा करके तदनन्तर रघुपतिजीको निवेदन किया।

गोस्वामीजी इस ग्रन्थमें सब ऋषियोंकी मर्यादा सर्वत्र रखतेचले आयेहैं। इससे उन्होंने इस विषयमें 'सुरस' पद देकर जूठेकाभी भाव गुप्तरीतिसे दरसादियाहै। प्रभुमें सबरीजीका वात्सल्य भाव था जैसा गीतावलीसे स्पष्ट है। इस भावसे तो जूठे फल खिलानेमें कोई

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आपत्तिही नहीं रहजाती। फिर आगे प्रभु स्वयं उससे कहतेहैं कि मैं तो केवल भक्तिका नाता मानताहूँ, मुझे जाति-पाँति से किसीके सरोकार नहीं है।

पानि जोरि आगे भइ ठाढी।
प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढी॥ § ३४/२८ (१)
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी।
अधम जाति मैं जड मति भारी॥ ,, (२)
अधम ते अधम अधम अति नारी।
तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी॥ ,, (३)

अर्थ—हाथ जोड़कर आगे खड़ीहुई। प्रभुको देखकर प्रेम अत्यन्त बढ़गया। मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ। मैं अधम जातिकी हूँ; बड़ीही जड़बुद्धि (मूढ़) हूँ। स्त्री अधमसे अधममेंभी अत्यन्त अधम होतीहै, उनमेंभी, हे पापकेशत्रु! मैं मन्दबुद्धि हूँ।

पु०र०कु०—१—'पानिजोरि आगे भइठाढी।००'।—(क) खड़ी हुई से जनाया कि बैठे २ खिलारही थी जब वे भोजन करचुके तब हाथ जोड़कर खड़ीहुई। अब तक चित्तकी वृत्ति पूजा करने, भोजन कराने-में लगीरही। (ख) प्रभुको देखकर प्रीति अत्यन्त बढ़ी अर्थात् बढ़ी तो पूर्वसेही अब चित्तकी वृत्ति केवल दर्शनमें लगी इससे वह प्रीति बहुत बढ़गई। पुनः, भाव कि शबरी नहीं खड़ीहुई वरन प्रभुको देखकर मानों मूर्त्तिमान प्रीति आकर बढ़ीहै (बढ़ आई है)। (ग) पूजाके बाद स्तुति चाहिए उसपर कहतीहैं कि किस प्रकार करूँ? स्तुति करनेकी सामर्थ्य विद्या पढ़नेसे होतीहै और मैं अधम हूँ विद्या पढ़नेका मुझे अधिकार नहीं और बुद्धि जड़ ही नहीं किन्तु भारी जड़ है। [नोट—भाव कि आप अपनी कृपासेही प्रसन्न हों, यथा, अध्यात्मे—'स्तोतं न जाने देवेश किं करोमि प्रसीद मे'। २—प्र० —ब्रह्मादिक समर्थ नहीं तब मैं तो अवगुणोसे भरी हुई कैसे स्तुति करनेको समर्थ हो सकूँ।] 'भारी जड़' का भाव कि प्रायः स्त्रियोंकी बुद्धि जड़ होतीहै, यथा—'अबला अबल सहज जड़ जाती' और मेरी सबसे अधिक जड़बुद्धि है और मैं भारी जड़ हूँ।

२—'अधम ते अधम २ अति नारी।००' इति। (क) जातिसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अधम पहले कहचुकीं। भीलकी जाति अधम कहीगई है, यथा—'जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोलकलवारा'—(उ० ९९) अब कहतीहैं कि मैं अधमसे भी अधम हूँ अर्थात् अपनी जातिमें भी भ्रष्ट हूँ, यथा:—'जातिहीन अघजन्म महि०'। पुनः, (ख)—स्त्री हूँ अतः अति अधम हूँ। 'अति' का आशय यह कि स्त्रियाँ स्वभावसे अधम मानीजाती हैं, मैं सबस्त्रियों में बढ़कर अधम हूँ, स्त्री मंद मैं अति मंद।—('अति मंद' पाठ पं० रामकुमारजीने रखा है और काशीकी प्रतिमें भी है)।—उत्तरोत्तर अपकर्ष वर्णन सार अलंकार है।

३—'अघारी'=अघके शत्रु, पापके नाशकरनेवाले। भावकि मैं पापिनि हूँ और आप पापके नाशक एवम् निष्पाप हैं, यथा—'मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन पाहि २ सरनहि आई'—(अहल्या वाक्य)। मैं आपके सामने होने योग्य नहीं हूँ पर आपका जगपावन गुण समझकर शरण हूँ मेरी रक्षा कीजिए।

खर्रा—'अधम ते अधम०'। १—ब्राह्मणकी अपेक्षा-क्षत्रिय, क्षत्रियकी अपेक्षा वैश्य और वैश्यकी अपेक्षा शूद्र अधम है। शूद्र और नारी एक समान हैं इससे दोनोंको समीपही कहा। उन स्त्रियोंमेंभी मैं अति मन्द हूँ। वा, २—ब्राह्मणकी स्त्री शूद्र तुल्य, क्षत्रियकी उससे अधम और इससे वैश्यकी और शूद्रकी सबसे अधम और मेरी जाति तो वर्णसंकर है अतएव मैं 'अति अधम' हूँ।*

भगवान्‌के नाम, रूप, लीला, धाम सभी अघनाशक हैं, यथा—'जासु नाम पावक अघतूला', 'सनमुख होइ जीव मोहि जबही। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं', 'मन क्रम बचन जनित अघ जाई। जो यहि सुनै श्रवण मन लाई' और 'देखत पुरी अखिल अघ भागा'।

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता।
मानौं एक भगति कर नाता॥ § ३४/२८ (४)

* वन्दनपाठकजी—यथा—"आभीराः कुर्म्मणोलोध्राः कैवर्त्ता नापितास्तथा। पंच शूद्राः प्रशंस्यंते षष्ठोपि द्विजसेवकः॥ १॥ रजकः चर्मकारश्च नटो कुरट एवच। कैवर्त्तमेदभिल्लाश्च सप्तैतेह्यन्तजाः स्मृताः॥ २॥ ब्राह्मणात्क्षत्रियाचीचाः क्षत्र्यात्वैश्यास्ततौड्रिजाः। सप्तान्त्यजा नीचाः न नीचो यवनात्परः॥ ३॥" इति पाराशरी स्मृतिः॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जाति पाँति कुल धर्म बडाई।
धन बल परिजन गुन चतुराई॥ § ३४/२८ (५)
भगतिहीन नर सोहै कैसा।
बिनु जल बारिद देषिअ जैसा॥ ,, (६)

शब्दार्थ—पाँति=पङ्क्ति; एक साथ भोजन करनेवाले बिरादरीके लोग; परिवारसमूह, यथा—'मेरे जाति पाँति न चहौं काहूकी जाति पाँति मेरे कोऊ कामको न हौं काहूके कामको'—(क०)।

अर्थ—रघुनाथजी बोले-हे भामिनि। बात सुनो। मैं एक भक्तिका ही सम्बन्ध मानताहूँ। जातिपाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण, चतुरता, इनके होतेहुएभी भक्तिसेरहित मनुष्य कैसा सोहताहै जैसा बिना जलका मेघ (शोभाहीन) देखपड़ताहै।

पु० र० कु०—१—'मानौं एक भगति कर नाता' अर्थात् भक्ति छोड़ मैं और कोईभी नाता नहीं मानता। यथा—'जागत प्रीति रीति रघुराई। नाते सब हाते करि राखत राम सनेह सगाई'—(विनय)। कौन नाते हैं जिनको नहीं मानते? प्रभु स्वयं आगे उन्हें गिनातेहैं † 'जाति पाँति००'।

† रा० ब०—शांडिल्यसूत्रे १ दृष्टत्वाच्च। अर्थ—प्रत्यक्ष देखनेमेंभी भक्तिही मुख्य प्रतीत होतीहै। संसारमें ऐसे बहुतसे प्रत्यक्ष उदाहरण दिखरहेहैं जिनमें भक्तिहीका नितान्त प्राधान्य अनुमित होताहै ज्ञानादिका प्रधानता पूर्णतः नहीं पाईजाती। जैसे पूर्णज्ञानके अतिरिक्तभी कौमारावस्थामें ध्रुवजीको परमेश्वरकी प्राप्ति हुई, इसमें केवल दृढ़प्रेमरूपाभक्तिही कारण थी। इसीभांति अनेक भक्तों को पूर्ण ज्ञानके बिना भी केवल दृढ़ प्रेमरूपा भक्तिसे ईश्वरकी प्राप्ति हुई, देखो व्याध कौनसा ज्ञानवान् था? वाल्मीकिजी पहले कौनसे विज्ञानी थे? ये सब पूर्व के दृष्टान्त हैं। इसके पश्चात् थोड़े दिनके प्रसिद्ध भक्त रैदासजी, कर्माबाईजी, सदनजी, धनाजी, नामदेवजी आदि अनेक भक्तहुए उनमें कौनसे विद्यावान् अथवा ज्ञानी थे? इसमें विद्या ज्ञानादि कुछभी नहीं। उच्चनीच किसीभी जातिमें हो, पर जिसने दृढ़ प्रेमसे ईश्वरकी भक्तिकीहै उसको ईश्वरकीप्राप्ति हुईहै। वर्तमान समयमेंभी अनुसन्धान करनेसे ऐसे भक्त मिलतेहैं कि विद्या या ज्ञान या शौचाचार रखते हों या नहीं, पर परमेश्वरकी पराभक्तिमें सदा निष्ठ रहनेसे ईश्वरभक्ति सुलभ होजातीहै इसमें सन्देह नहीं—अन्यच "भक्त्या तुष्यति केवलं न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—'जाति पाँति कुल धरम बड़ाई ।००' इति । शबरीजीने अपनेको 'अधम जाति' कहा अतः नाता तोड़नेमें पहले जातिका नाताही कहा । *—[खर्रा—जाति आदि खाली मेघवाली शीतल छाया है । ये लोक सुख देनेवालेहैं । मेघ दूर हुए कि तीक्ष्ण घामसे व्याकुल हुए । वैसेही शरीर छूटनेपर भक्तिहीनको यमदण्ड व्याकुल करताहै ।]

३—'भगतहीन नर सोहइ कैसा ।००' इति । (क) उपरोक्त दसों नाते वा गुण बिना जलवाले बादलहैं । भक्ति जल है, यथा—'राम भगति जल बिनु रघुराई । अभ्यन्तर मल कबहुँ कि जाई';(ख) 'देखिअ जैसा' का भाव कि वह बादल देखनेही भरका है, उससे कुछ कार्य नहीं हो सकता वैसेही बिना भक्ति के समस्त गुण व्यर्थहैं उनसे कुछ कार्य्य नहीं होसकता ।—[नोट—यहाँ 'सोहै' पद देकर जनाया कि वह अपनी शोभा इन गुणोंसे युक्त होनेके कारण समझता है पर जैसे जलहीन बादल दूसरोंकी दृष्टिमें शोभाहीन देखपड़ताहै वैसाही वस्तुतः यह शोभाहीन है ।]

(ग) पहले जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई आदि १० गुण वा नाते गिनाए तब कहा कि 'भगति हीन नर सोहै कैसा ।००' । इस क्रमका भाव यह कि ये सब गुण भक्तिके बाधक हैं, यथा—'सुख संपति परिवार बड़ाई । सब परिहरि करिहौं सेवकाई ॥ ए सब राम भगतिके बाधक । कहहिं संत तव पद अवराधक'—(सुग्रीववाक्य) ।

नवधा भगति कहौं तोहि पाहीं ।
सावधान सुनु धरु मन माहीं ॥ § ३४/२८ (७)
प्रथम भगति संतन्हकर संगा ।
दूसरि रति मम कथाप्रसंगा ॥ ,, (८)
गुर-पद-पंकज सेवा तीसरि भगति अमान ।
चौथि भगति मम गुनगन करइ कपट तजि गान ॥ ३५/२९

च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः', माधव भक्तिसेही संतुष्ट होतेहैं गुणोंसे नहीं क्योंकि उनको भक्ति प्यारी है ।

* 'पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जातिनामाश्रमादयः । न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम् ॥' (अध्यात्मे)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—मैं तुझसे नवधाभक्ति कहताहूँ, सावधान होकर सुनो और मनमें धारणकररखो। संतोंकी संगति प्रथम भक्ति है, मेरी कथाओंके प्रसंगमें प्रेम यह दूसरी भक्ति है। गुरुजीके चरणकमलोंकी सेवा अभिमानरहित होकर करना तीसरी भक्ति है। कपट छोड़कर मेरे गुणसमूहका गान करे यह चौथी भक्ति है।

पु० र० कु०—१ जिस भक्तिके विना सब गुण व्यर्थ हैं अब उस भक्तिको कहतेहैं। उपदेश करतेहैं कि सुनकर मनमें धारण करो। मन वचनकायमेंसे मन दोनोंसे अधिक श्रेष्ठ है अतः मनमें धरनेका उपदेश करतेहैं। २—'प्रथम भगति संतन्हकर संगा। यहाँ बहु वचन देकर जनाया कि बहुतसे संतोंकी संगति करे न जाने किस महात्माके द्वारा पदार्थकी प्राप्ति होजाय।

३—'दूसरि रति मम कथा प्रसंगा' (क)—कथा प्रसंगाका भाव कि भगवतकथाकी पुस्तककी पूजा, उसका दर्शन आदिभी जो भक्ति कहीजातीहै सो कथाप्रसंगमें अनुरक्ति नहीं है। कथाके प्रसंगमें प्रेम होना यह है कि उसके श्रवण मननमें प्रीति हो। (ख)—पहले सत्संग होताहै तब कथामें प्रेम होताहै, यथा—'बिनु सतसंग न हरिकथा'। अतः 'प्रथम भगति संतन्ह कर संगा' कहकर तब कथामें प्रीति कही।

४ (क) 'गुरुपदपंकजसेवा तीसरि भक्ति अमान'। 'अमान' अर्थात् दास होकर गुरुजीकी सेवा करे। (ख) उनका मान करे आप अमान रहे।

'गुनगन करै कपट तजिगान'। अर्थात् दिखाने, रिझाने या धन कमानेकेलिए नहीं। (ग)—शङ्का—'रति कथा प्रसंगा' दूसरी भक्ति और 'गुणगान' चौथी भक्ति ये दोनों तो एकही हैं। समाधान-दूसरी भक्तिका तात्पर्य्य यह कि कथा श्रवण करे और चौथीका तात्पर्य्य है कि स्वयं गान करे एक श्रवण दूसरा कीर्त्तन यह भेद है। (घ) कथाश्रवणसे गुरुसेवामें निष्ठा होतीहै, गुरुकी प्रसन्नतासे कपटरहित गुणग्राम गानकी शक्ति होतीहै।—प्रथम गुरुसेवा कहकर तब गुणगान कहा। भाव कि गुरुमुखसे सुनकर तब गान करे, यथा—'मैं पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सो सूकरखेत...' 'भाषा बद्ध करब मैं सोई'।

[नोट—गुरुभक्ति पर रुद्रयामल श्रीधर्मकल्पद्रुम, गुरुगीता आदि ग्रन्थ हैं।]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मंत्र जाप मम दृढ बिस्वासा।
पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥ § ३५/२९ (१)
छठ दम सील बिरति बहु कर्मा।
निरत निरंतर सज्जन धर्मा॥ ,, (२)
सातव सम मोहि मय जग देषा।
मो तें संत अधिक करि लेषा॥ ,, (३)
आठव जथा लाभ संतोषा।
सपनेहुँ नहि देषइ पर दोषा॥ ,, (४)

अर्थ—मेरे मंत्रका जप और उसमें दृढ़ विश्वास, यह पाँचवीं भक्ति है, वेदोंमें प्रसिद्ध है। इन्द्रियदमन, शील आदि बहुतसे कर्मोंसे वैराग्य और निरन्तर सज्जनोंके धर्म में तत्पर रहना छठी भक्ति है जगत्भरको एक समान मुझ-मय (राम-मय) देखे और सन्तोंको मुझसे अधिक समझे यह सातवीं भक्ति है। जो कुछ प्राप्त हो उसीमें संतोष करे, स्वप्नमेंभी पराये दोषको न देखे, यह आठवीं भक्तिहै।

पु०र०कु० १—'मन्त्रजाप' यथा—'मंत्रराज नित जपहिं तुम्हारा' दृढ़ बिस्वासा' अर्थात् जपके साथही उसमें पूर्ण विश्वासभी रहना चाहिए, नहीं तो बिना विश्वासके सिद्धि नहीं प्राप्त होनेकी, यथा—'कवनिउ सिधि कि बिनु बिस्वासा। बिनु हरिभजन न भवभय नासा' 'भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ। याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्'।—(प्र०—रामतापनी, रामोपनिषद्से राममंत्र प्रसिद्ध हुआ अतः 'बेदप्रकासा' कहा)।

२—गुरुभक्तिके पीछे गुणगान और मंत्रजाप कहा—क्योंकि ये दोनों गुरुसे प्राप्त होतेहैं यथा—'उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भवरजनीके॥ सूझहिं रामचरित मनिमानिक'।—[संतोको अधिक मानना इस कारण कहा कि पहुँचेहुए सन्त भगवत्से मिलादेतेहैं। अथवा, दास पुत्रसम हैं, संसारमें प्रत्यक्ष देखा जाताहै कि पुत्रको प्यार करनेवाला मनुष्य पिताको अपने प्यार करनेवालेसे अधिक प्यारा होताहै अतः संन्तोको अधिक माननेका उपदेश किया—(प्र०)।]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३—'छल दमसील बिरति बहु कर्मा ..' यथा—'नर बिबिधकर्म अधर्म बहुमत शोकप्रद सब त्यागहू' अर्थात्' बहुतसे जो नाना प्रकार के कर्म हैं उनसे वैराग्य करे और सज्जनधर्म में निरत रहे। 'बहुकर्म' अर्थात् नित्य नैमित्तिककर्म—(खर्रा)।—[खर्रा—सत्संग, कथा, गुरुसेवा, गुणगान, मन्त्रजाप, भजनमें दृढ़ता ये वेदमें लिखेहैं। चौथी भक्तितक बाह्यकृत्य और पंचमसे नवम तक अन्तरकी कहतेहैं। पुनः बहुकर्माका भाव कि केवल निर्वाह मात्रको कर्म करे अधिक नहीं।]

४ 'सातवँ सम मोहिमय जग देखा...' इति। यथा—'स्वर्ग नरक अपबरग समाना। जहँ तहँ देख धरे धनुबाना'। जब सब जगत्को राममय देखेगा तो सन्तोंमेंभी वही समानता भाव हुआ इसीसे आगे कहतेहैं कि 'मोते संत अधिक करि लेखे'। यही बात गरुड़ जीने कहाहै 'मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। रामते अधिक राम कर दासा'। इसमें भगवत् और भागवत् दोनोंकी भक्ति कही।—[खर्रा—संत जगत्से निर्लेप रहतेहैं, यथा—'जे बिरंचि निर्लेप उपाये। पदुम-पत्र जिमि जगजल जाये'। अतः अधिक]

५—'आठवँ जथा लाभ संतोषा...' इति। जब भगवत्के स्वरूप की प्राप्तिहुई तब संतोष प्राप्त हुआ। [संतोष होनेसे किसीपर मन नहीं जायगा न किसीसे शत्रुता होगी, किसीमें छिद्र देखेगाही नहीं यह उत्तम संतोंका लक्षण है, यथा—'जिमि परद्रोह संत मन माहीं'। और छिद्र देखकर छिपाना, यथा—'जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा। बंदनीय जेहि जग जसु पावा'। यह मध्यमका लक्षण है। उत्तमके स्वप्न मभी परदोष मनम नहीं आता और इनके मनमें आताहै।—(खर्रा)]

नोट—देह प्रारब्धवश है इसलिए भोजन वस्त्रके लिए चिन्ता करना व्यर्थ है वह तो आपही मिलेगा। जो कुछ लाभ (प्राप्त) हो उसीमें संतोष करे। पराये दोष देखनेसे हमारा अंतःकरण मलिन होगा। जब दूसराही प्रेरक है तब हम दूसरेके दोष क्यों देखें, हमें तो गुणही देखनाचाहिए क्योंकि वह मनुष्यभी तो पराधीन है। जब मनमें दोष न रहेगा तो वह भीतर बाहर एक होजायगा—(पं० रा० व० श०)।

नवम सरल सब सन छल हीना।
मम भरोस हिय हरष न दीना॥ § ३५ (५)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नव महुँ एकौ जिन्ह के होई।
नारि पुरुष सचराचर कोई॥ ३५।२६ (६)
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें।
सकल प्रकार भगति दृढ तोरें॥ ,, (७)

अर्थ—सरल (कपटछलरहित, सीधासादा) स्वभाव, सबसे छलरहित, हृदयमें मेरा भरोसा, हर्ष और दीनता (शोक वा दुःख) रहित, नवीं भक्ति हैं। नौमेंसे एकभी भक्ति जिनके होतीहै, स्त्री पुरुष, चर-अचर कोईभी हो, वही, हे भामिनि! मुझे अतिशय प्रिय है और तुममें तो सभी प्रकारकी दृढ़ भक्तियाँ हैं।

पु० र० कु०—१ (क) 'सरल सब सन छल हीना', यथा—'सरल सुभाउ न मन कुटिलाई'। यह सन्त-लक्षण है और श्रीमुख वचन है (ख)—'मम भरोस हिय हरष न दीना'—हर्ष उत्तम पदार्थके लाभसे और दीन हानिसे। जब पारसकी प्राप्ति हुई तब रुपये-पैसेके हानि-लाभमें दुखसुख नहीं होता, वैसेही रामजीकी प्राप्ति होनेपर मायिक पदार्थोंके हानिलाभमें दुःख सुख नहीं होता। २—'नारि पुरुष सचराचर कोई'। शबरीजीने अपनेको स्त्री कहकर 'अति अधम' कहाहै; इसीसे प्रथम यहाँ 'नारि' पद दिया।—[नोट—स्त्री-पुरुष बोलनेका मुहावरा है]

३—'सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे।००'। अर्थात् प्रिय तो सभी हैं पर भक्त अतिशय प्रिय हैं, यथा—'सब मम प्रिय सब मम उपजाये।०'—(प्र०—'भामिनि' अर्थात् जिसका विषयादि सांसारिक तुच्छ सुखोंपर क्रोध है)। ४-(क)-'सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।' श्रवणादिक नव भगति दृढ़ाहीं', मन क्रम वचन भजन दृढ़ नामा', 'सब मोहि कहँ जानइ दृढ़ सेवा', 'मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा' ये सब भक्तियाँ दृढ़ होकर करनी चाहिएँ।' तुममें एक दो प्रकारकी भक्ति कौन कहे ये सब प्रकारकी भक्तियाँ दृढ़ हैं। पुनः, (ख)—'एकौ होई' का भाव कि लोगोंमें इन नौ में से एक भी होना दुर्लभ है और होतीभी है तो दृढ़ नहीं होती; पर तुममें ये नवों हैं और दृढ़ हैं। (ग)—'सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे' इसका फल हमारा दर्शन है अर्थात् तेरी भक्तिसे मैं यहाँ आया। अब हमारे दर्शनका फल सहज स्वरूपकी प्राप्ति है (सो आगे कहतेहैं), सहज स्वरूपकी प्राप्तिके समान और किसी पदार्थकी प्राप्ति नहीं है; अतः उसे अनूप कहेंगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जोगिबृंद दुर्ल्लभ गति जोई ।
तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई ॥ § ३५/२९ (८)
मम दरसन फल परम अनूपा ।
जीव पाव निज सहज सरूपा ॥ ,, (९)

शब्दार्थ—सहज=प्राकृत, स्वाभाविक जो वास्तव रूप है।

अर्थ—योगीलोगोंको जो गति दुर्लभ है, आज तुझे वह सुगमतासे प्राप्त होगई।* मेरे दर्शनका परम उपमारहित फल यह है कि जीव अपना सहज स्वरूप पाजाताहै।

मु० र० कु०—१ 'जोगिबृंद दुर्लभ गति जोई...'। भाव कि योगियोंको अष्टांगयोगादि कठिन साधन करनेपरभी जो दुर्लभ है, वही गति भक्तिसे सुलभ होजातीहै। वह कौन गति है?—'मम दरसन...' पुनः, योगिवृन्दका भाव कि एक दोकी क्या कहें,वृन्दको भी दुर्लभ है।

२—'जीव पाव निज सहज सरूपा'। सहज स्वरूप जीवका क्या है? उत्तर-मायारहित जो स्वरूप है। यथा—'ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥ सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीरमरकटकीनाईं।' 'मायाबस सरूप बिसरायो। तेहि भ्रमते नाना दुख पायो' दोनों भावसे—ज्ञानसे पाया तो असत् छूट सत्की प्राप्तिहुई, भक्तिसे पाया तो स्वामीमें प्रीति हुई असत् छूटा। [पुनः, विनयका यह पदभी देखिए, इसमेंभी सहज स्वरूपका वर्णन है—

'जिव जबते हरि ते बिलगान्यो। तबते देह गेह निज जान्यो॥ मायाबस स्वरूप बिसरायो...।' आनंदसिंधु मध्य तव बासा। बिनु जाने कस मरसि पियासा॥ मृगभ्रमबारि सत्य जिय जानी। तहँ तू मगन भयो सुख मानी॥ तहँ मगन मज्जसि पान करि त्रयकाल जलनाहीं जहाँ। निज सहज अनुभवरूप तू खल भूलि अब आयो तहाँ॥ निर्मल निरंजन निर्विकार उदार सुख तैं परिहरो। निःकाज राज बिहाय नृप इव स्वप्न कारागृह पर्‌यो॥ ···अनुराग सो निजरूप जो जगते विलक्षण देखिए। २ तोष सम सीतल सदा दम देहवन्त न

* यथा—'तामुवाच ततो रामः शबरीं संशितव्रताम्। अर्चितोऽहं त्वया भद्रे गच्छकामं यथासुखम्'—(वा० ७४)। 'योगिनां दुर्लभा या हि सुलभा साधुना त्वयी'—(अध्यात्मे)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लेखिप ॥ निर्मल निरामय एकरस तेहि हर्षशोक न व्यापई । त्रैलोक्य-पावन सो सदा जाकी दशा ऐसी भई ॥' (विनय १३७)] *

जीवके जो स्वरूप संसारमें दिखाईदेतेहैं वे कर्मकृत हैं । सतोगुणी कर्मसे देवयोनि, और रज सत्वसे राजा आदिकी योनि इत्यादि मिलतीहै । जब समस्तकर्मोंका विध्वंस होजाय तब वह सहज स्वरूप जो वचनसे अगोचर शुद्ध सच्चिदानन्दमयस्वरूप है, प्राप्त हो । जिसे प्राप्त हो वही जानसकताहै पर वहभी कह नहीं सकता । भगवत् साक्षात्कार होनेपर इस स्वरूपकी प्राप्ति होतीहै ।

जनकसुता कइ सुधि भामिनी ।
जानहि कहु करि † बरगामिनी ॥ ९ $\frac{३५}{२९}$ (१०)
पंपासरहि जाहु रघुराई ।
तहँ होइहि सुग्रीव मिताई ॥ ,, (११)
सो सब कहिहि देव रघुबीरा ।
जानतहूँ पूँछहु मति धीरा ॥ ,, (१२)
बार बार प्रभुपद सिरु नाई ।
प्रेम सहित सब कथा सुनाई ॥ ,, (१३)

* वै०—प्रभुका दर्शन किस प्रकार होताहै । और जीवका सहज स्वरूप कैसा है ? वेदरीति यह है कि करोड़ों कल्प तक जप तपहोम योग यज्ञ ब्रह्मज्ञान में रतरहे तब अन्तरबाहर शुद्ध होकर भक्ति प्राप्त होतीहै तब दर्शन होतेहैं । यह साधन साध्य (क्रियासाध्य रीति, है । कृपासाध्य ऐसीहै कि नवधाभक्ति जो कहीहै उससे विमुख विषयी आदि सब जीवोंको प्रभुके दर्शन स्वाभाविक हो जीवको सहज स्वरूप प्राप्त होजाताहै—प्रभुके कैंकर्यमें लगेरहना सहज स्वरूप है । नौ आवरण हैं जिनमेंसे शुद्ध आत्मा, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, शब्द, स्पर्श और रूप यहाँतक जीवमें चैतन्यता रहतीहै और इनकी सातोंभूमिकाएँ ज्ञानसे शुद्ध हो सकतीहैं जब रसके वश हुआ तब विमुख होताहै और गन्ध आवरणके वश होकर विषयी होताहै—ये नवो आवरण नवधाभक्तिसे हट सकतेहैं । इस प्रकार कि सत्संगसे विषयसे विरक्ति हो भू तत्व गंध जीते । हरियश सुकर हरिसम्मुख हो जलतत्व रस आवरण जीते । गुरुसेवासे मन स्थिर होकर रूप और हरियशगानसे पवनतत्व स्पर्श आवरण हटे; इत्यादि ।

†पाठान्तर—'गजबरगामिनी'-(काशी) । कुछलोग इसे सीताजीमें लगातेहैं ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ--हे भामिनि ! यदि करिवरगामिनी जनकसुताकी कुछ खबर जानतीहो तो कहो। हे रघुराई ! पंपासरपर जाइए, वहाँ सुग्रीवसे मित्रता होगी। हे देव ! हे रघुबीर ! वह सब हाल कहेगा। हे धीर-बुद्धि ! जानतेहुए भी आप मुझसे पूछतेहैं। बारंबार प्रभुके चरणोंमें माथा नवाकर प्रेमसहित सब कथा सुनाई।

पु० र० कु०—१ 'भामिनी' अर्थात् दीप्तियुक्त,कान्ति छबिसे भरी। 'करिवरगामिनी' कहा क्योंकि वनमें रहनेसे हाथीका गमन इसने देखाहै—'संकुललता बिटप घन कानन। बहु खग मृग तहँ गज पंचानन'। हंसगमनी न कहा कि कदाचित् इसने हंस न देखा हो तो संदेह होगा कि हंस कैसे चलतेहैं। नोट—यहाँ 'करिवरगामिनी पद जनकसुताका विशेषण है। एक तरहसे भगवान् सीताजीका हुलिया देतेहैं। यहाँ यह शबरीके लिए सम्बोधन नहीं होसकता। क्योंकि भगवान् उससे माताका भाव रखतेहैं। माताके गति-सौंदर्य्यकी चर्चा यहाँ प्रयोजनीय नहीं है।

२—(क)—पंपासरहि जाहु रघुराई ।००' यह शबरीजीने अपने अनुभवसे अथवा अपने गुरुमुखसे सुनीहुई कही। [खर्रा—दर्शनसे सहजस्वरूप प्राप्त होते ही त्रिकालका ज्ञान होगया) (ख)—'जानत हूँ पूँछत मति धीरा' अर्थात् माधुर्य्यमें मतिको धीर किए हो, माधुर्य्यकी मर्यादा रखनेके लिए इसीसे जानकर पूछते हो। 'देव',अर्थात् दिव्य हो सब जानतेहो, वीर और मतिधीर हो शत्रुको मारोगे।

३—'बारबार प्रभु पद सिरु नाई'। नवधा भक्ति श्रीमुखसे सुनी। अतः अनेक बार प्रणाम किया। पुनः, यह प्रेमकी दशा है, यथा--'पद अम्बुज गहि बारहिबारा 'हृदय समात न प्रम अपारा', तब मुनि हृदय धीरधरि गहि पद बारहिबार','पुनि २ मिलति परति गहि चरना। परम प्रेम कछु जाइ न बरना'। वा, कुछ देर ठहरनेके लिए, यथा—'तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि तुम्हहिं मिलउँ तन त्यागी'।

४—'सब कथा सुनाई' जो गुरु कहनेको कहगएथे कि दर्शन करके शरीर त्याग देना।

प्र०—यहाँ जानकीजीके समाचारकी कथासे तात्पर्य्य नहीं है क्योंकि उसे पहले बताचुकीहैं कि सुग्रीव कहेगा। अभी कहदेनेसे संभव है कि सुग्रीवसे न मिलें; तो सुग्रीवका कार्य्य कैसे होगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

खर्रा—१—'भामिनी' करिवरगामिनी' इति।—भामिनि संबोधन देनेका भाव यह भी होताहै कि इसे अपनेमें मिलालेनाहै, और स्त्री अपना रूपहै इसीसे स्त्री कहकर संबोधन किया। गीतावलीमें सबरीको किरातिनी कहाहै क्योंकि वहाँ अपनेमें मिलाना नहीं कहाहै,वहाँ केवल धामदेना लिखा है। तात्पर्य्य कि सायुज्य मुक्ति देनेमें भामिनी कहा और सालोक्य देनेमें किरातिनि कहा।

नोट—गोस्वामीजीने विनयमें कहाहै कि शबरीजीको माताके समान और जटायुको पिताके समान माना।—'मातु ज्यों जल अंजलि दई'।

छंद

कहि कथा सकल बिलोकि हरिमुख हृदय पदपंकज धरे।
तजि जोगपावक देह हरिपद लीन भै जहँ नहिं फिरे॥
नर बिबिध कर्म अधर्म बहुमत सोकप्रद सब त्यागहू।
बिस्वास करि कह दास तुलसी रामपद अनुरागहू॥

अर्थ—सब कथा कहकर, प्रभुके मुखका दर्शनकर, हृदयमें उनके चरणकमलोंको रख, योगाग्निमें देहको त्यागकर हरिपदमें लीन हो-गई,जहाँसे फिर (जीव) लौटते नहीं। तुलसीदास वा,मैं सेवक तुलसी-दास कहताहूँ कि हे मनुष्यो! अनेक प्रकारके कर्म, अधर्म, और बहुतसे मत, सबको छोड़ो, सब शोक देनेवालेहैं; और विश्वास करके श्रीरामपदमें प्रेम करो।*

* यथा—'भक्तिर्मुक्तिविधायिनी भगवतः श्रीरामचन्द्रस्यहे
लोकाः कामदुघांघ्रिपद्मयुगलं सेवध्वमत्युत्सुकाः।
नानाज्ञान विशेषमंत्र वितर्तिं त्यक्त्वा सुदूरे भृशम्
रामं श्यामतनुं स्मरारि हृदये भ्रान्तं भजध्वं बुधाः॥—(अध्यात्मे)।

अर्थात् भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी भक्ति मुक्तिविधान करनेवालीहै। अतएव हे मनुष्यो! कामनाके पूर्ण करनेवाले दोनों चरणकमलोंका उत्सुक होकर सेवन करो। हे पण्डितो! अनेक विशेष मंत्र, ज्ञान आदिको दूरहीसे छोड़कर शंकर-मानसमें विराजमान साँवले रामचंद्रजीको भजो।

'सर्वं धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयि-ष्यामि मा शुचः' इति भगवद्गीतायाम्।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु०—१ (क)—'हरिपद लीन भइ'। शबरीजी श्रीरामपदानुरागिनी थीं, अतः 'पदलीन भै' कहा। (१)—'सबरी परी चरन लपटाई। (२)—पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा। (३)—सादर जल लै चरन पखारे। (४)—बारबार प्रभु पद सिर नाई। (५)—हृदय पद पंकज धरे। (६)—हरिपदलीन भै। (७)—'बिस्वास करि कह दास तुलसी रामपद अनुरागहू'। पुनः, यथा—'प्रभु पद हियधरि अनल समानी', तथा 'छलनिकी छोड़ी निगोड़ी छोटी जातिपाँति कीन्ही लीन आपुमें भामिनी भोड़े भीलकी'—(क०)। योगपावक—प० §६३ (८) देखिए। जहँ नहिं फिरे', यथा—'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम' इति गीतायाम्।

२—'नर बिबिध कर्म००' इति।—नर संबोधनका भाव कि जब ऐसी स्त्रीको मुक्तिदी तब तुम तो नर हो तुम्हारी मुक्तिमें क्या संदेह है। यह मनुष्योंको उपदेश है। (ख) र० प्र० श०—यहाँ नरकी गति दीहै अतः उसी वर्गके समस्त नरोंसे श्रीगोस्वामीजी कहतेहैं। ३—'बिस्वास करि कह दास तुलसी००' क्योंकि 'बिनु बिस्वास भक्ति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न राम'। विश्वास रखकर कि हम इससेही कृतार्थ होंगे। श्रीशबरीजी रामपदानुरागिनी थीं, हरिपदमें लीन हुईं, अतः कहतेहैं कि 'रामपद अनुरागहू'। रामपदानुराग चौथी भक्ति है। यही पादसेवन भक्ति है। इसमें विश्वास चाहिए इसीसे कहा कि विश्वास करके अनुराग करो।

खर्रा—शोकप्रद कहा क्योंकि 'करतहु सुकृत न पाप नसाहीं। रक्तबीज सम बाढ़त जाहीं'। करु०—१—लीन भई=प्राप्त हुई। हरि पदको प्राप्त हुई जिस पदको प्राप्त होकर फिर संसारमें जीव नहीं आते। अथवा, हरिपदलीन भई=परमपदको प्राप्तहुई। २—यह अर्थ कि हरि पदमें लय होगई, अर्थात् एक होगई ठीक नहीं है क्योंकि स्वरूपमें लीनहोना जहाँ तहाँ पायाजाताहै परन्तु पदमें लीन होना कहीं नहीं पायाजाता। अतएव 'प्राप्त हुई' अर्थ ठीक है।

जाति हीन अघ जन्ममहि मुक्ति कीन्हि असि नारि।
महामंद मन सुष चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि॥ §३६

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—जातिहीन, पापकी जन्मभूमि अर्थात् जहाँसे पाप उत्पन्न हुआकरतेहैं, ऐसी स्त्रीकोभी मुक्त किया—अरे महामन्दबुद्धि मन ! तू ऐसे प्रभुको भूलकर सुखकी चाह करताहै।

पु० र० कु—१ 'जाति हीन' से लोकमे नष्ट और अघजन्ममहिसे परलोक नष्ट। अथवा, जातिहीन अघजन्ममहि और नारि इनसे कर्म का अधिकार न होना जनाया। २—'मुक्ति कीन्ह' अर्थात् केवल भक्तिसे इसे मोक्ष दिया। ३—[खर्रा—जातिहीन यथा—'नृपान्यां वैश्यतो जातः सबरः परिकीर्तितः। मधूनिवृक्षदानीय विक्रीणीते स्ववृत्तये'॥ इति नारदीये] अर्थात् जो वैश्य और क्षत्रियाणीके संयोगसे उत्पन्न हो उसे सबर कहतेहैं, वृक्षोंसे मधु को लेकर बेचे उससे अपनी जीविका करे।]

'सबरी गति दीन्ही'-प्रसंग समाप्त हुआ।

"बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा। जेहि बिधि गये सरोवर तीरा॥" -प्रकरण

चले राम त्यागा बन सोऊ।
अतुलित बल नर-केहरि दोऊ॥ § ३६ दु० (१)
बिरही इव प्रभु करत बिषादा।
कहत कथा अनेक संबादा॥ ,, (२)
लछिमन देषु बिपिन कइ सोभा।
देषत केहि कर मन नहिं छोभा॥ ,, (३)

संवाद-प्रसंग

अर्थ—रामचन्द्रजीने उस वनकोभी छोड़ा और आगे चले। दोनों भाई अतुल बलवान और मनुष्योंमें सिंह (के सामान) हैं। प्रभु विरहीकी तरह दुःख कररहेहैं, अनेक विरह-विषादके संवादकी कथा कहतेहैं। लक्ष्मण ! वनकी शोभा देखो, इसे देखकर किसका मन विचलित न होगा ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु०—१—(क) यहाँ वन-विभाग दिखातेहैं। (१)—गंगा-तटसे अत्रि-आश्रमतक एक वन है यथा—'तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ। सखा अनुज सिय सहित वन-गवन कीन्ह रघुनाथ' और 'कहेउ रामबनगवन सुहावा'।

(२)—अब दूसरा वन दिखातेहैं, यथा—'तब मुनि सन कह कृपा-निधाना। आयसु होइ जाउँ बन आना'। यह विराधवाला वन है, इसीमें शरभंगजी थे।

(३)—तीसरा वन, यथा—'पुनि रघुराथ चले बन आगे' (आ० ८)। यह वन शरभंगऋषिके आश्रमके आगे अगस्त्याश्रम तक वाला है। (४)—चौथा 'दण्डकवन पुनीत प्रभु करहू'। इसीमें पंचवटी और जनस्थान हैं। (५)—आगे बहुत अधिक और गहन वन मिले, यथा—'चले बिलोकत बन बहुताई'। यहाँ क्रौंचवनके आगे कबन्धवाला वन था, उसके आगे मतंगवन था, जिसमें शबरीजीका आश्रम था। ६—'चले राम त्यागा बन सोऊ' अर्थात् मतंगवनसे आगे पंपावाले वनमें गए। (ख)—'अतुलित बल नर-केहरि दोऊ' अर्थात् दोनोंही पुरुषसिंह और अतुलित बली हैं; तथापि विरहीकी तरह विलाप करतेहैं। पुनः, ऐसे घोरवनमें मनुष्यकी सामर्थ्य नहीं है कि आसके, उसमें ये दोनों विचररहेहैं क्योंकि दोनों 'अतुलित बल०'। पुनः, भाव कि एकही सिंह वनके सभी जीवोंकेलिए बहुत होताहै, एक ही विश्वविजयको बहुत है और ये तो दो हैं। पुनः, वनमें निर्भय विचरणसे 'केहरि' कहा। पुनः, सिंहका आनन्द वनमेंही है और ये तो अतुलित बली हैं अतएव इन्हें गहरेसे गहरे वनमें पहुँचकर आनन्द है।

(ग)—'कहत कथा' अर्थात् अनेक विषादके संवादकी कथाएँ कहते हैं; जैसे नल, पुरुरवा आदिकी। (घ) 'देखत केहि कर मन नहि छोभा' अर्थात् किसको कामोद्दीपन नहीं होता।

२—प्र०—'बिरही इव' पद देकर उनको विरहीसे भिन्न जनाया। अतएव भाव यह हुआ कि श्रीसीताजीसे रामका वियोग ही नहीं हुआ। यदि कहो कि जानकीजी तो अग्निमें निवास करतीहैं तब वियोग कैसे नहीं हुआ? तो उसका समाधान यह है कि अग्नि तो श्रीरघुनाथ जीके शरीरका तेज विशेष है, भिन्न नहीं है। बालकाण्डमें 'नर इव' पद दियाथा। मिलान करो—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई॥
कबहूँ जोग बियोग न जाके। देखा प्रगट बिरह दुख ताकें॥
अति बिचित्र रघुपति चरित जानहिं परम सुजान।
जे मतिमंद बिमोह बस हृदय धरहिं कछु आन॥" ब० § ४९

पुनः, 'एहिबिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहु महा बिरही अतिकामी'॥ अ० २९ (१६)।

नारि सहित सब षग मृग बृंदा।
मानहु मोरि करतहहिं निंदा॥ (उ० ३९) (४)
हमहिं देषि मृगनिकर पराहीं।
मृगी कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं॥ ,, (५)
तुम्ह आनंद करहु मृगजाए।
कंचनमृग षोजन ए आए॥ ,, (६

अर्थ—सब पक्षी पशुओंके झुंड स्त्रीसहित हैं, मानो मेरी निंदा कररहे हैं (अर्थात् तुमभी यदि अपनी स्त्रीको इसी तरह साथ रखे होते तो यह विषाद क्यों करनापड़ता)। हमें देख मृगोंके झुंड भागते हैं तब मृगियाँ कहतीहैं कि मृगपुत्रो! तुमको डर नहीं (तुम न भागो), तुम मृगसे पैदा हुएहो, तुम आनंद करो, ये तो सोनेके मृगको खोजनेआएहैं।

पु० र० कु० १—'हमहिं देखि मृगनिकर पराहीं।००' हरिण लोगोंको देखकर भागतेहैं फिर कुछ दूरपर खड़े होजातेहैं; और पीछे देखतेहैं यह मृगका स्वभाव है। इन दोनों स्वभावोंपर दो बातें लिखतेहैं, एक तो 'हमहिं देखि०' और दूसरी 'मृगी कहहिं'। अर्थात् पहले देखकर भागतेहैं कि हमको मारेंगे, जब हरिणी कहतीहै कि तुम न डरो तब खड़े होजातेहैं।

२—'तुम्ह आनंद करहु मृग जाए। अर्थात् तुम मृगसे उत्पन्न हुएहो और ये उसको ढूँढतेहैं जो मृगसे पैदा न हुआहो। अर्थात् जो कपटसे मायाका मृग बनकर आतेहैं उनका ये शिकार करतेहैं। 'मृगजाये' में लक्षणामूलक अगूढ़ व्यंग्य है।

पं० रा चं० शुक्ल—दूसरोंका उपहास करते तो आपने बहुत लोगोंको देखा होगा, पर कभी आपने मनुष्यकी उस अवस्थापर भी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ध्यान दियाहै जब वह प्रश्चात्ताप और ग्लानिवश अपना उपहास आप करताहै? गोस्वामीजीने उसपर भी ध्यान दियाहै। उनकी अन्तर्दृष्टिके सामने वह अवस्थाभी प्रत्यक्ष हुईहै। सोनेके हिरनके पीछे अपनी सोनेकी सीताको खोकर राम वनवन विलाप करते फिरते हैं। मृग उन्हें देखकर भागतेहैं; और फिर ऐसा कि उनका स्वभाव होताहै थोड़ी दूरपर जाकर खड़ेहो जातेहैं। इसपर राम कहतेहैं—'हमहिं देखि मृगनिकर पराहीं।०'।—कैसी क्षोभपूर्ण आत्मनिंदा है!

२—यहाँ एक और बात ध्यान देनेकी है। कविने मृगोंकेही भयका क्यों नाम लिया? मृगियोंको भय क्यों नहीं था? बात यह है कि आखेटकी यह मर्य्यादा चलीआतीहै कि मादाके ऊपर अस्त्र न चलाया जाय। शिकारखेलनेवालोंमें यह बात प्रसिद्ध है। यहाँ गोस्वामीजीका लोक-व्यवहार-परिचय प्रगट होताहै।

खर्रा—कंचन-मृगसे जनाया कि ऐसे लोभी हैं कि कंचनकेलिए स्त्री गँवादी। कंचन देकर स्त्रीको बचानाचहिए और इनने उलटा किया। यह उपदेश स्त्रियाँ देरहीहैं।

दीनजी—यहाँ 'कंचन मृग खांजन' में मृगियोंका ताना तो है ही कि ऐसे बुद्धिहीन हैं कि सोनेके मृगके पीछे दौड़े। यह नहीं जानते कि सोनेके हिरन नहीं होते। पंडित लोग ऐसा भी अर्थ करतेहैं कि 'मृ' (=मट्टी)+'ग' (=चलनेवाला) अर्थात् सोनेकी पृथ्वीपर चलनेवाले रावणको ये ढूँढ़तेहैं।

संग लाइ करिनी करि लेहीं।
मानहु मोहि सिषावनु देहीं॥ (३६) (७)
सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देषिअ।
भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ॥ ,, (८)
राषिअ नारि जदपि उरमाहीं।
जुवती सास्त्र नृपति बस नाहीं॥ ,, (९)
देषहु तात बसंत सुहावा।
प्रियाहीन मोहि भय उपजावा॥ ,, (१०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—हाथी हथिनियोंको साथ लगालेतेहैं † मानों मुझे शिक्षा-देतेहैं (कि इस प्रकार स्त्रीको साथ रखना चाहिएथा]। अच्छी तरह मनन किएहुए शास्त्रकोभी बारबार देखना चाहिए, भली प्रकारसे सेवा किएहुए राजाको वशमें न समझिए, स्त्रीकी सदा रक्षा (रख-वाली] करतेरहनाचाहिए चाहे वह हृदयमेंही रहतीहो—स्त्री, शास्त्र और राजा वशमें नहीं रहते‡ हे तात ! सुंदर वसन्त ऋतु देखो। प्यारी स्त्रीके बिना मुझे भय उत्पन्न कररहाहै।

नोट—'राखिय नारि जदपि उर माहीं।' का यही अर्थ बाबा हरि-हरप्रसादजी और प्राचीन महानुभावोंने कियाहै। यह अर्थ शुक्र-नीतिके अनुकूल भी है। यथा—

'शास्त्रं सुचिन्तितमथोपरिचिन्तनीया माराधितोऽपि नृपतिः परिशंकनीयः। क्रोडेकृतापि युवती परिरक्षणीया शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम्॥' अर्थात् खूब चिन्तवन किए या विचारेहुए शास्त्रको फिरभी विचार करते रहनाचाहिए, राजा भलीप्रकार विधिवत् सेवा कियागया हो तो भी उससे शंकित ही रहना योग्य है और स्त्री गोदमेंभीकी हुई क्यों न हो तो भी वह रक्षा किएजाने योग्य है। शास्त्र, राजा और स्त्रीपर किसका वश है ? भाव कि इनसे ज़राभी चूकना वा असावधान रहना उचित नहीं।

आधुनिक टीकाकारोंने यह अर्थ कियाहै कि 'चाहे स्त्रीको हृदय-में रखिये तो भी०'। 'पुनि २ देखिय' 'बस नहिं लेखिय' के योगसे 'राखिय नारि' का उपरोक्त ही अर्थ ठीक है। श्लोकके 'परिचिन्तनीया'

---

† १—युवती, शास्त्र और नृपति तीनोंका एकही धर्म 'बस नहिं लेखिए' कहना 'प्रथम तुल्ययोगिता अलंकार' है। सुहावना होकर भय पैदा करनेमें व्याघात अलंकार है। प्यारीके बिना ऐसा होना प्रथम विनोक्ति है। २—दीनजी—जुवती सास्त्र नृपति बस नाहीं' में क्रमभंगयथासंख्य है।

‡ १ र० व०—'संग लाइ०० मानहुँ००'। अपनी अवस्थाके समान जहाँ औरोंको उपदेश देना कथन किया वह निदर्शना अलंकारका दूसरा भेद है। वही अलंकार यहाँ है। इस उदाहरणके उत्तरार्द्ध में 'मानहु' शब्द होतेहुए भी उत्प्रेक्षा नहीं है क्योंकि हाथी हथिनीकी समकल्पना इसमें नहीं कथन कीगई केवल शिक्षाका आरोपण कियागयाहै। २—वीर०—शिक्षाकी कल्पना 'अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा' है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'परिशंकनीया' और 'परिरक्षणीया' के ही यहाँके तीनों पद प्रतिरूप या उल्थाही समझना चाहिए।

मा० म०—स्त्री, शास्त्र, नृपको अपने वशमें न समझना चाहिए। उदाहरण ये हैं—पिता दशरथ महाराजकी आज्ञापालनकेलिए वनवास करनापड़ा अर्थात् राजा विश्वसनीय नहीं होता क्योंकि पुत्रके साथ ऐसा बर्ताव किया। वसंतभी राजा है, दुःख देता है। वेदभी अभ्यास बिना संग त्याग देताहै अर्थात् विस्मरण होजाताहै यद्यपि भलीभाँति अध्ययन कियाहुआहै। और, स्त्रीका विरह-दुःख प्रत्यक्ष ही है अतएव इन तीनोंको वशमें न समझनाचाहिए।

२—पहले कहा कि हाथी मानों शिक्षा देतेहैं फिर चार चरणोंमें उस शिक्षाका स्वरूप कहाहै। ३—खर्रा—(क) यह उपदेश पुरुष देतेहैं कि तुम्हारे तो हाथ हैं, हाथ पकड़े चलते तो कैसे, जाती। (ख) —'भय उपजावा' इसका कारण आगे कहतेहैं कि 'बिरह। बगमेल'। (ग) यहाँ दिखाया कि कोई शिक्षा देतेहैं, कोई लोभी आदि कहकर निंदा करतेहैं और कोई भय देतेहैं। (घ) 'बसंत सुहावा'। सुहावा कहकर दुःखदायी जनाया क्योंकि बिरहीको सुहावनी वस्तु भयदायक होतीहै। भय यह भी कि बिना हमारे सीताजी वसन्तमें कैसे रह सकेंगी, यथा—'श्यामा पद्मपलाशाक्षी मृदुभाषा च मे प्रिया। नूनं वसंतमासाद्य परित्यक्ष्यति जीवितम्॥'—(वा० कि० स० १)। ४—शिला—खगमृग छोटेहैं अतः उनका निंदा करनाकहा, हाथी बड़े हैं अतः उपदेश देतेहैं।

दीनजी—वसन्त आदि कामोद्दीपक पदार्थोंको देखकर कुछ भय होताहै यह वियोगकी १० दशाओंमेंसे एक दशा है।

बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल॥
देखि गएउ भ्रातासहित तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहु तब कटकु हटकि मनजात॥◊३७/३१॥

* दश दशाएँ, यथा—'अभिलाषश्चिन्तास्मृति गुणकथनोद्वेगसंप्रलापाश्च। उन्मादोऽथ व्याधिर्जडतास्मृतिरिव दशात्र कामदशाः॥—साहित्यदर्पण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शब्दार्थ—ब०§३०५, आ०§१८ देखिए।

अर्थ—मुझे विरहसे व्याकुल, निर्बल और बिलकुल अकेला जानकर कामदेवने भौंरों और पक्षियोंसहित वनमें चढ़ाईकी (धावा किया)। उसका दूत पवन मुझे भाईसहित (अर्थात् अकेला नहीं) देखगया, तब मानों उसकी बात सुनकर कामदेवने सेनाको रोककर डेरा डालदिया।

नोट १—'सहित बिपिन मधुकर खग००' इति। भाव कि कामी विरही लोगोंमें भ्रमरकी गुंजार, पक्षियोंकी बोली उनके रंग रूप अंग आदिकी सुंदरता ये सभी विरह और कामको उद्दीपन करनेवाले होते-हैं, उनसे वियोगीका विरह-विषाद बढ़ताहै।

२ पु० र० कु०—(क) जहाँ कामकी चढ़ाई होतीहै वहाँ वसन्त सेनासहित रहताहै—

(१) 'तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ। निजमाया बसंत निरमयऊ'

(२) 'कुसमित बिबिधि बिटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गुंजहि भृंगा'

चली सुहावनि त्रिबिधि बयारी। कामकृसानु बढावनिहारी'

(३) 'भूपबागबन देखेउजाई। जहँ बसंत रितु रही लुभाई।

लागे बिटप मनोहर नाना। बरन २ बर बेलि बिताना॥

नवपल्लव फल सुमन सुहाए। निज संपति सुरूख लजाए।'

चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहग नटत कल मोरा॥...

मानहु मदन दुदुभी दीन्ही तथा यहाँ 'देखहु तात बसंत सुहावा। प्रियाहीन मोहि भय उपजावा' और 'बिरहबिकल००' कहा। (ख)—'तासु-दूत सुनि बात'। दूत यहाँ पवन है, यथा—'त्रिबिधि समीर बसीठी आई'; बसीठी दूत द्वारा होतीहै, यथा—गयेउ बसीठी बीरबर जेहि बिधि बालिकुमार' (ग)—'मदन कीन्ह बगमेल'। भाव कि जैसे किसी राजाको निर्बल देख दूसरा उसके ऊपर चढ़ाई करताहै वैसेही मानों मुझे बलहीन और अकेला जान कामने चढ़ाईकी, ऊपर चढ़ही आयाथा पर जब उसे मालूम हुआ कि मेरे साथ एक बड़े प्रबल साथी हैं जिनसे वह जय नहीं पासकता तब वहीं रुक गया।

(घ) 'मनजात' मनसे उत्पन्न है, सो लक्ष्मणजीके मनसे कामकी उत्पत्ति नहीं होसकती। (ङ)—पूर्व जो कहाहै कि 'बिरही इव प्रभु करत बिषादा' वही दिखातेरहेहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३ खर्रा—(क) 'देखि गयउ भ्राता०'। भाव यह कि दूसरेके रहने पर काम ज़ोर नहीं करता अकेलेमें ज़ोर करताहै। (ख) बसीठी भेजनेमें 'बयारि' पद दिया जो स्त्रीवाचक है क्योंकि स्त्रीद्वारा पुरुष शीघ्र कामके वश होताहै।

बिटप बिसाल लता अरुझानी।
बिबिध बितान दिये जनु तानी॥ ३७।३१ (१)
कदलि ताल बर धुजा पताका।
देखि न मोह धीर मन जाका॥ ,, (२)
बिबिध भाँति फूले तरु नाना।
जनु बानैत बने बहु बाना॥ ,, (३)
कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुहाये।
जनु भट बिलग बिलग होइ छाए॥ ,, (४)
कूजत पिक मानहु गज माते।
ढेक महोष ऊँट बिसराते॥ ,, (५)
मोर चकोर कीर बर बाजी।
पारावत मराल सब ताजी॥ ,, (६)
तीतिर लावक पदचर जूथा।
बरनि न जाइ मनोज बरूथा॥ ,, (७)
रथ गिरि सिला दुंदुभी झरना।
चातक बंदी गुनगन बरना॥ ,, (८)
मधुकर मुषर भेरिसहनाई।
त्रिबिधि बयारि बसीठी आई॥ ,, (९)
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हे।
बिचरत सबहि चुनौती दीन्हे॥ ,, (१०)

ढेक=पानीके किनारे रहनेवाली एक चिड़िया जिसकी चोंच और गरदन लंबी होती है। महोखा—यह पक्षी कौएके बराबर होताहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विशेषकर उत्तरी भारतमें झाड़ियों और बँसवाड़ियोंमें मिलताहै। चोंच पैर और पूँछ काली, आँखें लाल और सिर, गला और डैने खैरे रंगके या लाल होते हैं, कीड़े मकोड़े खाताहै। बोली तेज और लगातार होतीहै। बिसरात=(सं० वेशरः) खच्चर।

अर्थ—बड़े-बड़े वृक्षोंमें लताएँ लपटी हुईहैं मानों अनेक तंबू तान दिएगएहैं। सुंदर केले और ताड़ [के वृक्ष] ध्वजा पताका हैं। इन्हें देखकर जिसका मन मोहित न हो वही धीर पुरुष है†। अनेक वृक्ष अनेक प्रकारसे फूलेहुएहैं, मानों बहुतसे बाना धरणकिएहुए बाने-बंद बने सोभित हैं। कहीं २ सुंदर वृक्ष शोभा देरहेहैं मानों योधा हैं जो (सेनासे) अलग २ होकर छावनी डालेहैं अर्थात् ठहरे हैं। कोयल बोलती है वही मानों मतवाले हाथी [चिंघाड़ते] हैं। ढेक पक्षी और महोख मानों ऊँट और खच्चर हैं। मोर, चकोर तोते कबूतर और हंस ये सब सुंदर उत्तम ताजी' घोड़े हैं। तीतर, लवा पैदल सिपाहियोंका झुंड है। कामदेवकी सेनाका वर्णन नहीं होसकता। पर्वतकी शिलाएँ [चट्टानें] रथ हैं, पानीके झरने नगाड़े हैं, चातक [पपीहा] भाट हैं जो गुणगण [विरदावाल] वर्णन कर रहेहैं। भौरोंकी गुंजार [बोली] भेरी और शहनाई हैं। शीतल मंदसुगंध तीनों प्रकारकी आतीहुई वायु दूतका आनाहै। चतुरंगिनी सेना साथ लिए हुए सबको चुनौती देता [ललकारता] हुआ विचररहाहै।

पु० र० कु०—१ 'कदलि ताल'। केला छोटा होताहै ताड़ बड़ा, वैसेही ध्वजा और पताका। २—'जनु बानैत बने बहु बाना' इति। सिपाही अनेक अस्त्र शस्त्र धारण किएरहतेहैं, जैसे धनुष बाण खड्ग शक्ति त्रिशूल आदि, उनके अनेक रंगरंगके पृथक् २ यूथ होतेहैं, अनेक प्रकारकी वर्दियाँ होतीहैं, इत्याद भावसे 'बने बहुबाना' कहा। (फूल बाण हैं)—[करु०]।

खर्रा—यहाँ प्यादा, पैदल न कहकर 'पदचर' साभिप्राय पद दिया-है। तीतर और लावक पदसे बहुत चलतेहैं; अतएव 'पदचर'-पद दिया। अर्थात् जो पैरसे चले।

३—(क) काली कोयल रसालपर बैठीहै, वसन्त है, बौर फूल-रहाहै, यह बौरही मानों सोनेकी सीकड़ (जंजीर) है। पवन लगने

† वा, जिसका मन धीर है वही मोहित न होगा। रा०प०में काका' पाठ है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से हिलतीहै अतः 'गजमाते' कहा। (ख) परावत मराल ये झुन्डके-झुन्ड साथ रहतेहैं। (ग) यहाँ सेना पड़ीहुईहै। इसीसे रथको गिरि-शिला कहा (अचल)।

४—'चातक बंदी गुनगन बरना' इति। यह कामका क्या गुणगण कहताहै? चातक 'पियपिय' कहताहै अर्थात् तुम सबको प्रिय हो क्योंकि सुन्दर हो, सुखरूप हो, यथा—'समुझि कामसुख सोचहिं भोगी'। पुनः, कहताहै कि पिय हो अर्थात् सबके पति तुमही हो, तुमसेही सबकी उत्पत्ति है। बन्दी गुणगण वर्णन करतेहैं, यथा—'बन्दी वेद पुरानगन कहहिं बिमल गुनग्राम'। वेद पुराण प्रयागका यश गातेहैं और चातक कामका गुण गातेहैं।

५—हमको देखकर पहले कामने डेरा डलवादिया, यथा—'देखि-गपउ भ्रातासहित तासु दूत सुनि बात। डेरा कीन्हेउ...'। अब वहाँसे हमारे यहाँ बसीठी लाया—'त्रिविधि बयारि बसीठी...'। 'आई' अर्थात् वहाँसे (कामके पाससे) चलकर आई है कि कामके शरणहो चलकर, यथा-'चली सुहावनि त्रिबिधि बयारी। काम कृसानु बढ़ावनि-हारी'। तात्पर्य कि त्रिविधि हवा लगनेसे कामोद्दीपन होताहै। कामकी सेना पञ्चविषययुक्त है इसीसे सबको विषयी करदेतीहै—(§.३८ (३) देखो)।

६—'चतुरंगिनी सेन'—गजमातेसे 'गजदल' 'बर बाजी' से घोड़े, 'तीतर' आदि पदचर और रथ 'गिरिसिला' ये चारों मिलनेसे चतुरं-गिनी सेना हुई। ७—'बिचरत सबहि चुनौती दीन्हे'। बिचरतसे जनाया कि योधा खोजताफिरताहै, पर कोई मिलता नहीं, यथा—'रनमदमत्त फिरइ जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ नहिं पावा'।

लछिमन देखत काम अनीका।
रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका॥ ३७/३१ (११)
एहि के एक परम बल नारी।
तेहि तेउबर सुभट सोइ भारी॥ ,, (१२)

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिज्ञानधाम मन करहिं निमिष महँ छोभ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लोभके इच्छा दंभबल काम के केवल नारि।
कोधके परुषबचन बल मुनिबर कहहिं बिचारि॥ ३८/३२

अर्थ—हे लक्ष्मण! कामकी सेना देखकर जो धैर्य्यवान बने रहतेहैं उनकी संसारमें साख है, संसारमें उनकी धीरोंमें प्रसिद्धि और गणना है। स्त्री इस (कामदेव) का एक (प्रधान, अद्वितीय) परमबल है; उससे जो बचजाय वही बड़ा योद्धा है। हे तात! कामक्रोध लोभ ये तीन बड़े प्रबल दुष्ट हैं, विज्ञानके धाम ऐसे मुनियोंके मनको भी पलमात्रमें ये विचलित करदेतेहैं। इच्छा (चाह) और दम्भ लोभका बल है, कामका बल एक स्त्रीही है, क्रोधका कठोर वचन बल है—मुनिश्रेष्ठ विचारकर ऐसा कहरहेहैं।

पु० र० कु०—'लछिमन देखत काम अनीका...' इति। (क)—कामकी सेना कहनेलगे तब लक्ष्मणजीसे उसे देखनेको न कहा और वसन्त एवं वनकी बहार देखनेलगे तब उनसेभी देखनेको कहा,—'देखहु तात बसन्त सुहावा' 'लछिमन देखु बिपिनकी सोभा' और यहाँ कहा 'लछिमन देखत काम अनीका' कामसेना, वन और वसन्त तीनोको पृथक् पृथक् वर्णन किया और तीनोंके वर्णनमें लक्ष्मणजीको सम्बोधन करके तीनोंकी विलक्षणता या अद्भुतता दर्शित की'। (ख) 'रहहिं धीर... अर्थात् इस सेनाको देखकर वीर भाग जातेहैं, यथा—'भागेउ बिबेक सहायसहित सो सुभट संजुग महिमुरे'। जोन भागे, धीर बने रहें, उनकी जगत्में भटोंमें गिनतीहै। लीक=रेखा गणना, यथा—'भट महँ प्रथम लीक जग जासू'। (ग) पूर्व कहाथा कि 'देखत केहि कर मन नहिं छोभा' उसीका यहाँ सँभार करतेहैं कि 'देखि न मोह धीरमन जाका' और 'रहहिं धीर तिन्ह...'। यथा—'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः' इति कुमारसंभवे। (घ) यह मानों लक्ष्मणजीकी बड़ाई है।

२—'एहिके एक परम बल नारी' इति। (क)—चतुरंगिनी सेना जो कहआए वह बल है। और 'नारी' परमबल है।—(रा० प० 'परमबल' का भाव कि ब्रह्मदत्त शक्तिसेभी अधिक बलवान्है, कामदेवके पंचवीरोंका समूह इसमें बसताहै।) वै०—नारी नरकी अर्धांगिनीहै जब वह आधी सेना नरकी काम रूपी शत्रुसे मिलगई तब उससे जय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पाना बड़े वीरकाही कामहै पुनः, इसीके द्वारा कामके पंचवाण चलतेहैं। यथा—चालमें आकर्षण, चितवनमें उच्चाटन, हसीमें मोहन बोलनिमें वशीकरण और रतिमें मारण। ३—खर्रा—अपने पुरुषार्थ द्वारा काम बलीहै सेवा द्वारा प्रबल और नारी द्वारा परम वा अति बलीहै।]

(ख)—'जनु भट बिलग २ होइ छाये।' यह चतुरंगिनी सेना है इससे जो लड़े वह भट है ऊपर कहआए कि इनके मुकाबले खड़ा-रहजाय उसकी भटमें गणनाहै और अब कहतेहैं कि इनसे जो जीते वह सुभट है। और जो 'नारि रूपी कामके 'प्रबल बल' प्रबल सेनाको जीतले, उससे बच जाय, वह तो भारी सुभट' है। इस प्रकार यहाँ धीर भटसुभट और भारी सुभट दिखाए।

३—'तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ...' इति। (क)—यथा—'काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि। तिन्ह महँ अति दारुन दुखद माया रूपी नारि'। पहले कहा कि 'एहिके एक परम बल नारी' और अब कहतेहैं कि काम क्रोध और लोभ ये तीनों अत्यन्त प्रबल खल हैं। कामकेही प्रकरणमें तीनोंको कथन करने का भाव यह है कि एक कामही ये तीन रूप धारणकिएहै—कामै क्रोध लोभ बनि दरसै तीनौ एकै तनमें (काष्ठजिह्वास्वामी)।—(ख)एकएकका बल पृथक् पृथक् बतातेहैं कि लोभके इच्छा दंभ बल' कामके केवल नारि बल' और क्रोधके परुष बचन बल'—तीनों अपनी इसइससेना के बलसे अति प्रबलहैं। (ग) इस प्रकरणमें इन तीनोंकी प्रधानता कहीगई—यथा—(१) 'तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ इसमें, 'काम' को प्रथम कहकर कामकी प्रधानता कही। 'लोभके इच्छा दंभ बल कामके केवल नारि। क्रोधके००', इसमें लोभ को प्रथम कहकर उसको प्रधान जनाया। और, क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहि००' में क्रोधको प्रधान किया। इस प्रकार तीन ठौर पृथक् २ एकको प्रथम लिखकर तीनोंको एकसे प्रधान और अति प्रबल बताया। कोई एक दूसरेसे कम नहीं है।

४—'मुनि बिज्ञान धाम मन करहिं००' यथा—'भयउ ईस मन छोह बिसेषी'। 'नारद भव बिरंचि सनकादी। जे मुनिनायक आतम-वादी॥...को जग काम नचाव न जेही।...केहि कर हृदय क्रोध न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दहा। ज्ञानी तापस सूर कवि कोविद गुन आगर। केहिके लोग बिडंबना कीन्ह न पहि संसार॥'—(उ० §६९-७०)। विज्ञान धाम श्रीनारदजी सो कन्याको देख कामवश हुए, फिर उसके पानेकी इच्छा की, न मिली तब क्रोध किया। मुनिवर इस बातको जानतेहैं इससे वे साक्षात् नहीं जीते जाते।

५—(क) 'लोभके इच्छा दंभबल००' का भाव कि ज्योंही पंच विषयोंमेंसे किसीकी भी चाह मनमें हुई और उसकी प्राप्तिके लिए दंभ रचागया कि लोभ की जय हुई स्त्रीसे संभाषण व्यवहार, प्रीति हुई कि कामकी जय हुई और कठोर वचन मुखसे निकले कि क्रोधकी जय हुई। (ख)। (पं० रा० व० श०)—अपनेको अच्छे सुशील, जितेन्द्रिय, महात्मा इत्यादि जतानेकी इच्छाही दंभहै। यहाँ काम क्रोध लोभको जीतनेके उपायका उपदेश हुआ। जो काम क्रोध लोभके बलको सदैव दृष्टिमें रखेंगे वह उनको वशमें रखसकतेहैं। जैसे यह इच्छा उठे कि यह मिले उसे दबाओ; स्त्रीका खयाल भी मनमें न आने दो यह काम को जीतनेका उपाय है। कठोर वचन सुनकर उसको उत्तर न दो, कठोर वचन न बोलने, यह क्रोधके जीतनेका उपाय है।

गुनातीत सचराचर स्वामी।
राम उमा सब अंतरजामी॥ § ३८/३२ (१)
कामिन्ह कै दीनता देषाई।
धीरन्ह के मन बिरति दृढाई॥ ,, (२)
क्रोध मनोज लोभ मद माया।
छूटहिं सकल रामकी दाया॥ ,, (३)
सो नर इंद्रजाल नहिं भूला।
जा पर होइ सो नट अनुकूला॥ ,, (४)
उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।
सत हरि भजन जगत सब सपना॥ ,, (५)

शब्दार्थ—सचराचर=चर अचरसहित जितना प्रपंच है। गुणातीत—सारा प्रपंच त्रिगुणमय है, शोक हर्ष इत्यादि सब गुणकेही कार्यहैं, भगवान् रामजी इनसे परेहैं। दीनता=दीन-हीन दशा। दुःखसे उत्पन्न अधीनताका भाव, संतप्त दशा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—हे उमा! रामजी त्रिगुण (सत् रज तम) से परे, चराचरमात्रके स्वामी और सबके अन्तःकरणको जाननेवालेहैं। उन्होंने कामी लोगोंकी दीन दशा दिखाकर धीर पुरुषोंके मनमें वैराग्यको दृढ़ कियाहै (कि वैराग्य छोड़ स्त्रीमें प्रेम करोगे तो इस दीन दशाको प्राप्तहोगे)। क्रोध, काम लोभ, मोह, मद और माया ये सबके सब रामजीकी कृपासे छूटजातेहैं। जिसपर वह नट प्रसन्न होताहै वह मनुष्य इन्द्रजालमें नहीं भूलता। हे उमा। मैं अपना अनुभव कहताहूँ कि हरिभजन सत्य है। और सब जगत् स्वप्नवत् (झूठा) है।*

खर्रा—भाव कि जो त्रिगुणसे परे सचराचरके भीतरबाहर व्याप्त है उसमें अज्ञान कैसे संभव है? तब ऐसा रुदन आदि क्यों करतेहैं उसका समाधान करतेहैं कि 'कामिन्ह कै०'।

पु० र० कु० १'कामिन्ह की दीनता दिखाई' इति।—'देखहु तात बसंत सुहावा। प्रियाहीन मोहि भय उपजावा' और बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल' यह अपने द्वारा कामियों की दीनता (दीन दशा) दिखाई और धीरोंके मनोंमें वैराग्य को दृढ़ किया। बिरही बनकर दोनोंही बातें दिखाईं। 'देखि न मोह धीर मनजाका' और 'रहहिं धीर तिन्हकै जग लीका' यह जो पूर्व बचनका सँभार किया यह धीरजनोंमें वैराग्यको दृढ़ करनेवालाहै। भाव कि जो कामी होतेहैं उन्हें इसी तरह क्लेश होतेहैं। जब परात्पर ब्रह्मकोभी संसारमें इसप्रकार संकट सहनापड़े तब हमको तो संसारके सारे पदार्थ असार जानकर छोड़ही देनाचाहिए, इनमें कभी आशक्ति न होने दें। भा० स्क० ९ श्ल० ११ में भी यही भावहै—'भ्रात्रा वने कृपणवत्प्रियया विमुक्तः स्त्रीसंङ्गिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार' अर्थात् स्त्री संगकरनेवालों को ऐसा दुःख होताहै यह जगत्को दिखानेके लिए प्रियके विरहसे विलाप करतेहुए दीनोंकी भाँति भाईके साथ सीताजीकी खोजमें बनबन घूमरहेहैं। देखिए दोहावलीमें क्या लिखतेहैं—'जन्मपत्रिका बरति कै देखहु मनहिं बिचारि। दारुन बैरी मीचुके बीच बिराजति नारि॥'

* -श्रीरामकृपया क्रोधः कामद्यास्तत्क्षणं तथा। नश्यन्ति राममायायां मभोहितो न भवत्यपि॥१॥ प्रिये स्वकीयानुभवं वदामि तवाग्रतो राघवदेवभक्तिः। सत्या समस्तं च जगद्धि मिथ्या स्वप्नो यथा भाति तथा विदां वै॥'२॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायाम्।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२६८ ॥ अर्थात् जन्मकुंडलीका व्यवहार करके मनमें विचार देखो कि स्त्रीका स्थान (सातवाँ) दारुण शत्रु और मृत्युके स्थानोंके बीचमेंहै अर्थात् कठिन शत्रुता और मृत्यु दोनों इसके द्वारा होतेहैं। पुनः यथा 'रमे तथा चात्म रतः आत्मामोप्प खण्डितः। कामिनां दर्शयन्दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम्' इति भागवते।

२—'क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं...' इति। (क)—भगवान् शङ्करजी कहतेहैं कि रामजीकी कृपाकटाक्षसे क्रोधादि सब छूटजातेहैं तब भला उनको काम क्रोधादि विकार कैसे छूसकतेहैं?—'जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई' जासु नाम भ्रमतिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिय बिमोहय प्रसंगा'—ब० §११७ (३) §११५ (४) देखिए। (ख)—रामजीकी दयासे छूटतेहैं * तो प्रश्न हुआ कि दया कैसे हो? उत्तर—(क) उनकी भक्तिकरनेसे, यथा—'कहहु सो भगति करहु जेहि दाया' पुनः, यथा—

'भगतिहि सानुकूल रघुराया। तातें तेहि डरपति अति माया॥
रामभगति निरुपम निरुपाधी। बसइ जासु उर सदा अबाधी॥
तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई॥
अस बिचारि जे मुनि बिज्ञानी। जाचहिं भगति सकल सुखखानी॥
यह रहस्य रघुनाथकर बेगि न जानइ कोइ।
जो जानइ रघुपतिकृपा सपनेहु मोह न होइ॥—(उ० ११६

अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटइ राम करहु जौं दाया॥
नारिनयनसर जाहिं न लागा। घोर क्रोधतम निसि जो जागा॥
लोभपास जेहि गर न बधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया॥
यह गुन साधन ते नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई॥ कि० §२१
गुनकृत संनिपात नहिं केही। कोउ न मान मद तजेउ निबेही—उ§७०

(ग)—कामकी सेना पंच विषययुक्त है। (१) रूप विषय 'देखि न मोह धीर मनजाका'—(२) रस—'दुंदुभी झरना'। झरनामें जल होताहै और 'जल बिनु रस कि होइ संसारा'। ३ गंध—'बिबिध भाँति फूले तरु नाना'। ४—शब्द—'कूजत पिक मानहुँ गजमाते' ५—स्पर्श-

* और कामादि सब मायाका परिवार है—'यह सब मायाकर परिवारा'। जब मायाही डरतीहै तब परिवार किस गिनतीमें है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'बिबिधिबयारि बसीठी आई'। यथा—'परस कि होइ बिहीन समीरा' पंचविषययुक्त होनेसे जो देखतेहैं वे विषयी होजातेहैं।

नोट—वनकी लीला अरण्य, किष्किंधा और सुन्दर तीन काण्डोंमें कहीगई। इन तीनों काण्डोंमें रघुपतिकृपासेही कामादिक विकारोंका छूटना संभव कहागयाहै। आ०, कि० के प्रमाण ऊपर आहीगए। सुन्दरमें सुनिए—

'तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मतसर मद नाना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा॥
ममता तरुन तमी अँधियारी। रागद्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लगि बसत जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं॥
तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला। ताहि न व्याप त्रिबिध भवसूला। ४६

३—'जा पर होइ सो नट अनुकूला' इति। 'यथा—'जथा अनेक बेष धरि नृत्य करै नट कोइ। सोइ सोइ भाव दिखावै आपुन होइ न सोइ॥ नटकृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न व्यापइ माया॥ नट क्योंकर अनुकूल हो यह आगे अपने अनुभवसे बतातेहैं।

४—'सत हरिभजन जगत सब सपना' इति। क—प्रथम रामचरितको इन्द्रजालके समान कहा। इन्द्रजाल झूठा होताहै इससे रामचरितमें मिथ्यात्वकी शंका हुई अतएव उसकी निवृत्तिकेलिए कहते हैं कि 'सतहरि भजन···'। जगत स्वप्नवत् झूठ है पर सत्यसा मालूम होताहै। हरिभजन सत्यहै अतः झूठकोत्यागकर सत्यको ग्रहण करो यह उपदेश है। ख—'इन्द्रजाल झूठा होताहै पर जहाँ वह होताहै वह जगह सत्य है और यहाँ इन्द्रजाल सत्य है जगह (संसार) झूठी है। [इन्द्रजाल तंत्रका एक अंग है। मायाकर्म या जादूगरी।] (ग) 'अनुभव अपना' का भाव कि और महात्माओंका चाहे और अनुभव हो, जैसे किसी २ का मत है कि जगत सत्य है, यथा—'कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ युगल प्रबल करि मानै'—[कर्म उपासना देशमें सत्यहै इसीसे याज्ञवल्क्य और भुशुण्डि द्वारा यह न कहलाया। ज्ञानमें असत्य है इसीसे शिवउमा संवाद यहाँ रखा।—(खर्रा)] (घ) हरिभजनसे स्वप्नका नाश है, यथा—'जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई'। (ङ) 'उमा' संबोधनका भाव कि इसी लीलाको देखकर सतीजीको मोह हुआथा—'खोजइ सो कि अज्ञ इवनारी। ज्ञानधाम श्रीपति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

असुरारी'। अतः इस प्रकरणमें उमा संबोधन दिया।—'सुनहु उमा ते लोग अभागी', 'राम उमा सब अंतरजामी' "उमा कहौं मैं अनुभव अपना'। अर्थात् जहाँसे सीताजीको खोजना प्रारंभ हुआहै वहाँसे 'उमा' कोई बराबर संबोधन कियाहै। 'आश्रम दीष जानकी हीना' से इस काण्डकी समाप्ति तक यही संबोधन है।

खर्रा—'सत हरिभजन जगत सब सपना', इस कथनका प्रयोजन यह है कि हरिजन सत्य है, इसमें चित्त देना चाहिए और जो विरहादि जगत्-व्यवहार प्रभु कररहेहैं वे स्वप्नरूप हैं उनपर दृष्टि न डालनी चाहिए' यथा—'रामहिं भजिय तर्क सब त्यागी'।

मा० म०—'कामिन्ह कै दीनता देषाई' अर्थात् जो स्त्रीके विश्वासी हैं उनकेलिए उपदेश है कि कामवश स्त्रीका विश्वास न करो नहीं तो जैसे मुझे दुःख वैसेही असह्य दुःख होगा। फिर यह भी उपदेश किया कि स्त्री निरन्तर साथ रहे यदि बिछुड़ जाय तो उसके मिलनेका अभंग उपाय करना चाहिए। 'धीरन्हके मन विरति दृढाई' अर्थात् जो स्त्रीके चितवन-बाणसे अधीर नहीं होते उनको उपदेश किया कि सदैव निसोत (असंग) रहनाही कर्त्तव्य है क्योंकि संगमें असह्य दुःख होताहै।

पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा।
पंपा नाम सुभग गंभीरा॥ ३८/३३ (६)
संत हृदय जस निर्मल बारी।
बाँधे घाट मनोहर चारी॥ ,, (७)
जहँ तहँ पिअहिं बिबिधमृग नीरा।
जनु उदार गृह जाचक भीरा॥ ,, (८)

पुरइनि †सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म।
मायाछन्न न देखिअै जैसे निर्गुन ब्रह्म॥
सुखी मीन सब एकरस अति अगाधजलमाहिं।
जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं॥ ३९/३३

† परइनि—(का०, न० प्र), पुरैनि—(भ० द)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—फिर प्रभु पंपा नामके सुंदर और गहरे सरोवर (तालाब) के तटपर गए ‡। सन्त-हृदय जैसा उसका जल निर्मल है, मनको हरनेवाले चार सुन्दर घाट बाँधेगएहैं, अनेक प्रकारके अनेक पशु जहाँतहाँ जल पीरहेहैं (वे ऐसे मालूम होतेहैं) मानों दाताके घर भिक्षुकोंकी भीड़ लगीहो। घनी पुरइनकी आड़में जलका शीघ्र पता नहीं मिलता जैसे मायासे ढके होनेसे निर्गुण ब्रह्म नहीं दिखता (भासित होता)। सब मछलियाँ अत्यन्त गहरे जलमें एकरस सदा सुखी रहतीहैं जैसे धर्मात्मापुरुषोंके दिन सुख सहित बीतते हैं।*

पु० र० कु०—१ 'पुनि प्रभु गये' में 'पुनि' पद देकर प्रसंगको पूर्व प्रसंगसे पृथक् किया। यहाँ तक 'जेहि बिधि गए सरोवरतीरा' प्रसंका हुआ। अब सरका वर्णन करतेहैं। गंभीर=अगाध, गहरा। निर्मलसे जनाया कि काई आदि कुछ उसमें नहीं है, हृदयका मल विषय है और विषयको काई कहाही है, यथा—'काई बिषय मुकुर मन लागी पुनः, जलका मल 'संबुक भेक सिवार' है और हृदयको मलिन करने-

‡ पंपा नामकी नदीसे पंपासर बना। इसीसे यह नाम पड़ा। पंपानदी अब कौनसी नदी है और ऋष्यमूकपर्वत कहाँ है यह ठीक निश्चय नहीं होता। विलसनसाहब लिखतेहैं कि यह नदी ऋष्यमूकसे निकलकर तुंगभद्रामें मिलगईहै। रामायणसे पता लगताहै कि ऋष्यमूक और मलय पास पास थे। आजकल ट्रावनकोर राज्यमें एक नदीका नाम पंबे है जो पश्चिमीघाटसे निकलतीहै जिसे वहांवाले 'अनमलय' कहतेहैं। अस्तु यही नदी पंपा जानपड़तीहै।—(श० सा०)। प्र० का मत है कि इसमें पंकजका पालन होनेसे पंपा नाम हुआ। वंदनपाठकजी कहतेहैं कि यह ब्रह्मकृत दिव्य सर है।

* 'श्रीपंपासरस्तीरं गतो रामः स लक्ष्मणः।
जलं तत्सरसः स्वच्छं यथा सज्जनमानसम्।
सरसः परितो घट्टाबद्धाश्चत्वार उत्तमाः॥
यत्रतत्र मृगानीरं पिबन्ति विविधाः खलु।
यथा दातुर्गृहं यान्ति याचका बहवस्था॥
न दृश्यते जलं यस्य पद्मपत्रावृतं मुने।
माया मूढा यथा ब्रह्म नेक्षन्ते निर्गुणं तथा॥
सर्वे एकरसा मीनाः सुखिनो बहुले जले।
दिनानि धर्मशीलानां यथा यान्ति सुखेन हि॥'—(र० ब)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाली विषयकथा है। संत न विषय सेवन करें न विषयकी कथा सुनें। पुनः निर्मलका भाव कि अगाध होनेपरभी नीचे भी मल नहीं हैं, नीचे-की भूमि स्वच्छ देखपड़तीहै जैसे संतका हृदय भीतरसे छलकपट रहित होताहै।

२—'जनु उदारगृह जाचक भीरा' अर्थात् जैसे उदारदानीके घर सभी माँगनेवाले पातेहैं वैसेही यहाँ सभी जीवोंके जल पीनेका गँव है, कोई विमुख नहीं जाता।

३ (क)—'पुरइनि सघन ओट जल००' इस दोहेमें जलको निर्गुण-ब्रह्मसम कहा और आगे सगुण होना कहतेहैं—'बिकसे सरसिज नानारंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा'। (ख) 'जैसे निर्गुन ब्रह्म' इस कथनका भाव यह है कि 'सगुण ब्रह्म मायाकी आड़में देखपड़ता-है पर निर्गुण नहीं देखपड़ता। (ग) जैसे जल निराकार है। जब जलका गुण कमल प्रकट हुआ तब पक्षी उसे देखकर बोलते और सुखी होतेहैं, भ्रमर रसका पान करतेहैं; वैसेही निर्गुण ब्रह्म जब सगुण हुआ तब वेद और मुनिजन गुणगान करतेहैं, भृत्य छवि-मकरंदका पान करतेहैं, यथा—'बोलत खगनिकर मुखर मधुर करि प्रतीति सुनहु श्रवन प्रानजीवनधन मेरे तुम बारे। मनहु बेदबंदी मुनिबृंद सूतमागधादि बिरुद बदत जय। जयति कैटभारी। बिकसित कमला-वली चले प्रपुंज चंचरीक गुंजतकल कोमल धुनि त्याग कंज न्यारे। जनु बिराग पाइ सकल सोक कूपगृह बिहाय भृत्य प्रेममत्त फिरत गुनत गुन तिहारे'—(गी०)। पुनः यथा—'फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म संगुन भये जैसा'॥ गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुन्दर खग=ख नाना रूपा॥'

४—'जथा धर्मसीलन्हके दिन सुख संजुतजाहिं"। (क)—धर्म का फल सुख है, यथा—'बरनाश्रम निज२ धरम निरत बेदपथ लोग चलहिं सदा पावहिं सुख नहि भय सोक न रोग' (उ०)। पुनः यथा—'तिमि सुखसंपति बिनहिं बुलाये। धर्मसील पहिं जाहि सुभाए"—सब दुखबरजित प्रजा सुखारी। धर्मसील सुन्दर नर नारी' इत्यादि।

(ख) यहाँ धर्मशीलोंके दिनोंसे मछलियोंके सुखकी उपमा दी और किष्किन्धामें कहाहै कि 'सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हरिसरन न एकउ बाधा'। इससे जनाया कि यहाँ बाधा है। धर्मशीलोंके दिन सुखसे 'जाहि' अर्थात् बीतजातेहैं, पुण्य क्षीण होजाताहै तब वे मर्त्यलोकमें पुन; आपड़तेहैं और हरिशरणमें कोई बाधा नहीं, यथा—न मे भक्त: प्रणश्यति ॥

(ग) खर्रा—'सुखी मीन सब' कहा इसीसे 'धर्मशीलन्ह' बहुवचन पद दिया। सब प्रकारके धर्मात्मा सब मीन हैं। धर्मका फल सुखहै, यथा—'बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेदपद लोग। चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहि भय सोक न रोग'। धर्म और हरिशरण जल है। अति अगाधका भाव कि धर्म अत्यन्तभी हो तो भी काल पाकर क्षीण होताहै और हरिभक्ति थोड़ीभी हो तो उसका नाश नहीं, यथा—'भगति बीज पलटै नहीं जौ जुग०'। इसीसे धर्मकरके भी भक्ति माँगना चाहिए।

खर्रा—जैसे पुरइनका एकही पर्त एकदो पत्तेही हटानेसे जल देखपड़ताहै वसेही अपने हृदयसे मायाका आवरण हटानेसे ब्रह्मका स्वरूप देखपड़ेगा, संसारभरकी माया हटानेकी ज़रूरत नहीं केवल अपनेही हृदयकी माया हटानाहै। पं० रा० व० श०—जिस तालाबमें पुरइन हो उसका जल बड़ा स्वादिष्ट, ठंडा और गुणकारक होताहै। पुरइनकी स्थिति जलकी सत्तासे है, यदि जलकी सत्ता न होती तो पुरइन हो नहीं सकतीथी, वैसेही मायाभी ब्रह्मकी सत्तासे है। पंच इन्द्रिय ही परदा हैं इनको हटादेनेसे हमें जगत् न देख पड़ेगा जो हमारी दृष्टिमें पहले आयाहै। किन्तु फिर तो ब्रह्मजलही देखपड़ेगा।

खर्रा—यहाँ शान्तरस कहतेहैं। पूर्व शृङ्गार कहकर पीछे शान्त कहने का तात्पर्य्य यह कि निकट आतेही कामका वेग शान्त होगया। इसीसे प्रथम शृङ्गार कहकर तब कहा।

बिकसे सरसिज नाना रंगा।
मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा ॥§ ३९/३३ (१)
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा।
प्रभु बिलोकि जनु करतप्रसंसा ॥ ,, (२)
चक्रवाक बक खगसमुदाई।
देखत बनइ बरनि नहिं जाई ॥ ,, (३)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुंदर खगगन गिरा सोहाई।
जात पथिक जनु लेत बोलाई॥ §$\frac{३९}{३३}$ (४)
तालसमीप मुनिन्ह गृह छाए।
चहुँ दिसि कानन बिटप सुहाए॥ ,, (५)

अर्थ—अनेक रंग बिरंगके कमल खिलेहुएहैं। बहुतसे भौंरे मधुर शब्दसे गुञ्जार कररहेहैं। जलमुर्गे और कलहंस ऐसे सुन्दर बोल-रहेहैं मानों प्रभुको देखकर उनकी प्रशंसा कररहेहैं। † चक्रवाक, बगले आदि पक्षियोंका समुदाय देखतेही बनताहै, वर्णन नहीं कियाजा-सकता। सुन्दर पक्षीगणकी बोली बड़ी सुहावनी लगतीहै। मानों रास्तेमें जातेहुए पथिक (बटोही, मुसाफिर) को बुलापलेतीहै। तालाबके पास मुनियोंने अपने आश्रम बनाएहैं। चारों ओर वनके वृक्ष शोभित होरहेहैं।

पु० र० कु० १—'बिकसे सरसिज'। इति। (क)—पुरइनको कहकर कमलको कहना चाहिए था पर ऐसा न करके बीचमें मछलियों का सुख वर्णन करने लगे। इसका तात्पर्य यह कि पुरइनकी ओटसे जल नहीं देखपड़ता और जलमें मछली है सोभी उनकी ओट नहीं देख पड़ती। [कमल कई रङ्गके, यथा—राजीव, कोकनद लाल होतेहैं, पुण्डरीक श्वेत, नीलोत्पल श्याम।—'पुरइनसे जनाया कि ब्रह्मको जाने, उसका निरूपण करे। और 'बिकसे सरसिज से' जनाया कि भगवान्‌की पूजा करे।—(खर्रा)]

(ख)—कमलका पूर्ण स्नेही भ्रमर है, उसके बाद जलपक्षीकी स्नेहीमें गणना है, यथा—'बाल चरित चहुँ बंधुके बनज बिपुल बहु-रंग। नृपरानी परिजन सुकृत मधुकर बारि बिहंग'—ब० § ४० देखिए। २—जनु करत प्रसंसा'। क्या प्रशंसा करतेहैं? यह कि बड़े कृपालु हैं हमकोभी दर्शन दिए।—§३८ (६-८) देखो।

३—आषाढ़ शुक्लमें रामजी पंचवटी पर आए। जब पंचवटीसे चले तब कहा कि 'देखहु तात बसंत सुहावा' और पंपासरसे

† विचित्रवर्णपद्मानि मुने विकसितानि वै। मधुरं सुखदा भृंगा बहु गुञ्जन्ति तत्र च॥ कलं वदन्ति हंसाश्च तथैव जलकुक्कुटाः। मन्ये रामं प्रशंसन्ति हर्षिताः सर्वपक्षिणः॥'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुग्रीवके यहाँ गए तब कहा कि 'गत ग्रीषम बरषारितु आई'। दो घड़ी दिन चढ़े सरपर आए क्योंकि यहाँ नारदजीको उपदेश देकर फिर चार कोश चलकर किष्किंधा पहुँचे। इस चौपाईसे जान पड़ताहै कि वहाँ दोपहर को पहुँचे—'सहत दुसह बन आतप बाता'। इससे सिद्ध है कि लपट बहुत चलने लगीथी जब किष्किंधा पहुँचे।

४—'बिकसे सरसिज नाना भृङ्गा' से देखत बनइ०'तक तालाबके भ्रमर और पक्षियोंको कहा, यथा—'बहु रंग कंज अनेक खग कूजहि मधुप गुंजारहीं। 'सुन्दर खगगन गिरा सुहाई' और 'कुहू २ कोकिल धुनि करहीं' में बागके पक्षी और भ्रमर कहे, यथा—'आराम रम्य पिकादि खगरव जनु पथिक हँकारहीं'।

खर्रा—१ 'प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा' इति। जल निराकार निर्गुण ब्रह्म है जहाँ वाणी नहीं पहुँचती वहाँ केवल अनुभव है। वह जब गुण ग्रहण करके सगुण हुआ (अर्थात् नाना अवतार लेकर इन्द्रियोंका विषय हुआ, देख पड़ा, मुखसे उसका कथन हुआ, श्रवणसे सुनपड़ा, तनसे स्पर्श हुआ, भगवान्में सुगंध होतीहै सो नासिकाको प्राप्त हुई, तब जल-कमल-स्नेही रूप भक्त प्रभुको देखकर प्रशंसा स्तुति करतेहैं। २—'जात पथिक जनु लेत बोलाई'। भाव कि स्वाभाविक शब्द सुनकर समीप जाकर पथिक बैठ जातेहैं, यही बुलानाहै। यथा—'आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हँकारहीं'। और देखत बनइ बरनि नहि जाई'से जनाया कि स्वरूपसे ऐसे सुंदर हैं। ३—शंका—जहाँ हँस हैं वहाँ जलमुर्गे, बगले आदि तो नहीं होने चाहिए? समाधान—यह पंपासरकी उदारता है। ४—'बिटप सुहाए' से जनाया कि इन्हें कोई काटते नहीं हैं।

चंपक बकुल कदंब तमाला।
पाटल पनस पनास† रसाला॥ § ३९।३३ (६)
नवपल्लव कुसुमित तरुनाना।
चंचरीकपटली कर गाना॥ ,, (७)
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ।
संतत बहइ मनोहर बाऊ॥ ,, (८)

† परास—(क०,न०प्र०)। पनास और परास दोनों पलाशके अपभ्रंश हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं।
सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं ॥ ३९।३३ (९)

फल भारन‡ नम्रि बिटप सब रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ ॥ ४०।३४

अर्थ—चम्पा, मोलसरी, कदम्ब, तमाल, पाटल * कटहल, फूल (ढाक), आम आदि अनेक वृक्ष नए पत्तों और सुगन्धित पुष्पों से युक्त हैं, भ्रमरोंकी पंक्तिकी पंक्ति गान (गुञ्जार) कररहीहै। शीतल धीमी और सुगन्धित मनहरनेवाली सुन्दर वायु सदा स्वाभाविकही चलतीहै। कोयलें कुहूकुहू ध्वनि कररहीहैं। उनके रसीले शब्द सुनकर मुनियोंका ध्यान टूटजाता है। फलके बोझसे सब वृक्ष नम्र होकर अर्थात् झुककर पृथ्वीके पास आलगेहैं अर्थात् उनकी शाखाएँ पृथ्वी तक बोझसे झुक आईहैं। जैसे परोपकारी पुरुष उत्तम और अत्यन्त ऐश्वर्य पाकर नवतेहैं।

खर्रा—'नव पल्लव' क्योंकि वसन्त है। और इसीसे कोयलका कुहुकुहू करना कहा। सुसंपति अर्थात् वह संपति जो धर्मसे कमायी गईहै अधर्मका जिसमें लेश नहीं। चोरी, डाका, किसीका जी दुखाकर झूठ बोलकर, पाखंड इत्यादिसे कमाया अधर्मका है। यहाँ परोपकारी को वृक्ष कहा क्योंकि पर उपकार करनेमें जड़वत् दुःख सहकर पर उपकार करतेहैं। इस दोहेकी जोड़का श्लोक यह है—

"भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्भूमि विलम्बिनो घनाः।

‡ यह पाठ १७२१ की प्रतिका है। रा० प० में 'फल भर नम्र' है।

* पाडर या पाढरका पेड़ जिसके पत्ते बेलके समान होतेहैं। यह दो प्रकार का होताहै, एक सफेद फूलका दूसरा लाल फूलका। बा० स० ७३ में कवन्धने कई नाम गिनाएहैं, यथा—"अम्बूप्रियालपनसा न्यग्रोध प्लक्षतिन्दुकाः। अश्वत्थाः कर्णिकाराश्च चूताश्चान्येच पादपाः ॥ ३ ॥ धन्वना नागवृक्षाश्च तिलका नक्त मालकाः। नीलाशोकाः कदम्बाश्च करवीराश्च पुष्पिताः ॥४॥ अग्निमुखा अशोकाश्च सुरक्ताः पारिभद्रकाः। और कि० स० श्लोक ७५ से ८३ तक में तो बहुतसे नाम हैं। गोस्वामीजीने दो चरणोंमें कुछ नाम देकर फिर 'तरु नाना' कहकर वे सब वृक्ष जनादिए जो बा० में ११ श्लोकमें कहेगएहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ।"—
[भर्तृहरिनीतिशतके]

देषि राम अति रुचिर तलावा ।
मज्जन कीन्ह परम सुख पावा ॥ § ४०/३४ (१)
देषी सुंदर तरुबर छाया ।
बैठे अनुज सहित रघुराया ॥ ,, (२)
तहँ पुनि सकल देव मुनि आये ।
अस्तुति करि निज धाम सिधाये ,, (३)
बैठे परम प्रसन्न कृपाला ।
कहत अनुज सन कथा रसाला ॥ ,, (४)

अर्थ—अत्यन्त सुंदर तालाब देखकर रामचन्द्रजीने स्नान किया और बड़ा सुख पाया । एक सुन्दर उत्तम वृक्षकी सुन्दर छाया देखकर रघुनाथजी भाई सहित बैठगए । तब वहाँ फिर सभी देवता और मुनि आए और स्तुति करकरके अपने २ स्थानोंको चलेगए । कृपालु रामजी परम प्रसन्न बैठेहुए भाईसे रसीली कथाएँ कहरहेहैं ।

पु० र० कु० १—पंपासरमें इतने लक्षण दिखाकर तब कहा कि 'देखि राम अति रुचिर तलावा' । भाव कि जो पुरुष ऐसेही लक्षणोंसे युक्त होताहै उसको आप दर्शन देतेहैं और देखकर सुखी होतेहैं । वे दशगुण यथा—

१ 'पंपा नाम सुभग गंभीरा'—जिनका हृदय गम्भीर हैं ।
२ 'संत हृदय जस निर्मल बारी'—जिनका हृदय निर्मल है ।
३ 'बाँधे घाट मनोहर चारी'—जो वर्णाश्रमधर्ममें रतहैं, यथा 'बरनाश्रम निज २ धरम०'
४ 'जनु उदार गृह जाचक भीरा'—जो उदार हैं
५ 'माया छन्न न देखिय जैसे निर्गुन ब्रह्म'—जो माया और ब्रह्मके स्वरूपको जानतेहैं
६ 'जथा धर्मसीलन्हके दिन सुख संजुत जाहि'—जो धर्मशील हैं
७ 'बिकसे सरसिज नाना रंगा'—जो सदा प्रसन्न रहतेहैं ।
८ 'प्रभु बिलोकि जनु करत मरसा'—जो सगुणब्रह्मके उपासक हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

९ 'सुन्दर खगगन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई'—जो मधुरभाषी हैं।

१० 'ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए'—जो साधुसेवी हैं।

११ 'सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहइ'—जो सबके सुखदाता हैं।

१२ 'चहुँ दिसि कानन बिटप सुहाए॥ चंपक बकुल००'—जो आश्रितोंके सुखदाता हैं।

१३ 'कुहूँ २ कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं—जो संतोंसे अति मधुर बोलतेहैं।

१४--५ 'पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ'—जो परोपकारी और नम्र हैं।

खर्रा—तालावके किनारे आकर खड़ेहुए तब यह शोभा देखी—'पुनि प्रभु गये' अति रुचिरका भाव कि रुचिर तो वनभी था पर यह सर 'अति रुचिर' है।

२—'मज्जन कीन्ह परम सुख पावा'। उपरोक्त विशेषणयुक्त विचित्र सर देखकर सुख हुआ और स्नानसे परम सुख। (ख)—वैद्यकशास्त्र का नियम है कि श्रम निवारण करके तब स्नान करें, वही यहाँ प्रभु ने किया। खड़े खड़े शोभा देखते रहे श्रम दूर हुआ तब स्नान किया।

३—'बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत००' इति। (क) क्या कहतेहैं उत्तर—पंपासरकी उत्पत्तिका कारण और माहात्म्य तथा नामका हेतु, यथा—सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ', 'सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। बिबुध नदी महिमा अधिकाई' 'कहि सिय अनुजहि सषहि सुनाई। श्रीमुख तीरथराज बड़ाई', तथा यहाँ 'कहत अनुजसन कथा रसाला'।

४—'परम प्रसन्न' और 'परम सुखपावा' कहनेके बाद लिखतेहैं कि कथा कही। भाव यह कि वक्ताको सुखपूर्वक कथा कहनाचाहिए। यथा—१—'एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ। तरु बिलोकि उर अति सुख भयऊ॥ निजकर डासि नागरिपु छाला। बैठे सहजहिं संभु कृपाला॥'

२—'एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना।

३—'फटिकसिला अति सुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई॥ कहत अनुज सन कथा अनेका।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

५—(क)—यहाँ दो बार बैठना कहा—'बैठे अनुज सहित रघुराया' और 'बैठे परम प्रसन्न कृपाला'—इससे जनाया कि जब देव मुन आए तब वे उठे और अभ्युत्थान देकर पुनः बैठगए। यथा—'एकबार रघुनाथ बोलाए। गुर द्विज पुरबासी सब आए॥ बैठे सभा संग द्विज सज्जन'—(उ०)।

(ख)—'तहँ पुनि सकल देव मुनि आए'। 'पुनि' का भाव कि चित्रकूटमें पूर्व आएथे, यथा—'अमर नाग किन्नर दिगपाला। चित्रकूट आए तेहि काला', अब फिर आए। (ग) साफ़ साफ़ ऐश्वर्य्य कहाहै, यहाँ देवताओंने प्रणाम किया और स्तुति की, नारदजीने दंडवत् की। अयोध्याकाण्डमें माधुर्य्य वर्णित है, वहाँ चित्रकूटमें माधुर्य्यही वर्णन कियागयाहै, यथा—'अमर नाग किन्नर दिगपाला। चित्रकूट आए तेहि काला। राम प्रनाम कीन्ह सब काहू।'—पुनः, रावणकृत दुःख सुनाने आए, रामजीने अभय किया तब निज धामको गए।

☞ पूर्व लिखाजाचुकाहै कि इसकाण्डमें और इसके आगे ऐश्वर्य्यकी प्रधानता है। ऐश्वर्यकी प्रधानता इस काण्डके प्रारंभमें प्रथम मङ्गलाचरणमेंही 'श्रीराम' पद देकर जनादीगईहै यही कारण है कि माधुर्य्यप्रधान 'लषन' और 'सिय' नाम काण्डभरमें कहीं नहीं आये, हैं और रामजीके नामके पहिले 'श्री' कई ठौर आया है एवम् 'श्रीराम, प्रभु, देव, ईश, नाथ' इत्यादिका ही प्रायः प्रयोग हुआहै। यहाँभी ऐश्वर्य है, प्रभु का देवतोंको इसीसे प्रणाम करना नहीं कहा। अब उदाहरण सुनिए—

श्रीराम-भूप-प्रियम् मं० श्लो० १...
उभय बीच श्री सोहइ कैसी §५...
अब जानी मै श्री चतुराई ... ...
मम हिय बसहु निरंतर सगुन रूप...
श्रीराम §८ ... ...
नौमि निरंतर श्रीरघुबीरं §१० (४)...
तदपि अनुज श्री सहित खरारी §१० (१७)
बसहु हृदय श्री अनुज समेता §१२ (१०)
चले सहित श्री सरधनुपानी §१७ (१२)
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन
अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउ
धरम धुरंधर प्रभु की बानी §५
प्रभु आगवन श्रवन सुनिपावा §९ (३)
प्रभु देखहिं तरु ओट लुकाई §९ (१३)
कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी §१०-१
प्रभु जो दीन्ह सो बर मैं पावा §१०-२७
अब प्रभु संग जाउँ गुर पाहीं §११ (३)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करि कोप श्री रघुबीर पर अगनित निसा-
चर डारहीं कोपे समर श्री राम ◊१९ छन्द
श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद
मन लाइहौ ◊२५ ... ...
जेहि बिधि कपट कुरंग संग धाइ चले
श्री राम ◊२९ ... ...
एवमस्तु कहि रमानिवासा ◊११ (१)

है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ ◊१२ (१५)
दंडकबन पुनीत प्रभु करहू ,, (१६)
मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं ◊१३ (६)
ईश्वर जीवहिं भेद प्रभु० ◊१४
सीतहि चितइ कही प्रभु बाता ◊१६-१९

चले बनहि सुरनरमुनि ईसा ◊ ६
जहँ तहँ जाहिं देव रघुराया
सो कछु देव न मोर निहोरा

मुनि आश्रम पहुंचे सुरभूपा ◊११(५)
मोहि समुझाइ कहउ सोइ देवा
सुनहु देव रघुबीर कृपाला ◊ २६ (४)

'लषन' के स्थान पर यहाँसे अब 'लछिमन' नाम मिलेगा जो ऐश्वर्यसूचक है, यथा—'लच्छनधाम रामप्रिय सकल जगत आधार। गुर बसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार'—(ब० ◊ १९७)। 'सिय' के बदले 'सीता' 'श्री' 'रमा' प्रायः इन तीन ऐश्वर्य्यद्योतक नामोंका प्रयोग हुआहै। चार पाँच स्थानोंपर 'जानकी' जनकसुता' का भी प्रयोग हुआहै जहाँ माधुर्य्य बरतागयाहै। जैसे—'सुनि जानकी परम सुख पावा'(क्योंकि अनुसूयाजीका वात्सल्य इनपरहै),'अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम' क्योंकि मुनि माधुर्य्यके उपासकहैं), 'लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर' (क्योंकि अभी २ वे शूर्पणखाको देखकर भयभीत होचुकीहैं और अब 'निश्चर कटक भयंकर' आरहाहै) और 'जनकसुता परिहरहु अकेली (क्योंकि यहाँ ललित नरलीला कररहेहैं)। इत्यादि।

६—पंपासर और मानससर दोनों सदृश हैं यह दिखानेकेलिए दोनोंमें समान (एकसे) अंग वर्णन किएगएहैं—

पंपासर	मानससर
पंपा नाम	१ रामचरितमानस पहिनामा
संतहृदय जस निर्मल बारी	२ सोइ स्वच्छता करइ मल हानी
बाँधे घाट मनोहर चारी	३ तेइ यह पावन सुभगसर घाट मनोहर चारि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुरइन सघट ओट जल ४ पुरइन सघन चारु चौपाई
सुखी मीन सब एकरस ५ मीन मनोहर तेइ बहु भाँती
अति अगाध जल माहिं ६ रघुपतिमहिमा अगुन ... बरनब सोइ
... बरबारि अगाधा
बिकसे सरसिज नाना रंगा ७ सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा
मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा ८ सुकृतपुंज मंजुल अलिमाला
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा ९ ज्ञान बिराग बिचार मराला
चक्रवाक बक खग समुदाई १० ते बिचित्र जल बिहग समाना
सुंदर खगगन गिरा सुहाई ११ तेइ सुक पिक बहु बरन बिहंगा
ताल समीप मुनिन्ह गृह छाये १२ ते नर यह सर तजहिं न काऊ
चहुँ दिसि कानन बिटप सुहाये १३ संतसभा चहुँ दिसि अमराई
फल भर नम्र बिटप सब रहे भूमि नियराइ १४ संजम नियम फूल फल ज्ञाना

'जेहि बिधि गए सरोवर तीरा' प्रकरण समाप्त हुआ।

'प्रभुनारद संवाद'-प्रकरण

बिरहवंत भगवंतहि देखी।
नारद मन भा सोच बिसेषी॥ ६५४ (५)
मोर साप करि अंगीकारा।
सहत राम नाना दुख भारा॥ ,, (६)
ऐसे प्रभुहिं बिलोकउँ जाई।
पुनि न बनिहि अस अवसरु आई॥ ,, (७)
यह बिचारि नारद कर बीना।
गये जहाँ प्रभु सुख आसीना॥ ,, (८)
गावत रामचरित मृदुबानी।
प्रेमसहित बहु भाँति बषानी॥ ,, (९)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—भगवान्‌को विरहयुक्त देखकर नारदके मनमें बड़ा शोच हुआ। मेरा शाप स्वीकार करके रामचंद्रजी अनेक भारी दुःख सह रहे हैं। ऐसे प्रभुको जाकर देखूँ फिर ऐसा मौक़ा न बन आयेगा अर्थात् न हाथ लगेगा। यह विचार करके नारदजी हाथमें वीणा लिये वहाँ गये जहाँ प्रभु सुखसे बैठे हुयेथे। कोमल वाणीसे राम प्रेमसहित बहुत तरहसे बखान करके रामचरित गारहेहैं।

पु०र०कु०—१'मोर साप करि अंगीकारा' इति! भावकि वे ईश्वर हैं उनको सामर्थ्य है वे चाहते तो हमारा शाप न स्वीकार करते, हमारे शापकी सामर्थ्य नहीं थी कि ज़बरदस्ती उनके सिर पड़सकता और उनको दुःखदेसकता।

(ख) कौन शाप? उत्तर—"नारि बिरह तुम्ह होब दुखारी। श्राप सीस धरि हरषि हिय" इसी संबंधसे यहाँ 'बिरहवंत भगवंतहि देखी..." कहा। 'दुख भारा' अर्थात् विरह, शीत, घाम, वर्षा, कंदमूल भोजन, भूमिशयन, इत्यादि, यथा—"अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुसपात। बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात॥" (ग)"पुनि न बनी अस अवसर" अर्थात् इस समय सुखी हैं एकान्त है आगे वानरोंकी भीड़ होजायगी। आजके बाद फिर उत्तर-काण्डमें शीतल अमराईमें मिलनेका अवसर मिलाहै। २ (क) 'कर बीना' अर्थात् वीणाका स्वर संभाले हुये गाते, यथा देवीभागवते"आज-गाम तदाकाशान्नारदो भगवानृषिः। रणयन्महतीं वीणां स्वरग्रामवि-भूषिताम्"। (ख) 'गावत रामचरित मृदुबानी'। क्योंकि जानतेहैं कि भगवान्‌को कीर्त्तन-गान प्रिय है, यथा—'मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद'। पर वह कैसा गान है जो भगवान्‌को प्रियहै, यह 'प्रेमसहित बहुत भाँति बषानी' से जनाया। अर्थात् जिस कीर्त्तनमें प्रेम प्रधान है। गंधर्व किन्नर कत्थक वेश्या, आदि गवैयोंका जहाँ गाना होताहै वहाँ नहीं जाते क्योंकि उनमें भक्तकासा प्रेम नहीं है, वे तो रागस्वर तालके ज्ञाता हैं इसीमें उनका प्रेम है और भगवान्‌को प्रेमयुक्तगान प्रिय है। 'मृदुबानी' अर्थात् जिसमें वीणाके स्वर से मिलतारहे।

(ग)—यहाँ 'रामचरित' कहा। 'प्रभुचरित' या 'हरिचरित' पद लिखते तो अन्य सब अवतारोंका गाना पायाजाता। 'रामचरित' से

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

केवल इसी अवतारका चरित जनाया। रामसे दाशरथी राम सगुण ब्रह्मके चरित प्रसंगद्वारा सूचित करदिया है—'मोर साप करि अंगीकारा' इत्यादिसे दाशरथी रामकाही बोध होगा दूसरेका नहीं।

र०प्र०श०—प्रथम 'विरहवंत' कहा फिर 'सुख आसीना' कहतेहैं। इसका भाव यह कि (क) देखनेवालोंकी दृष्टिमें विरही और अपने स्वरूपमें सुखासीन हैं वा, (ख) पंपासर और उसके समीपके अनेक वृक्षोंकी सुन्दरता देखकर सुखासीन हैं। वा, (ग) स्त्रीविरहसे विरही और परोपकारमें सुखासीन हैं—कामियोंके मनमें दीनता और धीरोंके मनमें वैराग्य दोनोंसे तात्पर्य्य है।

☞ यहाँ शंका होतीहै कि यह चरित तो क्षीरशायी भगवान्का नहीं है किन्तु निर्गुण अज आदि परब्रह्म साकेतबिहारी द्विभुज रामजीके अवतारका है, यथा—'अपर हेतु सुनु सैलकुमारी। कहउँ बिचित्र कथा बिसतारी॥ जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयेउ कौसलपुरभूपा'—(व० १४०) तब नारदजीने कैसे कहा कि 'मोर साप करि अंगीकारा'? इसका समाधान आकाशवाणी आदि प्रकरणों में आचुकाहै। शिवजी रामावतारकी कथा कहरहेहैं। विस्तृतरूपसे परब्रह्म द्विनित्य द्विभुज रामजीके रामावतारकी कथाहैपर साथही साथ अन्य रामावतारोंकी कथायेंभी मिश्रित, कारण वा प्रसंग पाकर कहीगईहैं। जैसे आकाशवाणीमें 'नारद बचन सत्य सब करिहउँ' वैसेही यहाँ नारद-प्रसंग। श्रीमहाराज पं० रामवल्लभाशरणजी कहते हैं कि यह अवतार पूर्णपरात्पर ब्रह्मका है। पर स्मरण रहे कि जब २ अवतार होता है चाहे विष्णु भगवान् अवतार लें चाहे कोई और, सबमें यही लीला कीजाती है। देवर्षि नारद सोचतेहैं कि हमने तो क्षीरशायी भगवान्को शाप दियाथा पर आपभी उस शापको अपने ऊपर लेकर दुःख सहरहे हैं। अतः ऐसे प्रभुसे बढ़कर कौन होगा' 'करि अंगीकारा का भाव मयंककार यह कहते हैं कि शाप तो श्रीमन्नारायणको ही दिया पर उसको परतम प्रभुने भी अवतार लेनेपर ग्रहण करलिया। पं० श्रीधरमिश्रजी कहते हैं कि "बैठे परम प्रसन्न कृपाला तक परतम अवतारकी कथा है, आगे श्रीमन्नारायणवाले अवतारकी कथा है। और सीताहरणके पश्चात् शबरीजीसे बिदा होकर जो बिरह-कथन है वह दोनों अवतारोंका है। परंतु परतम राम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पंपासरपर आकर परम प्रसन्न बैठे और श्रीमन्नारायण राम-विरह-चंत बैठे अतः "बिरहवंत भगवंतहि देखी' लिखा किष्किंधासे फिर दोनों अवतारोंकी कथा चलेगी।

करत दंडवत लिए उठाई।
राखे बहुति बार उर लाई॥
स्वागत पूँछि निकट बैठारे।
लछिमन सादर चरन पषारे॥

नाना बिधि बिनती करि प्रभु प्रसन्न जिय जानि।
नारद बोले बचन तब जोरि सरोरुह पानि॥ ४१/३५

अर्थ—दण्डवत करतेहुए उनको रामचन्द्रजीने उठालिया और बहुत देरतक छातीसे लगाएरखा। स्वागत पूछकर पास बिठालिया। लक्ष्मणजीने आदरपूर्वक उनके चरण धोए अनेक प्रकारसे प्रार्थना करके और प्रभुको मनमें प्रसन्न जानकर तब नारदमुनि कमलसमान हाथोंको जोड़कर ये वचन बोले।

पु० र० कु०—१ 'नारदजीने रामजीको स्वामी मानकर दंडवत किया इसीसे लक्ष्मणजीने सादर चरण प्रक्षालन किया। [अपराध क्षमा करानेके लिए विविधि विनती की—(खर्रा)] २—'सहत राम नाना दुखभारा' के संबंधसे 'नाना बिधि बिनती' की।

सुनहु उदार सहज/परम† रघुनायक।
सुंदर अगम सुगम बरदायक॥ ◊४१/३५ (१)
देहु एकबर मागौं स्वामी।
जद्यपि जानत अंतरजामी॥ ,, (२)
जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ।
जन सन कबहुँ कि करौं दुराऊ॥ ,, (३)

† भ० द० में 'मरम' पर हरताल लगाकर सहज बनाया गयाहै। १७२१ की प्रतिमें 'सहज' है, पं० रा० गु० द्वि० का पाठ 'परम' है और काशिराज-वालीमें भी 'परम' है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कवन बस्तु असि प्रिय मोहि लागी ।
जो मुनिबर न सकहु तुम्ह मागी ॥ ४१/३५ (४)
जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें ।
अस बिश्वास तजहु जनि भोरें ॥ ,, (५)

शब्दार्थ—दुराऊ (दुराव)=छिपाव परदा, कपट ।

अर्थ—हे स्वाभाविकही वा परम उदार रघुनायक ! सुनिए, आप सुन्दर अगम और सुगम वरके देनेवाले हैं । हे स्वामी ! यद्यपि आप अन्तर्यामीहैं । जानतेहैं तोभी मैं एक बर माँगताहूँ मुझे दीजिए, (रामजीबोले) हे मुनि ! तुम मेरा स्वभाव जानतेहो । क्या मैं अपने भक्तसे कभीभी छिपाव करताहूँ ? कौनसी चीज़ मुझे ऐसी प्रिय लगतीहै, जो, हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम न माँग सकतेहो ? मेरेपास मनके लिए कुछभी अदेय नहीं है अर्थात् सब कुछ देनेवालेहीं पदार्थ हैं ऐसा पदार्थ कोई मेरे पास नहीं है जो देने योग्य न हो !—ऐसा विश्वास भूलकरभी न छोड़ना ।

पु० र० कु० १—'सुनहु उदार सहज रघुनायक ..' ।—(क) 'रघुनायक' पद देकर उदारता दिखाई कि इसीकुलके पुरुषा रघुजी ऐसे उदार हुए कि उन्होंने अपना सर्वस्व देदिया, उसी उदारवंशके आप राजा हैं । उदार और राजा कहकर तब वर माँगतेहैं, यह रीति है, यथा—'नृपनायक दे बरदानमिदं । चरणाम्बुजप्रेम सदा शुभदं' । पुनः भाव यह कि उदार तो रघुवंश मात्र है और आप रघुनायक हैं अतः 'परम उदार' हैं ।

२—क—'सुन्दर अगम सुगम बरदायक' । सुन्दरका भाव कि आप दासको सुखदाता वरदेतेहैं, हमने दुःखदाता वरमाँगाथा कि हमें सुन्दर मोहनीरूप दीजिए सो आपने न दिया, यथा—'आपन रूप देहु प्रभु मोही...' कुपथ माँगु रुजब्याकुल रोगी । बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी ॥ एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ । ख—पहले अगम जानकर बरको प्रकट न किया पर जब रामजीने कहा कि 'कवन बस्तु असि प्रिय मोहि लागी । जो मुनिबर न सकहु तुम्ह माँगी' तब जिसे अगमताका विचार जातारहा और वे हर्षपूर्वक माँगनेलगे ।—'अगम सुगम' अर्थात् आपके लिए सुगम है पर माँगनेवालेको अगम्य जान-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पड़ताहै, यथा—'एक लालसा बडि उरमाहीं। सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं॥ तुम्हहिं देत अति सुगम गुसाईं' अगम लागि मोहि निज कृपनाई॥...तथा हृदय मम संसय होई'—(ब० §१४८)।

३—'देहु एक बर माँगौं स्वामी' अर्थात् आप मेरे स्वामी हैं अतः मैं आपसेही माँगताहूँ, यथा—'जरिजाउ सो जीभ जो जाँचत औरहि (ख)—'एक बर माँगौं' अर्थात् आप अनेक वरके दाता हैं, मैं उनमेंसे एक माँगता हूँ। वा, यह मुख्य वर है जो मैं चाहताहूँ।

४—'कौन वस्तु असि प्रिय...।' इस चौपाईमें स्वामी और सेवक दोनोंका पक्ष कहा। कौन वस्तु ऐसी प्रिय है जो मैं तुमसे दुराऊँगा (छिपाऊँ) और कौन ऐसी वस्तु है जो तुम (सेवक) माँग नसको। पुनः, इससे जनाया कि मुझे कोई वस्तु प्रिय नहीं, अपना जन प्रिय है। 'मुनि' और 'मुनिवर' का भाव कि तुम मननशील, भजननिष्ठ, शास्त्रोंके ज्ञाता हो अतः तुम जानतेहो।

५—'अस बिस्वास तजहु जनि भोरे।' इस कथनका कारण है। विश्वासका छुटजाना संभव है; क्योंकि बालकाण्डमें वर माँगने (आपन रूप देहु प्रभु मोही)—पर न मिला था। इसीसे कहतेहैं कि भूलकरभी विश्वास न छोड़ना।

तब नारद बोले हरषाई।
अस बर माँगौं करौं ढिठाई॥ §४१/३५ (६)
जद्यपि प्रभुके नाम अनेका।
श्रुति कह अधिक एक तें एका॥ ,, (७)
राम सकल नामन्ह ते अधिका।
होउ नाथ अघखगगन बधिका॥ ,, (८)

राका रजनी भगति तव रामनाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन बिमल बसहु भगत उर व्योम॥
एवमस्तु मुनिसन कहेउ कृपासिंधु रघुनाथ।
तब नारद मन हरष अति प्रभुपद नायउ माथ। ४२/३६

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—तब नारद प्रसन्न होकर बोले मैं ऐसा वर माँगताहूँ। यह ढिठाई करताहूँ। यद्यपि प्रभुके अनेक नाम हैं और वेद एकसे एक को अधिक बतातेहैं तोभी, हे नाथ! 'राम' यह नाम सब नामोंसे अधिक हो और पापरूपी पक्षिसमूहकेलिए सबसे बढ़कर व्याधा-रूप होवे। आपकी भक्ति पूर्णिमाकी रात्रि है, रामनाम उस पूर्णिमाका चन्द्रमाहै अर्थात् पूर्ण चन्द्रमा है, अन्य सब नाम निर्मल तारागण हैं (इस प्रकार आप सबके सहित) भक्तके निर्मल हृदयरूपी आकाशमें बसिए। दयासागर रघुनाथजीने मुनिसे 'एवमस्तु' (ऐसाही हो) कहा। तब नारदजीने मनमें अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रभुके चरणोंमें माथा नवाया।

पु० र० कु०—१ 'तब नारद बोले हरषाई। अस बर माँगौ००' इति। (क) नारदजी पहले वर माँगनेको कहकर चुप होगए कि देखें भगवान्का रुख क्याहै, वे क्या कहतेहैं। जब भगवान्ने कहा कि 'जन कहँ कछु अदेय नहिं मोरे। अस बिस्वास तजहु जनि भोरे,' तब वर-देनेकी रुचि जानकर बोले। पहले जब माँगनेको कहा तब हर्ष नहीं था—'नारद बोले बचन तब जोरि सरोरुह पानि' और अब 'बोले हरषाई'। (ख)—'करौं ढिठाई' इति। ढिठाई क्या है। यही कि प्रभुके सभी नाम हैं उनमें न्यूनाधिक्य भाव करके वर माँग रहेहैं। जो मुनि यह न कहते तो कपट निश्चित ठहरता, कहदेना ही गुण है।—[शाप देने के बाद जब अपराध क्षमाकी प्रार्थना की तब प्रभुने कहाथा कि 'जपहु जाइ संकर सत नामा' अब मुनि रामनामही प्रायश्चित्त समस्त पापों केलिए बनाना चाहतेहैं—(खर्रा)]

२—'जद्यपि प्रभुके नाम अनेका। श्रुति००'। (क)—भाव यह कि न्यूनाधिक्य जो मैं कहनेको हूँ यह कुछ मैंही नहीं कहरहाहूँ, वेदोंने स्वयं कहाहै कि एकसे एक अधिक है (ख) रामनाम मेरा इष्ट है, यह नाम सबसे बड़ा होवे और सबसे अधिक पापनाशक हो' इस कथनसे इस मंत्रके ऋषि नारदजी सिद्ध हुए। जिसके द्वारा जिस बातका आवि-र्भाव होताहै वही उसका ऋषि कहाजाताहै। (ग)—'अघ खग-गन बधिका'—नामपर व्याधाका आरोप करनेका भाव कि व्याधको दया नहीं होती और चिड़ियोंको मारनाही उसका काम है, पक्षियोंको ढूँढ़कर मारा करताहै। नारदजीके वरमाँगनेका भाव यह है कि जो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कोई आपका 'राम' नाम जपे उसके समग्र गुप्त-प्रकट सभी पाप नष्ट होजायँ। वर्ण, मात्रा, व्यापकता, सर्वस्वता का विचार करें तो सबसे बड़ा यही है, यही एकनाम विशेष्य है। जितने नाम हैं उनमेंसे यदि र, म निकालदें तो निरर्थक होजायँ।

३ (क)—'राम सकल नामन्ह ते अधिका' इस कथनसे और नामोंमें अभक्ति पाईगई; अतः कहतेहैं कि 'राकारजनी००'। अर्थात् सबनामोंसे बड़ाईमें अधिक हो, पाप नाशकरनेमें अधिक हो, प्रकाशनें अधिक हो, दरजा (पदवी) में अधिक हो। चन्द्रमा तारापति है और रजनीपतिभी, वैसेही रामनाम सब नामों का पति और भक्तिका पति है। (ख)—"बसहु भगत उर ब्योम" ।—'बसहु हृदय मन ब्योम' नहीं कहते क्योंकि वे कुछ अपने लिए ही ऐसा वर नहीं माँगते, सभी भक्तोंके लिए श्रीरामनाममें यह प्रताप माँगरहेहैं कि अन्य समस्त नामोंसे इसमें अधिकता हो। अतः 'बसहु भगत उर ब्योम' कहना उपयुक्त ही नहीं किन्तु आवश्यकही है।

४ (क)—'कृपासिन्धु' हैं इसीसे नारदपर समुद्रवत् गहरी कृपा हुई, उनको अगम्य वर मिला। (ख) 'तब नारद मन हरष अति' इति।—प्रथम प्रभुको प्रसन्न बैठे देख वरमाँगनेको कहा, जब उनका रुख देखा कि जो वर चाहो माँगलो 'तब नारद बोले हरषाई' और अब वरकी प्राप्तिहुई, अतः अब मनमें 'हरष अति' हुआ। अतिहर्ष हुआ अतः प्रभुके चरणोंमें माथा नवाया। कृतज्ञता जनाई। (ग)—नारदजी और मनुजीका वर माँगनेमें मिलान—

नारदजी	मनुजी
सुनहु उदार परम रघुनायक	१ दानसिरोमनि कृपानिधि नाथ कहँउ
सुंदर अगम सुगम बरदायक	२ सतिभाउ एकलालसा बडि मनमाहीं।
	सुगम अगम कहिजात०—
देहु एक बर मागउ स्वामी। जद्यपि जानत अंतरजामी॥	३ सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी॥
जन कहँ नहिं अदेय कछु मोरे। अस बिस्वास तजहु जनि भोरे॥	४ सकुच बिहाइ माँगु नृप मोही। मोरे नहिं अदेय कछु तोही॥
अस बर मागउ करउ ढिठाई	५ प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई।
एवमस्तु मुनि सन कहेउ	६ एवमस्तु करुणानिधि बोले।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

☞ इस प्रसंगको मनुप्रसंगके समान लिखनेमें भाव यह है कि नारदजीने नाम माँगा और मनुजीने रूप। नाम रूप दोनों तुल्य हैं और माँगनेवालेभी दोनों तुल्य हैं। मनुजीने इस रूपके पिता होनेकी चाह की और नारदजी इस नामके ऋषि होनाचाहतेहैं। इसीसे और किसी देवऋषिकी समता न कही, और कोई मालिक नहीं बने, औरोंने नाम, रूप, भक्तिका (हृदयमें) निवासमात्र माँगा है।

मा० हं०—'यह संवाद वाल्मीकीय और अध्यात्मरामायणोंमें नहीं है... इस राम-नारद संवादके कारण स्वामीजीको यह दोष लगाया जाताहै कि वे अपनी भक्तिकी लहरोंमें पक्षपातकी ओर एकायक बहुत ही झुकपड़तेहैं। उनपर इस दोषके लगायेजानेका कारण 'राम सकल नामन्हते अधिका' यह चौपाई है। हमारी समझमें यह अपवाद निरर्थक है। यह न तो पक्षपात होसकताहै न अंधप्रेम। सत्यमें यह ऊर्जित भक्तिनिष्ठा है'।

नोट—बारंबार ग्रंथमें दिखायागयाहै कि रामचरितमानस शंकरदत्त चरित है। वाल्मीकि आदिसे लियाहुआ नहीं है। तथापि लोग अल्पज्ञताके कारण संदेह करतेहैं। यदि मान लें कि यह तुलसीहृदयसे कल्पना कियाहुआ अनेक ग्रंथोंसे लियाहुआही है, तो धन्य है पूज्यपाद गोस्वामीजीकी व्यापकबुद्धिको! कि आजतक लोग पूरा पता नहीं लगापाते कि कहाँका कौन चरित है। इस कार्यमें बाबू रणबहादुरसिंहजीने बड़ा काम कियाहै। उनकी टीकासे जानपड़ताहै कि यह पूरा संवाद महारामायणमें प्रायः ज्योंका त्यों है। तब कहिए दोष किसका है? गोस्वामिपादका, कि दोष लगानेवालेकी क्षुद्रबुद्धिका 'होउ सकल नामन्ह ते अधिका' यह गोस्वामीकृत नहीं है वरन् पूर्व आचार्य्योंकी है—यह अब स्पष्ट है।—महारामायणके उद्धृत श्लोक आगे दिपजायंगे।

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी।
पुनि नारद बोले मृदुबानी॥ §४२/३६ (१)
राम जबहिं प्रेरेहु निजमाया।
मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया॥ ,, (२)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तब बिवाह मैं चाहउ कीन्हा ।
प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा ॥ § ४२/३६ (३)
सुनु मुनि तोहि कहौं सहरोसा ।
भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥ ,, (४)
करौं सदा तिन्ह कै रखवारी ।
जिमि बालक राषै महतारी ॥ ,, (५)
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई ।
तहँ राखैं जननी अरगाई ॥ ,, (६)

शब्दार्थ—'सहरोसा,=सहर्ष—'सरबस देउँ आज सहरोसा, ब०§२०७ (३) देखिये ।

अर्थ—रघुनाथजीको बहुतही प्रसन्न जानकर नारदजी फिर कोमल वचन बोले—हे राम ! हे रघुराया ! सुनिए जब आपने अपनी मायाको प्रेरित करके मुझे मोहित किया तब मैंने विवाह करनाचाहाथा । हे प्रभु ! आपने किस कारणसे विवाह न करने दिया ? (प्रभु बोले) हे मुनि ! सुनो, मैं तुमसे प्रसन्नतापूर्वक कहताहूँ, जो सब आशाभरोसा छोड़कर मेरा भजन करतेहैं मैं उनकी सदा रक्षा करताहूँ जैसे माता बालककी रक्षा करतीहै । जब छोटा बच्चा अग्नि या सर्पको दौड़कर पकड़नाचाहताहै त्योंही माता उसे दौड़कर अलग करके बचा लेतीहै ।

पु० र० कु०—१—"अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी ।००" (क) प्रथम जब नारद आए तब प्रभुको प्रसन्न जानाथा, यथा—'नाना बिधि बिनती करि प्रभु प्रसन्न जिय जानि' और जब उन्होंने वरदान दिया तब उनको अपने ऊपर 'अति प्रसन्न' जाना । (ख)—यह भी जनाया कि भक्तके मनोरथ पूर्ण करनेमें प्रभुको अत्यन्त हर्ष होताहै और प्रसन्न आनन्दकन्द तो वे सदैव ही हैं । (ग)—'पुनि' से जनाया कि एक बात समाप्त हुई अब दूसरी बात कहतेहैं । इसी कारण प्रभुनेभी कहा कि 'सुनु मुनि तोहि कहउँ००' । जब वे दूसरी बात कहनेलगे तब 'सुनु' कहा । आगे फिर जब कहेंगे तब कहेंगे 'सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता' । अर्थात् 'सुनु' से नया प्रसंग जनायाजाताहै ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—'नारद बोले बचन तब जोरि००' उपक्रम है और 'पुनि नारद बोले मृदु०' उपसंहार।

३—(क)—'राम जबहिं प्रेरेहु निज माया।००', इससे नारदमद-मोचन प्रसंगकी चर्चा जनाई। 'श्रीपति निज माया तब प्रेरी' जो वहाँ कहीगई वही यहाँ अभिप्रेत है। (ख)—'निजमाया' से विद्या मायाको प्रेरित करना जनाया। अविद्यामाया दासके पास नहीं जाती, यथा—'हरि सेवकहि न व्याप अबिद्या। प्रभुप्रेरित व्यापै तेहि बिद्या॥' अर्थात् विद्यामायाभी प्रभुकी इच्छासेही व्यापतीहै, नहीं तो वह भी न व्यापे।

४—'प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा'। बालकाण्डमें पूछनेका योग न था क्योंकि वहाँ कठोर वचन कहेथे, शाप दियाथा जिससे (भाव) निरस होगयाथा अब पूछनेका उचित अवसर मिला। ५—'जिमि बालक राखै महतारी'। भाव कि जैसे माता सब काम करतीहै पर उसका चित्त बच्चेमेंही लगारहताहै वैसेही मैं रक्षा करताहूँ।

६—'गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई।००' यथा दोहावल्याम्—

"खेलत बालक ब्याल संग मेलत पावक हाथ।
तुलसी सिसु पितुमातु ज्यों राखत सिय रघुनाथ॥"

'अरगाई'=चुप होके, यथा—'अस कह राम रहे अरगाई'।=अलग करके। क्रोध अनल है, यथा—'लषन बचन आहुति सरिस भृगुबर कोप कृसानु' 'रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड'। काम सर्प है, यथा काम भुजङ्ग डसत जब जाही। विषय निंब कटु लगत न ताही'। माता सर्प और अग्निसे रक्षा करतीहै, मैं दासकी रक्षा काम क्रोध रूपी सर्प और अग्निसे करताहूँ।

'गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ...'

१—१७२१ वाली प्रति और भा० द० जीका पाठ 'अरगाई' है। काशिराजका पाठ 'अरुगाई' है।

२—पं० शिवलालपाठकजी 'सिसु बिच्छु' पाठ देतेहैं।

३—कोई तो 'शिशु' और 'बच्छ' को दो शब्द मानतेहैं और कोई बच्छको शिशुका विशेषण मानतेहैं। बच्छ=बछड़ा।=वत्स, प्यारा, यथा—'बहुरि' बच्छ कहि लाल कहि रघुपति रघुबर तात'—अ० ६८। बच्छ शिशु=प्यारा छोटा अबोध बच्चा। यह अर्थ पं० रामकुमारजी,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और पाँड़ेजीने लियाहै और इसके प्रमाणमें दोहावली और महारामायण हैं। और श्री पं० रामवल्लभाशरणजी महाराजभी यही भाव कहतेहैं कि 'बच्छ' बालक-शब्दका वाचक है और शिशु बहुत छोटेको कहतेहैं। दो प्रमाणभी मिलतेहैं अतः यही निस्सन्देह अर्थ है और यही पाठ शुद्ध जानपड़ता है। पं० शिवलाल पाठक 'बिच्छु' पाठ शुद्ध कहतेहैं और 'बच्छ' पाठ देनेवालोंको गालीदेतेहैं जो उनका स्वभाव जानपड़ताहै। बिच्छुसे वे लोभका भाव लगातेहैं। अथत् बिच्छू (लोभ) अनल (काम) अहि (क्रोध) से बचातीहै इस तरह काम क्रोध लोभ तीनों आगए। पर इसमें एक शंका होतीहै कि गोस्वामीजीने 'बिच्छु' शब्द कहीं नहीं दिया, जहाँ दिया है वहाँ 'बीछी' शब्द दियाहै। दूसरे अहि और अनलके प्रमाणभी काम और क्रोधकेलिए प्रयुक्त किए जानेके मिलतेहैं, बिच्छूका लोभके लिए प्रमाण नहीं मिलता। तीसरे दोहावलीमें जोड़का दोहा मिलताहै उसमेंभी 'बिच्छू' नहीं है। चौथे आगे भी प्रभु दोही रिपु गिनातेहैं—'दुहुँ कहँ काम क्रोध रिपु आही'। इन कारणोंसे उनके दुर्वचनको शिरोधार्य्य करतेहुए हमेंभी उनका पाठ गृहीत नहीं है।

'अरु गाई' पाठ लेकर लोगोंने इधर तो बालक और बछड़ा और उधर माता और गौ का अर्थ कियाहै। पर इसमें संदेह है कि बछड़ा दौड़कर अग्नि और सर्पको पकड़ताहै और गौ उसे दौड़कर अलग करतीहै। पं० रामगुलाम द्विवेदीकी प्रतिलिपिमेंभी 'अरगाई' पाठ है पर जो उनकी छपी गुटका है उसमें जानपड़ताहै कि पाठ बदल दियागयाहै क्योंकि वीरकविजी गुटकाका पाठ 'अरुगाई' बतातेहैं। पं० शिवलापाठकजीभी 'अरगाई' पाठ देतेहैं।

दीनजीकी राय है कि 'बिच्छु' पाठ अधिक ठीक है। पहले कहा कि जैसे माता बालककी रक्षा करतीहै, तब सहजही प्रश्न होताहै कि कैसे रक्षा करतीहै? उसका उदाहरण किया कि 'गह सिसु 'बिच्छु' यह पूर्व अर्थका प्रमाण है'।

ऊपर 'जिमि बालक राखै महतारी' कहाहै और 'शिशु बच्छ राखै जननी' मैंभी इसी अर्थसे सहमत हूँ। 'अरगाना' के दोनों अर्थ कोशमें मिलतेहैं और मानसमेंभी दोनों अर्थ अब रहु 'अरगाई' के लिए जासकतेहैं 'चुपरह' वा 'दूर हो'। 'अस कहि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राम रहे अरगाई' अर्थात् चुप होगए वा कहकर अलग हुए। दूसरे बहुतसे ऐसे शब्द ग्रंथमें हैं जिनका एक अर्थ में एकही स्थानपर प्रयोग हुआहै वैसेही यहाँ लेसकनेमें आपत्ति क्या ? विशेषकर कि जब प्रमाण पूरी चौपाईकी जोड़का मिलरहाहै। पुनः जैसे आगे 'बालक सुत सम दास अमानी' कहा वैसेही यहाँ 'सिसु-बच्छ' अर्थात् छोटा अज्ञान बच्चा। छः चरणोंमें उसी भावके शब्द इसी स्थानपर हैं इनका पूर्वा पर प्रसंग मिलानेसे यही अर्थ सिद्ध होताहै।

प्रौढ भए तेहि सुतपर माता।
प्रीति करै नहिं पाछिल बाता॥ § ४२/३६ (७)
मोरे प्रौढ तनय सम ग्यानी।
बालकसुतसम दास अमानी॥ ,, (८)
जनहिं मोर बल निज बल ताही।
दुहुँ कहँ काम क्रोध रिपु आही॥ ,, (९)
एह बिचारि पंडित मोहि भजहीं।
पाएहु ज्ञान भगति नहिं तजहीं॥ ,, (१०)

अर्थ—सयाना होनेपर उस पुत्रपर माता प्रीति करतीहै पर वह पिछली बात नहीं करती अर्थात् जैसा प्रेम, जैसी रक्षा शिशुपनमें करतीथी वैसी अब नहीं करती, अब आग और सर्पसे रक्षा नहीं करती क्योंकि वह स्वयं रक्षा करसकताहै। ज्ञानी मेरे बड़े पुत्रके समान हैं और मानरहित दास मेरे बालक (छोटे) पुत्रके समान हैं। दासको मेरा बल है और ज्ञानीको अपना बल है। काम और क्रोध दोनोंके शत्रु हैं। ऐसा विचारकर बुद्धिमान् लोग मुझे भजतेहैं और ज्ञान प्राप्त होने परभी भक्ति नहीं छोड़ते।

पु० र० कु०—१—'बालक सुत सम दास अमानी' इति।—ज्ञानी अमानी होताहै, यथा—ज्ञान मान जहँ एकौ नाहीं'। और दास अमानी है एवं बालक सुतके समान है। बालकके मान नहीं होताहै तथा दासको मान नहीं होता, यथा—'सबहि मानप्रद आप अमानी'। मान दोनोंको खराब करताहै। ज्ञानीका ज्ञान नष्ट करताहै। यथा—'मान ते ज्ञान पान ते लाजा।' और भक्तकी भक्तिको नाश करताहै, यथा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

—'परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस' 'कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना'।

२—'दुहुँ कहँ काम क्रोध रिपु अहही'। यथा—"काम एषः क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः महाशनो महापाप्माविद्धेनमिह वैरिणं" इति गीतायाम्। नारदजीकी रक्षा काम और क्रोध दोनोंसेकी थी; यथा—'काम कला कछु मुनिहि न ब्यापी' और 'भयउ न नारद मन कछु रोषा'। वे फिर दोनोंके वश होगए—हरिइच्छासे, यथा—'मम इच्छा कह हीन दीनदयाला'। इन शत्रुओंसे सदा रक्षा करतेहैं, यथा—'सीम कि चापि सकै कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू'। इसीसे नारदकी रक्षाकी। जब 'गर्व उर अंकुरेउ भारी' तब उसके उखाड़नेके लिए पुनः दोनोंके वश उनको करके उनका गर्व मिटाया।

३—'पायेहु ज्ञान भगति नहिं तजहीं' इति—(क) अद्वैतमें ज्ञान है, द्वैतमें भक्ति है। यहाँ 'पायेहु ज्ञान भगति नहिं तजहीं' में भाव यह है कि अद्वैतमें द्वैत रखे, यथा—'सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत'। (ख)—'नहिं तजहीं' क्योंकि भक्तिसे भगवान् रक्षाकरतेहैं, ज्ञानसे रक्षा नहीं करते।

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद माया रूपी नारि॥ ४३/३७

अर्थ—काम, क्रोध, लोभ, मद आदि मोहकी प्रबल सेना है। उनमें भी मायारूपिणी स्त्री अत्यन्त घोर दुःख देनेवालीहै।

पु० र० कु०—१ 'कामक्रोध लोभादि' में आदि पद देकर षट् विकारकी पूर्त्तिकी। कामक्रोध दो शत्रु प्रथम कहकर—दुहुँकहँ काम-क्रोध, रिपु आही'—अब इस दोहेमें षट्शत्रु गिनाए। अर्थात्—काम, क्रोध लोभ, मद, मत्सर और मोह। (२)—'अतिदारुन दुखद' का भाव कि काम क्रोधादि 'दुखद' हैं, मोह 'दारुण दुःखद' है और नारि 'अति दारुण दुःखद'है। ३—दारुण दुःखदका स्वरूप आगे दिखातेहैं।

४—'धारि'=सेना। सेना शत्रुको लूटतीहै। ये जीवोंके उत्तम गुणोंको लूटलेजातेहैं। यहाँ काम प्रस्तुत है, अतः प्रथम उसीको कहा।

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता।
मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता॥ § ४३/३७ (१)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जप तप नेम जलासय झारी।
होइ ग्रीषम सोषै सब नारी॥ § ४३/३७ (२)
काम क्रोध मद मत्सर भेका।
इन्हहि हरषप्रद बरषा एका॥ ,, (३)
दुर्बासना कुमुद समुदाई।
तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई॥ ,, (४)
धर्म सकल सरसीरुह बृंदा।
होइ हिम तिन्हहि दहै सुषमंदा† ॥ ,, (५)
पुनि ममता जवास बहुताई।
पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई॥ ,, (६)
पाप उलूक निकर सुखकारी।
नारि निबिड रजनी अँधियारी॥ ,, (७)
बुधिबल सील सत्य सब मीना।
बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना॥ ,, (८)

अवगुनमूल सूलप्रद प्रमदा सब दुखखानि।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि॥ ४४/३८

शब्दार्थ—पलुहना=पल्लवित होना, हराभरा होना।

अर्थ—हे मुनि! सुनो। पुराण, वेद और सन्त कहते हैं कि मोह रूपी वनके लिये स्त्री वसन्त ऋतु है। जप तप नियम रूपी सारे जलाशयोंको स्त्री ग्रीष्मरूप होकर पूरा सोखलेतीहै। काम, क्रोध, मद, मत्सर मेढक हैं, इन्हें वर्षा रूपहोकर प्रसन्न करनेमें एकही है। समस्त दुर्वासनाएँ कुमुदका समुदाय (समूह) है, उनको यह सदा सुख देनेवाली शरद ऋतु है। समस्त धर्म * कमलोंका झुँड है, वह मन्द सुखवाली उन्हें हिमऋतु होकर जला डालतीहै। फिर ममतारूपी यवासका समूह स्त्रीरूपी शिशिरऋतुको पाकर हराभरा होजाताहै।

† 'देति दुख मंदा'—(का०)। * महाभारत वन पर्व अ० २०० में अनेक धर्मों का वर्णन है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पापरूपी बल्लुओंके समूहको सुखदेनेको स्त्री घोर अँधेरी रात है। बुद्धि, बल, शील, सत्य ये सब मछलियाँ हैं और स्त्री बंसीके समान है—प्रवीण लोग ऐसा कहतेहैं। अवगुणकी जड़, पीड़ा देनेवाली, और सब दुःखोंकी खानि स्त्री है। हे मुनि! मैंने जीसे ऐसा जानकर इसीकारण तुमको रोका।

नोट—इस प्रसंगमें 'भिन्नधर्मामालोपमा' और 'परंपरित रूपक अलंकार है।

पु०र०कु०१—दोहेमें जो कहा 'अति दारुन दुखद मायारूपी नारि' अब उसी 'अति दारुण दुःखद' का स्वरूप दिखातेहैं। दोहावलीमें इसकी दारुणता यों कही है—

'जन्मपत्रिका बरतिकै देखहु हृदयबिचारि।
दारुण बैरी मीचके बीच बिराजति नारि॥'

२—'सुनु मुनि' से जनाया कि एक बात समाप्त होगई, यह दूसरी बात है। पुनः भावकि तुम मननशीलहो वेदादि के मनन करने-वाले हो अतः तुमसे मैं कहताहूँ, सुनो। ३—"मोह बिपिन कहँ नारि बसंता"इति। (क) मोह सबका राजा है,यथा—'मोह दसमौलि तद्भ्रात अहंकार०'पुनः,यथा—'जीति मोह-महिपाल दलसहित बिबेक भुआल। करत अकंटक राजपुर सुख संपदा सुकालु' (अ०) २३५) और बसंत ऋतुराज है। राजा अपने दलको सदा बढ़ायाही करताहै, वैसेही मोह अपनी सेनाको सदा वृद्धिमें लगा रहताहै। वृद्धि करनेमे वसन्त सम है। पुनः (ख) मोहको इससेभी प्रथम कहा कि मोहही अन्य सब विकारोंका मूल है, यथा 'मोह सकल व्याधिन कर मूला। तेहि ते पुनि उपजहिं बहु सूला'। अतएव स्त्रीके संगसे सबसे प्रथम मोहकी वृद्धि कही। (ग)—यहाँ स्त्रीका स्वरूप वसन्त आदि छहो ऋतुओंसे बाँधा है। ऋतु रजोधर्मको भी कहते हैं और ऋतुवती स्त्री शास्त्रमें सर्वथा त्याज्य कहाहै, रजोधर्मके समय उसका स्पर्श उसका संग ब्रह्म-हत्यादि पातकोंका भागीकरताहै और आयुर्वेदभी मना करताहै। यहाँ नारदजीको वैराग्यमें दृढ़ करनेके लिये स्त्री-त्यागका उपदेश देरहेहैं, अतः 'ऋतु' का रूपक दिया। भावकि विरक्त संतोंको वह सर्वथा त्याज्य है। (घ) स्मरण रहे कि यहाँ जोजो अवगुण दिखारहेहैं वे सब नारदजीमें प्राप्त होगएथे, अतः उन्हीं २ को यहाँ लिया। आगे मिलानके नक़्शेसे सब स्पष्ट होजायगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

४—'जप तप नेम जलासय झारी...' इति। (क) गंभीर जलाशय ग्रीष्ममेंभी नहीं सूखते, और सब तो सूख जातेहैं पर इनमें जल बना रहजाताहै। अतएव यहाँ 'झारी' पद दिया। अर्थात् स्त्रीरूपी ग्रीष्मऋतुसे जपतपादि कोई भी नहीं बचते, वह सबको 'झारिकै' (निपट,संपूर्ण, झाड़पोंछकर) सोखलेतीहै कि बूँदभर भी न रहजाय। (ख)—सब जलाशय सूखकर भ्रष्ट होजातेहैं वैसेही जपतपनियमादि के नष्ट होनेसे लोग भ्रष्ट होजातेहैं। (ग) यहाँ 'जप तप नेम' तीन ही नाम दिए क्योंकि जलाशयभी तीनही प्रकारके हैं 'कर्मकमंडकर गहे.....सरिता कूप तड़ाग' (घ)। 'झारी' का भाव यहभी है कि क्रियमानकी कौन कहे संचितकोभी विनष्ट करदेतीहै।

५—कामक्रोधादि चारको मेंढक कहा क्योंकि मेंढकभी ४ प्रकारके होतेहैं। हरषप्रद क्योंकि ग्रीष्ममें टुकड़े २ होजातेहैं और प्रथम वर्षा पातेही जी उठतेहैं, टरटर मचानेलगतेहैं। वैसेही मुएहुए मनमें भी कामादि स्त्रीको पाकर जगउठतेहैं।

६ (क)—'दुर्बासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहँ सरद००' कहकर तब 'धर्मसकल सरसीरुह' कहा, क्योंकि कुमुदभी कमलकीही एक जाति है। [स्त्रीकी प्रसन्नताकेलिए अनेक उपाय ही दुर्वासनाएँ हैं।—(खर्रा)]। (ख)—'होइ हिम दहइ तिन्हहिं सुखमंदा'—'सुखमंदा' स्त्रीकेलिए है अर्थात् यह नीच-सुख देनेवालीहै।* [भाव कि द्रव्य आदि नारीसे ही नहीं बचपाता तब बिना द्रव्य धर्म कहाँ से होसके—(खर्रा)] ७—'पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ०'। पहले कामादिकी हर्षप्रद वर्षा हुई अब पुत्र पौत्रादि स्त्रीद्वारा हुए, उनमें ममत्व बढ़ा।—(खर्रा)। यहाँ षट् ऋतु पूर्ण हुए।

८—'पाप उलूक'। पापको उल्लू कहा; क्योंकि चोरी, व्यभिचार आदि अनेक पाप, रात्रिमेंही हुआकरतेहैं और उल्लूभी रातमेंही बिचरताहै।

'बंसी सम' यथा—भर्तृहरि शतके—'विस्तारितं मकर केतन धीवरेण स्त्रीसंज्ञितं बड़िशमत्र भवांबुराशौ। तेनाचिराच्चदधरामृत लोलमत्स्यान्मत्स्यान्विकृष्य सपचत्यनुरागवह्नौ॥'—(भर्तृहरि शृंगार

* वीर—'उन्हें निकम्मा सुख देतीहै अर्थात् प्रत्यक्षमें शीलता-सुख प्रतीत होताहै किन्तु अन्तमें उसीसे कमल जलजाताहै।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शतक) 'बुद्धि बल शील सत्य' चारको मछली कहा, यथा—'धुनि अबरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती'। स्त्री पुरुषको फाँसकर फिर एक-एक करके सब गुणोंको बाहर निकाल फेंकतीहै जैसे बंशीसे मछलीको फाँसकर निकाललेतेहैं।

☞ १—'मोह विपिन कहँ नारि बसंता' से लेकर 'बंसी समः त्रिय००' तकका सारांश यह है कि मोहके होनेसे जपतपका नाशः हुआ, जपतपके नाशसे कामक्रोधमदमत्सर बढ़े। इनके बढ़नेसे धर्म-का नाश हुआ, धर्मके नाशसे ममता बढ़ी, ममत्वके बढ़नेसे पापकी वृद्धि हुई और पापबुद्धिसे बुद्धिबलशील सत्यका विनाश हुआ। इसीसे मोह, काम, क्रोध, मद, मत्सर आदि और जप, तप, नेम, धर्म आदि इस क्रमसे कहेगए।

२—छः चौपाइयोंमें छः ऋतु कहकर अंतमें दो और भी चौपाइयाँ रखीं, जिनमें पाप उलूक और बुद्धिबल आदि मीनको कहा। भाव कि पाप-उलूकका वास मोह-विपिनमें रहताहै और बुद्धिबलशील सत्य रूपी मछलियोंका वास जपतपनियमरूपी जलाशयोंमें रहताहै। इससे इनकोभी कहा।

३—श्रीगौड़जी—इस समस्त प्रसंगमें 'नारि' की व्यक्तितापर आक्षेप नहीं है क्योंकि 'नारि' शब्दके अन्तर्गत ऐसी व्यक्तियाँभी शामिल होसकतीहैं जिनसे कि ये सारे विषय संबंधी दोषोंका कोई लगाव नहीं; प्रत्युत उनके स्मरणसे यह दोष दूर होसकताहै। इस स्थलपर 'नारि' शब्दसे भाव है—काम प्रवर्तिनी नीच वासना जिसपर नारि शब्दका लक्ष्य है। इसीसे अन्तमें 'प्रमदा' शब्द दियागयाहै। जो अरसिक पाठक इसे नारि जातिकी निन्दा समझतेहैं वे 'नारि' शब्दके लक्ष्यार्थपर ध्यान नहीं देते और उसका अर्थ कामवासना प्रवृ-त्तिमात्र नहीं लगाते।

४—पु० र० कु०—'प्रमदा सब दुखखानि' यथा-भर्तृहरे शृंगार-शतके—"सत्यं जनाव च्मिन पक्षपाताल्लोकेषु सर्वेष्वति तथ्यमेतत्। नान्यं मनोहारि नितंबिनीभ्यो दुःखस्य हेतुर्नहि कश्चिदन्यः॥' प्रमदा नाम देकर जनाया कि सब कालमें मदमें भरीहुई मतवाली रहतीहै।

'ताते कीन्ह निवारन' इति। स्त्रीसंगके दोष कहकर दूसरेको तो उससे निवारण करतेहैं और स्वयं विरही हैं यह तो वही हुआ कि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे'।' यह प्रसंग यहाँ वक्ताओंने कहकर सूचित किया कि वस्तुतः रामजी विरही नहीं हैं, उनका विरह लीलामात्र है। नारदका प्रश्न था—'केहि कारन प्रभु करै न दीना' इसीसे कहतेहैं कि 'ताते०' अर्थात् इस कारणसे।

☞ यह पूरा प्रसंग महारामायणमें है।

१—'प्रयच्छैकं वरं मह्यं परमोदार राघव।
यद्यपि त्वं तु जानासि तथापि कथयाम्यहम् ॥१॥'

'सुनहु उदार परम रघुनायक। सुंदर अगम सुगम बरदायक॥
देहु एक बर माँगौं स्वामी। जद्यपि जानहु अंतरजामी'॥

यहाँ 'सुंदर अगम सुगम बरदायक' और 'स्वामी' ये अधिक हैं। इसी तरह आगेके श्लोकोंमेंभी पाठक मिलान करलें।

२—'मम स्वभावं जानासि तथापि च वदाम्यहम्।
नादेयं विद्यते किञ्चिज्जनानां प्रिय नारद ॥२॥'

"जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ। जन सन कबहुँ कि करौं दुराऊ॥
कौन वस्तु अस प्रिय मोहि लागी। जो मुनिबर न सकहु तुम्ह माँगी॥
जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरे। अस बिस्वास तजहु जनि भोरे॥"

प्रसन्नो नारदः प्राह श्रुत्युक्तानि बहूनि ते।
३—संति यद्यपि नामानि तथाप्यस्तु तवाधिकम् ॥३॥"

"तब नारद बोले हरषाई। अस बर मागौं करौं ढिठाई॥
जद्यपि प्रभुके नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक ते एका॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होहु नाथ अघखगगनबधिका॥"

४—'त्वद्भक्तिर्यामिनीराका त्वन्नाम रजनीपतिः।
नक्षत्राण्यन्य नामानि भक्तहृद्व्योम्निराजताद् ॥४॥"

"राकारजनी भगति तव रामनाम सोइ सोम।
अपर नाम उडुगन बिमल बसहु भगत उर ब्योम॥"

५—"एवं भवतु चेत्युक्त्वा कृपासिन्धुर्हरिः परः।
प्रसन्नो नारदो जातः प्रणनाम च पादयोः ॥५॥"

"एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपासिंधु रघुनाथ।
तब नारद मन हरषि अति प्रभु पद नायेउ माथ॥"

६—"ज्ञात्वा प्रसन्नं रघुनंदनं तदा मृदुव्यया गिरा तं च जगाद नारदः।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्वन्मायया मोहितमानसस्य मे कथं विवाहो भवता निवारितः ॥६॥"
"अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। तब नारद बोले मृदु बानी॥
राम जबहि प्रेरेहु निज माया। मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया॥
तब बिबाह चाहौं मैं कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा॥"

७—"प्रतिज्ञापूर्वकं वच्मि शृणु नारद मे वचः।
ये भजन्ति सदा मां तु तेषां रक्षां करोम्यहम् ॥७॥"
"सुनु मुनि तोहि कहौं सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालकहि राख महतारी॥"

८—"शिशुर्वत्सोऽनलं सर्पं स्प्रष्टुं धावति चेत्तदा।
ततो रक्षति तं माता प्रौढे नैव कदाचन ॥८॥"
"गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखै जननी अरगाई॥
प्रौढ भये तेहि सुत पर माता। प्रीति करै नहिं पाछिल बाता॥"

९—'प्रौढपुत्रसमो ज्ञानी दासो बालसुतो यथा।
दासो मद्बलमाश्रित्य ज्ञानी निज बलं तथा ॥९॥
तिष्ठत्युभौ च शत्रुभ्यां पीड़ितौ भजतोऽथ माम् ॥१०॥'
"मोरे प्रौढ तनयसम ज्ञानी। बालक सुत सम दास अमानी॥
जनहिं मोर बल निज बल ताही। दुहुँ कहँ काम क्रोध रिपु आही॥
यह बिचारि पंडित मोहिं भजहीं। पायेहु ज्ञान भगति नहिं तजहीं॥

१०—"मोहसेनाभटाः सर्वे कामक्रोधमदादयः।
दारुणा दुःखदा मायारूपिणी तेषु चाबला ॥११॥"
"कामक्रोध लोभादि मद प्रबल मोह की धारि।
तेहि महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि॥"

११—"मोहारण्य वसन्तः स्त्री ग्रीष्मरूपा जपादिकम्।
जलाशयं जलैःशून्यं करोति च नितंबिनी ॥१॥
प्रावृट् कामादिभेकानां सुखदा स्त्रीप्रकीर्तिता।
शरद्दुर्वासनारूपकुमुदानां सुखप्रदा ॥२॥
समस्त धर्मपद्मानि नश्यन्ति स्त्रीतुषारतः।
शिशिरर्तुस्तथा नारी ममतायासवर्धनी ॥३॥"
दुर्गुणानां च मूलं स्त्री दुःखाढ्या शूलदायिनी।
ज्ञात्वा स्वहृदये चेत्थं विवाहस्ते निवारितः ॥४॥'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१—महारामायणके 'जपादि, कामादि' के स्थानपर कविने 'जप तप नेम', 'कामक्रोध मद मत्सर' दियाहै। और 'नश्यन्ति स्त्री तुषारतः' की ठौर 'होइ हिम तिन्हहि दहै सुखमंदा' लिखाहै। 'सुखमन्दा' का पर्याय शब्द श्लोकोंमें नहीं है।

२—'पाप उलूक...प्रवीना' की जोड़का श्लोक महारामायणमें नहीं है।

पु०र०कु०—जो स्त्रीमें दोष गिनायेहैं वे सब नारदमें स्त्रीकी इच्छा करतेही प्राप्त होगएथे निम्न नक़्शेसे स्पष्ट देखपड़ेगा—

मोह बिपिन कहँ नारि बसंता	१ मुनि अति बिकल मोह मति नाठी, मुनिहि मोह मन हाथ पराए।
जप तप नेम जलासय झारी होइ प्रोषन सोषइ सब नारी॥	२ जप तप कछु न होइ तेहि काला।
काम क्रोध मदमत्सर भेका। इन्हहि हरषप्रद बरषा एका॥	३ 'हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला'—(काम है), 'सुनत बचन उपजा अति क्रोधा', 'फरकत अधर कोप मन माहीं', 'जेहि समाज बैठे मुनि जाई। हृदय रूर अहमिति अधिकाई'—(मद); 'मुनिमन हरष रूप अति मोरे। मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरे'—(मत्सर)
दुर्बासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहं सरद सदा सुखदाई॥	४ 'करउँ जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी'—योगीकेलिये यह दुर्वासना है।
धर्म सकल सरसीरुहबृंदा। होइ हिम तिन्हहि दहै सुखमंदा॥	५ पर संपदा सकहु नहि देखी। तुम्हरे इरिषा कपट बिसेखी॥ मथत सिंधु रुद्रहि बौरायउ। सुरन प्रेरि बिष पान करायेहु॥ असुर सुरा बिष संकरहि आपु रमा मनि चारु। स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट व्यवहार॥ इत्यादि कठोर वचन कहनेसे सकल सेवक-धर्म नष्ट हुए।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुनि ममता जवास बहुताई।
पलुहई नारि सिसिर रितु पाई॥

६ 'मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी' यह ममता है।

पाप उलूक निकर सुखकारी।
नारि निबिड रजनी अँधियारी॥

७ मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे'। कह मुनि पाप मिटिहि किमि मोरे।—यह पाप है।

बुधिबल सील सत्य सब मीना।
बंसी सम तिय कहहिं प्रबीना॥

८ 'जदपि सुनहिं मुनि अटपटि बानी। समुझि न परहि बुद्धि भ्रमसानी' यह बुद्धिका नाश है, 'अति आरत कहि कथा सुनाई। करहु कृपा हरि होहु सहाई' यह बलका नाश है। 'मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे' यह शीलका नाश है। 'कछुक बनाइ भूपसन भाषे' यह सत्यका नाश है।

सुनि रघुपति के बचन सोहाए।
मुनि तन पुलक नयन भरि आए॥ ◊ ४४/३८ (१)
कहहु कवन प्रभु के असि रीती।
सेवक पर ममता अरु प्रीती॥ ,, (२)
जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी।
ग्यान रंक नर मंद अभागी॥ ,, (३)
पुनि सादर बोले मुनि नारद।
सुनहु राम बिग्यान बिसारद॥ ,, (४)
संतन्हके लच्छन रघुबीरा।
कहहु नाथ भवभंजनभीरा॥ ,, (५)

अर्थ—रघुनाथजीके सुन्दर वचन सुनकर मुनिका शरीर पुलकित होगया नेत्र (में आँसू) भर आए। (वे मनमें सोचने लगे कि) कहिये तो, किस स्वामीकी ऐसी रीति है? किसका सेवकपर इसप्रकारका ममत्व और प्रेम है? जो लोग भ्रम छोड़कर ऐसे प्रभुको नहीं भजते वे ज्ञानरंक (ज्ञानके दरिद्र या कंगाल, ज्ञानरहित, ज्ञानशून्य) मन्द-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(बुद्धि) और अभागे हैं। फिर नारदमुनि आदरपूर्वक बोले—हे विज्ञान-विशारद श्रीरामजी! सुनिये। हे रघुकुलवीर! हे भयभयको दूर करनेवाले। हे नाथ। सन्तोंके लक्षण कहिये। *

पु०र०कु० १—'सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता' उपक्रम है और 'सुनि रघुपतिके बचन' उपसंहार। २—'कहहु कवन प्रभुके असि रीती। यथा—'सबके प्रिय सेवक यह नीती मोरे अधिक दास पर प्रीती'। अपने सेवककी सेवा माताकी तरह करतेहैं यह रीती इन्हींकी है और स्वामी तो सेवकको नीच दृष्टिसे देखतेहैं। ३—'जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी। ग्यानरंक...'इति भ्रमको छोड़कर प्रभुका भजन करना कहा। भ्रमसे ज्ञानका नाश होताहै, यथा—'प्रगट न ज्ञान हृदय भ्रम छावा'। यह भजनका बाधक है, यथा—'भ्रम तजि भजहु भगतभय-हारी'। 'न भजहिं' से उपासनारहित, ज्ञानरंक से ज्ञानहीन और मंदसे कर्महीन अर्थात् त्रिकांडरहित जनाया, अतएव अभागी हुए। ४—'पुनि सादर बोले' से पूर्व प्रसंगकी समाप्ति जनाई। श्रीनारदजी अभीतक अपकार ही जानतेरहे अब स्वामीके कथनसे जाना कि हमारे साथ बड़ाभारी उपकार किया। विज्ञान विशारदका भाव कि आपका ज्ञान अखण्ड एकरस है कोई उसका अवरोधक या विनाशक नहीं है।

सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ।
जिन्ह ते मैं उन्हके बस रहऊँ॥ ◊ ४४/३८ (६)
षटबिकार जित अनघ अकामा।
अचल अकिंचन सुचि सुखधामा॥ ,, (७)
अमित बोध अनीह मित भोगी।
सत्य सार कबि कोबिद जोगी॥ ,, (८)

* यथा—"शोभनं वचनं श्रुत्वा रामचन्द्रस्यनारदः। हर्षितो मनसि प्राह दासेतिममता प्रभोः॥ प्रीतिश्चैतादृशं त्यक्त्वा भ्रमं नैव भजन्ति ये। स्वामिनं ज्ञानशून्यास्ते दुर्दैवा मंदबुद्धयः॥ देवर्षिः सादरं प्राह पुनः श्रीरघुनंदनम्। लक्षणं सज्जनानां च वद राम पुरो मम॥" गोस्वामीजीके 'विज्ञानविशारद' और 'नाथ भंजन भवभीरा' विशेषण महारामायणमें नहीं हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सावधान मानद मद हीना।
धीर धर्मगति परम प्रवीना॥ ,, (९)

गुनागार संसारदुष रहित बिगत संदेह।
तजिमम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह॥ ४८ ६२

शब्दार्थ—षट् विकार—प्राणीके छः विकार या परिणाम अर्थात् उत्पत्ति, शरीर वृद्धि बालपन, प्रौढ़ता, जरा, मृत्यु। वा, काम क्रोध, * लोभ, मोह, मद (अहंकार), और मत्सर—(पा०)।

अर्थ—मुनि! सुनिए, सन्तोंके गुण कहताहूँ जिन (गुणों) से मैं उनके वशमें रहताहूँ (अर्थात् गुण तो अनंत हैं, पर मैं केवल इन्हीं को कहताहूँ)। छहो विकारोंको जीतेहुए, निष्पाप, निष्काम, चंचलता-रहित (स्थिर चित्त), अकिंचन, पवित्र, सुखके स्थान, अतोलज्ञानवाले, चेष्टारहित, अल्पभोगी, (स्वल्पाहारी), सत्यके सार रूप† (प्रियसत्य-वादी) कवि, पण्डित, योगी, (सदा कर्तव्यमें) सावधान, दूसरोंको मान देनेवाले, स्वयं मान-रहित, धीर, धर्मकी गतिमें बड़े चतुर, गुणों-के घर, संसारके दुःखों वा संसाररूप दुःखसे रहित और संदेहसे विशेषरहित होतेहैं। मेरे चरणकमलोंको छोड़कर उनको न देह ही प्रिय है न घर ही। **

---

* 'षट् विकार' कौन हैं, इसमें मतभेद है। १—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर। २—पाँचों ज्ञानेंद्रिय और मनके मलिन व्यवहार। ३—'अस्ति जायते वर्द्धते विपरिणमते अपक्षीयते नश्यति'—(प्र०)। ४—क्षुधा, प्यास, हर्ष, शोक, जन्म, मरण।

† 'सत्यसार कवि'=सत्यका जो सारांश है उसके कवि हैं अर्थात् सत्यही कहतेहैं। (वै०)।

**यथा महारामायणे—लक्षणं सज्जनानांच शृणु नारद सादरं ॥१॥ 'षड्-विकारजितोऽपापा निष्कामा अचलास्तथा। अकिंचनाः पवित्राश्च सुबोधाश्च सुखालयाः ॥ २ ॥ भोगिनः परमार्थानां सत्यसाराश्च योगिनः। कोविदाः कवयो धीरा ममतामदवर्जिताः ॥ ३ ॥ सावधानाश्च नितरां निपुणा धर्मकर्मणि ॥ ४ ॥ निस्सन्देहा गुणागारा भवदुःख विविर्जिता। एषांत्यक्त्वा मदंघ्रज्जं प्रियं देहं न मन्दिरम् ॥ इन श्लोकोंमें गोस्वामीजीके 'अमितबोध' 'अनीह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु०—१ 'सुनु मुनि संतन्हके गुन कहऊँ।०० बस रहऊँ' इति। (क) 'सुनु मुनि'। यहाँ पुनः 'सुनु' पददेकर पूर्व प्रसंगकी समाप्ति और नवीन प्रसंगका प्रारंभ जनाया। (ख) 'गुण कहऊँ' और बस रहऊँ' से जनाया कि इन गुणोंसे मैं उनके वश होजाताहूँ, इन गुणोंमें मैं बँधजाताहूँ। गुण सूनकोभी कहतेहैं मानों ये गुण रस्सा-रूप हैं जो मुझे बाँधलेतेहैं।

२—'षट बिकारजित'। षट विकारकी षट शत्रु संज्ञा है, अतः 'जित' पद दिया।

नोट—'अचल' धर्ममें। एवं रागद्वेषादिसे विचलत न होनेवाले—(प्र०)। 'अकिंचन' धन संपति आदि स्वर्गादि सभीके संग्रहसे रहित-(प्र०) अपने पास कुछ नहीं रखते।—(प्र०) यथा—'तेहि ते कहहिं संत श्रुति टेरे। परम अकिंचन प्रिय हरि केरे'।—ब० § १६० (३)। शुचि=मनवचनकर्मसे पवित्र। 'अमित बोध'=आत्मज्ञानी—(पु० र० कु०) =अपार ज्ञानवाले—(प्र०)। मितभोगी=शरीरका निर्वाह-मात्र करने भरको, यथा—'युक्ताहार विहारस्य०'। यश वर्णनमें कवि, शास्त्रादिके ज्ञानमें कोविद (पंडित), अष्टांगयोगयुक्त एवं सदा भगवत्में चित्तकी वृत्ति रखनेमें योगी,। 'सत्यसार'=सत्यके साररूप।=सत्यको साररूप जाननेवाले—(प्र०)। 'सावधान' अर्थात् व्यवहार और परमार्थमें सदा अपने मनको देखतेरहतेहैं जिसमें विषयादिके वश न होजायँ। 'धीरधरमगति परम प्रबीना'। धर्मकी गति बहुत सूक्ष्महै उसके जानने और करनेमें परम प्रवीणहैं। 'धीर' यथा—'ते धीर अछुत बिकार हेतु जे रहत मनसिज बस किए' इति पार्वती-मंगल। पुनः 'धीर' अर्थात् दुःखसुखसे मन चंचल नहीं होनेपाता। 'गुणागार' से जनाया कि जो गुण गिनाए येही नहीं वरन् गुणसमूहहैं मानों गुणोंके घरही हैं सब गुण यहीं वासकरतेहैं। 'संसारदुःखरहित', यथा—'ताहि न व्याप त्रिबिध भवसूला'। 'तजि मन चरन सरोज प्रिय जिन्ह कहुँ देह न गेह' इति। यथा—'राम बिलोकि बन्धु कर जोरे। देह गेह सब सन तृन तोरे'। 'संसारदुखरहित' से जनाया कि वे आत्माको देहसे पृथक जानतेहैं, दुःख है तो यही कि भजन नहीं

मितभोगी 'धर्मगति परम प्रबीना' और 'मदहीना' के स्थानपर 'सुबोध', भोगिनः, परमार्थानां', निपुणा धर्मकर्मणि' ममतामदवर्जिताः' शब्द आएहैं 'अनीह नहीं है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होता। 'विगत संदेह' वा भाव कि जिस मार्गपर कल्याणकेलिए चलतेहैं उसमें कुछ संदेह नहीं कि हमारा कल्याण होगा कि नहीं। 'देह न गेह'का भाव कि मैं मेरा सभी त्याग किएहैं, किसीमें ममत्व नहीं है।

निजगुन श्रवन सुनत सकुचाहीं।
परगुन सुनत अधिक हरषाहीं॥ ॐ ४५/३६ (१)
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती।
सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती॥ ,, (२)
जप तप ब्रत दम संजम नेमा।
गुरगोबिंद बिप्रपद प्रेमा॥ ,, (३)
श्रद्धा छमा मैत्री दाया।
मुदिता ममपद प्रीति अमाया॥ ,, (४)
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना।
बोध जथारथ बेद पुराना॥ ,, (५)
दंभ मान मद करहिं न काऊ।
भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥ ,, (६)
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला।
हेतुरहित परहित रत सीला॥ ,, (७)
मुनि सुनु † साधुन्ह के गुन जेते।
कहि न सकैं सारद श्रुति तेते॥ ,, (८)

शब्दार्थ—सम=अन्तरिन्द्रियनिग्रहवान=सबको समान देखनेवाले। अमाया=कपटरहित, दिखावेका नहीं। दम=बाह्येन्द्रिय निग्रह। हेतु रहित=विनाकारण, बदलेकी चाहसे नहीं।

अर्थ—कानोंसे अपने गुण सुनते सकुचातेहैं, दूसरोंके गुण सुनकर बहुत खुश होतेहैं। सम और शीतल हैं, नीतिको नहीं छोड़ते, सरल स्वभाव, सभीसे प्रेम रखतेहैं (अर्थात् वैर किसीसे नहीं) जप, तप, व्रत, दम, संयम, नियम, गुरु, भगवान् और विप्रचरणमें

† 'सुनु मुनि' (क०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रेम है। श्रद्धा, क्षमा, मित्रता, दया, प्रसन्नतापूर्वक मेरे चरणोंमें कपट-रहित प्रेम, वैराग्य, ज्ञान, विशेष नम्रता, विज्ञान, वेदपुराणोंका यथार्थ (ठीक) ज्ञान—ये गुण उनमें होतेहैं। दम्भ, अभिमान और मद कभी नहीं करते, बुरे रास्तेपर भूलकरभी पैर नहीं देते। सदा मेरे चरित कहतेसुनतेहैं, बिना कारण परोपकारमें तत्पर रहना उनका स्वभाव है और सुशील होतेहैं। हे मुनि! सुनिए, साधुओंके जितने गुण हैं उनको शारदा और वेद नहीं कहसकते (कि ये यही हैं)।*

पु०र०कु०—१(क) 'निज गुन स्रवन सुनत सकुचाहीं' अर्थात् वे गुणागार हैं, उनकी प्रशंसा जो करताहै वह झूठ नहीं करता, पर तो भी सुनकर उन्हें संकोच होताहै। जो गुणहीन हो वह सकुचे तो ठीक ही है। पुनः, भाव कि निजके हर्षशोकसे रहित हैं। (ख) 'पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं' अर्थात् जैसे २ सुनतेहैं तैसे २ अधिक हर्ष होताहै। (ग)—समशत्रुमित्रके विषयमें। 'शातल' अर्थात् दुष्ट-के वज्र-वचन सहनेमें गर्म नहीं होते। 'नहिं त्यागहिं नीती' अर्थात् कैसाही अवरेब पड़जाय नीति नहीं छोड़ते। 'सरल'=कपट छल-रहित, किसीसे क्रूर नहीं। (घ) 'जप तप...पदप्रेमा'। प्रेमका अन्वय सबमें है। जपतप आदि सबमें प्रेम है। विवेक=सत असत्का ज्ञान। विज्ञान=सर्वात्मभाव। बोध=श्रुतिस्मृतिमें निस्संदेह होनेका भाव। ☞ (घ)—'दंभ मान मद करहिं न काऊ' यहाँ कहा और पूर्व कहाथा कि 'सावधान मानद मदहीना' इस प्रकार इस प्रसंगमें 'मद' की पुनरुक्ति हुईहै। कारण कि वाह्य अंतरके भेदसे ऐसा कहागया। दम्भ और मानके योगसे यहाँ अंतष्करणका मद जनाया औत पूर्व सावधानके योगसे वाह्य मद सूचित किया अर्थात् कोई मादक अमल का सेवन नहीं करते।

---

* यथा महारामायणे—'स्वगुण श्रवणे येषां संकोचश्च प्रसन्नता। गुणानां श्रवणेऽन्येषां समा नीतिविशारदाः॥१॥ सर्वेषां प्रीतिपात्राणि स्वभाव सरलास्तथा॥२॥ गुणानुवादं गायन्ति शृण्वन्ति च सदा मम। स्वार्थं विनाऽन्यकार्याणां करणे तत्पराः सदा॥३॥ देवर्षे शृणु साधूनां यावन्तः सन्ति वै गुणाः। शारदा श्रुतयश्चापि तान्सर्वान्वक्तुमक्षमाः॥४॥ गोस्वामीजीके 'सबहिं सन प्रीती', की ठौर श्लोकमें 'सर्वेषां प्रीति पात्राणि' (अर्थात् सबके प्रेमपात्र) शब्द हैं। "जप तप व्रत दम संजम नेमा...कुमारग पाऊ" ये मानसमें अधिक हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—'गावहिं सुनहिं सदा ममलीला। हेतुरहित...। (क) सदा गातेसुनतेहैं क्योंकि 'ममलीला रति अति मनमाहीं'। यह नवधा भक्ति की दो भक्तियाँ हैं। (ख) 'हेतुरहित' दीपदेहरी है। 'गावहिं सुनहिं हेतु रहित' अर्थात् द्रव्यकी लालचसे नहीं। [जैसे आजकल प्रायः (काशीजी ऐसे पुण्यप्रदेशोंमेंभी) व्यास लोग ठहरौनी कराके कथा कहतेहैं वैसा नहीं, धनके लोभसे नहीं कहतेसुनते।] और 'हेतु-रहित परहितरतसीला' अर्थात् परोपकारभी विना किसी कारणके करतेहैं, यथा—'पर उपकार बचनमनकाया। संत सहज सुभाव खग-राया'। परहितमें तत्पर रहतेहैं क्योंकि 'परहित सरिस धरम नहिं भाई'। दूसरे यह इनका सहज स्वभाव है। (ग)—स्वयं गातेहैं और दूसरोंसे सुनतेभी हैं यह नहीं कि अभिमानसे समझतेहैं कि हमारे समान दूसरा नहीं हम किससे सुनें। रामचरितसे अधिक कोई गुण नहीं है इसीसे उसे अंतमें लिखा। रामगीतामेंभी अंतमें कहाथा कि 'मम गुन गावत पुलक सरीरा'।

३—जो जो स्त्रियोंके दोष गिनाए उन्हींके विपर्य्ययमें संतोंके गुण कहेहैं—

मोह विपिन कहँ नारि बसंता	१ अमित बोध
जप तप नेम जलासय झारी। होइ ग्रीषम सोषै सब नारी॥	२ जप तप व्रत संयम नेमा
स्त्री कामको बढ़ातीहै	३ अकामा
स्त्री क्रोधको बढ़ातीहै	४ क्षमा मयत्री दाया
स्त्री मदको बढ़ातीहै	५ दंभ मान मद करहिं न काऊ
स्त्री मत्सरको बढ़ातीहै	६ परगुन सुनत अधिक हरषाहीं
दुर्वासना कुमुद समुदाई	७ भूलि न देहिं कुमारग पाऊ
'धर्म सकल सरसीरुह०० होइ हिम०० दहै सुख	८ धीर धरम गति परमप्रबीना
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ०'	९ तजि मम चरनसरोज प्रिय जिन्हके देह न गेह।
पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड रजनी।	१० अनघ
बुधिबल सील सत्यसबमीना। बंसी समत्रिय०॥	११ 'कवि कोविद' (बुद्धिमान)
बुद्धि, बल, शील और सत्यको हरलेतीहै।	योगी प्राणायां परमं बलं वा षट् विकार जित; सरल सुभाव सबहिसन प्रीती, सत्यसार॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्त्री अवगुणमूल,शूलप्रद,दुःखखानि १२-४ गुणागार संसारदुखरहित, सुखधाम।

इस मिलानका तात्पर्य यह है कि स्त्रीके त्यागसेही ये सब गुण सन्तोंमें निवास करतेहैं।

४-'सुनु मुनि साधुनके गुन कहऊँ' उपक्रम है,'सुनु मुनि साधुन्हके गुनजेते' उपसंहार है। यहाँ प्रसंगकी समाप्ति की।

प्रभु-नारद-संवाद प्रकरण समाप्त हुआ।

छन्द

कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पदपंकज गहे।
अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निजमुष कहे॥
सिरु नाइ बारहि बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रँए॥

रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग।
रामभगति दृढ पावहिं बिनु बिराग जप जोग॥
दीपसिषा सम जुवति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग॥ ४६/४०

अर्थ—'शारदा शेष नहीं कहसकते' यह सुनतेही नारदजीने प्रभुके चरणकमल पकड़े। ऐसे दीनबंधु कृपालु प्रभुने अपने मुखसे अपने भक्तोंके गुणको ऐसा (महत्त्वका) कहाहै। बारंबार चरणोंमें माथा-नवाकर नारदजी ब्रह्मलोकको गए *। तुलसीदासजी कहतेहैं कि वे लोग धन्य हैं जो आशा छोड़कर हरिके प्रेमरंगमें रंगगएहैं। जो लोग रावणके शत्रु श्रीरामजीका पवित्रयश गातेसुनतेहैं वे विना वैराग्य जप और योगकेही दृढ़ रामभक्ति पातेहैं। स्त्रीका शरीर दीपक (चिराग़, दिया) की लौके समान है, अरे मन! तू उसका पतिंगा न बन, काम और मदको छोड़कर रामचन्द्रजीका भजनकर और सदा सत्संग करताराह।

* यथा महारामायणे—'श्रीरामकथितान्साधुगुणान् श्रुत्वा स नारदः।
रामचन्द्रं प्रणम्याशु ब्रह्मलोकं ययौ मुदा॥'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पु० र० कु०—१ 'कहि सक न सारद सेष...'। शारदा स्वर्गकी, शेष पातालके सो न कहसके, तब मनुष्य कैसे कहसकतेहैं। पुनः, (ख) शेषजीके हजार मुख हैं और सरस्वतीजी अनन्त मुखोंमें बैठकर कहतीहैं, यथा—'बिधि हरिहर कबिकोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी'। सो गुण रामजीने अपने मुखसे कहकर यह कहा कि 'कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते' वा स्वर्ग और पातालवाले नहीं कहसकते, रहा मध्य सो उसमें आपने कुछ कहाहै—'जानहिं राम न सकहिं बषानी—(खर्रा)। (ग) दीनबंधु और कृपालुका भाव कि आपकेही भजनसे इतनी बड़ाई मिलतीहै कि 'इनके गुण शेषशारदाभी नहीं कहसकते'। यह प्रभुकी दीनबंधुता है और कृपा कि स्वयं अपने मुखसे उनके गुण कहतेहैं और बखान करतेहैं।

२—साधुगुणकी इति लगाना अत्यन्त अगम्य है इसीसे कविने भी दो बार कहा कि इनके गुण कोई नहीं कहसकता, यथा—'कहि न सकहि सारद स्रुति तेते' और 'कहि सक न सारद सेष'। (ख) इससे सन्तगुणकी अगाधता और अपारता और कहनेमें अत्यन्त अशक्य जनाया।

३—'नारद सुनत पदपंकज गहे' अर्थात् ये सब गुण आपके इन चरणोंकी कृपासेही प्राप्तहोतेहैं।

४—'अस दीनबंधु कृपाल... निज मुख कहे'। भाव कि ये संपूर्ण गुण आपही देतेहैं, यथा—'यह गुन साधन ते नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइकोई' औप आपही अपने संतोंके गुणोंकी प्रशंसा करतेहैं ऐसे आप कृपालु हैं।

५—'सिर नाइ बारहिं बार...' इति। जानेके समय स्वामीका प्रणामकरना उचितही है। रामजीके मुखारविन्दसे सन्तलक्षण सुने अतः परम कृतज्ञता और प्रेमके कारण बारंबार माथा नवायाजाताहै। 'तव पद बंदउँ बारहिं बारा, 'पुनिपुनि प्रभुपदकमलगहि जोरि पंकरुह पानि। बोली गिरिजा बचन बर मनहुँ प्रेमरससानि', 'सुनत बिभीषन प्रभुकी बानी। नहिं अघात श्रवनामृत बानी॥ पद अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदय समात न प्रेम अपारा'। पुनः, जनाया कि इन चरणमें माथा नम्र होनेसे ब्रह्मलोक क्या कोईभी लोक अलभ्य नहीं है जहाँ चाहे तहाँ जासकतेहैं। पुनः, प्रभुका उपकार और अपना अप-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राध समझकर उसकी क्षमाके लिएभी बारंबार प्रणाम किया। 'आस बिहाय' क्योंकि आशाके रहते हरिरङ्क नहीं चढ़ता।

नोट—यह हरिगीतिका छन्द है। प्रत्येक चरणमें २८ मात्राएँ और १६-१२ में विश्राम होताहै और चरणान्तमें लघुगुरु वर्ण आतेहैं।

पु०र०कु०५—'रावनारि जस पावन गावहिं...' (क) यह तीन वक्तालोगोंकी इति लगी। गोस्वामीजीकी इति आगेहै। (ख) 'गावहिं सुनहिं जे लोग'=वक्ता और श्रोता दोनों, वर्णाश्रम कोईभी हो इसमें सबका अधिकार जनाया। कैसा भी अधम हो वहभी गासुन सकता है। (ग) विना वैराग्य, जप और योगकेही दृढ़ भक्ति पानेका एक यही साधन है कि रामजीका यश कहे और सुने। यथा 'जप जोग धर्म समूह ते नर भगति अनुपम पावहीं। रघुबीरचरित पुनीत निसि दिन दास तुलसी गावहीं'—छंद § ६ में कहाथा तथा यहाँ वही बात फिरसे कही। अंतर केवल इतना है कि वहाँ 'धर्म' कहा और यहाँ 'विरति'—यह कोई भेद नहीं है क्योंकि वहाँ 'धर्मसमूह' पद है और धर्मसमूहसे वैराग्य होता ही है, यथा—'धर्मते बिरति जोग ते ज्ञाना'। इस प्रकार दोनों ठौर एक ही बात कही। पुनः, वहाँ बताया-था कि समूह जप योग धर्म ये सब अनुपमभक्तिके साधन हैं अतः यहाँ कहा कि इन साधनोंके विनाही दृढ़भक्ति 'रामयशके श्रवण-कीर्तनसे' मिलती है।

☞१यह दोहा आशीर्वादात्मक है। गोस्वामीजी एवम् सभी वक्ता आशीर्वाद देतेहैं कि श्रीरामयश कहने-सुननेसे विना जप योग वैराग्य केही दृढ़ भक्ति होगी।

२—अयोध्याकांडमें कहाथा कि भरतचरित नियमसे सुननेसे सीयरामपदप्रेम और वैराग्य अवश्य होगा और यहाँ कहतेहैं कि विना वैराग्यही दृढ़ भक्ति मिलेगी।

६—"दीपसिखासम जुवतितन मन जनि होसि पतंग..." इति। (क)—अब श्रीरामजीके उपदेशमें गोस्वामीजी अपनी इति लगातेहैं। 'अवगुनमूल सूलप्रद प्रमदा सब दुखखानि' ये वचन श्रीरघुनाथजीके हैं, इन्हीं वचनोंको लेकर इन्हींसे काण्डकी इति लगाई। पूर्व दोहेसे इसका संबंध लगाया। (ख)—दीपशिखा देखनेमें सुंदर है पर पतंगोंको भस्मकरदेतीहै। वैसेही स्त्रीका शरीर देखनेमें सुन्दर है पर वह सब

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धर्मकर्मको भस्म करदेतीहै। (ग)—यह प्रसंग कहकर जनाया कि इसीके कारण रावणकुलसमेत मारागया। (घ)—इस उपदेशसे यह भी जनातेहैं कि प्रभुके स्त्रीविरहपर दृष्टि न करो वरन् उनका भजन करो। बाल और वृद्धावस्थामें स्त्रीका तन दीपशिखासम प्रकाशमान नहीं होता, युवावस्थामेंही होताहै। अतएव 'युवति तन' पद दियागया।

७—'भजहिं राम तजि काम मद'। (क) काममद भक्तिके बाधक हैं और सत्संग साधक हैं। अतः उसका त्याग और इसका ग्रहण कहा। (ख)—भावकि इन्हीं काम और मदमें पड़नेसे नारदसरीखे महात्माकी दुर्दशा हुईथी।

(ग)—'करहिं सदा सतसंग' यथा—"तुलसी घट नव छिद्र को सतसंगति सर बोरि। बाहर रहै न प्रेमजल कीजै जतन करोरि"। तनघट नवछिद्रका है सो जलमें डूबारहे तभी भरा रहताहै नहीं तो करोड़ों उपाय करो उसमें बूँदभर जल नहीं रहसकता।

नोट—सत्संगतिसे भजन बराबर होगा, संसारसे सदा मुक्त रहेगा, मोह पास न आवेगा, यथा—'बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग। मोह गये बिनु रामपद होइ न दृढ अनुराग'। दृढ़ अटल प्रेम बनारहे इसकेलिये सत्संग आवश्यक है। पुनः 'सत्संगति संसृत कर अंता'। यही कारण है कि शिवजी आदिनेभी यह वर माँगाहै, यथा—'बार २ बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग। पद सरोज अनपायनी भक्ति सदा सतसंग'। 'यत्रकुत्रापि मम जन्म निजकर्मवश भ्रमत जगयोनि संकट अनेकं। तत्र त्वद्भक्ति सज्जन समागम सदा भवतु मे राम विश्राममेकं'—(विनय), 'त्वच्चरणाब्जां भक्तिं त्वज्जनानाञ्च संगमम्। देहिमां कृपासिन्धो मह्यंन जन्मनि जन्मनि'। दृढ़का भावकि समय पाकर भक्ति छूटजातीहै पर यश कहतेसुनते रहनेसे अंतःकरणमें जमजातीहै फिर नहीं छूटती।

रा०प्र०—इस काण्डमें अद्भुतरस कहाहै। सींकके बाणसे जयन्तकी शिक्षा, खर आदि का आपसमेंही लड़मरना, कनकमृग, ये सभी अद्भुतही कथायें हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

खर्रा—रावनारियश पावन कैसे ? क्योंकि निष्कपट युद्ध है। क्षत्रियका काम है कि दुष्टोंको मारें और संतोंको सुख दें। यह उनका परम धर्म है अतः पावन है।

इति श्रीरामचरितमानसे सकल कलिकलुष-
विध्वंसने विमलवैराग्य संपादन नाम तृतीयसोपानः।
श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु।

बन बसि कीन्हें चरित अपारा

विशेष—अरण्य, किष्किन्धा और सुन्दरकाण्डका संक्षिप्त मूल चरित कवितावली रामायणमें बड़ाही सुंदर दिया गया है उसे नीचे दिया जाता है—

जय जयंत-जयकर, अनंत, सज्जनजन रंजन।
जय बिराध-बध-बिदुष, बिबुध-मुनिगन-भयभंजन॥
जय निसिचरी बिरूप-करन रघुबंस-बिभूषन।
सुभट चतुर्दस-सहस-दलन त्रिसिरा-खर-दूषन॥
जय दंडकबन-पावन-करन 'तुलसिदास' संसय-समन।
जगबिदित जगतमनि जयति जय जय जय जय जानकिरमन॥
जय मायामृगमथन गीध-सबरी-उद्धारन।
जय कबंधसूदन बिसाल तरुताल-बिदारन॥
दवन बालि बलसालि, थपन सुग्रीव, संत-हित।
कपि-कराल-भट-भालु कटक-पालन, कृपालु चित॥
जय, सियबियोग-दुखहेतु-कृत-सेतु-बंध बारिधि दमन।
दससीस-बिभीषन-अभयप्रद जय जय जय जानकिरमन॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शुद्धाशुद्ध पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	२६	कुल जन	कुलं जनं
३	८	चारहु	चारिहु
	२४	ब्रह्माका	ब्रह्म वा
	३०	येहा	ये ही
४	२	जूथ	जूप
	११	जाय	'जाये
	१२	सूर्य्यको जथा	सूर्य्यको, यथा–'जथा
५	४	स्त्रियं	स्त्रियं
	९	घतापतप्यमान	घता-तप्यमानं
	२१	मुनः	पुनः
	२४	आश्रम	आश्रमन्ह
६	१०	आकाशद्वायुः	आकाशा-द्वायुः
	१२	जदद्वन्द्य	जगद्वन्द्य
	२२	अनुरागा	अनुरागा'।
७	१५	परम्	परम
	२८	अभी वर्णन करहे	अभीष्ट वर्णन कर रहे
८	१६	प्रकाश	प्रकरण
		नीलधीर	नील नीर धर
	३०	तमाल	तमाला
९	१५	तीनों	तीन
	२९	जोड़क	जोड़का
१०	१६	अवसि	प्रेम अवसि
	१७	वराग्य	वैराग्य
१४	१४	पुर	पुनः
	१७	अन्प	अनूप
	३१	मति	मन
१५	११	अन्प	अनूप
	२७	याज्ञवल्य	याज्ञवल्क्य
१६	१६	भाव कि	भाव निहित है कि
	१७	किएगएहैं i	किएगएहैं
	२६	जाना''...कर मोहि	मोहि जाना...कर
१७	११	परन	परम
१९	२०	तो	तौ
	२३	विमलाद्रि	विमलादि
२०	२१	९९	९९½
	२९	पुप्पों	पुष्पों
२२	७	जैसे	[जैसे
	१०	(मा० स०)	[(मा० स०)।]
	११	राम धुग्रंथे	रामसुधाग्रंथे
	२२	लोग्य	योग्य
	३०	डस	उस
२३	६	उदाहारण	उदाहरण
	९	हैं	है
२४	१२	प्रवुद्धयाय	प्रवुद्धयाथ
२५	२४	'मूढका	१ 'मूढकाग
२६	३	है इसी	है। इसी
	६	कहा। वैसेही	कहा।— [वैसेही
	१०	पञ्चवक्रेण	पञ्चवक्त्रेण
	२२	दौनों	दोनों
	३०	मंदके	मदङ्के
७८	१२	अतः नाट—	अतः

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	१४	के बाद पादटिप्पणी का रूल चाहिए, २६ के बाद नहीं	
२८	२	१ नोट—१	
	३	ब्रह्मणोस्त्रेण	ब्रह्मणोऽस्त्रेण
	५	लीलवारामो	लीलयारामो
	२५	जीव रघुनायक	जीव। रघुनायक
	२९	दोनों	दीनों
२९	१२	तप वह	तब वह
	२३	ब्रह्मास्त्रेणभि	ब्रह्मास्त्रेणाभि
	२५	ब्राह्मणाऽ	ब्राह्मणो
३०	३	वहै	वह
	१९	सुदशन	सुदर्शन
		वही सींक	वही भय सींक
	२४	प्रज्वलद्दीपं	प्रज्वलद्दीप्तं
	२८	रामजीका	रामजीके
३१	२७	कि यह	कि यह सींक
३२	३	हुआ	हुआ—
	१८	ब्रह्मैन्द्र	ब्रह्मेन्द्र
३४	५	यही स्वयं	वही स्वयं
	२७	दिया दयाहै	दिया गया है।
३५	२८	पकड़कर	चरण पकड़कर
३६	२५	तबकक	तब तक
३८	१७	हैं	है
	२५	न्याब	न्याय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	३०	भाव वह	भाव यह
३९	२	नथन	नयन
	८	सोभी	तो भी
३९	१६	मुसुकाई	मुसुकाइ
	१८	(३)३९)	(उ०)३९)
	२७	रामजीका	४—इस प्रसंगभरमें रामजीका
	२८	४—इस प्रसंगभरमें	× ×
४०	१५-१६	अर्धांगीजीका	अर्धांगिनीका
	२३	हिनस्तस्म	हिनस्तिस्म
	२८	राखे	राखेहु
		। दशरथवाक्य	दशरथवाक्यः।
	३०	जानकीकों	जानकीको
४१	२	कृपर्या	कृपया
	२८	सेतुपालक	सेतुपालक
		रा०	राम०
४२	२७	लिखा	लिखाहै
४३	१५	११२४	)१२४
४४	२	रपिदुमनू	रिपुदमनू
	९	रामजीका	रामजीको
४५	१४	(खर्रा—	[खर्रा-(१)
	२४	जलकेसे	के जलसे
४६	३	आसन	आसीन
	२७	करि'	करि'।
४७	८	अस्त्र	शास्त्र
	२८	ठटुकि	ठठुकि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४८	२	चाहते थे।	चाहतेथे
	२५	कर्मस्तोत्रं	कर्मस्तोत्रं तथैवच।
४९	२६	॥'-०उ०	॥०'—उ०
५०	१३	मंदर	मंदरं
	१६	मन्द्राचल	मन्दराचल
५२	७	मुनींन्द्र	मुनीन्द्र
	९	विनायच	विनाशा यच
	२६	*	
	२९	बीच सम	बीच सब
५३	३	उत्तम	उत्तर
	५	मुनी द्रसत	मुनीन्द्र-संत
२५-२६		कहा अजादि	कहा। 'अजादि
५४	१	दूषणायहं	दूषणापहं
	८	त्रलोक	त्रैलोक
	९	इन्द्रिरापतिं	इंदिरा-पतिं
	१७	और वहाँ	और यहाँ
	२५	सो उनसे	सो आप उनसे
५५	१०	इन्द्रिरापति	इंदिरा-पतिं
	२३	चरणोंका ध्यान	चरणों का ध्यान जहाँजहाँ
५८	२	दिखाना	दिखाया
	३	अल्पवृक्ष	कल्पवृक्ष

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	७	जोय	जोइ
५९	२५	स्मररामहे	स्मरामहे
	२७	पार्थित	प्रार्थित
६०	७	ग्यारहवें	ग्यारहवें
	१७	प्रडंब	प्रलंब
	२२	अवधाम	अवधधाम
	२५	पु०र०कु० —एवं	पु०र०कु० एवं
६०	२७	जे संशय,	जे, संशयः
	२८	ये संशयः	ये,संशयः
	२९	कहकर जोरि	कह करजोरि
६१		(शीर्षकमें) श्लो० १	९४
	१३	कबहूँ धनमय कबहूँ	कबहुँ देख जग धनमय
	१६	रही	रहे
६२	१४	धमपत्नी	धर्मपत्नी
	२३	वह कथा	यह कथा
	२८	स्थगित	स्थकित
६३	२०	उचन	बचन
६४	२७	इसके	इनके
६५	२	प्रकृत	प्राकृत
	१४	स्रजस्तथा ॥५॥	स्रजस्तथा ॥५॥...
	२७	अंशमें	अंशसे
६६	१२	तन	—[तन
	२७	परन्तु	जो वर्षा-काल है और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	३०	नातो	। नातो
		विशिष्ट	विशिष्ट'
६७	२१	जनाए'	जनाए।
६९	१२	निक्रिष्ट	निकिष्ट
		नियम है	नियम है।
		हैं वेद	हैं। वेद
७०	१३	स्त्रीणा-	"स्त्रीणा मार्य
		मार्य...पतिः	.....पतिः",-
			अर्थात्
	१६	तस्मात्स-	तस्मात्सर्वा-
		र्वात्मना	त्मना
	२०	हैं इस	हैं कि इस
७०	२४	प्रतिपद	पतिपद
७१	८	दिखाती	दिखाता
	२२	भातृ	भ्रातृ
७२	१९	इसे कहा	इसे अधम
			कहा
७३	१	है, परपति	है परपति
	११	वे	×
	२३	किए जातेहैं	किए
			जातेहैं—
७४	२५	परिव्रता	पतिव्रता
७५	शीर्षक	श्लोक० ५-८	१५
	५	स्वभाविक	स्वाभाविक
		पातव्रत्यका	पातिव्रत्यक
		दिखाया	इससे
			दिखाया
७७	२०	गरुड़	गयउ गरुड़
८१	३	(प्र०)	(प्र०)।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	२९	श्रेयोभिवि	श्रेयोभिर्वि
		कृष्णा	कृप्सा
८२	१३	कौसल्य-	कौसल्या-
		वल्य	वाक्य
८४	१	कुर्वत्यु	कुर्वित्यु
	९	कि ईश्वर	कि—
			(क) ईश्वर
८५	६	इमि	इति
	१८	वह	यह
	२१	मायों	पापों
८६	२१	अति काछे	अति आछे
८८	१२	सोहति	सोहइ
८९	२५	वन पर्वतें	वन और
			पर्वतों
९०	४	नित्कृष्ट	निकृष्ट
९१	२५	उन्होंने कृपा	उन्होंने मुझे
			शाप दिया
			था जिससे
			मैंने राक्षसी
			शरीर पाया।
			मेरे विनयपर
			उन्होंने कृपा
९२	९	। लगाकर।	चिता लगा-
			कर
	१३	भारे	भौंरे
		पानकर	पान
९३	१२	(क०) रूप	(क०)। रूप
	१९	विरोध	विराध
९४	२४	पद पद	पद

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	२७	विचित्र सवार	विचित्र रथ-पर सवार
९५	१९	जानने	जनाने
	२१	दोनों	दीनों
९६	११	जिन	निज
१००	२४	। । ।	विशेष §९ (१७-१९) में देखिए।
१०२	४	सुनिवृंदा	मुनिवृंदा
१०४	३	यथा अथावा	तथा अथवा
१०५	१,२	भृत्यु,भरे	मृत्यु, मरे
	७	दुःख	दुख
	११	प्रातज्ञा	प्रतिज्ञा
१०६	२९	प्रान्तसा	प्रान्तका
१०७	१३	अतएय	अतएव
	२८	अगस्तिय	अगस्ति
११०	१०	साधन बल	साधनका बल
	११	थथा	यथा
११३	१	इच्छाथी। ...की	इच्छा थी ...की।
११७	१५	आर विहल	और विह्वल
	२१	हैं। हैं कि द्विभुज रूपके निकल जानेपर उन्हींके चतुर्भुज रूपको पाकर भी उन्हें सुख या शान्ति न प्राप्त हुई।	
	२९	रूपरूप	स्वरूप

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११८	२	नारदपंज-रात्र	नारदपंच-रात्र
	अन्तमें	संहितायाम्।	संहितायाम् —(व्यास)।
११९	१५	सष्टांग	साष्टाङ्ग
१२०	१०	यो यथा	ये यथा
१२२	२३	सेवक'	सेवक', वह
१२३	१६	अस्तिुत	अस्तुति
१२६	२३	खङ्ग,	खड्ग
	२५	अंनवद्य	अनवद्य
	२६	संसय	संशय
१२७		अंतिम जयराम अनूप	जयराम रूप अनूप
१२८	२२-३	हिएय	हिरण्य
१३०	१३	उसें उसे	उसे
१३१	४	की धर्म वर्म०'—	की—'धर्म वर्म०'।
	२१	अर्न्यामी	अन्तर्यामी
१३३	२२	भ्रमाः	भ्रमः
	२३	ब्रह्मैक्य	ब्रह्मैक्य
	२७	प्रधान्य	प्राधान्य
१३४	३	अषूर्व	अपूर्व
	१०	मामिकीन-स्त्वम्	मामकी-नस्त्वम्
	१३	निष्किय	निष्क्रियं
	२९	वाङमय	वाङ्मय
	३०	भक्तिको	भक्तिकी
१३६	१८	यहभावकि	×
	२७	मद्विान्यत्	मद्विनाऽन्यत्
	२८	अन्यभक्त	अनन्यभक्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३७	३	लागौ	लागै
	१८	परमान्यता	परमानन्यता
१३८	५	लगता	लगताहै
	१९	हृदय	रूप
	२१	हृदय में बसना	हृदय में तीन भेद से बसाया। भक्ति आदि राम प्राप्तिके साधन हैं और रामजीका हृदयमें बसना
	२६	बिच	बिधु बिच
	२८	साकेतमें	साकेतमें साकेत-
१३९	१	'तनोतु'	'तनोतु','त्रातु'
	४	झब्द	शब्द
	७	उद्धत	उद्धृत
	९	त्रासु	'त्रातु
	१७	नामि	नौमि
	२७	नवधा	नवधाके उदाहरण
१४०	३-४	कभी कभी	कभी भी
	१०	'दशवर्ष'	'दशवर्ष सह स्राणि दशवर्ष
	१६	वाणभृत	वाणभृत्
	२०	लिए माँगा	लिए वर माँगा, यथा—
१४१	२०	हिते	हिंते
		आए'	आए'। अर्थात्
१४२	२६	विचार	विचारसे
१४४	१०	भजतहौ	जपत हौ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	१६	लीलाऔर लीला और 'राम अनुजसमेत बैदेही' से नाम। इससे जनाया कि मुनिका विशिष्टाद्वैत मत है।	
	१९	(ग)—५	(ग)—'निसि दिन देव जपतु हौ जेही'। यहाँ 'देखिअ नाम रूप आधीना' को चरितार्थ कर दिखायाहै। नाम जपतेहैं अतः रूप पास आगया। ५
	३१	जगत	जगत्
१४५	४	पुनः,	पुनः, कोशलाधीशकुमार आदिमें अतिव्याप्ति है। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी भी
	१३	(१२)	(११)
	१५	(११)	(१२)
१४७	२७	तान्संर्वाश्च	तान्सर्वांश्च
१४८	४	बखानौ	बखानौं
		फिर	फिरि
१४९	१	यह	ये
	७	भेजा	भेजा कि
१५०	२०	यह बरमाँगौ 'यह बर ···हृदय'	माँगौं···हृदय'
	२२	होजातीहै	होजाताहै
१५१	१३	राक्षसभी	राक्षसभी।
	१७	सिय	सिय०॥'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५२	५	। निस	—'निसि
	२०	कहँ ।	कहँ०० ।
	२१	ठाउँ'	ठाउँ॥'तक।
	२३	। राउर	।···राउर
	२६	पूछेंहु	पूछेहु
	२७-८	राम अयन	राम-अयन
	२९	मंत्र जप में	मंत्रजप एवं मंत्रविधान में
१५३	१२	लोकवालोंके	लोकपालोंके
	२३	ऐसी कठिन	ऐसा कठिन
	२८	संनिहते	संजिहते
१५५	२७	'फिरफिर के दौनों	फिरि फिरि के दोनों
	३०	मानूँ।	मानूँ। ३—मिलान कीजिए—'जानन्तु राम तवरूपमशेषदेशकालाद्युपाधिरहितं घनचित्प्रकाशम् । प्रत्यक्षतोऽद्यमम गोचरमेतदेवरूपं विभातु हृदयै न परं विकांक्षे'इति अध्यात्मे।
१५६	२६	तरगोंवाले	तरंगोंवाले
	२८	दुप्याप्य	दुष्प्राप्य
१५८	६	दाया"।	दाया'का है।
	१७	क्वाचित्के	क्वचित्के
	२२	तेषुच्छज्ञा-वगत्य	तेषुच्छज्ञाव-गत्य
	२४	(र०क०)।	(र० ब० से ज्यों का त्यों उद्धृत अवतरण है पर इसमें बहुत अशुद्धियाँ जान पड़तीहैं।)
१५९	१४	की भाव	की।—भाव
१६०	३	वूंद	बृंद
	१४	मिटाना	मिटना
	२३	बोलकरमृग,	बोलकर, मृग
१६२	७	रजकी (वा स्वरूप)	रजका (का स्वरूप)
	१३	प्रभु० गयऊ	प्रभु गयऊ
१६३	२५	सेवा इन	सेवा।चरण-रज-सेवा इन
१६४	१३	का नदी··· त्वाचा	को, नदी··· त्वचा
	१४	'सुख असीना'	'सुखआसीना' कहा।
	२१	विहारीकी	विहारकी
१६५	७	होताहै	होताहै;
	११	असत्यका	असत्यता
१६६	२	ईइवर	ईश्वर
	२५	वैराग्य—	वैराग्यकी एकता है, यथा—
	३०	मूग	मृग
१६७	१२	समझा	समझाना
	१४	लेना	लेना, इससे
१६८	५	दुःष	दुष
	२०	में अरु	मैं अरु
१६९	२	स्वरूप ज्ञान	स्वरूपके ज्ञान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६९	२५	(सद्सद्	(सदसद्
१७०	८	भयकूप	भवकूप
	२७	जपि मान	जपिनाम
१७१	३	योंका	योंको
	४	स्त्रामी	स्वामी
	९	सत्यता-	सत्यता
		सत्यता	सत्यता-
	१४	ब्रह्म=माया.	ब्रह्म=माया
	१६	और-'अहं'और'—	अहं'
	२५	ब्रह्मामस्मि	ब्रह्माहमस्मि
१७२	८	बंध्याकि गुर्वी	बंध्या किं विजानाति गुर्वी
	१८	मान न हो	मान न हो*
	२९	तेषमिसौ	तेषामसौ
	३१	×	* वा, ज्ञान उसे मानो जहाँ इनमेंसे एकभी न हो।
१७३	२	विनिग्रहो	विनिग्रहः
	९	नित्यवं	नित्यत्वं
	१०	एतत्ज्ञान- मिवि	एतज्ज्ञान- मिति
	१३	एक उन्हीं	एकउ नाहीं
	१४	तैत्वज्ञा- नार्थ	'तत्त्वज्ञानार्थ
	१६	और	×
	२४	ज्ञान हैं	ज्ञान है
१७४	५	रा०प्र०	रा० प०
	९	देखे प्र०	देखे । प्र०
१७५	२२	पुणाणका:	पुराणका:
	२४	स्वरूपज्ञान यह	स्वस्वरूप- ज्ञानं यह
१७६	४	गई फल	गई। ५— फल
	७	फलश्रुति	फलस्तुति
१७७	२७	डांध	अन्ध
१७८	१९	न अव- स्थामें	अवस्थामें
१७९	८	एरकस ब्रह्मसर्ववृ ात्तशून्य	एकरस ब्रह्म सर्ववृ- त्तिशून्य
	९	वृद्धि	वृत्ति
	१३	यही माया संबंधमें अध्यात्म	वही माया बंधनमें अध्यात्म
	१५-१६	परिकल्यते	परिकल्प्यते
१८०	११	विक्षपा- वरणे	विक्षेपावरणे
	१२	लिंगाद्य ब्रह्मपर्यंतं	लिंगाद्यब्रह्मप- यंतं
	१४	मायाके हो	मायाके दो
	२१-२	असमंजस	समंजस
	२२	विलक्षण	विलक्षणता
	२७	मेद	भेद
	३१	गिरती है	गिराती है
१८१	११	स्वारस्य	स्वारस्यभी
	२९	शंकर	शांकर
१८२	६	उपर्युक्त	उपयुक्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८३	२०	धर्माद्यो- गाञ्जान	धर्माद्योगा- ज्ञान
	२४	संसिद्ध स्ततो	संसिद्धिस्ततो
	२६	जनयत्याशु	जनपत्याशु
१८५	७	होंइ	होइं
	२९	रा०प०में 'और	रा०प० में 'धर्म' और
१८६	३	भक्त	भक्ति
	१५	§११९	उ० §११९
१८७	२	गाढ़तरउनके	गाढ़तर
	३	हैं अर्थात्	हैं उनके अर्थात्
	१९	सुबाता	सुबासा
१८८	२८	तपस	तपस्
१८९	१५	होगा।	होगा-वैराग्य।
	१६	भगवद्धर्म	भगवद्धर्ममें
१९०	२४	ये दृढ़	ये दृढ़ नहीं
१९१	७-८	संतोपकाम बसाही	संतोष न काम नसाहीं
	२९ वीं पंक्ति के बाद छूटा है	अथवा, गुरु माता आदि सब में ईश्वरबुद्धि करे, यथा—'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत'। इस प्रकार निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनों मार्गवालोंकेलिए एकही शब्द में दो तरह का उपदेश हुआ।	
१९२	१	रघुबीरा	रघुबीरू

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	२८	त्यों त्यों	ज्यों त्यों
१९३	१८	न कहा शूपनखा	कुछ न कहा शूर्पनखा
१९४	२६	विद्युज्जिह्वा	विद्युज्जिह्व
१९५	४	स्वस्त्रा	स्वस्रा
	१०	उदधृत	उद्धृत
	२०	सब'	'द्रव'
	२६	कामग्नि	कामाग्नि
१९६	३	त्यों अर्थमें	त्यों
	१९	प्रज्वलित	प्रज्वलति
	२१	नीतिशतकके	नीतिशतके
१९७	७	पुरुष	पुरुषं
	९	खरों	खरोंमें
	१०	क्लिदन्ति स्त्रीणामा- पात्र	क्लिदन्ति स्त्रीणामाम- पात्र
	२२	सौदर्य्य	सौंदर्य्य
१९८	२	प्रवाहोद्राव विपव और	प्रद्रावो- द्द्राव विद्रव और
	१२	सूर्य्यविमुख	सूर्य्याभि- मुख
	१६,१८	उद्धार	उद्गार
	२१	है।	है
	२३	चन्द्रकान्त- मणेरतेन	चन्द्रकान्त- मणेस्तेन
	२४	'वाहर्द्रवति'	'बहिर्द्रवति
	२७	जलवाचीहै	जलवाचहैं
१९९	१	चकित्त	चलचित्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९९	५	स्खलित होता है	स्खलित होनाहै
	७	यया	यथा
	११	उद्धार	उद्गार
	१३	ज्वल-निर्गत	ज्वाल-निर्गत
	१६	सजाजित्	सत्राजित्
	१७	करती थी	करतीथी
	१९	सूर्य्यभक्तस्य	सूर्य्योभक्तस्य
	२०	तुष्टः	स्तुष्टः
२००	१०	प्रस्तांवित	प्रस्तावित
	११	विप्रतियत्तियां	विप्रतिपत्तियां
	१२	'द्रव'	'दव'
	१६	अतिरिच्त	अतिरिक्त
२०२	१०	प्रभु-'बिधि	-'प्रभु बिधि
२०३	२	एक	एवं
	२४	अर्थात् बहुत	अर्थात् शूर्पणखाने माया रची, कपटवेष बनाया, यथा—'रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं आई। बोली बचन बहुत
२०४	१८	जोड़के जो	जोड़के
	१९	भार्यामभेषा	भार्याममैषा
	३१	रूपस्मास्य	रूपस्यास्य
२०५	१	वरोरोहे	वरारोहे
	१४	लिये प्रयुक्त किया	लिप 'राजकुमार' के

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
			अर्थमें प्रयुक्त किया
	१४-१५	[कविने- भी अभी २ 'कुमार' शब्द राजकुमार अर्थमें प्रयुक्त कियाहै—	[यथा—
	१६	पुनि	। पुनः,
२०७	१२	मा० ६	मा० हं०
	२०	अभिलषित	अभिलिषित
	३०	रहमेमें	रहनेमें
२०८	६	बैर	-बैर बैर
	९	प्रकारसे	प्रकार न
	१४	शत्र	शत्रु
	२७	व्यङ्गपूर्व	व्यङ्गपूर्ण
२०९	८	चार गुमानी	चार † गुमानी

२२ और २३ के बीच में

† रा० प० में 'चार गुनानी' पाठ है और अर्थ कियाहै किचुगल (खोर) गुणसमूह चाहे'। रा० प० पकार लिखतेहैं कि "चार=जो छिपकर पराया दोष देखे और फिर प्रकट करे"। पं० रा० गु० द्वि० का पाठ है—'चार गुमानी'=

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
		दूत घमंडी होना चाहे। 'चारु' पाठ भा० द० का है।	
२१०	११	व्यभिचारी	व्यभिचारी' ।—तू
	१३	लोभीयश' विना	लोभी यश' । —
	१९	लायक़ है।	लायक़है। ३२—तुम प्रेमभिक्षा चाहतीहो फिरभी मान चाहतीहो। जो स्वयं कहे कि मेरे पति बनो वही व्यभिचारिणी ही समझी जायगी। ३
	३१	पखान्भ्रात्रा	परवान्भ्रात्र।
२११	२	शब्दमें	शब्दके
	६	चाहे यदि	चाहे। यदि
२१२	९	निचक्षणा	विचक्षणा
२१३	२	तहँ	तहाँ
	७	वैदेही…' बखै	'वैदेहीं…' । बरवै
	२७	लक्षमणजी	लक्ष्मणजी
२१५	२०	भर	भाव
२१७	८	निरखति	निरखत
	१२	सूर्पणखा	शूर्पणखा
	२९	होनेकी	होनेसे
२१८	२०	सोचतेहैं	सोचतेहैंकि
२२१	९	विकराल	बिकरार
	११	—[	—[(क)—
	१४-१५	(प्र०)—	(प्र०)। (ख)—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	२३	चाहिए।	चाहिए।]
	२६	विस्तार	विस्तारहो
२२२	६	कटुक	कटकु
	१२	में) रक्खेहैं	में रक्खेहैं)
	२१	काल है	काले हैं
	२७	परिधैर्घोरै मुसलैर्वज्रे	परिधैर्घोरै मुसलैर्वज्रै
२२३	५	काल	इति। काल
	७	गवहिंन	गनहिं न
	११	अपशगुन	अपशकुन
	१६	अति दर्ष	अतिहर्ष
२२४	२५	सीतारामजी	सीता-जीको
२२५	९	छत्रीतनतन	छत्रीतनु
	१५	राजि-नयना'	राजिव-नयना'।
	१६	माँस	मांस
२२६	११	सलाईपन	ललाईपन
	१३	गौड़	गौड़जी
२२७	४	मिलान	मिलन
	१९	बिकारा	बिकरारा
	२०	धिगधिग	६ धिगधिग
२२८	१३	मनुष्यों	मनुष्यों
२३०	२४	जाओ	आओ
२३१	२	हैं स्त्री	हैं। स्त्री
२३२	७	बातें न	बातें
	१७	॥ यह (च) ॥'	वा, (च)
	२२	घातक	घालक
२३३	१	जिह्वा	जिह्वा
	८	करि	करिअ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
		अकपट	कपट
२३३	१८	जडम्प्रपन्नं	जडम् । प्रपन्नं
	२०	रथहीन,	जो रथहीन
	२१	पु० र०	पुनः,
	२२	न्यसन—	न्यसनप्राप्तं
		प्राप्तंनार्त्त	नार्त्त
	२३	शास्त्रहीन	शस्त्रहीन,
	२४	भागेहुए	भागेहुएपर
२३४	१५	शापला	शापल
	२३	थी	थीं
२३५	२,२६	खङ्ग	खड्ग
	६	१यथा–प्रथम	(क) यथा–'प्रथम
२३६	४	धानसे	धानतासे
	२२	निशित)	निशित)=
	२३	फुंकत	फुंकरत
२३७	२५	(वा० स०)	(वा० स० २५)
२३८	५	निश्चरों	विशेषण निश्चरों
२३८	२५	भू+धर	कु (=पृथ्वी) +धर
२३९	१	बहुतसे	बहुतसी
२४०	२७	रहतेथे	रहतेहैं
२४१	९	आतों	,आँतों
	११	मानों	पिशाच हाथ से पकड़कर दौड़तेहैं मानों
	१६	तुलसी-	तुलसीदास-

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
		दासजी	जीने
	२१	उनमें	उसमें
२४१	२३	चिताका	चिताकी
		उपमा	उपमा 'सुर-
		सुरापुर	पुर-
२४२	६	अर्थ है।	अर्थ है—
	७	खङ्ग	खड्ग
	८	कटकर	काटकर
२४४	१४	भारे	मारे
	१७	येनश्च	येन येन च
	२४	कहतेहैं	कहतेहुए
२४५	१	रावणसे	रामवाणसे
	४	सरीन्ह	सरीरन्ह
	१०	फूल' पूर्ण	फूल' । पूर्ण
	१६	है	हैं
	२४	आकरके	उपाय करके
	३०	सहस्राणि	सहस्राणि
२४६	१२	देखि००'	देखि०० '।
	१४	ईसा वहीं	ईसा',वही
	२२	विजयकी	विजयको
		प्राप्ति	प्राप्त
	२६	एषा...	एषां...
		राक्षसा	राक्षसां
	२७	'स्वधर्म	स्वधर्मं
२४७	१३	निषंक	निषंग
	१५	कहहु	कहइ
	१७	एही बी	एही बीच
	२०	सोर	सोरा
	२२	तिलस	तिल सम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४७	२२	करिको	करि काटे
	२४	ला	लगि
	२५	तीर तब चले बान कराल फुंकरत जनु तीर।	
	२६	बहुव्याल तव चले बान कराल फुंकरत जनु बहु व्याल	
	२८	ततस्तु त	ततस्तु तं
		सपुश्मानं	सपुज्यमानं
	२९	परिष्वन्य	परिष्वज्य
२५०	शीर्षक छन्द	(१-३)	२०।१४ (५-७)
	२१	कोध	क्रोध
	२२	मुझे	तुझे
	२७	और	अर्थात्
२५१	११	कामा में	कामा मे
	२८	पती	यती
२५२	६	सभर्थ	समर्थ
	९	रजकि रहइ	राज कि रहइ
	१०	समय	समर्पे
	११	कांड	कांड और
		'विद्या उपजाये'। से	'विद्या उपजाये' से
	१७	गतिजाके	गतिजाकी
	२१	दौर्मन्त्रया	दौर्मन्त्र्या
	२३	हार्म-घादनकेक्षणादपि कृषि स्नेहः प्रवासाश्रयान	ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रयान्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५२	२५	लाड़प्यार	लाड़प्यारसे
	३०	चाल्पते भागवते)	चाल्यते भागवते)। पुनः,'
	३१	शत्रु	शत्रुं
		पश्चातेन	पश्चात्तेन
२५३	३	सर्पमण	समर्पण
	१८	है तो	है और तो
	२८	नाति... मुख्य है।	नीति... मुख्य है—
२५४	१८	नीता	नीताहं
	२५	राजपद है	राजमद है
	२६	१३ कला	१६ कला
२५६	२०	बन मृगया	मृगया
२५७	२०	ही	हो
२५८	१	हैं। भाव की	हैं। ३ भाव कि
२५८	१३	रूपराशि जो।	रूपराशि। जो
	१८	तासु अनुज काटि	तासु अनुज काटे
२८-२९		त्रिक्षिरा	त्रिशिरा
२६०	५	२—	२—हास्य—
	१९	सूर्पणखा	शूर्पणखा
२६१	११	,,	,,
	१७	पग	षग
२६२	शीर्षक	१७।११ (३-६)	२२।१६ (१-६)
	अंतमें पादटिप्पणी	† नर—	(रा० प०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६३	शीर्षक	१७।११	२२।१६
		(३-६)	(३-६)
	१	होना	होगा
	४	जौं०० "।	तौ०० "।
		'तौ'	'जौं' 'तौ'
	१२	यथा—	, यथा—
		'तामसपद	'तामस तनु
२६४	शीर्षक	१८।१२	२२।१६
		(१-५)	(३-६)
	२५	अहुरभुज़्द	अहरमुज़्द
		अह्लमान	अह्रमान
२६६	७-८	आनन्दकी	आनन्दकी
२६७	१८	प्रमुने	प्रभुने
	२९	हसकर	हँसकर
२६८	१७	—एवं	सीताजी इनकी एवं
२६९	३	यह	यह न
२७३	३०	(निजार्थे)	निजार्थे
२७४		ने। यही	ने यही
२७६	७	रामजीकी	राजाकी
	११	ैर	बैर
	२१	लोवेन	लोकेन
	२९	शूर्पणखाका	शूर्पणखाकी
२७७	२२	एक्मुक्तो	एवमुक्तो
	२५-६	था।	था—
		(बा० ३१)	(बा० ३१)।
२७९	शीर्षक	२५।१८	२४।१८
		(३-७)	(३-७)
	३	मारडाला	मारडाला।
२८१	८	कमल पीठि	कमठपीठ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८२	१४	जो उरताहै	जो करताहैं
	२९	ऐसे मधान्ध	ऐसे
		रामचंद्र	रामचंद्र
	२९	छोड़नेयोग्य	छेड़नेयोग्य
	३०	स्थितिके किये	स्थिति के लिए
२८३	११	वैद्या धनी	वैद्यो धनी
		विरुद्धयताम्	विरुद्धयताम्
	१३	शास्त्री जो	शस्त्रीजोशस्त्र
		शास्त्र	
	१५, १६	जनाता	जानता
	२३	चढ़ानेमें	चढ़ानेमें
	२७	द्विवेदीने	द्विवेदीने
		भानस	'मानस'
२८४	२	हे	है
	६	दी और	बंदी और
		कवि	कवि
	१२	शास्त्र	शस्त्र
	२८	करूं।	करूँगा। परन्तु रावणको वह अपना हर्ष नहीं जनाता।
२८५	६	सुमिरित	सुमिरत
	१२	बुद्धय वदत्र	बुद्धया यदत्र
	१३	जाना	जानो
		चेद्दुष्टस्तदाम	चेद्दुष्टस्तदामे
२८६	१४	कुलरहित	कुलसहित
	१६	फल इतनहिं	फलइ तबहिं
२८७	४	'श्री	२—'श्री
	२२	परमप्रप्रीतम	परमप्रीतम
२८८	२७	उनके अंग	उसके अंग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८९	२१	हेमभयं	हेममयं
	३१	कमलकेसर सदृश	कमलके केसर सदृश,
२९०	३	परसु रुचिर	परम रुचिर
	२८	॥ रोप्यै ।	॥ ..रोप्यै
		राजीव	।...राजीव
	२९	विचित्रांङ्ग	विचित्राङ्ग
२९१	१६	सब कारन'।'	'सब बाता।
२९३	९	यह माधुर्य्य	यह माधुर्य
२९४	१२	छलकारी' 'छलकारी' उसी	छलकारी', 'छलकारी'
२९५	१३	रहजायँ— वले	रहजायँ —चले
	१४	सांधे	साधे
	१५	सँभारेहु	सँभारयो
	२१	पाण	प्राण
	२८	उनका	उनकी
२९७	८	हैं लक्ष्मण	हैं। लक्ष्मण
	९	सिरे	फिरे
	२५	संचित्य··· तनुरूहः	संचिन्त्य··· तनूरुहः
२९८	२२	पतिपरायण	पतिपरायणा
२९९	७	वह पजे	वह पजैक्स
	९	···' ऐसे	···'। ऐसे
३००	२०	पतत्रि	पतत्रिषु
	२३	तेऽस्तु तापरत्यज्यतां	तेऽस्तु संताप- स्त्यज्यतां
३०२	१३	देदेते।	देदेते।-[नोट- देखिए संपातीके पुत्र ने रावणकी प्रार्थना पर जब उसका मार्ग छोड़ दिया और सीता को लेजाने दिया तब सिद्धादिने उसकी प्रशंसा की जैसा वा० कि० में संपाती ने बानरोंसे कहा है।]
	१६	तेजकी	तेजको
	२१	कलंका'	कलंका')।
	२३	÷चर	+चर है;
३०३	१७	जाती	जती
३०७	१७	बधू	बधुहि
	१८	तू	तू
३०८	९	'सून बीच'	"मानस' चरन बंदि' का रावण
	१०	उत्कूंखल	उच्छृंखल
३०९	१८	कविने	कवि
	२९	अश्दय	अदृश्य
३१०	३	जगादे	जनादें
३१३	१७	क्रीडार्थं	क्रीडार्थं
३१४	५	करहीं	चरहीं
	११	नहीं	नहीं
	१३	उठानी	उठाना
	२५	सीता का हरना	सीता कर हरना
३१५	१५	प्रोंफेसर	प्रोफेसर
	२१	त्रैयोक्य	त्रैलोक्य
३१६	८	शुकवार	शुक्रवार
३१७	२३	किया कि किवा वैसा	किया किया वैसा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१७	२९	वाक्शरेषा-	वाक्शरेण-
३१८	६	उत्तर	उत्तर—
		अचरसे	अचरसे
	८	जगि	लगि
		बरनी	बरनि
	१०	बन नारी	बर नारी
	१७	जहुहरिण्यः	जहुर्हरिण्यः
३२१	१७	०—यहाँ	पं०—यहाँ
३२२	१२	(इन्द्र) ।'न'	(इन्द्र) । ३–'न
	१४	जानपड़ताहै	जान पड़ताहै कि
	२३	न जेहै नीच	न जैहैनीचु
	२७	विचारा	विचार
३२३	५	उठाने	उड़ाने
	९	वधू	बधुहि
	१६	जन	जनि
३२४	२६	अहताङ्ग	अहताङ्गै
		समस्तैस्त	समस्तैस्तं
	२८	विष्णु	विष्णु
	२९	सु० ११	सु० १०-११
३२५	१२	अनजान है	अनुमान है
	१३	प्रकट है	प्रकट कहे
	१८	धीरा	धीमा
३२८	२३	पाश्वौ	पाश्वौ
३२९	६	हरिच्छा	हरि इच्छा
	२४	पट डारा	पट डारी
३३०	१६	मारुति-	मारुतिमद्रि-
		मद्रिमालौ	मौलौ
	२०	गिरप्रस्थे	गिरिप्रस्थे
	२१	पर वहाँ	पर यहाँ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३३१	२६	भयदं दर्शनं	भम संदर्शनं
	२७	नभ्येषि	नाभ्येषि
३३२	११	कमरने	कमरमें
	२२	लत्रेशं	क्लेशं
३३३	२०	अ० ◊ १०४	उ० ◊ १०४
	२३	मानीचिंता हो	मानोंचिंताहो हो
३३४	१	दिव्यां	दिव्यं
	६	चरन	चरना
३३५	१८	कहा गई	कहाँ गई
	२३	नभ गए	न भए
	२६	हरि करि	हरि कीर
३३६	११	ढूढें	ढूँढ़ें
	२२	भवत्यकलु-	भवत्यकलुषा-
		षात्मनाम्	त्मनाम्
३३८	३	कौंकिल	कोकिल
	६	रेखापं	रेखापँ,
	५	चंद्रमा-मुख	चंद्रमा—मुख
	७	गज चाल	गज—चाल
	११	गोहैं	गौहैं
	२१	नीके'१०	नीके' । १०
	२२	'भृकुटि१४	१४ 'भृकुटि
	२८	सैवभज्या	हंसैर्विभज्या-
		धुना	धुना
३३९	१	किंकिन	किंकिनि
	९	इत्यादि	इत्यादि ।
	१४	हुए दामिनी-	हुएदामिनी-
	३७	वस्त्रोंकी	बालोंकी
	२०	नहीं	नहीं
३४०	२७	तगैःश्रि-	तंगैः श्रितमपि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४०	२७	तलपि	
		चक्षुर्मं- ध्यस्तन	चक्षुर्मध्यस्तन
	२८	वक्रं वनांते	वक्त्रं वनांते
	२९	तेणी	एणी
	३०	तूर्णमणि- बोंज	तूर्ण मणिबीज
३४३	३	रामचरन	राम चरन
	१९	गृद्धराजं	गृद्ध्रराजं
३४४	३	रेषा इस	रेषा'। इस
३४५	३	पाड़ा	पीड़ा
३४६	१५	ध्यनि	ध्वनि
३४८	९	लालासाएँ	लालसाएँ
३५०	११	धधिक	अधिक
३५२	२	समाने	सामने
३५३	२३	स्वाति	स्वस्ति
	२५	रामोऽ	रामोऽहं
		कतिपयैः	कतिपयै
२१४	१६	क्षीरक्षयी	क्षीरसागर
	२१	जायगे	जायँगे
५६	१	करम	करन
	२२	पमाणिक	प्रामाणिक
३५७	७	कह कबि	कबि
	९	रहित,	रहित।
		सगुण	सगुण=
	१७	रूजा	रुजा
३५८	२९	पलदल	षलदल
३६०	८	हुजिये	हूजिये
३६२	१	स्वत	स्तव
	२९	जयंत	जपंत
३६३	८	मतिधीरा	मतिधीर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	११	वर्षा	वर्षो
	२६	अपगे	अपने
	३०	चरात्मजौ	चरात्मजो
		उदक चक	उदकं चक्र
	३१	कृपा	कृया
३६६	२३	मिटा सा	मिटा सो
३६७	९	न्त्रनगता- न्राम	न्त्रनगतान्राम
	११	निगर्हितमृ	निगर्हितम्
३६८	७	टूटगये	टूट गये
३६९	२९	घ्नंन्तं	घ्नन्तं
३७०	७	मृगचरण	भृगुचरण
	१८	शूरतुल्य	शूद्रतुल्य
		शूद्रको	शूद्रको
	२६	नहीं	नहीं
३७१	२५	कों	को
३७२	१	पधान	प्रधान
	१२	धर्मोपदेश	धर्मोपदेश
	२४	योगिगस्य	योगिगस्वं
३७४	३	तेषा	तेषां
	४	चिरजीविन	चिरजीविनो
		त्वांतु	त्वांतु
	१५	भाए'	भाए'।
		'समुझि'	'समुझि'=
	२८	सु जिताः	सुपूजिताः
३७५	१४	प्रम	प्रेम
	२३	मिममाश्रमम्	मिमाश्रमम्
३७६	१९	हुए	हुए
	२४	सरस	सुरस
	२७	जब जब	जब जहँ
	२८	तब	तहँ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३७७	२३	आगमन	अगम
		सचल	सजल
	२८	"लहिनाथहौ	लहिनाथहौं
३७८	२२	हौं । बलि	। हौं बलि
	२४	कीं	की
३७९	१८	गानाजायगा	मानाजायगा
		। पद्म	। प्रेमपत्तन और पद्म
	२०	प्रम्ना	प्रेम्ना
	२५	क्रो	को
३८०	२६	अवगुणो	अवगुणों
३८१	२९	तौड्ग्रिजा:	तोड्ग्रिजा:
३८२	१३	जागत	जानत
३८३	२८	न वाणं	न कारणं
३८४	२६	कपटरहति	कपटरहित
३८५	२	भजन	भजनु
	१५	तुम्हारा'	तुम्हारा' ।
	२५,२८	संतो	संतों
३८६	१	'छुल...'	'छुठ ..',
	२१	दनीय	बंदनीय
	२२	मभी	में भी
३८७	२३	नामा	नेमा
३८८	२०	विसरायो	बिसरायो
		...।'	। '
	२४	परिहरो	परिहरयो
३८९	२७	सुकर	सुनकर
३९०	१९	लिए	लिए;
		इसीसे	इसीसे
३९१	२३	भ्रान्तं	भान्तं
३९३	२०	संवाद— प्रसंग	शब्दार्थ— संवाद=प्रसंग

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३९४	८	रघुराथ	रघुनाथ
३९५	६	अ० २९	आ०) २९
	१९	००' हरिण	००' इति । हरिण
३९६	१३	लाभी	लोभी
	१४	चहिए	चाहिए
३९८	१३	विरह ।	बिरह...।...
		बगमेल	बगमेल
	१८	मृदुभाषा	मृदुभाषी
	२३	दशा है ।	दशा है । *
	२६	रासंप्रला—	संप्रला-
	२९	स्मृतिरिव	मृतिरिति
३९९	१—	ब० —बगमेल-	ब०
	२०	दीन्ही	दीन्ही ॥';
	३१	दिखातेरहेहैं	दिखाते जारहेहैं
४०१	९	सोभित	शोभित
	२२	खङ्ग	खड्ग
४०२	१	परावत	पारावत
	२७	तेउबर	ते उबर
४०३	१	दंभबल	दंभ बल
	२	कोध	क्रोध
	१५	अनीका'	अनीका' ।
	१९	जोन भागे	जो न भागें
	२५	कुमारसंभत्रे	कुमारसंभवे
	२६	बदल	बल
	२७	(रा० प०	[१ रा०प०-
	२९	है ।) वै०	है । २ वै०
४०४	२	हसी	हँसी
	७	भट है	भट है ।
	१७	(काष्ठजिह्वा	काष्ठजिह्वा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	२७	२ एक को	२ एकएकको
	३०	छोह	छोभ
४०५	१	आगर	आगार
		लोग	लोभ
	८	हुई स्त्री	हुई। स्त्री
	१०	।(पं० रा० व० श०)	पं० रा० व० श०
	१५	उसको	उसका
	१६	बोलने	बोलो
४०६	२९	मभोहितो	मोहितो
४०७	२	(सातवो)	सातवाँ
	४	तथाचात्मरतः आत्मामोप्प	तथाचात्म-रतः आत्मारामोप्य
	१०	विमोहय	विमोह
	२५	विषय 'देखि	विषय-देखि
४०८	७	मद नाना	मद माना
	२५	जगत	जगत्
४०९	७	हरिजन	हरिभजन
	११	विश्नास	विश्वास
	१२	वैसेही	वैसेही तुमको
४१०	२०	पा	पंपा
	२७	दातुगृ	दातुर्गृहं
	२८	यस्य	तस्य
		बहवस्था	बहवस्तथा
४११	७	नहीं	नहीं
	१८	जय। जयति	जय ३ जयति
		कैटभारो	कैटभारे
	२३	खग=रव	खग-रव
४१२	७	वेदपद	वेदपथ
	२४	तब कहा	तब शान्तकहा
४१४	२०	हँस	हंस
	२१	यह	यह
४१५	२७	स० श्लोक	स० १ श्लोक
	२९	श्लोकमें	श्लोकोंमें
४१७	८	कुहूँ	कुहू
	१३	गये' अति	गये'। अति
	२०	कहतेहैं	कहतेहैं ?
४१९	७ के बाद	नाना बिधि विनती करि प्रभु प्रसन्न जिय जानि। नारद बोले बचन तब जोरिसरोरुह पानि।	
	९	जहँ तहँ	जहँ जहँ
	१०	कृषाला	कृपाला
	२७	गरइ	करइ
		मलहानी	मलहानी
४२०	१	सघट	सघन
४२१	५	राम प्रेमसहित	प्रेमसहित
	२०	रणयन्महतीं	रणयन्महतीं
४२२	१७	द्वि नित्य	नित्य
४२३	२	लिखा	लिखा।
	१२	धोप	धोप।
		अनेक	अनेक
	२६	भा० द० में 'मरम'	भा० द० में 'परम'
४२४	४	विश्वाअ	विस्वास
	११	मनकेलिए	जनकेलिए
	१२	देनेवालेहीं	देनेवालेही
	२५	मोहीं००	मोही।...
	२८	तब जिसे ,	तब जी से
	२९	—'अगम—	['अगम
४२५	३	ब० § १४८)।	ब० § १४८)।]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४२९	१	चाहउ	चाहउँ
	८	राखें	राखै
४३०	१८	अल।	अलग।
	२१	यथा काम	यथा-'काम
४३१	७	अथत्	अर्थात्
	२३	शिवला	शिवलाल
	२४	पहसे	पहले
	२६	किया	दिया
	२९	जननी' मैं	जननी'। मैं
४३३	३	काम पषः	काम एष
	४	विद्धेनमिह वैरिणं	विद्धयेन-मिह वैरिणम्
	५	गीतायाम्।	गीतायाम् (३।३७)।
	८	कह हीन दीन	कह दीन
४३५	१	बल्लुओं को	उल्लुओं को
	१७	अहंकार०'	अहंकार०'।
	१८	(अ०§२३५)	(अ०§२३५)।
	२६	स्त्री शास्त्र में	स्त्री को शास्त्र में
४३६	९	गहे...सरिता गहे तुलस कूप तड़ाग' जहँ लगि जाय। सरिता कूप तड़ाग महँ बूँद न अधिक समाय॥'	
	३०	शीलता	शीतलता
४३७	९	पाप बुद्धि	पापबुद्धि
	३०	'ताते	☞'ताते
४३८	१७	प्रसन्नो	३-"प्रसन्न
	१८	३-संति	संति
	२६	चेत्युक्वा	चेत्युक्त्वा
४३९	२८	वर्धनी	वर्धिनी
४४०	२५	बौरायउ	बौरायहु
४४२	२	भयभय	भवभय
	६	रीती	रीति
४४३	२८	विविर्जिता	विवर्जिता
		मदंग्रव्जं	मदंग्र्यव्ज
४४४	९	विचलत	विचलि
	२६	मन	मम
४४५	१	वा	का
४४६	७	ये यही	ये ये ही
	२२	औत	और
४४७	४	सुर्ना	सुनहिं
४४९	६	तेते' वा	तेते। वा
	१४,२१	सु सूति, प्रौप	सुति, और
	२८	बानी	जानी
४५१	७	भजहिं,	भजहि
	२४	मह्यंन	मह्यन
४५२	पंक्ति ४,५	मूल है, अक्षरों में चाहिए।	

———

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीसीताराम

श्रीरामचरितमानस

मानस-पीयूष

किष्किन्धाकांड

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासकृत रामायणपर साकेतवासी प्रसिद्ध रामायणी श्री पं० रामकुमारजीकी पूरी अप्रकाशित और अप्राप्य टिप्पणी एवं श्री पं० रामवल्लभाशरणजी महाराज (व्यास, जानकी-घाट श्रीअयोध्या) श्रीमानसी वंदनपाठकजी, प्रोफ़ेसर श्रीरामदास गौड़ लालाभगवान्दीन (दीन) जी इत्यादिके अप्रकाशित और अप्राप्य विशद टिप्पण, श्री पं० शिवलाल पाठकजी श्रीसंतसिंहजी पंजाबी, बाबा हरिहरप्रसादजी, श्री पं० रामबख्श पाँडे, परमहंस श्रीकल्याणराम रामानुज प्रपन्न (चित्रकूट), बाबा हरिदासजी, श्री पं० महादेवदत्तजी, मानस-प्रचारक श्रीरामप्रसाद-शरणजी इत्यादि अनेक मानसविज्ञों रामायणियोंकी टीकाओंके विशद भाव और आलोचनात्मक व्याख्याओंका सुन्दर संग्रह

श्रीजनकसुताशरण शीतलासहाय सावंत
श्रीअयोध्याजी

प्रथमावृत्ति] तुलसी संवत् ३०८ [निछावर २)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशक—
श्रीजनकसुताशरण शीतलासहाय
मानस-पीयूष-कार्यालय
श्रीअयोध्याजी
मुद्रक—
श्रीबजरंगबली 'विशारद'
श्रीसीताराम प्रेस, बुलानाला, काशी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीसीताराम

श्रीरामं रामभक्तिञ्च रामभक्तांस्तथा गुरून् ।
वाक्काय मनसा प्रेम्णा प्रणमामि पुनः पुनः ॥

श्रीजानकीवल्लभोविजयते

श्रीरामचरितमानस

मानस-पीयूष

नामक टीकासंग्रहसहित

चतुर्थ सोपान

(किष्किन्धाकांड)

कुंदेंदीवर सुंदरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ ‡ ।
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृंदप्रियौ ॥
माया मानषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौहितौ ।
सातान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हिनः॥१॥

---

‡ गौड़जी । इस छन्दमें कुछ लोग व्याकरणकी भूल देखतेहैं । उनका कहना यह है कि यहाँ साधारण व्याकरणकी दृष्टिसे 'धामानौ' 'वर्म्माणौ' होना चाहियेथा क्योंकि 'धा' और 'वृ' धातुओंमें 'मनिन्' प्रत्यय साधारणतया लगानेकी प्रथा है। प्रमाण है, 'सर्व धातुभ्यो मनिन्' (उणादि ४।१४५) । परन्तु 'उणादयो बहुलम्' (पाणिनि ३।३।१) के प्रमाणसे 'मन्' प्रत्ययभी लगकर धर्म्म शब्दकी तरह 'धाम' और 'वर्म्म' यह अकारान्त शब्दभी सिद्ध होसकते-हैं । द्विरूप कोषकारके सिद्धान्तसे 'नान्त-सान्ताःसर्वे अन्दन्ता' सभी 'न्' और 'स्' से समाप्त होनेवाले शब्द अदन्त अर्थात् अकारान्त माने जासकते हैं । पुराणोंमें इसके उदाहरण मिलतेहैं । इन दोनों प्रमाणोंसे 'धामौ' और 'वर्मौ' दोनों शुद्ध हैं ।—(आगे पृष्ठ २ में है)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शब्दार्थ—कुंद—जुहीकी तरहका एक पौधा जिसमें सफ़ेद फूल लगतेहैं जिनमें बड़ी मीठी सुगंध होतीहै। गौरवर्णकी उपमा इससे देतेहैं, यथा-'कुंद इंदु समदेह उमारमन करुनाअयन'। इंदीवर=नीलोत्पल, नीलकमल। सुंदर=मनोहर, यथा—'सुन्दरं मनोहरं रुचिरं इत्यमरः'। उभौ=दोनों। आढ्य=संपन्न, पूर्ण, युक्त। धन्वी, धन्विन्=धनुर्धर, धनुषविद्यामें पूर्ण निपुण। नुत=स्तुत, प्रशंसित, जिसकी स्तुति या वंदना कीगईहो। वर्म=कवच, ज़िराबख्तर। अन्वेषण=खोज, ढूंढ।

अर्थ—कुन्दके पुष्प और नीलकमलके समान सुंदर, अत्यन्त बलवान, विज्ञानके धाम, शोभासंपन्न †, श्रेष्ठ धनुर्धर, वेदोंसे स्तुत्य, गौ और ब्राह्मणवृंद जिनको प्रिय हैं एवम् जो उनके प्यारे हैं, मायासे मनुष्य रूप धारण किए हुए, रघुकुलमें श्रेष्ठ, सद्धर्मकेलिए कवचरूप (अर्थात् उसके रक्षक, उसपर चोट न आनेदेनेवाले), हितकारी, सीताजीकी खोजमें तत्पर, मार्गमें प्राप्त दोनों रघुवर लक्ष्मण और रामजी हमको निश्चयही भक्तिके देनेवाले हैं।

टिप्पणी १—(क) कुंदके समान गौर वर्ण लक्ष्मणजी और नीलकमलसमान श्याम रामचंद्रजी हैं। यथा—'गौर किसोर बेष बर काछे', 'स्यामसरोज दाम सम सुंदर'। (ख) दोनों सुंदर, यथा—'कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक' और 'इन्हहिं बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा'। (ग) दोनों अतिबली, यथा—'छन महँ सबहि हते भगवाना', 'राजन राम अतुल बल जैसे। तेजनिधान लषन पुनि तैसे॥ कंपहिं भूप बिलोकत जाके। जिमि गज हरिकिसोर के ताके॥'—(ब० §२९२); 'लषन लषेउ रघुबंसमनि ताकेउ हरको दंड। पुलकिगात बोले बचन चरन चापि ब्रह्मंड'। (घ) दोनों विज्ञानधाम, यथा—'संग सुबंधु पुनीत प्रिया मानो धर्म्म क्रिया धरि देह

'धामानौ' साधारणतया शुद्ध है, प्रसिद्ध है, और 'धामौ' अप्रसिद्ध; अतः अप्रसिद्धि दोष आताहै सही, परन्तु 'अपि माषंमषं कुर्य्यात् छन्दो भंगन्न कारयेत्' इस प्रमाणसे यहाँ भारी दूषणसे बचनेको यह छोटा दूषण नगण्य है। साथही यह अप्रसिद्धि वैयाकरणों के निकट है। भाषा पाठकोंके निकट नहीं।

† वै०—शोभाके सब अंगोंसे परिपूर्ण। शोभाके अंग, यथा—"द्युति लावण्य स्वरूप पुनि सुन्दरता रमणीय। कान्ति मधुर मृदुताबहुरि सुकुमारता गणीय॥"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुहाई। राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाउ कि नाई॥'—(क०)। (ङ) दोनों में पूर्ण शोभा है, यथा—'सोभासीव सुभग दोउ बीरा'। (च) वरधन्विनौ अर्थात् दोनों उत्तम धन्वी हैं, यथा—'कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। धन्वी सकल लोक बिख्याता॥'—(लं० ७ ४६)। (छ) दोनों श्रुतिसे प्रशंसा किएगएहैं, यथा—'जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप...'—(उ०), 'अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेइहों दिनकर बंस उदारा॥००'। (ज) गोविप्रवृन्दप्रियौ, यथा—'भक्त भूमि भूसुर सुरभि सुरहित लागि कृपाल। करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जगजाल॥','प्रभु ब्रह्मन्य देव मैं जाना'॥ (झ) मायामानुषरूपिणौ, यथा-'कृपासिंधु मानुष तनु धारी,'माया मनुष्यं हरिं'-(सुं०), 'अंसन्ह सहित देह धरिताता। करिहौं चरित भगत-सुख-दाता'-(ब० ७१५१)। (ञ) सद्धर्मवर्म्मौहितौ=निश्चय करके उत्तम धर्म केबख्तर, यथा—'धर्म्म वर्म नर्मद गुणग्राम'। (ट) सीतान्वेषणमें दोनों तत्पर, यथा—'पुनि सीतहिं खोजत दोउ भाई'। (ठ) पथिगतौ, यथा—'चले बिलोकत बन बहुताई'। और, (ड) भक्तिप्रदौ हैं, यथा—'सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सियरघुबीरचरन रति होहू', 'भगति ज्ञान बिज्ञान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य बिभागा॥ जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा॥'—(३०)

२—कुन्द आदि विशेषणोंके क्रमका भाव।—कुन्द और कमल फूल हैं, फूलके समान सुन्दर कहनेसे बलमें शंका न हो इसलिए 'अति बली' कहा। बलवान होनेसे अहंकार होकर ज्ञान नष्ट होताहै इस शंकाके निवारणार्थ 'विज्ञानधाम' कहा। विज्ञानी लोग शोभासे युक्त होतेहैं अतः 'शोभाढ्यौ' कहा। शोभासे युक्त देखकर वीरतामें सन्देह वा धोखा न होजाय इससे 'वरधन्विनौ' कहा। ये सब बातें एक-साथ मनुष्यमें होनी असंभव हैं अतएव 'श्रुतिनुतौ' कहकर ईश्वरता सूचित की। वेद स्तुति करतेहैं ऐसे महान् होनेपरभी गौ और विप्र प्रिय हैं; अतः 'गोविप्रवृन्दप्रियौ' कहा * और उसीकी पुष्टताकेलिए 'माया-

* 'गोविप्रवृंदप्रियौ' इति। (क) इस विशेषणमें बड़ी विशेषता यह है कि यज्ञके समय मंत्रोंके साथ जो आहुति अग्निमें डालीजातीहै वह परमेश्वर तक पहुँचतीहै परन्तु इस आहुतिके मुख्य कारण गौ और ब्राह्मण हैं; ब्राह्मणमंत्र उच्चारणकरतेहैं और गायके घीसे आहुति दीजातीहै। इसीसे दोनों प्रिय हैं।—(२०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मानुषरूपिणौ' कहा। 'रघुवरौ' का भाव यह कि रघुकुल में हरिश्चन्द्र आदि बहुतसे राजा सद्धर्म करनेवाले हुए पर उनमें ये श्रेष्ठ हैं इसीसे "सद्धर्मवर्म्मौ" कहा और 'सीतान्वेषणतत्परौ, पथिगतौ कहकर उसे प्रत्यक्ष दिखाया क्योंकि पतिव्रता स्त्रीकी खोजकरना पतिका धर्म है। इतना स्तव क्यों करतेहैं? इसका कारण अंतमें देतेहैं कि ये दोनों भाई हमको भक्तिके देनेवालेहैं।†

३—यहाँ प्रथम 'कुंद' पद दियागया जो लक्ष्मणजीके गौरवर्णकी उपमा है तब 'इंदीवर' पद दियागया जो रामजीके श्यामवर्णकी उपमा है। अर्थात् इस मंगलाचरणमें रामचन्द्रजीसे पहले लक्ष्मणजीको कहाहै। ऐसा करनेका आशय यह है कि लक्ष्मणजी जीवोंके आचार्य हैं और बिना आचार्य्यके प्रभुका मिलना दुर्लभहै, यथा—'गुर बिनु भवनिधि तरै न कोई। जौ बिरंचि संकर सम होई॥'

नोट—'माया मानुषरूपिणौ' इति। भाव यह कि मनुष्यहैं नहीं पर अपनी दिव्य शक्तिसे वे मनुष्यरूप जानपड़तेहैं। जैसा कहाहै कि 'इच्छामय नरवेष सँवारे। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारे', 'निज इच्छा प्रभु अवतरहिं'। मनुष्योंकी तरह बाल्य, कौमार, पौगण्ड, युवा, आदि अवस्थाएँ धारण करना और विरह विलाप आदि चरित करना यही मनुष्यरूप होनाहै क्योंकि यह अवस्थाएँ नित्यस्वरूपमें नहीं होतीं, वह तो सदा षोडश वर्षकी अवस्थाका रूप रहताहै। हमारी दृष्टि मायामय

ब०)। (ख)—'वृन्द' पद देनेका भाव यह है कि ब्राह्मणों और गौओंकी वृद्धि आप सदा चाहतेहैं, इनके झुण्डकेझुण्ड देखकर आपको हर्ष होताहै। नहीं तो 'वृन्द' शब्द की कोई आवश्यकता न थी।

† रा० प्र० श०—कामनाके अनुकूलही कवि अपने सेव्यके गुण कहतेहैं। पर यहाँ 'अतिबलौ' और 'सीतान्वेषण तत्परौ पथिगतौ' कहकर भक्ति माँगतेहैं, यह असंगत है? इस शंका का समाधान यह है कि—'अतिबलौ' से जनातेहैं कि हमारे हृदयमें कामादि शत्रु बहुत प्रबल होरहेहैं उनका शमन कीजिए। 'सीतान्वेषण तत्परौ०' सेजनाया कि आप आश्रितवत्सल हैं, अपने भक्तोंके वियोगमें स्वयं दुःखी होजातेहैं और उनके मिलनेके उपायमें तत्पर रहतेहैं। अपने भक्तोंपर अधिक दयाकरतेहैं। यह देखकर और रामजीको भक्तवत्सल जानकर यथा,—'भगत बछल प्रभु कृपानिधाना' 'भगत बछलता हिय हुलसानी' 'नमामि भक्त वत्सलं' इत्यादि— भक्तिका वर माँगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं इससे हमको मायासे मनुष्य जान पड़तेहैं। पुनः, माया कृपाको भी कहतेहैं।—(प्र०)।

'कुन्देन्दीवर' के और भाव

१ (क) पं० श्रीधरमिश्र—ग्रंथकारने प्रातःकाल पंपासरस्थित दोनों राजकुमारोंका जब ध्यान किया तो उस समय श्रीलक्ष्मणजी सरके कूलपर खड़ेथे। अतएव ऊँचे स्थानपर रहनेसे प्रथम वेही दृष्टिगोचर हुए। रघुनाथजी नीचे सरमें स्नान कररहेथे इससे वे पीछे देखपड़े। अतएव प्रथम कुन्द तब इन्दीवर कहा। (ख) मा० श०—इस कांडमें दो कार्य्य करना मुख्य हैं—एक तो सुग्रीवको अंगीकार करना, दूसरे उनको राज्य देना। विना आचार्य्यके ईश्वरकी प्राप्ति नहीं होती। यहाँ लक्ष्मणजी आचार्य्य हैं इनके द्वारा सुग्रीवको रामजीकी प्राप्ति होगी, यथा—'लछिमन रामचरित सब भाषा'। चरित द्वारा उनको परविभूतिका उपदेश दिया। पुनः, राज्याभिषेकभी इन्हींके द्वारा होगा। (ग) मा० शं०—छंदभंगके विचारसे जैसा जहाँ उचित होताहै वैसा कवि लिखतेहैं। दूसरे, कुन्द शब्द छोटा है और इन्दीवर बड़ाहै। प्रायः व्याकरणकी रीति है कि जब ऐसे दो नाम साथ आतेहैं तब छोटा प्रथम रक्खाजाताहै। * (घ) रा० प्र० श०—वियोगजनित दुःखसे व्याकुल होजानेपर लक्ष्मणजीहीके समझानेसे चित्त शान्त होताहै। वा०किं०स० १ इसका प्रमाण है।

२—मा० म०—फूलकाही रूपक यहाँ क्यों कहागया? इसका कारण यह है कि अरण्यकांडमें कहागयाथा कि 'बिरही इव प्रभु करत बिषादा' इत्यादि; इस विरहव्यथाको सुनकर भक्त संकुचित होगए अब फूलका रूपक आदिमें देकर जनाया कि अब प्रभुको प्रफुल्लित देखकर सब आनंदित होंगे।

३—रा० प्र० श०—'कुन्द' श्वेत होताहै। यह शान्तरसका रंग है। इस काण्डको शान्तरससे प्रारंभकरनेका कारण यह है कि—(क) वस्त्र मिलने और सुग्रीवके यह कहनेपर कि—'सब प्रकार करिहउँ

* प्र०—'अल्पाचतरं पूर्वं निपातः'। वा, लक्ष्मण श्रीरामप्राप्तिके द्वार हैं और योगियोंके ध्यानमें प्रत्याहारसे केवल नील घनश्याम पीछे समाधिमें रहताहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई' इत्यादि,—खोजनेमें जो परिश्रम था उससे दोनों भाइयोंको शान्ति प्राप्त हुई। (ख) जो सेना दक्षिण गईथी वह प्याससे मरणप्राय होगईथी, स्वयंप्रभाके आश्रममें जानेसे उसको और स्वयंप्रभाको रामदर्शनसे शान्ति मिली। (ग) संपाती सत्युगसे, पक्ष जलजानेके कारण, दीन पड़ाथा उसे वानरोंसे मिलनेसे पुनः पक्ष निकलनेसे शान्ति मिली।—अर्थात् इस काण्डमें बहुतोंको शान्ति प्राप्त होगी इस बातको प्रथमही शान्तरसको देकर जनायाहै।

विशेषणोंके और भाव

मा० म०—१ (क) विरहसे संतप्त पुरुष अतिबली कैसे होगा? इस शंकाके निवारणार्थ 'विज्ञानधाम' कहा अर्थात् वेसब जानतेहैं कि जानकीजी कहा हैं और कैसे मिलेंगी। कैसे जानें कि विज्ञानधाम हैं इसके उत्तरमें 'शोभाढ्यौ' कहा। अर्थात् न जानतेहोते तो चिन्तासे शरीर कान्तिहीन होजाता। (ख) 'वरधन्विनौ' कहकर 'श्रुतिनुतौ' कहनेका भाव कि धनुर्विद्या वेदसे निकलीहै; वही वेद इनकी स्तुति करताहै और जो वेदधर्मके प्रतिकूल हैं उनको ये मारतेहैं। २—पुनः, 'कुन्देन्दीवर सुन्दरौ' में माधुर्य्य, 'अतिबलौ' में ऐश्वर्य्य, 'विज्ञानधामावुभौ' से शुद्ध शान्त, 'शोभाढ्यौ' से शृङ्गार, 'वरधन्विनौ' में वीर और 'गोविप्रवृन्दप्रियौ' में वात्सल्य रस भराहै। 'श्रुतिनुतौ' में धारणा परत्व है।

नोट—इस कांडका नाम 'किष्किन्धा' क्यों हुआ?—काण्डोंके नामके विषयमें अरण्य और सुन्दरमें काफी लिखागयाहै। सुन्दरकांड मानसपीयूष पृष्ठ ४९८, ४९९ देखिये। 'किष्किन्धा' बालि और सुग्रीवके नगरीका नाम है। किष्किंधापर्वतश्रेणीकाभी नाम है जो किष्किंधा देशमें है। इस काण्डमें जो चरित हुए वे किष्किंधा देशमें हुए। अतएव किष्किंधासे संबंध रखनेके कारण इसका नाम किष्किंधा हुआ।*

मा० त० भ—कीशके किए (बसाये) हुए नगरके चरित्र इसमें वर्णन हुएहैं, अतः किष्किंधा नाम हुआ। वा, इसकाण्डमें कीशको धावन बनाया गया अतएव किष्किंधा—'किस' (कीश)=वानर, किं=कीन=किया, धा=धावन, दूत

मा०त०सु०—कीश सुग्रीवको राज्य धारणकरायागया और सब वानरोंका पोषण कियागया अतः किष्किंधा। यहाँ 'धा' धातुका अर्थ डुधाञ् धारण पोषणयोः के अनुसार करतेहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३—जैसे अरण्यमें मङ्गलाचरण शार्दूलविक्रीडित छंदमें कियाथा वैसेही यहाँभी किया गया। निर्भयहोकर घने-घने वनोंमें घूमते फिरे यह सिंह का ही काम है।

४—सूक्ष्मदर्शीमहानुभाव इस श्लोकको काण्ड की सूची बतातेहैं। वे कहतेहैं कि यहाँ नाम, रूप, गुण, लीला और धाम पाँचों दिखायेहैं और इन्हीं पाँचोंकी व्याख्या काण्डभरमें है।—'रघुवरौ' से नाम, 'कुन्देन्दीवर'से रूप, 'अतिबलौ' इत्यादिसे गुण, 'गोविप्रवृन्दप्रियौ सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ' से लीला और 'विज्ञानधामावुभौ'' से धाम सूचित किया। आगे हनुमान्‌जीसे मिलनेपरभी इन पाँचोंको प्रभुने कहाहै।

ब्रह्मांभोधि समुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं।
श्रीमच्छंभु मुखेंदु सुंदर वरं † संशोभितं सर्वदा॥
संसारामयभेषजं सुखकरं ‡ श्रीजानकीजीवनं।
धन्यास्ते कृतिनः पिबंति सततं श्रीरामनामामृतम्॥२॥

शब्दार्थ—ब्रह्मांभोधि=ब्रह्म+अंभोधि। ब्रह्म=वेद, यथा-'वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म विप्रःप्रजापतिरित्यमरः। अंभोधि=जलधि=समुद्र। अव्यय=निर्विकार, सदा एकरस, नित्य, नाशरहित। आमव=रोग। भेषज=दवा, ओषधि। कृतिनः=जिनके सब प्रकारके सुकृत जमा हों, सुकृती, पुण्यवान्।

अर्थ—वे सुकृती धन्य हैं जो वेदसमुद्रसे उत्पन्न, कलिमलके सर्वथा नष्टकरनेवाले और नाशरहित, श्रीमान् भगवान् शंभुके सुन्दर-श्रेष्ठ मुखचन्द्रमें सदैव शोभायमान्, भवरोगके औषधि, सुखके करनेवाले और श्रीजानकीजीके जीवनस्वरूप सुन्दर श्रेष्ठ श्रीरामनामरूपी अमृतको निरंतर पानकरतेहैं।

टिप्पणी—१ ब्रह्मांभोधिसमुद्भवं, यथा—'वेद प्रान सो', 'एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुतिसारा'-(ब०१९)। (ख) कलि-

† वरे (का०)। ‡ 'सुमधुरं' पाठ पंजाबीजीने दियाहै। 'सुमधुर' क्योंकि अमृत है। यथा—"आखर मधुर मनोहर दोऊ"।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मल प्रध्वंसनं', यथा–'कलिमल बिपुल बिभंजन नामा'–(आ०§१०)। (ग) अव्यय, यथा—'कहउँ नाम बड़ ब्रह्म राम ते।' नाम रामसे भी बड़ा है और राम अविनाशी हैं। अतः नाम भी अविनाशीहै (घ) शिवजी सदा जपतेहैं, यथा—'तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग-अराती'। (ङ) संसाररोगके लिए ओषधि, यथा—'जासु नाम भव-भेषज हरन घोर त्रयसूल'—(उ० § १२४), 'संजम जप' तप नेम धरम ब्रत बहु भेषज समुदाई। तुलसिदास भवरोग रामपद प्रेमहीन नहिं जाई'—(विनय ८१)। नाम नामीके अभेदसे दूसरा उदाहरण दियागया। (च) सुखकर, यथा—'जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी', 'फिरत सनेह मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहिं सपने'। (छ) श्रीजानकीजीवन, यथा—'नाम पाहरू राति दिन ध्यान तुम्हार कपाट। लोचन निज पद जंत्रित प्रान जाहिं केहि बाट'। 'धन्यास्ते कृतिनः', यथा—'सकल कामनाहीन जे राम-भगतिरस लीन। नाम सुप्रेम-पियूष-ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन'।

२—यहाँ श्रीरामनामका रूपक अमृतसे बाँधा। अमृत समुद्रसे निकलाथा, यह किस समुद्रसे निकला? यही आदिमें बताया कि यह वेद-समुद्रसे निकला अर्थात् वेदोंका मथनकरके उसमेंसे साररूप रामनाम निकालागया। वहाँ दैत्योंके नाशकरने और देवताओं-को बल देनेकेलिए अमृत निकालागया। यहाँ कलिमलके नाश केलिए और जापकोंको अमर करनेकेलिए रामनामामृत निकाला गया। उस अमृतके पीनेवालोंका पुनर्जन्म होताहै और रामनामामृत पीनेवालेका आवागमननहीं होता। 'प्रध्वंसनंका' आशय यह है कि रामनामही कलिमलकेलिए समर्थ है, और कोई नहीं। (ख) 'श्रीमत्' विशेषण देनेका भाव कि शिवजी सब प्रकारकी 'श्री' से संपन्न हैं और कल्याण उनसे उत्पन्न होताहै सो भी सदा इसे जपते और इसीमें रमतेहैं, यथा—'राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे' ऐसे महान् जो हैं एवं जिनसे कल्याणकी उत्पत्तिहै वे भी निरंतर जपतेहैं। (ग) मुखको चंद्र कहनेका भाव कि जैसे वह अमृत सदा चन्द्रमामें रहताहै वैसेही यह नामामृत सदा शिवजीके मुखचन्द्रमें रहताहै। 'संशोभितं' पदसे जनाया कि शिवजीकी शोभा इस नामसेहीहै अतः श्री' पद दिया। (घ) 'संसारामयभेषज' कहकर इसकी उस अमृतसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विशेषता दिखाई। वह सांसारिक जीवन देसकताहै पर भवरोगसे नहीं छुड़ा सकता। वह अमृत पीनेसे घटजाताहै एवं प्रलयमें उसका नाश होजाताहै और रामनाम (चाहे जितना जपो) कभी घटता नहीं और प्रलयमेंभी बना रहताहै; इसीसे अव्यय कहा। (ङ) 'श्रीजानकीजीवनं' कहकर नामके गुणका अन्त बतलाया। (च) 'धन्यास्ते कृतिनः' का भाव कि जो स्वर्गप्राप्तिकेलिए सुकृत करतेहैं जिसमें अमृत पीनेको मिले वे धन्य नहीं कहेजासकते क्योंकि पुण्य क्षीण होनेपर फिर यहाँ लौटनापड़ताहै, भवप्रवाहसे उनका छुटकारा नहीं होता और जो नामामृत पीतेहैं वे उपरोक्त कारणोंसे धन्य हैं। 'पिबन्ति' अर्थात् सोते जागते उठते बैठते चलते फिरते सभी अवस्थाओंमें नाम का जप करते रहतेहैं कभी जिह्वा खाली नहीं रहती।

३—प्रथम श्लोकमें नामीकी और दूसरेमें नामीकी वंदना करके जनाया कि दोनों एक हैं। नामसेही नामकी प्राप्ति होतीहै।

रा० प्र० श०—वह अमृत देवताओंके कलिमल (काम क्रोधादि) को नहीं छुड़ासकता और श्रीरामनामामृत अपने आश्रितोंके कलिमलको नष्टकरदेताहै।

पं०—'संसारामयभेषजं सुमधुरं' का भाव कि ज्ञानादि साधनोंसे भी संसाररोग नाश होताहै पर उनमें दुर्गमतारूपी कडुआपन है और नाममें सुगमतारूपी सुन्दर मधुरता है।—(नोट—पंजाबीजीने 'सुमधुरं पाठ दियाहै। 'सुखकरं' मेंभी यह भाव यों घटित करसकतेहैं कि योग ज्ञानादि साधनोंकी कठिनता सुखद नहीं है, उनमें कष्ट होताहै और श्रीरामनामामृत सुखद है, इसमें कोई दुःख नहीं)।

गौड़जी—यहाँ यह भी भाव है कि भगवान् शंकर नामकी ही बदौलत विभूतिके रखनेवाले (श्रीमत्) और कल्याणके पैदा करनेवाले (शंभु) हुए, यथा,—'नामप्रसाद संभु अबिनासी'। साज अमंगल मंगलरासी॥', 'संतत जपत संभु अबिनासी', 'तपबल संभु करहिं संहारा', इत्यादि।

नोट—पूरा रूपक यों होगा कि मुनि और संत देवता हैं, विचार मंदराचल है, वेदोंमें कर्म, उपासना, ज्ञान त्रयकांड आदि बहुतसी बातेंहैं; उसमेंसे निर्णयकरके यह निकाला कि सारवस्तु रामचरित है और इसमेंसेभी सारपदार्थ रामनाम निकाला। यथा-'सतकोटि चरित-अपार दधिनिधि मथि लियो काढि वामदेव रामनाम घृत्तहै'-(विनय)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इससे मथनेवाले श्रीशिवजीकोही लेसकतेहैं, यथा—'रामचरित सत-कोटि महँ लिय महेस जिय जानि'।

मुक्तिजन्ममहि जानि ज्ञानषानि अघहानिकर।
जहँ बस संभुभवानि सो कासी सेइअ कस-न ॥१॥
जरत सकल सुरबृंद बिषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मति/मन मंद †को कृपाल संकर सरिस ॥१॥

अर्थ—मुक्तिकी जन्मभूमि, ज्ञानकी खानि, पापोंकी नाशकरनेवाली और जहाँ शिवपार्वतीजी रहतेहैं, यह जानकर, उस काशीका सेवन कैसे न कीजिए। अर्थात् उसमें वास करना उचित है।* जिस कठिन (भीषण, घोर) हालाहलविषसे समस्त देववृन्द जलरहेथे उसे जिन (शंकरजी) ने पीलिया, हे मन्दबुद्धि! तू उनको क्यों नहीं भजता? शंकरजीके समान कौन कृपालु है?

नोट—इन सोरठाओंकी जोड़के श्लोक ये हैं—'मुक्तेरजन्मदा काशी ज्ञानखान्यघनाशिनी। सोमः शंभुर्वसत्यत्र सदा सेव्या जनैरियम् ॥१॥' (ब्रह्मरामायणे)॥ 'दहतो विबुधान् दृष्ट्वा विषं योऽपान्महेश्वरः।

† मन मंद—(क०, न० प्र०)। भ० द० में मति पर हरताल देकर मन बनायाहै और छपीहुई प्रतिमें 'मति' पाठ है। मा० म० में 'मतिमंद' पाठ है।

* कुछ महानुभावों (करुणासिंधुजी आदि) ने इसका रामचरित वा रामनाम-परक अर्थभी कियाहै इसतरह कि—(१) रामायण मुक्तिकी जन्म-भूमि है, ज्ञानकी खानि है, अघ नाश करतीहै, जिसमें शंभुभवानी अन्तः करणसे सदा बसतेहैं और जो शोकके नाशकेलिए असि (तलवार) रूप है, उसका सेवन क्यों नहीं करते?—(करु०)। (२) रामनामको बालकाण्डमें 'हेतु कृसानु भानु हिमकरको' कहा है। 'र' अग्निबीज है, वह पापोंका नाश करताहै, 'अ' भानुबीज है वह ज्ञान उत्पन्न करताहै और 'म' चन्द्रबीज है। यह 'म' निश्चय (महि=म+हि=निश्चय। 'हानिक'+'र'=हानिकर) मुक्तिका दाताहै; ऐसा रामनाम जिसमें शिवपार्वतीजी निवास करतेहैं और जो समस्त शोकोंकेलिए तलवार है, उसका सेवन क्यों नहीं करते?—पर ये क्लिष्ट कल्पनाएँ हैं। वस्तुतः यहाँ काशीजीकाही मङ्गलाचरण है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भ्रान्तं मनो भजत्वंतं कः कृपालुः शिवात्परः ॥२॥'—(अगस्त्यरामायणे)। पाठक स्वयं देखेंगे कि 'सेइय कस न' में 'सदासेव्या जनैरिम्' से कहीं अधिक ज़ोर है। इसीतरह 'भजत्वं तं' से 'तेहि न भजसि' कितने अधिक ज़ोरका वाक्य है।

टिप्पणी—१ मुक्तिजन्मभहि आदि विशेषणोंके क्रमका भाव—(क) मुक्तिकी जन्मभूमि है अर्थात् मुक्तिकी उत्पत्ति यहाँसेहै, यहाँ मरनेसे मुक्ति होतीहै, यथा—'काश्यां मरणान्मुक्तिः' इति श्रुतिः। इसपर शंका होतीहै कि श्रुति तो यहभी कहतीहै कि 'ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः' अर्थात् ज्ञान विना मुक्ति नहीं होती; अतएव कहतेहैं जि यह 'ज्ञानखानि' है अर्थात् यह पुरी ज्ञान उत्पन्न करदेतीहै। पर पापके विनष्टहुए विना ज्ञान नहीं होता यथा—'ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः' अर्थात् पापकर्मोंके क्षय होनेपर पुरुषोंमें ज्ञान उत्पन्नहोताहै; अतएव कहा कि 'अघहानिकर' है। इस प्रकार तीनों श्रुतियोंके भावोंको यहाँ ग्रन्थकारने कहकर शंकाकी जगहही नहीं रक्खी और इस कथनको सर्वश्रुतिसम्मत दिखाया। यहाँतक काशीका माहात्म्य कहा। (ख)—अब बतातेहैं कि यह किसका निवासस्थान है—शंभुभवानिका।—[नोट—शंभुभवानी नाम देकर जनाया कि ये कल्याणकर्त्ता हैं, जीवोंको मरते समय मुक्ति बाँटतेरहतेहैं, यथा—'कासी मरत जंतु अवलोकी। जासु नामबल करउँ बिसोकी'। और 'भवानी' नामसे जनाया कि जबसे शंकरजी यहाँ बसतेहैं तभीसे येभी यहाँहैं क्योंकि भवकी पत्नी हैं। इसीसे सती, पार्वती आदि नाम न दिए क्योंकि ये नाम पीछे हुए।]—यह कहकर तब 'सेइय कस न' कहा। तात्पर्य्य यह कि शिवजी अपने स्थानमें निवास करतेहैं; जीवोंको चाहिए कि काशीको इष्टदेव मानकर इसका सेवन करें। काशीका महत्व कहकर आगे काशीके स्वामीकी बड़ाई करतेहैं। ☞ इस सोरठेमें वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण है।—(पं०)।

२ (क)—'जरत सकल सुरबृन्द' से विषकी विषमता कही कि ऐसा विषम था कि देवता न सह सके, और 'विषम गरल जेहि पान किय', इस कथनसे शिवजीका सामर्थ्य कहा।—इसकी पूरी कथा ब० §१८ (८) 'कालकूट फल दीन्ह अमी को' में देखिए। (ख)—'मनमन्द' का भाव कि ऐसे उपकारी कृपालु शिवको नहीं भजता; अतः

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तू नीच है। 'तेहि न भजसि मनमंद' का तात्पर्य्य कि जैसे शिवजीने सब देवताओंको विषकी ज्वालासे बचाया वैसेही यदि तू उनका भजन करेगा तो तुझकोभी विषयाग्निज्वालासे बचायेंगे, क्योंकि तू विषयाग्निसे जलरहाहै, यथा—'मन करि बिषय अनलबन जरई'—(पं०)। (ग)—'कृपालु संकर सरिस' इति। समस्त देववृन्दपर कृपाकरके उनके कल्याणकेलिए हालाहल पीलिया इससे 'कृपालु' और 'शंकर' (कल्याणकर्ता) पद दिए। (घ)—'सकल सुरवृन्द' अर्थात् जितने देवताओंके भेद हैं उनमेंसे प्रत्येकका वृन्द। जैसे-वसुवृन्द, रुद्रवृन्द, आदित्यवृन्द, इत्यादि। इसमें पुनरुक्ति नहीं है।

३—दोनों सोरठोंके क्रमका भाव।—प्रथम सोरठेमें काशीवास करनेको कहा और दूसरेमें शंकरजीका भजन करनेको। तात्पर्य्य यह कि प्रथम काशीवास करे तब पापका नाश होकर ज्ञान मिले तब शिवसेवाका अधिकारी हो और शिवसेवासे श्रीरामचन्द्रजीकी अविरल भक्ति मिले, यथा—'सिवसेवाकर फल सुत सोई। अविरल भगति रामपद होई'।

प्र०—(क) 'शंभुभवानि' से अर्द्धनारीश्वर, अनिर्वचनीय तुरीय ब्रह्मरूप जनाया। (ख)—'सेइय' से जनाया कि 'बिषई साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिधि जीव जग वेद बखाने', ये जो तीन प्रकारके जीव हैं उन तीनोंको सेवनका अधिकारहै।

वै०—(क) चार विशेषण देनेका भावयहहै कि सिद्धको मुक्तिदायिनी है, साधकको ज्ञानखानि है; विषयीकेलिए अघनाशिनी है और जो निष्काम हैं उनकेलिए शंभुभवानीके सत्संगकी प्रापक है।—घा, (ख)—सहज बाससे पाप हरतीहै,सत्संगसे ज्ञान देतीहै और मरनेपर मोक्ष।

नोट १—गोस्वामीजी अपने मनके उपदेश द्वारा समस्त जीवोंको उपदेश देरहेहैं। जिसने अपनेको उपदेश न दिया वह दूसरेको क्या उपदेश देगा, उसके उपदेशका कुछ प्रभावही नहीं पड़सकता।—(पं० रा० ब० श०)

नोट २ (क)—बाल, अयोध्या और अरण्य काण्डोंमें प्रथम शिवजीका मंगलाचरणहै तब रामचन्द्रजीका, पर यहाँसे वह क्रम पलट गयाहै। प्रथम रामजीका मंगलाचरणहै तब शिवजीका। यह क्रमभंगभी साभिप्राय है। अभीतक शिवजीकी वन्दना मानसके आचार्य्य होनेके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भावसे करतेआए। आचार्य्यका दर्जा भगवान्से अधिक है। दूसरे शिवजीके विषयमें बालकाण्डमें कहआएहैं कि 'सेवक स्वामि सखा सियपी के'। उसका निर्वाहभी करतेआरहेहैं। माधुर्य्यमें रघुनाथजीके स्वामी होनेसे यहाँतक स्वामीकी प्रथम वंदना कीगई तब सेवककी। और, अब शिवजी हनुमान्रूपसे आकर रघुनाथजीकी सेवामें प्राप्तहुएहैं अर्थात् इस कांडसे उन्होंने सेवक-भाव ग्रहणकियाहै, अतः उनके स्वामी रामलक्ष्मणजीकी प्रथम वंदना कीगई। जबतक सेवक बनकर नहीं आएथे तबतक प्रथम वंदना करतेआए। शिवजीके अवतार हनुमान्जी हैं, यथा—'जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान। रुद्र देह तजि नेह बस बानर भे हनुमान', 'जानि रामसेवा सरस समुझि करब अनुमान। पुरुषा ते सेवक भये हर ते भे हनुमान'—(दो० १४२, १४३)। (ख)—यही कारण इसकाभी कहसकतेहैं कि यहाँ संस्कृतमें शिवजीका मंगल न करके सोरठामें क्यों किया और सुन्दरकाण्डमें हनुमान्जीका मंगलाचरण क्यों कियागया (क्योंकि उसमें उनका चरित कहाहै)। अतएव फिर अभेदभावसे शिवजीकी वन्दना नहीं कीगई। (ग) ऐतिहासिक दृष्टिसे ऐसाभी कहाजाताहै कि शव-वैष्णव-विद्रोह मिटानेके विचारसे दूरदृष्टि पूज्यकविने बराबर शिवजीकीभी वंदनाकी और इसी विचारसे प्रथम तीन काण्डोंमें उनको प्रथम स्थान दियागया। परन्तु ग्रंथके अनुसार तो यही सिद्ध होताहै कि मानसके आचार्य्यके भावसे एवं इससे कि 'संकर भजन बिना नर भगति न पावै मोरि' एवं 'सिवसेवाकर फल सुत सोई। अविरल भगति रामपद होई' अर्थात् श्रीरामभक्तिके आचार्य्यभी जानकर उनका मंगलाचरण बराबर कियागया।

इस कांडमें काशीकी महिमा वर्णन करनेका हेतु

१—पं० (क) मानसका प्रारंभ अयोध्यामें हुआ और वहीं तीन काण्ड समाप्त किए। प्रारंभमें अवधकी महिमा कही और वहाँही इसका प्रारंभ होना कहा, यथा—'रामधामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त विदित जगपावनि॥ चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजे तन नहि संसारा॥ सब बिधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धिप्रद मंगलखानी॥ बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा।' इत्यादि। काशीमें किष्किंधाकांड प्रारंभ किया अतः यहाँ उसकी महिमा कही।—(पर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह अनुमान श्री वेणीमाधवदासकृत मूलगुसाईं चरितसे स्पष्ट अशुद्ध सिद्ध होता है। समस्त रामचरितमानस श्रीअवधमेंही लिखागया।) (ख) इस मानसमें सप्त प्रबंध हैं। उनमेंसे यह चतुर्थ है। सप्त मुक्तिदायिनी पुरियोंमें अयोध्याका नाम प्रथम है और काशीका चतुर्थ। अतः प्रथममें अयोध्याका और चतुर्थमें काशीका माहात्म्य कहा।

२—मा०म०—किष्किंधाकाण्डकी समता काशीसे जनानेकेलिए इसकांडमें काशीका महत्व कहा।—किष्किंधाकांड श्रेष्ठ काशी है। वह मुक्तिजन्मभूमि है और इसमें जितने कपि आए सब मुक्त हुए—(१)। वह ज्ञानखानि है और यहाँ रामदर्शन पानेसे सबको यह ज्ञान हुआ कि हम स्वामीको पागए—(यथा—'उपजा ज्ञान बचन तब बोला। नाथ कृपा मन भयउ अलोला'। बालिको ज्ञान हुआ। जाम्बन्तने साथके सब बानरोंको ज्ञान दिया। इत्यादि)—(२)। 'अघहानिकर' यह काशीका शुद्ध कर्म है और सीताखोजमें प्रयत्न करना यह यहाँ शुद्ध कर्म (कर्त्तव्य) है—(३)। वहाँ अर्द्धनारीश्वर शंकरजी एकही रूपमें सशक्ति और यहाँ हनुमान्‌जी सशक्ति हैं, उन्होंने इसी शक्तिसे लंकादहन किया—(४)। शिवजीने विषपिया। लंकादहनपर रावणकी आज्ञासे यमराजने विष बरसाया जो पावकके संयोगसे ऊपरको बढ़ा जिससे देवता जलनेलगे तब हनुमान्‌जीने उसे पीकर देवताओंको बचाया और लंकादहनसे उनको बहुत सुखदिया। यह भाव हनुमानचम्पूग्रंथसे पायाजाताहै।—(५)। इत्यादि (नोट—'मयंक और मयूषमें विस्तृत मिलान दियाहै। क्लिष्टकल्पना समझकर यहाँ नहीं दिया जाता) ३—ऊपर दो श्लोकोंमें रघुनाथजीका मंगलाचरण किया। एकमें नामीकी वंदना, दूसरेमें नाम की। वैसेही यहाँ शंकरजीकी वंदना दो सोरठोंमें की। एकमें धामकी, दूसरेमें धामीकी। नामकी वंदना इससे न की कि ये स्वयं श्रीरामनामकोही जपतेहैं और उसीके प्रभावसे ऐसे शक्तिमान हैं।

४ प्र०—'सप्तप्रबंध सुभग सोपान,' (ब०) में कहागयाहै कि ये सप्त सोपान सप्त शास्त्र हैं। उनमेंसे इस चतुर्थ सोपानको योगशास्त्र कहाहै। शिवजी योगीशशिरोमणि पतंजलि आदि योगप्रवर्त्तकोंके आचार्य्य हैं। अतः इस योगशास्त्ररूपी सोपानमें योगियोंके आचार्य्यकी वंदना कीगई। दूसरे रुद्रावतार हनुमान्‌जीसे इसमें मिलापहुआहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नोट—काशीजीका कामधेनुसे साङ्गरूपक बाँधकर विनयमें उसका सेवन करनेको कहाहै। 'सेइये' का वही भाव यहाँभी है अर्थात् प्रेम-पूर्वक जन्मभर वास करो। यह पद पढ़नेयोग्य है—

"सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी।
समनि सोक संताप पापरुज सकल सुमंगलरासी ॥१॥
मर्यादा चहु ओर चरन बर सेवत सुरपुरबासी।
तीरथ सब सुभ अंग रोम सिवलिंग अमित अबिनासी ॥२॥
अन्तर अयन अयन भल थल फल बच्छ बेद बिस्वासी।
गलकंबल बरुना बिभाति जनु लूम लसति सरितासी ॥३॥
दंडपानि भैरव बिषान मल रुचि खल गन भयदासी।
लोल दिनेस त्रिलोचन लोचन करनघंट घंटा सी ॥४॥
मनिकर्निका बदन ससि सुंदर सुरसरि-सुख सुखमासी।
स्वारथ परमारथ परिपूरन पंचक्रोस महिमासी ॥५॥
बिस्वनाथ पालक कृपालुचित लालति नित गिरिजासी।
सिद्धि सची सारद पूजहिं मन जुगवत रहत रमासी ॥६॥
पंचाक्षरी प्रान मुदमाधव गव्य सुपंचनदासी।
ब्रह्मजीव सम रामनाम जुग आषर बिस्वबिकासी ॥७॥
चारितु चरति करम कुकर्म करि मरत जीव गन घासी।
लहत परमपद पय पावन जेहि चहत प्रपंच उदासी ॥८॥
कहत पुरान रची केसव निज कर करतूति कलासी।
तुलसी बसि हरपुरी राम जपु जो भा चहै सुपासी ॥९॥"-(२२)

"मारुति मिलन"-प्रकरण

—०❀#❀०—

आगे चले बहुरि रघुराया।
रिष्यमूक पर्बत नियराया ॥ ० (१)

अर्थ—रघुनाथजी फिर आगे चले और ऋष्यमूक † पर्वत निकट आगया अर्थात् उसके पास पहुँचे।

---

† ऋष्यमूक नाम क्यों पड़ा? प्रयंकरार कहतेहैं कि सात शृङ्ग (चोटी)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—(क) 'आगे चले'। सीताजीको खोजनेके निमित्त आगे चले; परन्तु यहाँ खोजना नहीं लिखते क्योंकि खोजनाप्रथम लिखआए-हैं, यथा—'पुनि सीतहिं खोजत द्वौ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई।' (ख) 'बहुरि' का भाव कि सबरीजीके आश्रमसे चलकर पंपासर पर आकर स्नान करके वहाँ बैठगएथे; अब वहाँसे फिर आगे चले। (ग) पंपासरपर नारदजीसे रामचन्द्रजीने स्त्रीके अनेक दोष वर्णन किए और आप स्वयं स्त्रीको खोजते फिरतेहैं—इस चरितसे यह सूचित करतेहैं कि गृहस्थको स्त्रीसंग्रह उचित है और विरक्त को अनुचित। * (घ) इसकांडके प्रारंभमें 'रघुराया' शब्द देनेका भाव कि (।)– ये रघुवंश-

होनेसे यह नाम पड़ा। वा, मतंगऋषि मूक (मौन) होकर यहाँ तपस्या करते-रहे इससे यह नाम हुआ। काष्ठजिह्वास्वामीजी कहतेहैं कि मतंगऋषिकी यहाँअमूक ज्योति जागतीरहतीहै अतएव ऋष्यमूक नाम हुआ।—'ऋषि मतंग जहँ मूकन गाजत' अर्थात बड़े वक्ता और किसीसे दबनेवाले नहीं थे—(रा० प० प०)। श्री पं० रामवल्लभाशरणजी महाराजसे सुनाथा कि मृगोंकी कई जातियाँ हैं, जैसे गोकर्ण, केन, ऋष्य, आदि। यहाँ ऋष्यनामके मृग रहतेथे पर बिलकुल मूक होकर रहतेथे अतः ऋष्यमूक नाम पड़ा। यहाँ सत्यवादी ऋषि रहाकरतेथे, झूठ बोलनेवाले और अधर्मी वहाँ जाकर मरजातेहैं। पुनः ऋषि यहाँ अमूक होकर वेद, नाम और चरित्र उच्चारण कियाकरतेथे—(वै०)। कबंधने रामचन्द्रजी से बतायाथा कि यह पर्वत पुष्पवाले वृक्षोंसे युक्त है। उसपर बड़े दुःखसे चढ़ा जा सकताहै; साँप उसके रक्षक हैं। इसे बहुत पहले ब्रह्माने बनायाथा। इसपर स्वप्नमें जो पुरुष जो धन पानेका स्वप्न देखताहै वह उसे जागनेपर अजमेर मिलताहै। दुराचारियोंको सोतेमें राक्षस मार डालतेहैं—(वा० आ० स० ७३)

* 'आगे चले बहुरि' के और भी भाव लोग कहतेहैं। १—प्र०—(क) जैसे पहले आप आगे चला करतेथे और लक्ष्मणजी पीछे वैसेही फिर आप आगे चले। (ख)—राज्य छूटा, मातापिता छुटे, देश छूटा और वनमें आनेसे सब लोग छूटे, उसपरभी सीताहरण हुआ; इतनी विपत्ति पड़नेपरभी पीछे फिरनेका विचार न किया किन्तु फिरभी आगेहीको चले क्योंकि रघुराई हैं। (ख) रघुरायाकाभावकि शूर वीर (और धीर एवं धर्मधुरंधर) हैं। दूसरा भाव रघुरायाका यह है कि इसकांडमें राजधर्मको प्रधान करेंगे। २—मा० म०—सीताजीकी खोजमें श्रीरामलक्ष्मणजी कभी उलटे कभी सीधे चलतेथे अर्थात् कभी लक्ष्मणजी आगे होजातेथे, कभी रामजी। पर पंपासरपर बैठनेके बाद अब वहाँसे आगे चले।—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के राजा हैं अतएव ये नीतिके अनुकूल कार्य करेंगे—सुग्रीवसे मित्रता करेंगे, उसके शत्रुको मारेंगे और अपना कार्य्य करावेंगे—(राजाकी मित्रता राजासेही होना योग्य है। अपराधीको दंडदेना राजाकाही काम है, इत्यादि)। पुनः, भाव कि (॥)—'रघुराया' शब्दसेही चलनेका प्रसंग छूटाहै, यथा—'देखी सुंदर तरुवर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया'। बीचमें नारदसंवाद कहा। अब फिर उसी 'रघुराया' शब्दसे चलनेका प्रसंग उठायाहै। (ङ) बीचमें अनेक पर्वत मिले पर उनका नाम कविने नहीं दिया क्योंकि वहाँ प्रभुका कोई कार्य्य नहीं हुआ और यहाँ सुग्रीव से मित्रता होगी, कार्य्यका आरंभ होगा; अतएव इस पर्वतका नाम दिया।

नोट—यहाँ 'आगे चले बहुरि रघुराया' कहकर पूर्व अरण्यकाण्ड-से संबंध मिलायाहै। वहाँ 'बैठे अनुज सहित रघुराया' और यहाँ 'आगे चले बहुरि रघुराया'।—(पां०)।

तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवाँ।
आवत देखि अतुलबलसीवाँ॥ ०§ (२)
अति सभीत कह सुनु हनुमाना।
पुरुष जुगल बल रूप निधाना॥ ,, (३)

[नोट—जब २ कहीं ठहरना लिखाहै तब उसके बाद पुनः चलना लिखा गया है। इसीतरह पंचवटी-निवासके पूर्व कहाहै—'पुनि रघुनाथ चले बन आगे'। और जहाँ आगे और पीछे चलनेका क्रम दिखायाहै वहाँ दोनों भाइयोंका नाम दियाहै, यथा—'चले बनहिं सुरनरमुनि ईसा।' 'आगे राम अनुज पुनि पाछे'—(आ० § ६), 'आगे रामु लषन बने पाछे'—(अ० § १२२)। इन उदाहरणोंके अतिरिक्त बनयात्रामें 'आगे' पद नहीं आया है। साधारण अर्थ तो यही है कि पंपासरसे आगे चले जैसे 'चले बन आगे' में। शेष भाव पांडित्यके हैं। रामायण कामधेनु है जितने भाव चाहो निकालते जाओ।]

३—र० ब०—इस काण्डमें प्रथम छत्रबंध चौपाई लिखी। कारण यह है कि इसमें सुग्रीवको राज्य देना और छत्रधारी बालिका वध वर्णन है। जो स्वयं छत्र-धारी न होगा वह दूसरेको क्या छत्रधारी बनायेगा। गोस्वामीजीकी स्वामिभक्ति का यहभी एक उदाहरण है—राज्य देना है, अतः पहलेही उन्होंने स्वामीपर छत्र लगा दिया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—वहाँ (उस पर्वतपर) सुग्रीव मंत्रियोंसहित रहतेहैं। अतुलितबलकी सीमा श्रीरामलक्ष्मणजीको देख अत्यन्त डरकर वे बोले कि हे हनुमान् ! सुनो,ये दोनों पुरुष बल और रूपके निधान (सिंधु हैं)।

टिप्पणी—(क) 'सचिव सहित' का भाव कि राज्यके सात अंग हैं—राजा, मंत्री, मित्र, कोष, देश, किला और सेना। इनमेंसे सुग्रीव के पाँच अंग नष्ट होगयेहैं, दो बचेहैं, एक आप और एक मंत्री। सात अंगोंमेंसे मंत्री प्रधान अंग है इनको साथ रखेहुएह। (ख) सबरीजी-ने कहाथा कि 'पंपासरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई'; पर मित्रता ऋष्यमूकपर हुई। इससे निश्चय हुआ कि यहाँतक पंपा-सरकी भूमि है। प्रमाणं अध्यात्मे यथा—'इतः समीपे रामस्ते पंपानाम सरोवरम्। ऋष्यमूकगिरिर्नाम तत्समीपे महानगः॥' अर्थात् हे राम ! इसके समीपहीं पंपानामक सरोवर है और उसके समीप ऋष्यमूक नामक बड़ा पर्वत है। (ग)—रूप देखकर अतुलबलसींव जान लिया, यथा—'सुचि सुजान नृप कहहिं हमहिं अस सूझै। तेज प्रताप रूप जहँ तहँ बल बूझै॥ चितइ न सकहु रामतन गाल बजावहु। बिधिबस बलउ लजान सुमति न लजावहु॥३७॥' इति जानकीमंगल-ग्रंथे। अर्थात् साधु राजा कुटिलराजाओंसे कहतेहैं कि जहाँ तेज, प्रताप और रूप है वहाँ बलभी जानलेनाचाहिये।—(नोट—बलवान पुरुष देखकर दूसरेका अंदाज़ा करलेतेहैं। हनुमान्जीने लंकाभर के योद्धाओंको देखकर यही निश्चय कियाथा कि ऐसा कोई नहीं है जिसे हम न जीत सकें।) †

(घ) 'अति सभीत' का भाव कि सुग्रीव बालिसे सदा सभीत रहतेथे, यथा—'इहाँ साप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहौं मन माहीं॥' (पं०)।‡और अब इनको 'अतुलबलसींव' देखकर 'अति सभीत

† शिला—'अतुल बलसींव' जाननेके कारण ये हैं। १—सर्व-उरबासी रामजीने जनादिया जिसमें वे हनुमान्जीको भेजें। हनुमान्जी शिवरूप-आचार्य्य द्वारा सुग्रीवको प्राप्ति करानेकेलिये ऐसा किया। २—रामजी सूर्य्यवंशी और सुग्रीव सूर्य्यके पुत्र; अतएव सूर्यने जनादिया जिसमें दोनों मिलजायँ। ३—देव अंश होने से। वा, ४—भावी प्रबल है, बालिका काल निकट है।

‡ १ पं०—अथवा, इनको देखकर भागचलूँ और आगे छलसे बालि खड़ा हो तो क्या करूँगा, यह सोचकर भय हुआ। और, यदि तपस्वी समझकर बैठारहूँ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हुए। (ङ)—'अतिसभीत' से सूचित हुआ कि सुग्रीवके हृदयमें भयानकरसका स्थायीभाव भय बहुत दिनसे है।—[सुग्रीवको वीरसे प्रयोजन है अतः रघुनाथजीने वीरस्वरूप दिखाया—(मा० त० ब०)] २—पा०—बालिसे तो सभीत थेही, इनको निःशंक घोरवनमें विचरण करते एवं इनके रूपसे इनको अतुलित बली जानकर 'अति सभीत' होगये। ३—वा०स० २ में लिखाहै कि श्रेष्ठ आयुध धारण किएहुए और देखनेसे वीर मालूम होतेथे, अतः भयभीत होगये। और ऐसे भयभीत होगए कि एक स्थानपर स्थिर न रहसके, एक शिखरसे दूसरे, दूसरेसे तीसरेपर भागने लगेथे। स० १ मेंभी लिखाहै कि अद्भुतदर्शनीय दोनों वीरोंको पर्वतके समीप विचरते देख उसे परम विषाद हुआ, वह भयभारसे दबगया। भयका कारण आगे कवि स्वयं कहतेहैं। वाल्मीकि आदिमें दिखायीहुई सुग्रीवकी दशाको यहाँ 'अति सभीत'से जनायाहै।*

४—प्र०—'अति सभीत'सुग्रीवके संबोधनसेभी सूचित होरहाहै—'सुनु'। डरके मारे त्वरामें इसतरह संबोधन किया।

५—मा०म०—'पुरुष' पद देकर जनाया कि ये ऐसे दृढ़ मालूम होतेहैं कि जो प्रतिज्ञा करेंगे वह पूरी करेंगे। वचनकेलिए प्राणतक

अ,र ये आकर मुझे मारडालें या बाँधकर बालिके पास लेजायँ तब क्या होगा, यह सोचकर 'अति सभीत' हुआ। २—मंत्री सभीत,ये अति सभीत(मा०त०प्र०)

* यथा—"तौ तु दृष्ट्वा महात्मानौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ। वरायुधधरौ वीरौ सुग्रीवः शंकिताऽभवत् ॥१॥ उद्विग्न हृदयः सर्वादिशः समवलोकयन्। न व्यतिष्ठत कस्मिंश्चिद्देशे वानरपुंगवः ॥२॥ नैव चक्र मनः स्थातुं वीक्ष्यमाणौ महाबलौ। कपेः परमभीतस्य चित्तं व्यवसीदह ॥३॥"—(सर्ग २)। पुनः, यथा—तावृष्यमूकस्य समीपचारी चरन्ददर्शाद्भुतदर्शनीयौ।...दृष्ट्वा विषादं परमं जगाम चिन्तापरीतो भयभारभग्नः॥ (१२८-९)।—[सर्ग १]॥

अर्थात्—श्रेष्ठ आयुध धारणकियेहुये दोनों वीर भाइयों महात्मा श्रीराम लक्ष्मणको देखकर सुग्रीव शंकित होगया। उसका हृदय बेचैन होगया, वह चारों दिशाओंमें देखनेलगा। वह वानरश्रेष्ठ किसी स्थानमें स्थिर न रहसका। दोनों महाबली वीरोंको देखकर उसका चित्त परम भयभीत होगया, उसका मन स्थिर नहीं होता, वह कहीं स्थिर होकर बैठ न सका। ऋष्यमूक पर्वतके समीप विचरनेवाले अद्भुत दर्शनीय दोनों वीरोंको देखकर वह विषादयुक्त होगया, अत्यन्त चिन्ता व्याप गई और भयके भारसे वह दबगया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देना उनको सहज है यह दृढ़तासे ज्ञात होताहै, यही पुरुषत्व है। ६—'बलरूपनिधान' का भाव कि ये दोनों बातें एक साथ प्रायः नहीं होतीं, ये कोई विलक्षणही पुरुष हैं।

धरि बटु रूप देषु तैं जाई।
कहेसु जानि जिय सयन बुझाई॥ §० (४)
पठए बालि होहिं मन मैला।
भागौं तुरत तजौं † यह सैला॥ ,, (५)

अर्थ—ब्रह्मचारीका रूप धारणकरके तुम जाकर देखो और उनके हृदयकी अपने जीसे जानकर इशारेसे हमको समझाकर कह-देना। मैलेमनवाले बालिके भेजेहुए हों तो (एवं बालिके भेजेहुए होंगे तो इनका मन मैला होगा) मैं तुरत भागूँगा और इस पर्वतको छोड़ दूँगा।*

नोट—'धरि बटु रूप' इति। 'बटु' का अर्थ आगे कवि स्वयं करते हैं, यथा—'विप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ'। बटु=विप्र। बटु रूप क्यों धारण किया? उत्तर—(क) वानररूप मनुष्योंसे बातचीत करनेके उपयोगी नहीं, यह वाल्मीकिजीका मत है। प्रमाण यथा—'कपिरूपं परित्यज्य हनुमान्मारुतात्मजः। भिक्षुरूपं ततो भेजे शठबुद्धितया कपिः॥२॥' (स० ३)। कपि शठबुद्धि होतेहैं और यहाँ वचनप्रवीणता का काम है, अतः उसके योग्य शरीर धारण किया। (ख) श्रीरामलक्ष्मणजी तपस्वी वेषमें हैं पर धनुष, बाण, तरकश आदि धारण किएहैं,

† 'तजौ'—(भ० द०), 'तजउ—(न० प्र०), 'तजौं'—(क०)।

* जोड़के श्लोक—'गच्छ जानीहि भद्रं ते बटुर्भूत्वा द्विजाकृतिः॥८॥ बालिना प्रेषितौ किंवा मां हन्तुं समुपागतौ। ताभ्यां संभाषणं कृत्वा जानीहि हृदयं तयोः॥९॥ यदि तौ दुष्टहृदयौ संज्ञां कुरु कराग्रतः। साधुत्वेस्मितवक्त्रं भूरेवं जानीहि निश्चयम्॥१०॥'—(अध्यात्म स० १)। अर्थात् हे सखे! तुम्हारा कल्याण हो। ब्राह्मणकी आकृति बनाकर ब्रह्मचारी विद्यार्थी होकर इनके पास जाओ। उनसे बातचीत करके उनके हृदयको जानलेना कि वे बालिके भेजेहुए हमारे मारनेकेलिए तो नहीं आएहैं। यदि वे दोनों दुष्टहृदय हों तो हाथके अग्र-भागसे हमको इशारा करदेना। यदि उनके हृदयमें साधुता होगी तो उनके मुखपर मुस्क्यान वा प्रसन्नता होगी इससे तुम निश्चय जान लेना।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इससे देखनेसे क्षत्रिय जानपड़तेहैं जैसा हनुमान्‌जीके प्रश्नसे विदित है, यथा—'छत्रीरूप फिरहु बन बीरा'। क्षत्रिय ब्राह्मणभक्त होतेहैं। अतः विप्ररूपसे गए।—(मा० त० भा०)। ब्रह्मचर्याश्रममें रहनेवाला, विद्याध्ययन करनेवाला यह बटुरूप सबका कृपापात्र होता है; क्योंकि छोटी अवस्थासेही ये विद्याध्ययन और धर्ममें लगजातेहैं जब कि अन्तःकरण शुद्ध होताहै। अतः इनसे लोग अपना हाल कहने में हानि नहीं समझते। कहतेहैं कि भस्मासुरसे शिवजीको बचानेके लिए भगवान्‌ने ब्रह्मचारी बनकर उनसे सब मर्म पूछाथा कि क्या करनाचाहताहै—(व्यासजी)। (ग) ब्राह्मण अवध्य है, दुष्ट-हृदयभी होंगे तो भी ब्रह्मचारीको न मारेंगे। दूसरे, ब्रह्मचारी प्रायः वनमें रहाही करतेहैं इससे वहाँ बटुको देखकर किसी प्रकारका संदेहभी न होगा —(मा० म०)। (घ)—पांडेजी कहतेहैं कि विद्यार्थीका रूप इससे धारण किया कि उनका स्वभाव चंचल होता है, विना प्रयोजनभी उनका पूछना अनुचित नहीं होगा। (ङ)—यह वेष मंगलकारी माना जाता था। ☞ स्मरण रहे कि हनुमान्‌जीने विभीषणजी एवम् भरतजीसे (उत्तरकांडमें) मिलनेकेलिएभी विप्ररूपही धारण किया, यथा—'बिप्ररूप धरि बचन सुनाये' और 'बिप्ररूप धरि पवनसुत आइ गयउ जिमि पोत'। पर सीताजीके पास वानररूप से ही गए जिसका कारण उस प्रसंगमें दियागयाहै। (च) बाबा हरीदास जी कहतेहैं कि हनुमान्‌जी सुग्रीवके बुद्धिमान् मंत्री और बलवान् हैं यदि ये मारडालेगए तो सुग्रीवको एक बड़ेभारी मित्रकी हानि हो जायगी इससे बटुरूपसे जानेको कहा क्योंकि यह अवध्य है।

२—'जानि' जिय' इति। संभाषण द्वारा, उनके बचनों, चेष्टाओं और रूपके द्वारा उनके हृदय के भावोंको जाननेको कहा। ३—'सैन बुझाई'। अध्यात्ममें हाथके अग्रभाग अर्थात् अँगुलीसे इशारा करनेको कहाहै। मतभेदके कारण कविने केवल 'सैन बुझाई' पद देकर सबके मतकी रक्षाकी।—(मा० त० भा०)। दोनों भाई उत्तरसे दक्षिणको आतेथे और हनुमान्‌जी दक्षिणसे उत्तरको जातेहैं अतएव सुग्रीवके पीछे पड़नेसे सैन बताना नहीं बनता, इसकारण सुग्रीवके बचनमें यह ध्वनिहै कि तुम दक्षिणकी तरफ़ फिरकर खड़ेहोना जिसमें सैन बताते बने'—(मा० म०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३—'पठए बालि होहिं मन मैला'—

मा० त० भा०—(।) बालिको पापी कहनेका भाव यह कि उसने सुग्रीवकी स्त्रीको हरण करके उसके साथ संभोग किया, यथा—'हरि लीन्हेसि सरबस अरु नारी'। तात्पर्य्य यह कि पापीके भेजे होंगे तो इनके हृदयभी पापी होंगे, संभाषण करनेसे जान लिए जायँगे।

(॥) बालिने अवश्य इन्हें भेजा होगा, यह संदेह होनेका कारण है अतः कहा कि पठए बोलि होहिं'। फिर कारण कहा कि वह 'मन मैला' है। इसीको विस्तारसे वा० स० २ में यों कहा है कि 'राजाओंके बहुत मित्र होतेहैं। विश्वास करना उचित नहीं। बालि बुद्धिमान और दूरदर्शी है। अपने शत्रुके नाशका प्रयत्न बड़ी योग्यतासे करेगा।'—'रिपु रिन रंच न राखब काऊ'। यहाँ हम उससे निर्भय हैं क्योंकि वह यहाँ शापवश आनहीं सकता अतएव उसने दूसरेको यहाँ हमारे मारनेको अवश्य भेजा होगा। इस प्रकार 'मन मैला' बालिका विशेषण हुआ। पुनः, यह दोनों भाइयों के लिए भी है। यदि यह शंका हो कि भला बालिके भेजे हुए होंगे तो वह अपना मर्म क्यों कहेंगे तो उसके लिए चिन्ह बताते हैं कि उसके भेजे होंगे तो इनका मनभी मैला होगा, जो विना कारण दूसरे का वध करने जायगा उसका मन प्रसन्न नहीं होगा, वे ठीक उत्तर न देंगे, इधर उधर टालेंगे, बातों और चेष्टासे हृदयकी साधुता एवं दुष्टता प्रकट हो जायगी। यह भाव अध्यात्म के 'यदि तौ दुष्टहृदौ' इन वचनोंसे प्रमाणित होताहै।—(पं०,वै०,प्र०)‡

---

* यथा—'इङ्गितानां प्रकारैश्चरूपव्याभाषणेन च ॥२४॥ लक्षयस्व तयोर्भावं प्रहृष्ट मनसौ यदि ।...शुद्धात्मानौ यदि त्वे तौ जानीहि त्वं प्लवंगम। व्याभाषितैर्वा रूपैर्वा विज्ञेया दुष्टताऽनयोः ॥२७॥"—(वा० स० २)।

‡ मा० मं०, पां०—'मन मैला' का दूसरा भाव यह है कि यदि बालिके भेजे हों तो 'मन मैले' अर्थात् तुम उदास होजाना तो हम जान लेंगे। २—मा० मं०—अथवा, 'होहिमन मैला' मेरामन मलिन (उदास) हो रहाहै। अतएव मैं समझता हूं कि 'पठये बालि' (इस प्रकार मा० मं० 'मन मैला' का बालि और सुग्रीव दोनोंके साथ सम्बन्ध मानते हैं। यदि बालि, सुग्रीव और श्रीराम लक्ष्मण तीनों के साथ इसे लेलें तो और भी उत्तम अर्थ होजाता है।

☞ मा० भा० में 'होहि' पाठ है। जिससे दोनों भाव निकल सकते हैं। पर 'होहि' पाठ जो मा० द० आर का० में है, उससे ये भाव नहीं निकल सकते।)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

४ मा० त० भा०—"भागौं तुरत०" का भाव कि पास आजाने पर इनसे न बच सकेंगे। यहाँसे भागकर कहाँ जायँगे? इसका उत्तर यह है कि सुग्रीव को भागनेका बल है। वे जानते हैं कि भागनेसे बालि हमको न पायेगा जैसे पहले नहीं पाता रहा। बालि दौड़ने में सुग्रीव को क्यों नहीं पाता था? इसका उत्तर यह है कि यह सूर्य्यके अंशसे है और सूर्य अत्यन्त शीघ्रगामी हैं। यहाँ भयानक रसका तर्क-संचारी भाव है।

नोट—हनुमान्‌जीहीको क्यों यहाँ संबोधन किया और इन्हींको क्यों भेजा? इसका कारण यह है कि जब सुग्रीव अत्यन्त भयभीत हुए और उन्होंने सबसे कहा तो और सबभी बहुत भयभीत होगये थे। केवल हनुमान्‌जी निर्भय रहे और इन्होंने सुग्रीवको समझाया कि डरनेका कारण नहीं, विज्ञान बुद्धिसे राजाको काम लेना चाहिये, इत्यादि। तब सुग्रीवने हनुमान्‌जीके सुन्दर वचन सुनकर इन्हें सबमें परम बुद्धिमान समझकर इन्होंको सम्बोधन करके इन्हीसे ब्राह्मणरूप से जाकर पता लगानेको कहा। ऐसा वाल्मीकीयमें कहाहै। *

बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ।
माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥ §० (६)

अर्थ—ब्राह्मणरूप धारण करके कपि हनुमान्‌जी वहाँ गए और माथा नवाकर इसप्रकार पूछनेलगे।

* "ततस्तु भय संत्रस्तं बालिकिल्विष शंकितम्। उवाच्य हनुमान्‌वाक्यं सुग्रीवं वाक्यकोविदः॥ १३॥ संभ्रमस्त्यज्य तामेष सर्वैर्बालिकृते महान्। मलयोऽयं गिरिवरो भयं नेहास्ति बालिनः॥१४॥ "बुद्धि विज्ञानसंपन्न इङ्गितैः सर्वमाचर। नह्य बुद्धिगतो राजा सर्वभूतानि शास्ति हि॥ १८॥ सुग्रीवस्तु शुभं वाक्यं श्रुत्वा सर्वं हनूमतः। तत शुभतरं वाक्यं हनूमन्तमुवाच ह॥१९॥ (सर्ग २)। अर्थात् बालि के कुचक्रसे शंकित और डरेहुए सुग्रीवसे वाक्यमें पंडित हनुमान्‌जी बोले कि बालिके द्वारा अनिष्टकी शंका आप छोड़दें, इस मलय पर्वतपर वह नहीं आसकता।...बुद्धि और विज्ञानसे युक्त होकर आपको दूसरोंकी चेष्टाओंसे उनका भाव समझकर अपनी रक्षाका उपाय करना चाहिए। जो राजा बुद्धिका त्याग करदेता है वह अपनी प्रजाका शासन नहीं करसकता। हनुमान्‌जीके ये सुंदर वचन सुनकर सुग्रीव हनुमान्‌जी से अधिक सुंदर वचन बोले।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'माथ नाइ' इति

'ब्राह्मण होकर क्षत्रियोंको मस्तक कैसे नवाया यह शङ्का उठाकर उसका समाधान महानुभावोंने यों कियाहै—

१ पां०, प्र०, मा० त० भा०—ईश्वर जानकर प्रणाम किया। हनुमान्‌जीके प्रश्नसे यह बात स्पष्ट प्रकट है, यथा—'की तुम तीन देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ॥०० की तुम अखिल भुवनपति लीन्ह मनुज अवतार'। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, नर नारायण और अखिल भुवनपति ये सब प्रणाम करनेके योग्य हैं। इसीसे प्रणाम किया।

२—श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजीके तेज प्रतापका यह प्रभाव है कि विनाजानेही जनक महाराज और उनके मंत्री भूसुरवृन्द आदि, जो उनके साथ विश्वामित्रजीसे मिलने गएथे, सभीने विना जानेही बरबस उन्हें उत्थापन दियाथा। यथा—'उठे सकल जब रघुपति आये'। और उनके चित्तमें ईश्वरता इनकी झलक पड़ी, यथा—'ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा॥...'—(ब० ◊ २१५)। जब 'भूसुर बट गुरु ज्ञाति' शतानंदजी आदिक ने अभ्युत्थान दिया तब यहाँ आश्चर्य क्या? अपनेसे अधिक तेजस्वी प्रतापशाली महात्माको देखकर स्वतः ही ऐसी बुद्धि उत्पन्न होजाती है कि विना जानेही हमारा मस्तक उसके सामने झुकजाताहै। इसके प्रमाणमें यह श्लोक भी है 'ऊर्ध्वं प्राणाह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति। अभ्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान प्रतिपद्यते' (मनुस्मृति, आचाराध्याय) अर्थात् बूढ़ेके आनेसे जवान के प्राण ऊपर को चढ़ जातेहैं। उठने और अभिवादनसे फिर ज्यों के त्यों हो जाते हैं।

वाल्मीकीय आदिसे भी यही स्पष्ट है कि हनुमान्‌जी इनको देवताही समझे, यथा—'देवलोकादिहागतौ' अर्थात् क्या आप देवलोकसे आये हैं। ऐसा प्रभाव पड़नेपर कैसे प्रणाम न करते? बाबा हरिहरप्रसादकाभी यही मतहै कि जितने विकल्प हनुमान्‌जीके चित्त में हुए वे सब प्रणाम योग्य स्वरूप के हैं अतः प्रणाम किया।

३ मा० म०—(क)—श्रीरामजी वानप्रस्थ हैं और ये ब्रह्मचारी। अपनेसे उनको श्रेष्ठ जानकर प्रणाम किया। पुनः, (ख) वे लख गए कि ये त्रिदेवसे परे हैं। ४—दीनजी—ब्रह्मचारी अवध्य और आवाध्य हैं अतः यह रूप धारण किया। यह हरएकको प्रणामकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सकताहै अतएव यह शंकाही निर्मूलहै। ५ वै०—ये नित्य पार्षद हैं इसीसे देखतेही ऐश्वर्य इनके हृदयमें प्रविष्ट होगया। (नोट—और भी अनेक भाव और अर्थ लोगोंने लगायेहैं जो अधिक संगत नहीं जान पड़ते। उनमेंसे कुछ यहाँ नीचे दिए जातेहैं और कुछ पाद-टिप्पणीमें)।

६ पं०श्रीधरमिश्र—हनुमान्‌जीका भीतर शरीर तो वानरका है और ऊपरसे रूप ब्राह्मणका धारण किए हैं जैसे बहरूपिया करताहै। अतः हनुमान्‌जीने विचारा कि सन्मुख मुँह करके बात करतेही प्रभु हमको पहिचान लेंगे कि यह वानर है इससे भयसे सिर झुकाकर पूछा। [पर जो रूप हनुमान्‌जीने धारण किया वह ऐसा नहीं है कि उसको देखकर कोई यह जान लेता कि ये वानर हैं। हनुमान्‌जीको यह सिद्धि प्राप्त थी कि जो रूप चाहते वे धारण करसकतेथे यह बात स्वयं उन्होंने रामजीसे (वाल्मीकीय स० २।२३ में) कही है—'कामगं कामचारिणम्']

७ करु०—ब्रह्मर्षिके बालक जाना, वा, देखतेही परमेश्वरबुद्धि आगई। अथवा, यों अन्वय करलें कि—'विप्ररूप धरि (सुग्रीव कहँ) माथ नाइ कपि तहँ गयऊ और अस पूछत भएऊ' अर्थात् सुग्रीवको प्रणामकरके कपि वहाँ गए और इस प्रकार पूछने लगे।—[पर इस अर्थका प्रमाण कहीं नहीं मिलता। प्रायः सभी रामायणोंमें हनुमान्‌जी का दोनों भाइयोंको प्रणाम करना पायाजाताहै] नोट—पं० श्रीधरमिश्र कहतेहैं कि ब्रह्मऋषिके बालक जानते तो यह कैसे कहा कि 'छत्री रूप फिरहु बन बीरा'। और परमेश्वरी बुद्धि होनेमें यह शंका होतीहै कि तब यह कैसे पूछा कि 'को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा'। परमेश्वर जानकर तो चरणोंपर गिरना था, यथा—'प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना'। पर हमारे समझमें परमेश्वरी बुद्धि से यह तात्पर्य है कि देवबुद्धि हुई, अर्थात् ये देवताहैं मनुष्य नहीं। पर अभी निर्णय नहीं होता है कि कौन देवता हैं। देवता समझकर प्रणाम किया और आगे अपना प्रभु जानेंगे तब चरणों पर पड़ेंगे।*

* १ स्वामीसे कपट किया, यह समझकर लज्जावश सिर नीचे कर लिया। (पं०, मा० म०)। वा, २ अपनेसे श्रेष्ठसे वार्ताकरनेमें सिर नीचे करके बोलना शिष्टता है—(पं०)। वा, ३—अपने को वानर जानतेहैं कपट वेष ब्रह्मचारीका बनायाहै और ये मनुष्यहैं और क्षत्रिय; अतःप्रणाम किया—(पां०)। वा, ४—शास्त्रमर्यादा है कि कोई वनान्तर वा तीर्थादिमें अपूर्व रूप देखपड़े तो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा।
छत्री रूप फिरहु बन बीरा ॥§० (७)
कठिन भूमि कोमल पद गामी।
कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी ॥ ,, (८)
मृदुल मनोहर सुंदर गाता।
सहत दुसह बन आतप बाता ॥ ,, (९)

अर्थ—साँवले और गोरे शरीरके आप कौन हैं? जो वीर हैं और क्षत्रियरूप धारण किए हुए वनमें फिररहेहैं। हे स्वामी! यह कठिन भूमि है और आप कोमलपदगामी हैं, आप किस कारणसे वनमें विचर रहेहैं? आपके कोमल, मनहरण करनेवाले सुन्दर शरीर हैं और आप वनमें कठिन घाम और हवा सहरहेहैं—यह किस कारणसे?

नोट—१ (क) हनुमान्‌जी जान गए कि रामचन्द्रजी बड़े हैं और लक्ष्मणजी छोटे। क्योंकि रामचन्द्रजी आगे २ चलरहेहैं और लक्ष्मणजी पीछे पीछे। पुनः इससे कि रामजीमें अधिक तेज झलकरहाहै, यथा—'चारिउ रूप सील गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा'। अतएव क्रमसे पूछरहेहैं--पहले श्याम शरीर रामजीको पूछा तब गौरवर्ण लक्ष्मणजीको। (ख)—धनुषबाण, तरकश और खड्ग धारण किएहैं अतः क्षत्रियरूप कहा और यह वीरका बानाभी है, यथा—'देखि कुठार बान धनुधारी। भइ लरिकहि रिस बीरु बिचारी'—(ब० §२८१)। ये रूपसे भी वीर जानपड़तेहैं और घोर वनमें दोनों निःशंक अकेले फिर रहेहैं अतः 'वीर' कहा। वा० स० ३ में हनुमान्‌जीका दोनों भाइयोंके बाणों, धनुषों और तलवार आदिकी प्रशंसा करना और दोनोंको संसारभरकी रक्षा करनेयोग्य कहना लिखाहै जिससे जानपड़ता है कि अस्त्रशस्त्रसे भी वे जानगए कि ऐसे अस्त्रशस्त्र धारणकरनेवाला वैसा वीर हो सकताहै † (ग) छत्रीरूपका भाव कि वस्तुतः आप क्षत्रिय नहीं हैं,

उसमें देवबुद्धि करके उसको प्रणाम करले।—(पां०)। ५ उनके तेजसे इनका सिर नीचा होगया—(पं०)।

† १ "उभौ योग्यवहं मन्ये रक्षितुं पृथिवीमिमाम् ॥ १५ ॥ ससागरवनां कृत्स्नां विन्ध्यमेरु विभूषितम्।"—(वा० ३)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वरन कोई देवता हैं जैसा आगे स्वयं कहेंगे। अध्यात्ममेंभी ऐसाही कहा है—'भूभारहरणार्थाय भक्तानां पालनायच ॥ १४ ॥ अवतीर्णाविहपरौ चरंतौ क्षत्रियाकृती ।००'—(स० १)। अर्थात् भूभार उतारने और भक्तोंकी रक्षा करनेकेलिए आपने यहाँ अवतार लिया और क्षत्रिय-रूपसे पृथ्वीपर विचररहेहैं।—(मा० त० भा०)।

टिप्पणी—१ (क) 'कठिन भूमि'का भाव कि आप कठोर पृथ्वीपर चलनेयोग्य नहीं हैं, यथा—'जौ जगदीस इन्हहिं बन दीन्हा। कस न सुमनमय मारग कीन्हा'। (ख)—'कोमलपदगामी' का भाव कि आप कोमल पदसे पैदल चलनेके योग्य नहीं हैं, सवारीपर चलनेके योग्य हैं, यथा—'ये बिचरहिं मग बिनु पद त्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना'। (ग)—'बिचरहु बन' का भाव कि आप दिव्य स्थानमें रहनेके योग्य हैं, यथा—'तरुतर बास इन्हहिं बिधि दीन्हा। धवल धाम रचि रचि श्रम कीन्हा'। (घ) 'स्वामी' का भाव कि आप कोई चक्रवर्ती राजा हैं ‡, यथा—'राज लषन सब अंग तुम्हारे'।

२—यहाँ बारंबार 'बन' शब्द आया है, यथा—'छत्री रूप फिरहु बन बीरा', 'कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी' और 'सहत दुसह बन आतप बाता'। प्रत्येक अरधालीमें एक एक बार आयाहै। इससे जनाया कि इनको वनमें विचरते देखकर हनुमान्‌जीको बड़ा दुःख हुआ इसीसे आगे दोनोंको उन्होंने पीठपर चढ़ालिया, यथा—'लिये दुऔ जन पीठि चढ़ाई'।—(प्र०)। इसी प्रकार भरतजी दुःखी हुए थे, यथा—'राम लषन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं॥ एहि दुष दाह दहइ नित छाती। भूख न बासर नीद न राती॥'

‡ १—'कठिन भूमि कोमलपदगामी' और 'मृदुल मनोहर...बाता' में विषमालंकार है।

२—'स्वामी' संबोधन कैसे किया, इसका समाधान 'माथ नाइ' के समाधानमेंही होगया। पंजाबीजीने दूसरी प्रकार भी अर्थ कियाहै—'हे वनस्वामी! अर्थात् ऐसे कठिन वनमें फिरनेसे संदेह होताहै कि आप कोई वनदेवता तो नहीं हैं।' पुनः, वे और भाव ये लिखतेहैं—(क) सेवककी योग्यता दिखानेके लिए सरस्वतीने 'स्वामी' पदभी मुखसे कहलादिया। वा, (ख)—ये भक्त-शिरोमणि हैं, भक्तोंकी वाणी जो प्रभुके विषयमें होतीहै वह अन्यथा नहीं होती। इसीसे संदिग्ध होनेपरभी रघुबीरजीको स्वामीही कहा। इत्यादि।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्र०—यहाँ वनका 'दुःसह आतपबात' सहना कहा और पूर्व अ० §६१ में जानकीजीको समझानेके समय रघुनाथजीने कहाहै कि 'कानन कठिन भयंकर भारी। घोरघाम-हिम-बारि-बयारी' और श्रीभरतजीनेभी ऐसाही कहाहै, यथा—'बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात'—(अ० §२११)। दोनों स्थलोंपर घाम, वर्षा, हिम और पवन चारोंको कहा और यहाँ केवल 'आतप और वात' दोही कहे। कारण कि यह ग्रीष्मका समय है जब हनुमान्‌जी उनसे मिले। इस समय घोर घाम और लू दोही हैं। वर्षा आगे होगी, यथा—'गत ग्रीषम बरषा रितु आई'। और वे अभी जानते नहीं कि ये १३ वर्षसे वनमें विचरण कररहेहैं, अतः वर्षा और हिम कैसे कहते ?

मा० म०—१ 'कठिन भूमि कोमल पद गामी।०' में यह ध्वनि है कि काँटे कंकर पत्थरसे आच्छादित मार्गके चलनेयोग्य आपके चरण नहीं हैं;फिरभी ऐसी कठिन भूमिपर चलनेपरभी आपके चरण कोमलही बनेहैं और आपके चरण जहाँपड़तेहैं वहाँकी भूमिभी कोमल होजातीहै। इस बातसे आपका ऐश्वर्य्य झलक रहाहै। अतएव बताइए कि वास्तवमें आप कौन हैं ? २—'मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह००' का भी भाव इसी प्रकार यह है कि दुःसह 'आतप बात' को सहनेपरभी ये गात 'मृदुल मनोहर सुंदर' बनेहैं, इनकी कान्ति बढ़तीही जाती-है, जिससेभी ऐश्वर्य्य झलकताहै कि आपके तनमें आतप वात प्रवेश नहीं करते जैसे कवचमें शस्त्रघात नहीं लगता। अतः ज्ञात होताहै कि आप मनुष्य नहीं हैं।

मा० त० प्र०—'मृदुल मनोहर सुन्दर गाता...'। - मृदुलका भाव कि यह गात रसिकोंके अङ्कमें विनोद करने एवं कुंकुम कस्तूरी आदिके लेपने योग्य है। मनोहर और सुन्दरका भाव कि यह इस योग्य है कि रसिकोंके मनको हरण करे और वे इसके सौंदर्य्यका दर्शन करतेही रहें।—यह भाव 'लिए दुऔ जन पीठ चढ़ाई' से पुष्ट होताहै।

की तुम्ह तीनि † देव महँ कोऊ।
नर नारायन की तुम्ह दोऊ॥§० (१०)

† तीनि—(भ० द०), तीन—(का०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जगकारन तारन भव भंजन धरनीभार।
की तुम्ह अखिल भुवनपति लीन्ह मनुज अवतार॥§१

अर्थ—क्या आप तीन देवताओं अर्थात् ब्रह्मा विष्णु महेश त्रिदेव-मेंसे कोई हैं या कि आप दोनों नर नारायण हैं? या कि आप जगत्के कारण (उत्पन्न करनेवाले), भवसागर (आवागमन) से पारकर-देनेवाले, समस्त लोकों (१४ भुवनों) के स्वामीहैं (और) पृथ्वीका भार भंजन (तोड़ने, नाश) करनेके लिए मनुष्य अवतार लिया है।

टिप्पणी १—(क) दोनोंको विशेष तेजस्वी देखकर पहले संदेह हुआ कि कोई विशेष देवता न हों अतः तीन जो विशेष देवताहैं उन्हींमें से पूछतेहैं कि आप कोई हैं। (ख)—'कोऊ' का भाव कि ये दो हैं, दोमें तीनका पूछना अयोग्य है अतः पूछा कि आप इन तीन देवताओंमेंसे कौन दो हैं—ब्रह्मा विष्णु हो, या हरि हर हो। विष्णु भगवान् श्याम वर्ण हैं और ब्रह्मा पीत और महेश गौरवर्ण हैं। अतएव पूछतेहैं कि इन दो जोड़ियोंमेंसे आप कोई हैं। ऐसा पूछनेसे श्यामगौरवर्णकीभी जोड़ी बनीरही, ब्रह्मा और महेश दोनों पीत तथा गौर वर्ण हैं इससे इनकी जोड़ीसे तात्पर्य नहीं है। (ग)-[ये दो हैं और त्रिदेव तीन। अतः फिर सोचा कि नर नारायण दो हैं और उनकीभी गौर-श्याम जोड़ी है एवं वे दोनों सदा साथही रहतेहैं, अलग नहीं होते। ऐसी परस्पर उनमें प्रीतिहै, यथा—'नरनारायन सरिस सुभ्राता'। और वेभी अवतार लिया करतेहैं तो ये कहीं वेही न हों। अतएव 'त्रिदेवमेंसे पूछकर तब पूछा कि नर नारायण तो नहीं हो? जब इतनेपरभी उत्तर न मिला तब सोचे कि अखिल-ब्रह्माण्ड-नायकही न हों; अतः तीसरा प्रश्न इसका किया। यहाँ हनुमान्जी ठीक किसीमें निश्चय न कर सके, यह संदेहा-लंकार है।] (घ)—'अखिल भुवन पति' कहनेका भाव कि सभी भुवन रावण द्वारा पीड़ित हैं। 'मनुज-अवतार' लेनेका भाव कि रावणकी मृत्यु मनुष्यके हाथ है।

२—(क)—हनुमान्जीने प्रथम दो दो मूर्तिमें प्रश्न किया—आप ब्रह्माविष्णुहैं, या शिवविष्णुहैं, या कि नरनारायण हैं—अब यहाँ एक ही मूर्तिमेंदो मूर्तियोंका प्रश्न करतेहैं कि आप अखिल भुवनोंके पति तो नहीं हैं जो दो स्वरूप धारण किए हैं। ऐसाही प्रश्न जनक महाराज-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जीका है, † यथा—'ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा'। (ख)—प्रथम तीन देव में प्रश्न किया, तब नर नारायण दो में और अन्त में अखिलभुवनपति एकमें प्रश्न किया; इसका तात्पर्य यह है कि प्रथम स्थूल अनुमान करके पीछे सूक्ष्म अनुमान किया। भगवान्‌के रूपके समझने और अनुमान करनेकी यही रीति है। प्रमाणं यथा भागवते पंचमस्कन्धे—

"श्रुत्वा स्थूलं तथा सूक्ष्मं रूपे भगवतो यतिः।
स्थूले निर्जितमात्मानं शनैः सूक्ष्मं धियानयेत्॥"

अर्थात् यती (भगवान्‌की प्राप्तिकेलिए यत्न करनेवाला) भगवान्‌के स्थूल और सूक्ष्म रूपको सुनकर स्थूल स्वरूपमें चित्तको स्थापन करके धीरे धीरे सूक्ष्मरूपमें बुद्धिके द्वारा चित्तको लेजाय। श्रीहनुमान्‌जीकी यहाँ तक यथार्थ पहुँच कि 'की तुम अखिल भुवन पति०' उनके भक्तशिरोमणि और जनक समान योगीश्वर होनेका परिचय दे रहाहै। योगियोंके हृदयमें सत्यकाही अनुभव हुआकरताहै, यह बालकाण्डमें लिखाजाचुकाहै और उत्तम भक्तोंकेभी अनुमान और अनुभव ऐसेही होतेहैं, यथा—'की तुम्ह हरिदासन्ह महुँ कोई। मोरेहृदय प्रीति अति होई'—(सु०§५ विभीषण-वाक्य)

प्र०—'जगकारण' और 'तारन भव' दो विशेषण देकर जनाया कि जगत्‌में जन्म होना और जगत्‌से छूटना (मुक्त होना) दोनों आपके ही अधीन हैं, यथा—'नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरै तुम्हारेहि छोहा'। 'भंजन धरनीभार' और 'लीन्ह मनुज अवतार' में यह भाव है कि हम सब जिसकी (ब्रह्माद्वारा) आज्ञासे आकर वानर भालु बने, यथा—'अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेइहउँ दिनकर बंस उदारा॥' 'हरिहउँ सकल भूमि गरुआई' और 'बानर तनु धरि धरनि महँ हरिपद सेवहु जाइ'—(ब०§ १८७), आप वही तो नहीं है?

☞ यहाँ हनुमान्‌जीका मन स्वाभाविक स्वामीकी सूचना देरहाहै।

मयूख—हनुमान्‌जीने चार प्रश्न इन पदोंमें किए *। वे एकही

† गौड़जी—जनकजी भी तीनों प्रश्न करतेहैं, (१) मुनिकुल तिलक=नरनारायण, (२) नृपकुल पालक=विष्णु, जो नृपकुलमें हुए हैं, यह गूढ़ोक्ति है। (३) ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा, इत्यादि=अखिल भुवनपति।

* पं० शिवलाल पाठकजी दोहेमें दो प्रश्न मानतेहैं। १—जगकारण भव:

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रश्न करके चुप होजाते परन्तु ऐसा न करके वे क्रमशः एकसे परे दूसरा प्रश्न करतेहीगए। इसका कारण यह है कि ज्यों ज्यों श्रीरामचन्द्रजीकी मधुरताको, जो उनके शरीरसे स्रवरहीथी, पान करतेगए त्यों त्यों कुछ और दर्शित होतागया—अर्थात् ईश्वरता झलकतीगई और तर्क होतागया। दूसरे, हनुमान्‌जीके प्रश्नका उत्तर प्रभु नहीं देते इससे वे पूछते पूछते अन्तिम प्रश्नतक पहुँचगए। जबतक इन्होंने अन्तिम प्रश्न न करलिया इनको संतोष न हुआ। प्रथम तीन प्रश्नोंका उत्तर रामजीने इससे न दिया कि उनसे श्रेष्ठ हैं और परतम अवतारको गोपनीय समझकर उसका स्पष्ट उत्तर न देकर नररूपकाही परिचय दिया।

नोट—यहाँ 'अखिलभुवनपति' और 'मनुज अवतार' भी बड़े गूढ़ पद हैं। शिवजीने विष्णुरामावतार और नारायणरामावतार कह कर तब कहा था कि अब "कहउँ बिचित्र कथा बिसतारी॥ जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुरभूपा॥"; यहाँ हनुमान्‌जीके शब्दोंमें वही अवतार अभिप्रेत है। उस अवतारमें मनुजीको द्विभुज परात्पर परब्रह्म साकेतविहारीका दर्शन हुआ था, वेही मनुजीके पुत्र हुए। 'मनुज' शब्दका साधारण अर्थ तो मनुष्य ही है पर यहाँ संकेतसे 'मनुसे जायमान' मनुके पुत्र वा मनुजीके वरदानवाले रामावतारको भी जना दियाहै जिनके विषयमें मनुजीने कहा था कि 'बिधि हरि हर बन्दित पद रेनू', 'सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा' इत्यादि।

कौसलेस दसरथ के जाए
हम पितुबचन मानि बन आए॥ § १ (१)
नाम राम लछिमन दोउ भाई।
संग नारि सुकुमारि सुहाई॥ ,, (२)
इहाँ हरी निसिचर बैदेही।
बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥ ,, (३)

तारण और पृथ्वीका भार हरनेवाले हो? २—अखिलभुवनपति हो और मनुष्यअवतार लियाहै।

मा० त० प्र०—१ 'जग कारन' से त्रिपाद-विभूति वैकुण्ठवासी वासुदेवसे तात्पर्य्य है। और 'अखिल भुवनपति' से त्रिपादविभूतिसे परे साकेतपति जनाया। 'तारन भव भंजन धरनीभार' देहलीदीपक है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आपन चरित कहा हम गाई।
कहहु बिप्र निज कथा बुझाई ॥ § १ (४)

अर्थ—हम कोसलके राजा दशरथ महाराजके पुत्र हैं, पिताका वचन मानकर बनमें आये हैं। हमारा राम लक्ष्मण नाम है, दोनों भाई हैं; साथ में सुन्दर सुकुमारी स्त्री थी। यहाँ (वनमें) निश्चरने वैदेहीको हर लिया, हे विप्र! हम उसे ढूँढते फिरते हैं। हमने अपना चरित विस्तारसे कह सुनाया। हे विप्र! अब अपनी कथा समझाकर कहो।

मा० त० भा०, पां०-१ 'कौसलेससे' धाम वा नगर और क्षत्रिय जाति, 'दशरथ के जाये' से पिताका नाम एवं जाति और ऐश्वर्य, 'पितु बचन मानि बन आये' से बनमें आनेका हेतु, 'नाम राम लछिमन' से नाम, 'दोउ भाई' से अपने दोनोंका सम्बन्ध और 'संग नारि... खोजत तेही' से यहाँ पंपासर आदिमें विचरणका कारण कहा।

श्रीहनुमान्‌जी के प्रश्न	श्रीरामजीका उत्तर
को तुम स्यामल गौर सरीरा	'कौसलेस दसरथ के जाये',
	'नाम रामलछिमन दोउ भाई।'
छत्रीरूप फिरहु बन बीरा	'हम पितुबचन मानि बन आए'।
'कठिन भूमि कोमलपद गामी।	'संग नारि सुकुमारि सुहाई ॥
कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी ॥...	इहाँ हरी निसिचर बैदेही।
सहत दुसह बन आतपबाता'	बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही।'

प्रथम तीन प्रश्नोंके उत्तर दिए पर शेष तीनका उत्तर न दिया। 'की तुम्ह तीन देव महँ कोऊ' 'नरनारायन की तुम्ह दोऊ' और 'की तुम्ह अखिल भुवनपति०', इन तीनके उत्तर न देनेका कारण यह है कि नर-तनमें अपनेको छिपायेहुएहैं, यथा—'गुप्तरूप अवतरेउ प्रभु गये जान सब कोइ' इत्यादि (भगवान् शंकरके विचार)।—(पां०)। पं० राम कुमारजी 'कठिन भूमिकोमल पद गामी। कवन००'का उत्तर 'हम पितु बचन मानि बन आए' और 'मृदुल मनोहर सुन्दरगाता। सहत०' का उत्तर 'संग नारि०' इत्यादि लिखतेहैं।

टिप्पणी ३—'सुकुमारि सुहाई' का भावकि वह वनमें आनेके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

योग्य न थी, अत्यन्त सुकुमारी थी † पर हमारे प्रेमसे वनमें साथ आई ४-नाम, रूप, लीला और धाम ये चारों भक्तोंके इष्ट हैं क्योंकि ये चारों सच्चिदानंदके स्वरूप हैं। ‡ अतः इतनेमें चारों कहे। 'कोसलसे' धाम, 'दशरथके जाये' से रूप, 'नाम राम लछिमन' से नाम और 'इहाँ हरी निसिचर बैदेही।०' से लीला सूचित की।—(प्र०)।

'इहाँ हरी निसिचर बैदेही।०'

यहाँ लोग शंका करतेहैं कि सीताहरण तो पंचवटीमें हुआ तब 'इहाँ हरी' कैसे कहा? रामजीने प्रथम कहा कि हम पिताकी आज्ञासे वनमें आए, हमारे साथ यह भाई और हमारी स्त्री भी आए। उसीके सिलसिलेमें कहते हैं कि 'इहाँ' अर्थात् वनमेंही हरी। वस्तुतः यह कोई शंकाकी बात नहीं है। मा० म०कार और पं० रामकुमारजी इसका समाधान यों करतेहैं कि जहाँ सीताहरण हुआ वहाँ से यहाँ तक वन सब एकही है अर्थात् मिला हुआ है अतः 'इहाँ' कहा। बाबा हरिहरप्रसादजी शंकाके निवारणार्थ दूसरा अर्थ यह करतेहैं कि 'वैदेही को निश्चरने हरलिया, हम उसे यहाँ ढूँढ़ते फिरतेहैं'।

कोई महानुभाव ऐसा कहतेहैं कि—यहाँ हरी (वानर सुग्रीव) को, निश्चर रावणको और वैदेहीको खोजतेहैं। तीनोंके खोजनेका कारणहै—सबरीजीने कहाहै कि 'पंपासरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीवमिताई', अतः सुग्रीवको ढूँढ़तेहैं। 'यह गति मोर दसानन कीन्ही। तेहि खल जनकसुता हरि लीन्ही', अतएव रावणको ढूँढ़तेहैं और 'लेइ दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं' अतः यहाँ वैदेहीकोभी खोजतेहैं। भाव अच्छा है पर इसमें सीताहरणकी बात ऊपरसे लगाना पड़ेगी; अथवा, 'हरी निसिचर बैदेही' का दो बार दो प्रकारसे अर्थ करना होगा। एक

† १मा०म०—'सोहाई' का भाव कि उनपर मेरा इतना ममत्व है कि विना उनके कहीं सुख नहीं देखपड़ता। २—यथा—'पुरते निकसी रघुबीरबधू धरि धीर दये मगमें डग द्वै। झलकीं भरि भाल कनी जलकी पट सूखगये मधुराधरवै। फिरि बूझति है चलनोब कितो पिय पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै। तिय की लखि आतुरता पियकी अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥ (क०३३)।—(मा०म०)।

‡ यथा—'रामस्य नाम रूपंच लीला धाम परात्परम्। एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्द विग्रहम्॥'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अड़चन और यह पड़ेगी कि 'तेहि' एकवचन है और 'हरी' 'निश्चर' और वैदेही' तीन मिलकर बहुबचन होजातेहैं।

नोट--'वैदेही' पद 'हरी निसिचर' के साथ देनेका भाव यह है कि निश्चरके डरसे एवं हमारे वियोगमें देहरहित होजानेवालीहै। पंजाबीजी लिखतेहैं कि 'वैदेही' विशेषण और विप्र' संबोधनका भाव यह है कि विदेह राजाका ऋषियोंसे अत्यन्त स्नेह है इस संबंधसे उनकी कन्याके खोजनेमें ये भी हमारी सहायता करेंगे।

गौड़जी—माया देहरहित है। उसीकी बनी हुई 'वैदेही' अर्थात् मायाकी सीताका निश्चरने हरण किया, उसी निश्चरको हम खोजते फिरतेहैं। गूढ़ोक्ति है।

❀ आपन चरित कहा हम गाई। बिप्र कहहु निज कथा०'❀

१ मा० त० भा०—(क) 'आपन चरित' अर्थात् जो हमने कहा-है वह हमारा चरित है अर्थात् रामायण है, यथा—'कौसलेस दसरथ के जाए' यह बालकाण्ड है, 'हम पितु बचन मानि बन आये' यह अयोध्याकाण्ड है, 'इहाँ हरी निसिचर वैदेही' यह अरण्य है और 'बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही' यह किष्किंधा है। वर्तमान तककी कथा कही। (ख)—नरलीलाकी मर्यादा रखनेकेलिए हनुमान्‌जीको विप्र कहा और कथा पूछी, नहीं तो प्रभु तो सब जानतेही हैं।

२ शिला—'कहहु बिप्र निज कथा बुझाई' ये वचनभी गूढ़ हैं। भाव यह है कि जैसे तुमने हमसे कहा कि तुम क्षत्रियरूप हो, नर नहीं हो, इत्यादि, वैसेही हम तुमसे पूछतेहैं कि तुम कौन हो, क्योंकि तुम्हारे वचन सर्व शास्त्रवेदादिके पूर्ण ज्ञाताकेसे हैं, संस्कार और उच्चारणकी शास्त्रीयपद्धतिके अनुसार हैं। ऐसे वचन तुम्हारेऐसे ब्रह्मचारी मनुष्य नहीं कहसकते। अतः तुम बताओ कि तुम कौन हो?*

३—मा० म०, पां०—'निज कथा' अर्थात् पिताका नाम, कुल, अपना नाम, गुरुका नाम, विद्याध्ययन और गुरुसेवा छोड़ वनमें फिरने

* यथा—'नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः। नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥ २८॥ नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।...' अर्थात् जिसने ऋग्वेदकी शिक्षा नहीं पाई, जो यजुर्वेदका ज्ञाता एवं सामवेदका विद्वान नहीं वह ऐसी बातें नहीं करसकता, इन्होंने बारंबार व्याकरण पढ़ाहै...। —(वा० स० ३)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का कारण और किसके भेजनेसे यहाँ आए इत्यादि। (नोट—अपनेलिए 'चरित' और हनुमान्‌जीके लिए 'कथा' पदका प्रयोग किया। इस भेद-पर पाठक विचार करें)। गूढ़भाव यहाँ यह है कि हम तो, विपत्ति पड़ी इससे, वनमें फिरतेहैं और तुमपर क्या विपत्ति आ पड़ी जो तुम ऐसे भीषण वनमें आएहो।

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना।
सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥ § १ (५)

अर्थ—प्रभुको पहचानकर हनुमान्‌जी चरण पकड़कर (पृथ्वीपर) पड़गए अर्थात् साष्टाङ्ग दण्डवत् की। (शिवजी पार्वतीजीसे कहतेहैं कि) हे उमा! वह सुख वर्णन नहीं किया जासकता।

"प्रभु पहिचानि'—कैसे पहिचाना?

मा० त० भा०—१ आकाशवाणी और प्रभुकी वाणीका मिलान करके एक समझकर पहिचान लिया। आकाशवाणी है कि 'कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहँ मैं पूरब बर दीन्हा॥ ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रगट नर भूपा॥ तिन्ह के गृह अवतरिहउँ जाई।' अर्थात् कोसलपुरीमें राजादशरथके यहाँ अवतार लेंगे। वही यहाँ कहतेहैं कि 'कौसलेस दसरथ के जाए'। २—'नारद बचन सत्य सब करिहउँ', यह आकाशवाणी है। और, नारदवचन ये हैं—'बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तन धरहु साप मम एहा॥ मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरह तुम्ह होब दुखारी॥ कपि आकृति तुम्ह कीन्ह हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥'। यह सब बातें राम-जीमें देखीं—नृपतन धारणकिएहैं, नारि-विरहसे दुःखी हैं और सुग्रीवके यहाँ आयेहैं; अब वानर सहायता करेंगे। हनुमान्‌जी शिव-रूपसे वहाँ थे जहाँ आकाशवाणी हुईथी। पुनः, ३—भगवान्‌ने अपने मुखसे कहकर अपने चरित जनाएहैं—'आपन चरित कहा हम गाई', इसीसे उन्होंने प्रभुको पहिचान लिया। पुनः, ४—प्रभुके पहिचाननेका तीसरा प्रकार यह है कि मायाके बस भूले रहे इससे नहीं पहिचाना, यथा—'तव माया बस फिरौं भुलाना। तातें मैं नहिं प्रभु पहिचाना'। पर जब प्रभुकी वाणी सुननेसे माया निवृत्त हुई तब पहिचाना। जब प्रभुको नहीं पहिचानाथा तब माथा नवाकर प्रश्न कियाथा और जब पहिचान लिया तब चरणोंपर पड़े।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पां०, प्र०—ब्रह्मासे सुनाथा कि शक्तिसमेत वनमें आवेंगे—'नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ-(ब० § १८६) यहाँ शक्तिसमेत न देखा इससे न पहिचाना। जब जानकीहरण-वृत्तान्त सुना तब पहिचाना।

वै०—'पहिचान' से पूर्व परिचय पायाजाताहै। पद्मरामायणमें बालपनेके समयकी पहिचान पाईजातीहै।—बालपनमें रामजीने बन्दर माँगा। बहुतसे बंदर मँगाएगए पर प्रभुका माँगना बंद न हुआ, वे किसीसे संतुष्ट न हुए, तब वसिष्ठजी बुलाएगए। उन्होंने कहा कि ये अंजनीनंदनको पाकर संतुष्ट होंगे। सुमंत्रजी जाकर अंजनासे हनुमान्-जीको माँगलाए। इनको देखकर प्रभु बहुत प्रसन्न होतेथे। जब प्रभु पाँच वर्षके हुए और विद्या पढ़नेलगे तब (और कोई कहतेहैं कि जब दोनोंभाई विश्वामित्रजीके साथ गए तब) हनुमान्जीको लौटादिया (और तबउनसे प्रभुने यह कहदियाथा कि तुम चलो, हम किष्किंधामें आवेंगे वहाँ फिर मिलेंगे)। अतएव प्रभुके वचनोंसे पहिचानगए।—[भाव अच्छा है; पर इतनी दूरसे खींचने और क्लिष्ट कल्पना करनेकी आवश्यकता नहीं है। दूसरे, इसमें यह शंका होतीहै कि हनुमान्जीको तो इस पूर्व परिचयसे केवल 'कौसलेस दसरथके जाये' से ही तुरत पहिचानकर चरणोंपर गिरपड़नाथा।]

पं०रा०व० श०—हनुमान्जी समस्त वेद, शास्त्र आदि सूर्य्यभगवान्से पढ़े हुएथे, उसीके ज्ञानसे जानगए। अथवा, सूर्य्यने गुरुदीक्षामें इनसे यह कहाथा कि हमारे अंशसे सुग्रीव वानर है उसपर विपत्ति पड़ेगी तुम उसकी सहायता करना। वहाँ तुम्हें लाभ होगा। परात्पर-परब्रह्म अवतार लेंगे और उनकी स्त्रीका हरण होगा, वे खोजतेहुए वहाँ जायँगे। अतएव जानलिया। ☞ इनके अतिरिक्त और भी अनेक कारण लोगोंने कहेहैं पर वे बहुत क्लिष्ट कल्पनाएँ हैं। *

* १ श० सु० द०—हनुमान्जीने 'कोसलेस दसरथके जाए। हम पितु०' का यह अर्थ समझा कि 'कुशलानां समूहः कौशलं तस्य ईशः कौसलेशः स चासौ दशरथश्च' अर्थात् जो समस्त कल्याणभाजन गरुड़वाहन विष्णुके अवतार और सकल जगत्के पिता हैं वे हम वनको आएहैं। वचन मानि अर्थात् यह वचन मानलो। २—विनायकीटीकाकार कहतेहैं—कि 'कुशलानां समूहः...' अर्थात् संपूर्ण कुशल प्राणियोंमें श्रेष्ठ दश (=पक्षी विशेष) है रथ (वाहन)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नोट—'सो सुख उमा जाइ नहिं बरना' से ज्ञात होताहै कि शिवजीने उसका अनुभव किया पर वह अकथनीय है इससे कह न सके।

श्रीहनुमान्‌जी

हनुमान्‌जी के जन्मकी कथा जाम्बवान्‌ने उनसे बा० स० ६६ में यों कहीहै—पुन्जिकस्थलनामकी अप्सरा जो परम सुन्दरी थी, वह शापवस कुन्जरवानरकी कन्या अंजना वानरी हुई, जो केशरीकी स्त्री हुई। एकबार वह मनुष्यरूप धारणकर माला, आभरण, आदिसे विभूषित पर्वत के शिखरपर बैठीथी। पवनदेवने उसपर मोहित हो मनसे उसका आलिंगन किया जिसके प्रभावसे महाबली, महापराक्रमी, महातेजस्वी, सब प्रकार पवनके समान हनुमान्‌जी पवनके औरस और केसरीके क्षेत्रजपुत्र उत्पन्न हुए। महावनमें सूर्यका उदय

जिसका ऐसे विष्णुके जाये (अवतार), पितु (=जो सबके आदिकारण हैं)। बन आए (= कपटसे बटुवेषधारी हनुमान् तुम) बचन मानि (हमारे वचन का विश्वास करो)। इस तरह गुप्तरूपसे अंतिम तीन प्रश्नोंका उत्तर होजाताहै। इत्यादि।

नोट—ये दोनों भाव पंजाबीजी की टीकाके हैं। वे लिखतेहैं कि "प्रभुने तो यही कहा कि हम दाशरथी राम हैं। इतनेसे ही हनुमान्‌जीने कैसे जान लिया कि ये प्रभु हैं? इतनेसेही जानलिया होता तो पहिले ही क्यों न जाकर अयोध्यामें ही मिलते? दशरथ नामसे संदेह होसकताथा कि न जाने दशरथ नामके औरभी कोई राजा हों। इससे पूर्व न मिले। यहाँ हनुमान्‌जीने विचार किया कि यदि ये वही प्रभु हैं तो यह वाणी ईश्वरी वाणी है, इसमें अपने स्वरूपका द्योतक गूढ़ अर्थ अवश्य होगा; तब इन्होंने उन वचनोंकी ओर चित्तकी वृत्ति लगाई। जो प्रभु ने कहा कि 'आपन चरित कहा हम गाई', इसमें 'गाई' (अर्थात् गाकर कहा है) यह शब्द हर्षका सूचक है और इनके वाक्योंका स्पष्ट अर्थ तो शोकमय भासित होता है। इससे गूढ़ अर्थ इन शब्दोंमें अवश्यहै। वह सुनो"—(नोट—इसके बाद ऊपर दिए हुए दोनों अर्थ और भाव लिखेहैं। और फिर और भी विस्तृत लेख है। पर ये सब बहुत क्लिष्ट कल्पनाएँ हैं)।

२—बाबा हरिदासजी कहतेहैं कि 'बिधि कर लिखा को मेटनहारा' में गूढ़ भाव यह है कि ब्रह्माने रावणकी मृत्यु नरसे लिखीहै, यथा—'जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला। बिधिके लिखे अंक निज माला॥ नरके कर आपन बध बाची'—(लं० ७ २९) और नर ऐसा कौन है जो उसे मार सके। अतः हमें नरदेह धारण करनाही पड़ा। सो हम 'कौसलेस दसरथके जाए'।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देखकर उसे फल समझकर लेनेकेलिए उछले। उस दिन सूर्य्यग्रहणका दिन था। राहुने इन्द्रको खबर दी, उन्होंने देखकर वज्र चलाया जिससे बायीं ठोढ़ी (हनु) टेढ़ी होगई इसीसे हनुमान् नाम हुआ। तभीसे कीर्तियुक्त हनुमान् नाम पड़ा। यह सुनकर कि उनका पुत्र मारागया, पवनने कोपकरके अपना बहना रोकदिया जिससे समस्त देवता घबड़ाकर पवनदेवको मनाने लगे। वायुके प्रसन्न होनेपर समग्र देवताओंने अपने अपने अस्त्रशस्त्रसे इन्हें अभय करदिया और सबने वर दिया। ब्रह्मपुराणमें इनकी विस्तृत कथा है। इनका आविर्भाव कोई कार्तिक कृ० १४, कोई मार्गशीर्ष और कोई चैत्र पूर्णिमाको मानतेहैं। कथाएँ इनकी सब जानतेहैं इसीसे अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

पं० रामचन्द्रशुक्ल—इनके संबंधमें इतना समझ रखना आवश्यक है कि ये सेवकके आदर्श हैं। सेव्य-सेवकभावका पूर्ण स्फुरण इनमें दिखाई पड़ताहै। विना किसी प्रकारके पूर्व परिचयके रामजीको देखते ही उनके शील, सौन्दर्य्य और शक्तिके साक्षात्कारमात्रपर मुग्ध होकर पहले-पहल आत्मसमर्पण करनेवाला भक्तिराशि हनुमान्ही हैं। उनके मिलतेही मानों भक्तिके आश्रय और आलंबन दोनों पक्ष पूरे होगए और भक्तिकी पूर्ण स्थापना लोकमें होगई। इसी रामभक्तिके प्रभावसे हनुमान् सब रामभक्तोंकी भक्तिके अधिकारी हुए।

सेवकमें जो जो गुण चाहिएँ सब हनुमान्में लाकर इकट्ठे कर दिएगएहैं। सबसे आवश्यक बात तो यह है कि निरालसता और तत्परता स्वामीके कार्य्योंके लिए, सब कुछ करनेके लिए, उनमें हम हर समय पातेहैं। समुद्रके किनारे सब बंदर बैठे समुद्र पार करनेकी चिंता करही रहेथे, अंगद फिरनेका संशय करके आगा-पीछा करही रहेथे कि वे चट समुद्र लाँघगए। लक्ष्मणजीको, जब शक्ति लगी तब वैद्यकोभी चट हनुमान्ही लाए और औषधिके लिएभी पवनवेग से वेही दौड़े। सेवकको अमानी होना चाहिए, प्रभुके कार्य्यसाधनमें उसे अपने मान अपमानका ध्यान न रखना चाहिए। अशोकवाटिकामेंसे पकड़कर राक्षस उन्हें रावणके सामने लेजातेहैं। रावण उन्हें अनेक दुर्वाद कहकर हँसताहै। इसपर उन्हें कुछभी क्रोध नहीं आता। अंगद की तरह 'हौं तव दसन तोरिबे लायक' वे नहीं कहतेहैं। ऐसा करनेसे प्रभुके कार्य्यमें हानि होसकतीथी। अपने मानका ध्यान करके स्वामी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का कार्य्य बिगाड़ना सेवकका कर्त्तव्य नहीं। वे रावणसे साफ कहतेहैं-
'मोहि न कछु बाँधे कर लाजा। कीन्ह चहौं निजप्रभुकर काजा'॥

पुलकित तन मुष आव न बचना।
देषत रुचिर वेष कै रचना॥ § १ (६)
पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही।
हरष हृदय निज नाथहि चीन्ही॥ ,, (७)

अर्थ—शरीर रोमांचित होगया, मुखमें वचन नहीं आता, सुन्दर वेषकी सुन्दर रचनाको देखरहेहैं। फिर धीरज धरकर स्तुति की, अपने नाथ (उपास्यदेव, इष्ट, ध्येय) को पहिचानकर हृदयमें हर्ष एवं प्रेम होरहाहै। †

टिप्पणी—(क) यहाँ हनुमान्‌जीके मन, कर्म और वचन तीनोंकी दशादिखाई। 'सो सुख उमा जाइ नहिं बरना' यह मनकी दशा है, क्योंकि सुख होना मनका धर्म है। 'पुलकित तन', यह शरीरकी दशा है और 'मुख आव न बचना' यह बचनकी दशा है। (ख)—'आव न बचना' का भाव कि स्तुति करनेकी इच्छा है जैसा आगे के 'पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्ही' से स्पष्ट है। (ग) 'धीरज धरि' से जनाया कि प्रभुका स्वरूप देखकर धीरज छूटगयाथा।—आ० § १० और सुं० § ४४ (६) देखिए। (घ) पूर्व कहाथा कि प्रभुको पहिचानकर सुख हुआ और अब कहतेहैं कि नाथको 'चीन्हनेसे' हर्ष हुआ। तो हर्ष और सुखमें पुनरुक्ति हुई? नहीं। हर्ष शब्द प्रीतिकाभी वाचकहै, यथा—'श्लोकमुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः इत्यमरः'। यहाँ अर्थ है कि अपने नाथको पहिचाननेसे प्रीति हुई। (ङ)—यहाँ स्वरभंग सात्विक अनुभावका उदय है। सुखकी दशा जो ऊपर देखनेमें आतीहै उसका वर्णन यहाँ कियाहै।

† यथा—'जातः शरीरे रोमाञ्चो मुखाद्वाणी न निःसृता। सुन्दरीं वेषरचनां दृष्ट्वा रामस्य मारुतेः॥१॥—' (हनुमद्रामायणे)। 'पुनः स्तुतिं चकारासौ धृत्वा धैर्य्यं धरापतेः। नैजं प्रभुमभिज्ञाय हृदये हर्षितो भवत्॥'—(विश्वामित्ररामायणे)॥२॥ अर्थात् रामचन्द्रजीकी सुन्दर वेषरचनाको देखकर हनुमान्‌जीका शरीर रोमांचित होगया, उनके मुखसे वाणी नहीं निकलती। फिर धैर्य्य धारण करके पृथ्वीपति रामजीकी स्तुतिकी और निज प्रभुको पहिचानकर हृदयमें हर्षित हुए।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्र०—रुचिर वेषकी रचनाके यथार्थ जानकार हनुमान्‌जीही हैं। देखिए श्रीजानकीजीने इनसे रघुनाथजीके जाननेका प्रश्न किया तब इन्होंने सर्वांगका वर्णन कियाहै।—(वा० सुं० स० ३५)*

नोट—प्रभुके 'कहहु बिप्र निज कथा बुझाई' इस गूढ़ वाणीका प्रभाव हनुमान्‌जीपर पड़ा, उनकी क्या दशा होगई, इत्यादिका पता 'प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना' इत्यादि चौपाइयोंमें कविने भली-भाँति दरसायाहै। जिस परानंदका अनुभव वे करके मग्न होगएहैं वह वही जाने जिसे वह प्राप्त हुआहो, शिवजीही जब नहीं कह सकते तब दूसरा कौन कहसकताहै? वे बोल नहीं सकतेहैं। प्रभुके प्रश्नका उत्तर वे अपने 'परेउ गहि चरना' से देरहे हैं। इस मूक उत्तरमें क्या नहीं भरा है? जो कुछ वे आगे कहतेहैं वह इस मूक उत्तर-राशिका एक कण मात्र है।—इस दशाका सुंदरकाण्डके

'सुनि प्रभुबचन बिलोकि मुष गात हरष हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥ ३२॥

इस दोहेसे मिलान कीजिए।

दोनों जगह हनुमान्‌जी अपनी अत्यन्त दीनता और मन, कर्म, वचनसे शरणागति दिखारहेहैं। यहाँ पश्चाताप है, वे बहुत घबड़ा-गएहैं और सच्ची दीनता प्रकट कररहेहैं कि मैं मायाके फेरमें पड़गया जो प्रभुको न पहिचान सकाथा। और, सुंदरकांडमें यह सोचकर घबड़ागए कि कहीं मुझे मोह न ग्रस ले। पुनः, वचन सुनतेमात्रही इस दशाका प्राप्त होजाना हनुमान्‌जीकी असाधारण भक्ति और उनके परा-काष्ठाके अलौकिक प्रेमका परिचय देरहाहै।

गौड़जी—'हरिमारग चितवहिं रनधीरा' कपिलोग जिसकी बाट जोह रहे थे। आज वही मिले। हनुमान्‌जीने प्रभुको पहचान लिया। यहाँ एक भाव और है। बाल्यावस्थामें हनुमान्‌जी प्रभुकी सेवामें रहचुके थे। पचीस बरस पीछे देखते हैं। फिर राजकुमार

* यथा—'यानि रामस्य चिह्नानि लक्ष्मणस्य च वानर। तानिभूयः समाचक्ष्व न मा शोकः समाविशेत्॥३॥ कीदृशं तस्य संस्थानं रूपं तस्य च कीदृशम्। कथमूरू कथं बाहू लक्ष्मणस्य च शंस मे॥४॥ एवमुक्तस्तु वैदेह्या हनूमान्मारुतात्मजः। ततो रामं यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे॥९॥' इसके आगे १७ श्लोकोंमें सूक्ष्मरीतिसे अंगोंका वर्णन है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं, तपस्वीके वेषमें। ऐसी जगह जहां की कोई आशा न थी। इसलिये न पहचान सके। इसीलिये यह उपालंभ है कि 'मोर न्याउ, मैं पूछा साईं" पर 'तुम कस पूछहु नरकी नाईं।'

मोर न्याउ मैं पूछा साँई।
तुम्ह पूछहु कस नर की नाँई॥ § १ (८)
तव माया बस फिरौं भुलाना।
तातें मइँ नहिं प्रभु पहिचाना॥ ,, (९)

एकु मैं मंद मोहबस कुटिल † हृदय अज्ञान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥ §२

अर्थ—हे स्वामी! मैंने जो पूछा वह मेरा (पूछना) न्याय था (अर्थात् मेरा पूछना उचितही था क्योंकि मैंने मायावश होनेसे नहीं पहचानाथा)। ‡ पर आप कैसे मनुष्योंकी तरह पूछतेहैं? (अर्थात् आपका पूछना अयोग्य है, न्याय नहीं है, क्योंकि आपतो सर्वज्ञ हैं, ज्ञानघन हैं, विज्ञानरूप हैं, आपमें अज्ञानता कैसी? अज्ञानताही अन्याय है) मैं तो आपकी मायाके वश भूलाहुआ फिरताहूँ; इसीसे मैंने प्रभुको नहीं पहिचाना। एक तो मैं मंद हूँ, मोहके वशहूँ, हृदयका कुटिल और अज्ञान हूँ; उसपरभी, हे प्रभु! हे दीनबन्धु भगवान्! आपने मुझे भुला दिया। (अर्थात् भुलाया न होता तो हमसे प्रश्न न करते।) *

† मा० म० का पाठ 'एक मंद मैं मोह बस कीस हृदय अज्ञान है।

‡ वै०—'मोर न्याउ' इति। हनुमान्‌जीने विचारा कि जिन्होंने बालपनमें तो हमको बुलाकर शरणमें रक्खा वेही अब हमसे पूछतेहैं। मैं स्वयं भूलाहूँ तब क्या उत्तर दूँ। अतएव न्यायशास्त्रसे उत्तर दिया कि मैंने तो 'मोर न्याय' से पूछा। अर्थात् मैं और मोर माया है, मैं उस मायामें पड़कर भूलगया। मोर न्याय=मायाके कारण।

* यथा—'प्रष्टव्यं योग्यमस्माकं त्वं पृच्छसि कथं नृवत्'—(विभीषणरामायण)। 'मायावश्यो भ्रमाम्यत्र प्रभुं न ज्ञातवानतः'-(वृत्तरामायणे)॥ 'मंदोहमेकः खलु मोहवश्यश्चित्तस्य दुष्टः सुविचारशून्यः। विस्मारितः स्वामिवरेण भूयो हे दीनबन्धो भगवन्नमस्ते॥'-(शिवरामायणे)। अर्थात् मेरा पूछना योग्य है, आप कैसे मनुष्यकी तरह पूछतेहैं? मैं तो मायाके वश भ्रममें पड़ाथा इससे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी १—(क) 'तव मायाबस फिरउँ भुलाना' इति। तात्पर्य्य कि मायावश होनेसे ईश्वरकी पहिचान नहीं रहती। इससे यह पाया-गया कि मायाने भुलादिया, न पहिचाननेमें मायाका दोष है, हमारेमें कुछ दोष नहीं, इसीपर आगे अपने दोष कहतेहैं। (ख) 'तव माया' कहकर जनाया कि आपकी माया प्रबल है, यथा—'अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटहि राम करहु जौं दाया'। २—'एकु मैं मंद०' इति। भाव कि एक तो मायाने हमको वशमें करलिया, फिर आपनेभी भुला दिया और मैं तो अवगुणोंका कोश हूँ ही तब आपको कैसे पहिचान सकता? ३—'प्रभु, दीनबन्धु और भगवान्' का भाव कि दीनके कष्ट निवारण करनेमें आप समर्थ हैं और दीनकी दीनता छुड़ानेमें ऐश्वर्य-वान्हैं। दीनबंधुसे कृपालुता और भगवान्से लायकपन (योग्यता) दोनों गुण कहे। तात्पर्य्य यह है कि आप कृपालु हैं, सब लायक़ हैं ऐसे होकरभी आपने हमको भुलादिया।

रा० प०—ये तीनों (मंद, मोहबस और कुटिल-हृदय) कपि जातिके धर्महैं और 'अज्ञान' तमोगुणी रुद्रका धर्म कहा।

प्र०—मंदादि अपने दोष और 'दीनबंधु भगवान्' ये प्रभुके गुण जनाए, यह सेवकका धर्म है, यथा—'गुन तुम्हार समुझहिं निज दोषा' † [नोट—'एकु मैं मंद...' का भाव कि 'दीनबंधु, भगवान् और प्रभु होकर आपने भी बिसार दिया, यह मेरा अभाग्यहै।]

रा० प्र० श०—मोहवश होनेसे बुद्धि मन्द होजातीहै जिससे अज्ञा-नता पाकर जीव कुटिल होजाताहै। ये सब हों परन्तु यदि भगवान् न भुलादें तो जीवकी हानि न हो। प्रभु के दीनबंधुता-गुणसेही जीव मायासे छूटकर प्रभुको पहिचान सकताहै।

प्रभुको न जानसका। एकतो मैं मन्द हूँ, दूसरे निश्चयही मोहके वश हूँ, तीसरे दुष्टहृदय और सुविचाररहित हूँ; फिर स्वामीनेभी मुझे भुलादिया। हे दीनबन्धु भगवान्! आपको नमस्कार है। इस श्लोकमें 'कुटिल हृदय' की जगह 'दुष्ट चित्तस्य' है जो समानार्थी है।

† १ विनयपत्रिकामेंभी—'हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हो।०', 'कैसे देउ नाथहिं खोरि०' और 'है प्रभु मेरोई सब दोष।०' इत्यादि पद इसी भावका समर्थन करतेहैं। २ मा० त० प्र० 'एक' का अर्थ 'प्रधान' वा 'शिरोमणि' करती है। अर्थात् मैं मंद, मोहवश और कुटिलोंका शिरोमणि हूँ। पर आगे 'पुनि' शब्द इस अर्थका समर्थक नहीं है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिला—मंद क्योंकि वानर, कुटिल अर्थात् अन्यायकरनेवाला, मोहवश इससे कि वानर मरा बच्चा लिये रहताहै और अज्ञान कि दानेकेलिए घट आदिमें हाथ डालकर क्षणमेंही भूलकर पकड़ाजाताहै।

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरे।
सेवक प्रभुहि परै जनि भोरे॥ § २ (१)
नाथ जीव तव माया मोहा
सो निस्तरै तुम्हारेहि छोहा॥ ,, (२)

अर्थ—हे नाथ! यद्यपि मुझमें बहुत अवगुण हैं तथापि सेवक प्रभुको भोरे न पड़े अर्थात् अवगुणी होनेपरभी स्वामी सेवकको न भुलावैं। हे नाथ! जीव आपकी मायासे मोहित है, वह आपकीही कृपासे छूट सकताहै। *

टिप्पणी—(क) 'बहु अवगुन' इति।—प्रथम अपनेमें चार अवगुण कहे—मंद, मोहबस, कुटिलहृदय, अज्ञान। अब कहतेहैं कि हममें येही चार अवगुण नहीं हैं वरन् अगणित हैं। (ख) प्रथम मायाके वश होना और सेवकके अवगुणोंके कारण स्वामीका उसको भुलादेना ये दो बातें कहीं, फिर दोनोंके छूटनेकेलिए प्रार्थना करतेहैं। पहले जो कहाथा कि 'तव मायाबस फिरौं भुलाना' उसकेलिए प्रार्थना की कि 'नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरै तुम्हारेहि छोहा'। आशय यह है कि मैं मायामोहित हूँ, मायामोहसे कृपाकरके छुड़ाइए। फिर जो कहाथा कि 'एक मैं मंद मोहबस कुटिलहृदय अज्ञान। पुनि प्रभु मोहि बिसारेहु ..' उसकेलिए प्रार्थना करतेहैं कि 'जदपि नाथ बहु अवगुन मेरे...' अर्थात् हमारे अवगुणोंसे हमको न भुलाइए।

☞ 'जीव, पर, विरोध, उपाय और फल', इन पाँचों स्वरूपोंका ज्ञान जीवके निस्तारकेलिए परमावश्यक कहागयाहै। ये पाँचों स्वरूप

* मिलतेहुए श्लोक—'यद्यप्यवगुणाः सन्ति बहवो मयि सुव्रत। तथापि दासोऽविस्मार्यः प्रभुणाहुर्मुनीश्वराः॥'—(भरद्वाजरामायण)॥१॥ 'त्वन्मायामोहितो जीवस्तरति त्वदनुग्रहात्'—(जैमिनिरामायण)। अर्थात् सुंदर व्रत धारणकरनेवाले मुनीश्वरोंका कथन है कि सेवक स्वामीके भुलानेयोग्य नहीं है। यद्यपि मुझमें बहुत अवगुण हैं तोभी दासको भुलाना आपको उचित नहीं है। जीव आपकी मायाके वश है आपके अनुग्रहसेही वह तरताहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हनुमान्‌जीकी इस स्तुतिमें दिखाए गए हैं, यथा—

१ जीवस्वरूप—'तव मायाबस फिरउँ भुलाना', 'सो निसतरै तुम्हारेहि छोहा' और 'मोर न्याउ मैं पूछा साँई' यह जीवका स्वरूप है कि वह मायाके वश है और उसका छूटना प्रभुके अधीन है। गोस्वामी जीने अन्यत्रभी कहाहै 'हर्ष बिषाद ज्ञान अज्ञाना। जीव धरम अहमिति अभिमाना' एवं 'तव माया बस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान'।

२ परस्वरूप-'तव मायाबस', 'सो निस्तरै तुम्हारेहि छोहा', 'पुनि प्रभु मोहि बिसारेहु दीनबंधु भगवान' और 'तुम कस पूछहु...' में परस्वरूप कहा। जैसा अरण्यकांडमें कहाहै, यथा—'बंध मोक्षप्रद सर्वपर मायाप्रेरक सींव'।

३ विरोधस्वरूप—अर्थात् मायाका स्वरूप जो भगवत्-शरणागतिका बाधक है। 'मायाबस', 'मायामोहा', 'मोहबस' करना यह मायाका वा विरोधस्वरूप है।

४ उपायस्वरूप—'सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनै प्रभु पोसे॥', इसमें शुद्ध उपायशून्य प्रपत्ति ही तरनेका उपाय बताया।

५ फलस्वरूप—'परेउ गहि चरना' और 'अस कहि परेउ चरन अकुलाई'। प्रभुकी प्राप्तिही परम फल है।

नोट १—'जदपि नाथ बहु अवगुन मेरे...'। भाव यह कि अवगुण देखकर तो प्राकृत स्वामी त्याग देतेहैं; पर आप तो समर्थ स्वामी हैं, आपतो अवगुण कभी लेते न थे तब मुझेभी भुलाना न चाहिए था। पुनः भाव कि आप समर्थ हैं मैं असमर्थ हूँ।

२ 'सो निस्तरै...', यथा—'दैवीह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते' इति गीतायाम्। अर्थात् यह मेरी त्रिगुणात्मिका माया दुस्तर है, जो मेरी शरणमें प्राप्त होतेहैं वेही इससे पारपातेहैं। पुनः, यथा—'ब्यापि रहेउ संसार महँ माया कटक प्रचंड।... सो दासी रघुबीर कै समुझै मिथ्यासोपि। छूट न रामकृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि'—(उ० § ७१)। पुनः, यथा—'है श्रुति बिदित उपाय सकल सुर केहि केहि दीन निहोरै। तुलसी यह जीव मोहरजु जेहि बाँध्यो सोइ छोरै' इति विनये (पद १०३) अर्थात् जिसने जीवको मोहरूपी रस्सीसे बाँधाहै वही छोड़नेको समर्थ है, दूसरा नहीं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तापर मैं रघुबीर दोहाई ।
जानौं नहिं कछु भजन उपाई ॥ ◊ २ (३)
सेवक सुत पति मातु भरोसे ।
रहै असोच बनै प्रभु पोसे ॥ ,, (४)
अस कहि परेउ चरन अकुलाई ।
निज तन प्रगटि प्रीति उर छाई ॥ ,, (५)

अर्थ—उसपर, हे रघुबीर ! मैं आपकी दोहाई (शपथ) करके कहताहूँ कि मैं न तो कुछ भजन जानताहूँ न कुछ उपायही (वा, भजनका उपाय नहीं जानता) । सेवक स्वामीके और सुत माताके भरोसे निश्चिन्त रहताहै, तो प्रभुको पालन करतेही बनताहै । * ऐसा कहकर अकुलाकर चरणोंमें गिरपड़ा, प्रीति हृदयमें छागई और हनुमान्‌जीने अपना (कपि) तन प्रगट करदिया ।

टिप्पणी १—'भजन उपाई'=भजनका उपाय अर्थात् साधन । भजनके साधन, यथा—'भगतिके साधन कहउं बषानी' । 'कछु' का भाव कि भजनथोड़ाभी हो तो माया कुछ नहीं करसकती, यथा—'तेहि बिलोकि माया सकुचाई । करि न सकै कछु निज प्रभुताई' । २—'जानौं नहिं कछु भजन उपाई' कहनेका भाव कि मायामोहितजीवका तरना दो तरहसे है । एक तो तुम्हारे छोहसे, दूसरे भजनसे । सो हम भजनका उपाय नहीं जानते; तुम्हारीही कृपासेही निस्तार होगा । मायासे तरना कृपासाध्य है, क्रियासाध्य नहीं ।

३—यह प्रपन्न-शरणागतिका लक्षण है । इसमें दो भेद हैं । एक पुरुषार्थ-युक्त दूसरा पुरुषार्थ-हीन, सो दोनों के उदाहरण देतेहैं । "सेवक सुत पति मातु भरोसे"—सेवक के समान और जीव हैं, सेवक में कुछ पुरुषार्थ है, हम छोटे बालकके समान पुरुषार्थ-हीन हैं । केवल आपहीके भरोसे हैं । यही शरणागति रामजीने नारदजीसे कही

* यथा—१ "न जाने भजनोपायं ब्रुवे शपथपूर्वकम्"—(क्रौंचरा०) । २ "दासपुत्रौ प्रभोर्मातुरधीनौ तिष्ठतः सदा । अशोकौ प्रभुणावश्यं पालनीयौ दयानिधे"—(भरतरामायणे) । अर्थात् सेवक और बालक शोकरहित होकर सदा प्रभु और माता के भरोसे रहते हैं । अतएव, दयानिधे ! उसका स्वामी द्वारा अवश्य पालन होना चाहिये ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है, यथा—"सुनु मुनि तोहि कहौं सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥ करौं सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालकहि राख महतारी॥" ४—हनुमान्‌जीने अपनेमें अनेक अवगुण कहेहैं, यथा—'जदपि नाथ बहु अवगुन मेरे'। अब एक गुण कहतेहैं—स्वामीका भरोसा। इसी गुणसे स्वामी प्रसन्न होतेहैं, यथा 'है तुलसीके एक गुन ऐगुननिधि कहें लोग। भलो भरोसो रावरो राम रीझिबे जोग—(दो०)। ५—यहाँ हनुमान्‌जीका तनमनबचनसे शरण होना दिखाया। तनसे चरण पर पड़े, मनसे प्रीति की और वचनसे स्तुतिकी।

[नोट—प्रपत्ति और अनन्य उपाय इसीको कहतेहैं कि उपाय और उपेय दोनों आपही हैं, कोई वसीला या कोई साधन और नहीं हैं।]

पं० रा० ब० श०—'रहै असोच'—अर्थात् योगक्षेमका कोई उपाय नहीं करता। ऊपर कहाथा कि 'पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्ही'। वह स्तुति क्या है? यही है कि अपना जीवका स्वरूप कहा, अपने और रामजीमें सेवक स्वामी का भाव दिखाया, अपने अवगुण और प्रभुके गुण कहे।

मा० त० प्र०—'सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच...' का भाव कि आप मेरे पति और मातु दोनों हैं तब कैसे नहीं पालन करोगे। 'रहइ असोच' के उदाहरण अम्बरीषजी, प्रह्लादजी, विभीषणजी, भरतजी, आदि हैं। यथा—'जो अपराध भगत कर करई। रामरोष पावक सो जरई...', 'सेवक छोह ते छाँडी छमा तुलसी लख्यो राम सुभाव तिहारो। तौ लौं न दाप दल्यौ दसकंधर जौं लौं बिभीषन लात न मार्‌यो॥'—(क०), 'लोकहु बेद बिदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरबासा', इत्यादि।

पां०, प्र०—भक्तशिरोमणि रामजीके यथार्थतत्वके ज्ञाता हनुमान्‌जी अपनेको अज्ञान कहतेहैं, यह कार्पण्यशरणागति है जो शरणागति के छः अंगोंमेंसे प्रधान अंग है जैसे गोसाईंजीने कहाहै कि 'कबित बिबेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे'। धनकी कृपणता मनुष्यको मंद करतीहै और गुणकी कृपणता (अर्थात् बड़े होकर अपने को छोटा मानना) अति उत्तम करतीहै। जैसा बिहारी सतसईमें कहा है—'नर की अरु नलनीरकी गति एकै करि जोय। ज्यों ज्यों नीचे ह्वै चलै त्यों त्यों ऊँचो होय'॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिला—रघुबीर अर्थात् दया आदि पंचवीरता-युक्त समर्थ। प्र०—'कछु भजन उपाई' का भाव कि भजन थोड़ाभी हो तो आप बहुत मान लेतेहैं। 'बनै प्रभु पोसे' से दीन साधनहीनकी गुरुता दिखलाई कि प्रभु को अवश्य इन दोनोंका पालन करना पड़ता है।

मा० म०—'परेउ अकुलाई' इसका कारण यह है कि हनुमान्‌जीने अनेक प्रकारसे कहा, पर रामचंद्रजी कुछ न बोले। अतएव व्याकुल होगए। रामचंद्रजी अपनी टेक मिटाकर क्योंकर उत्तर देते, उनकी टेक है कि कपटसहित किसीको ग्रहण नहीं कर सकते। जब हृदयमें प्रीति छागई तब कपट छूट गया और अपना स्वरूप प्रगट होगया, तब प्रभुने उठाकर हृदयमें लगा लिया।

मा० त० प्र०—(१) इतनी स्तुतिपरभी प्रभु नहीं बोले तब व्याकुल होगए और चरणोंपर गिरपड़े। (२) कपितन प्रकट करनेका भाव कि मैं सुग्रीवके कल्याणार्थ कपट-विप्र बना, पर ये बालीके भेजे हुए नहीं हैं; अब यदि मैं कपट-वेष नहीं छोड़ताहूँ तो मैं और सुग्रीव दोनोंही अनाथ रहेजातेहैं, अतएव कपितन प्रगट किया।

तब रघुपति उठाइ उर लावा।
निज लोचन जल सींचि जुडावा॥ § २ (६)
सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना।
तैं मम प्रिय लछिमन तें दूना॥ ,, (७)

अर्थ—तब रघुनाथजीने हनुमान्‌जीको उठाकर हृदयसे लगालिया और अपने नेत्रोंके जलसे सिंचन करके शीतल किया।* (फिर बोले कि) हे कपि! सुनो, जीमें अपनेको न्यून मत मानो, तुम मुझे लक्ष्मणसे दूने प्रिय हो।*

टिप्पणी—(क) 'तब' अर्थात् जब मनवचनकर्मसे शरण हुए। पुनः, दूसरा भाव कि प्रथम बार जब हनुमान्‌जी चरणोंपर पड़ेथे तब रामजीने उनको हृदयसे न लगाया पर जब विप्रतन छोड़कर निज तन प्रगट किया तब हृदयमें लगाया; क्योंकि रामजीको कपट नहीं

* यथा—'उत्थाप्य तं तदा रामोऽसिंचन्नेत्राश्रुधारया'—(सुतीक्ष्णरा०)। 'कपे मा मन्यथा न्यूनं लक्ष्मणाद्द्विगुणः प्रियः'—(मंगलरा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भाता, यथा—'निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा'। हनुमान्‌जी वानर हैं और विप्ररूप धारण किएहैं, यही कपट है। ☞ उपदेश है कि यदि प्रभुकी कृपाकी चाह हो तो कपट त्यागकर प्रभुमें प्रेम करो। प्रभु ब्रह्मण्यदेव हैं तो भी उन्होंने कपटी विप्र को अङ्गीकार न किया तब दूसरे वर्णोंका कहनाही क्या? भरतजीकेभी वचनोंसे यह उपदेश पुष्ट होताहै, यथा—'कपटी कुटिल नाथ मोहि चीन्हा०'। (ख)—'सींचि जुड़ावा' का भाव कि हनुमान्‌जीके हृदयमें प्रभुके 'बिसरावने' की ताप थी, जब रामजीके नेत्रोंसे जल चला तब हनुमान्‌जी, यह जानकर कि मुझपर रामजीका प्रेम है, शीतल होगए, हृदयका संताप मिटगया। (ग) 'मानसि जनि ऊना'—अपनेको बहु-अवगुण-संपन्न, बताना और प्रभुका दासको भुलाना समझकर घबड़ाना, इत्यादि, न्यून माननाहै।

'लछिमन ते दूना' के भाव

१ मा० त० भा०—(क) लोगोंमें इस प्रकार बोलनेकी रीतिहै कि जो अत्यन्त प्रिय होताहै उसके समान या उससे अधिक प्रिय कहकर अपना अत्यन्त प्रेम जनातेहैं, यथा-'तुम्ह प्रिय मोहि भरतजिमि भाई' 'भरतहु ते मोहि अधिक पियारे', इत्यादि। वा, (ख)—लक्ष्मणजीसे भाईका नाता है, हनुमान्‌जीसे दासका नाताहै और प्रभुको दास सबसे अधिक प्रिय है, यथा—'अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही॥ सब मम प्रिय नहिं तुम्हहिं समाना'। अतः 'दूना' कहा।

२ पां०—लक्ष्मणजी केवल रघुनाथजीके सेवक हैं और महाबीर जी रामलक्ष्मण दोनोंके सेवक हैं; अतः दूना कहा।

३—मा० म०—हनुमान्‌जी अपने कपटवश सकुचागये तब श्री-रामचन्द्रजीने दूना प्रिय कहकर वह संकोच मिटादिया। ☞ कपट धारण किएहुए द्विजकोभी श्रीरामचन्द्रजी नहीं अपनाते, यह स्मरण रखनेयोग्य है।

४—पं०, प्र०—दूना कहनेके हेतु—(क) कपि केवल दुःखमें सहायक, लक्ष्मण सुख दुःख दोनोंमें। (ख)—लक्ष्मणके प्रमादसे प्रियावियोग हुआ और इनके श्रमसे संयोग। (ग) लोकोक्ति है कि तुम हमारे प्राणोंसेभी अधिक प्रिय हो। (घ) लक्ष्मणकोशक्ति लगेगी तब ये सहाय होंगे। वा, (ङ) दूना=दू ना=दो नहीं, जैसे 'सुख सुहाग तुम्ह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कहँ दिन दूना' में। अर्थात् समान प्रिय हो, दोनोंमें भेद नहीं। वा, (च) लक्ष्मण नररूपसे सेवा करतेहैं और तुम्हारी सेवा कपिरूपसे होनाअयोग्य है, अयोग्यमें योग्य होनेसे दूना कहा। वा, (छ)—हनुमान्‌जीके जीमें 'ऊनता' है और लक्ष्मणजीके नहीं है। जितनाहीं मनुष्य अपनेको नीच मानताहै उतनाही रघुनाथजी उसे ऊँचा मानतेहैं। वा, (ज) रघुनाथजी की ऐसीही बानि है, यथा—'पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने', 'भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे', 'मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी' इत्यादि। वा, (झ) लक्ष्मणजी रघुनाथजीके दुःखमें सहायक हैं और हनुमान्‌जी रघुनाथजी और जानकीजी दोनोंके दुःखमें सहायक हुए। वा, (ञ) महादेवजीके शेषजी भूषण हैं और हनुमान्‌जी रुद्रावतार हैं (शिव और शेष दोनों होनेसे दूना)।—[भूषणसे उसका धारणकरनेवाला अधिक प्रिय होताही है—रा० प्र० श०)] वा, (ट) उत्तरकांडमें सब भाइयोंसे अधिक प्रिय इनको कहाहै, यथा—'भ्रातन्ह सहित राम एक बारा। संग परम प्रिय पवनकुमारा' अतएव दूना।

५ व्यासजी—जब एक बच्चेके बाद फिर दूसरा बच्चा पैदा होताहै तो माँको यह दूसरा बच्चा अधिक प्यारा होताहै यद्यपि दोनों उसीके बच्चे हैं। इसी प्रकार जो नया शरणागत होताहै वह अधिक प्यारा होताहै। पुनः. भाव यह कि लक्ष्मणजी तो हमारे अंगभूत हैं, सम्बन्धी हैं और तुम स्नेही हो।

६ करु०—लक्ष्मणजी मुझे अतिप्रिय हैं और तुम हम दोनोंको अतिप्रिय हो, इससे दूने हुए।

७ रा० प्र० श०—(क) लक्ष्मणजीने किसीसे मित्रता नहीं कराई, हनुमान्‌जीने सुग्रीवसे मित्रता कराई जिससे सब कार्य्य हुआ। (ख)—लक्ष्मणजीसे शत्रुको अधिक हानि नहीं पहुँची, हनुमान्‌जीने लंकाभर जलादी और सबका नाकमें दम करदिया। (ग)—हनुमान्‌जीने जानकीजीको रामजीका सँदेसा और रामजीको जानकीजीकी सुध और सँदेसा सुनाकर दंपतिको विरहानलसे बचाया। (घ)—जब श्रीभरतजी चित्रकूट जातेथे तब लक्ष्मणजीने शत्रुभावसे आना कहा और देवताओंके समझानेपर उनका संदेह दूर हुआथा, हनुमान्‌जीने अपने मनमेंही भरतजीके विषयमें संदेह कियाथा कि—'मोरे भार चलिहि किमि बाना'। फिर स्वयंही यह समझकर सँभलगए कि ये श्रीरघुनाथ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जीके भाई हैं और प्रभुका प्रताप अप्रमेय है। अतः दूना कहा।

८ रा०ब०—लक्ष्मणजी रामजीके रक्षक हैं, यथा—'कछुक दूर सजि बान सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन'। और हनुमान्‌जी लक्ष्मणजीके रक्षक हैं, यथा सुदर्शनसंहितायाम्—'लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा'।

९ मा०त०प्र०—'दूना' का भाव एक यहभी होसकताहै कि—लक्ष्मणजी तो पूर्वभी सेवक थे और अबभी सेवकही हैं और तुमतो स्वामीसे सेवक हुए (क्योंकि पूर्व शंकररूपसे माधुर्यमें स्वामी थे अब हनुमान्‌रूप होकर सेवक बने हो) अतः दूना प्रिय कहा।

समदरसी मोहि कह सब कोऊ।
सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ॥ §२ (८)

सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥§३॥

अर्थ—सब कोई (सभी) मुझे समदर्शी कहतेहैं, पर मुझको सेवक प्रिय है (क्योंकि वह (सेवक) भी अनन्यगति होताहै अर्थात् उसको मैं ही प्रिय हूँ दूसरा नहीं; * हे हनुमन्त! वही अनन्य है जिसकी ऐसी बुद्धि टले नहीं कि जड़ चेतन (सारा जगत्) स्वामी भगवान् का रूप है और मैं सेवक हूँ।†

* 'समोहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योस्ति न प्रियः। ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥' अर्थात् मैं सब प्राणियोंके लिए समहूँ, न कोई हमारा शत्रु है न मित्र। जो मुझे भक्ति करके भजतेहैं उनके चित्तमें मैं रहताहूं और मेरे चित्तमें वे रहतेहैं।

† १ 'खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्वानि दिशो द्रुमादीन्। सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत् किंचभूतं प्रणमेदनन्यः॥' इति भागवते एकादशस्कंधे। अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य्य, जीव, दिशा, वृक्ष, नदी और समुद्र और जो कुछहै वह हरिका शरीर है, ऐसा मानकर भगवान्‌में अनन्य होके प्रणामकरे। २—'भूमौ जले नभसि देव नरासुरेषु भूतेषु देवसकलेषु चराचरेषु। पश्यन्ति शुद्ध मनसा खलु रामरूपं रामस्य ते भुवितले समुपासकास्युः॥'—(महारामायण)। ३—करुणासिंधुजी इसका एक और अर्थ इस प्रकारभी करतेहैं कि—'जितनेभी जड़ चेतन जीव सृष्टिमें दिखतेहैं वे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 5231

टिप्पणी—(१) सब लोग मुझे समदर्शी कहते हैं, इस कथनका तात्पर्य्य यह है कि हम सेवककेलिए विषमदर्शी होतेहैं यह बात सब नहीं जानते, कोई कोई ही जानतेहैं। आ० § १० (११) देखिए।

(२) "मैं सेवक सचराचर रूप०" अर्थात् चराचरमात्रको अपने स्वामीका रूप देखतेहैं। स्वामीका रूप कहनेका भाव कि अद्वैत भावसे न देखे, स्वामी-भाव से देखे अर्थात् द्वैत-बुद्धिसे देखे। अथवा, स्वामी कहनेसे सब देवताओंकी उपासना रही (रक्षित रही) कि जो जिसका उपासक है वह अपने स्वामीका रूप चराचरमें देखे। 'भगवंत' कहनेका तात्पर्य्य कि सबमें षड्ऐश्वरसम्पन्न रूप देखे, विषम दृष्टि न होने पावे। (३) यहां रामजी हनुमान्‌जीका नाम लेतेहैं, इससे सूचित हुआ कि हनुमान्‌जी ने अपना नाम बतायाहै। अथवा ईश्वर सर्वज्ञ हैं, अतः ईश्वरतासे जानगए। (४) इस प्रकरणमें ऐश्वर्य्य है, माधुर्य्य नहीं। प्रथम हनुमान्‌जी ने कहा कि 'जानौं नहिं कछु भजन उपाई', उसीके उत्तरमें यहां रामजीने भक्तिका स्वरूप कहकर भजनका उपाय बताया। [नोट—सब सखाओं को राजगद्दी के पश्चात् विदा करते समय श्रीभगवद्वचनामृत है कि

'अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्वगत सर्वहि तजानि करेहु अति प्रेम॥'—(उ०§१६)]

☞ १ श्रीरूपकलाजी—'मति न टरइ' यह क्यों कहा? इस कारणसे कि बुद्धिके चलायमान वा टलनेका कारण उपस्थितहै। जब कहाकि सचराचरमात्रको स्वामी-भगवान्‌का रूप देखे तब यह बुद्धि अवश्य होजातीहै कि हमभी तो चराचरमें हैं, अतः हम भी भगवान्‌ही हैं। इस भ्रममें पड़जानेकी बहुत बड़ी संभावना है। इसीसे कहतेहैं कि 'मति न टरै' और इसीसे स्वामी और सेवक दोनों शब्द दिएगए कि अपनेको सेवकही माने। जहां बुद्धि टली कि हानि हुई।

२ प्र०—चराचरको अपने स्वामीका रूप देखे, यथा—'निज

सब और मैं सेवक हूं और भगवान् स्वामी हैं। चराचरमें हमारे स्वामी भगवान्‌का रूप व्याप्त है यह सब रूप है और स्वामी भगवान् रूपी हैं एसा जाने"। इसीको बाबा हरिहरप्रसादजीनेभी लिखाहै—'चराचरसहित मैं स्वामी-भगवंतके रूपका सेवक हूं'।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रभुमय देखहिं जगत का सन करहिं बिरोध'। मति टलनेका संयोग है क्योंकि जो चराचरको स्वामीका रूप देखेगा वह अपनेको कैसे उससे भिन्न मानेगा। इसीसे भक्तिपथमें हठका करना शठता नहीं मानागयाहै, यथा—'भगति पच्छ हठ नहिं सठताई'।

श्रीसीतारामीय ब्रजेन्द्रप्रसादजी सबजज कहतेहैं कि—'सचराचररूप प्रभु और मैं, सेवक कैसे? जब प्रभु सचराचर रूप होगये, तब मैं अलग रहा कहां? भक्त अलग रह कहां सकता है जैसे पैर बदन (शरीर) से अलग रह कहां सकता? मगर पैर शरीरका सेवकही तो है। वैसेही मैंभी सचराचररूप भगवान्के चरणोंका सेवक हूँ।

देखि पवनसुत पति अनुकूला।
हृदय हरष बीती सब सूला॥ § ३ (१)

अर्थ—स्वामीको अनुकूल देखकर पवनसुत हृदयमें हर्षित हुए और सब शूल जाता रहा।

टिप्पणी—(१) 'देखि' कहनेका भाव कि प्रथम हनुमान्जीने मनमें यह मानरक्खाथा कि स्वामी मुझपर अनुकूल नहीं हैं, उन्होंने मुझे 'बिसरा' दियाहै सो अब पतिकी अनुकूलता आँखोंसे देखतेहैं कि उन्होंने हृदयमें लगाया, नेत्रोंके जलसे सींचकर ठंढा किया, लक्ष्मणजीसे दूना प्रिय कहा और भजनका उपदेश किया। (२) 'सब शूल' वही हैं जो पूर्व कहआयहैं कि मैं मायाके वश होगया; प्रभुको नहीं पहिचाना; उसपरभी प्रभुने भुलादिया। यही तीन शूल हैं। सब शूल नाशको प्राप्त हुए। पुनः, प्रभुकी अनुकूलतासे त्रिविधिभवशूल—जन्म, जरा और मरणभी नाश हुई, यथा—'तुम्ह कृपालु जापर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिधि भवसूला'। (३) हनुमान्जी प्रथम आप कृतार्थ हुए तत्पश्चात् उन्होंने सुग्रीवकी भलाईकेलिए प्रार्थना की, जैसा आगे कहतेहैं।

प्र०—'सब सूला'—एक यह कि बालिके अभावमें सुग्रीवको राज्यका अधिकार नहीं था, पुत्रके होते भाई राज्याधिकारी नहीं होता, दूसरे, सुग्रीवके दुःखसे चारों वानरोंने दुःखी होकर उन्हें राज्य देदियाथा उसीसे सुग्रीवकी परमहानि हुई। तीसरे उसी हेतुसे अतिसभीत हैं। पुनः, पवन प्रतिकूल होनेसे सबको शूल होताहै, ये उन्हींके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुत्र हैं। उनकोभी सब शूल—प्रभुको मोहवश न पहिचानना, प्रभुका भुलादेना, इत्यादि, हुए—प्रभुकी प्रतिकूलता देखकर वह सब मिटे।

श्रीमारुतिमिलनप्रसंग समाप्त हुआ।

"सुग्रीव-मिताई"-प्रकरण

नाथ सैल पर कपिपति रहई।
सो सुग्रीव दास तव अहई॥ § ३ (२)

अर्थ—हे नाथ! इस पर्वतपर वानरोंका स्वामी सुग्रीव रहताहै। वह सुग्रीव आपका दास है।

टिप्पणी १—शंका—कपिपति तो बालि है; सुग्रीवको कपिपति कैसे कहा? समाधान—सब मंत्री सुग्रीवको राज्य देचुकेहैं, यथा—'मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं। दीन्हेउ मोहि राज बरिआईं'।* २—'कपिपति' कहनेपर नाम जाननेकी इच्छा होगी कि कौन कपिपति है; अतएव दूसरे चरणमें नामभी कहा—'सो सुग्रीव...'। जो केवल 'सुग्रीव' कहते तो सुग्रीव नामके अनेक पुरुष हैं, इसमें संदेह रहता कि कौन 'सुग्रीव' है इससे 'कपिपति' कहा। ३—'कपिपति' हैं (अर्थात् राजा होकर) शैलपर रहतेहैं, इस कथनसे सूचित किया कि सुग्रीव दुःखी हैं। वनका दुःख समझकर रामजीनेभी वनमें बसनेका कारण

---

* १ पं०—(क) सुग्रीवके सम्मानहेतु 'कपिपति' कहा; जैसे ग्रन्थकारने हनुमान्‌जीको 'कपिराई' कहाहै, यथा—'नव तुलसिकाबृंद तहँ देषि हरष कपिराइ', और लक्ष्मणजीने शूर्पणखासे कहाथा कि 'प्रभु समरथ कोसलपुरराजा'। वा, (ख)—भावी लखकर (कि अब ये अवश्य कपिपति होजायंगे) कपिपति कहा। २—प्र०—अथवा, वानरोंमें महान् चारों वानरोंके पति होनेसे ऐसा कहा। ३—कपिपति तो थे ही पर बालिने देश छुड़ालिया और निकाल दिया। सभी मंत्रियोंने राज्याभिषेक कियाहीथा। पुनः, आगे मित्रता करनेको कहनाहै, लोग अपने समानसे मित्रता करतेहैं। रामजी राजा हैं अतः सुग्रीवको पूर्व कुछ दिन राजा होनेसेही राजा कहा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुग्रीवसे पूछाहै । यथा—'कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव' (§ ५) ।

४ शंका—सुग्रीवसे और रामजीसे तो अभी भेंट नहीं हुईहै तब सुग्रीव रामजीके दास कैसे हुए ? समाधान—(क) सुग्रीव ईश्वरके भक्त हैं । और ये ईश्वर हैं । अथवा, (ख)—ब्रह्माजीका वचन है कि—'बानरतनु धरि धरनि महँ हरिपद सेवहु जाइ' । इस वचनको मानकर वे आपका स्मरण करतेहैं और दर्शनकी राह देखतेहैं, यथा—'हरि मारग चितवहिं रनधीरा' । इस प्रकारसे सुग्रीव रामजीके दास हैं ।

तेहि सन नाथ मयत्री † कीजै ।
दीन जानि तेहि अभय करीजै ॥ § ३ (३)

अर्थ—हे नाथ ! उससे मित्रता कीजिए और उसे दीन जानकर अभय कीजिए ।

टिप्पणी—१ प्रथम हनुमान्‌जीने कहा कि सुग्रीव कपिपति हैं और आपके दास हैं । अब दोनों वचनोंको क्रमसे घटातेहैं—(I) सुग्रीव कपिपति हैं उनसे मित्रता कीजिए । वे राजा और आप राजा, राजाको राजासे मित्रता करना योग्य ही है । यथा—'प्रीति बिरोध समान सन करिय नीति असि आहि' । (II) सुग्रीव दीन हैं आप दीनबंधु हैं, सुग्रीव शत्रुके भयसे पीड़ित हैं और आप दासोंको अभयदाता हैं । २—'दीन जानि' इति । दीन कहनेका भाव कि जिसमें सुग्रीवकी दीनता सुनकर शीघ्र कृपा करें । 'तेहि अभय करीजै' का भाव कि उसके शत्रुको मारकर उसे अभय करदीजिए और उसकी दीनता छुड़ाइए अर्थात् राज्य दीजिए ।

सो सीता कर खोज कराइहि ।
जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि ॥ § ३ (४)
येहि बिधि सकल कथा समुझाई ।
लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई ॥ ,, (५)

अर्थ—वह सीताजीकी खोज करावेगा, जहाँ तहाँ करोड़ों बन्दरो-

† 'मैत्री, कीजे, करीजे'—(भा० द०) । उपरोक्त पाठ काशी और ना० प्र० का है । उत्तम पाठ 'मइत्री' है । (गौड़जी)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को भेजेगा। इस प्रकार सब कथा समझाकर दोनों जनों (प्राणियों) को पीठपर चढ़ा लिया।

टिप्पणी—१ "सो सीताकर खोज कराइहि।...." इति। (क) अब अपने दूसरे वचनको—कि 'सुग्रीव आपका दास है'—घटित करतेहैं। दासका धर्म है कि सेवा करे; इसीसे कहतेहैं कि 'सीता कर खोज कराइहि', सीताकी खोज कराना सेवा है, यथा—'सब प्रकार करिहउँ सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई'। (ख)—'तेहि अभय करीजै' पहले कहकर तब कहा कि 'सो सीताकर खोज कराइहि'। इस क्रमसे सूचित किया कि जब आप सुग्रीवको शत्रु-रहित राजा करेंगे तब वह आपका कार्य करनेके लायक होंगे। (ग) जहँ तहँ=चारों दिशाओंमें। कोटि अनन्तवाची है।

२—'येहि बिधि सकल कथा समुझाई।०' इति। (क) रामजीका प्रश्न हनुमान्‌जीसे था कि—'बिप्र कहहु निज कथा बुझाई', उसका उत्तर इन्होंने यहाँ दिया—'यहि बिधि सकल कथा समुझाई'। 'येहि बिधि' अर्थात् जैसा पूर्व कहआए कि 'नाथ सैल पर कपिपति रहई' से 'जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि' तक। (ख)—'समुझाई' का भाव कि व्यवहार साफ़ चाहिए। सुग्रीवसे और रामजीसे मैत्री करानी है। पीछे कोई तर्क न उठे; इसलिए सब बात समझाकर कही। पुनः, रामजीका प्रश्न वा उनकी आज्ञा भी ऐसीही है कि 'कहहु बुझाई' अतः 'कथा समुझाई'।

३—'पीठि चढ़ाई' इति।—रामचन्द्रजीको कोमलपदसे पैदल चलते देख हनुमान्‌जीको दुःख हुआ। इसीसे उन्होंने पीठपर चढ़ालिया कि आप पैदल चलनेयोग्य नहीं हैं, यथा—'कठिन भूमि कोमल पदगामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी'।

नोट—'पीठि चढ़ाई' पद देकर जनाया कि हनुमान्‌जी उनको कंधे पर नहीं लिएहैं वरन् वानररूपसे चारों पैरोंसे पर्वतपर चढ़ेंगे अतएव पीठपर चढ़ायाहै। यह बात वा० स० ४। ३४ सेभी सिद्ध है—"भिक्षुरूपं परित्यज्य वानरं रूपमास्थितः। पृष्ठमारोप्य तौ वीरौ जगाम कपि कुञ्जरः॥' अर्थात् भिक्षुक (ब्रह्मचारी) का रूप त्यागकर वानर रूप धारणकरके 'कपिकुंजर' हनुमान्‌जी उन दोनोंको पीठपर बिठाकर लेचले। 'वानर रूप', 'कपिकुंजर' और 'पृष्ठमारोप्य' इस भावको पुष्ट

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कररहेहैं। और यहाँ ग्रन्थकारनेभी 'पीठि' शब्द दियाहै। अध्यात्ममें कंधेपर बैठनेको कहा, ऐसा लिखाहै. यथा —'हनुमान्स्वस्वरूपेणस्थितो राममथाब्रवीत्। आरोहतां मम स्कंधौ गच्छामः पर्वतोपरि॥"— (स० १।२७)। अर्थात् अपना वानरस्वरूप प्रकट करके रामजीसे यह बोले कि आप हमारे कंधोंपर चढ़लें, मैं पर्वतपर आपको लेकर चलताहूँ। पर यहाँ गोस्वामीजीका मत पीठपर चढ़ानेकी ओर है।

२ प्र०—पीठपर चढ़ाया जिसमें सुग्रीव पीठपर चढ़ेहुए देखकर इनको मित्र समझें। दूसरे, पर्वत दुर्गम है, स्वामीको पैदल ऊपर चढ़नेमें कष्ट होगा। इससे पीठपर चढ़ाया। (आगे रामजी हैं पीछे लक्ष्मणजी)

जब सुग्रीव राम कहँ देषा।
अतिसय जन्म धन्य करि लेषा॥ § ३ (६)
सादर मिलेउ नाइ पद माथा।
भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा॥ ,, (७)

अर्थ—जब सुग्रीवने रामचन्द्रजीको देखा तब अपने जन्मको अत्यन्त धन्य माना। चरणोंमें माथा नवाकर आदरपूर्वक मिले। रघुनाथजी भाई सहित उनसे गले लगकर मिले। *

टिप्पणी—१ 'जब सुग्रीव राम कहँ देषा...' इति। (क) 'जब देषा' पदसे जनाया कि सुग्रीवने दर्शनमात्रसेही अपनेको धन्य माना, ये बलवान हैं, हमारे शत्रुको मारकर हमें राज्य देंगे इत्यादि किसी प्रयोजनको समझकर नहीं (धन्य माना है)। (ख)—'अतिसय'का भाव कि रामजीके दर्शनसे अतिशय पुण्य है। अतिशय पुण्य होनेसे जन्मभी अतिशय धन्य हुआ।—[नोट—पूर्व जो पीठपर चढ़ाना कहागया वह इस चरणसेभी पुष्ट होताहै। पीठपर रामजी आगे हैं लक्ष्मणजी पीछे, इसीसे सुग्रीवका रामको देखना कहा। यदि अध्यात्मके अनुसार लें तो 'राम कहँ देषा' का समाधान यह होगा कि रामजी मुख्य हैं

* मा० म०—जैसे काशीमें मूल विश्वेश्वर हैं वैसेही किष्किंधामें 'सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा' यही बीज है। जैसे विश्वेश्वरद्वारा कर्म ज्ञान प्राप्त होकर अन्तमें रामपदकी प्राप्ति होतीहै वैसेही इस पदके जपसे कर्म और ज्ञान प्राप्त होताहै और अन्तमें स्वयं रामजी बांह पकड़कर भवपार करतेहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इससे उनका नाम देकर दोनोंको देखना जनादियाहै।] २—'सादर मिलेउ नाइ पद माथा...' इति। हनुमान्‌जीके वचन—'सो सुग्रीव दास तव अहई'—का यहाँ चरितार्थ है; दास हैं अतः मस्तक नवाकर दासभावसे सुग्रीव मिले। और, 'भेंटेउ अनुजसहित रघुनाथा'में रामजीकी ओरसे 'तेहिसन नाथ मयत्री कीजै' इन वचनोंका चरितार्थ है। सुग्रीव पैरोंपर मस्तक रखतेहैं पर ये उनको मित्रभावसे गले लगातेहैं।

पं०—'अतिशय धन्य' जाननेका आशय यह है कि प्रभुके दर्शनसे उसको उनके प्रतापकी प्रतीति हुई। २ (क) प्र०—'सादर' मिलनेका कारण यह है कि पूर्वकी जो शंकाएँ थीं कि 'पठए बालि होहिं मन मैला' वे सब प्रभुको देखतेही अब जातीरहीं। (ख) मा० म०—'सादर' का भाव यह है कि सुग्रीव फल फूल दलादि लेकर मिले। 'भेंटेउ' दोनों अर्थ देरहाहै। ३ ☞ 'नाइ पद माथा' से जनाया कि दंडवत् प्रणाम किया। केवल मस्तक झुकानाही अभिप्रेत होता तो 'पद' शब्द न देते। यथा—'बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ', 'पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन'—(सुं० §३७), 'नाइ सीस कर बिनय बहुता। नीति बिरोध न मारिय दूता' (सुं० § २३)।

कपि कर मन बिचार येहि रीती
करिहहिं बिधि मोसन ए प्रीती ॥ § ३ (८)

अर्थ—सुग्रीव मनमें इस रीतिसे विचार करतेहैं कि—हे विधि! क्या ये मुझसे प्रीति करेंगे। अर्थात् मैं इनसे प्रीति करनेके योग्य नहीं हूँ, मैं तो दीन हूँ, दूसरे वानर हूँ और ये राजकुमार मनुष्य हैं।*

* पंजाबीजी योंभी अर्थ करतेहैं—'प्रभुके स्नेहकी यह रीति देखकर सुग्रीव मनमें विचार करतेहैं कि क्या ये मुझसे विधिपूर्वक प्रीति करेंगे'। प्र० नेभी लगभग यही अर्थ रक्खाहै—'कपि मनमें इस प्रकार विचार करतेहैं कि क्या ये मुझसे 'विश्वासार्थ अग्न्यादि-साक्षि-विधिसे प्रीति करेंगे'? ☞ पर यह अर्थ क्लिष्ट है। जानपड़ताहै कि 'विधि' सम्बोधन न करना पड़े इस विचारसे ये अर्थ किएगएहैं। 'हे विधि', 'हे विधाता', 'हे भगवान्' इत्यादिका प्रयोग ऐसी अवस्थाओंमें करना मनुष्यका सहज स्वभाव है। वैसाही प्रयोग यहाँभी है और अन्यत्रभी अनेक स्थलोंपर हुआहै। यदि ऐसाही अर्थ करनाहो तो 'प्रीति-विधि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—हनुमान्‌जीके कहनेसे रामजीके हृदयमें सुग्रीवसे मित्रताकरनेकी इच्छा हुई।- [सबरीजीनेभी तो प्रथमसेही कहरखाथा कि—"पंपासरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई"। अतएव पूर्वसेही इच्छा थी। हनुमान्‌जी द्वारा उसकी पूर्ति हुई]। रामजीसे मित्रताकरनेकी इच्छा सुग्रीवके हृदयमें अब हुई; अतएव उस इच्छाको यहाँ कहतेहैं—'कपिकर मन बिचार...'। तात्पर्य्य कि एकहीकी इच्छासे प्रीति नहीं होती, इसीसे दोनों ओरकी इच्छा वर्णन करतेहैं।

१ वै०—'कपि कर मन बिचार...' यह पूर्वाभिलाषा आर्त्तप्रपन्नभावसे हुई। २—उधर जो हनुमान्‌जीने रामजीसे कहाथा कि 'तेहि सन नाथ मयत्री कीजै' उसीकी स्फूर्ति वा वही प्रीति करनेका भाव यहाँ सुग्रीवमें उत्पन्न हुआ।

तब हनुमंत उभय दिसि की † सब कथा सुनाइ।
पावक साषी देइ करि जोरी प्रीति ‡ दृढाइ ॥४॥

अर्थ—तब हनुमान्‌जीने दोनों ओरकी सब कथा सुनाकर अग्निको साक्षी देकर दोनोंमें दृढ़ कराके प्रीति जोड़दी। अर्थात् प्रतिज्ञापूर्वक दृढ़ प्रीति करादी।

टिप्पणी—१ 'तब' अर्थात् जब दोनोंके हृदयमें प्रीति करनेकी इच्छा हुई तब। २—दोनों तरफकी कथा सुनानेका भाव कि दोनों सब बातें समझकर प्रीति करें जिसमें फिर मित्रतामें बीच न पड़े। ३—'पावक साषी देइ०'। अग्निको साक्षी दिया। क्योंकि अग्नि धर्मका अधिष्ठान है। जो बीच रक्खेगा उसके धर्मका नाश होगा क्योंकि अग्निदेव सबके हृदयकी जानतेहैं, यथा—"तौ कृसानु सबकै गति जाना।'—(उ० § १०८)। अग्निको साक्षी इस तरह दिया कि दोनोंके बीचमें अग्नि जलादी और दोनोंसे भेंट कराई। * ४—'जोरी प्रीति

करिहहिं' अर्थात् प्रीतिका विधान करेंगे, ऐसा अन्वय कम क्लिष्ट होगा। पर ठीक अर्थ वही है जो ऊपर दियागयाहै।

† 'कह'—(का०)। ‡ 'दिढाइ'—(का०)।

* यथा—'काष्ठयोः स्वेन रूपेण जनयामास पावकम्। दीप्यमानं ततो वह्निं पुष्पैरभ्यर्च्य सत्कृतम् ॥१४॥ तयोर्मध्ये तु सुप्रीतो निदधौ सुसमाहितः। ततोऽग्निं दीप्यमानं तौ चक्रतुश्च प्रदक्षिणम् ॥१५॥ सुग्रीवो राघवश्चैव वय-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दृढ़ाइ' इति।—दोनों ओरकी कथा सुनानेसे व्यवहारकी सफ़ाई हुई, अब किसी प्रकारसे तर्क न उठेगा और अग्निको साक्षी देकर प्रीति जोड़ी कि यदि हम बीच रक्खेंगे तो अग्निदेव हमारे धर्मको नाश करेंगे।

नोट—दोनों ओरकी कथा कही। अर्थात् रामचन्द्रकी ओरसे बताया कि—ये इक्ष्वाकुकुलनंदन दशरथ महाराजके पुत्र हैं, पिताकी प्रेरणासे धर्मपालनके लिए वनमें स्त्री सहित आए। रावणने इनकी स्त्री हरली, उसीको ढूँढते हुए यहां आएहैं। ये सत्यसंध और अजेय हैं। तुम्हें इनकी स्त्रीका पता लगाना होगा।-(वा० ५। १-७)। और, सुग्रीवकी ओरकी कथा यह कही कि—सुग्रीवको बालिने राज्यसे निकालदियाहै, उसका राज्य और स्त्री छीनली और इनसे शत्रुता रखताहै जिससे ये भागे २ फिरतेहैं। आपको इनकी सहायता करना होगी। आप दोनोंकी समानावस्था है। आप इनका राज्य और स्त्री दिलावें, ये आपकी स्त्रीको खोजें।—(वा० ४। २६-२८)। दोनोंने तब अग्निको साक्षी देकर एक दूसरेकी सहायताकी प्रतिज्ञाकी, यह बात वाल्मीकीयके 'त्वत्प्रतिज्ञामवेक्षते' (२९।२२) से स्पष्ट सिद्ध है। पंजाबीजीकाभी यही मत है कि यहां प्रभुका कुल और गुण बताए। अग्निको साक्षी देनेके अनेक भाव लोगोंने कहेहैं। पादटिप्पणी †† देखिए।

स्यत्वमुपागतौ। ततः सुप्रीतमनसौ तावुभौ हरिराघवौ ॥१६॥ अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ न तृप्तिमभिजग्मतुः। त्वं वयस्योऽसि हृद्यो मे एकं दुःखं सुखं च नौ। १७॥'—(वा० कि० स० ५)। अर्थात् हनुमान्‌जीने दो लकड़ियोंको रगड़कर आग प्रकट की। उस जलतीहुई अग्निकी उन्होंने पुष्पोंसे पूजाकी और सावधान होकर दोनोंके बीचमें वह आग रखदी। दोनोंने उसकी प्रदक्षिणा की। इस प्रकार दोनों मित्र बनगए और दोनों प्रसन्न हुए।...सुग्रीवने प्रसन्नतापूर्वक रामचन्द्रजीसे कहा कि 'आप मेरे मित्र हैं, मेरे हृदयके प्रिय हैं; हम दोनोंका सुखदुःख समान है'। पुनः, २—यथा अध्यात्मे—"ततो हनुमान् प्रज्वाल्य तयोरग्निं समीरतः तावुभौ। रामसुग्रीवावग्नौ साक्षिणितिष्ठति ॥४४॥ बाहू प्रसार्य चालिंग्य परस्परमकल्मषौ... ॥४५॥"—(स० १)। अर्थात् तब हनुमान्‌जीने दोनोंके समीपही अग्नि जलाकर रखदी। दोनोंने अग्निको साक्षी देकर निष्कपट शुद्ध हृदयसे परस्पर हाथ फैलाकर गलेसे लगाकर भेंट की।

†† १—प्रीति करनेके समय अग्नि आदिकी साक्षी देनेकी परम्परा है—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा।
लछिमन रामचरित सब भाषा॥ § ४ (१)

अर्थ—दोनोंने प्रीति की, कुछ अन्तर न रखा। लक्ष्मणजीने सब रामचरित कहा।—(बीच रखना=भेद करना, दुराव रखना, पराया समझना। यह मुहावरा है।)

टिप्पणी १—'बीच न राखा' का भाव कि बीच रखनेसे प्रीतिका नाश होताहै। रामचरित्र कहनेका भाव यह है कि जिसमें रामजीका पुरुषार्थ सुनकर सुग्रीव रामजीको सामान्य न समझें, सामान्य समझनेसे प्रीति घटजातीहै जिससे मित्र-धर्मकी हानि होतीहै। २—सब चरित कहनेका भाव कि हनुमान्‌जीने दोनों ओरकी कथा संक्षेपसे कहीहै इस प्रकार कि 'रामजीकी स्त्रीका हरण हुआहै, तुम खोजकराओ और तुम्हारी स्त्रीका हरण हुआहै, रामजी तुम्हारे शत्रुको मार कर तुमको सुखी करेंगे; आप दोनों परस्पर मित्रता करें'—हनुमान्‌जीने इतनाही कहा। उन्होंने रामजीका जन्म, कर्म और प्रताप

(पं०)। २—अग्नि सबके हृदयमें बसतीहै, ये वचनके देवता हैं और मित्रताभी वचन द्वारा कीजारहीहै।—(शिला)। ३—पावक, सूर्य और तपस्वी तीनोंमें एकता है, तीनों तेजस्वी हैं। अग्नि और सूर्य्यका तेज प्रकट ही है और 'बिनु तप तेज कि कर बिसतारा' यह तपस्वीका तेजस्वी होना सिद्ध है। सूर्यपुत्र सुग्रीव है, तपस्वी रामजी हैं। अतः दोनोंकी प्रीतिकी दृढ़ताकेलिए तीसरे तेजोमय पुरुषकी साक्षी दी—(शिला)। ४—सूर्य्यको साक्षी न दिया क्योंकि रामचन्द्रजी सूर्य्यवंशके हैं और सुग्रीव सूर्य्यके अंशसे हैं।—(रा० प्र० भा०)। ५—करु०—अग्निकोही साक्षी दिया क्योंकि इस लीलामें अग्निही कारण है—जानकीजीको अग्निमें सौंपा है, अग्निसे लंकादहन करेंगे और अन्तमें अग्निदेवही जानकीजीको देंगे। यहाँ यह प्रीतिभी श्रीजानकीजीकेलिएही जोड़ीजारहीहै। अतः यहाँभी अग्निको साक्षी दिया। (नोट—इसमें यहभी बढ़ासकतेहैं कि श्रीरामजन्म अतएव श्रीरामचरितके आदिकारणभी अग्निदेवही हैं। इन्होंने हवि दिया जिससे चारों पुत्र हुए। इस तरह चरितके आदि, मध्य और अंत तीनोंमें अग्निदेवकी प्रधानता प्रत्यक्ष है।)। ६—मा० म०—अग्नि शिवका रूप है। अतएव शिवकी साक्षीभी होगई। और साक्षीकी यही परिपाटी है। ७—अन्य देवताओंसे अधिक सहायता इस चरितभरमें अग्निदेवकीही हुई, इसीसे यहाँभी वही साक्षी हुए।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं कहा। लक्ष्मणजीने ये सब चरित भी कहे। ३—लक्ष्मणजीके कहनेका भाव कि रामजी अपने मुखसे अपना प्रताप और पुरुषार्थ नहीं कह सकते। अथवा, सुग्रीवकी कथा हनुमान्‌जीने कही और रामजी का चरित्र लक्ष्मणजीने कहा। ४—प्रीति होनेके पीछे रामचरित कहने का भाव कि नीतिका मत है कि जब निष्कपट प्रीति होजाय तब अपनी गुप्त बात कहे—(पं०)। यथा भर्तृहरिशतके—"ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति। भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम्॥" अर्थात् दे और ले, अपनी गुप्त बात कहे उसकी पूछे, आप मित्रके यहां भोजन करे और मित्रको अपने यहां भोजन करावे—मित्रताके ये छः प्रकारके चिह्न हैं। *

शिला—हनुमान्‌जीने तो कहाही था, अब लक्ष्मणजीने क्यों कहा? इसका उत्तर कविने 'कथा' और 'चरित' इन्हीं दोनों शब्दोंमें देदिया है। हनुमान्‌जीने कथा कही। कथा शब्द स्त्रीलिङ्ग है, स्त्रीसंबंधी कथा का कहना सूचित करताहै। अर्थात् हनुमान्‌जीने सीताहरण और सीता-वियोग-जनित रामविरहवाली दुःखमयी कथा सुग्रीवसे और सुग्रीवका प्रियाविहीन वनवास रामजीसे कहा। लक्ष्मणजीने 'चरित्र' कहा। चरित पुल्लिङ्ग है, पुरुषार्थ-वाचकहै, जैसा अरण्यके प्रारंभमें कहाहै—'अब प्रभुचरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर-नर-मुनि भावन'। वही एवं वैसेही पुरुषार्थ-सूचक चरित लक्ष्मणजीने कहे—ताड़का, सुबाहु मारीच, कबंध, विराध, खरदूषणादिके वध कहे जो हनुमान्‌जीको अभी मालूम न थे। †

कह सुग्रीव नयन भरि बारी।
मिलिहि नाथ मिथिलेस कुमारी॥ ४ (२)

* वै०—उपरोक्त श्लोकमें प्रीतिके गुण कहे हैं और प्रीतिका स्वरूप यहहै—"अत्यन्त भोग्यता बुद्धिरानुकूल्यादि-शालिनी। परिपूर्ण स्वरूपा या सा स्यात्प्रीतिरनुत्तमा॥" अर्थात्—स्वरूपमें पूर्ण, अनुकूलता आदि गुणवाली, जो (स्वविषयक) अत्यन्त भोग्यता (मेरा सब कुछ इनके अर्पित है ऐसी) बुद्धि है, वही सब से श्रेष्ठ (इष्ट देवादि विषयक) प्रीति है। अन्य प्रकारकी प्रीति निकृष्ट प्रीति है।

† प्र०—१ दूसरा अर्थ यह है कि हनुमान्‌जीने लक्ष्मण और राम दोनोंका चरित सब कहा। २—लक्ष्मणजीके कहनेमें भाव यह है कि विरहादिके कथनमें लक्ष्मणजीही योग्य हैं। 'सब' अर्थात् वनगमन, जानकीहरण आदि सम्पूर्ण चरित।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—नेत्रोंमें जल भरकर सुग्रीवने कहा कि—हे नाथ ! मिथिलेश-कुमारी मिलेंगी ।

टिप्पणी—१—'नयन भरि बारी'। भाव कि सुग्रीव मित्रके दुःखसे दुःखी हुए हैं, यथा—'जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी ॥' ३—'मिलिहि' अर्थात् अवश्य मिलेंगी। ऐसा सुग्रीवने कैसे कहा ? उत्तर—उनको इससे पूर्ण विश्वास है कि सीताजीने हमको देखकर अपनी निशानी डालदीथी और अब रामचन्द्रजीभी आपसेही हमको आमिले इससे निश्चय है कि आगेका कार्य अवश्य होगा। ३—सुग्रीवने 'मिथिलेशकुमारी' को कैसे जाना ? उत्तर—लक्ष्मणजीने सब रामचरित कहा उसीमें मिथिलेशकुमारीका नाम आया, इसीसे जाना।—[नोट—वा० स० ६ में सुग्रीवने कहाहै कि हनुमान्‌जीने हमसे कहाहै कि आपकी स्त्री मैथिली जनकात्मजाको राक्षसने हरलियाहै।—'हनुमान्यन्निमित्तं त्वं निर्जनं वनमागतः।...रक्षसापहृता भार्या मैथिली जनकात्मजा ॥ १,८॥" और अध्यात्ममें लक्ष्मणजीसे सब रामचरित सुनकर तब सुग्रीवका कथन है, यथा—"लक्ष्मणस्त्वब्रवीत्सर्वंरामवृत्तान्तमादितः । वनवासाभिगमनं सीताहरणमेवच ॥ ३४ ॥ लक्ष्मणोक्तं वचः श्रुत्वा सुग्रीवो राममब्रवीत् ।"—(सर्ग १)]

नोट—१ "मिलिहि नाथ मिथिलेसकुमारी"। मिथिलेशकुमारीका नाम यहाँ साभिप्राय है, अर्थानुकूल है। मिथिलेश नाम इससे हुआ कि राजा निमिके शरीरके मथन करनेसे इस कुलके आदि पुरुष उत्पन्न हुए थे। ये उनकी कुमारी हैं। अतः इनकेलिए बहुत मंथन करना पड़ेगा। पुनः, इनकेलिए हम पृथ्वीभर मथ डालेंगे, कोई स्थान बिना देखे न रहने देंगे, और दुष्टोंका मान मथकर हम जानकीजीको लावेंगे। —(मा० म, पां०, रा० प्र० श०)। २—नेत्रोंमें जल भर आनेका कारण यह भी हो सकता है कि रघुनाथजीके स्त्रीवियोगको देखकर उन्हें अपनी स्त्रीके वियोगका स्मरण हो आया और यह समझकर उनको कष्ट हुआ कि इनको भी हमारेही समान बहुत दुःख है। सुग्रीव स्त्री-वियोगके दुःखको भलीभाँति जानते हैं क्योंकि उनपर भी यह आपदा पड़ चुकीहै।—(पं०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा।
बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा॥ § ४ (३)
गगन पंथ देषी मैं जाता।
परबस परी बहुत बिलपाता॥ ,, (४)

अर्थ—यहाँ एक बार मैं मंत्रियों सहित बैठा हुआ (कुछ) विचार कररहाथा †। पराये वा शत्रुके वशमें पड़ीहुई बहुत विलाप करती आकाशमार्गसे जातीहुई (मिथिलेशकुमारीको) मैंने देखा।

टिप्पणी—१"मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा।०" इति।—'इहाँ' कहकर देश निश्चित किया कि इसी स्थानसे हमने देखाहै, नहीं तो रामजी पूछते कि तुमने सीताजीको कहाँ देखा। देश कहकर फिर काल कहा, पर कालका नियम नहीं करते, केवल 'एक बार' कहते हैं। इससे जनाया कि दिनका स्मरण हमको नहीं है। काल कहकर आगे वस्तु कहेंगे, यथा—'हमहिं देखि दीन्हेउ पट डारी'। वस्त्र वस्तु है। इस प्रकार यहाँ देश, काल और वस्तु तीनों कहे। २—"परबस-परी बहुत बिलपाता" इति।—'पर' शब्दके चार अर्थ हैं दूर, अन्य, शत्रु और परमात्मा। यहाँ अन्य और शत्रु दो अर्थों में प्रयुक्त हुआहै। यथा—'परोदूरान्यवाचीस्यात् परोऽरि परमात्मनोः" इति वैजयंती कोशे।

नोट १—इनका समानार्थी श्लोक अध्यात्ममें है—'एकदा मंत्रिभिः सार्द्धं स्थितोऽहं गिरिमूर्द्धनि। विहायसानीयमानां केनचित् प्रमदोत्तमाम्॥ ३७॥" अर्थात् एकबार मंत्रियों सहित मैं पर्वत-शिखरपर बैठाथा उसी समय एक पुरुष एक उत्तम स्त्रीको आकाश-मार्गसे लिए जातेहुए मैंने देखा—(सर्ग १)। २—नल, नील, जाम्बवान् और हनुमान्जी ये चार मंत्री हैं। ३—'परबस परी बहुत बिलपाता', यथा—'लेइ दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं॥'—आ० § ३० (३)। 'बहुत बिलपाता' का वही भाव है जो आ० § ३० (३) में कहागया।

† क्या विचार कररहेथे? यही कि हमारी सारी आयुही बीतीजातीहै, न जाने भगवान् मुझे फिर स्त्री, राज्य, आदि का सुख देंगे! न जाने बालिके भयसे कभी प्रभु मुझे मुक्तकरेंगे! क्या उपाय करें? इत्यादि।—(मा० त० प्र०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राम राम हा राम पुकारी।
हमहिं देखि दीन्हेउ पट डारी ॥ § ४ (५)
मागा राम तुरत तेहिं दीन्हा।
पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ॥ ,, (६)

अर्थ—राम ! राम ! हा राम ! पुकारतीथीं, हमको देखकर अपना वस्त्र गिरा दिया। रामजीने उसे तुरंत माँगा और सुग्रीव ने तुरंतही (ला) दिया। वस्त्रको छातीसे लगाकर रामचन्द्रजीने अत्यंत शोचकिया।*

टिप्पणी १—रामराम कहकर पट डालनेका तात्पर्य यह था कि वानर जानजायँ कि ये रामजीकी स्त्री हैं, रामजीसे हमारा हाल कहें और उनको हमारा वस्त्र दें। इसीसे पतिका नाम लिया, नहीं तो पतिका नाम न लेना चाहिए। पुकारकर कहनेका भाव कि विमान बहुत ऊँचेसे जारहाथा; पुकारकर न कहतीं तो वानर न सुनपाते।

(नोट—पं० रामकुमारजीने 'पुकारी'का अर्थ'पुकारकर' किया है)।

२—"मागा राम तुरत तेहि दीन्हा"। यहाँ 'तुरत' दीपदेहरी है। रामजीने शीघ्र माँगा, यथा—"तमब्रवीत्ततो रामः सुग्रीवं प्रियवादिनम्। आनयस्व सखे शीघ्रं किमर्थं प्रविलंबसे ॥१३॥" अर्थात् प्रिय संदेश देनेवाले सुग्रीवसे रामचन्द्रजी बोले कि हे सखे ! शीघ्र लाओ, किसलिए बहुत विलंब कररहेहो। और सुग्रीवजी तुरत लाए, यथा—"एवमुक्तस्तु सुग्रीवः शैलस्य गहनां गुहाम्। प्रविवेश ततः शीघ्रं राघवप्रियकाम्यया ॥१४॥ उत्तरीयं गृहीत्वा तु स तान्याभरणानि च। इदं पश्येति रामाय दर्शयामास वानरः ॥१५॥' अर्थात् ऐसा कहनेपर सुग्रीवने पर्वतकी छिपी हुई कंदरामें तुरत प्रवेश किया और 'वस्त्र और

* यथा—"क्रोशंती राम रामेति दृष्ट्वास्मान् पर्वतोपरि। आमुच्याभरणान्याशुस्वोत्तरीयेण भामिनी ॥३८॥ निरीक्ष्याधः परित्यज्य क्रोशंती तेन रक्षसा। नीताहं भूषणान्याशु गुहायामक्षिपं प्रभो ॥ ३९ ॥'' हृदि निक्षिप्य तत्सर्वं रुरोद प्राकृतो यथा ॥४१॥'—(अध्यात्म स० १)। अर्थात् 'राम राम' ऐसा पुकारतीहुई हमको पर्वतपर देखकर अपने आभूषण उतार वस्त्रमें बाँधकर हमारी तरफ देखकर वस्त्र गिरादिये। मैंने उन्हें गुहामें रखा है, वह स्त्री वैसीही रोती रही, राक्षस उसे लेगया।···रामजीने उसे हृदयसे लगालिया और प्राकृत मनुष्योंकी तरह रोने लगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गहने देखिए' ऐसा कहते हुए रामचन्द्रजी को उन्होंने ला दिखाया। —(वा० स० ६)।

३—'सोच अति कीन्हा' इति। भाव कि सोच तो प्रथम ही करते रहे अब प्रिय का चिह्न पाने पर सोच बहुत अधिक होगया अर्थात् रोने लगे। यथा अध्यात्मे—'विमुच्य रामस्तद्दृष्ट्वा हा सीतेति मुहुर्मुहुः।'—(स० १।४१) अर्थात् बारंबार हा सीते! हा सीते! ऐसा कहकर रोने लगे। यहां विप्रलंभका उद्दीपन है, यथा—'सुधि आवत जिनके लखे ते उद्दीप बखान'।

नोट—यहां यह समझकर कि सीताजी पतिका नाम कैसे लेंगी, मयङ्ककार एवम् करुणासिन्धुजीने "राम राम हा राम पुकारी" का अर्थ यों किया है कि "श्रीजानकीजीका दुःखमय विलाप सुनकर मैंने राम! राम! हा राम! ऐसा पुकारा" (उच्चारण किया)! तब यह समझकर कि ये कोई रामभक्त हैं हमारी ओर देखकर उन्होंने वस्त्र गिरा दिया। ऐसा अर्थ करनेके लिए 'सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम', इसका प्रमाण दियाजाताहै। पाँडेजीने दोनों अर्थ दिए हैं। वैजनाथजीने भी इसी अर्थको ग्रहण कियाहै। पर वाल्मीकि, अध्यात्म आदि रामायणोंसे यही सिद्ध होताहै कि राम! राम! हा राम! ऐसा कह कहकर जानकीजी विलाप करती चली जाती थीं। सुग्रीवने भी यही कहा और संपातीने भी वानरोंसे यही बात कही कि वह राम! राम! लक्ष्मण! लक्ष्मण! चिल्लाती जाती थीं। यथा वाल्मीकीये—"क्रोशन्ती रामरामेति लक्ष्मणेति च विस्वरम्" (स० ६। १०), "क्रोशन्ती राम रामेति लक्ष्मणेति च भामिनी। भूषणान्यपविध्यन्ती गात्राणि च विधुन्वती॥" (५८।१६) और 'तां तु सीतामहं मन्ये रामस्य परिकीर्तनात्' (५८।१८)

अर्थात् राम,राम, लक्ष्मण लक्ष्मण चिल्लाती थी और आभूषणोंको फेंकती एवं अंगोंको पटकती थी। मैं उसे सीता इससे समझता हूँ कि वह राम राम पुकारतीथी। ऐसाही हनुमन्नाटकमें भी कहाहै। यथा—"पापेनाकृष्यमाणा रजनिचरवरेणांबरेण व्रजन्ती। किष्किन्धाद्रौ मुमोच प्रचुरमणिगणैर्भूषणान्यर्चितानि॥ हाराम प्राणनाथेत्यहह जहि रिपुं लक्ष्मणेनालपन्ती। यानीमानीति तानि क्षिपति रघुपुरः कापि रामाञ्ज-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नेयः ॥"—(अङ्क ५ श्ल० ३७)। अर्थात् राक्षसोंमें श्रेष्ठ पापी रावणसे ग्रहणकी हुई, 'हा राम! हा प्राणनाथ! अहह! इस शत्रुको जीतो' इस प्रकार कहते आकाशमार्गसे जातीहुई अनेक मणिगणयुक्त जिन आभूषणोंको किष्किन्धापर्वतपर डालदिया था, वेही आभूषण पवनकुमार हनुमान्‌जीने रामजीके अग्रभागमें रखदिए।

ये सब प्रमाण उस अर्थके पोषक हैं जो ऊपर दियागयाहै। और यही अर्थ ठीक जँचनेका एक कारण तो संपातीहीके वचनोंमें मिलता है कि इसी नामके पुकारनेसे मैं उन्हें रामजीकी स्त्री समझताहूँ। इस विषयमें आ० §२८ (२५) और §२९ में भी लिखाजाचुकाहै वहां देखिए।

गौड़जी—एक तो यह मायाकी सीता हैं। इन्हें नाम लेनेमें कोई हर्ज भी नहीं है दूसरे आपद्ग्रस्ता पत्नी रक्षार्थ पतिका नाम न ले, विशेषतः जब कि और-कोई उपाय नहीं है, तो करे क्या? अतः आपद्धर्म्मकेलिए ज्येष्ठपुत्र, अपना, गुरुका, पति वा पत्नीका नाम न लेनेवाला नियमबाधक नहीं हो सकता।

स्मृतिका श्लोक यह है जिसके प्रमाणसे नाम लेनेका निषेध है। "आत्मनामगुरोर्नाम नामातिकृपणस्यच। श्रेयस्कामो न गृह्णीयात् ज्येष्ठापत्य कलत्रयोः" "श्रेयचाहने वाला" न ले। यह उक्ति साधारण दशाके लिये है। यहां सीताजीकी आपद्ग्रस्त दशा है।

क्षीरस्वामीने अमरकोशकी टीकामें भी लिखाहै। "किमाह सीता दशवक्त्रनीता, हाराम! हादेवर! तात! मातः!"

२—तीन बार, राम! राम! हा राम!, कहकर जनाया कि ऐसेही बराबर कहती रहीं। तीनसे बहुत बार जनाया। पंजाबीजीने अनेक भाव कहेहैं पर क्लिष्ट कल्पना समझकर यहां वे भाव उद्धृत नहीं किएगए।

३—"सोच अति कीन्हा", यथा गीतावल्याम् (पद २१७, आ० १)—

'भूषन बसन बिलोकत सियके।
प्रेम बिबस मन पुलकित तनु नीरजनयन नीर भरे पियके ॥१॥
सकुचत कहत सुमिरि उर उमगत सील सनेह सुगुनगन तियके।
स्वामिदसा लषि लषन सखा कपि पधिलेहैं आँच माठ मानो घियके ॥२॥
सोचत हानि मानि मन गुनि गुनि गये निघट फल सकल सुकियके।
बरने जामवंत तेहि अवसर बचन बिबेक बीररस बियके ॥ ३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धीर बीर सुनि समुझि परसपर बल उपाय उढ़कत निज हियके।
तुलसिदास यह समउ कहेते कबि लागत निपट निठुर जडजियके ४

कह सुग्रीवँ सुनहु रघुबीरा।
तजहु सोच मन आनहु धीरा॥ § ४ (७)
सब प्रकार करिहौं सेवकाई।
जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई॥ ,, (८)

अर्थ—सुग्रीवने कहा कि 'हे रघुबीर सुनिए। शोचको त्याग कीजिए और मनमें धीरज लाइए (धारण कीजिए)। मैं सब प्रकारसे आपकी सेवा करूंगा जिस प्रकारसे जानकीजी आकर आपको मिलें।

टिप्पणी—१ 'सुनहु रघुबीरा'। 'रघुबीर' 'सम्बोधनका भाव कि आप वीर हैं, वीर होकर सोच करना और अधीर होना अयोग्यहै; अतएव आपको सोच न करना चाहिए और न अधीर होना चाहिए। सोचके रहनेसे धीरज नहीं आता इसीसे प्रथम सोच त्याग करनेको कहा, तब धीरज लानेको २—"सब प्रकार करिहौं सेवकाइ" इति (क)—सब प्रकारकी सेवा अर्थात् सीताजीका पता लगाना, पता मिलनेपर शत्रुसे लड़ना और जानकीजी को ले आना, इत्यादि। (ख)—'सेवकाई' करनेको कहतेहैं, सहायता करनेको नहीं कहते, क्योंकि सुग्रीव दास हैं। दास सेवा करतेहैं और मित्र एवं बड़े सहायता करते हैं; सुग्रीव अपनेको बराबरका या बड़ा नहीं मानते। २—'जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई' इति। 'आई' का भाव कि आपको कहीं जाना न पड़ेगा, मैं आपके शत्रुको मारकर सीताजीको आपके पास ले आऊँगा†। ☞ सुग्रीवने अपना दुःख भुलाकर रामजीको धीरज दिया और

† १. यथा अध्यात्मे—"सुग्रीवोऽप्याह हे राम प्रतिज्ञां करवाणि ते। समरे रावणं हत्वा तव दास्यामि जानकीम्॥ ४३॥"—(स० १) अर्थात सुग्रीवभी निश्चय करके बोले कि 'हे राम! मैं प्रतिज्ञा करताहूं कि रावणको समरमें मारकर जानकीजीको आपसे मिला दूंगा। २—यथा वा० ७। ३-४—'सत्यं तु प्रतिजानामि त्यजशोकमरिंदम्। करिष्यामि तथा यत्नं यथा प्राप्स्यसि मैथिलीम॥ ३॥ रावणं सगणं हत्वा परितोष्यात्म पौरुषम्। तथास्मि कर्ता न चिराद्यथा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सेवा करनेकी प्रतिज्ञाकी; इसी प्रकार रघुनाथजी अपना दुःख भुलाकर सुग्रीवके दुःखका कारण आगे पूछते हैं।

नोट—"रघुबीर" और "तजहु सोक मन आनहु धीरा" में वे सब भाव गृहीत हैं जो वा० ७। ५-१३ में कहे हैं—इस दैन्यको त्याग कीजिए, अपने धैर्य्यका स्मरण कीजिए, आप सदृश पुरुषोंको ऐसी क्षुद्रबुद्धिका कार्य उचित नहीं, फिर आप सदृश महात्मा, धीर, शिक्षितकी तो बातही क्या है! अपने अश्रुओंको अपनी धीरतासे रोकिए, सत्पुरुषों द्वारा बाँधी हुई धीरताका त्याग आप न करें। व्यसनमें, कष्ट, गरीबी, भय एवं जीवनसंकट उपस्थित होनेपर जो धीरतापूर्वक बुद्धिसे काम लेतेहैं वे दुःखी नहीं होते।...जो शोक करते हैं उन्हें सुख नहीं होता, उनका तेज नष्ट हो जाताहै। अतएव आपको शोक न करना चाहिए। जो शोकके अधीन होजातेहैं उनका जीवन संशयमें पड़जाताहै। अतएव आप शोक छोड़ें और धैर्य धारण करें।‡

पुनः, २-भाव कि रघुवंशी सभी वीर होते हैं, यथा-'रघुबंसिन्हमहँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहहि न कोई', 'कालहु डरहिं न रन रघुबंसी', और आप तो उस कुलमें भी वीरशिरोमणि हैं, आपको तो कादरकी तरह सोच न करना चाहिए वरन पुरुषार्थका भरोसा रखना चाहिए। पुनः, तात्पर्य्य यह कि सोच वीररसका नाश करनेवाला है इससे उसका त्याग जरूरी है और धैर्य्य वीररसका बढ़ानेवाला

प्रीतोभविष्यसि ॥ ४ ॥" अर्थात् मैं सत्य प्रतिज्ञा करताहूं कि मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि आप मैथिलीजीको पावें। मैं रावणको सेनासहित मारकर अपने पुरुषार्थको संतुष्ट कर वह करूँगा जिससे आप प्रसन्न हों।

‡यथा—"अलं वैक्लव्यमालम्ब्य धैर्यमात्मगतं स्मर। त्वद्विधानां न सदृशमीदृशं बुद्धिलाघवम् ॥५॥ "महात्माच विनीतश्च किं पुनर्धृतिमान्महान् ॥ ७ ॥ बाष्पमापतितं धैर्य्यान्निगृहीतुं त्वमर्हसि। मर्यादां सत्त्वयुक्तानां धृतिं नीस्त्रष्टुमर्हसि ॥ ८ ॥ व्यसने वार्थकृच्छ्रे वा भये वा जीविकान्तगे। विमृशंश्च स्वया बुद्ध्या धृतिमान्नावसीदति ॥ ९ ॥ ये शोकमनुवर्तन्ते न तेषां विद्यते सुखम्। तेजश्च क्षीयते तेषां न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ १२ ॥ शोकेनाभिप्रपन्नस्य जीविते चापि संशयः। स शोकं त्यज राजेन्द्र धैर्य्यमाश्रय केवलम् ॥ १३ ॥"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है अतएव धैर्य्य धारण करना उचितहै; इसीसे शत्रुका पराजय कर सकेंगे।

सषाबचन सुनि हरषे कृपासिंधु बलसीवँ।
कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीवँ ॥५॥

अर्थ—दयाके सागर, बलकी मर्यादा श्रीरामजी मित्रके वचन सुनकर प्रसन्न हुए, (और बोले कि) हे सुग्रीव ! तुम किस कारण वनमें रहते हो, मुझसे कहो।

टिप्पणी १—'सषाबचन सुनि हरषे' इति। भाव कि जैसा कुछ सखा का धर्महै वैसाही सुग्रीवने कहाहै *। २—कृपासिंधु हैं अतएव सुग्रीवपर बड़ी कृपा कररहेहैं और बलसींव हैं अतएव उसके शत्रुको मारेंगे। ३—'कारन कवन बसहु बन०' इति। वनमें बसनेका कारण तो हनुमान्‌जी कहही चुकेहैं, यथा—'येहि बिधि सकल कथा समुझाई।' फिर यहां रामजी सुग्रीवसे क्यों पूछतेहैं ? सुग्रीवके मुखसे कहलानेमें कारण यहहै कि जब वह स्वयं बालिका अपराध कहे तब हम बालिको दण्ड दें—यह नीतिका मत है।

पं०—"कृपासिंधु बलसीवँ" का भाव यह है कि किसीके आश्रित इनका काम नहीं है वरन इनके बलके आश्रित औरोंके कार्य होनेहैं। इन्होंने मित्रताभी केवल कृपा करके की है और सुग्रीवका कामभी उसपर दया होनेके कारणही करेंगे। सुग्रीवसे कारण पूछनेमें कृपाही प्रधान है, पूछा जिसमें वह अपने मुखसे बालिका विरोध कहे और उसको मारने की प्रार्थना करे। क्योंकि 'बिनु अपराध प्रभु हतहिं न काहू'।

नाथ बालि अरु मैं द्वौ भाई।
प्रीति रही कछु बरनि न जाई॥ § ५ (१)
मयसुत मायावी तेहि नाऊँ।
आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ॥ ,, (२)

* यथा (वा० ७। १७)—"कर्तव्यं यद्वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च। अनुरूपं च युक्तं च कृतं सुग्रीव तत्त्वया" अर्थात् हे सुग्रीव ! तुमने वही किया जो स्नेही और हितैषी मित्रका कर्तव्य है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्ध † राति पुर-द्वार पुकारा।
बाली रिपुबल सहै न पारा ॥ § ५ (३)

अर्थ—हे नाथ ! बालि और मैं दोनों भाई हैं। हम दोनोंमें ऐसी प्रीति रही कि वर्णन नहीं कीजासकती। हे प्रभु ! मयदानवका पुत्र जिसका नाम मायावी था वह हमारे ग्राममें आया और आधी रातके समय नगरके द्वार (फाटक) पर उसने पुकारा (अर्थात् ललकारा)। बालि शत्रुके बलको न सह सकताथा।

टिप्पणी—१'प्रीति रही' का भाव कि पहले थी,अब नहीं है। प्रथम बालिका नाम कहकर जनाया कि वह बड़ा भाई है। २—मायावी तेहि नाऊँ"। मायावी और 'नाऊँ' दोनों शब्द देनेमें भाव यह है कि मायावीका अर्थ है कि—'जो मायासे युक्त हो'। इस शब्दके कहनेपर पूछा जासकताथा कि उसका नाम क्या है, 'मायावी' तो केवल विशेषण है ? अतएव 'नाऊँ' पद देकर जनाया कि यह उसका नाम ही है। ३ (क)—पारा=सका, यथा—'सोक बिकल कछु कहै न पारा', इत्यादि। (ख) 'अर्धराति पुरद्वार पुकारा'। आधीरातमें आनेका कारण यह था कि रातमें राक्षसोंका बल अधिक होजाताहै उसपरभी आधीरात जो रात्रिकी तरुणावस्था है, यथा—'पाइ प्रदोष हर्ष दसकंधर', 'जातुधान प्रदोषबल पाई। धाए करि दससीस दोहाई' इत्यादि। भाव कि पूर्ण बल पाकर आया। पुरके द्वारपर खड़ा होकर पुकारा क्योंकि भयके मारे भीतर न गया, द्वारपरही खड़ा होगया कि जो निकले उसे मैं मारूँ और यदि बालि बाहर निकला तो भाग जाऊँगा। —(पं०)।

नोट—'पुकारा' शब्दमें सिंहनाद करना, क्रोधपूर्वक गर्जनकरना और ललकारना—ये सब भाव आगए जो अध्यात्म और वाल्मीकीयमें हैं। यथा—'किष्किंधां समुपागत्य बालिनं समुपाह्वयत् ॥४७॥ सिंहनादेन महताबाली तु तदमर्षणः'।—(अध्य० स० १); 'नर्दतिस्म सुसंरब्धो बालिनं चाह्वयद्रणे' (वा० ९।५)। अर्थात् आकर बालिको लड़नेके लिए ललकारा, घमण्डसे सिंहकी तरह गरजने लगा।

† 'अद्ध'—(भा० द०, का०)। 'अर्ध'—(ना० प्र०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१ मा० म०—'आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ'। पहले जब प्रेम था तब दोनोंका यह नगर था। फिर सुग्रीव राजा हुआ तब भी उसका वह नगर था। अतः 'हमरे' कहा। अथवा अब विश्वासहै कि फिर हमें मिलेगा इससे 'हमरे' कहा।

२ (क) शिला—अर्द्धरात्रिमें ललकारनेका भाव यह है कि मनमें समझताहै कि बालिसे जीत न सकूँगा। रातमें जब वह सोताहो तब पुकारकर यह कहताहुआ लौटजाऊँ कि बालि भाग गया। इस-तरह मेरी जीत होजायगी। इसी कारण बालि अर्द्धरात्रिमें उसका पीछा करने चला; नहीं तो भागेहुएको खेदना एवं अर्द्धरात्रिका युद्ध ये दोनों विपरीत (अर्थात् वीरोंकेलिए अयोग्य और निषिद्ध) हैं। (ख) पं०—द्वारपर पुकारा कि भीतरजानेसे कहीं बालि घेरकर पकड़ न ले। (ग) वानरको रात्रिमें दिखाई कम देताहै; अतः वह पीछा न करसकेगा यह समझकर रातमें आया। (घ) मा० म०—(अथवा) रात्रिमें स्त्रियोंके साथ कामकल्लोलमें प्रवृत्त होगा, उसके भंग होनेसे अवश्य शत्रु समझकर बालि मुझसे लड़ने आवेगा अत-एव अर्द्धरात्रिमें आया।

१—बालि और सुग्रीव।

कहतेहैं कि एक बार मेरु पर्वतपर तपस्या करते समय ब्रह्माकी आँखोंसे गिरेहुए आँसुओंसे एक बंदर उत्पन्न हुआ जिसका नाम ऋक्ष-राज था। एक बार ऋक्षराज पानीमें अपनी छाया देखकर उसमें कूद पड़ा। पानीमें गिरतेही उसने एक सुन्दर स्त्रीका रूप धारणकरलिया। एक बार उस स्त्रीको देखकर इन्द्र और सूर्य्य मोहित होगए। इन्द्रने अपना वीर्य्य उसके मस्तकपर और सूर्य्यने अपना वीर्य्य उसके गले पर डाल दिया। इस प्रकार उस स्त्रीको इन्द्रके वीर्यसे बालि और सूर्य्य के वीर्यसे सुग्रीव नामक दो बंदर उत्पन्न हुए। इसके कुछ दिनों पीछे उस स्त्रीने फिर अपना पूर्व रूप धारण करलिया। ब्रह्माकी आज्ञासे उसके पुत्र किष्किंधामें राज्य करने लगे। (वा० स० ५७, श० सा०)।

बालि महाबली था। सुग्रीवने रामजीसे बाल्मीकीय सर्ग ७ में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कहाहै कि बालि पश्चिम समुद्रसे पूर्व समुद्रतक और दक्षिण समुद्रसे उत्तरसमुद्रतक, सूर्योदयके पूर्वही बिना परिश्रमं जाता और लौट आता है। बड़े २ पर्वतोंके शिखर पकड़कर उखाड़कर ऊपर फेंकताहै और फिर लोक लेताहै। बड़े २ वृक्षोंको उखाड़ डालताहै। रावण इसे छलसे जीतने आया। बालि उस समय समुद्रमें सन्ध्या तर्पण कर रहाथा। उसी दशामें उसने रावणको पकड़कर बगलमें दाब लिया। छः मास तक दबाए रक्खा। इत्यादि। ऐसाभी कोई २ कहते हैं कि इन्द्रने जो माला इसे दी थी उसका यह प्रभाव था कि उसको पहनकर जब बालि किसीसे लड़ता तो बालिमें शत्रुका आधा बल खिंच आताथा। पर इसका प्रमाण कहीं मिला नहीं है। वा० २२ में लिखा है कि इसने गोलभनामक गंधर्वसे १५ वर्षतक बराबर युद्ध किया और अंतमें उसको मारडाला। ऐसा पराक्रमी था।

२—मयसुत मायावी और दुंदुभी

मयनामका एक महातेजस्वी मायावी दैत्य था जो दितिका पुत्र था। यह शिल्प-विद्यामें परम निपुण था। यह हेमा नामक अप्सरामें आसक्त होगयाथा। इन्द्रने इसको वज्रसे मारडाला।—(वा० ५२) इसके दो पुत्र मायावी और दुन्दुभी हुए। बालिने दुन्दुभीको मार-डालाथा। दुंदुभीकी कथा वा० ११ में इस प्रकार दी हुईहै—दुंदुभी नामका एक बड़ा बली असुर था। उसके हज़ार हाथियोंका बलथा वह कैलाशशिखर सरीखा बड़ा ऊँचा और विशालकाय था। वरदान से मोहित होकर वह दुष्ट समुद्रसे युद्ध करनेगया, समुद्रने उससे कहा कि मैं तुम्हारे युद्धके योग्य नहीं हूँ, तुम हिमवान्‌के पास जाओ जो शङ्करके श्वसुर और ऋषियोंके आश्रयदाता हैं। तब वह हिमवान् के पास गया। उन्होंनेभी अपनी असमर्थता कही और बताया कि तुम इन्द्रपुत्र बालिके पास जाओ, वह प्रसिद्ध बलवान् है, किसीकी लल-कार सह नहीं सकता। दुंदुभीका वेष भैंसेकासा था। और उसके सींग बड़े तीक्ष्ण थे। वह किष्किंधामें आकर गरजने लगा, सींगों से नगरके द्वारको तोड़ने लगा। यह सुनकर बालि फाटकपर आया और उससे समझाकर कहा कि अपने प्राण लेकर चले जाओ। इसपर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसको क्रोध आगया और उसने बालिको ललकारा। बालिने उसके सींगोंको पकड़कर और खूब उसे घुमाकर पटकदिया। फिर घोर युद्ध हुआ। बालिने उसे पटककर उसको मर्दन करडाला। उसके मरनेपर उसके शवको बालिने एक योजनपर वेगसे फेंकदिया। वेगसे फेंकेहुए दुंदुभीके मुखादिसे निकलेहुए रुधिरके बूँद हवासे मतंगजीके आश्रममें जा पड़े। जिसे देखकर मुनिने कुपित होकर शाप देदिया कि जिसने इस शवको फेंककर इस बनके वृक्ष तोड़े और इस आश्रमको रुधिर-बिंदुसे अपवित्र किया है वह यदि आश्रमके आस पास एक योजन तक आयगा तो उसके सिरके सैकड़ों टुकड़े होजायँगे।

दुंदुभीके मारेजानेपर मायावी अपने भाईका बदला बालिसे लेनेकेलिए आया। बालिसे मायावीसे स्त्रीके कारणभी वैर होगयाथा इसीसे वह बालीकी घातमें रहताथा। (वा० स० ९)। संभव है कि इसीसे वह गुहामें घुसगया।

धावा बालि देषि सो भागा।
मैं पुनि गएउँ बंधु सँग लागा॥ § ५ (४)
गिरि बर गुहा पैठ सो जाई।
तब बाली मोहि कहा बुझाई॥ ,, (५)

अर्थ—बालि उसे देखकर दौड़ा और वह बालिको देखकर भागा। मैंभी भाईके संग लगा चलागया। वह एक बड़े पर्वतकी एक श्रेष्ठ (बड़ी) गुफामें जाघुसा। तब बालिने मुझसे समझाकर कहा।

टिप्पणी १—(क) 'धावा बालि' का भाव कि राजाको विचारकर शत्रुके पास जानाचाहिए, पर बालि बिना विचारे अर्द्धरात्रिको अकेलेही शत्रुके पीछे दौड़ा। इसका कारण पूर्वही कहदियाहै कि 'बाली रिपुबल सहै न पारा' अर्थात् उसे अपने बलका बड़ा अभिमान है इसीसे कुछ विचार न किया। (ख)—'देखि सो भागा' कहकर सूचित किया कि बालि को देखतेही शत्रुके लड़नेका उत्साह नहीं रह जाता। (ग) 'मैं पुनि', यह चित्रकोटदेशकी बोली है। दोनों शब्द मिलकर एकही अर्थका बोध करतेहैं। मैं पुनि=मैं। यथा—'मैं पुनि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पितु प्रमान करि बानी', 'मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई'। (घ, 'बंधु सँग लागा' अर्थात् बालिने मुझसे साथ चलनेको नहीं कहा, मैं स्वयंही भाईके प्रेमसे संग होगया। यथा--'ततोऽहमपि सौहार्दान्निःसृतो बालिना सह''—(वा० ९।८) अर्थात् तब मैंभी प्रेमकेकारण बालिके साथ निकला। भाईके साथ लगे चलेगए यह सुग्रीव की प्रीतिहै। और, बाली स्वयं गुहामें घुसा सुग्रीवको साथ न घुसने दिया, यह बालिका प्रेम छोटे भाईपर दिखाया। पूर्व जो कहा था कि 'प्रीति रही कछु बरनि न जाई' उसका यहां चरितार्थ है।

२ (क)—'गिरि बर गुहा पैठ सो जाई' इति। भारी गुहामें यह समझकर जा घुसा कि बालि भयानक गुफ़ा देखकर लौट जायगा। बानर अँधेरे स्थानमें नहीं जाते। (ख) 'कहा बुझाई'। भाव कि यह राक्षस सम्मुख बलसे नहीं लड़सका, गुफ़ामें घुसगया; इससे जान-पड़ताहै कि वहाँपर औरभी राक्षस हैं न जानें क्या माया रचें तब हम दोनों भाई मारे जायंगे। अतएव तुम दरवाज़े पर रहो।

नोट—१ मायावी ने देखा कि बालि आया और पीछे पीछे कुछ दूर उसका भाई सुग्रीवभी है; अतएव वह डरकर भागा, यथा—'स तु मे भ्रातरं दृष्ट्वा मां च दूरादवस्थितम्। असुरो जातसंत्रासः प्रदुद्राव तदा भृशम्'—(वा० ९।९)। पुनः, यथा—' अनुयातश्च मां तूर्णमयं भ्राता सुदारुणः। स तु दृष्ट्वैव मां रात्रौ सद्वितीयं महाबलः॥"—(वा० ९।१५) अर्थात् यह मेरा अत्यन्त दारुण भाईभी साथ था, मेरे साथ एक दूसरे बली पुरुषको देखकर वह भागा। मयङ्ककार लिखतेहैं कि दोनोंको देखकर भागा कि कहीं ऐसा न हो कि दोनों मिलकर मुझे घेरलें, अतः भागा। अथवा, छलसे भागा कि इनको दूर लेजायँ तो बालि निस्सहाय रहजायगा। यह संभव है कि इससे भागा हो कि ये पीछा करें तो मैं इन्हें गुहामें लेजाऊँ जहां मेरे सब सहायक हैं और रातभी है, बालिको वहां सब मिलकर मारलेंगे। यह अनुमानभी ठीक हो-सकताहै क्योंकि उस गुहामें सत्यही उसके बहुत साथी मिले। यथा 'निहतश्च मयासद्यः स सर्वैः सह बन्धुभिः' अर्थात् (बालि कहताहै कि) मैंने उस शत्रुको बान्धवोंके सहित शीघ्र मारडाला।

२—"कहा बुझाई" में यहभी भाव है कि ऐसा न हो कि इसके कुछ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साथी इधर उधर बाहर छिपेहों, वे हम दोनोंको गुहामें जाते देख पीछेसे आघेरें, इससे तुम यहां सावधान होकर ठहरो; मैं इसे मारकर आताहूँ। यथा—"इह तिष्ठाद्य सुग्रीव बिलद्वारि समाहितः। यावदत्र प्रविश्याहं निहन्मि समरे रिपुम्॥" (वा० ९।१३)। पुनः, भाव कि उसने यह समझाया कि यह बारम्बार उपद्रव करेगा इससे अब इसे मारडालनाही उचित है।—(प्र०)।

परिषेसु † मोहि एक पषवारा।
नहिं आवौं तब जानेसु ‡ मारा॥ §५ (६)
मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी।
निसरी रुधिर धार तहँ भारी॥ ,, (७)

शब्दार्थ—परिषेसु=परखना, प्रतीक्षाकरना, राह देखना, आसरा देखना। पषवारा=पक्ष+वार=१५ दिन। चन्द्रमासका पूर्वार्द्ध या उत्तरार्द्ध दोनों पक्ष कहलातेहैं. एक कृष्णपक्ष दूसरा शुक्ल। दोनों में १५, १५ दिन होतेहैं। पक्षके अपभ्रंश पाख और पखवारा हैं। मास दिवस=महीना दिन=३० दिन, यथा—'मासदिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ'।

अर्थ—पन्द्रह दिन तक मेरा आसरा देखना, उतने दिनोंमें न आया तो जानना कि बालि मारागया (तात्पर्य्य कि तब यहाँसे चले जाना)। हे खरारि! मैं वहां महीना भर रहा। उस (गुहा) से रुधिर (रक्त, खून) की भारी धार निकली।

टिप्पणी १—'परिषेसु मोहि एक पखवारा' इति। बालिने सुग्रीवपर कृपा करके पक्षभर रहनेको कहा जिसमें वह बहुत दिन तक आशामें बैठा न रहे। वीर अपने पराक्रमको समझतेहैं, वे अनुमान करलेतेहैं कि कितने दिनमें वे अमुक कार्य करसकेंगे। यहां बालिने यह समझलिया कि मैं मायावीको पक्षभरमें मार लूंगा इसीसे सुग्रीवसे उसने पक्षही भर ठहरनेको कहा। २—'मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी' इति। (क)—बालि ने पक्षभर रहनेको कहा, मैं वहाँ दो

† 'परषेउ'—(का०)। ‡ 'जानेसि'—(का०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पक्ष रहा। इससे सुग्रीवकी प्रीति सूचित हुई कि भाईके स्नेहसे, उसकी आज्ञा न होनेपरभी, वह इतने दिन ठहरारहा।* (ख)—'खरारी' सम्बोधनका भाव कि आप खरके शत्रु हैं जो दुष्ट था; मेरी कोई दुष्टता नहीं है, सब दुष्टता बालिकी है। † ३—'रुधिर धार तहँ भारी' इति। भारी धार निकलनेका हेतु यह है कि मायावी दैत्यका शरीर भारी था इसीसे शरीरसे रुधिरकी धारभी भारी निकली।‡

---

* १—पंजाबीजी यह शंका करके कि 'बालि धर्मात्मा था। पक्षका क़रार करके मासभर राह देखनेवाले पर कोप क्यों करता? और,राज्य तो ज़बरदस्ती मंत्रियों ने दियाथा, सुग्रीवका इसमें अपराध न था, तब सुग्रीवको क्यों मारकर निकाल देता?' उसका समाधान यह करतेहैं लि 'मास दिवस' से यहां १२ दिनका अर्थ होताहै क्योंकि मास बारह होतेहैं। १५ दिन ठहरनेको कहा यह तीन दिन पहले चलाआया। इसीसे बालिने कोप किया। पर यह अर्थ यहां प्रसंगानुकूल नहीं है। क्योंकि यहां तो सुग्रीव बालिका अपराधी और अपना निरपराध होना दिखारहेहैं। दूसरे 'मास दिवस' बाल और सुंदरमेंभी ३० दिनकेही अर्थमें आयाहै, यथा—'मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ', 'मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मै मारब काढि कृपाना॥' और 'मास दिवस महुँ नाथ न आवा। तौ पुनि मोहि जियत नहिं पावा' एवं 'मास दिवस बीते मोहि मारिहि निसिचर पोच'—(सुं०§ ११)। तीसरे, अध्यात्म आदि रामायणोंसे यही पतालगताहै कि सुग्रीव बालिकी दी हुई अवधिसे अधिक वहां ठहराथा।

२—बाबा हरिदासजी कहतेहैं कि १५ दिनकी अवधि देनेका भाव यह था कि १४ दिनमें चौदहो लोकमें जहां होगा मैं उसे देखकर मारडालूँगा और पन्द्रहवें दिन लौट आऊंगा।

† शिला—'खरारी' का भाव कि आपने खरादिके समरमें देखलिया कि राक्षस कैसे मायावी होतेहैं। आपने अपनी मायासे उन्हें जीतलिया पर हम सब बानर हैं; माया क्या जानें। मायावी पूर्ण मायावी था इसीसे बालिको उसके मारनेमें मासभरसे अधिक लगगया।

‡ यथा—"स तु दृष्टो मया शत्रुरनिर्वेद्याद्भयावहः। निहतश्च मया सद्यः स सर्वैः सह बन्धुभिः॥ २०॥ तस्यैव च प्रवृत्तेन रुधिरौघेण तद्बिलं। पूर्णमासीद् दुराक्रामं स्तनतस्तस्य भूतले॥ २१॥"—(वा० ९)। अर्थात् शत्रुको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नोट १ – वा० ९।१४ से मालूम होताहै कि सुग्रीवनेभी गुहामें साथ जानेकी प्रार्थनाकी, पर बालिने शपथकी इससे वह बाहरही रहा। यथा— "मया त्वेतद्वचः श्रुत्वा याचितः स परंतपः। शापयित्वा स मां पद्भ्यां प्रविवेश विलं ततः॥" २—पक्षभर प्रतीक्षाकरनेकी आज्ञाका उल्लेख सूर्य्य रामायणमेंहै—"प्रतीक्षा पक्षपर्य्यन्तं कर्त्तव्या भवता मम"। ३—अर्धाली (७) से मिलता हुआ श्लोक अध्यात्म १।५१ में है—"इत्युक्त्वा विश्य सगुहां मासमेकं न निर्ययौ। मासदूर्ध्वं गुहाद्वाराच्निर्गतं रुधिरं बहु॥" अर्थात् यह कहकर कि मैं गुहामें जाताहूँ वह उस गुहामें घुसगया और एक मास तक न निकला। महीनाभरके उपरान्त होनेपर उसमेंसे बहुत रुधिर निकला।

बालि हतेसि मोहि मारिहि आई।
सिला देइ तहँ चलेउँ पराई॥ §५ (८)
मंत्रिन्ह पुर देषा बिनु साँई।
दीन्हेउ मोहि राज बरिआई॥ ,, (९)

अर्थ—उसने बालिको मारडाला, (अब) आकर मुझे मारेगा (यह समझकर) गुहाके द्वारपर एक शिला लगाकर मैं भागकर चला आया। मंत्रियोंने नगरको बिना स्वामी (राजा) का देखकर मुझे ज़बरदस्ती राज्यदिया।*

बान्धवोंसहित मैंने मारा, वह पृथ्वीपर गिरकर गरजरहाथा, उसके मुँहसे रुधिर की धार निकली जिससे वह बिल भरगया और जिसके कारण पृथ्वीपर चलना कठिन होगया।

* १ यथा अध्यात्मे—"तद्दृष्ट्वा परितप्तांगोमृतो बालीति दुःखितः। गुहाद्वारि शिलामेकां निधाय गृहमागतः॥ ५२॥...तच्छ्रुत्वा दुःखिताःसर्वे मामनिच्छन्तमप्युत। राज्येभिषेचनं चक्रुः सर्वे वानरमंत्रिणः॥५३॥"—(स० १)। अर्थात् रुधिर देखकर मेरा सर्वांग तप्त होगया। बालि मारागया यह समझकर मुझे दुःख हुआ। गुहाद्वारपर एक शिला लगाकर मैं घर आया। हाल सुनकर सबको दुःख हुआ। मेरी इच्छा न रहनेपरभी सब मंत्रियों ने मेरा राज्याभिषेक करदिया। पुनः, यथा वाल्मीकीये—"बलादस्मिन्समागम्य मंत्रिभिः पुरवासिभिः

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी १—"बालि हतेसि०"। सुग्रीव महीनाभर वहां रहे तो भी कुछ निश्चय न हुआ कि कौन मारागया इसीसे सुग्रीव वहांसे जा न सके। जब रुधिरकी धार निकली तब निश्चय हुआ कि बालि मारा गया; क्योंकि बालिने पक्षभर परखनेको कहाथा और रुधिर महीनेभरमें निकला—(करु०)। "मोहि मारिहि आई" यह इससे निश्चय किया कि जब बालि ऐसे महाबली वीरको उसने मारडाला तब मैं उसके सामने क्या हूँ। २—'दीन्हेउ मोहि राज बरिआई' अर्थात् मुझे राज्य लेनेकी इच्छा न थी मंत्रियोंने ज़बरदस्ती राज्याभिषेक किया। ३—यहाँतक सुग्रीवने अपनी सफ़ाई कही कि मैं सहायताकेलिए संग गया, उसने पक्षभर राह देखनेको कहा मैं दूने दिन रहा, और मैं राजा होना नहीं चाहता था मुझे मंत्रियोंने ज़बरदस्ती राजा बनाया। अब आगे बालिका अपराध कहतेहैं।

नोट—१ बालिका माराजाना कैसे निश्चय हुआ? इस विषयमें वा० ९ में लिखाहै कि राक्षसोंके गर्जनका शब्द सुनाईपड़ताथा और

॥१०॥ राजभावे नियुक्तोऽहं शून्यदेशजिगीषया।"—(स० ९)। अर्थात् मंत्रियों और पुरवासियोंने बलात् राजा बनाया। यह भी इससे कि शून्यराज्य देखकर कोई शत्रु आक्रमण न करे। २—इच्छा न होनेका कारण भाईका शोक अथवा, 'गद्दके रहते अपनेको अधिकारी न समझना कहाजाताहै। अङ्गद अभी छोटा था इससे मंत्रियोंने इनको राज्य ग्रहण करनेकेलिए हठ किया।

३ बाबा हरीदास—ईश्वर सर्वअंतरप्रेरक है। मंत्रियोंने सुग्रीवको बरियाई राज्य दिया यद्यपि बालिका पुत्र अङ्गद राज्याधिकारी था। ऐसा न होता तो क्यों सुग्रीव नगरसे निकाला जाता और क्यों वह वनमें निवास करता?—'राम कीन्ह चाहैं सोइ होई'। रावणमरणमें नर वानर दोनों कारण हैं—"हम काहू के मरहिं न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे"—(व० § १७६) विना सुग्रीवके वनवासके रामजीसे उनसे भेंट और मित्रता कैसे होसकतीथी। रामजी नगरमें जा नहीं सकतेथे और बालि वनमें क्यों आता? दूसरे, बालि अभिमानी प्रकृतिका था इससेभी यदि वह मिलता भी तो उससे मित्रता कदापि न होसकतीथी। रामजी तो गरीबनिवाज़ हैं और सुग्रीव दीन है, इसलिए उससे मित्रता कीगई।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बालिका शब्द एकभी न सुनपड़ा, बहुत दिन भी बीते और रुधिर निकला—इन लक्षणोंसे अनिष्टकी शंका हुई। यथा—"नर्दतामसुराणां च ध्वनिर्मे श्रोत्रमागतः। न रतस्य च संग्रामे क्रोशतोऽपि स्वनो गुरोः॥ १८॥ अहं त्ववगतो बुद्ध्या चिह्नैस्तैर्भ्रातरं हतम्। पिधाय च बिलद्वारं शिलया गिरिमात्रया॥ १९॥ 'कैसे जाना कि बालि ही मारा गया' इसके संबंधमें ऐसाभी कहाजाताहै कि रुधिरके साथ बालिके रोएँ देखपड़े। मयङ्ककारका मत है कि यहां सुग्रीवका दोष जान पड़ताहै, वह समझ सकताथा कि बालिवधपर इतनी बड़ी धार रुधिरकी न निकलसकतीथी।

२—शिला जिससे द्वार बंद किया गया वह पर्वतसमान बड़ी थी।—(यह शिला लगानेका भाव यह था कि मायावी इसे हटाकर न निकल सकेगा, भीतरही मरजायगा। यथा—"शिला पर्वतसंकाशा बिलद्वारि मयाकृता॥ ७॥ अशक्नुवन्निष्क्रमितुं महिषो विनशिष्यति॥ ८॥" (वा० ४६)।

बाली ताहि मारि गृह आवा।
देषि मोहि जिय भेद बढावा॥ § ५ (१०)

रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी।
हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी॥ ,, (११)

ता के भय रघुबीर कृपाला।
सकल भुवन मइँ फिरेउँ बिहाला॥ ,, (१२)

अर्थ—बालि उसे मारकर घर आया। मुझे (अभिषिक्त) देखकर जीमें बहुत बुरा माना। उसने मुझे शत्रुके समान अत्यन्त भारी मार मारी अर्थात् खूब मारा और मेरा सर्वस्व (सब कुछ) और स्त्री हरली। हे रघुवीर!; हे कृपालु! उसके भयसे मैं समस्त लोकों में बेहाल (विह्वल, व्याकुल) फिरा।

टिप्पणी १ (क)—"देषि मोहि०"। देखनेका भाव कि यदि राज्य-सिंहासनपर मुझे बैठे न देखते तो जीमें भेद न बढ़ाते। समझते कि इनका कोई दोष नहीं है, हमने १५ दिन रहनेको कहाथा, ये १५ दिन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रहकर चले आए। (ख)—भेद यह बढ़ाया कि इनके जीमें यही था कि बालि मरे तो हम राज्य करें; इसीसे गुहाद्वारपर शिला लगाकर राज-गद्दीपर आ बैठगए। २—'सर्वस'कहकर'नारी'को पृथक् कहनेका भाव कि उनको हमारी स्त्रीका हरण करना अत्यन्त अयोग्य था सोभी उन्होंने किया। ३—'सकल भुवन', यथा अध्यात्मे—"लोकान्सर्वा-न्परिक्रम्य ऋष्यमूकं समाश्रितः। (१।५६)। अर्थात् समस्त लोकों की परिक्रमा करके ऋष्यमूक पर्वतका आश्रय लिया। ४—'रघुबीर कृपाला' का भाव कि आप रघुवीर हैं अतएव बालिको मारिए और आप कृपालु हैं अतएव मुझपर कृपा कीजिए।†

नोट—१—'देखि मोहि०' से यह भी सूचित किया कि यदि वह लोगोंसे पूछता तो उसे मालूम होजाता कि मैंने जो कहाहै वह सत्य है। मैं नियत अवधिसे अधिक ठहरा, मुझे ज़बरदस्ती राज्य दियागया। पर उसने देखतेही क्रोधमें आकर किसीसे कुछ न पूछा, मुझे मार-कर निकालदिया।

२—शत्रुके समान मारनेके कई कारण उपस्थित होगए। बालि ने समझा कि यह चाहताथा कि मैं माराजाऊँ तो इसे राज्य मिलजाय, दूसरे,अंगद राज्याधिकारी था तब सुग्रीवने क्यों राज्यग्रहणकिया? तीसरे ताराके साथ सुग्रीव सुखपूर्वक रहनेलगाथा जैसाकि वा० ४६ से पता चलताहै—'राज्यं च सुमहत्प्राप्य तारां च रुमया सह। मित्रैश्च सहि-तस्तस्य वसामि विगतज्वरः॥" अर्थात् बड़ा राज्य और ताराको पाकर रूमा तथा मित्रोंके साथ मैं सुखपूर्वक रहने लगा।

३—यहाँ 'सकल भुवन' से समस्त पृथ्वीका अर्थ लेना विशेष संगत है। वा० ९।२७ से भी यही अर्थ ठीक जानपड़ताहै, यथा—'तद्भायाच्च महीं सर्वां क्रान्तवान्सवनार्णवाम्'अर्थात् उसके भयसे वनों और पर्वतोंवाली समस्त पृथ्वी मैं घूम आया। इसका विस्तृत उल्लेख

† यथा—"बालिनश्च भयात्तस्य सर्वलोकभयापह। कर्तुमर्हसि मे वीर प्रसादं तस्य निग्रहात्॥"—(वा०१०।३०)। अर्थात् सर्वलोकोंके भयके दूरकरने वाले! बालिके भयसे मेरी रक्षा कीजिए, हे वीर! आप उसे दण्ड देकर मुझपर कृपा करनेके योग्यहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वा० स० ४६ में है। उत्तर, दक्षिण, पश्चिम और पूर्व सब दिशाओंकी सीमा तक बालिने सुग्रीवका पीछा किया, कोई जगह छूटी नहीं।

इहाँ साप बस आवत नाहीं।
तदपि सभीत रहौं मन माहीं॥ § ५ (१३)

अर्थ—वह यहाँ शापके कारण नहीं आता तोभी मैं मनमें डरता ही रहताहूँ।

टिप्पणी—१ (क) शापवश—मतङ्गऋषिका शाप था कि यदि बालि यहाँ आये तो उसके मस्तकके सौ टुकड़े होजायँ। यथा—"मतङ्गेन तदा शप्तो ह्यस्मिन्नाश्रममण्डले। प्रविशेद्यदि वा वाली मूर्धास्य शतधा भवेत्"—(वा० ४६।२२)। (ख)—'तदपि सभीत रहौं', कारण कि बालि स्वयं यहाँ नहीं आसकता पर वह दूसरोंको भेजतारहताहै; इस प्रकार हमारे विनाशके उपायमें सदा लगारहताहै।*

२—यहाँ तक सुग्रीवने अपने तन, धन और मन तीनोंका दुःख कहा।

तनका दुःख—"रिपुसम मोहि मारेसि अति भारी"

धनका दुःख—"हरि लीन्हेसि सर्बस अरु नारी"

मनका दुःख—"इहाँ साप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहौं०"

३—रामजीने सुग्रीवसे वनमें निवासका कारण पूछा; वह कारण उन्होंने यहाँतक कहा। और, बालिका अपराधभी कहा कि विना अपराध हमको मारकर पुरसे निकालदिया, हमारा सर्वस्व और स्त्री हरण करलिए; तबभी हमारे प्राण नहीं बचते।

☞"नाथ सयलपर कपिपति रहई" से 'तदपि सभीत रहौं मन माहीं" तक "सुग्रीव मिताई" का प्रसंग है।

नोट—ऋष्यमूक पर्वतपर ठहरनेकी राय हनुमान्‌जीने दीथी। वा० ४६ में सुग्रीवने श्रीरामजीसे कहाहै कि जब चारों दिशाओंमें कहींभी बालिके पीछा करनेसे मुझे शरण नहीं मिली तब बुद्धिमान् हनुमान्‌ने मुझसे कहा कि मुझे इस समय याद आया कि मतङ्गऋषिने बालिको शाप दियाहै कि यदि वह इस आश्रमकी भूमिपर आवे तो

* "यत्नवांश्च स दुष्टात्मा मद्विनाशाय राघव। बहुशस्तत्प्रयुक्ताश्च वानरा निहता मया॥!' अर्थात् हे राघव! वह दुष्टात्मा मेरे विनाशके लिए प्रयत्न करताहै, उसके भेजेहुए बहुतसे वानरोंको मैंने मारडालाहै।—(वा० ८।३४)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मस्तक टुकड़े २ होजाय। वहीं हम लोग निरुद्विग्न होकर सुखपूर्वक रहसकेंगे। बालि मतंगके भयसे यहाँ नहीं आता। शापका कारण पूर्व § ५ (१-३) पृष्ठ ७३ में लिखाजाचुकाहै।

"बालि-प्राण-भंग"-प्रकरण

सुनि सेवक-दुष दीनदयाला।
फरकि उठी दोउ † भुजा बिसाला॥ § ५ (१४)

अर्थ—सेवकका दुःख सुनकर दीनोंपर दयाकरनेवाले रघुनाथ जीकी दोनों विशाल (घुटने तक लंबी) भुजाएँ फड़क उठीं।

टिप्पणी १—उत्साहमें वीरोंकी दोनों भुजाएँ फड़कतीहैं, वही कारण यहाँ है। यहाँ शकुन वा अपशकुनका विचार नहीं है।* २—

---

† दोउ—(का०), द्वौ—(भा० द०)।

* दोनों भुजाओंके फड़कनेके विषयमें और महानुभावोंके विचार ये हैं—१ मा० म०—सुग्रीवके दुःखको सुनकर उसके अवगुणोंको वात्सल्यतावश भूल गए, दोनों भुजाएँ फड़क उठीं। बालिके मरनेसे कुछ अपयश होगा, अतएव बायीं भुजाभी फड़की और दाहिनी भुजाने फड़ककर यह सूचित किया कि सुग्रीवका पालन करेंगे। २ पं०—दोनों भुजाओंका फड़कना रणका सूचक है। अथवा, तलवारसे मारना होता तो दाहिनीही भुजा फड़कती (क्योंकि खड्ग एक हाथसे चलायाजाताहै) पर बालिवध बाणसे करनाहै (जिसमें दोनों भुजाओंका काम है) अतएव दोनों भुजाएँ फड़कीं। ३ करु०—दोनों विशाल भुजाओंका फड़कना कहकर जनाया कि वीररसको प्राप्त हुए। ४—शिला—बाईं भुजाका फड़कना अपशकुन है। अतः विशाल विशेषण देकर जनाया कि ये भुजाएँ शाल अर्थात् छिद्ररहित हैं। तात्पर्य्य यह कि इनकी दक्षिण भुजा न फड़के तो भी शुभही हो और वाम भुजा फड़के तो भी अशुभ नहीं होनेका। ५ प्र०—बिसाल=विगत-पीर करनेवाली।

[नोट—४ और ५ बहुत खींचके अर्थ हैं। विशाल विशेषण प्रायः आजानुबाहु होने और आर्त्तके दुःख हरण एवं उसको आलिंगन करनेके प्रसंगमें कविने बहुत ठौर प्रयुक्त कियाहै। कोई महानुभाव ऐसाभी कहतेथे कि भुजाओंका प्रेरक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'सेवक दुष' इति। सुग्रीवने जो कहा था कि 'सब प्रकार करिहौं सेवकाई', बस इतनेही वचनपर रामजीने उनको सेवक मानलिया अतएव यहाँ 'सेवक' पद दिया। (और हनुमान्‌जीनेभी पूर्व यही कहाथा, 'सो सुग्रीव दास तव अहई'।) ३—'दीनदयाला' पद साभिप्राय है। सुग्रीव दीन है उसपर कृपाकरके उसका दुःख हरेंगे। दीनके दुःखको सुनकर दयावीरकी भुजाएँ फड़कतीहीहैं।—(परिकरांकुर अलंकार है) हनुमान्‌जीकीभी यही प्रार्थना है कि 'दीन जानि तेहि अभय करीजे'।

सुनु सुग्रीव मारिहौं बालिहि एकहि बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गए न उबिरिहि प्रान॥§६

अर्थ— हे सुग्रीव! सुनो। मैं बालिको एकही बाणसे मारूँगा। ब्रह्मा और रुद्रकी शरणमें प्राप्त होजानेपरभी उसके प्राण न बचेंगे।

मिलान कीजिए—"जौ पल भपसि रामकर द्रोही।
ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही॥"

उदाहरण यथा—"ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका।
फिरा श्रमित व्याकुल भय सोका॥
काहू बैठन कहा न ओही।
राषि को सकै राम कर द्रोही॥"—(आ०§१)

टिप्पणी १—एकही बाणसे बालिको मारनेकी प्रतिज्ञाका तात्पर्य्य यह है कि उसके मारनेमें बिलंब नहीं करेंगे। मित्रके दुःखसे दुःखी हुएहैं इसीसे मारनेकी प्रतिज्ञा की।*

इन्द्र है। भुजाओंका फड़कना कहकर जनाया कि इन्द्रभी बालिके अनीतिको देखकर न सहसके और बाहु-फड़कन-द्वारा मानों प्रभुसे वे प्रार्थना कररहेहैं कि अब आप इसको मारिए।]

* १—'मित्र दुःखेन संतप्तो रामो राजीवलोचनः॥ ५८॥ हनिष्यामि तव द्वेष्यं शीघ्रं भार्यापहारिणम्। इति प्रतिज्ञामकरोत्सुग्रीवस्य पुरस्तदा॥ ५९॥ —(अध्यात्म १)। अर्थात् मित्रके दुःखसे राजीवलोचन रामजी दुःखित होगए और सुग्रीवके सामने उसी समय प्रतिज्ञा की कि स्त्रीके हरनेवाले तुम्हारे शत्रुको मैं शीघ्र मारूँगा। २—नोट—दूसरा कारण बालिवधका यह है कि आर्य संस्कृतिकी मर्यादा स्थापित करनेकेलिए प्रतिज्ञा हुईहै, यथा—'यावत्तं नहि पश्येयं तत्र भार्यापहारिणम्। तावत्सजीवेत्पापात्मा बाली चरित्रदूषकः'—(वा०१०।३३)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पं०—प्रभुने उसकी भावी देखकर, अथवा, सुग्रीवको अपने बल-पर विश्वास दिलानेकेलिए बालिको एकही बाणसे वधकरनेकी प्रतिज्ञा की। यदि कोई कहे कि बालिसे सुग्रीवसे शत्रुता थी, रघुनाथजीसे तो न थी तब ऐसी प्रतिज्ञा क्यों की? इस संदेहके निवारणार्थ प्रभु नीति के अनुसार मित्रके लक्षण कहतेहैं। सुग्रीव मित्र है इससे उसका दुःख दूरकरना अपना परमकर्त्तव्य है।

नोट—मुख्य और यथार्थ भाव तो ऊपर दिपगए पर बाबा हरीदास-जी और भी भाव लिखतेहैं जो पाद-टिप्पणीमें दिया जाताहै। † ब्रह्मा और शिवकी शरणमें भयभीत होकर देवता और मुनि इत्यादि सभी जातेहैं,इससे उनकी शरण जाना कहा। 'हरि''विष्णु' की शरण लेना न कहा क्योंकि 'हरि','विष्णु','नारायण' आदि सब रामजीकेही सात्विक रूप हैं। यहां रुद्र नाम देकर जनाया कि शिवजीके भयंकर काल-स्वरूपकी शरणमेंभी जानेसे न बचेगा।

जे न मित्र दुष होहिं दुषारी।
तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥ § ६ (१)
निज दुष गिरि सम‡ रज करि जाना।
मित्र क दुष रज मेरु समाना॥ ,, (२)

अर्थ—जो मित्रके दुःखसे दुःखी नहीं होते उन्हें देखनेसे भारी पाप लगताहै। पर्वतके समान भारी अपने दुःखको धूलके समान (साधारण) जाने और मित्रका दुःख रजके समान (तुच्छ, ज़रासा) भी हो तो उसे सुमेरु वा पर्वतके समान जाने।

टिप्पणी—१ 'बिलोकत पातक भारी'। भाव कि जो मित्रके दुःख

† यहाँ रामजी सुग्रीवको उभय भाँति अभय देतेहैं। एक तो यह कि बालि जीतेजी कुछ न करसकेगा, मैं एकही बाणसे उसे गिरादूँगा। दूसरे, मरनेपरभी न डरो कि प्रेत होकर दुःख देगा क्योंकि उसको हमारे पार्षद तुरत हमारे धामको लेजायँगे। मार्गमें ब्रह्म और रुद्रलोक पड़ेंगे पर ब्रह्मा और रुद्रभी उसे पार्षदोंसे नहीं बचा सकते। प्रेत होना इससे कहा कि अभी सुग्रीवका रामजीमें ईश्वरभाव निश्चित नहीं है।—(पर यह भाव क्लिष्ट कल्पना है।)

‡ रज सम—(का०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से दुःखी नहीं होते वे महापातकी हैं।* और महापातकीके संसर्गसे दूसरेभी महापातकी होजातेहैं।‡ अतः ऐसे महापापीका मुखभी न देखना चाहिए। २—'निज दुष गिरिसम०' इति। भाव कि अपने दुःखसे मित्रके दुःखको भारी समझे। यदि आप दुःखी न हो तो मित्र के दुःखसे दुःखी हो और जो स्वयंही दुःखमें पड़ा हो तो अपने दुःख को रज-समान जाने। तात्पर्य्य कि जब तक अपने दुःखको रजसम न जानेगा तबतक मित्रका दुःख भारी न जान पड़ेगा। और न उस दुःख के छुड़ानेका उपाय होसकेगा—इसके उदाहरण रामजीही हैं। राज्य छूटा, वनवास हुआ, जानकीहरण हुआ—यह दुःख पर्वतके समान है सो इसको रजसमान माना। यथा—'तियबिरही सुग्रीव सषा लषि प्रानप्रिया बिसराई' इति विनये। और सुग्रीवके दुःखको सुमेरु सम जानकर जल्दी दूर किया।

जिन्ह के असि मति सहज न आई।
ते सठ कत हठि † करत मिताई॥ § ६ (३)
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा।
गुन प्रगटइ ‡ अवगुनन्हि दुरावा॥ ,, (४)

अर्थ—जिनमें ऐसी बुद्धि (कि मित्रके कण मात्र दुःखको बहुत भारी दुःख समझें और उसके दुःखके सामने अपने दुःखको कुछ नहीं के बराबर समझें) स्वाभाविकही नहीं है वे शठ क्यों हठ करके मित्रता करतेहैं *। कुमार्गसे हटाकर सुमार्गमें चलावे, गुण प्रकट करे, अवगुण छिपावे।

* यथा—'मित्रस्य दुःखेन जना दुःखिता नो भवन्ति ये। तेषां दर्शन मात्रेण पातकं बहुलं भवेत्॥"—(गालवसंहिता)॥ १॥ "पर्वतेन समं नैजं दुःखं ज्ञेयं रजः समम्। धूलितुल्यं सुहृद्दुःखं यदि स्यान्मेरुगोत्रवत्॥"—(भागुरिसंहिता)॥ २॥

‡ "ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गना गमः। महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह" अर्थात् ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी और गुरुपत्नीगमन महापातक हैं, इनका संसर्गभी महापातक है।

† हठ—(का०) ‡ प्रगटै अवगुनहि—(का०)।

* यथा—"ना गतै तादृशी येषां स्वभावादेव धीर्मुने। ते शठाश्चंचलस्वान्ताः

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—१ (क) 'सहज न आई'। भाव कि ऐसी बुद्धि सुनने और सिखानेसेभी आजातीहै, पर वह निरंतर नहीं रहती और जो स्वाभावक आतीहै वह निरंतर एकरस बनी रहतीहै। (ख) 'हठि' का भाव कि वेद शास्त्र पुराण मनाकरतेहैं कि ऐसे लोग मित्रता न करें, तबभी वे नहीं मानते और मित्रता करके महापातकी बनतेहैं। ☞यहाँ तक मित्रताके दोष वर्णन करनेका भाव यह है कि लोग दोष त्यागकर मित्रता करें। आगे मित्र-धर्म कहतेहैं।

२-'कुपथ निवारि०'इति। जब कुपथका निवारण होताहै तब मनुष्य सुपंथमें चलताहै, इसीसे प्रथम कुपथका निवारण कहा। भाव यह कि इस प्रकार मित्रका परलोक सुधारे। यह कहकर आगे बतातेहैं कि मित्रके साथ कैसा व्यवहार बरतना चाहिए।

पं०—'कुपथ निवारि सुपंथ चलावा' का भाव यह कि मित्रता होजानेके पीछे यदि मित्रमें दोष जान पड़ैं तो भी मित्रसे प्रीति न त्याग दे, वरन् उसको लोक परलोकका भय दिखाकर उसे कुमार्गसे बचाकर सुमार्गपर लगादे।

देत लेत मन संक न धरई।
बल अनुमान सदा हित करई॥ § ६ (५)
बिपतिकाल कर सत गुन नेहा।
श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥ ,, (६)

अर्थ—देने-लेनेमें मनमें शंका न रक्खे, बलके अनुमान (अंदाज, अटकल) से अर्थात् पुरुषार्थभर सदैव हित करे। विपत्तिके समय (सुखके समयसे) सौगुना (अत्यन्त) प्रेम करे—वेद और संत कहतेहैं कि संत-मित्र अर्थात् अच्छे मित्रके (वा, संत और मित्रके) लक्षण ये हैं।

टिप्पणी—१ (क) 'देत लेत मन संक न धरई' अर्थात् अपना और मित्रका धन एकही जाने जैसा कि रामजीने विभीषणजीसे कहाहै कि "तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु तात"। (ख) 'देत

कथं कुर्वन्ति मित्रताम् ॥"—(भागुरि संहिता)। अर्थात् हे मुनि! जिनके स्वभावसेही ऐसी बुद्धि नहीं आई वे चंचल मनवाले मूर्ख क्यों मित्रता करतेहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लेत' का भाव कि प्रथम देनेका विचार रक्खे पीछे लेनेका इसीसे प्रथम 'देत' शब्द कहा। (ग)—"बल अनुमान"। भाव कि बलसे अधिक उपकार कोई नहीं कर सकता पर यदि बलके अनुसार न करे, उससे कम करे, तो यह कपट है; अतएव 'बल अनुमान' पद दिया।

२☞ 'कुपथ निवारि सुपंथ चलावा।' से 'श्रुति कह०' तक मित्रके लक्षण कहे, आगे कुमित्रके लक्षण कहतेहैं। इन चौपाइयोंकी जोड़का श्लोक भर्तृहरिनीतिशतकमें है। दोनोंका मिलान यहां दियाजाताहै—

भर्तृहरि-शतक	मानस
पापान्निवारयति योजयते हिताय,	कुपथ निवारि सुपंथ चलावा।
गुह्यं निगूहति गुणान्प्रकटी करोति।	गुन प्रगटइ अवगुनन्हि दुरावा॥
आपद्गतंच न जहाति ददाति काले,	बिपतिकाल कर सतगुन नेहा।
सन्मित्र लक्षणमिदं प्रवदन्ति संतः॥	श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥

'योजयते हिताय' (=हितमें लगावे), 'न जहाति ददाति काले'= (त्याग न करे और समयपर देता रहे) और 'संत' की ठौर यहां क्रमसे 'सुपंथमेंचलावे' 'शतगुण नेहकरे' और 'श्रुति और संत' ये पदहैं।

नोट १—'देते लेते संदेह न करे' में भाव कि यह कभी मनमें न आने पावे कि देख तो लें मित्रने हमें धोखा तो नहीं दिया।

२ 'संत' को दीपदेहली मानकर अर्थ करनेसेभी पूरा मेल हो जाताहै। अन्वय यह हुआ—"श्रुति संत कह संत-मित्र-गुण एहा (है)"।

आगे कह मृदु बचन बनाई।
पाछे अनहित मन कुटिलाई॥ § ६ (७)
जाकर चित अहि गति सम भाई।
अस कुमित्र परिहरेहि भलाई॥ ,, (८)

अर्थ—सामने मुखपर तो कोमल मीठे वचन बनाकर कहे पीछे अहित (अपकार, बुराई, हानि, शत्रुता) करे और मनमें कुटिलता (कपट) रक्खे। * हे भाई! जिसका चित्त सर्पकी चालके समान टेढ़ाहै ऐसे कुमित्रके त्यागनेमेंही भलाईहै।

टिप्पणी १ (क)—'बनाई' से जनाया कि बात झूठी है पर ऐसी

* यथा—"परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्। वर्जयेत् तादृशं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बनाकर कहतेहैं कि सच्ची-सी लगतीहै। (ख)—कपटी मित्रके मन, वचन और कर्म तीनोंमें कपट रहताहै—(।) मन कुटिलाई। (॥) आगे कह मृदु वचन बनाई। (॥।) 'पाछे अनहित', यह कर्महै। ☞यहां कर्मके कपटमें कवि 'पाछे अनहित' ही लिखतेहैं, 'कर' क्रिया नहीं दीहै। इसमें अभिप्राय यह है कि जैसे कुमित्र गुप्त अहित करतेहैं वैसेही कविने भी 'करने' की क्रिया गुप्तकीहै।

२ (क)—प्रथम कुटिलको मित्रता करनेसे मनाकिया, यथा—'जाके अस मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई'। कदाचित् मना करनेसे वह न माने क्योंकि वह शठ है तो ऐसे कुमित्रको आपही त्याग करे। (ख) 'परिहरेहि भलाई' अर्थात् उसको न त्याग करोगे तो वह शूलसम पीड़ा देगा, यथा—'कपटी मित्र सूल सम चारी'। छोड़नेके अतिरिक्त उसके अहितसे बचनेका अन्य उपाय है ही नहीं। ☞ ३—कुमित्रके मन, बुद्धि और चित्त तीनों मलिन होतेहैं, यथा—(।) पाछे अनहित मन कुटिलाई। (॥) जिनके अस मति सहज न आई। और (॥।) जाकर चित अहि गति सम भाई।

नोट—'अहिगति' इति। सर्प टेढ़ाही चलताहै, सीधा कभी नहीं चलता। कुटिलताका अर्थभी टेढ़ापन है। मनमें कुटिलता कही, इसीसे अहिगतिकी उपमा दी। कपट रखना ही कुटिलताहै।

सेवक सठ नृप कृपन †° कुनारी।
कपटी मित्र सूल सम चारी॥ § ६ (९)

अर्थ—शठ सेवक, कृपण (कंजूस) राजा, कुत्सित (बुरी, कर्कशा) स्त्री और कपटी मित्र ये चारों शूलके समान (पीड़ा देनेवाले) हैं। अर्थात् ऊपरसे हित बने रहतेहैं और भीतर पीड़ा देतेहैं।

☞यहाँ तक मित्र-धर्म कहकर आगे उस धर्मको पालन करनेको स्वयं उद्यत होतेहैं। आचरणद्वारा उपदेश प्रभावशाली होताहै।

मित्रं विषकुंभं पयोमुखम्॥" इति चाणक्यनीतिः। अर्थात् जो परोक्षमें काम बिगाड़े और सामने प्रिय बोले ऐसे मित्रको त्यागदे, वह विष भराहुआ घड़ा है जिसके मुखपर देखने मात्रको दूध है।

† कृपिन—(का०), कृपन—(भा० द०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नोट १—इसअर्धालीके भाव इन श्लोकोंसे स्पष्ट होजातेहैं, (i)—"अविधेया भृत्यजनाः शठानि मित्राण्यदायकः स्वामी। अविनयवती च भार्या मस्तकशूलानि चत्वारि ॥"—(प्रस्तावरत्नाकर) अर्थात् आज्ञा न माननेवाला सेवक, शठ मित्र, कृपण राजा और कर्कशा स्त्री, ये चारों मस्तकके शूल हैं। पुनः, (ii) यथा (चाणक्यनीतिदर्पणे)—"दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः। ससर्पे च गृहेवासो मृत्युरेव न संशयः॥" अर्थात् दुष्टा स्त्री, उत्तरदेनेवाला सेवक, शठ मित्र और सर्पके घरमें वाससे मृत्यु निश्चय है इसमें संदेह नहीं।

२ - आज्ञा न मानने वा हठ करने वा स्वामीको उत्तर देनेसे 'शठ' कहा। यथा—'उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवक लखि लाज लजाई'—(अ० § २६८)।

३—शूल=प्राचीन कालका एक अस्त्र जो प्रायः बरछेके आकारका होताहै।=वायुके प्रकोपसे होनेवाला एक प्रकारका बहुत तेज दर्द जो प्रायः पेट, पसली, कलेजे या पेडू आदिमें होताहै। इस पीड़ामें ऐसा अनुभव होताहै कि कोई अंदरसे बहुत नुकीला काँटा या शूल गड़ा रहा है, इसीसे इसे शूल कहतेहैं। यहाँ दूसरा अर्थ विशेष संगत है क्योंकि पीड़ा प्रत्यक्ष देख नहीं पड़ती है पर प्राणघातिनी होतीहै, वैसेही मित्रका कपट गुप्त है पर है प्राणघातक।

सषा सोच त्यागहु बल मोरें।
सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥ § ६ (१०)

अर्थ—हे सखे! मेरे बल पर (भरोसे) तुम शोच छोड़ो, मैं तुम्हारे काम सब प्रकारसे ‡ करूँगा। 'घटब', यथा—'सो सब भाँति घटिहि सेवकाई' [अ० § २५७ (५)]

टिप्पणी—गोस्वामीजीने रामजी और सुग्रीवका मित्रधर्म समान वर्णन कियाहै, यथा—

सुनि सेवक दुष दीनदयाला १ सुनि सुग्रीव नयन भरि बारी
सखा सोच त्यागहु बल मोरे २ तजहु सोच मन आनहु धीरा

‡ प्र०—'सब बिधि'=नीति आदि रीतिसे। २—मा०म०—यहाँ 'सब बिधि घटब' पदसे लोक परलोक दोनोंका बनना जनाया। ३ पं०—'सब बिधि' अर्थात बल बुद्धि आदिके व्यवहारसे एवं परमार्थभी सुधारूँगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सब बिधि घटब काज मैं तोरे ३ सब प्रकार करिहौं सेवकाई
सुनु सुग्रीव मारिहौं बालिहिं एकहि बान ४ जेहिबिधि मिलिहि जानकीआई

कहं सुग्रीव सुनहु रघुबीरा।
बालि महाबल अति रनधीरा॥ § ६ (११)
दुंदुभि अस्थि ताल देषराए।
बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये॥ ,, (१२)

अर्थ—सुग्रीवने कहा कि हे रघुवीर! सुनिए, बालि महाबली और अत्यन्त रणधीर है। दुंदुभीकी हड्डियाँ और ताड़के वृक्ष दिखाए। रघुनाथजीने उन्हें विना परिश्रम ही गिरादिए।

टिप्पणी १—'महाबल अति रनधीरा' इति। रामचन्द्रजीने कहा कि 'सखा सोच त्यागहु बल मोरे' उसपर सुग्रीवने यह कहा, जिसका भाव यह है कि आपके बल है और बालिके महाबल है, आप वीर हैं और वह अति रणधीर है, तब उसे आप कैसे मारेंगे†? यह कहकर फिर सुग्रीव बालिका बल दिखातेहैं कि उसने दुंदुभीको मारके फेंक दिया अब किसीकी इतनीभी सामर्थ्य नहीं कि उसके अस्थि-पंजरको ही उठासके। फिर सप्ततालवृक्ष दिखाए कि बालि इनको हिलाकर पत्र-रहित करदेताहै जो इनको एक बाणसे काटडाले वही बालिको मार-सकेगा। २—'बिनु प्रयास' इससे कहा कि रघुनाथजीने दुंदुभीके

† यथा—"सुग्रीवोप्याह राजेन्द्र बाली बलवतां बली। कथं हनिष्यति भवान्देवैरपिदुरासदम्॥—(अध्यात्म १। ६०)। अर्थात् सुग्रीव बोले कि हे राजाधिराज! बालि बड़े बड़े बलवानोंसेभी बली है, देवताओंसेभी उसका जीता जाना कठिन है, तब आप उसे किस प्रकार जीतेंगे? वाल्मीकि जी लिखतेहैं कि ऐसा कहनेपर लक्ष्मणजीने उससे पूछा कि आपको क्योंकर विश्वास होसकताहै कि रामजी उसका वध करसकेंगे? तब सुग्रीवने कहा कि हड्डियोंको एक पैरसे उठाकर दोसौ धनुषकी दूरीपर फेंक दें...तब विश्वास हो! यथा—"कस्मिन्कर्मणि निवृत्ते श्रद्दधया वालिनोवधम्॥६९॥... हतस्य महिषस्यास्थि पादेनैकेन लक्ष्मण। उद्यम्य प्रक्षिपेच्चापि तरसा द्वेधनुःशते॥ ७२॥"—(स० ११)। यही कारण जान पड़ताहै कि रघुनाथजीने उसे अँगूठेसे क्यों फेंका।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अस्थिको चरणके अंगूठेसेही दशयोजन दूर फेंक दिया। सुग्रीवने पहले दुंदुभीकी हड्डीका ढेर दिखाया पीछे तालवृक्ष, वैसाही यहाँ आगे पीछे लिखा गया। भाव यह कि दुंदुभीके शरीरके अस्थिपंजरके फेकनेपर सुग्रीवको पूरा विश्वास नहीं हुआ तब उसने ताल दिखाया।

नोट वा० स० ११से स्पष्ट है कि सुग्रीवको दुंदुभीकी हड्डियोंके फेंकनेपरभी विश्वास न हुआ। क्योंकि सुग्रीवने यह पराक्रम देखकर भी ये अर्थयुक्त वचन कहे कि 'मेरा भाई युद्धमें थकगयाथा जिस समय उसने दुंदुभीका शरीर फेंकाथा और उस समय शरीरमें मांसभी था, वह गीला होनेके कारण भारी था और तत्कालका मारा हुआ था। और, आपने जो हड्डियां फेंकीहैं वे तृणके समान मांसहीन होने से, हलकी होगईहैं। इससे यह नहीं जाना जासकता कि आपका बल अधिकहै या उसका; क्योंकि गीले और सूखेमें बड़ा अंतर होताहै। यदि आप एक वृक्षको भेददें तो मुझे विश्वास होजाय। (८४-९०)। अध्यात्म रामायणमें भी यही क्रमहै। भेद केवल इतनाहै कि वाल्मीकिमें शालवृक्ष कहाहै और इसमें सप्ततालवृक्ष कहे गएहैं, वहां एकको भेदने को कहाहै और यहां सातोंको! *

२—जो भाव अध्यात्मके 'स्मित' (मुसुकराते हुए) और वाल्मीकि के 'लीलया' (खेल सरीखे) में हैं वही भाव 'बिनु प्रयास' का है। ३—दुंदुभी' की कथा § ५ (१-३) में देखिए।

"दुंदुभि-अस्थि ताल"

१ दुंदुभीका शरीर जो मतङ्गजीके आश्रममें गिराथा वह पर्वत समान बड़ाथा, उसे दिखाया। २—ताल वृक्षके संबंधमें कई प्रकार

* यथा—"राघवो दुन्दुभेः कायं पादांगुष्ठेन लीलया ॥ ८४ ॥ तोलयित्वा महाबाहुश्चिक्षेप दशयोजनम्। असुरस्य तनुं शुष्कां पादाङ्गुष्ठेन वीर्यवान् ॥८५॥ क्षिप्तं दृष्ट्वा ततः कायं सुग्रीवः पुनरब्रवीत्।...हरीणामग्रतो वीरमिदं वचनमर्थवत् ॥ ८६ ॥ आर्द्रः समांसः प्रत्यग्रः क्षिप्तः पुरा सखे। परिश्रान्तेन मत्तेन भ्रात्रामे बालिना तदा ॥ ८७ ॥ लघुः संप्रति निर्मांसस्तृणभूतश्च राघव।...॥ ८८ ॥ नात्रशक्यं बलंज्ञातुं तव वा तस्य वाधिकम्। आर्द्रं शुष्कमिति ह्येतत्सुमहद्राघवान्तरम् ॥८९॥" पुनः यथा अध्यात्मे—"यदि त्वमेक बाणेन विध्वा छिद्रं करोषिचेत्। हतस्त्वया तदा बाली विश्वासोमे प्रजायते (१।७३)"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की कथाएँ कहीजातीहैं—(क) करुणासिंधुजी लिखतेहैं कि "दुंदुभी के अस्थिपर सात ताल वृक्ष जमे जो मण्डलाकार थे। किसी मुनिका शाप है कि जो सप्ततालको एकही बाणसे एकही बार नाश करदे वही बालिको मार सकेगा। ये सप्ततालवृक्ष किसी मुनिके शापसे देवलोकसे च्युत हुएथे, इनका उद्धार रामबाण द्वारा हुआ और वे दिव्यरूप हो परमपदको प्राप्त हुए।" (ख) हनुमन्नाटकमें लिखाहै कि इन सप्त-तालोंकी जड़ें पातालमें शेषजीकी पीठमें स्थित थीं। और, इनके विषय में यह कथा है कि यदि कोई इनका नाश करना चाहे और एक बाणसे नाश न कर सका तो ये सप्तताल बाणचलानेवालेकोही मार डालते हैं।* वाल्मीकिजीभी लिखतेहैं कि 'बलवान् रामचन्द्रजीके द्वारा फेंका हुआ वह स्वर्णमण्डित बाण तालों को भेदकर पर्वत और पृथ्वीको फोड़ताहुआ पातालमें चला गया और एकही मुहूर्तमें सप्ततालोंको भेदकर पुनः उनके तरकशमें लौट आया'। इससेभी शेषजीकी पीठमें उनकी जड़ोंका स्थित होना सिद्ध है। ‡ (ग) कहीं यह कथाहै कि बाली एकबार एक फल लाकर सरके तीर रखकर स्नान करनेलगा; इतनेमें तक्षक सर्पका पुत्र आकर गुड़री लगाकर उसपर बैठगया। बालीने आकर इसे फलपर बैठे देख शाप देदिया कि तूने हमारा भक्ष्य मलिन करदिया अतः तेरे शरीरसे यह फूटकर वृक्षरूप होजा-यगा। गुड़री लगाए हुए सर्पके ऊपर इन वृक्षोंकी स्थिति होनेसे एक

* "सौमित्रिस्तानकृत सरलाञ्छेषपृष्ठस्थमूलान्भारेणांघ्रेरथ रघुपतिः संदधे दिव्यमस्त्रम् ॥ ४७ ॥ देव ज्ञात्वा बाणः प्रहन्तव्यः यतः एक दैव शरेणैकेनैव भिन्नकलेवराः। म्रियन्ते सप्ततालास्तं घ्नन्ति हन्तारमन्यथा ॥ ४८ ॥"—(अङ्क ५) अर्थात् लक्ष्मणजीने शेषजीकी पीठमें स्थितमूलवाले उन ताल वृक्षोंको चरणके अग्रभागसे सीधा करदिया, फिर रामचन्द्रजीने दिव्य अस्त्र धारण किया। लक्ष्मणजी बोले कि—स्वामिन्! समझकर बाण मारना उचित है, क्योंकि एक साथही एक बाणसे इन सातों वृक्षोंका नाश करदेना योग्य है, नहीं तो ये फिर मारनेवालेही को मारडालतेहैं। रामचन्द्रजीने कहा कि तुम भय न करो।

‡ "स विसृष्टो बलवता बाणः स्वर्णपरिष्कृतः। भित्त्वा तालान्गिरिप्रस्थं सप्त भूमिं विवेशह ॥ ३ ॥ सायकस्तु मुहूर्तेन तालान्भित्त्वा महाजवः। निष्पत्यच पुनस्तूणं तमेव प्रविवेश ह ॥ ४ ॥"—(सर्ग १२)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तालसे अधिक एक बारमें कोई वेध न सकता था और ये ऐसे दिखते थे मानों कोई सर्प सोरहा हो।

देषि अमित बल बाढी प्रीती।
बालि बधब † इन्ह भइ परतीती॥ § ६ (१३)

अर्थ—रामजीका अतुलनीय बल देखकर सुग्रीवकी प्रीति बढ़ी और इनपर विश्वास हुआ कि ये बालिका वध करेंगे।

टिप्पणी १—"देषि अमित बल"। भाव यह कि सुग्रीवने लक्ष्मण-जीके मुखसे धनुषभंग, विराध, खरदूषण और कवंध वध इत्यादि रामजीका पराक्रम सुना, यथा 'लछिमन रामचरित सब भाषा"। और, रामचन्द्रजीनेभी अपने मुखसे अपना बल कहाहै, यथा - 'सुनु सुग्रीव मारिहौं बालिहि एकहि बान। ब्रह्मरुद्रसरनागत गए न उबरिहि प्रान"॥ इतनेपरभी सुग्रीवको प्रतीति न हुई। जब उन्होंने आँखों से देखलिया कि इन्होंने तो अस्थि और ताल 'बिनु प्रयास ढहाये' तब प्रतीति हुई। अतः 'देषि' पद दिया। २—"अमितबल"। भाव कि जब रामजीने अपना बल कहा कि 'सषा सोच त्यागहु बल मोरे' तब सुग्रीवने बालिको महाबली कहा—'बालि महाबल अति रनधीरा'। अब महाबली बालिसे अधिक बल रामजीमें देखा अतएव महाबलसे अधिक होनेसे अमित कहा। इनके बलकी थाह नहीं। ३—'प्रीति बाढ़ी' अर्थात् प्रीति तो पहलेसेही थी, यथा—'कीन्ह प्रीति कछु बीच न राखा'; अब वह प्रीति अधिक होगई।

नोट—बालिको ये अवश्य मारेंगे, यह विश्वास हुआ। वाल्मीकि जी लिखतेहैं कि जब मुहूर्तमात्रमें रामजीका वह वाण सप्ततालोंको वेधकर पुनः तरकशमें लौट आया तब सुग्रीव बहुत विस्मित हुए, हाथजोड़कर प्रणाम किया और बोले कि समस्त देवताओं सहित इन्द्रकोभी आप मारसकतेहैं फिर बालिकी बातही क्या? जो सप्त महातालोंको भूमि और पर्वत सहित एक वाणसे वेध सकताहै उसके सामने युद्धमें कौन ठहरसकताहै? आपको मित्र पाकर अब मेरा शोक दूर होगया।-ये सब भाव'बालि बधब इन्ह भइ परतीती'में भरेहुएहैं।*

† 'बधव की'—(का०)।

* "सेन्द्रानपि सुरान्सर्वांस्त्वं वाणैः पुरुषर्षभ। समर्थः समरे हन्तुं किं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बार बार नावइ पद सीसा।
प्रभुहि जानि मन हरष कपीसा॥ § ६ (१४)
उपजा ज्ञान बचन तब बोला।
नाथ कृपा मन भएउ † अलोला॥ ,, (१५)

अर्थ—बारबार चरणोंमें माथा नवाताहै ‡। प्रभुको पहचानकर कपीश सुग्रीव मनमें हर्षित हुआ। जब ज्ञान उत्पन्न हुआ तब यह वचन बोला—हे नाथ! आपकी कृपासे मेरा मन अचल हुआ।

टिप्पणी—(i) १ (क)—सुग्रीव मन वचन कर्मसे रामजीकी शरण हुए। यथा—'प्रभुहि जानि मन हरष कपीसा'। (ii) 'उपजा ज्ञान बचन तब बोला'। (iii) 'बारबार नावइ पद सीसा'। (ख) प्रभुको जाननेसे प्रतीति होतीहै, प्रतीतिसे प्रीति और प्रीतिसे भक्ति होती है, यथा—'जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहि प्रीती॥ प्रीति बिना नहि भगति दृढाई।' (ग) 'प्रभुहि जानि मन हरष कपीसा' यह जाननाहै। जाननेसे प्रतीति हुई, यथा—'बालि बधब इन्ह भइ परतीती'। प्रतीतिसे प्रीति हुई, यथा—'देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती'। प्रीतिसे भक्ति हुई, यथा—'सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि-करिहौं सेवकाई'; सेवा करना भक्ति है।

२—(क)-प्रभुको जाननेपर ज्ञान उपजा। इस कथनसे सूचित

पुनर्बालिनं प्रभो ॥८॥ येन सप्तमहाताला गिरिर्भूमिश्च दारिता। बाणेनैकेन काकुत्स्थ स्थाता तेऽद्य रणाग्रतः ॥९॥ अद्य मे विगतः शोकः प्रीतिरद्यपरा मम।' —(स० १२)।

† भयो—(भा० द०), भएउ—(का०)।

‡ बारंबार सिर नवानेका भाव। १ पं०-(क) ज्ञान हुआ कि ये ईश्वर हैं और ईश्वरको अनेक प्रणाम करना उचित ही है। वा, (ख)—अत्यन्त हर्षके कारण। वा, (ग)—पहिले प्रभुको बालिका भेजाहुआ जानकर उनमें शत्रु-भावकी आशंका हुईथी, फिर उनकी परीक्षा दुंदुभि-अस्थि और ताल द्वारा ली; अब प्रभुको सर्वज्ञ जानकर अपनी अवज्ञा क्षमा करानेकेलिए बारंबार प्रणाम करतेहैं। २—बाल, अरण्य और सुंदरमें लिखाजाचुकाहै कि प्रेममें यह दशा होजातीहै—आ० § १० देखिए।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हुआ कि प्रभुका जाननाही ज्ञान है। (ख)—"उपजा ज्ञान बचन तब बोला" इति। भाव कि जब मन प्रेममें मग्नहोजाताहै तब बोल नहीं आता; ज्ञानमें धीरज होताहै तब बोल आताहै, यथा—'प्रेम मगन मन जानि नृप करि बिबेक धरि धीर। बोले मुनिपद नाइ सिर गदगद गिरा गँभीर'। (ग)—भगवत्की कृपासे और ज्ञानसे मन स्थिर होताहै। सुग्रीव अपने मनके स्थिर होनेमें रामजीकी कृपाको मुख्य समझतेहैं इसीसे कहतेहैं कि 'नाथ कृपा मन भयउ अलोला।'*

पं० रा० व० श०—पहलेवाले वचन अज्ञानके थे कि बाली शत्रु है, आप बली हैं वह महाबली है, इत्यादि। ज्ञान होनेसे समता आ गई, शत्रुभाव जातारहा। निश्चल मनके लक्षण आगे कहतेहैं; यही ज्ञान उत्पन्न होनेके लक्षण हैं।

नोट—सुग्रीव बालीको मन कर्म वचनसे महाबलवान् समझता था—'रिपुबल सहै न पारा', 'परिषेसु मोहि एक पषवारा', 'बाली ताहि मारि गृह आवा', 'दुंदुभि अस्थिताल दिखराये' इत्यादि, इसके उदाहरण सुग्रीवके वचनोंमेंही आएहैं। रामजीनेभी मन वचन कर्मसे अपना अमित बल उसे दिखाकर संतुष्ट किया, यथा क्रमसे—'मारिहौं बालिहि एकहि बान' और 'ब्रह्म रुद्र सरनागत गए न उबरिहि प्रान' में वचन और मन दोनों आगए, और 'बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए' कर्म है।

सुष संपति परिवार बड़ाई।
सब परिहरि करिहौं सेवकाई॥ § ६ (१६)
ये † सब रामभगति के बाधक।
कहहिं संत तव पद अवराधक॥ ,, (१७)

---

* रा० प्र० श०—प्रभुकी कृपासे मनसे चंचलता जातीहै; चरित्रसेही अज्ञान नहीं रहता; जैसा श्रीपार्वतीजीने कहाथा, यथा—'तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथकथा बिधि नाना॥' सुग्रीवने श्रीलक्ष्मणजीसे चरित्र सुना और रामजीने ताल गिराकर स्वयं (अपना चरित) दिखाया इससे अज्ञान दूर हुआ और ज्ञान उपजा। † 'ए'—(का०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सत्रु मित्र सुष दुष जग माहीं ।
मायाकृत परमारथ नाहीं ॥ ,, (१८)

अर्थ—सुख, संपति, परिवार और बड़ाई, इन सबको छोड़कर मैं आपकी सेवा करूंगा। हे राम! आपके चरणोंकी आराधना करनेवाले संत कहतेहैं;कि ये सब रामभक्तिके बाधकहैं। संसारमें जितने शत्रु मित्र, और सुख-दुःख हैं वे सब मायाके किएहुएहैं अर्थात् सब मिथ्या हैं, परमार्थ नहीं हैं (वा, परमार्थ में ये कुछ नहीं हैं)।*

टिप्पणी—१ सुग्रीवको विश्वास होगया कि ये बालिको मारकर मुझे राज्य देंगे, मुझे फिर सुख, संपत्ति, परिवार और बड़ाई प्राप्त होगी। इसीसे उन सबको त्याग करनेको कहतेहैं। २—"ये सब रामभगतिके बाधक।०" इति। तात्पर्य्य कि जो भक्ति करतेहैं उन्हें ये सब बाधक जानपड़तेहैं और अन्य लोग तो इन्हें गुणसमझतेहैं। "बाधक" कहनेका भाव कि इनके रहनेसे रामजीका स्मरण भूलजाताहै। इसके उदाहरण स्वयं सुग्रीवही हैं, यथा—'सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी'। ३—'मायाकृत परमारथ नाहीं।' रामजीके चरणोंमें अनुराग होना परमार्थ है,यथा-'सषा परमपरमारथ एहू। मन

* सुग्रीवके ज्ञानमय वचनोंका श्रीलक्ष्मणजीके गुहप्रति-उपदेशसे मिलानकी जिए—

"जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा॥
जनम मरन जहँ लगि जगजालू। संपति बिपति करम अरु कालू॥
धरनि धाम धन पुर परिवारू। सरग नरक जहँ लगि व्यवहारू॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोहमूल परमारथ नाहीं॥
सपने होइ भिखारि नृप रंक नाकपति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु तिमि प्रपंच जिय जोइ॥ अ० § ९२॥
मोहनिसा सब सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥
होइ बिबेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥
सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन रामपद नेहू॥
सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय-रघुबीर-चरन रत होहू॥"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्रम बचन रामपदनेहू'। इसीसे कहते हैं कि सब छोड़कर आपके चरणोंमें अनुराग करूंगा, यथा—'सब परिहरि करिहौं सेवकाई'।

नोट–"ये सब रामभगतिके बाधक।०" इति। १ सांसारिक विषय-सुख पाकर मनुष्य आलसी होजाताहै इसीसे परमभागवत अंबीष आदिने भगवत् सेवामेंभी अपनी रानीतकसे (पार्षदमंजन, चौकालेपन आदि) किंचित् सेवाभी लेना स्वीकार न किया। संपति (=धन, ऐश्वर्य) तो पंचमदोंमेंसेही एक है, परिवारवाला उन्हींकी चिन्तामें मग्न रहताहै, यथा—'अबुध कुटुंबी जिमि धनहीना'। आज किसीका व्याह है तो कल कोई रोगवश होताहै इत्यादिमेंही चित फँसा रहजाता है। बड़ाईमें तो अभिमानका होना सहजही है; हमें सब मान्य देतेहैं हम सबके सामने मूर्तिको वा संतवेषको मस्तक कैसे नवावें, इत्यादि। यथा—"बड़ाईमें समाई मति भई पै न नित ही विचार अब मन पर खीजिये" (भक्तिरसबोधिनी-टीका, कवित्त १३८)। भगवान्‌की नीचटहल करनेमें लज्जा लगतीहै। अतएव सबको बाधक कहा।

२–'कहहिं संत'का भाव कि ये संत हैं इससे उनका वचन प्रामाणिक है, असत्य नहीं होसकता। संतोंको ये सब बाधक अनुभव हुएहैं, तब हम ऐसे पामर प्राणियोंकी गिनतीही क्या? अतएव ये त्याग-योग्य हैं।

३–'सत्रु मित्र सुख दुख०' इति। यहां प्रस्तुत प्रसंग बालिकी शत्रुता है इसीसे 'शत्रु' को प्रथम कहा। 'माया कृतका' भाव वही है जो श्री-लक्ष्मणगीताके "मोहमूल" का है।–अ० ९१ (८) देखो। अर्थात् ये सब स्वप्नवत् अनित्य हैं, जबतक अज्ञान है तभीतक ये सत्य जान पड़तेहैं पर हैं ये सब असत्य; सब मनरूपी चित्रकारने गढ़लियेहैं; वस्तुतः संसारमें अपना न कोई शत्रुहै न मित्र, अपना मनही शत्रु है जो भगवत्-विमुख करके हमको सांसारिक वासनाओंमें डालताहै। पुनः, 'मैं अरु मोर तोर तैं' यही मायाका स्वरूप है। अहंममसेही शत्रुमित्रभाव उत्पन्न होताहै जब अहंमम नहीं तब न कोई शत्रु है न मित्र। पहिले बालि मित्र था। जब उसने राज्य और स्त्री लेली तब (इनमें ममत्व होनेके कारण) वह शत्रु मानलियागया।

बालि परमहित जासु प्रसादा।
मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा॥ § ६ (१९)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सपने जेहि सन होइ लराई।
जागत समुझत मन सकुचाई॥ § ६ (२०)

अर्थ—हे राम! बालि तो मेरा परम हितुआ है कि जिसकी कृपा से दुःखके नाश करनेवाले आप मुझे मिले (अर्थात् यदि बालिने मेरा सर्वस्व हरण न किया होता, मुझे निकाल न दिया होता और मुझसे शत्रुता न रखता तो मैं यहां क्यों आता और तब मुझे आप क्यों मिलते। उसका विरोध मेरे लिए उसकी कृपा है, उसीसे मेरा परम हित हुआ)—और जिससे स्वप्नमें लड़ाई हो तो जागनेपर उसे समझकर मनमें संकोच हो (कि ऐसे परमहितसे मैं कैसे स्वप्नमें भी लड़ा।)

नोट—समानार्थी श्लोक—"अस्ति नः परमं मित्रं वीरो वासवनंदनः। यस्य प्रसादात्त्वं राम मिलितः शोकनाशनः॥"—(सुग्रीवरामायणे) ॥१॥ "येनसार्धं भवेद्युद्धं स्वप्नेऽपि पुरुषोत्तम। मनः संकोचयुक्तंस्यान्मदीयं जाग्रतः स्वयम्॥"—(जाबालिसंहिता)॥ २॥

टिप्पणी १ (क)—'परम हित' इति। जो सांसारिक उपकार करे वह हित है और जो आपको मिलादे वह परमहित है। तात्पर्य कि अब आप बालिको न मारें। जिसके क्रोधसे ईश्वर मिले उसका क्रोध क्रोध नहीं है वह तो प्रसाद है; इसीसे सुग्रीव बालिके कोपको 'प्रसाद' कहरहेहैं। यहां अनुज्ञा अलंकारहै।—(वीरकविजी और दीनजी यहां लेश अलंकार कहतेहैं)। (ख)—'समन विषादा' अर्थात् जन्ममरणादि दुःखके दूर करनेवाले।

२—'सपने जेहि सन होइ लराई।...' इति। भाव कि स्वप्नमेंभी जब उससे लड़ाई होनेसे मुझे संकोच होगा तो अब उससे मैं स्वप्नमें भी नहीं लड़ूँगा।

दीनजी-भाव यह है कि बालिसे हमारी लड़ाई स्वप्नवत् है। अब मुझे संकोच होरहाहै कि उसने तो मेरी कोई बुराई नहीं की बल्कि मेरा परम हित कियाहै।

नोट—पंजाबीजी लिखतेहैं कि बालीको परमहित कहनेपर संभव था कि प्रभु कहते कि अभी २ तो तुम उसे शत्रु कहतेथे और इतनीही देरमें अपना हितुआ कहनेलगे; इसपर सुग्रीव कहतेहैं कि 'सपने जेहि०'। अर्थात् आप सत्य कहतेहैं, परन्तु जैसे कोई स्वप्न देखे कि मुझसे किसीसे लड़ाई हुई और फिर जागपड़े तो उस पुरुषको देख

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर मनमें संकोच और लज्जा प्राप्त हो, वैसेही मैंने जो कुछ कहा था वह सब अज्ञान दशामें कहाथा अब अज्ञानरूपी स्वप्न मिटगया अतः शत्रुता झूठ जानपड़ी। अब पूर्व वचनोंको याद करके लज्जा होतीहै। करुणा-सिंधुजी आदिनेभी ऐसाही अर्थ कियाहै। पर यहां 'जेहि सन' पद है जिसका अर्थ 'जिससे' है और यही अर्थ पं०रामकुमारजीने कियाहै। भाव दोनों अर्थोंमें एकही है, केवल अन्वय और अक्षरार्थका भेदहै।

अब प्रभु कृपा करहु येहि भाँती।
सब तजि भजन करौं दिनुराती॥ § ६ (२१)

अर्थ—हे प्रभो! अब इस प्रकारकी कृपा आप करें कि सब छोड़-कर मैं दिनरात भजन करूँ।

टिप्पणी—१ (क) 'अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती,' इस चरण का संबंध पूर्व और पर दोनोंसे है। 'जो स्वप्नमें हमसे और बालिसे लड़ाई हो तो जागनेमें हमारा मन सकुचाय', अब इस प्रकारकी कृपा कीजिए'—यह पूर्वसे संबंध है। और, 'सब छोड़कर दिनरात भजन करूँ, अब इस भाँतिसे कृपा कीजिए'—यह परसे संबंध है। (ख)-'इस भाँति कृपा करो' इस कथनका भाव यह है कि जो आपकी प्रथम मुझपर कृपा हुईथी—'सषा सोच त्यागहु बल मोरे। सब बिधि घटब काज मै तोरे॥ सुनु सुग्रीव मैं मारिहौं बालिहि०"—वह कृपा अब न कीजिए, उसे अब मैं नहीं चाहता। अब तो इस भाँतिकी कृपा कीजिए कि दिन रात आपका भजनकरूं।

२ ☞भजनके संबंधमें तीन बार बचन कहे। (१) सब परि-हरि करिहौं सेवकाई। (२) ये सब रामभगतिके बाधक। और (३) सब तजि भजन करौं दिनराती। तीनों स्थानोंमें "सब"—पदका प्रयोग कियाहै। इसमें भाव यह है कि इन विकारोंमेंसे यदि एकभी विकार रह जाय तो वह रामभक्तिमें बाधा करेगा। ३—ज्ञान और वैराग्य होनेपर भजन माँगतेहैं। इससे यह सूचित हुआ कि ज्ञान और वैराग्यका फल भक्ति है—(पं०)। ४—'कृपा करहु' से जनाया कि बिना आपकी कृपाके भजन नहीं बनता। ☞सुग्रीवके मतानुसार सभी कामोंकी सिद्धिकेलिए रामकृपाही मुख्य है। यथा—(क) नाथ कृपा मन भयो अलोला। (ख) अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजनकरौं०। (ग) 'यह गुन साधन ते नहि होई। तुम्हरी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कृपा पाव कोइ कोई ॥' इत्यादि। ५—यहां निर्वेद है। यथा—'जेहि तेहि बिधि संसार सुख देखत उपजै खेद। उदासीनता जगत ते सो कहिए निर्वेद॥''

नोट—''अब प्रभु कृपा करहु'' से सूचित करतेहैं कि मायाका आवरण दूर होनेपर ज्ञानका उदयभी होजाय तो भी बिना रामकृपाके उसकी स्थिति असंभव है। सुग्रीव'भजन'(भक्ति) माँगतेहैं,ज्ञान विज्ञान मोक्षादि नहीं माँगते;क्योंकि भक्तिसे ये सब स्वतः ही आजातेहैं,यथा—'भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृतिमूल अविद्या नासा॥' 'राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआई॥... 'तथा मोच्छसुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरिभगति बिहाई' एवं 'तेहि आधीन ज्ञान बिज्ञाना'।

सुनि बिराग संजुत कपि बानी।
बोले बिहँसि राम धनुपानी॥ § ६ (२२)
जो कछु कहेहु सत्य सब सोई।
सषा बचन मम मृषा न होई॥ ,, (२३)

अर्थ—कपिकी वैराग्ययुक्त वाणी सुनकर धनुर्धर रामजी हँसकर बोले। जो कुछ तुमने कहा वही सब सत्य है, पर, हे सखे! मेरा वचन झूठ न होगा। अर्थात् बालि मारा जायगा और तुमको राज्य और स्त्री मिलेगी।

टिप्पणी १—इस समय सुग्रीवको ज्ञान, वैराग्य और भक्ति तीनों प्राप्त हैं। यथा क्रमसे 'उपजा ज्ञान बचन तब बोला'', 'सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि०' और 'सब तजि भजन करौं दिनु राती'। २—''बोले बिहँसि''। अपना कार्य सिद्ध करनेकेलिए प्रभुने सुग्रीवपर अपनी मायाका विस्तार किया, क्योंकि प्रभुका हँसना माया है, यथा—''माया हास०''। उनका विहँसना था कि सुग्रीव मायामें फँस गए। ज्ञान, वैराग्य और भक्ति तीनोंमेंसे एकभी न रह गया, सभी जातेरहे,—(क) ज्ञान न रहा, यथा—'बिषय मोर हरि लीन्हेउ ज्ञाना।' (ख)—वैराग्य जातारहा, यथा—'पावा राज कोस पुर नारी'। और (ग)—भक्ति न रही, यथा 'सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी'। ३—'धनुपानी' कहनेका भाव कि धनुष हमारे हाथमें है,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. .....523.....

हमारी वाणी मिथ्या न होगी, हम बालिको मारेंगे। यही बात आगे कहतेहैं।

४—"सत्य सब सोई"। यहां 'सोई' शब्दसे नियम करतेहैं कि उत्तम बात तो वही है जो तुमने कही अर्थात् वैर छोड़कर शान्त रहना चाहिए पर मेरी जो बालिवधकी प्रतिज्ञा होगईहै वह मिथ्या नहीं हो सकती।

गौड़जी—"सुनि बिराग संजुत कपि बानी' इति। सुग्रीवको कच्चा वैराग्य होगयाहै, सच्चा वैराग्य नहीं है। उसका मत इतनी जल्दी बदल गया कि वह बालिके मारेजानेकी फिक्रमें अब नहीं है, क्योंकि वह समझताहै कि मैं तो अब श्रीरघुनाथजीकी रक्षामें निर्भय विचरूँगा, बालि मेरा कुछ कर न सकेगा, क्योंकि श्रीरघुनाथजीकी मैत्री की मेरे ऊपर छत्रछाया है। बालि अब मेरा बालभी बांका नहीं कर सकता। यह वास्तविक वैराग्य नहीं है बल्कि सुग्रीवके चित्तकी अव्यवस्थाका प्रमाण है। मित्रके इस कच्चे वैराग्यपर भगवान् मुसुकुराये। कपिकी वाणी विरागसंयुत है, उसका मन और कर्म वस्तुतः विरागसंयुत नहीं है। इसलिये आगे चलकर कहतेहैं कि तुमने जो कुछ कहा है "सोई"—(वही, उतनाही)—सब सत्य है (अर्थात् कहनाभर सत्य है, कर्म और मन वैसा नहीं है। अभी तो तुम कहते हो कि बालि परमहित है परन्तु शरीर पर जब बज्रकी तरह घूँसा लगेगा तब असली बातका पता लगेगा तब यह वैराग्यसंयुत वाणी बदल जायगी और कहोगे कि 'बन्धु न होइ मोर यह काला'। परन्तु, हे मित्र! मेरा वचन झूठा नहीं होसकता। सुग्रीव आर्त्त और अर्थार्थी भक्त है, भगवान्से मैत्री होतेही उसकी पीड़ा मिटगई। इसलिये वह अब भगवान् की प्रतिज्ञा भूलगया और उसे एतमीनान होगया कि जब मैत्री हो गईहै तो मेरी तो सारी जरूरतें रफा होगईं। परन्तु भगवान् अपने बचनको कैसे भूल सकते थे। अगर सुग्रीवमें बालि के परमहित होनेका विश्वास दृढ़ जमगयाहोता तो पहिले तो वह बालि के सामने आतेही उसके चरणोंपर गिर पड़ता और उसे राजी करलेता। इसी के विपरीत पहिलेही घूँसे पर परमहितके बदले अपने कभीके स्नेही बन्धुको अपना काल समझने लगा।

भगवान्ने हँसकर सुग्रीवपर अपनी माया नहीं डाली; बल्कि उसकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विरागसंयुत खोखली बातोंपर मुसकुराये और परिणामको थोड़ेसे शब्दोंमें यों कहदिया कि मेरा वचन असत्य न होगा। कच्चा वैराग्यभी भगवान्‌की माया है जिसमें जगत् फँसा हुआहै और आर्त्त और अर्थार्थी भक्त सुग्रीव भी मैत्री होजानेपरभी उससे छूटा न था। इसी मायाजालकी चर्चा आगे कीगई है कि भगवान् उसी तरह अपनी माया से सबको नचातेहैं जैसे मदारी बंदरको नचाताहै। यहां बन्दरोंकेही प्रसंगमें यह दृष्टान्तभी बड़ा सुसंगत और सुन्दर हुआहै।

पं०—(क) हँसे—(१) सुग्रीवकी जातिकी चपलता विचारकर कि अभी अभी तो बालिको शत्रु कहताथा और अब परमहित कहनेलगा। वा, (२) यह सोचकर कि जब हमने बालिवधकी प्रतिज्ञा की तब ज्ञानकी चर्चा करके भ्रातृवधसे अपनेको निर्दोष करना चाहताहै। वा,—(३) इससे अपनी प्रसन्नता प्रकटकी कि सुग्रीवको ज्ञान उत्पन्न हुआहै वह ज्ञानकी वार्ता करनेलगाहै, आगे दृढ़भी होजायगा। (ख) धनुपाणी विशेषण देकर जनाया कि यद्यपि सुग्रीव बालिको मित्र कहताहै तथापि प्रभु प्रतिज्ञा करचुकेहैं और धनुषवाण लिएहैं, वे प्रतिज्ञानुसार बालीको अवश्य मारेंगे।

नोट—१ यहां 'विरागसंयुतवाणी' के साथ 'कपि' शब्द देकर जनाया कि यह वैराग्य इसका स्थिर रहनेवाला नहीं है। कपि चंचल प्रसिद्ध ही हैं अतः इसके वैराग्यकथनका कारण इसका चंचल स्वभाव ही है। २—'बचन मम मृषा न होई'। वे वचन ये हैं—'सब बिधि घटब काज मै तोरे' और 'मारिहौं बालिहि एकहि बान' इत्यादि। ये दोनों वचन प्रभु सत्य करेंगे। सुग्रीवको भक्तिभी देंगे क्योंकि कहतेहैं कि वही सत्य है। पर भजन तभी होसकताहै जब बाहरके दुष्टोंसेभी छुटकारा मिले। अतः बालिवध अवश्य करेंगे, नहीं तो जैसे रावणके कारण ऋषि तपस्या नहीं कर सकतेथे वैसेही बालिके कारण सुग्रीव का भजन निबहजाना असंभव था।

मा० म०—पहिले सुग्रीवने लौकिक त्याग कहा, यथा—'सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई॥ ये सब राम भक्तिके बाधक।...'। फिर चारों मोक्षोंका अन्ततः त्याग किया, यथा—'अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजन करउँ दिनराती'। सुग्रीवने पहिले अपनी बिगड़ी हुई अवस्था कही जब श्रीरामचन्द्रजीने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुधारनेकी प्रतिज्ञाकी तब उसने उसको त्याग दिया इसीसे अंतमें श्रीरामजीकी साक्षीहै कि 'जो कछु कहेहु सत्य सब सोई। सखा बचन मम मृषा न होई'।

प्र०—सुग्रीवके वचनको सत्य कहकर और 'सखा' संबोधन करके अपने वचनकी सत्यता प्रधान रक्खी।

नोट—सुग्रीवके ज्ञानोदय और फिर मायामें पड़नेका यह प्रसंग अध्यात्मरामायण १।७६—९३, और २।१-५ में विस्तारसे लिखाहै।

"रामः सुग्रीवमालोक्य सस्मितं वाक्यमब्रवीत् ॥१॥ मायां मोहकरीं तस्मिन् वितन्वन् कार्यसिद्धये। सखे त्वदुक्तं यत्तन्मां सत्यमेव न संशयः ॥ २ ॥ किंतु लोका वदिष्यन्ति मामेवं रघुनंदनः। कृतवान् किं कपीन्द्राय सख्यं कृत्वाग्निसाक्षिकम् ॥ ३ ॥ इति लोकापवादो मे भविष्यति न संशयः।"—(सर्ग २)। अर्थात् सुग्रीवको देखकर रामजी हँसकर वचन बोले (सुग्रीवके) कार्यसिद्धिकेलिए मोहनेवालीमायाको उसपर फैलाया। हे सखे! तुमने जो कहा वह सब सत्य है, इसमें संदेह नहीं; पर मुझे लोग कहेंगे कि रघुनन्दनने अग्निको साक्षी देकर सुग्रीवको मित्र बनाया फिर उन्होंने उसका क्या काम किया? मेरे विषयमें ऐसा लोकापवाद होगा, इसमें संदेह नहीं।

नट मरकट † इव सबहि नचावत।
रामु खगेस बेद अस गावत ॥ ◊ ६ (२४)
लै सुग्रीव संग रघुनाथा।
चले चाप सायक गहि हाथा ॥ ,, (२५)

अर्थ—हे खगेश! वेद ऐसा कहतेहैं कि रामजी नट-मर्कटकी तरह (अर्थात् जैसे मदारी बंदरको नचाताहै वैसेही) सभीको नचातेहैं।* सुग्रीवको साथ लेकर और हाथोंमें धनुषबाण धारणकरके रघुनाथजी चले।

टिप्पणी १—"नटमर्कट इव"। जब रामजीने सुग्रीवको उत्तर दिया कि 'सषा वचन मम मृषा न होई' तब सुग्रीवने रामजीकी

† मर्कट—(का०)

* यथा—"रामः सर्वान्नर्तयति नटः शाखामृगानिव। गायन्तीत्थं सदा वेदा जानीहि खगनायक ॥"—(भुशुण्डिरामायण) ॥ अर्थ वही है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इच्छाके अनुकूल ही काम किया अर्थात् बालिसे लड़नेके लिए तुरंत किष्किंधाके उपवनमें गए। इसीपर भुशुण्डिजी गरुड़जीसे कहतेहैं कि सुग्रीवही क्या,सारा संसार रामजीकी इच्छाके अनुसार कामकरताहै।

२—"लै सुग्रीव संग", इससे रघुनाथजीकी प्रधानता पाईगई कि बालिके मारनेमें उनका मुख्य प्रयोजन है उनको अपना वचन सत्य करनाहै। यदि चलनेमें रघुनाथजीकी प्रधानता न होती तो ऐसा कहते कि रघुनाथजीको संग लेकर सुग्रीव चले।

नोट—१ जैसे मदारी बंदरको जैसा चाहे नाच नचाताहै वैसेही रामजी जीवोंको जैसा चाहतेहैं नचातेहैं, जैसा कार्य्य उससे चाहतेहैं करा लेतेहैं। जैसे बानर नटके अधीन वैसेही जीव ईश्वरके अधीन है। ईश्वर स्वतंत्र है जीव परतंत्र। जीवका कुछ वश नहीं, उसे विवश होकर सब करना पड़ताहै। यह नटमर्कटके दृष्टान्तका भाव है। मिलान कीजिए —'राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करइ अन्यथा अस नहिं कोई', 'होइहि सोइ जो राम रचि राषा', 'राम रजाइ सीस सबहीके', 'उरप्रेरक रघुबंस बिभूषन॥ कृपासिंधु मुनि मति करि भोरी। लीन्ही प्रेमपरीछा मोरी', उमा दारु जोषित की नाईं। सबहिं नचावत राम गोसाईं", इत्यादि। विशेष देखिए § १० (७)। गीतामेंभी कहाहै कि 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया' (१८।६१)। अर्थात् हे अर्जुन। ईश्वर सभी जीवोंके हृदयरूपी देशमें स्थितहै और मायारूपी यंत्रपर चढ़ेहुए सब प्राणियोंको घुमाता है। २—नट शब्द प्रथम देकर नटकी प्रधानता कही वैसेही यहाँ रामजी प्रधान हैं। ३—यहाँ 'नचावत' के साथ 'राम' पद सार्थक है। रमु क्रीड़ायाम्। अर्थात् वे राम हैं, अतएव क्रीड़ा करना उनका यथार्थही है वही वे कररहेहैं। नचाना क्रीड़ा है।—(पं० रा० कु०)।

गौड़जी—यहाँ इस चरितसे यहभी दरसाया कि मित्रके कामके लिये स्वयं अगुआ होकर चलना चाहिए। मित्रके तकाजेकी इन्तजारी करना सन्मित्रका काम नहीं है। उसका काम तो अपने कामसे बढ़कर और ज्यादा जरूरी समझना चाहिये। मर्यादापुरुषोत्तम हैं। 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः। सयत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते।' अपने प्रत्येक चरितसे आचरणका उपदेश देतेहैं।

पं०—(१) 'रघुनाथा' का भाव कि रघुवंशीमात्र शरणपाल और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सत्यसंध होतेहैं—'प्रान जाहु बरु बचन न जाहीं'-और ये तो रघुवंशियों के नाथ हैं तब इनका, साथ जाकर शरणकी,र क्षा करना उचितही है। (२) यहाँ लक्ष्मणजीको साथ लेना न कहा क्योंकि एक बाणसे मारने की प्रतिज्ञाहै वही बाण और धनुष लेकर चले।

मा० त० प्र०—प्राय: तर्कश कसकर जहाँतहाँ लड़ाईमें जाना कहागयाहै* पर यहाँ तर्कशका लेना नहीं कहागया। कारण यह कि जिस बाणसे मारनाहै वही हाथमें लेलिया है, शेष शस्त्र लक्ष्मणजीके पास रहे।

तब रघुपति सुग्रीव पठावा।
गर्जेसि जाइ निकट बल पावा॥ § ६ (२६)
सुनत बालि क्रोधातुर धावा।
गहि कर चरन नारि समुझावा॥ ,, (२७)

अर्थ—तब रघुनाथजीने सुग्रीवको भेजा। वह बल पाकर पास

* १ खरदूषण-प्रसंगमें—"कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिष सुधारिकै"। २—"कटि पटपीत कसे बरभाथा। रुचिर चाप सायक दुहु हाथा॥"—(विश्वामित्रके साथ ताड़कावध-प्रसंगमें)। इत्यादि। पर मारीचवधप्रसंगमेंभी तर्कशका बाँधना नहीं कहाहै, यथा—'मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर सर साँधा'। इसके संबंधमें मा० त० प्र० संभवत: यह उत्तर देती कि—यहाँ आखेट है संग्राम नहीं, इससे यह प्रमाण नहीं मानाजासकता। दूसरे, 'कटि परिकर बाँधा' से कटिमें तर्कशका बाँधना लेसकतेहैं। तीसरे वहाँभी एकही बाणसे काम लियाहै इससे वहाँभी तर्कश न लिया, यथा—'तब तकि राम कठिन सर मारा'। वही कठिन सर हाथमें लेकर पीछाकिया। औरभी प्रसंग मिलतेहैं जहाँ तर्कशका कसना नहीं कहाहै। जैसे—'लछिमन चले सकोप अति बान सरासन हाथ'; यहाँभी मेघनादसे लड़नेको जाते समय केवल बाण और धनुष हाथमेंलिए जाना कहतेहैं, यद्यपि यहाँ बारंबार बाणोंका प्रहार कियागयाहै—'नाना विधि प्रहार कर सेषा।...'। हाँ, दूसरी बार जब मेघनादसे युद्ध करनेगए तब 'कटि निषंग कसि साजि सरासन' पद दियाहै। इससे यह भी कहाजासकताहै कि 'तर्कश' भी साथ रहना संभव है क्योंकि बालिवधपरभी 'सर चाप चढ़ाये' बालिके पास प्रभु गएहैं; यह दूसरा सर कहाँसे आया?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जाकर गर्जा। बालि सुनतेही क्रोधमें भरकर तुरत दौड़ा। उसकी स्त्री (तारा) ने हाथसे चरण पकड़कर समझाया।

टिप्पणी १—'तब रघुपति सुग्रीव पठावा।०' इति। (क) 'तब' अर्थात् जब पहाड़से उतरकर किष्किन्धाके पास आए तब †। (ख) 'गर्जेसि जाइ निकट' इति। निकट जाकर तब गर्जा, क्योंकि किष्किंधा नगर भारी है, दूरसे बालितक शब्द न पहुँचता; पाससे गर्जन करने से शब्द बालिके महलतक पहुँचेगा और वह सुनकर लड़नेके लिए सुग्रीवके पास आवेगा। (ग) 'बल पावा' से सूचितकरतेहैं कि इस लड़ाईमें बालि सुग्रीवको मारेगा, क्योंकि सुग्रीवने रामजीसे बल पाया है और बालिमें महाबलहै, यथा—'बालि महाबल अति रनधीरा'। दूसरी लड़ाईमें सुग्रीवको विशाल बल देंगे तब नाना विधिकी लड़ाई होगी, यथा—'पुनि पठवा बल देइ बिसाला' और 'पुनि नाना बिधि भई लराई'।*

† पं० शिवरत्नशुक्ल (शि० र०)—१ श्रीमहाराजजी साथ क्यों न गए? यदि साथ जाते तो संभव था कि बालिके अतिरिक्त अन्य योद्धाभी उसके साथ जाते। ऐसा होनेमें रामजीके लिए कोई कठिनता न होती। परन्तु सुग्रीव ऐसे युद्धमें युद्धप्रवर्तक न समझेजाते। महाराजके साथ न जानेसे सुग्रीवका प्रभाव लोगोंपर पड़ा कि उसने स्वेच्छासे बालिको घेरकर युद्ध माँगा। ऐसा करनेसे सुग्रीव योद्धाओंके बीच आदरदृष्टिसे देखेगए। २—ताराने पूर्वही क्यों न बालि से यह कह दिया? अनुमानसे मालूम होताहै कि वह बालि और सुग्रीवके बीचमें युद्ध नहीं चाहतीथी। जब उसने देखा कि अब ये युद्ध करनेही जाताहै तब मैत्रीका समाचार दिया और अवतार और बलभी बताया। पुनः, अनुमान होता है कि जिन लोगोंने मित्रताका हाल जानाथा उनने बालिके उग्र प्रतापके भीतर ही अपनी बुद्धिको रक्खा और इस विचारको ध्यानमें न लानेकी भूलकी कि ऐसे दैवी विभूति संपन्न व्यक्तिके साथ नरबलसंपन्न बालि कैसे विजय पा सकताहै। दूसरी ओर यह अनुमान होसकताहै कि बालि इस विचारका वीर था कि वह शत्रुकेभावों और चालोंका पतालगाना और छलसे शत्रुको पराजय करना तुच्छ बलवानोंका काम समझताथा। इसीलिए वह सुग्रीवके मित्रशत्रुकी ओर कम ध्यान देताथा। तारा बालिके स्वभावसे परिचित थी, उसने सुग्रीवके भेदभावोंको प्रकट करना निरर्थक समझा क्योंकि बालि उसपर किंचित् ध्यान न देता। तोभी जब जान लिया कि यह होनेकोही है तब सब वृत्तान्त कहदिया।

* मा० त० प्र०—'बल-पावा' अर्थात् वचन-बल पाकर, यथा—'मारिहौं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२-(क) 'सुनत बालि धावा' क्योंकि वह शत्रुके बलको नहीं सहसकता, यथा—'बाली रिपुबल सहै न पारा'। अतएव सुग्रीवकी ललकार सुनकर दौड़ा। (ख) 'क्रोधातुर' है। क्रोधमें समझ नहीं रहती इसीसे स्त्री समझाने लगी। ‡

नोट—१ यहाँ ताराका प्रथमही बार समझाना कहतेहैं और वाल्मीकीयमें दूसरीबार युद्धकेलिए जातेसमय समझाना लिखाहै। ताराको कैसे मालूम हुआ यह स० १५ में दिया है। वह कहतीहै कि—'जिस कारण मैं तुम्हें रोकती हूँ वह सुनो।···अहंकार, उसका घोर युद्धकेलिए उद्योग, और उसके गर्जनमें भयानकता इन सबका कोई बड़ा कारण अवश्य है। बिना किसीके सहायताके वह यहाँ आकर न गरजता। वह स्वभावसेही निपुण और बुद्धिमान है, बिना बलकी परीक्षा लिए उसने किसीसे मित्रता न की होगी। कुमार अंगदसे मैंने पहिलेही यह बात सुनी है। वह एकदिन वनमें गयाथा। वहीं दूतोंने उससे यह बात कहीथी। अयोध्यापतिके दो पुत्र जो दुर्जय हैं, वे सुग्रीवका हित करने वनमें आएहैं, वेही रामलक्ष्मण सुग्रीवके सहायकहैं। रामचन्द्र शत्रुसेनाके विनाशमें प्रलयाग्निके समान हैं, संतों और आर्त वा शरणागतके आश्रयस्थान हैं, अजेय हैं, इत्यादि,—(श्लोक ८ से २२ तक)। २-किसी २ का मत है कि तारा पंच कन्या मेंसे एक है अतः उसे दिव्य ज्ञान है इससे वह जानगई।

सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवाँ।
ते दोउ † बंधु तेज बल सीवाँ॥ § ६ (२८)

बालिहि एकहि बान' और 'सखा बचन मम मृषा न होई'। वा, प्रभुके निकट होनेका बल पाकर। सुग्रीवने इतनी दूरपर जाकर पुकारा कि जहाँसे प्रभु निकटही हों।

‡ मा० त० प्र०—'गहि कर चरन' का भाव कि—(क) पहले 'कर' (हाथ) पकड़कर समझाया, न माना तब चरण पकड़कर समझाया। स्त्रियोंका हाथ पकड़कर समझाना स्वभावसिद्ध है, यथा—'कर गहि पतिहि भवन निज आनी। बोली परम मनोहर बानी'। वा, (ख) हाथ पकड़कर समझानेमें यह भाव कि बाली क्रोधान्ध है और अंधेको हाथ पकड़कर समझाना होताहै। वा, (ग) हाथ पकड़ा कि वह खड़ा होजाय तब मैं समझाऊँ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कोसलेस सुत लछिमन रामा।
कालहु जीति सकहिं संग्रामा॥ § ६ (२९)

अर्थ—हे पति! सुनिए, जिनसे सुग्रीव मिलेहैं (मित्रता कीहै) वे दोनों भाई तेज और बलकी सीमा हैं। अर्थात् परम तेजस्वी और बलिष्ठ हैं। वे कोसलपति दशरथजीके पुत्र राम और लक्ष्मण हैं जो संग्राममें कालकोभी जीतसकतेहैं।

टिप्पणी—१ (क) "सुनु पति"। आप मेरे पति अर्थात् रक्षक हैं—'पु' 'रक्षणे', 'प' धातु रक्षाके अर्थमें है। तात्पर्य कि सुग्रीवसे वैर छोड़ कर मेरी और अंगदकी, राज्यकी और कुलकी, इत्यादि, सबकी रक्षा कीजिए ‡। (ख) "तेज बल सीवाँ"। तेजकी सीमा अर्थात् तेजस्वी कहकर जनाया कि तेजस्वीको लघु न गिनना चाहिए, यथा—'तेजवंत लघु गनिय न रानी'। तात्पर्य कि ये देखनेहीमें छोटे हैं; परन्तु उन्हें छोटा न जानो। जहाँ तेज है वहाँ बल है; अतः बलके सीवँ हैं।

२—'कोसलेस सुत' से सूचित किया कि रामलक्ष्मण साक्षात् भगवान्के अवतार हैं। कोसलेशके यहाँ भगवान्ने अवतार लेनेको कहाहै, यथा—'ते दसरथ कौसल्यारूपा। कोसलपुरी प्रगट नरभूपा॥ तिन्हके गृह अवतरिहौं जाई। रघुकुलतिलक सो चारिउ भाई॥' ३—यहाँ प्रथम लक्ष्मणजीका नाम दिया तब रामजीका। मुख्य कारण छन्दकी सुगमताहै। पुनः, संग्राममें आगे सेवक चाहिए पीछे स्वामी; इसीसे ('कालहु जीति सकहिं संग्रामा' कहनेमें) पहिले लक्ष्मणजी-का नाम कहतीहै। ४-'कालहु जीति०' इति। 'कालहु' कहकर कालकी बड़ाई करतीहै कि काल सबको जीतताहै और उसकालको ये दोनों जीतसकतेहैं, यथा—'भुवनेश्वर कालहु कर काला', 'तुम्ह कृतांत भच्छक सुरत्राता'। 'संग्रामा' का भाव कि योगी योगसे कालको जीततेहैं, रामलक्ष्मण संग्राममें उसे जीतसकतेहैं; तब तुम उनके सामने क्या हो?

---

† दोउ—(का०), द्वौ—(भा० द०)।

‡ "पाहिमामंगदं राज्यं कुलं हरिपुंगव" अर्थात् हे वानरश्रेष्ठ! मेरी, अंगद-की, राज्यकी और कुलकी रक्षा कीजिए।—(अध्यात्म २। ३२)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।
जौं कदाचि मोहि मारहिं† तौ पुनि होउँ सनाथ॥७॥

अर्थ—बालिने कहा—हे भयशीले (स्वभावसे डरपोक)! हे प्रिये! रघुनाथजी समदर्शी हैं, जो कदाचित् मुझे मारेंगे तो मैं सनाथ हो जाऊँगा।*

टिप्पणी—१ ताराके हृदयमें डर है इसीसे उसे 'भीरु' कहा। और, उसकी खातरीकेलिए 'प्रिय' सम्बोधन किया। २—'जौं कदाचि' का भाव कि प्रथम तो वे मुझे मारेंगेही नहीं और यदि कदाचित् वे मारें क्योंकि वे अपने भक्तोंके वास्ते विषमदर्शी भी होजातेहैं, यथा—"जद्यपि सम नहि राग न रोषू। गहहिं न पाप पुन्य गुन दोषू॥ तदपि करहिं सम विषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा॥" तो मैं कृतार्थ होजाऊँगा।

नोट १—'तौ पुनि होउँ सनाथ' अर्थात् कपियोनिसे छूटकर परमगतिको पाऊँगा।—(पं०)। यहाँ भाव आनंदरामायणसे सिद्ध

---

† भा० द० और का० का यही पाठ है। 'मारिहैं तौ पुनि होव' पाठांतर है।

* १ यथा—"भूभारहरणार्थाय श्रुतं पूर्वं मयाऽनघे। स्वपक्षः परपक्षो वा नास्ति तस्य परात्मनः॥' अर्थात मैंने पूर्वही सुनाहै कि भूभार हरण करनेके लिए अवतीर्ण हुएहैं। वे परमात्मा हैं। उनमें अपना या पराया पक्ष अर्थात् मित्र या शत्रुभाव नहीं है।—(अध्यात्म २।३६)॥१॥ पुनः यथा आनंद-रामायणे—"तत्तारावचनं श्रुत्वा बाली तां वाक्यमब्रवीत्। जानाम्यहं राघवं तं नररूपधरं हरिम्॥ तस्य हस्तान्मृतिर्मेस्ति गच्छामि परमं पदम्।" अर्थात् मैं उन राघवको जानताहूँ। वे नररूपधारी भगवान् हैं। उनके हाथ मेरी मृत्यु है, मैं परमपदको प्राप्त हूँगा।

२—दीनजी 'तौ पुनि होब सनाथ' का अर्थ करतेहैं कि "तो तू पुनः पतियुक्ति होजायगी। (अर्थात् तुझे तो यही डर है कि यदि मैं मारागया तो तू बिधवा होजायगी; पर तू पंचकन्यामेंसे है अतएव मेरे मरजाने परभी तू विवाह करके सधवाही रहेगी। तू शोक मत कर।" और कहतेहैं कि यदि ऐसा अर्थ न करें तो "पुनि" शब्द व्यर्थ होजाता है। नोट—पूर्व बताया जा चुकाहै कि बुँदेलखण्डमें 'पुनि' शब्द साधारणही विना अर्थके बोलाजाताहै। तौ पुनि=तौ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होताहै ।‡ २-ताराने समझाया पर इसने न माना; क्योंकि एक तो वह क्रोधावेशमें है दूसरे उसे बलका गर्व है—'क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा । ऊसर बीज बये फल जथा', 'अस कहि चला महाअभिमानी' । ऐसेही रावणके न माननेपर मंदोदरीका विचारहै-'काल बिबस उपजा अभिमाना' । अभिमान है अतः मृत्यु निकट जानपड़तीहै ।

‡ शि० र०—जिन जीवोंमें किसी कारणवश किसी अलौकिक शक्तिका प्रादुभाव होताहै तो उनमें ऐसी आश्चर्य्यमयी शक्तिबुद्धि अथवा विद्याकी पूर्ण सिद्धता होतीहै कि उनके सम्मुख संसारमण्डलमें कोई खड़ा नहीं होसकता । जितनी बलशक्ति संसारमें रहतीहै वह अधिकांशरूपमें उस व्यक्ति विशेषमें एकत्र होजातीहै । जैसे न बहनेवाले पानीमें काई और मलिनता उत्पन्न होजाती है उसी प्रकार सकल संसारमें घूमनेवाली शक्ति किसी एक विशेष शरीरमें स्थित होजातीहै तो स्थान विशेष उसमेंभी विकार उत्पन्न कर देताहै, जिससे संसारके कामोंमें अड़चन पड़ने लगतीहै । तब इसकी आवश्यकता होतीहै कि वह एकत्रित शक्ति पूर्वकी भाँति छितर जावे ।...संभव है कि बालिकी अति बलवानताने संसारके नियमोंमें विघ्न पहुँचायाहो, इसलिए बालिकी उस एकत्रित शक्तिको जिसे सारे संसारमें कार्य करना चाहिए, छितरादेना अनिवार्य था । अस्तु जगत्पतिने ऐसा करना उस समय उचित समझाथा । जब किसी में बलकी शक्ति 'अमितता' के निकट पहुँचतीहै तब उसीरूपसे गर्व, मदान्धता, अनुचित क्रोध, तथा अनुचित विलासपना आजाताहै । संसारमें मनुष्य शरीर-बलके अधीन रखेजातेहैं । बालि ऐसे बलवानके अवलंबित मार्गपर आगे चलकर जनता चलनेको बद्ध थी । जब ऐसा होता तब कामक्रोधादिकी इतनी विशेषता होजाती कि शान्ति, शम, मर्यादा आदि उत्तम गुणोंका नाम तक न रह जाता, और ऐसा होनेसे संसार अस्तव्यस्तताको प्राप्त होता । अतः जब ऐसी अलौकिक व्यक्ति विशेषसे अलौकिक एकत्रित शक्ति संपूर्ण जगत्में छितरानेके लिए निकाली जातीहै, तब उसीके साथ बुराइयांभी, जो अपनी उच्चताको पहुँच चुकी हैं, साथही घसीट लीजातीहैं । जब उस व्यक्तिसे बुराइयांभी अलग होगईं तब वह निर्मल होजाताहै । अस्तु इसी आधारपर बालि कहताहै कि यदि मुझे वे मार डालेंगे तो मैं निर्मल होकर उनके समान होजाऊंगा, बालिने श्रीरामचन्द्रको नीच तथा शत्रुदृष्टिसे न देख बहुत बड़ी ऊँची और पूज्य दृष्टिसे देखाथा ।—(नोट—सहस्रार्जुनका उदाहरण इस विषयमें लियाजासकता है ।)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अस कहि चला महा अभिमानी ।
तृन-समान सुग्रींवहि जानी ॥ § ७ (१)
भिरे उभौ बाली अति तर्जा ।
मुठिका मारि महाधुनि गर्जा ॥ ,, (२)

अर्थ—महा अभिमानी बालि ऐसा कहकर और सुग्रीव को तिनके के समान समझकर चला। दोनों भिड़गए (=लड़गए)। बालिने बहुत डाँटडपट और तिरस्कार करतेहुए सुग्रीवको धमकाया। और घूँसा मारकर बड़ेज़ोरसे गर्जा।

टिप्पणी—१—(क) 'असकहि चला०'। तात्पर्य कि बालिको मृत्यु अङ्गीकार है पर शत्रु की ललकार अंगीकार नहीं है। पहले कहाहै कि 'सुनत बालि क्रोधातुर धावा' और यहां कहतेहैं कि 'अस कहि चला'। अब 'चला' कहनेका भाव यह है कि पहिले जब क्रोधसे दौड़ाथा तब ताराने चरण पकड़कर विनतीकी। स्त्रीके समझानेसे क्रोधका वेग निकलगया अतएव अब दौड़ा नहीं, वरन् चला। वैसाही कविने लिखा। (ख)—'महाअभिमानी' का सम्बंध पूर्व और पर दोनों चौपाइयोंसे है। पूर्व नारिका सिखावन है सो उसने नहीं माना, इसीसे कहा कि वह महाअभिमानी है—यही बात रामजी बालिसे आगे कहेंगे, यथा—'मूढ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना'। पुनः, इस चौपाईमें कहतेहैं कि उसने सुग्रीवको तृणसमान जाना, इसीसे कहा कि वह महाअभिमानी है—इस बातकोभी रामजी आगे कहेंगे, यथा—'मम भुजबल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी'।*

३—(क) 'भिरे उभौ' का भाव कि रामजीके बलसे सुग्रीवने बालिका भय नहीं माना, बालि लड़ा सुग्रीवभी लड़ा, सुग्रीव तर्जा बालि अति तर्जा। सुग्रीव गर्जाथा, यथा—'गर्जेसि जाइ निकट बल पावा', बालि महाध्वनिसे गर्जा। बालि सुग्रीवको मारकर गर्जा—यह बालिकी जीत हुई; जैसे हनुमान्‌जी अक्षकुमारको मारकर गर्जेथे,

* प्र०—तृणसमान जानकर चलनेसे 'अभिमानी' और रामाश्रित सुग्रीवको तृणसमान माननेसे 'महा अभिमानी' कहा।—(मा० म०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यथा-'आवत देषि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा'। †

तब सुग्रीव बिकल होइ भागा।
मुष्टिप्रहार बज्र सम लागा॥ § ७ (३)
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला।
बंधु न होइ मोर यह काला॥ ,, (४)

अर्थ—तब सुग्रीव व्याकुल होकर भागा, घूँसेकी चोट बज्रके समान लगी। (आकर रघुनाथजीसे बोला कि) हे कृपालु रघुबीर! मैंने जो आपसे कहाथा कि यह मेरा भाई नहीं है, यह मेरा काल है, (वह सत्य है)

टिप्पणी १—'मुष्टिप्रहार बज्रसम लागा' इति। वज्र पड़नेका रूपक कहतेहैं—

आकाश	यहां
वज्र पात होताहै	बालिने मुष्टि प्रहार किया
वज्रपातके पीछे गर्जन होतीहै	मुष्टिप्रहार करके बालि गर्जा
वज्रपातसे लोग व्याकुल होतेहैं	सुग्रीव व्याकुल होकर भागा
इन्द्र वज्रपात करताहै	इन्द्रके अंश बालिने मुष्टिप्रहारकिया

इन्द्रका आयुध वज्र है, बालि इन्द्रसे उत्पन्न है अतः उसका घूँसा वज्रवत् है।

२ (क)—'मैं जो कहा' इति। पूर्व जो सुग्रीवने कहाथा कि 'रिपुसम मोहि मारेसि अति भारी। हरि लीन्हेसि सरबस अरु नारी' —§५ (११), उसी कथनका यहां संकेत है। वहां 'रिपु सम' कहा और यहाँ 'काल'; दोनोंही एकसे हैं, रिपुभी मारनाही चाहताहै। (ख)—'रघुबीर कृपाला'—§५ (१२) देखिए। यहां तात्पर्य यह है कि मैं उससे युद्धकरनेयोग्य नहीं हूँ, आपही कृपाकरके उसे मारें।

३—'बंधु न होइ मोर यह काला', यही बात उससे कहलानेके लिए रामजीने उसे इस लड़ाईमें विशाल बल नहीं दिया। सुग्रीवने ज्ञान होनेपर बालिको 'परमहित' कहा, परमहितको कैसे मारसकतेहैं;

† संभव है कि ऐसे गर्जनसे बालिने गर्वके साथ सुग्रीव तथा उनके सहायकों को यह जनाया कि हमारा बल सामर्थ्य साधारण नहीं है। अर्थात् गर्जन-द्वारा सुग्रीव और उसके सहायकका तिरस्कार किया।—(शि० र०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अतएव जबतक वह उसको शत्रु न कहे तबतक मारना अनुचित ही था। जब वालि सुग्रीवको मारे और सुग्रीव उसको शत्रु कहे तब उसको मारें। यहाँ शुद्धापह्नुति अलंकार है। यहाँ कालके आरोपसे भाईका धर्म छिप गया।

नोट—१ यहाँ वीरका सामना है अतः रघुवीर पद दिया, नहीं तो रघुनाथ पदमें भी छंद बैठ सकता था। पुनः, वालिको काल कहते हैं और 'कालहु डरहिं न रन रघुबंसी' अतः रघुकुलसंबंधी नाम दिया। रघुवीर=पंचवीरतायुक्त। २—शत्रुसे मार खानेपर भी सुग्रीवने कटु वचन न कहकर 'रघुवीर कृपाला' ही सम्बोधन किया, इससे उपदेश ग्रहण करना चाहिए कि मित्रद्वारा कोई बात ऐसी देखकर जो अपनेको उचित न जँचे मित्रताकी अवहेलना न करना मित्रका धर्म है। ३—पाँड़ेजीका मत है कि यहाँ 'रघुवीर' और 'कृपाला' शब्दमें व्यङ्ग है कि आपकी वीरता और कृपालुता रहते हुए भी मेरी यह दुर्दशा की गई। वीर होकर रक्षा न की, कृपालु होकर भी मेरी दशापर धैर्य्य बना ही रहा।

एकरूप तुम्ह भ्राता दोऊ।
तेहि भ्रम ते नहिं मारेउँ सोऊ॥ § ७ (५)

अर्थ—तुम दोनों भाई एकरूप हो इसी भ्रमसे उसको मैंने नहीं मारा (कि कहीं तुम्हारे बाण न लग जाय)।

मा० त० भा०—रामजी मनुष्यलीला करते हैं इसीसे अपनेमें भ्रम कहते हैं।

नोट—'अन्योन्यसदृशौ वीरावुभौ देवाविवाश्विनौ॥१९॥ अलंकारेण वेषेण प्रमाणेन गतेन च। त्वं च सुग्रीव बाली च सदृशौ स्थः परस्परम्॥३०॥ स्वरेण वर्चसा चैव प्रेक्षितेन च वानर। विक्रमेण च वाक्यैश्च व्यक्तिं वां नोपलक्षये॥३१॥ ततोऽहं रूपसादृश्यान्मोहितो वानरोत्तम। नोत्सृजामि महावेगं शरं शत्रुनिबर्हणम्॥३२॥...त्वयि वीर विपन्ने हि अज्ञानाल्लाघवान्मया। मौढ्यं च मम बाल्यं च ख्यापितं स्यात्कपीश्वर॥३४॥'—(वा० १२) अर्थात् दोनों वीर समान थे, अश्विनीकुमारोंके समान उनमें कुछ भी भेद न जान पड़ता था।१९। अलंकार, वेष, शरीरकी उँचाई लम्बाई चौड़ाई इत्यादि और चालसे तुम दोनों समान हो। स्वर, तेज, दृष्टि, पराक्रम और वाक्योंसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दोनोंमें भेद न जान पड़ा। इसी रूपसमतासे मोहित होकर मैंने शत्रु-निहंता वाण नहीं छोड़ा। यदि मेरे अज्ञान या आतुरतासे कहीं तुम मारे जाते तो मेरी मूर्खता एवं लड़कपन ही समझा जाता।—वाल्मीकीयके इस उद्धरणसे यही सिद्ध होता है कि दोनों भाइयोंमें किंचित् भेद न था। अध्यात्म २। १३, १४ में भी कहा है कि 'आलिंग्य मा स्म भैषीस्त्वं दृष्ट्वा वामेकरूपिणौ ॥ १३ ॥ मित्रघातित्वमाशंक्य मुक्तवान् सायकं न हि। इदानीमेव ते चिह्नं करिष्ये भ्रमशांतये ॥१४॥' अर्थात् सुग्रीवको छातीसे लगाकर कहा कि डरो मत, तुम दोनोंका एक-सा रूप देखकर मित्रका ही घात कहीं न हो जाय इस शंकासे मैंने वाण नहीं चलाया। अब उस भ्रमको मिटानेके लिये मैं तुममें चिह्न किये देता हूँ। इनसे भी एकरूपता स्पष्ट है।

भगवान् नरनाट्य कर रहे हैं, माधुर्यमें भ्रम, रोदन आदि सब शोभनीय हैं और सर्वज्ञ प्रभुका ऐसा कहना अयोग्य नहीं है। यह संभव हो सकता है कि इस कथनमें कुछ गूढ़ भाव भी हो पर साधारणतया 'एकरूप' का भाव प्रमाणोंसे यही सिद्ध है जो ऊपर कहा गया।

पं० शिवलाल पाठक आदिने प्रभुमें भ्रम होना न स्वीकार करके 'एकरूप' के अनेक भाव कहे हैं। उनसे सहमत न होनेमें उनसे हम क्षमाप्रार्थी हैं। गुप्तभाव ये भले ही हों यह संभव है पर प्रमाणसिद्ध नहीं हैं। वे भाव पादटिप्पणीमें दिये जाते हैं।* वीरकविजी लिखते हैं कि

* मा० म०—'दोऊ रूप मिले फिरे लगिवे मो भ्रम कीन। जो लखिवे मों भ्रम कहे ते आपे दृगहीन ॥१॥ भ्रम करुणाको कहत हैं अनुरागी को रूप। होइ दूसरो तो बचे जो बध देहि अनूप' ॥२॥ अर्थात् जब बालि और सुग्रीव युद्ध करने लगे तब दोनोंका शरीर एकत्र मिल गया अतएव रामचन्द्रजीको यह शंका हुई कि वाण चलानेसे कदाचित् सुग्रीवको लग जाय तो विश्वासघात होगा अतएव वाण नहीं चलाया। तात्पर्य यह कि लगनेमें भ्रम हुआ, पहिचाननेमें कदापि नहीं हुआ।—(पर भगवान्को तो मिले हुए होनेपर भी वाणसे केवल बालिका ही बध करना कैसे असंभव मान लिया जाय? जब असंभव नहीं तो उसमें भी भ्रम कैसे कहेंगे?)—पुनः, भ्रम करुणाको भी कहते हैं इससे यह अर्थ हुआ कि श्रीरामचन्द्रजीने विचारा कि यदि बालि भी सुग्रीव ऐसा अनुरागी हो जाता तो बच जाता।

श्री० मिश्र०—एकरूप (=एक स्वभाव) देखकर मुझे यह भ्रम हुआ कि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यहाँ व्याजोक्ति अलंकार है। वालिको परमहित कहा था इसीसे न मारा पर उस बातको न कहकर ऐसा कहा।

इन दोनोंको तो मेरी ही गति है तब एकको कैसे मारूँ। भाव यह कि तुमको तो मेरा मुख्य विश्वास सप्ततार-वेधनसे प्राप्त हो गया है और उधर वालिने भी मुझे समदर्शी कहा है। अतएव शरणागतके भ्रमसे नहीं मारा। (नोट—पर इसी परम्पराके पंडित महादेवदत्तजी, मा० म० और मिश्रजीके भावोंको न देकर, नरनाट्यहीको प्रमाण मानते हैं।

वै०—(क) 'एकरूप हो इस भ्रमसे नहीं मारा', ये वचन संदिग्ध हैं। प्रभुके वाण संकल्पानुकूल कार्य करनेवाले हैं तब ये वचन वाचकार्थ कैसे सिद्ध हों। पुनः, रघुनाथजी सत्यसंकल्प हैं वे असत्य नहीं कहेंगे। दूसरे, वालिवधका संकल्प करके उन्होंने सुग्रीवको भेजा, इससे नरनाट्यका भी अभाव होता है। अतएव इन शब्दोंका अभिप्राय यह है कि प्रभु तो शत्रुमित्रभावरहित सबसे एकरस हैं पर दर्पणे मुखवत् न्यायानुसार जो जैसा भाव रखता है प्रभु उसको वैसा ही दिखते हैं। यथा गीतायाम्—'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'। पुनः, श्रुति 'तद्यथा यथोपासते तथा तथा तद्भवति'। इस रीतिसे प्रभुने विचार किया कि सुग्रीवका मित्रभाव है और वालिका कोई भाव प्रसिद्ध नहीं है और जो वधकी प्रतिज्ञा है वह सुग्रीवके दुःखनिवारणार्थ है। अतएव समझकर कार्य करना चाहिये क्योंकि वैर तो केवल वालिकी ओरसे है सुग्रीवकी ओरसे नहीं है। यदि सुग्रीवके जानेपर वालि उससे मिल जाय तो दोनों मेरे लिए एक-से हैं। इस भावसे 'एकरूप' कहा। (ख) वालिने समदर्शी कहा और सुग्रीवने भी उसे परमहित कहा। (अतएव यदि वालिको मारते तो संभव था कि सुग्रीव कहता कि उसको व्यर्थ मारा, उससे तो मेरा वैरभाव नहीं रह गया था।) इस विचारसे दोनोंको एकरूप कहा। दूसरे, कोई शरणागतिका चिह्न भी सुग्रीवको न दिया था जिससे वालि जान लेता कि सुग्रीव रामाश्रित हो चुका है, अब भागवतापराध प्रभु न क्षमा करेंगे। अब सुग्रीवने उसे काल कहा है अतः अब मारेंगे—(करु०)

करु०—यहाँ प्रभुका सौशील्यगुण दिखाते हैं। सुग्रीव सखा है और रघुराई 'प्रनतकुटुंबपाल' हैं अतएव उसके सब भाई-बंधु सखा हुए। अतएव एकरूप कहा। यहाँ यह भ्रम हुआ कि ऐसी दशामें वालिको कैसे मारें।

शि० र०—यहाँ इस कथनका अभिप्राय यह है कि तुम्हारे बाहरी रूप और आकारके अतिरिक्त हृदयोंको नहीं पहिचाना था। इसमें एक प्रकारसे व्यंग है कि कहाँ तो तुम परमहितैषी कहते थे और कहाँ एक ही मूकेमें वह भाव दूर हो गया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर परसा सुग्रीव सरीरा ।
तनु भा कुलिस गई सब पीरा ॥ § ७ (६)
मेली कंठ सुमन कै माला ।
पठवा पुनि बल देइ बिसाला ॥ ,, (७)

अर्थ—सुग्रीवके शरीरपर रामजीने हाथ फेरा। उनका शरीर वज्र (के समान दृढ़) हो गया, सब पीड़ा जाती रही। गलेमें फूलोंकी माला पहिना दी और भारी बल देकर फिर (लड़नेको) भेजा।

टिप्पणी—१ (क) 'कर परसा सुग्रीव सरीरा' इति।—जब सुग्रीवको ज्ञान उत्पन्न हुआ और उसका मन लड़नेसे फिर गया, तब उरमें प्रेरणा करके उसके मनको सम्मुख किया गया। इसीपर कहा कि 'उमा दारुजोषित की नाईं। सबहि नचावत राम गोसाईं'। और, जब लड़नेसे तन थका तब हाथ फेरकर तनको वज्रवत् कर दिया। (ख) यहाँ सारे शरीरपर हाथ फेरा है। इससे सूचित हुआ कि बालिके मुष्टिप्रहारसे सुग्रीवके सब अङ्गोंमें पीड़ा हुई। (ग) बालिने सुग्रीवको तृणसम गिना, यथा—'तृन समान सुग्रीवहिं जानी'। इसीसे रामजीने सुग्रीवका तन वज्रके समान कर दिया, यथा—'तृनसे कुलिस कुलिस तृन करहीं'। (घ) ऊपर देखनेमें तो रामजीने सुग्रीवकी खातिरी की, देहपर हाथ फेरा कि हे मित्र! तुम्हारे बड़ी चोट आई; पर वस्तुतः सब शरीरको वज्रवत् करनेके लिये सर्वांगपर हाथ फेरा है।

२—'बल देइ बिसाला' इति। रामजीने सुग्रीवके तनमें बल दिया जैसे वे सबको देते हैं, यथा—'जाके बल बिरंचि हरि ईसा।

उधर बालि भी अपनेको ज्ञानी समझता था। अतः आशय यह है कि तुम दोनोंको हम पहिचान न पाये क्योंकि प्रथम एक रूपमें और पीछे दूसरे रूपमें देखे गये। पहले यह समझा गया कि तुम दोनों विवेक-बुद्धि-संपन्न हो और क्षणिक सुख-संबंधी राज्यके लिये युद्ध न करोगे। परन्तु वह सत्य ठहरा कि दोनोंने द्वेषबुद्धिमें प्रवृत्त हो शत्रुके समान युद्ध किया। अतः ऐसी दशामें आंतरिक रूपसे कैसे पहिचाने जा सकते थे।

पं०—रामजीको भ्रम कैसा? उत्तर—बालिकी अभी इतनी आयु शेष थी, देश भी मरणका न था, अतएव मर्यादापुरुषोत्तमने मर्यादा-पालनहेतु यह मनुष्यस्वांग (नरनाट्य) किया। दूसरे युद्धमें देश और काल दोनों प्राप्त होंगे तब मारेंगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पालत सृजत हरत दससीसा ॥ जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन ॥...'—(सुं०)। रामजीने सुग्रीवको विशाल बल दिया जिससे वह बालिसे लड़ सके। बालिसे अधिक बल उसे नहीं दिया; क्योंकि अधिक बल पाकर यदि सुग्रीवने ही बालिको मार डाला तो प्रतिज्ञा भंग होगी जो कर चुके हैं कि 'मारिहौं बालिहि एकहि बान'।

नोट—१ 'सुमन की माला'। यह माला गजपुष्पीलता लेकर लक्ष्मणजीने बना दी, वही माला पहनायी गई जिससे चिह्न हो जाय। यथा—'गजपुष्पीमिमां फुल्लामुत्पाट्य शुभलक्षणाम्। कुरु लक्ष्मण कण्ठेऽस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ॥३९॥ ततो गिरितटे जातामुत्पाट्य कुसुमायुताम्। लक्ष्मणो गजपुष्पीं तां तस्य कण्ठे व्यसर्जयत् ॥४०॥' —(वा० १२)। अर्थात् हे लक्ष्मण! महात्मा सुग्रीवके गलेमें वह खिली हुई गजपुष्पलता पहना दो। गिरितटपर उत्पन्न पुष्पयुक्त लता लक्ष्मणजीने पहना दी। २—'मेली कंठ' से जनाया कि यह माला कंठसे लगी हुई पहनाई है जिसमें लड़ाईमें टूट न जावे। बालिने प्रभुको समदर्शी कहा था; अतएव माला पहिनाकर बालिको जनाते हैं कि हम समदर्शी हैं पर सुग्रीव मेरा आश्रित है; अब यदि तुम उससे शत्रुता छोड़ दो तो मैं न मारूँगा, नहीं तो 'जो अपराध भगतकर करई। राम रोष पावक सो जरई'। उपासक लोग कहते हैं कि माला पहनाया मानों उसका वैष्णव-संस्कार कर दिया है। कुछका मत है कि फूलमाला मंगलकामनाके लिए प्रस्थान समय पहनाया जाता है जिससे मनुष्यके चित्तमें उत्साह और साहस सदा बना रहता है। उसी विचारसे पुष्पमाला पहनाई गयी है।—(पर रामायणोंमें जो कारण दिया है वह यही है कि चिह्नके लिए माला पहनाई। शेष भाव गौण हैं)।

पुनि नाना बिधि भई लराई।
बिटप ओट देखहिं रघुराई ॥§७ (८)

बहु छल बल सुग्रीव करि हिय हारा भय मानि।
मारा बालि† राम तब हृदय माँझ सर तानि ॥८॥

† पाठान्तर—'बाली' (गौड़जी),—'बालिहि'—(मा० त० भा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—फिर अनेक प्रकारसे लड़ाई हुई।* रघुनाथजी वृक्षकी आड़से देख रहे हैं। जब सुग्रीव बहुत छल और बल करके भय मानकर हृदयसे हार गया तब रामचन्द्रजीने धनुषपर बाण चढ़ाकर और उसे तानकर (ज़ोरसे खींचकर) बालिके हृदयमें बाण मारा।

टिप्पणी १—'बिटप ओट देखहिं रघुराई' इति। (क) बिटप-ओटसे देखते हैं क्योंकि—यदि वे प्रकट खड़े होकर दोनोंकी लड़ाई देखते तो सुग्रीवका धैर्य्य छूट जाता कि हमको लड़ाकर आप तमाशा देखते हैं। (ख) कौतुक देखनेके सम्बन्धमें 'रघुराई' पद दिया अर्थात् ये रघुवंशके राजा हैं और राजा कौतुकी होते ही हैं, यथा—'अस कौतुक बिलोकि दोउ भाई। बिहँसि चले कृपालु रघुराई'। वहाँ भी कौतुकके संबंधसे रघुराई-पद दिया गया है।

२—'बहु छल बल करि हिय हारा'। ☞ इससे जनाया कि जबतक जीवके हृदयमें छलबल रहता है तबतक भगवान् उसकी सहायता नहीं करते। जब वह पुरुषार्थ और सब आशा-भरोसा छोड़ प्रभुकी ओर तकता है तभी वे तुरन्त सहायक होते हैं।—(पां०)। ३—'हृदय माँझ सर तानि' इति। बालि भारी बलवान् है और उसको एक ही बाणसे मारनेकी प्रतिज्ञा है इसीसे धनुष खूब खींच-कर बाण मारा। ४—ओटसे मारनेका भाव यह है कि बालिके हृदयमें भक्ति है, यथा—'जेहि जोनि जनमौं कर्मबस तहँ रामपद अनुरागऊँ'। यदि सामने होते और वह प्रणाम करता वा शरण होता तब उसे मारते न बनता और न मारनेसे प्रतिज्ञा भ्रष्ट होती।†

* नाना विधि, यथा—"वृक्षैः सशाखैः शिखरैर्वज्रकोटिनिभैर्नखैः ॥२८॥ मुष्टिभिर्जानुभिः पद्भिर्बाहुभिश्च पुनः पुनः। तयोर्युद्धमभूद्घोरं वृत्रवासवयोरिव ॥२९॥"—(वा० कि० १६)। अर्थात् शाखायुक्त वृक्षों, पर्वतके शिखरों, वज्र-समूहकेसे चमकीले नखों, मुष्टिकों, घुटनों, चरणों और बाहुओंसे बारम्बार दोनोंमें ऐसा घोर युद्ध हुआ जैसा वृत्रासुर और इन्द्रका हुआ था।

"हीयमानमथापश्यत्सुग्रीवं वानरेश्वरम्। प्रेक्षमाणं दिशश्चैव राघवः स मुहुर्मुहुः ॥ ३१ ॥ ततो रामो महातेजा आर्त्तं दृष्ट्वा हरीश्वरम्।···राघवेण महा-बाणो बालिवक्षसि पातितः ॥३५॥"—(वा० कि०)। अर्थात् कपीश सुग्रीवको जब हारा हुआ इधर उधर (घबराहट) से देखता हुआ, और पीड़ित देखा··· तब राघवने बालिकी छातीमें महाबाणसे मारा।

† १—पंजाबीजी दूसरा भाव यह भी लिखते हैं कि मल्लयुद्ध देरतक हुआ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शि० र०—युद्धमें छलको काममें लाना दो बातें सिद्ध करता है। एक यह कि छल करनेवालेके पास शारीरिक बल कम है, दूसरे यह कि वह रक्तपातको पसन्द नहीं करता, चातुर्य्यताद्वारा काम निकालना चाहता है। राजनीतिमें इसीको कूटनीति भी कहते हैं। अपनी चालोंको इस प्रकार प्रगट करना कि वह शत्रुकी दृष्टिमें विपरीत देख पड़े, दूसरे पक्षको अपने पक्षके कार्यकी वास्तविक दशा न प्रगट हो, इसीको छल कहते हैं। युद्धमें छल अनुचित नहीं है क्योंकि दोनों पक्ष सावधान हैं। श्रीकृष्णमहाराजका युद्ध प्रायः छल-संयुक्त होता था। जरासंध आदिके मारनेमें छलका प्रयोग किया गया। ‡

परा बिकल महि सरके लागे।
पुनि उठि बैठ देषि प्रभु आगे॥§८ (१)

अर्थ—बाणके लगनेसे बालि व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। प्रभुको आगे देखकर फिर उठ बैठा।

टिप्पणी—१ प्रथम चरणमें रामबाणका सामर्थ्य दिखाया कि ऐसा वीर एक ही बाण लगनेसे विकल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। और, दूसरे चरणमें रामदर्शनका प्रभाव दिखाया कि ऐसे कठिन बाणके लगनेपर भी उठकर बैठ गया। २—'देखि प्रभु आगे', यहाँ प्रभुको आगे देखना कहकर जनाया कि रामचन्द्रजी चलकर बालिके सम्मुख आ गए* यह उनकी दया सूचित करता है कि उसपर कृपा

और ग्रीष्मके दिन थे इससे प्रभु वृक्षकी छायामें खड़े रहे। पर यह भाव कुछ विशेष संगत नहीं जान पड़ता। प्र०—कारने भी इस भावको लिया है।

२—पं०—बालिका सिर क्यों न काटा? क्योंकि सर्वज्ञ प्रभु जानते हैं कि अंत समय उसे कुछ कहना है। दूसरे, हृदयमें ही बाण मारा क्योंकि उसके हृदयमें अहंकार भरा हुआ है; उसके अहंकारको नष्ट करके तब उसको मुक्ति देंगे, अहंकार रहते हुए मुक्ति न होगी। बाण लगते ही हृदयका अहंकार दूर हो गया और उसमें प्रीति समा गई। इसीसे आगे कहा है कि "हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितइ रामकी ओरा"।‡प्रथम बार समदर्शी कहकर आया था इससे न मारा, दूसरी बार समदर्शीका भाव न रहा तब मारा—(मा०शं०)

* १—'बहु मान्य च तं वीरं वीक्षमाणं शनैरिव। उपयातौ महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥'—(वा० १७। १३)। अर्थात् महावीर दोनों भाइयोंने बालिका सम्मान किया और उसके पास गए। (आगे पृष्ठ १२० में देखिए)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करके दर्शन देनेके लिए पास आए नहीं तो मारकर चले जाते, सम्मुख प्रकट होनेका कोई प्रयोजन न था।

मा० त० प्र०—वालि भक्त है इसीसे वह उठ बैठा, जिसमें रघुनाथजीकी लोकमें निन्दा न हो, उनके इस चरित्रको लोग दूषित वा अनीति न समझें। यही कारण प्रथम कठोर वचन बोलनेका भी है, क्योंकि विना कठोर वाक्य सुने प्रभु नीतिद्वारा उसका समाधान क्यों करने लगे और विना नीतिके ज्ञानके लोग आक्षेप करेंगे ही। यह प्रकरण लोगोंको अनीति जान पड़ा इसके उदाहरण राजा शिवप्रसाद आदि अनेक समालोचक हैं। राजा शिवप्रसाद एवं और भी कुछ समालोचक तो ऐसे हैं कि जिन्होंने जन्मभरमें एक बार भी वाल्मीकीय रामायण नहीं देखी और उसपर समालोचना कर बैठे।—[नोट—पर राजा शिवप्रसादके 'इतिहासतिमिर-नाशक तीसरा खंड' में एक समाधान भी उनका निकल आता है जो पं० रामचन्द्र शुक्लजीने भी दिया है। वह शब्द ये हैं—'शायद साबित करना था कि मनुष्य वे चूके नहीं रहता']

---

२ शि० र०—वालिके उठ बैठनेसे सिद्ध होता है कि वह बड़ा साहसी है। शक्तिको तो बाणप्रहारने क्षीण किया, परन्तु उसकी साहसी-शक्ति ज्योंकीत्यों बनी रही। बिना साहसके कोई व्यक्ति वीर नहीं हो सकता। वह उठकर बैठा तो, परन्तु देखता सम्मुख क्या है कि 'प्रभु' आगे खड़े हैं। यदि तुलसीदासजीने अपनी ओरसे यहाँ 'प्रभु' शब्दका प्रयोग किया हो तो कथानुकूल ही है। परन्तु यदि उनका तात्पर्य्य इस शब्दके व्यवहारसे बालिके इष्टदेवसे हो, तो बालिमें रही-रहाई शक्ति तथा साहस जहाँका तहाँ सुन्न हो जाता है और बालि 'प्रभु' का रूप बारंबार देखता है।

३—मा० म०—प्रभु उसके पास इसलिए गए कि वह मर जायगा तो पछतावा रहेगा इसलिए उससे संवाद करने गए। वा, बालि अंगदको सौंपेगा इसलिये निकट गए। ४ शिला—जब एक बाणसे मारनेकी प्रतिज्ञा है, तब बालि कैसे उठ बैठा? इसमें कारण यह है कि विटप ओटसे मारे जानेपर बालिके हृदयमें रामजीकी निन्दा बस गई, और हरिनिंदकको रामधामकी प्राप्ति हो नहीं सकती। इस विचारसे यह लीला हुई। रामजी उसे न्यायद्वारा माकूल करके निन्दा उसके हृदयसे मिटाकर भक्ति दे उसे निजधाम देनेके लिए सामने आए।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्याम गात सिर जटा बनाए।
अरुन नयन सर चाप चढाए॥ § ८ (२)
पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा।
सुफल जनम माना प्रभु चीन्हा॥ ,, (३)

अर्थ—रामजीका श्यामशरीर है, सिरपर जटा बनाए हैं, लाल नेत्र हैं, बाण लिये हैं, और धनुष चढ़ाए हैं। बालिने बारंबार दर्शन करके चरणोंमें चित्तको लगा दिया, प्रभुको पहिचानकर अपना जन्म सुफल (कृतकृत्य) माना।

'सर चाप चढ़ाए' इति

करु०—अर्थात् धनुष चढ़ाए हैं, बाण हाथमें लिये हैं।

पं० रामकुमारजी–बाण दाहिने हाथमें है, चाप चढ़ाए हुए हैं सो बाएँ हाथमें है। धनुषपर बाण नहीं चढ़ाए हैं केवल धनुष चढ़ाए हैं। धनुषपर बाणका लगाना संधानना कहा गया है, यथा–'संधान्यो प्रभु बिसिष कराला', 'असि कहि कठिन बान संधाने', 'खैंचि धनुष सत सर संधाने' और 'सर संधान कीन्ह करि दापा', इत्यादि। और, धनुषपर रोदा लगानेके लिये 'चढ़ाना' शब्दका प्रयोग कविने किया है, यथा–'कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जटजूट बाँधत सोह क्यों', 'लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े', 'धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना' और 'धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करौं पुर छार', इत्यादि। यह बात अध्यात्म रामायणसे भी प्रमाणित होती है, यथा—'धनुरालंब्य वामेन हस्तेनान्येव सायकम्'—(२। ४९) अर्थात् बाएँमें धनुष लिए हैं और दूसरे हाथमें बाण।

मा० म०—शोभाके लिये धनुष बाण धारण करके बालिके निकट गए, बालिको पुनर्बार मारनेके लिए कदापि बाण धारण नहीं किया क्योंकि एक बाणसे ही मारनेकी प्रतिज्ञा थी। अथवा दूसरे प्रकार अर्थ कर सकते हैं कि 'लाल नेत्ररूपी सर भौंहरूपी चापपर चढ़ाए हैं'। वा, 'धनुषको नैन ढिग करके खड़े हैं'।—(प्र० और विनयकी टीकाने भी इनके इस अर्थको लिया है। पर ये अर्थ अत्यन्त क्लिष्ट कल्पनाएँ हैं)।

वैजनाथजी, बाबा हरीदासजी और दीनजी आदिने अर्थ किया है कि 'धनुषपर बाण चढ़ाए हैं'। और, कहते हैं कि 'बालि राजा है उसकी सेना और सहायक हैं पुनः यह भी सम्भव है कि अभी बालि उठकर कोई वार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न करे इसलिए युद्धनीतिके अनुसार अपनी रक्षाके लिए वाण चढ़ाए हुए सचेत हैं। उनकी प्रतिज्ञा तब खण्डित होती जब वे बालिपर दूसरा वाण चलाते'। किसीका कहना है कि यदि वाण धनुषपर चढ़ाए होते तो दोनों हाथ फँसे होते, तब वालिके सिरपर हाथ कैसे फेरते, बीचमें कहीं वाणका धनुषसे हटाना लिखा नहीं गया।

टिप्पणी—१ चरणमें चित्त दिया। यह दास्यभावसे किया; आगे यही वर माँगेगा, यथा—'जेहि जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ'। २—जन्म सुफल माना कि ईश्वरकी प्राप्तिसे जीवका जन्म सुफल होता है सो अन्त समय हमारे सामने खड़े हैं। ३—'प्रभु चीन्हा'। स्वरूपके श्रीवत्स आदि चिह्नोंको देखकर पहिचान लिया। अथवा, इस प्रकार पहिचाना कि विना प्रभुके मुझे एक ही वाणसे कौन मार सकता है यही वात अंगदने रावणसे कही है, यथा—'सो नर क्यों दसकंध वालि हत्यो जेहि एक सर'।

पं०—'पुनि पुनि' देखनेका कारण यह है कि—(क) रामचन्द्रजीका स्वरूप परम मनोहर है विना देखे रहा नहीं जाता। वा, (ख)—अनेक विचार मनमें उठते हैं, जैसे-जैसे विचार उठते हैं तैसे-तैसे बार-बार देखता है। जैसे—कभी देखकर विचारता है कि ऐसे होकर इन्होंने विषमता क्यों की? फिर देखकर सोचने लगता है कि मुझे निरपराध क्यों मारा, मुझसे 'नीतिबुद्धिसे' पूछ क्यों न लिया? फिर देखकर मनमें कहता है कि सुग्रीव डरपोक है वह इनका क्या कार्य करेगा भला उसके किस गुणपर ये रीझे हैं; इत्यादि विचार करनेपर यही निश्चय किया कि इन्होंने जो कुछ किया वह सब शुभ हुआ (यथार्थ ही किया) अब मुझे इनके चरण ही ध्येय हैं। अथवा, (ग) बार-बार देखकर यह निश्चय कर रहा है कि इस समय इनके किस अंगका ध्यान करना मुझे कर्त्तव्य है। जब निश्चय कर चुका तब चरणोंमें चित्तको लगा दिया बार-बार देखना तब बंद हो गया।—(नोट—'पुनि पुनि' पद जनाता है कि वह एक बार देखता था फिर नेत्र नीचे कर लेता था वा बंद कर लेता था, वा मुखारविन्दसे नेत्रोंको हटाकर दूसरे अंगोंको देखने लगता फिर मुखारविन्दको देखता। वा, एक बार 'श्याम गात सिर जटा बनाए' का दर्शन करता फिर चरणोंको देखने लगता, इसी प्रकार बार-बार देखता था)। अध्यात्ममें समानार्थी श्लोक यह है—'रामं मुहुर्मुहु-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दृष्ट्वा चित्तं चरणयोर्ददौ। अभिज्ञाय प्रभुं मेने स्वजन्म सफलं कपिः॥'

नोट—☞ जहाँ कहीं आर्त्तहरण गुण, शत्रु-(अन्तर वा वाह्य)-दलन-सामर्थ्य, वा सुरनरमुनिके शत्रुओंके दलनमें तत्परता इत्यादि वीररसकी भावना अभिप्रेत है वहाँ-वहाँ दिखाया जा चुका है कि अरुणकमलकी उपमा नेत्रोंको दी गई है वा नेत्र अरुण कहे गए हैं। लाल डोरे पड़े हुए होना वीरताका द्योतक है। यहाँ उदाहरणोंका सिंहावलोकन कराया जाता है—

(१) 'नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन'—(ब० मं०) में हृदयके कामादि शत्रुओंसे रक्षा करनेवाला स्वरूप अभिप्रेत है। (२) 'अरुन नयन उर बाहु बिसाला' यह विश्वामित्रजीकी यज्ञ-रक्षाका स्वरूप है। साथ जा रहे हैं, ताड़काका वध करके फिर सुबाहु मारीचसे यज्ञरक्षा करेंगे। (३) राजीव कमलविशेषको कहते हैं और अरुणकमलके लिए भी राजीव शब्दका प्रयोग होता है। अरण्यकाण्डमें मुनियोंपर दया करके उनके लिए 'निसिचरहीन करौं महि' यह प्रतिज्ञा की है इसीसे मङ्गलाचरण भी 'राजीवायतलोचन'से किया और फिर प्रतिज्ञा करनेके बाद मुनिद्रोहीके वधमें तत्पर जब रामजी अगस्त्यजीसे मुनिद्रोहीके मारनेका मंत्र पूछनेको जाते हुए रास्तेमें सुतीक्ष्णजीसे मिलते हैं तब 'अरुन नयन राजीव सुवेष' ऐसा स्वरूप मुनिने वर्णन किया है। दूसरे इस ठौर भी रक्षाकी प्रार्थना मुनि कर रहे हैं, यथा—'त्रातु सदा नो भव खग बाजः' अतएव 'अरुण नेत्र' कहे गए। ४—यहाँ सुग्रीवकी रक्षामें तत्पर रामजीका स्वरूप बालिवधके समय भी 'अरुन नयन सर चाप चढ़ाये' है। ५—सुन्दरकाण्डमें रावणसे भयभीत होकर विभीषणजी प्रभुकी शरण आते हैं और रक्षा चाहते हैं—'त्राहि-त्राहि आरतिहरन सरनसुखद रघुवीर' तब वे प्रभुके स्वरूपको कैसा पाते हैं—'भुज प्रलंब कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत भय मोचन,' जिसके भाव सुन्दरकाण्डमें दिए गए हैं। ६-इसी प्रकार लंकामें रावणवधके समय 'अरुन नयन बारिद तनु स्यामा' और 'जलजारुन लोचन भूप वरं' ऐसा स्वरूप देख पड़ा है।

इसमें भी अभिप्राय भरा है कि कुछ स्थलोंपर कमलवाची शब्दके साथ अरुण पद दिया है और कुछ स्थलोंपर 'अरुण' मात्र कहा है, कमलवाची शब्द नहीं दिया गया। प्रायः वस्तुतः वधके समय कमलकी उपमा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं है क्योंकि कमल कोमल होता है और वधके समय कोमलता कहाँ ? वहाँ तो कठोरता आ जाती है। धन्य गोस्वामीजी और उनके सूक्ष्म विचार !!

हृदय प्रीति मुष बचन कठोरा।
बोला चितइ राम की ओरा॥ § ८ (४)
धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं।
मारेहु मोहि व्याध की नाईं॥ ,, (५)

अर्थ—हृदयमें प्रीति है, पर मुखमें कठोर वचन थे। रामजीकी ओर देखकर वह बोला, हे गोसाईं ! आपने धर्मके लिए अवतार लिया और मुझको व्याधकी तरह (छिपकर) मारा ? तात्पर्य्य कि इस कार्य्यसे आपको किस धर्मका लाभ हुआ। †)

† वा० स० १७ श्लो० १६—५४ तक और अध्यात्म स० २ श्लो० ५१—५९ तक बालिके कठोर वचन वर्णित हैं। कुछ यहाँ दिये जाते हैं—"अर्थसंहितया वाचा गर्वितं रणगर्वितम्॥१५॥पराङ्मुखवधं कृत्वा कोऽत्र प्राप्तस्त्वया गुणः। यदहं युद्धसंरब्धस्त्वत्कृते निधनं गतः॥ १६ ॥···मामिहाप्रतियुध्यन्तमन्येन च समागतम्॥ २५ ॥ त्वं नराधिपतेः पुत्रः प्रतीतः प्रियदर्शनः। लिङ्गमप्यस्ति ते राजन् दृश्यते धर्मसंहितम्॥ २६ ॥ कः क्षत्रियकुले जातः श्रुतवान्नष्टसंशयः। धर्मलिङ्गप्रतिच्छन्नः क्रूरं कर्म समाचरेत्॥ २७ ॥ त्वं राघवकुले जातो धर्मवानिति विश्रुतः। अभव्यो भव्यरूपेण किमर्थं परिधावसे॥ २८ ॥···हत्वा बाणेन काकुत्स्थ मामिहानपराधिनम्। किं वक्ष्यसि सतां मध्ये कर्म कृत्वा जुगुप्सितम्॥३५॥···त्वया नाथेन काकुत्स्थ न सनाथा वसुन्धरा। प्रमदा शीलसंपूर्णा पत्येव च विधर्मणा॥ ४२ ॥···छिन्नचारित्र्यकक्ष्येण सतां धर्मातिवर्तिना। त्यक्तधर्माङ्कुशेनाहं निहतो रामहस्तिना॥४४॥ अशुभं चाप्ययुक्तं च सतां चैव विगर्हितम्। वक्ष्यसे चेदृशं कृत्वा सद्भिः सह समागतः॥ ४५॥···अयुक्तं यदधर्मेण त्वयाहं निहतो रणे॥ ५२॥' पुनः यथा अध्यात्मे—'किं मयापकृतं राम तव येन हतोऽस्म्यहम्। राजवर्ममविज्ञाय गर्हितं कर्म ते कृतम्॥ ५२ ॥ वृक्षखंडे तिरोभूत्वा त्यजता मयि सायकम्। यशः किं लप्स्यसे राम चोरवत् कृतसंगरः॥ ५३ ॥ सुग्रीवेण कृतं किं ते मया वा न कृतं किमु॥ ५५ ॥ धर्मिष्ठ इति लोकेऽस्मिन् कथ्यसे रघुनन्दन। वानरं व्याधवद्धत्वा धर्मं किं लप्स्यसे वद॥ ५८ ॥'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी १ (क)—'मुख वचन कठोरा' इति। वालिको अपने बल-का बड़ा अभिमान था वह अभिमान (एक ही बाणसे मृतप्राय होनेके कारण) जाता रहा। अब उसको अपनी बुद्धिका अभिमान है। वह समझता है कि मेरे प्रश्नका उत्तर रघुनाथजी न दे सकेंगे। रामचन्द्र-जीने उसे जवाब देकर निरुत्तर किया, यथा—'बंधु बधूरत कहि कियो बचन निरुत्तर बालि'—(दो०)। अतः यह भी अभिमान उसका चूर्ण हुआ। (ख) 'बोला चितइ' का भाव कि उनके सम्मुख होकर अभिमानपूर्वक निर्भय वचन कहे।*

२—(क) 'गोसाईं' में यह कटाक्ष है कि आप गो (पृथ्वी) के स्वामी हो। इसीसे पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतार लिया है; पर यह अधर्म करके आप स्वयं ही पृथ्वीके भार हुए। अथवा, पृथ्वीके

अर्थात् मैंने आपका क्या अपकार किया जो आपने राजधर्मको न जानकर यह निन्दित कर्म किया। वृक्षसमूहमें छिपकर आपने मुझपर बाण छोड़ा, चोरकी तरह संग्राम किया, इससे आपको क्या यश प्राप्त होगा? सुग्रीवने आपका क्या (उपकार) किया और मैंने क्या नहीं किया (जो आपने उसका साथ दिया और मुझको मारा)। हे रघुनन्दन! आप इस लोकमें धर्मिष्ठ कहलाते हैं, व्याधाकी तरह मुझ वानरको मारकर आपने क्या धर्म प्राप्त किया, सो कहिये।

पुनः, यथा—'क्षमं चेद्भवता प्राप्तमुत्तरं साधु चिन्त्यताम्' (वा० १७।५३)। अर्थात् छिपकर मारना यदि आपके लिये उचित हो तो आप इसका उत्तर सोचें 'चिन्त्यताम्' शब्द साफ सूचित कर रहा है कि उसको अपनी बुद्धिका बड़ा अहंकार है, वह समझता है कि मैं इनका मुँह इस प्रश्नसे बंद कर दूँगा।

* पं०—हृदयमें अहंकार था। वह बाण लगनेसे दूर हुआ और अहंकार-की जगह प्रीति उत्पन्न हुई, चरणोंमें चित्त लगा और 'शूरत्व धर्म' के कारण कुछ कोपका अंश शेष है। इससे कठोर वचन बोला। अथवा, सुग्रीव निकट खड़ा है उसको सुनानेके लिये कठोर वचन कहे। इसपर शंका होती है कि अहङ्कार निवृत्त होनेपर कोप कैसे बना रहा? उत्तर यह है कि तनका स्वभाव तनपर्यन्त रहता है, जैसे खड्ग पारस छूनेसे स्वर्णका हो जायगा पर धार उसकी वैसी ही रहेगी। २—मा० म०—बालिके हृदयमें रामप्रेम परिपूर्ण है। परन्तु मुखसे कठोर वचन बोला। कारण कि हृदयस्थ प्रेम न निबाहनेसे कृतघ्नता होती और यदि ऊपरसे कठोर वाणी बालि न कहता तो श्रीरामचन्द्रके श्रेष्ठ वाणीका सुख न मिलता!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वामी क्षत्रिय हैं, पर क्षत्रिय होकर भी आपने मुझे व्याधकी तरह मारा—यह क्षत्रियका धर्म नहीं है। अथवा, आप पृथ्वीके स्वामी हैं तथापि पृथ्वी अनाथ है क्योंकि अधर्मी राजाके रहते पृथ्वी सनाथ नहीं होती। (वा० १७। ४२)

वालिवधका औचित्य

वालिवधके विषयमें उपर्युक्त चौपाईको लेकर कुछ समालोचकोंने इसे आलोचनाका विषय वना लिया है और परब्रह्म परमात्मा मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रमें इसको एक धब्वा माना है।

इस विषयमें तीन प्रकारसे विचार किया जाना आवश्यक है। १—भगवान् रामचन्द्रजीको निर्गुण निराकार आदि विशेषणयुक्त परब्रह्म परमात्मा मर्यादापुरुषोत्तम मानकर, क्योंकि रामायणके सभी रचयिताओंने उनको अवतार मानकर ही चरित्र-चित्रण किया है। २—राजनीतिकी दृष्टिसे, जिसमें अवतारसे कोई सम्वन्ध नहीं भी रख सकते हैं। और ३—शरणागतवत्सलता एवं सत्यसंधताकी दृष्टिसे उपासक लोग तो श्रीभगवान्के 'विटप ओट' होनेमें शरणागत-वत्सलताको ही मुख्य कारण मानते हैं और यह दास भी उन्हींके विचारोंसे सहानुभूति रखता है। इसीसे इसको सवके अन्तमें रखा है।

अब प्रथम दृष्टिसे विचार प्रकट किया जाता है। जो लोग भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको अवतार मानते हैं (उनकी उपासना करते हों या नहीं, इससे हमें सरोकार नहीं) उनसे मेरा यह प्रश्न है कि क्या आप भगवान्के सारे कार्योंमें दखल (प्रवेश) रखते हैं, क्या भगवान्के जितने चमत्कार क्षण-क्षणपर प्रकट होते हैं और जो पूर्वसे ही दिखाई दे रहे हैं, आपने उन सबको समझ लिया है? क्या पञ्चतत्त्वसे वनी हुई यह क्षुद्रबुद्धि उस सर्वशक्तिमान्के कार्योंके कारण समझने सोचनेमें समर्थ हुई है? गर्भमें बच्चा क्यों उलटा रहता है? यह संसार क्यों रचा गया? अमुक वृक्षके पत्तोंमें क्यों ऐसे चिह्न हैं और अमुकमें दूसरे आकार क्यों हैं? तारागण कितने हैं, कहाँतक हैं? पहले वृक्ष हुआ या वीज? इत्यादि इत्यादि जिसकी अद्भुत करनी है, जो—

विनु पद चलइ सुनइ विनु काना। विनु कर करम करइ विधि नाना॥
अस सव भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

क्या उसको समझनेमें आप अपनेको समर्थ पाते हैं? क्या आपने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वोक्त प्रश्नोंके उत्तर कभी सोचे और कुछ निश्चय किया है? आज जो एक Theory निकलती है कुछ वर्ष बाद वह पलट जाती है। जिसे लोग आज एक बातका ठीक उत्तर समझते हैं उसीको कुछ दिन बाद वे ही लोग गलत मानते हैं। क्या यह बात ठीक नहीं है? ऐसी हालतमें दासकी क्षुद्रबुद्धिमें तो यही आता है कि भगवान्‌के कार्यमें संदेह करना उचित नहीं। उनके कार्य समयानुकूल और बहुत ही ठीक होते हैं, वे सदा अच्छा ही करते हैं। उनके सब कार्य यदि हमारी समझमें आ जायँ तो उनका सर्वशक्तिमत्ता-गुण ही कहाँ रह गया? अन्य मतावलम्बियोंने भी यही मत प्रकट किया है—

हरकि आमद इमारते नौ साख्त। रफ़्तो मंज़िल बदीगरे परदाख्त॥

अर्थात् जो आया उसने एक नई इमारत खड़ी की, पर चला गया और मंज़िल दूसरोंके लिये खाली कर गया। तात्पर्य कि जो आता है अपनी अक्ल लड़ाता है और चला जाता है, कोई भी पार न पा सका। वही ईसामसीहका शूलीपर चढ़ना, जिसको ईसाई कुछ वर्ष पूर्व कमज़ोरी और अपने मतपर एक धब्बा समझते थे, आज अपने लिये एक बड़े भारी गौरव और बल यानी मुक्ति (Salvation) का कारण समझते हैं।

जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् परमेश्वर हैं और यह उनका मर्यादापुरुषोत्तम अवतार है, तब उनके चरितपर सन्देह कैसा? उनका कोई भी चरित ऐसा नहीं हो सकता जो मर्यादापुरुषोत्तमत्वपर धब्बा डाल सके।

☞ रामायणके पाठकोंके लिये महात्मा गांधीजीका संदेश बहुत उपयुक्त समझकर यहाँ उद्धृत किया जाता है। वे लिखते हैं कि 'जिसके दिलमें इस संबंधकी शंकाएँ शुद्ध भावसे उठें उन्हें मेरी सलाह है कि वे मेरे या किसी औरके अर्थको मंत्रवत् स्वीकार न करें। जिस विषयमें हृदय शंकित हो उसे छोड़ दें। सत्य, अहिंसादिकी विरोधिनी किसी वस्तुको स्वीकार न करें। रामचन्द्रने छल किया इसलिये हम भी छल करें, यह सोचना औंधा पाठ पढ़ना है। यह विश्वास रखकर कि रामचन्द्रजी कभी छल कर ही नहीं सकते, हम पूर्ण पुरुषका ही ध्यान करें और पूर्ण ग्रन्थका ही पठन-पाठन करें। परन्तु 'सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः' न्यायानुसार सब ग्रंथ दोषपूर्ण हैं, यह समझकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हंसवत् दोषरूपी नीरको निकाल फेंकें और गुणरूपी क्षीर ही ग्रहण करें। इस तरह अपूर्णपूर्णकी प्रतिष्ठा करना, गुणदोषका पृथक्करण करना, हमेशा व्यक्तियों और युगोंकी परिस्थितिपर निर्भर रहेगा। स्वतंत्र संपूर्णता केवल ईश्वरमें ही है और वह अकथनीय है।

अब यहाँ कुछ महानुभावोंके विचार उद्धृत किए जाते हैं जिन्होंने इस चरितको धब्बा मानकर उसकी यथार्थता बतायी है, अथवा लोगोंकी इस शंकाका समाधान किया है।

पं० रा० च० शुक्ल—रामके चरित्रकी इस उज्ज्वलताके बीच एक धब्बा भी दिखाई देता है। वह है वालिको छिपकर मारना। वाल्मीकि और तुलसीदासजी दोनोंने इस धब्बेपर कुछ सफेद रंग पोतनेका प्रयत्न किया है। पर हमारे देखनेमें तो यह धब्बा ही सम्पूर्ण रामचरितको उच्च आदर्शके अनुरूप एक कल्पनामात्र समझे जानेसे बचाता है। यदि एक यह धब्बा न होता तो रामकी कोई बात मनुष्यकीसी न लगती और वे मनुष्योंके बीच अवतार लेकर भी मनुष्योंके कामके न होते। उनका चरित भी उपदेशक महात्माओंकी केवल महत्त्वसूचक फुटकर बातोंका संग्रह होता, मानवजीवनकी विशद अभिव्यक्ति सूचित करनेवाले संबद्ध काव्यका विषय न होता। यह धब्बा ही सूचित करता है कि ईश्वरावतार राम हमारे बीच हमारे भाईबंधु बनकर आये थे और हमारे ही समान सुखदुःख भोगकर चले गये। वे ईश्वरता दिखाने नहीं आये थे। भूलचूक या त्रुटिसे सर्वथा रहित मनुष्यता कहाँ होती है? इसी एक धब्बेके कारण हम उन्हें मानवजीवनसे तटस्थ नहीं समझते—तटस्थ क्या कुछ भी हटे हुए नहीं समझते।

जामदारजी—वालिवध इस काण्डकी एक और विशेषता है। विशेषता कहनेका कारण यह है कि बालिवधके संबंधमें श्रीरामजी-पर कपटका दोष लगाया जाता है। आजकल तो विचारकी यह एक परिपाटी-सी हो गई है। उसके मूलमेंके 'विटप ओट' और 'ब्याधकी नाईं' ये पद आधारभूत दिखलाये जाते हैं। आक्षेप ठीक है या नहीं, इसका अब थोड़ा विचार करें।

कपटका दोष सबसे प्रथम वालिने ही लगाया था और वह उस समय लगाया था जब वह पूरा परास्त और मरणोन्मुख होनेके कारण बिल्कुल ही क्रोधसे भरा था। यहाँ मुख्य देखना यह है कि वालि मरता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जाताथा तौभी उसका अहंकार ज्योंका त्यों जीताही जाताथा। इसका प्रमाण हम बालि-निधनवर्णनके पहिले छंदमेंके 'मोहि जानि अति अभिमान बस' इन बालिकेही शब्दोंसे लेतेहैं। इस अभिमानके वश होकर 'धर्म हेतु अवतरेउ गुसाईं। मारेउ मोहिं व्याध की नाईं'' इस तरह बालिने प्रश्न किया।

अभिमानी प्रकृतिकी 'गुणाः पदं न कुर्वन्ति ततो निंदा प्रवर्तते' यह स्वभावसिद्ध प्रवृत्ति रहतीहै। क्या बालिकी दृष्टिसे देखना हमारे लिएभी ठीक होगा ? आक्षेपार्ह दो पदोंमेंसे एक 'तरु ओट' है। सभी संहिताएं एकमतसे यही प्रतिपादन करतीहैं। इसलिये इसके संबंधमें किसीकोभी फरक करनेका हक नहीं; पर केवल एक इसी बातपर बिल्कुल निर्भर रहकर कपटका दोष आरोपित करना सुविचारका लक्षण नहीं कहा जासकता।

दूसरा पद—'व्याधकी नाईं' है। यथार्थमें यह पद निर्घृणताका दर्शक है, क्योंकि व्याधकर्म अवश्यही निर्दयताका होताहै। पर यह नहीं कहाजासकता कि वह सदा कपटही भराहताहै। इसलिये व्याध शब्दसे दयाशून्यत्व लेना होगा।

आक्षेप करनेवाले पक्षके लोग व्याध शब्दसे कपटभाव लिया करतेहैं। हमारे मतसे जिस व्यवहारके संबंधमें जिस विषयका प्रकाशन करना अत्यावश्यक रहताहै, उस व्यवहारके संबंधमें, उस विषयका आच्छादन जब किसीसे जानबूझकर किया जाताहै, तभी वह क्रिया 'कपट' कहलातीहै।

इस व्याख्यानुसार, अपनेको जानबूझकर छिपाकर यदि रामजीने बालिपर बाण चलायाहोता, तो उनपर कपटका अपराध अवश्यही प्रमाणित होसकता। परन्तु मूल-ग्रंथही स्पष्ट कहताहै कि यद्यपि बालि मैदानमें डटाहुआ प्रत्यक्ष सामने खड़ाथा तौभी, रामजीने 'एकरूप तुम भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम तें नहिं मारेउँ सोऊ', ऐसा कहकर तुरंतही 'कर परसा सुग्रीव सरीरा' और 'मेली कंठ सुमनकी माला पठवा पुनि बल देइ बिसाला' इस प्रकारसे सुग्रीवको फिर भेजा। इस वर्णन से यह सोपपत्तिक सिद्ध हुआ कि अपनेको छिपाना तो दूरही रहा, उलटे और बालिकीही दृष्टि अपनी ओर खींचनेका खास और निःशंक प्रयत्न रामजीने जानबूझकर किया। स्मरण रहे कि 'मैं चीन्ह नहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सका', यह केवल औपचारिक निमित्त बतलाते हुए प्रत्यक्ष पक्षपात बतलानेकेलिए और बालिकी दृष्टि उस तरफ खींचनेके लिये श्रीरामजीने सुग्रीवको पुष्पमाला पहिनाईथी।

आक्षेप करनेवालोंका अब ऐसाभी दर्शानेका प्रयत्न होगा कि बालिने रामजीके किसीभी कार्य्यकी ओर—सुग्रीवके गलेमेंकी माला की ओरभी,—दृष्टिक्षेप न किया। पर एक तो यह कहनाही सयुक्तिक नहीं है, क्योंकि बालि कुछ आँखें मूँदकर नींदमें अथवा समाधिमें नहीं लड़रहाथा। और दूसरे यदि बालिने देखाही नहीं या देखनेकी परवा न की,तो यह किसका दोष है? यह साफ़ साफ़ उसकाही दोष है।

इन सब बातोंका इस प्रकार विचार करनेपर रामजीके ऊपर लगायागया कपटका आक्षेप हमारे मतसे अनुपपत्तिक है।

पांड़ेजी—गोस्वामीजीने इस काण्डका प्रारंभ 'आगे चले बहुरि रघुराई' इस चरणसे कियाहै। प्रारंभमेंही 'रघुराई' नाम देनेका भाव यह है कि इसकाण्डमें राजधर्मको प्रधान करेंगे। जब सुग्रीवने अपनी विपत्ति और बालिके अन्यायका वर्णन किया तब रघुनाथजीने दोनोंमें न्यायपूर्वक निर्णय न करके जानकीजीके पता लगानेमें अपना अर्थ विचार सुग्रीवका पक्ष लेकर बालिका वध किया, यही राजधर्म। है, अपने धर्मकेलिए न्यायको नहीं देखते। इसीसे 'रघुराई पद दिया। फिर आगे चलकर 'सुनि सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठे दोउ भुजाबिसाला' में 'दीनदयाल' शब्द देकर गोस्वामीजी बालिवधदोष-को रघुनाथजीपरसे दूरकरतेहैं। पुनः, रघुनाथजी मानुषी चरित्र कररहेहैं। मनुष्यको आपत्तिसे उबारनेका उपाय करना उचित है और समयानुकूल बरतना परम राजधर्म है। इसीसे गोस्वामीजीने कांडके प्रारंभमें 'रघुराई' शब्द लिखाहै।

राजनीतिकी दृष्टि से विचार

किसी बातकी ठीक समालोचना और जाँच तभी होसकतीहै जब समालोचक अपनेको उस समयमें पहुँचादे जिस समयकी वह घटना है, जो समालोचनाका विषय है। वही समाजसुधार-संम्बन्धी बातें जो एक शताब्दिके पूर्व घृणासे देखीजातीथीं, आज उचित समझी जातीहैं, वही मनुष्योंका बेचना, गुलाम बनाना, बालविवाह आदि जो पहले अच्छे समझे जातेथे आज बुरे समझेजातेहैं। ऐसेही आज

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संसारमें आपके सामने अनेक उदाहरण हैं, समझलीजिए। जो बात पहले किसी समयमें नीतियुक्त समझीजातीथी उसीको आज अनीति कहाजाताहै। ऐसी स्थितिमें क्या हम अपनेको सच्चे समालोचक कहसकतेहैं यदि हम उस समय की घटनाकी यथार्थता वर्तमानकालकी नीतिसे जाँचें ? मेरी समझमें तो कदापि नहीं।

हमको बालिवधपर आलोचना करनेकेलिए त्रेतायुगकी नीतिका अवलंबन करना पड़ेगा। उस समयकी नीति अध्यात्म, वाल्मीकि आदिमेंभी इस प्रसंगपर दीहुईहै और मनुस्मृतिका प्रमाणभी दियागया है। यथा वा० कि० स० १८ १८, १९, २२, २३—

'तदेतत्कारणं पश्य यदर्थं त्वं मयाहतः।
भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मसनातनम्॥
अस्य त्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
रुमायां वर्तसे कामात्स्नुषायां पापकर्मकृत्॥
न च ते मर्षये पापं क्षत्रियोऽहं कुलोद्गतः।
औरसीं भगिनीं वापि भार्यावाप्यनुजस्य यः॥
प्रचरेत नरः कामात्तस्य दण्डोवधः स्मृतः।
भरतस्तु महीपालो वयं त्वादेशवर्तिनः॥"

अर्थात् तुमने धर्मका त्याग किया छोटे भाईके जीतेजी उसकी स्त्रीको अपनी स्त्री बनालिया। इसकेलिए प्राणदण्डही विधेय है...। वही बात गोस्वामीजीनेभी कहीहै—

अनुजबधू भगिनी सुतनारी। सुनु सठ कन्यासम ए चारी॥
इन्हहिं कुदिष्ट बिलोकहि जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥

यहभी स्मरण रखनेयोग्य है कि श्रीरामचन्द्रजीने कुछ बालिको उत्तर देते समयही यह बात नहीं कहीहै वरन् उसके बहुत पूर्वही जब उनको सुग्रीवसे मालूम हुआ कि बालि उसका बड़ा भाई है और उसने मेरी स्त्री भी छीनली, उसी समय इस दुष्टचरित्रको सुनकर उनकी तेउरी बदलगई और उन्होंने तुरंत यही कहा कि—'यावत्तं नहि पश्येयं तव भार्यापहारिणाम्। तावत्सजीवेत्पापात्मा बाली चारित्रदूषकः'-(वा० १०।३३)। दूषित चरित्रवाला अर्थात् मर्यादा नष्ट करनेवाले बालिको तभी तक जीवित समझो जब तक मैं उसे नहीं देखता। मर्यादापुरुषोत्तम मर्यादाका उल्लंघन, हिन्दू संस्कृतिकी अवहेलना कैसे सहसकते ? वह अवतारही 'श्रुतिसेतु' की रक्षाकेलिए हुआथा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बालिको श्रीरामचन्द्रजीका ईश्वरावतार होना अवगत है। वह जानता है कि सुग्रीवसे उनकी मित्रता होगईहै और वे उसकी रक्षामें तत्पर हैं। तारा ने बालिको समझाया और प्रार्थनाकी कि सुग्रीवसे मेल करलो, वैर छोड़कर उसे युवराज बनादो, अन्यथा तुम्हारी रक्षाका दूसरा उपाय नहीं है—'नान्या गतिरिहास्ति ते' (वा० स० १५)। पर उसने अभिमान वश उसका कहा न माना और यही कहकर टाल दिया कि वे धर्मज्ञ हैं, पाप क्यों करेंगे, वा (मानसके कथनानुसार) वे समदर्शी हैं, एवं 'जौ कदाचि मोहि मारिहिं तौ पुनि होउँ सनाथ'। प्रभुने बालिको पहिली बार नहीं मारा। उसको बहुत मौका दिया कि वह सँभलजाय, सुग्रीवसे शत्रुभाव छोड़दे और उससे मेलकरले, पर वह नहीं मानता। दूसरी बार अपना चिह्न देकर फिरभी करुणावरुणालय अकारणकृपालु भगवान्ने उसे होशियार किया कि सुग्रीव मेरे आश्रित होचुकाहै; यह जानकरभी—'मम भुजबलआश्रित तेहि जानी'—उसने श्रीरामचन्द्रजीके पुरुषार्थकी अवहेलना की, उनका अत्यन्त अपमान किया, उनके मित्रके प्राण लेनेपर तुलगया, तब उन्होंने मित्रको मृत्युपाशसे बचानेकेलिए उसे मारा। इसमें 'विटपओट' से मारनेमें क्या दोषहुआ?

यदि इसमें अन्याय होता तो रामजी कदापि यह न कहसकते कि छिपकर मारनेके विषयमें न मुझे पश्चात्ताप है न किसी प्रकारका दुःख—'न मे तत्र मनस्तापो न मनुर्हरिपुङ्गव'॥ (वा० ४।१८। ३६)। देखिए कि जो रामजीसे इसका उत्तर माँगरहाहै कि 'धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं।' मारेहु मोहि ब्याध की नाईं', वह उत्तर पाकर स्वयं कहताहै कि मैं निरुत्तर होगया, आपने अधर्म नहीं किया, यथा—'न दोषं राघवं दध्यौ धर्मेऽधिगतनिश्चयः ॥४४॥ प्रत्युवाच ततो रामं प्राञ्जलिर्वानरेश्वरः। यत्त्वमात्थ नरश्रेष्ठ तत्तथैव न संशयः ॥४५॥' अर्थात् उत्तर सुनकर उसने धर्मको निश्चय जानकर राघवको दोष नहीं दिया और हाथ जोड़कर बोला कि आपने जो कहा वह ठीक है, इसमें संदेह नहीं।

जब स्वयं बालि ही यों कहरहाहै तब हमको आज श्रीरामजीके चरितपर दोषारोपण करनेका क्या हक़ है?

अच्छा अब आजकलकी नीतिभी लीजिए। उसके अनुसारभी देखिए। क्या जो राजा किसी राजासे मिलताहै वह उसकी सहायता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

छोड़देताहै ? क्या आज खाईं (trenches) आदिमें जानबूझ-कर एवं रातविरात छिपकर यकाएक धोखा देकर, शत्रुपर छलकप-टके व्यवहार लड़ाईमें जायज़ नहीं मानेजारहेहैं ? शत्रुको जिस तरह होसके मारना वा पराजय करना यही आजकलकी एकमात्र नीति है। इस नीतिके सामने तो रामजी उत्तरदायित्वसे सर्वथा मुक्त हैं। आज-कल तो लड़ाईमें धर्म अधर्मका कहीं विचारही नहीं है। क्या आज-कलकी छलकपटव्यवहारपूर्ण नीतिको देख सुनकरभी आपको बालि-वधमें अनौचित्य दिखाई देगा ?

बाबा रामप्रसादशरणजीने लिखाहै कि बाली रावणका मित्र था जैसा कि रावण प्रति अंगदवाक्यसे स्पष्ट है—'मम जनकहि तोहि रही मिताई'। वैरीका मित्र वैरीहीहै। यही बात पं० श्रीराजेन्द्रनाथजी विद्या-भूषणने लिखीहै। वे लिखतेहैं कि—'दण्डकारण्यमें शूर्पणखाको भेज-कर रावण निश्चिन्त था। क्योंकि उसके समुद्र पार लंकामें रहनेपरभी उसका अभिन्नहृदय मित्र वीरश्रेष्ठ बालि तो दंडकके समीपही राज्य करताथा। बालिकी जानकारीमें रावणकी और रावणकी जानकारीमें बालिकी कोई क्षति नहीं होसकती थी या उनपर कोई आपत्ति नहीं आसकतीथी। वे दोनों अग्निको साक्षी देकर संधिसूत्रमें बँधचुकेथे। इसपार बालिका साम्राज्य था और उस पार रावणका, बीचमें था विराट् समुद्र। इस पारसे रावणके राज्यपर आक्रमण करनेवालेको सबसे पहले बालिके साथ युद्ध करना होगा और उस पारसे बालिके राज्यपर आक्रमण करनेवालेके साथ सर्वप्रथम रावणका युद्ध होना अनिवार्य था .....(वा० ७। ३४। ४०-४३)।...शूर्पणखाने रामके पूछनेपर साफ़ कहदियाथा कि रावण कुंभकरण विभी-षण खरदूषण आदि मेरे भाई हैं। ऐसी अवस्था में रावणकी बहनके नाक-कान काटनेका कितना भयंकर परिणाम हो सकताहै, राजनीतिविशारद श्रीरामकेलिए इस बातको समझना बाक़ी नहीं था।...अब यहभी मालूम होताहै कि सीताहरणके बाद सहायता केलिए श्रीराम सुग्रीवके साथ मैत्री करनेकेलिए तैयार न भी होते और बालिको मारकर सुग्रीवको फिरसे राज्यगद्दीपर बैठानेकी प्रतिज्ञा न करते, तोभी उन्हें बालिको तो मारनाही पड़ता। समुद्रके उसपार लंकापति पर आक्रमण करनेकेलिए सारा उद्योग इस पार बालिके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राज्यमेंही करनाथा। रावणबन्धु महाबीर बालि मित्रके विरुद्ध रणसज्जाको कभी सहन नहीं करसकता। संधिसूत्रके अनुसार रावणका शत्रु बालिकाभी शत्रु था।...अतएव रामका सर्वप्रथम कर्त्तव्य होगयाथा—बालिको पराजित करना। इसीलिए श्रीरामचन्द्रने एक दक्ष राजनीतिज्ञ की भाँति आगे पीछेकी सारी बातोंको सोचसमझकर सुग्रीवके साथ मैत्री और बालिवधकी प्रतिज्ञाकरके करोड़ों वानर-सेनाकी सहायतासे कर्तव्यसंपादनका निश्चय कियाथा।...जीवनके प्रारंभमें राजपुत्र राम अपनी प्यारी जन्मभूमिको छोड़कर जानेको बाध्य हुएथे। प्रकृतिके लीलानिकेतन निविड़ दण्डकारण्यमें नवीन और विशाल साम्राज्य स्थापनकेलिएही कृतसंकल्प होकर श्रीरामने दण्डकमें प्रवेश कियाथा। वे वीर थे। उनकेलिए कोईभी कार्य दुष्कर नहीं था। वे प्रसन्नचित्तसे आनन्दके साथ दिन बितारहेथे। इसी बीचमें सीताका अपहरण होने से रावणके साथ युद्धका उद्योग करनापड़ा और उसीके अंगीभूत आवश्यक कर्तव्योंमें बालिवधभी एक कर्तव्य था। अतएव रामपर किसी प्रकारभी दोषारोपण नहीं किया जासकता।...सीताके उद्धारकेलिए सबसे पहले बालिका वध अत्यन्त आवश्यक था। प्रसंगवश इस बालिवधके उपलक्ष्यमें सुग्रीवके साथ मैत्री होगयी जिससे समुद्रबन्धन आदि कठिन कार्य बहुत कुछ सहज साध्य होगये।

नोट—इस विचारको प्रथम अपने लेखमें देना इससे उचित न समझाथा कि यह बात बालिवध प्रकरणभरमें कहींभी (वाल्मीकीय, अध्यात्म, हनुमन्नाटक या मानसमें) किसी ओरसे गुप्त या प्रकट किसी प्रकारसे नहीं दरसाईगईहै। शूर्पणखा बालिके पास क्यों न गई? जनस्थान राक्षसोंसे खाली होगया पर बालिने कोई मित्रकी सहायता नकी। मानस और अध्यात्मसे विरोधभी होताहै। और यहाँ रामचरित मानसकाही अधिक आधार लेनाहै। वाल्मीकीयमें बालिने कहाहै कि मुझसे मिलते तो मैं क्षणमात्रमें रावणको पकड़कर सीतासहित आपके सामने उपस्थित करदेता। फिर बालिको उत्तर देते समय यह उत्तर तो बहुत अच्छा था कि तू रावणका मित्र है, तुझे मारना हमारा कर्तव्य था पर इस उत्तरकी गंधभी यहाँ नहीं पाई जाती। और मानससे तो बालिका रामभक्त होना भी पायाजाताहै। इत्यादि कई विचारोंसे इस राजनीतिक विचारको प्रकट न कियाथा यद्यपि रामप्रसादशरणजीने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसको लिखाभी था। कल्याणमें लेख पढ़कर उसकोभी देदियाहै। पर इसमें 'विटप ओट' पर कुछ नहीं है।

यद्यपि मेरी समझमें तो जब बालि स्वयं अपने को निरुत्तर मानता है तब हमको उसके उत्तरके अनुसंधानकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती,तथापि लोगोंकी शङ्काओंके समाधान और तरहभी होसकतेहैं—

१—श्रीरामजी सत्य-प्रतिज्ञ हैं। यह त्रैलोक्य जानताहै कि राम दो वचन कभी नहीं कहते, जो वचन उनके मुखसे एकबार निकला, वह कदापि असत्य नहीं कियाजासकता। वे मित्र सुग्रीवका दुःख सुनकर प्रतिज्ञा कर चुकेहैं कि 'सुनु सुग्रीव मारिहौं बालिहि एकहि बान।' और यहभी कि 'सपा बचन मम मृषा न होई'। व्याध भयसे नहीं छिपता। मुख्य कारण यह होताहै कि कहीं शिकार उसे देखकर हाथसे जाता न रहे। यहाँ 'विपट-ओट' से इसलिए मारा कि—यदि कहीं बालि हमको देखकर भागगया अथवा छिपगया, (अथवा, शरण में आपड़ा—यह बात आगे लिखी गईहै) तो प्रतिज्ञा भंग होजायगी (एकही बाणसे मारनेकी प्रतिज्ञा है)। सुग्रीवको स्त्री और राज्य कैसे मिलेगा ? पुनः, यदि सामने आकर खड़े होते तो बहुत संभव था कि वह सेना आदिको सहायताकेलिए लाता। यह आपत्ति आती कि मारना तो एक बालिको ही था, पर, उसके साथ मारी जाती सारी सेनाभी। स्मरण रहे कि यहाँ छिपनेमें कपटका लेशभी नहीं है क्योंकि यदि ऐसाहोता तो प्रतिज्ञा पूर्ण होनेके बाद बालिके शरणागत होनेपर श्रीरामजी यह कैसे कहते कि 'अचल करउँ तन राखहु प्राना'।

२—बालि जीसे चाहताथा कि मेरा वध भगवान्‌के हाथोंसे हो, यथा—'त्वोत्तोऽहं वधमाकाङ्क्षान्वार्यमाणोऽपि तारया'—(वा० १८। ५७)। अर्थात् आपके द्वारा अपने वधकी इच्छासेही तारा द्वारा रोके जानेपरभी सुग्रीवसे युद्धकरनेके लिए मैं आयाथा। यही बात मानस-मेंके 'जौं कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ' सेभी लक्षित होतीहै। सामने आनेपर भला उसकी यह अभिलाषा कैसे पूर्ण होती ? भगवान् अन्तर्यामी हैं, उन्होंने उसकी हार्दिक अभिलाषा (जिसका बालिको छोड़ और किसीको पताभी न था) इस प्रकार पूर्ण की।

३—यद्यपि भगवान् सब कुछ करनेमें समर्थ हैं, उनकी इच्छामें कोई वर या शाप बाधक नहीं होसकता, तथापि यह उनका मर्यादा-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुरुषोत्तम अवतार है। मानसमयङ्ककार एवं और भी कुछ सज्जनोंका मत है कि वालिको किसीका वरदान था कि जो तेरे सम्मुख लड़नेको आवेगा उसका आधा बल तुमको मिल जावेगा। प्रभु सबकी मर्यादा रखतेहैं इसीसे रावणवधकेलिए नरशरीर धारण किया; नहीं तो जो कालकाभी काल है क्या वह बिना अवतारलिएही रावणको मार न सकता था? जिसके एक सीकास्त्रसे देवराजके पुत्रको त्रैलोक्यमें शरण देनेवाला कोई न मिला क्या वह सीताके उद्धारके लिए वानरकटक एकत्र करता, सुग्रीवसे मित्रता करता, नागपाशमें अपनेको बँधवाता? इत्यादि। वह रावणको अवश्य साकेत वा वैकुण्ठमें बैठेही मारसकताथा—पर देवताओंकी मर्यादा, उनकी प्रतिष्ठा, जातीरहती। उनके वर और शाप कोई चीज़ न रहजाते। इसीलिए तो श्रीरामदूतनेभी ब्रह्माका मान रक्खा और अपनेको नागपाशसे बँधवालिया—'जौं न ब्रह्मसर मानिहौं महिमा मिटै अपार'। अतएव ओटसे मारकर वरकी मर्यादा रक्खी। ☞ अब पाठक निष्पक्ष हृदयसे विचार करें कि भगवान्का धर्मयुक्तकार्य्य इसमें हुआ कि उन्होंने देवताओंके वरदानकी मर्यादा रक्खी और गाली सहकरभी उसे ओटसेही मारा, या कि, उनकी प्रशंसा देवमर्यादा मिटादेनेमें होती?

४—पं० शिवरत्नशुक्लजी लिखतेहैं कि 'वृक्षकी आड़से मारनेका कारण बालिको अकेला पाना था। अर्थात् नियत स्थलके उस अंशमें बालि सुग्रीवसे युद्ध करके लौटता और फिर वेगके साथ सुग्रीवकी ओर दौड़ताथा। अतएव उसी स्थानका लक्ष्य वृक्षकी ओटसे कियागयाथा कि जिसमें भूलसेभी सुग्रीवके बाण न लगे; क्योंकि उस स्थानपर बालि अकेला था। यही कारण वृक्षकी ओटमें खड़े होनेका है। लोग कहतेहैं कि बालि सम्मुख युद्ध करनेवाले वीर योद्धाका आधा बल हरलेताथा; पर रामजीके साथ वह ऐसा नहीं करसकताथा। क्योंकि समुद्रका खाराजल जैसे एक घड़ेमें भरा नहीं जासकता वैसेही बालिकी शक्तिरूपी पात्रमें भुवनेश्वरका अर्द्धबलभी नहीं समासकताथा। अस्तु, यह शंका निर्मूल है।

शरणागत-वत्सलता एवं सत्यसन्धता

श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रमें उनका पूर्ण ऐश्वर्य्य और परब्रह्मत्व सबसे अधिक उनके शरणागत-वत्सलतागुणसे प्रकट होताहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसी गुणने भक्तोंको रिझारक्खाहै। प्राय: सर्वत्र श्रीरामचन्द्रजीने अपने ऐश्वर्य्यको छिपायाहै। पर विभीषणजीकी शरणागतिके समय जब एक श्रीहनुमान्‌जीको छोड़ सुग्रीव, जाम्बवान्, अङ्गद आदि सभीने उसको शरणमें न लेनेका मंत्र दिया, तब सुग्रीवको प्रभुने अनेक प्रकारसे समझाया और अन्ततोगत्वा उन्हें यह कहनाही पड़ा कि 'तुम मेरे प्रभावको नहीं जानते, मैं अँगुलीके अग्रभागके इशारेसे त्रैलोक्यका नाश करसकताहूँ, थोड़ेसे राक्षस तो चीज़ ही क्या हैं ? पर मैं शरणागतको नहीं छोड़सकता, चाहे मेरा सर्वस्व नाश क्यों न होजाय।' वाल्मीकि आदि रामायणोंमें शरणागतिपर प्रभुके बहुत कुछ वचन हैं। प्रभुने यहा तक कहदिया कि 'यह क्या, यदि वह रावणभी हो और वह मेरी शरण (कपटवेषसे ही) आयाहो, तोभी मैं उसे अभय देताहूँ, तुम उसे लिवा लाओ।' देखिए, श्रीलक्ष्मणजीको शक्ति लगी, पर ऐसे दारुण शोकके समयभी उन्हें सीताजी या और किसीकी चिन्ता नहीं है; लक्ष्मणजीकाभी शोक है, तो इसी कारण कि विभीषण हमारी शरण आयाहुआहै, अब हम उसका मनोरथ कैसे पूरा करेंगे। गीतावलीमें श्रीरामजी कहतेहैं। यथा—मेरो सब पुरुषारथ थाको।

बिपति बँटावन बंधु बाहु बिनु करौं भरोसो काको ॥१॥
सुनु सुग्रीव साँचहू मोसन फेरयो बदन बिधाता।
ऐसे समय समर संकट हा तज्यो लषन सो भ्राता ॥२॥
गिरि कानन जैहहिं शाखामृग हौं पुनि अनुज सँघाती।
ह्वै है कहा बिभीषन की गति रही सोच भरि छाती ॥३॥

यहाँपर शरणागतिपर जैसा प्रबल और दृढ़ भगवद्वचनामृत है, वैसा शायदही और कहीं मिले—

"कोटि-बिप्र बध लागहिं जाहू। आए सरन तजउँ नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जनम कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥
जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहौं ताहि प्रानकी नाई ॥"

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥१॥"
"मित्रभावेनसंप्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन।
दोषो यद्यपितस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम् ॥२॥"

इसी तरह भगवान्‌ने अपने श्रीकृष्णावतारमेंभी कहा—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥३॥ अपि चेत्सुदुराचरो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव समन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥ ४ ॥"

यही वाक्य आज भगवद्भक्तोंकी, अनेक समाजों, पन्थों, मतवादियोंसे, रक्षा कररहेहैं। इसी जगह आकर अन्य मतवादी हिन्दूभाई दाँत तले उँगली दबालेतेहैं, नहीं तो अवतारखण्डन तो वे करतेही रहे और करतेभी हैं।

सुग्रीव बालिसे बहुत कमज़ोर है। वह स्वयं कहताहै कि 'ताके भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउं बिहाला ॥', यही कारण है कि श्रीसीताजीकी खोजमें जब उसने वानरोंको भेजा तब चारों दिशाओंकी अन्तिम सीमातकके नाम उसने वानरोंसे बताए। बालिसे संसारभरमें उसका कोई रक्षक न हुआ।—'बालित्रास व्याकुल दिन राती। तन बहु व्रन चिंता जर छाती ॥', ऐसा सुग्रीव जब प्रभुकी शरण हुआ, उससे प्रभुने मित्रता की और उसका दुःख सुनकर एवं यह जानकर कि बालिने उसका सर्वस्व हरलिया, उनसे रहा न गया। बालिके अधर्मको वे न सहसके। यद्यपि बालिने उनका कोई निज अपराध नहीं कियाथा तोभी 'सेवक बैर बैर अधिकाई'। मित्रका शत्रु अपनाही शत्रु है, यह सोचकर उन्होंने तुरंत प्रतिज्ञा की कि 'सुनु सुग्रीव मैं मारिहौं बालिहि एकहि बान'। यही तो मित्रधर्मकी पराकाष्ठा है।

प्रभुका बाना है गरीबनिवाज़, दीनदयालु, प्रणतपाल! इसीसे उन्होंने दीन, गरीब और शरणागत सुग्रीवकी रक्षा उसके अति प्रबल शत्रुसे की। हनुमान्‌जीने कहाही है कि 'दीन जानि तेहि अभय करीजै।'

भगवान्‌ने 'बिटप-ओट' से बालिको मारनेका चरित वस्तुतः क्यों किया, इसमें क्या रहस्य है—यह तो श्रीरामही जानें, या वे जानें जिन्हें वे जना दें। पर श्रीअवधमें महात्माओंसे जो सुनाहै वह यह है—

बालि जानताहै कि रावणवधकेलिए प्रभुने अवतार लियाहै, तारानेभी जब उससे कहा कि—

सुनु पति जिन्हहिं मिलेउ सुग्रीवा। ते दोउ बंधु तेज बल सींवा ॥
कौसलेससुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तब उसने यही कहा कि 'समदरसी रघुनाथ। जो कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ॥' और मारे जानेपर जब प्रभु समीप आये तब वह एकबारगी उठबैठा और कहनेलगा कि 'धर्महेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि व्याधकी नाईं॥' इससे स्पष्ट है कि वह जानताथा कि ये परब्रह्म परमात्मा हैं। आनंदरामायणमेंभी लिखाहै कि ताराके वचन सुनकर बालिने कहाथाकि 'जानाम्यहं राघवं तं नररूप धरं हरिम्। तस्य हस्तान्मृतिर्मेस्ति गच्छामि परमं पदम्॥' अर्थात् मैं उन नररूपधारी भगवान् राघवको जानताहूँ, उन्हींके हाथसे मेरी मृत्यु है, मैं परमपदको पाऊँगा।

यदि प्रभु सामने आते तो किंचित् सन्देह नहीं कि वह दर्शन पाते ही अवश्य चरणोंपर गिरपड़ता। इसका प्रमाण है—

"परा बिकल महि सर के लागे। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे॥

और, "सुफल जनम माना प्रभु चीन्हा॥"

तब श्रीरामजी बालिको कैसे मारते? और न मारते तो मित्रका काम कैसे होता? एवं सत्यसंधता कहाँ रहजाती? तथा ऋषियोंके वाक्य कैसे सत्य होते *? शरणमें आएहुए सुग्रीवको छोड़देते तो ब्रह्माण्डभरमें आज उनकी शरणमें कौन विश्वास करता? जीव उनकी शरणमात्र लेनेसे अपने कल्याणका विश्वास और निश्चय कब करसकता? सामने आनेपर वे शील कैसे छोड़देते? इसीलिए उसे 'विटप ओट' से मारा। इसपर यह कहाजासकताहै कि बालि भक्त था तो पहलेही शरणमें क्यों न आया, जब ताराने उसको समझायाथा? इसका कारण यह ज्ञात होताहै कि सुग्रीवने जाकर उसे ललकारा

* सप्ततालके प्रसंगमें कहीं ऐसा उल्लेख है कि किसी ऋषिने बालिको शाप दियाथा, अथवा तक्षक या उसके पुत्रनेही बालिको शाप दियाथा कि जो कोई इन सप्ततालोंको एक बाणसे वेधे उसीके हाथ तेरी मृत्यु होगी। इसीसे सप्तताल के गिरतेही सुग्रीवको अपने कार्य्यसिद्धिका विश्वास होगयाथा। यदि इस समय भगवान् उसे न मारते तो संसार में दूसरा कौन बलवान् था जो उसको मारसकता? दिग्विजयी रावणभी उससे हारचुकाथा। प्रभाव इसका यह पड़ता कि बालिका अभिमान औरभी बढ़ता और वह दूसरा रावण होजाता, तब उसके लिए फिर अवतार लेना पड़ता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

था। भला ऐसा कौन बलवान् पराक्रमी वीर योद्धा होगा जो शत्रुकी ललकारपर उलटे उसके सामने हाथ जोड़े ?—'बाली रिपुबल सहै न पारा'।

छिपकरभी मित्रके शत्रुको मारनेमें कुछ दोष नहीं। मानभी लिया जाय, तोभी वह कानून ही और है और शरणागतवत्सलताका क़ानून उन सारे सांसारिक क़ानूनोंसे निराला है। यह तो नियमका अपवाद है, यह तो भगवान्का निज क़ानूनहै। अपने भक्तोंकी रक्षाकेलिए प्रभु ब्रह्मण्यदेवत्व आदि गुणोंकोभी ताक़पर रखदेतेहैं, उनको यहभी परवा नहीं कि हमको कोई बुरा कहेगा। अपने स्वार्थकी हानि हो तो हो पर मित्रको हानि न पहुँचे उसका कार्य अवश्य सिद्ध करना होगा, जो प्रतिज्ञा होगई सो होगई अब उससे नहीं टलनेके। विरदमें धब्बा न आवे। इसीपर गोस्वामीजीने विनय और दोहावलीमें कहाहै—

"ऐसे रामदीन हितकारी।...
तियविरही सुग्रीव सखा लखि हत्यो बालि सहि गारी॥' (विनय)
"का सेवा सुग्रीवकी प्रीति रीति निरबाहु।
जासु बंधु बध ब्याध ज्यों सो सुनत सुहाइ न काहु॥
भजन बिभीषनको कहा फल कहा दियो रघुराज।
राम गरीबनिवाजके बड़ि बांह बोलकी लाज॥" (विनय)
"कहा बिभीषण लै मिलेउ कहा बिगारी बालि।
तुलसी प्रभु सरनागतहि सब दिन आए पालि॥ (१)
बालि बली बलसालि दलि सखा कीन्ह कपिराज।
तुलसी रामकृपालु को बिरद गरीबनिवाज॥ (२)
बंधुबधूरत कहि कियो बचन निरुत्तर बालि।
तुलसी प्रभु सुग्रीवकी चितई न कछू कुचालि॥"—दो०

पुनः, यथा—"बालि दसानन बंधु कथा सुनि सत्रु सुसाहिब सील सराहैं॥ ऐसी अनूप कहैं तुलसी रघुनायककी अगुनी-गुन गाहैं। आरत दीन अनाथनको रघुनाथ करैं निज हाथन छाहैं॥"(क० उ०११)

इसी विषयमें वा० आ० स० १० भी प्रमाणमें दियाजासकताहै। वहाँ जब महारानीजीने आपसे प्रार्थनाकी कि आपने राक्षसोंके वधकी प्रतिज्ञा की है पर मेरी प्रार्थनाहै कि आप विना अपराधके उनका वध न करें, उस समय प्रभुने यह उत्तर दिया कि 'दण्डकारण्यके ऋषि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मेरी शरण आकर मुझसे बोले कि आपही हमारे नाथ हैं, आपही हमारे एकमात्र रक्षक हैं। यह सुनकर मैंने राक्षसवधकी प्रतिज्ञा की। अब उस प्रतिज्ञाको मैं नहीं छोड़सकता, सत्य मुझे सदा प्रिय है। मैं प्राण छोड़सकताहूँ, तुमको एवं लक्ष्मणको छोड़सकताहूँ, पर प्रतिज्ञा नहीं छोड़ सकता *'। ऐसाही प्रभुने सुंदरकांडमें कहाहै—'मम पन सरनागतभयहारी'। औरभी प्रमाण लीजिए। जब रामचन्द्रजीने भागतेहुए माल्यवान्, माली और शुमालीपर बाण चलाया तब उन्होंने यही कहा कि आप अधर्मयुद्ध करतेहैं कि भागतेहुएकाभी पीछा कररहेहैं तब भगवान्ने यही उत्तर दियाथा कि इस समय हम धर्माधर्म नहीं देखते, हम देव-मुनि-रक्षामें तत्पर हैं उनकेलिए जैसे बने हम उनका कार्य्य करेंगे।

आधुनिक समालोचकोंको चाहिए कि सहृदयता और सद्भावनासेही ईश्वरावतारचरित्रोंपर विचार करनेका कष्ट उठाया करें, तभी उसके रहस्य उनकी समझमें आसकतेहैं।

सुग्रीव-मिताई एवं बालिवधके कुछ और कारण

१—शबरीजीने सुग्रीवका पता बताया और कहा कि 'पंपासरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई॥ सो सब कहिहि देव रघुबीरा'। अर्थात् वह सीताजीका पता बताएगा, उससे मित्रता कीजिए, वह बहुत दीन है। एक परमभक्तकी यह सलाह है फिर उसे भगवान् क्यों न मानते?

२—वाल्मीकीयमें कबन्धने दिव्यरूप धारण करनेपर यही बात कही कि सुग्रीवके पास जाइए उससे मित्रता कीजिए। वह धर्मात्मा है। बालिसे मिलनेको किसीने न कहा। इससे यह भी अनुमान होताहै कि बालिका अभिमान अतिशय बढ़चुकाथा और उससे ऋषियों, भागवतों इत्यादिकोभी कष्ट पहुँचनेलगाथा, वे सब बालिको अधर्मी समझने लगेथे। संभव था कि वह कुछ कालमें दूसरा सहस्रा-

* 'रक्षकस्त्वं सह भ्रात्रा त्वन्नाथा हि वयं वने। मया चैतद्वचः श्रुत्वा कार्त्स्न्येन परिपालनम्॥१६॥ ऋषीणां दण्डकारण्ये संश्रुत्य जनकात्मजे। संश्रुत्य च न शक्ष्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम्॥१७॥ मुनीनामन्यथाकर्त्तुं सत्यमिष्टं हि मे सदा। अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्॥१८॥ न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः। तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपालनम्॥ १९॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

र्जुन होजाता जिसने जमदग्नि ऋषिका सिरही काटलियाथा ।

३ – श्रीसीताजीनेभी सुग्रीवपर कृपाकी । वा, यही समझलीजिए कि दैवसंयोगसे सीताजीने 'पटभूषण' जो फेंके वे सुग्रीवको मिलेथे। प्राणप्रियकी कोई वस्तु जिससे मिले वहभी प्यारा ही होजाताहै ।

४—सुग्रीव सीताशोधमें सहायता करेगा, उसके बदलेमें रघुनाथजीका उपकार उसपर हुआहै । उसके उपकारसे प्रभु उऋण होगए । पर, बालिसे मित्रता करनेमें उसके उपकारके बदलेमें आप क्या करते ? उसका साथ देनेमें उसके साथ आपकोभी अपराधी बनना पड़ता; क्योंकि वह बिचारे सुग्रीवको निरपराध मारनेको कहता । दूसरे, बालिसे मित्रता करनेमें प्रभुके यशकी हानि होती । उनके ऐश्वर्य्यको लोग न जानपाते । सब यही कहते कि बालि तो रावणसे बली था उसकी सहायतासे रामचन्द्रजीने सीताजीको पाया । तीसरे, रावण-मेघनाद आदिकी मृत्यु बालि द्वारा हो नहीं सकतीथी. बालिके रहते-हुएभी तो देवता और ऋषि रावणसे पीड़ित ही रहे । यदि उसमें रावणादिके वधका सामर्थ्य होता तो वह अपने पिता इन्द्रको कबका रावणसे स्वतंत्र करचुका होता और जैसा हनुमन्नाटकमें उसने कहाहै वह कदापि न कहता कि—'हा ! मैं अपने पिता इन्द्रके शत्रु रावणको विनाही मारेहुए मरगया, यही मुझे दुःख है'—(अंक ५ श्ल० ५७) । बालिद्वारा सीता भलेही प्राप्त होजातीं पर निश्चरकुलसहित रावणवध तो किसीतरह न होता । जिसकेलिए अवतार और वनवास हुआ वह कार्य्य ज्योंका त्योंही रहजाता । और चौथे, सम्राट् चक्रवर्ती पदभी कहां रहजाता ? पाँचवें, बालि अभिमानीप्रकृतिका है और घस्तीमें रहताहै । उससे मित्रतामें चक्रवर्तीराजकुमारका गौरव कब बनारहजाता ? इत्यादि । उधर सुग्रीव महान् आर्त्त है, बालिसे ऐसा भयभीत रहताहै कि श्रीरामलक्ष्मणजीकोभी देखतेही भागा कि कहीं बालिने न भेजा हो । फिर मित्रताकी बातभी प्रथम उधरसेही हुई, परमभक्त हनुमान्जी उसकी सुफ़ारिश करतेहैं—'दीन जानि तेहि अभय करीजै' । उससे जब मित्रता होगई, तब 'मित्रके दुख रज मेरु समाना', इस न्यायानुसार उसका दुःख दूर करना कर्त्तव्य और धर्म था । फिर, सुग्रीवसे मित्रता करनेमें रघुकुलका गौरवभी बना रहा और अवतारका कार्य भी सब हुआ । ☞ और भी भाव यत्र तत्र

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चौपाइयोंमें आचुकेहैं। बालिके प्रश्न और उनके उत्तर § ८ (९-१०) में मानसके अनुसार दिएगएहैं, वहां देखिए।

मैं बैरी सुग्रीवँ पिआरा।
अवगुन कवन नाथ मोहि मारा॥ § ८ (६)

अर्थ—मैं बैरी हूँ, सुग्रीव प्यारा है! हे नाथ! किस अवगुणसे मुझे आपने मारा।

टिप्पणी—ये सब बातें कहकर बालिने रामजीको अधर्मी बनाया—(१) धर्म हेतु आपने अवतार लिया और मुझको छिपकर मारा। यह अधर्म है। (२) आपने समदर्शी होकर मुझको बैरी और सुग्रीव को प्यारा समझा, यह अधर्म है। (३)—विना अवगुन मारा, यह अधर्म है। (४)—अन्यके वैरसे अन्यको मारना अधर्म है।

मा० म०—भाव यह कि भाइयोंमें वैर प्रीति समयानुसार परस्पर होतीही रहतीहै परन्तु, हे नाथ! आपने क्यों बिना विचारे ऐसी अनीतिकी और इस नियमको तोड़ दिया।

अनुजबधू भगिनी सुतनारी।
सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥ § ८ (७)
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकै जोई।
ताहि बधे कछु पाप न होई॥ ,, (८)

अर्थ—अरे शठ! सुनु। छोटे भाईकी स्त्री, बहिन, पुत्रकी स्त्री और कन्या ये चारों समान हैं। इनको जो कोई बुरी दृष्टिसे देखे उसका वध करनेसे कुछ पाप नहीं होता।

टिप्पणी—यहाँ प्रथम 'अनुजबधू' कहा, क्योंकि प्रस्तुत प्रसंग यही है। इसे प्रथम कहकर बालिको जनातेहैं कि तू छोटे भाईकी स्त्रीमें रतहै। २-'कुदृष्टि बिलोकै०'। भावकि छोटेभाईकी स्त्रीपर कुदृष्टि देखने से ही वधका दंड होताहै और तूने तो उसे ग्रहण करके स्त्री बनालिया है। तेरे वधसे हमको पाप नहीं लगसकता पर यदि तेरा वध न करते तो पाप होता†। पापीको मारना हमारा धर्म है, इसीसे तुझे मारा।‡

† 'अदण्डयान् दण्डयन् राजा दण्डयांश्चैवाप्य दण्डयन्। अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति' इति मनुः। अर्थात् जो राजा निरपराधियोंको दंड दे और अपराधियोंको दंड न दे वह बड़े अपयशको प्राप्त होताहै, नरकको जाताहै। ‡ 'धर्मस्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नोट— मा० म० में 'सुन सठ ए कन्या सम चारी' पाठ है और अर्थ कियाहै कि "छोटे भाईकी स्त्री, बहिन, भगिनी-सुतनारी अर्थात् बहिनकी पतोहू और सुतनारी (पतोहू) ये चारों अपनी कन्याके तुल्य हैं'। इस अर्थमें 'सुतनारी' को दो बार लियाहै, एकबार भगिनीके साथ मिलाकर दूसरा बार अकेले। परन्तु अधिक उत्तम अर्थ वहीहै जो ऊपर दिया गयाहै। यदि पाठ यही हो तो भी अन्वयमें 'ए' शब्द चारों के साथ लिया जासकताहै। दूसरे अध्यायमें इसकी जोड़का श्लोक भी ऊपर दिए हुए अर्थकोही प्रमाणित करताहै। वा० १८।१४,२२ से भी यही अर्थ सिद्ध होताहै। वहाँ प्रभु कहतेहैं कि "यवीयानात्मनः पुत्रः शिष्यश्चापि गुणोदितः। पुत्रवत्ते त्रयश्चिन्त्या धर्मश्चैवात्र कारणम्॥ १४॥ औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाप्यनुजस्य यः॥२२॥ प्रचरेतनरः कामात्तस्य दण्डो वधः स्मृतः॥२३॥" अर्थात् छोटा भाई, पुत्र, गुणवान शिष्य ये पुत्रके समान हैं। कन्या, बहिन और छोटेभाई की स्त्रीके साथ जो कामका व्यवहार करताहै उसका दण्ड वध है। इसमेंभी कन्याको चारमेंसे एक गिनाया है। अध्यात्ममें तो चौपाईकाही प्रतिरूप मिलताहै, यथा-"दुहिता भगिनी भ्रातुर्भार्याचैव तथा स्नुषा। समा यो रमते तासामेकामपि विमूढ़ धीः॥ पातकी स तु विज्ञेयः सवध्यो राजभिः सदा॥ ६१॥" (स० २)। अर्थात् अपनी लड़की, बहिन, भाईकी स्त्री और पुत्रवधू ये समान हैं। जो मूढ़बुद्धि इनमें रमण करताहै उसे पापी जानना चाहिए। वह सदा राजा द्वारा बध योग्य है। काशिराज, भा० द० की प्रतिमें 'सम ए चारी' पाठ है।

मूढ तोहि अतिसय अभिमाना।
नारि सिषावन करसि न काना॥ § ८ (९)
मम-भुजबल आश्रित तेहि जानी।
मारा चहसि अधम अभिमानी॥ ,, (१०)

अर्थ—अरे मूर्ख! तुझे अत्यन्त अभिमान है, तूने स्त्रीकी शिक्षापर कानभी न दिया अर्थात् न मानी। अरे अधम और अभिमानी! सुग्री-

गोप्तालोके स्मिन्श्चरामि शरासनः। अधर्मकारिणं हत्वा सद्धर्मं पालयाम्यहम्' (अध्यात्म स० २)। अर्थात् इस लोकमें हम धर्मके पालन करनेवाले धनुर्धारी होकर विचरते और अधर्मीको मारकर सद्धर्मकी रक्षा करते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वको मेरे बाहुबलके सहारे जानकरभी तूने उसे मारना चाहा।

टिप्पणी—१ 'नारि सिखावन करसि न काना'। इससे रामजीकी सर्वज्ञता सूचित हुई। स्त्रीने तो घरमें शिक्षा दी उसे रामजीने यहीं जानलिया। यहाँ 'करसि' वर्तमान कालकी क्रिया दी यद्यपि शिक्षा तो भूतकालमें हुई। इसका समाधान यह है कि वर्तमानके समीप भूत और भविष्य वर्तमानहीके तुल्य हैं, यथा—'वर्तमान सामीप्ये वर्तमान् वद्वा' इति कौमुदीग्रंथे। २—'मम भुजबल आश्रित तेहि जानी...' इति। (क) कैसे जाना? तारासे, यथा—'सुनु पति जिन्हहि मिला सुग्रीवा। ते दोउ बंधु तेज बल सींवा'। तारासे यह जानकरभी न माना, अतः कहा कि 'मारा चहसि'। (ख) स्त्रीशिक्षा न माननेसे 'मूढ अभिमानी' कहा और आश्रित भक्तको मारनेकी इच्छा की इससे यहां 'अधम अभिमानी' कहा। (ग) 'अधमअभिमानी' कहनेका भाव कि हमारा अवतार इन्हींके मारने और धर्मकी रक्षाकेलिए है, यथा—'जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥ तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥' तू अधम और अभिमानी है, तुझे मारकर हमने धर्मकी रक्षा और भक्तकी पीड़ा हरण की। तात्पर्य्य कि उत्तमका उपदेश न मानना मूढ़ता है और भक्तको मारना अधमता है। [☞ देखिए कविने बालकांडमें कहेहुए वचनोंका कैसा निर्वाह यहां कियाहै]

बालि के प्रश्न	उत्तर
'धर्महेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याधकी नाईं॥' छिपकर मारना अधर्म है, आपने यह अधर्म किया।	१ 'अनुज बधू भगिनी सुतनारी। सुनु सठ कन्या सम ये चारी। इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकै जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥' अधर्मीको मारना धर्म है।
मैं बैरी सुग्रीव पिआरा।	२ 'मम-भुजबल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥' तूने हमारे भक्तको मारना चाहा इससे तू हमाराभी बरी है, यथा—'सेवक बैर बैर अधिकाई'। वह सेवक है इससे प्यारा है—'मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अवगुन कवन नाथ मोहि मारा ३ अनुज बधूमें रत; दूसरे आश्रितको मारना

नोट—१ व्याध की तरह मारनेका उत्तर ध्वनिसे यहभी निकलताहै कि तू पापरत था, पातकी अधर्मीका मुख देखना शास्त्रमें निषेध है। जब बाणद्वारा तेरा वह पाप नष्ट करदियागया तब मैं तेरे पास आया। २—'अतिशय' विशेषण देकर यहभी जनाया कि यहभी एक कारण मृत्युका हुआ। किसी बातका अतिशय कोटिको पहुँचना हानिकारक ही होजाताहै जैसा भर्तृहरिजीने कहाहै कि अतिशय सौंदर्य्यके कारण सीताहरण हुआ, अतिशय गर्व होनेसे रावण मारागया, इत्यादि। ३—'नारि सिखावन करसि न काना', ऐसाही वा० १६ में कहाहै—'तदा हि तारा हितमेव वाक्यं तं बालिनं पथ्यमिदं बभाषे। न रोचते तद्वचनं हि तस्य कालाभिपन्नस्य विनाशकाले ॥३१॥' अर्थात् ताराके ये हितकारी वचन बालिको अच्छे न लगे क्योंकि उसका विनाशकाल उपस्थित था, उसपर मृत्युकी छाया पड़चुकीथी ४—'मम भुजबल आश्रित तेहि जानी ..' इति। वा० १८ में कहाहै कि 'सुग्रीवेण च मे सख्यं लक्ष्मणेन यथा तथा। दारराज्यनिमित्तं च निःश्रेयसकरः स मे ॥ २६ ॥ प्रतिज्ञा च मया दत्ता तदा वानरसंनिधौ ॥ प्रतिज्ञा च कथं शक्या मद्विधेनानवेक्षितुम् ॥२७॥'; अर्थात् जैसे मेरे सखा लक्ष्मण हैं वैसेही सुग्रीवकेसाथभी मेरा सख्यत्व है। स्त्री और राज्य पानेपर वे मेरे कल्याणकेलिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं, मैंनेभी वानरोंके सामने प्रतिज्ञा कीहै, हमारे समान मनुष्य प्रतिज्ञाकी उपेक्षा कैसे करसकतेहैं?

प्र०—अपनी जानपनीके गुमानसे स्त्रीका कहा न माना, इससे मूढ़ कहा, यथा—'मूरख हृदय न चेत०'। पुनः, भाव यह कि अभिमानसे तू अपनेको पुरुष मानताहै और बुद्धि स्त्रियोंके समानभी नहीं है।

'मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना'

भगवान्‌को अभिमानसे चिढ़ है। भक्तोंमेंभी वे अभिमान नहीं सहसकते। अभिमान आतेही वे तुरंत भक्तकी उससे रक्षा करतेहैं। अर्जुनका गर्व हरा, भीमका गर्व दूर किया। नारद जो उनको परमप्रिय हैं उनके सम्बन्धमेंभी आपने पढ़ाही है कि क्या किया।—

'करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गर्व तरु भारी॥
बेगि सो मैं डारिहौं उपारी। पन हमार सेवक हितकारी॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुनिकर हित मम कौतुक होई । अवसि उपाय करबि मैं सोई ॥' बस उनका शापभी ग्रहण किया, अवतीर्ण हुए, नरनाट्य विलापादि भी किए—यह सब हुआ पर भक्तका अभिमान दूर किया। जब जो उपाय वे उचित समझतेहैं तब उसीको काममें लातेहैं—

'कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसमहु चाहि'।

बालिको अपने बलका बड़ा गर्व था, यथा—'मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना...'। वह सुग्रीवको तृणसमान गिनताथा।

उसको एकही बाणसे मारकर उसका गर्व दूर किया। अंगदके वचनसेभी सिद्ध है कि एकही बाणसे बालिका माराजाना असंभवसा था, यथा—'सो नर क्यों दसकंध बालि बधेउ जेहि एक सर'। मंदोदरीने भी ऐसाही कहाहै—'बालि एक सर मारेउ तेहि जानहु दसकंध'।

पर गर्व हरण होतेही फिर उसपर दयालु होजातेहैं। अपराधका दंड देकर उसका प्रायश्चित होजानेपर वह उनको वैसाही प्रिय होजाताहै जैसा सुग्रीव। यदि छिपकर मारनेमें कपट छल होता तो क्या वे उसके सम्मुख होनेपर कहते कि—'अचल करौं तन राखहु प्राना'?

सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि ॥§९

अर्थ—हे राम! सुनिए, स्वामीसे मेरी चतुराई चल नहीं सकती। हे प्रभु! मुझे अन्त समय आपकी गति (=शरण) प्राप्त हुई तो क्या मैं अबभी पापीही हूँ? (अर्थात् आपकी शरण प्राप्त होतेही समस्त पाप नाश होजातेहैं, यथा—'सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं'। तब मुझमें पाप कहाँ रहगया। इससे यहभी जनाया कि मैं शरण हूँ।) *

---

* १—(वा० १८)—'प्रतिवक्तुं प्रकृष्टेहि नापकृष्टस्तु शक्नुयात् ॥४६॥ मामप्यवगतं धर्माद्व्यतिक्रान्त पुरस्कृतम्। धर्मसंहितया वाचा धर्मज्ञ परिपालय ॥ ४८ ॥" अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषोंको उत्तर देनेमें छोटा मनुष्य निश्चयही समर्थ नहीं होसकता। अब बड़ा धर्मत्यागी मैंभी आपके समीप आयाहूँ, हे धर्मज्ञ! आप धर्मयुक्त वचनसे मेरी रक्षा करें। २—मा०म०—तात्पर्य यह है कि सुग्रीव तो मित्रता करके पापसे रहित हुआ और मैं पहले अघी था पर शर लगनेसे महा पुनीत होगया। ३—पं०—भाव यह कि अब अधम न कहिए क्योंकि अब तो आप

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आधुनिक प्रतियोंमें जहां तहां 'सन' और 'पापी'के बदले 'सुभग' और 'पातकी'पाठ है। पर प्राचीन सभी प्रतियोंका पाठ वहीहै जो ऊपर दियागया।

सुनत राम अति कोमल बानी।
बालि-सीस परसेउ निज पानी॥ § ९ (१)

अर्थ—बालिकी अत्यन्त कोमल वाणी सुनतेही रामचंद्रजीने बालि के सिरपर अपना हाथ फेरा।

टिप्पणी—१—बालिने अन्तमें दीन होकर कहा कि 'प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि', यह वाणी अति कोमल है। २—बालिके माथेपर हाथ फेरा और कृपाकी। ☞जब २ अपने भक्तके माथेपर हाथ फेरतेहैं तब २ हाथका विशेषण कमल रहताहै; वह अति-कृपाका सूचक है, यथा—'सिर परसेउ प्रभु निज कर-कंजा', 'करसरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर', 'परसा सीस सरोरुह पानी', 'कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ' और विनय पद १३८—

कबहूँ सो कर सरोज रघुनायक धरिहौ नाथ सीस मेरे।
जेहि कर अभय किए जन आरत बारक बिवस नाम के टेरे॥१॥
जेहि कर कमल कठोर संभुधनु भंजि जनकसंसय मेट्यो।
जेहि करकमल उठाय बंधु ज्यों परम प्रीति केवट भेंट्यो॥२॥
जेहि करकमल कृपालु गीध कहँ पिंड देइ निजलोक दियो।
जेहि कर बालि बिदारि दासहित कपिकुलपति सुग्रीव कियो॥३॥
आयो सरन सभीत बिभीषन जेहि कर कमल तिलक कीन्हो।
जेहि कर गहि सर चाप असुर हति अभय दान देवन्ह दीन्हो॥४॥
सीतल सुखद छांह जेहि कर की मेटत ताप पाप माया।
निसिबासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसिदास छाया॥५॥"

बालि पर सामान्य कृपा हुईहै, इसीसे 'कर' के लिए 'कमल' विशे-

की प्राप्ति मुझे होचुकीहै। ४ नोट—वा० १८।३१ में भी कहाहै कि पापी मनुष्य पापका दंड भोगकर निर्मल होजाताहै और स्वर्गको प्राप्त होताहै। यथा—"राजभिर्धृत दण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः। निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा॥३१॥ शासनाद्वापि मोक्षाद्वा स्तेनः पापात्प्रमुच्यते।" अतः कहा कि क्या मैं अबभी पापी हूँ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

षण नहीं दियागया। इसी प्रकार जब सुग्रीवके शरीरपर पीड़ा दूरकरने और उसे वज्रवत् करदेनेकेलिए हाथ फेरा तब 'कर परसेउ'ही कहा।

[नोट—विनयके भजनसे यहभी भेद निकलताहै कि जहाँ वध आदि द्वारा सद्गति दी गईहै वहाँभी 'कमल' विशेषण नहीं दिया गयाहै; क्योंकि दण्डमें कठोरता पाईजाती है और कमलमें कोमलता।]

पं०—'अति कोमल, इति। दोहेमेंके वचन कोमल हैं', अक्षर भी कोमल और भावभी सुन्दर। बड़ोंकी रीति है कि जो विनम्र होताहै उसका आश्वासन करतेहैं। सिरपर हाथ इसीलिए फेरा।

मा० म०—यद्यपि बालि बाणसे अत्यन्त पीड़ित था तोभी उसने श्रीरामजीको 'स्वामी' संबोधन किया; इसीसे कविने उसकी वाणीको 'अति कोमल बानी' लिखा।

अचल करौं तन राषहु प्राना।
बालि कहा सुनु कृपानिधाना॥ § ९ (२)

अर्थ—(और बोले कि) मैं तुम्हारी देहको अचल करताहूँ, तुम प्राण रखो *। अर्थात् जीनेकी इच्छा करो। बालिने कहा कि हे दया-सागर! सुनिए।

टिप्पणी—१—बालिने बारंबार यह कहा कि आपने मुझे मारा। यथा—'मारेहु मोहि ब्याध की नाईं', 'अवगुन कवन नाथ मोहिं मारा।' इसीपर रामजीने कहा कि हमने तुम्हारे शरीरको माराहै सो उसे हम अचल किए देतेहैं। पर प्राणके सम्बन्धमें प्रभु प्रतिज्ञा करचुकेहैं कि 'ब्रह्म रुद्र सरनागत गए न उबरिहि प्रान'; उस प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ सकते। इसीसे तनको अचल करनेको कहतेहैं और प्राणकेलिए कहतेहैं कि तुम इनको रखना चाहो तो यह रहसकतेहैं, इनका रहना तुम्हारे अधीन है। तुम शरणागत हो, तुम्हारी इच्छाकी पूर्तिकेलिए शरणागत के निहोरे मैं प्रतिज्ञा छोड़ दूँगा।

२—'कृपानिधान' संबोधनका भाव कि मुझ ऐसे अपराधीपर आपने कृपा की कि दर्शन दिया, सिरपर हाथ फेरा और मेरेलिए अपनी प्रतिज्ञा छोड़नेपर तत्पर होगए।

* यथा देहरामायणे—'कुर्यां त्वद्देहमचलं प्राणान् रक्षस्व वानर' अर्थात् हे कपि! तेरी देहको मैं अचल करदूँ, तुम प्राणोंको रक्खो।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नोट—बाबा हरिहरप्रसादजीका मत है कि उपरोक्त अर्थ और भाव ठीक नहीं हैं;क्योंकि इसका खंडन स्वयं बालिके वचनसे होताहै। उसने कहाहै कि 'प्रभु कहेउ राखु सरीरही' अर्थात् प्रभुने मुझसे कहा कि शरीर रक्खो;तब प्रभुका यह कथन कहां होसकताहै कि मैं तुम्हारे शरीरको अचल करताहूँ, तुम प्राण रक्खो। पुनः, प्रभुने यह कहाहै कि ब्रह्मरुद्रकी शरण जानेसे प्राण न बचेंगे, ऐसी प्रतिज्ञा है, कुछ अपनी शरणमें आनेपरभी प्राण न बचेंगे ऐसा नहीं कहाहै।

रा० प्र० श०—भगवत्कृपासे अब बालिको तनका अभिमान नहीं रहा इससे वह तनत्यागकोही उत्तम समझताहै। अपने ऊपर उत्तरोत्तर कृपा देखकर 'कृपानिधान' कहा।

जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं।
अंत राम कहि आवत नाहीं॥ ◊ ९ (३)
जासु नाम बल संकर कासी।
देत सबहि सम गति अबिनासी॥ ,, (४)
मम लोचन गोचर सोइ आवा।
बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा॥ ,, (५)

अर्थ—मुनि जन्म जन्म अभ्यास करतेहैं (तोभी) अंत समय राम नहीं कह आता (ऐसा दुर्लभ है) †। जिसके नामके बलसे शङ्करजी काशीमें सबको समान अविनाशिनी गति देतेहैं, वही प्रभु मेरे नेत्रोंके विषय आकर हुए। हे प्रभु! क्या फिर ऐसा संयोग बन पड़ेगा? अर्थात् ऐसी मृत्यु फिर बनाये नहीं बनसकेगी। *

† १ मा० म०—'अंत राम कहि आवत नाहीं' के भाव अनेक हैं। 'तुम्हरो अन्त लहे नहीं, तू न अन्त मो जात। नाम अन्त वा अन्त मो, कहे जात नहिं आत॥' अर्थात् आपको अन्तमें नहीं पाते, न आप अंतमें मिलतेहैं। वा, अन्तमें रामनाम स्मरण नहीं होताहै। वा, अन्तमें आपके नामका स्मरण करके फिर संसारमें नहीं आते परमगति प्राप्त करतेहैं। २—गणपति उपाध्यायजी केवल अंतिम भाव देतेहैं। यथा—'जन्म जन्म मुनि यतन करि अंतकाल कहि राम। आवत नहिं संसार महँ जात तुम्हारे धाम॥'। कोई २ यह अर्थ करतेहैं कि राम अंतमें कहतेहैं पर वे इसतरह नहीं आ खड़े होते जैसे आप खड़ेहैं।

* मा० म०—भाव यह कि आपका यह रूप जो जटाके चमकसे पूर्णहै और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—१ मुनि लोग अन्तमें रूपकी प्राप्तिकेलिए यत्न नहीं करते क्योंकि जब अन्तमें नामही मुखसे नहीं निकलपाता तब रूपकी प्राप्ति भला कैसे होसकतीहै? अन्तमें 'राम' कहनेसे मुक्ति होतीहै, यथा—'जाकर नाम मरत मुष आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा'।

२—"जासु नामबल संकर कासी।०" इति। (क) 'शंकर' नाम दिया क्योंकि सबको अविनाशिनी गति देकर सबका कल्याण करतेहैं। श=कल्याण। (ख) "अविनाशी गति" का भाव कि जो मुक्ति केवल ज्ञानसे प्राप्त होतीहै, यथा—'जे ज्ञानमानबिमत्त तव भवहरनि-भक्ति न आदरी। ते पाइ सरदुर्लभ पदादपि परत हम देषत हरी'—(उ०-§ १२), वैसी मुक्ति शिवजी नहीं देते वरन् अविनाशिनी मुक्ति देतेहैं 'जहँ ते नहिं फिरे'।—[समगति' अर्थात् कीट पतंग सबको मुक्ति देतेहैं, यथा—'आकर चारि जीव जग अहहीं। कासी मरत परमपद लहहीं'। पुनः यथा—'जो गति अगम महामुनि दुर्लभ कहत संत श्रुति सकल पुरान। सो गति मरनकाल अपने पुर देत सदासिव सबहि समान' तथा 'वेदविदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतंग समाहीं'—(विनय)]

☞३—मुनि लोग अंतमें 'राम' कहकर मुक्तिकी प्राप्ति चाहतेहैं और महादेवजी अंतमें रामनाम सुनाकर मुक्त करतेहैं। यह कहकर जनाया कि अन्तमें रामनाम कहनेसे या सुननेसे, दोनोंही प्रकारसे, मुक्ति होतीहै।

४—'मम लोचन गोचर सोइ आवा"। भाव कि मुनियों और काशी-निवासियोंसे मेरा भाग्य विशेष उत्तम है, मुझे उनकी अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त है। मुनियों को अन्तमें रामनामकी प्राप्ति नहीं है और काशीवासियोंको केवल नामकी प्राप्ति होतीहै, रूपकी नहीं; और मुझको नाम और रूप दोनों प्राप्त हैं। यह सुनकर रामजी निरुत्तर होगए; अतः न बोले।

छंद—सो नयन-गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गावहीं।
जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुक पावहीं॥१॥

जिसके करकमलमें वाण कंपायमान होरहाहै और जो इस समय विरह, सख्य, और वात्सल्य रसोंसे परिपूर्ण हैं ऐसे समाजसंयुक्त यदि आपको मैं देखता रहूँ तो देह रखना उत्तम ही है, पर ऐसा कहाँ संभवहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मोहि जानि अति अभिमान बस प्रभु कहेउ राषु सरीरहीं।
अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करिहि बबूरहीं ॥२॥

अर्थ—जिसका गुण 'नेति' (=इतना ही नहीं है जो हमने कहा) कहकर श्रुतियाँ निरंतर गातीहैं और जिसे पवन और मनको जीतकर एवं मन और इन्द्रियोंको निरस (रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श पंचविषयोंसे विरक्त) करनेपर मुनिलोग कभी कहीं ध्यानमें पातेहैं, वही मेरे नेत्रोंका विषय हुआ। अर्थात् मुझे प्रत्यक्ष देखनेको मिला। * मुझे अति अभिमानवश जानकर, हे प्रभो! आपने शरीर रखनेको कहा। ऐसा कौन शठ होगा जो हठपूर्वक कल्पवृक्षको काटकर उससे बबूरकी बारी बनायगा अर्थात् उससे बबूलको रूँधेगा।

नोट—प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान ये पंच प्राण वा पंच पवन कहलातेहैं। प्राण=वायु। पाँचों पवनोंको ब्रह्माण्डपर चढ़ा-लेना पवनको जीतना कहलाताहै। मनको एकाग्र करलेना मनको जीतना कहाजाताहै। मन 'जिति' और 'निरस करि', दोनोंके साथ लगताहै। विषयोंसे विरक्त होना मनका निरस होनाहै, यथा—'रे मन अंग सों निरस ह्वै सरस रामसों होहि। भलो सिखावन देतु है निसि-दिन तुलसी तोहि'।

टिप्पणी १—"जिति पवन मन०" इति। पवन, मन, गो और ध्यान को क्रमसे कहा; क्योंकि प्रथम जब पवनको जीततेहैं तब मनको जीता जाताहै और मनको जीतलेतेहैं तब इन्द्रियाँ विषयरससे रहित होतीहैं। जब पवन, मन और इन्द्रियाँ जीतलीजातीहैं तब ध्यान लगताहै। तात्पर्य कि जिस प्रभुका नाम मुनियोंको दुर्लभ है, जिसके गुण वेदोंको दुर्लभ हैं और जिसका ध्यान योगियोंको दुर्लभ है, वही मुझको साक्षात् प्राप्तहै। ['मुनि ध्यान कबहुक पावहीं'। यथा—'जे हर हियनयनन्हि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ'। जब शंकरजीका यह हाल है तब मुनियों की क्या कहीजाय।] पवन मन दोनों एकसाथ जीते जातेहैं अतः इन

* 'नेतीत्युक्त्वा गुणान् यस्य गायन्ति श्रुतयः सदा। विजित्य पवनं चेतो नीरसानीन्द्रियाणि च ॥ १ ॥ कृत्वा लभंते मुनयो ध्याने यद्दर्शनं क्वचित्। स एव प्रभुरस्माकं बभूवाद्याक्षिगोचरः ॥ २ ॥'—(धनञ्जय संहिता)। अर्थ छन्दसे मिलताहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दोनोंको संग रखा, यथा—'पवनो बध्यते येन मनस्ते नैव बध्यते। मनस्तु बध्यते येन पवनस्तेन बध्यते'। अर्थात् जिससे पवन बाँधा जाताहै उसीसे मन बाँधा जाताहै और जिससे मन बाँधा जाताहै उसीसे पवन बाँधा जाताहै। पुनः, यथा—'दुग्धांबुवत्सम्मिलितावुभौ तौ तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ हि। यतो मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्तिः यतो मरुत्तत्र मनः प्रवृत्तिः'॥ इति हठप्रदीपे ॥ अर्थात् मन और पवन दोनों दूध और पानीकी तरह मिलेहुएहैं, दोनोंका कार्य एकही है, क्योंकि जहाँ मन है तहाँ पवनकी पहुँच है और जहाँ पवन है तहाँ मनकी पहुँच है।

२—'मोहि जानि अति अभिमान बस०'। (क) प्रथम प्रभुने बालिको अति अभिमानी कहा, यथा—'मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना'। इसीपर बालि यह कहरहाहै कि 'मोहि जानि अति००'। (ख)—'प्रभु' सम्बोधनका भाव कि आप समर्थ हैं मेरे शरीरको अचलकर रखसकतेहैं।

"काटि सुरतरु बारि करिहि बबूरहीं"

पं० रामकुमारजी—अन्तसमय भगवद्-प्राप्ति होना कल्पवृक्षके समान है; क्योंकि भगवान् चारों फलोंके दाता हैं। उनसे तनकी अचलता लेना यही कल्पवृक्षसे बबूरका रूँधना है। तनको बबूर कहा क्योंकि यह बबूरके समान दुःखदाता है, कर्मरूपी काँटोंसे भरा हुआहै? कल्पवृक्षसे बबूर रूँधना शठता है। अतः कहा कि कौन शठ ऐसा करेगा? यहाँ यह शंका होतीहै कि "बालि तो मुक्ति चाहता नहीं, वह तो जन्म जन्ममें रामपदानुराग चाहताहै, तब वह यह तन क्यों नहीं रखता? इसी तनमें अनुराग करे!" इसका समाधान यह है कि प्रभुने बालि-वधकी प्रतिज्ञा कीथी, इसीसे वह इस तनको रखना नहीं चाहता। (भक्त प्रभुकी प्रतिज्ञाकी रक्षा करतेहैं जैसे प्रभु भक्तकी प्रतिज्ञाकी रक्षा करतेहैं)

मा० म०—संदर्भ यह कि आप सुरतरुरूप परधाम देनेमें डरतेहैं और बबूरवत् इस शरीरको रखनेको कहतेहैं, तो अब मैं यही माँगताहूँ कि वह मत दीजिए।

छंद ॥ अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर माँगऊँ।
जेहि जोनि जन्मौं कर्मबस तहँ रामपद अनुरागऊँ ॥३॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए।
गहि बाह सुर-नर-नाह आपन दास अंगद कीजिए ॥४॥

अर्थ—हे नाथ! अब मुझपर करुणाकरके देखिए और जो वर माँगताहूँ उसे दीजिए। कर्मके वश जिस योनिमें मेरा जन्म हो वहाँ रामपदमें प्रेम करूँ। हे प्रभु! हे कल्याणदाता! यह मेरा पुत्र विनय और बलमें मेरेही समान है इसकी बाँह पकड़ लीजिए, (अर्थात् मैं इसे आपको सौंपताहूँ) और, हे सुरनर नाह! अंगदका हाथ पकड़कर इसे अपना दास बनाइए।

टिप्पणी—१ "अब करि करुना बिलोकहु" के भाव—(क) आपने मुझसे शरीर रखनेको कहा इससे पायागया कि मुझपर आपकी कृपादृष्टि नहीं है; अब कृपादृष्टि कीजिए। (ख)—मैं आपके आश्रितसे लड़ा, आपको दुर्वचन कहे; ये अपराध क्षमाकीजिए। (ग)—बालिने रामजीके नेत्र अरुण देखे, यथा—'अरुन नयन सर चाप चढ़ाए'। इससे जाना कि मुझपर रामजी क्रुद्ध हैं। अतएव कहा कि अब करुणावलोकन कीजिए अर्थात् मुझपर क्रोध न कीजिए। २—"देहु जो बर माँगऊँ"। अर्थात् जो आपने देनेको कहा—'अचल करौं तन'—वह मुझे नहीं चाहिए उसके बदलेमें जो वर मैं माँगताहूँ वह दीजिए। ३—कृपादृष्टि कराके तब रामपदानुराग माँगा क्योंकि विना रामकृपा के रामपदमें अनुराग नहीं होता।

४—(क) 'यह तनय मम सम बिनय बल०', अंगदकी यह बड़ाई करनेका भाव यह है कि यह आपका कार्य करने योग्य है। 'कल्याणप्रद प्रभु' का यह भाव है कि आप इसका कल्याण करें, आप कल्याण करनेको समर्थ हैं। (ख)—'सुरनरनाह' अर्थात् आप देवता और मनुष्य सबके रक्षक हैं, इसकीभी रक्षा कीजिए। 'सुर नर'को कहा, असुरको न कहा, क्योंकि असुरोंको मारकर सुरनरकी रक्षा करतेहैं। पुनः भाव यह कि सुरनर आपकी सेवाकरतेहैं तब बिचारा अंगद क्या है जो सेवा करेगा; पर मेरे वर माँगनेसे इसे अपना दास बनाकर अपने साथ सेवामें रखिए। अभिप्राय यह कि सुग्रीवके साथ (अर्थात् उसकी सेवामें) यह न रहे।

२—इस प्रसंगमें वालिके अनेक गुण कहे हैं—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१ शूरता—सुनत बालि क्रोधातुर धावा

२ युद्धमें निपुणता { भिरे उभौ बाली अति तर्जा
मुठिका मारि महाधुनि गर्जा

३ बल—मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा

४ धैर्य—पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे

५ भक्ति—पुनि २ चितइ चरन चितदीन्हा

६ ज्ञान—सुफल जनम माना प्रभुचीन्हा

७ बचन चातुरी { 'धर्महेतु अवतरेहु गोसाईं' से 'सुनत राम अति कोमल बानी' तक

८ पाण्डित्य— { 'जन्म२ मुनि जतन कराहीं' से 'अस कवन सठ०' तक

९ बुद्धि— { 'अब नाथ करि करुना०' से 'गहि बाह सुरनर नाह००' तक

१० सावधानता—"राम चरन दृढ़ प्रीति करि००"

११ भाग्य—राम बालि निज धाम पठावा

१२ प्रजापालकता—'नगर लोग सब ब्याकुल धावा'।

नोट—१ 'यह तनय' पदसे जनाया कि बालिके पृथ्वीपर गिरनेपर तुरतही अंगद वहाँ पहुँचगयाथा, रामजीका उत्तर नहीं समाप्त होपायाथा। २—'गहि बाँह' में भाव यह कि बाँह गहेकी लाज सबको होतीहै। 'बाँह गहेकी लाज' मुहावरा है। जैसा दोहावलीमेंभी कहा है—"तुलसी तृन जलकूल को निरबल निपट निकाज। कै राखै कै सँग चलै बाँह गहेकी लाज॥ ५४४॥" बाँह पकड़लेनेसे फिर इसकी बराबर रक्षा करना उनका कर्त्तव्य होजायगा। बाँह पकड़ना ही शरणमें लेनाहै। पुनः, इसमें यह भी भाव है कि सुग्रीवके बाद इसीको राज्य मिले।

राम-चरन दृढ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमनमाल जिमि कंठ ते गिरत न जानै नाग॥१०

अर्थ—श्रीरामजीके चरणोंमें दृढ़ प्रीति करके बालि ने इस प्रकार देह त्याग दिया जैसे हाथी अपने गलेसे फूलकी मालाका गिरना न जाने। अर्थात् बालिको तनत्याग समय दुःख न हुआ।

टिप्पणी १—'दृढ प्रीति' इति। जब सबकी ममता त्यागकर राम-पदारविन्दमें चित्त लगे तब प्रीति दृढ़ कहीजाती है। बालिने प्रथम राम-चरणमें अनुराग माँगा, पीछे पुत्रको सौंपा। पुत्रके स्नेहमें चित्तकी वृत्ति चलीगईथी। उसे वहाँसे खींचकर पुनः रामचरणमें लगाया, यही दृढ़ प्रीति करना है। यथा—'जननी जनक बंधु सुत दारा। तन धन भवन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुहृद परिवारा ॥ सबकी ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँधि बरि डोरी ॥' २—रामपदमें प्रेम करनेसे जन्म मरणका क्लेश नहीं व्यापता; इसीसे बालिको मरणकालका दुःख न हुआ। देह सुमनमाल और जीव हाथीहै।

गोस्वामीजी रामजीके साथ बालि और सुग्रीवका व्यवहार समान वर्णन करतेहैं—

सुग्रीव	बालि
१ जब सुग्रीव राम कहँ देषा	पुनि उठि बैठ देषि प्रभु आगे
२ अतिसय जन्म धन्य करि लेखा	सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा
३ जोरी प्रीति दृढ़ाइ	चरन दृढ प्रीति करि
४ बारबार नावै पद सीसा	पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा
५ प्रभुहि जानि मन हरष कपीसा	सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा
६ अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती	अब नाथ करि करुना बिलोकहु
सब तजि भजन करौं दिनराती	देहु यह बर मागऊँ। जेहि जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ रामपद अनुरागऊँ
७ सब प्रकार करिहौं सेवकाई	आपन दास अंगद कीजिए
८ सुग्रीव रामजीके शरण हुआ	बालि शरण हुआ - 'अंतकाल गति'

[९—(प्र०)—वहाँ 'जोरी प्रीति दृढ़ाइ' में दोहा है, वैसेही यहाँ 'राम चरन दृढ़ प्रीति कर' में दोहा है। वहाँ 'मेली कंठ सुमनकी माला', वैसेही यहाँ इन्द्रदत्त माला। वहाँ सुग्रीवके शरीरकी पीड़ा गई और यहाँ मन राम चरणमें है इससे शरीरका दुःख कहाँ ?]

इसीसे रामजीनेभी दोनोंके साथ समान व्यवहार किये—

१ परसा सुग्रीव सरीरा	बालि सीस परसेउ निज पानी
२ सुनि सेवक दुष दीनदयाला	सुनत राम अति कोमल बानी
३ जेहि सायक मारा मैं बाली। तेहि सर हतौं मूढ़ कहँ काली ॥	'सुनु सुग्रीव मैं मारिहौं बालिहि एकहि बान'

४ दोनोंके अर्थ रामजीने प्रतिज्ञा छोड़ी, यथा—

'भय दिषाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव'।	अचल करउँ तन राखहु प्राना

५ दोनोंको राज्य दिया—राज दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुवराज।

६ सुग्रीवको किष्किंधा-धाम दिया बालिको निज धाम दिया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार 'समदरसी रघुनाथ' यह वचन चरितार्थ हुआ।

प्र०—वाल्मीकीयमें इन्द्रदत्तमाला सुग्रीवको देकर बालि मरा है, उस बातकोभी यहां गुप्त रीतिसे गोस्वामीजीने जनादियाहै।

राम बालि निज धाम पठावा।
नगर लोग सब व्याकुल धावा॥ § १० (१)
नाना बिधि बिलाप कर तारा।
छूटे केस न देह सँभारा॥ ,, (२)

अर्थ—रामचन्द्रजीने बालिको 'निजधाम'को भेज दिया। नगरके सब लोग व्याकुल होकर दौड़े। तारा अनेक प्रकारसे विलाप कररही है, बाल छूटेहुएहैं, देहका सँभाल नहीं है।

टिप्पणी १—'निज धाम'इति। बालिने रामदर्शन पाया, रामबाणसे मृत्यु पाई और रामचरणमें दृढ़ प्रीति करके तन त्याग किया;अतः प्रभुके 'निजधाम'को गया। अध्यात्म २।७१ में लिखतेहैं कि बालि रघुकुलश्रेष्ठ रामजीके बाणसेमरा और उनके शीतल और सुखद करकमलसे उसका स्पर्श हुआ इससे वह तुरंत वानरदेह छोड़कर परमहंसोंकोभी दुर्लभ परम-पदको प्राप्त हुआ। और उसके पहले, श्लोक ७० में, लिखाहै कि वानरदेह छोड़कर तुरंत इन्द्रकी देहत्वको प्राप्त हुआ, यथा—"त्यक्त्वा तद्वानरं देहममरेंद्रो भवत्क्षणात् ॥७०॥ बाली रघूत्तमशराभिहतो विमृष्टो रामेण शीतल करेण सुखाकरेण। सद्योविमुच्य कपि देहमनन्यलभ्यं प्राप्तः परं परमहंसगणैर्दुरापम् ॥ ७१ ॥"—[पर बालिके वचन हैं कि मैं आपके उत्तम पदको जाताहूँ इससे 'निजपद' भगवान्‌काही लोक हुआ। वाल्मीकिमें प्रभुने तारासे कहाहै कि उसे स्वर्ग मिला। यहाँ प्रभु सामने खड़ेहैं इससे 'निजधाम'से हमें साकेत, वा वैकुण्ठ लोक ही जाना अधिक ठीक जानपड़ताहै। अध्यात्मका मत लेना आवश्यक नहीं है।]—मतभेदके कारण 'निज धाम' पद दियागया जिसमें सर्वमतकी समाई है।

२—'नाना बिधि'-वा०सर्ग २० में एवं अन्य रामायणोंमें जो विलाप है वह इस पदसे सूचित कर दिया है। ३—'छूटे केस न देह सँभारा' यह शोककी दशा है। शोकमें ज्ञान,धीरज,और लज्जा ये तीनों नहीं रह जाते, यथा—'सोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ज्ञान न धीरज

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लाजा'। ताराके ज्ञान न रहा इसीसे नाना बिधिसे विलाप करती । धीरज न रहा इसीसे देहका सम्हार नहीं; और, लाज न रही इसीसे केश छूटे हुए हैं।

नोट—१—नगरके लोगोंके व्याकुल हो दौड़नेका कारण यहहै कि राजा मारा गया, हमभी न मारे जायँ। वा० स०१६ में विस्तारसे यह बात लिखीहुईहै। २—'नाना बिधि बिलाप' इति। वाल्मीकिजी लिखतेहैं कि वह कुररी पक्षीकी तरह विलाप कररहीथी—'क्रोशन्तीं कुररीमिव'। जैसा सीताजीके विषयमें कहाहै 'बिलपत अति कुररी की नाईं"। ताराका विलाप सर्ग २० में है वही सब यहाँ 'नाना बिधि' से जनायाहै।*

'तारा'—सुषेण वानरकी कन्या है। बालिकी स्त्री है। बालिने इसके विषयमें (वाल्मीकीयमें) सुग्रीवसे कहाहै कि 'वह सूक्ष्म विषयोंके निर्णय करने तथा नाना प्रकारके उत्पातसूचक चिह्नको जाननेमें अत्यन्त निपुण है। वह सर्वज्ञा है। जिसकामकेलिए वह अच्छा कहदे वह अवश्यही सिद्ध होताहै, उसकी सम्मति कभी विपरीत नहीं होती'। बालिने पश्चात्ताप किया कि मैंने उसका कहा न माना, इसीसे मारागया।

यह पंचकन्याओंमेंसे एक है, जिनका प्रातःकाल स्मरण माङ्गलिक और बड़े माहात्म्यका मानाजाताहै। वे पंचकन्यायें ये हैं—'अहल्या द्रौपदी तारा कुन्ती मंदोदरी तथा। पंचकन्या स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्॥' पुराणोंके अनुसार ये पाँचों स्त्रियाँ परमपवित्र मानीजातीहैं।

तारा बिकल देखि रघुराया।
दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही माया॥ § १० (३)

अर्थ—ताराको व्याकुल देखकर रघुनाथजीने उसे ज्ञान दिया और माया हरली।

---

* क्या आज मुझे अपराधिनी समझकर नहीं बोलरहेहो? उठो, अच्छे बिछौनेपर सोओ। राजा पृथ्वीपर नहीं सोते। वसुन्धराधिप होनेसे आज आपको पृथ्वी बहुत प्रिय है जिससे मुझे छोड़कर उसपर पड़े हो। आज मैं बहुत दुःखी हूँ। अंगदका क्या हाल होगा, उसे आश्वासन दो, उसका सिर सूँघो। आप अपनी इन अनेक सुंदरियोंको देखिए।..। इत्यादि। इसी तरह सर्ग २३ मेंभी विलाप है। पाठक वहाँ देखलें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी १—'बिकल देषि' का भाव कि रामजी कृपालु हैं, स्त्रीकी व्याकुलता देख दया आई अतः उसपर कृपा की। ज्ञानसे शोक दूर होताहै इसीसे ज्ञान दिया। यथा—'सोक निवारेउ सबन कर निज विज्ञान प्रकास'। जैसे वशिष्ठजीने राजाके मरनेपर रानियोंकी व्याकुलता विज्ञान द्वारा दूरकीथी। २—प्रथम जब ज्ञान होजाताहै तब माया दूर होतीहै और मायाके हटनेपर भक्ति होतीहै, यथा 'होइ बिबेक मोह भ्रम भागा। तब रघुबीर चरन अनुरागा'। रामजीके चरणोंमें अनुराग होना भक्ति है, मोहभ्रमका भागना मायाका दूरहोना है और विवेक होना ज्ञान है। रामजीने ताराको ज्ञान दिया तब माया गई और तत्पश्चात् उसने भक्ति माँगी।

पं०—प्रभु दीनदयाल हैं, उन्होंने सोचा कि मेरे सन्मुखभी इसे अज्ञान बनारहे तो योग्य नहीं, इसीसे ज्ञान देकर उसका अज्ञान हरण किया।

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम सरीरा॥ ऽ १० (४)
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा।
जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥ ,, (५)

अर्थ—पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और पवन इन पंच तत्त्वोंसे यह अत्यन्त अधम शरीर रचागयाहै। वह शरीर प्रत्यक्ष तेरे सामने सोयाहुआहै और जीव नित्य है, तो तुम किसकेलिए रोरहीहो। †

† "किं भीरु शोचसि व्यर्थं शोकस्याविषयं पतिम्। पतिस्तवायं देहो वा जीवो वा वदतत्त्वतः॥ १३॥ पंचात्मको जड़ो देहस्त्वङ्मांसरुधिरास्थिमान्। कालकर्म गुणोत्पन्नः सोप्यास्तेद्यापिते पुरः॥ १४॥ मन्यसे जीवमात्मानं जीवस्तर्हि निरामयः। न जायते न म्रियते न तिष्ठति न गच्छति॥१५॥ न स्त्री पुमान् वापंढो वा जीवः सर्वगतोऽव्ययः। एकएवाऽद्वितीयोयमकाशवदलेपकः॥ नित्यो ज्ञानमयः शुद्धः सकथं शोकमर्हति॥१६॥"—(अध्यात्म ३)। अर्थात् हे भयशीले। व्यर्थ क्यों शोच करतीहै, तेरा पति शोक करने योग्य नहीं। बताओ कि तुम्हारा पति कौन है, यह देह या जीव? जड़ देह तो पंचतत्त्वात्मक है। त्वचा, मांस, रुधिर, अस्थिवाला, काल कर्म और गुणसे उत्पन्न यह शरीर तेरे आगे है। यदि जीवात्मा को पति मानतीहै तो जीव तो निर्विकार है, न पैदा होता है न मरताहै, न खड़ा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी १-'छिति जल पावक...'इति। शरीरकी रचना इसी क्रमसे होतीहै जैसा यहां लिखाहै। प्रथम माताका रज पृथ्वी तत्व है, पिताका वीर्य जलतत्व है। इनसे पिण्ड बनना अग्नि तत्व है, पोल होना आकाश है और प्राण आना वायु है—भागवतके तृतीय स्कंधमें इसका उल्लेख है। * २—'अति अधम' कहनेका भाव कि सहज स्वरूप

होताहै न चलताहै, न स्त्री है न पुरुष न नपुंसक; वह तो सर्वगत है, अविनाशी है, एकही है, अद्वितीय और आकाशकी तरह निर्लेप है; वह नित्य है, ज्ञानमय और शुद्ध है। तब उसकेलिए कैसे शोक करना योग्य है।

वाल्मीकि रा० में प्रथम हनुमान्‌जीका समझाना लिखाहै। फिर बालिप्राण-भंग होनेपर श्रीरामचन्द्रजीने समझायाहै। सर्ग २४ में श्रीरामजीका उपदेश इस प्रकार है।—

मा वीरभार्ये विमतिं कुरुष्व लोको हि सर्वो विहितो विधात्रा।
तं चैव सर्वं सुखदुःखयोगं लोकोऽब्रवीत्तेन कृतं विधात्रा॥
त्रयोऽपिलोका विहितं विधानं नातिक्रमन्ते वशगा हि तस्य।
प्रीतिं परां प्राप्स्यसि तां तथैव पुत्रश्च ते प्राप्स्यति यौवराज्यम्॥
धात्रा विधानं विहितं तथैव न शूरपत्न्यः परिदेवयन्ति।
आश्वासिता तेन महात्मना तु प्रभावयुक्तेन परंतपेन।'...४४॥

अर्थात् 'हे वीरपत्नी! तुम मरनेकी इच्छा न करो। लोकको और सभीको विधाताने बनायाहै। उसी विधाताने सबके साथ सुख दुःखका संयोग करदिया है। ऐसा वेदोंका उपदेश है। त्रयलोक्यवासी निश्चित विधानका अतिक्रमण नहीं करसकते क्योंकि सभी उसके अधीन हैं। तुम्हारा पुत्र युवराज होगा और तुम पहलेकेही समान अत्यन्त प्रसन्न होगी। विधाताका ऐसाही विधान है। वीरोंकी स्त्रियाँ रोती नहीं। प्रभावशाली परन्तप महात्मा रामचन्द्रके समझाने पर वीर पत्नी ताराने विलाप करना छोड़ दिया।'—मानसकथित उपदेश अध्यात्मके उपदेशसे मिलताजुलताहै।

* यथा—"कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये। स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतः कणाश्रयः॥१॥ कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम्। दशाहेनतु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम्॥ २॥ मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाहूङ्घ्र्याद्यङ्गविग्रहः। नखलोमास्थिचर्माणि लिङ्गच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः॥ ३॥ चतुर्भिर्धातवः सप्त पञ्चभिः क्षुत्तृडुद्भवः। षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे॥ ४॥"—(अध्याय ३१)। अर्थात् जीवके पूर्वकृत कर्मोंका प्रवर्त्तक ईश्वरही है। जीव उन्हीं कर्मोंके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उत्तम है, कारण शरीर मध्यम है, लिङ्गशरीर अधम है और पंचभौतिक शरीर अति अधम है जो हाड़, मांस, रुधिर, और त्वचासे युक्त है।

३—'प्रगट सो तन तव आगे सोवा'। 'प्रगट' कहनेका भाव कि तन और जीव दो पृथक् वस्तु हैं। इनमेंसे जीव प्रकट नहीं है, तन प्रगट है। इसके वास्ते क्यों रोतीहो, यह तो सामनेही है। रहा जीव, सो नित्य है, उसका नाश नहीं, जिसका नाश नहीं उसकेलिए रोना कैसे उचित है।

नोट १—अर्जुनको उपदेश करतेहुए भगवानश्रीकृष्णने श्रीमद्भगवद्गीताके दूसरे अध्यायमें ऐसाही कहाहै।—

"अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पंडिताः ॥११॥...
न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०॥"

अर्थात् जिनका शोक न करनाचाहिए तू उन्हींका शोक कररहाहै और ज्ञानकी बातें करता है! किसीके प्राण रहें चाहे जायँ, ज्ञानी उनका शोक नहीं करते। यह (आत्मा जीव) न तो कभी जन्मताहै न मरताही है। ऐसाभी नहीं है कि यह एकबार होकर फिर होनेका नहीं; यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है, एवं शरीरका वध होजाय तो भी यह मारा नहीं जाता। इत्यादि। श्लोक ३० तक जीव और शरीरके विषयमें उपदेश है।

२—'यहाँ छिति जल पावक गगन समीर' यह क्रम है और सुन्दरकांड § ५८ (२) में 'गगन समीर अनल जल धरनी' यह क्रम दियाहै। भेदका कारण यह है कि सुन्दरकांडमें इन पाँचोंतत्त्वोंकी उत्पत्तिके विचारसे जैसा उत्पत्तिका क्रम है वैसाही कहागया और यहाँ

कारण शरीर-धारणकेलिए पुरुषके बीजका आश्रय करके स्त्रीके गर्भमें प्रवेश करता है। पुरुषका वीर्य स्त्रीके गर्भमें जाकर एक रात्रिमें स्त्रीके रजमें मिलताहै; पाँच रात्रिमें पानी के बुल्लेके समान गोल होजाताहै, दश दिनमें बेरके फलके समान बड़ा और कठिन होजाताहै, फिर एक महीनेमें अण्डेके सदृश मांसपिण्ड बनजाता है। महीने भरके बाद उसमें सिर निकलताहै, दोमासमें बाहु, चर्म और लिंग, और उससे छिद्रका प्रकाश होताहै। चार मासमें सात धातुएँ प्रकट होतीहैं; पाँचवें में भूखप्यासकी उत्पत्ति, छठेमें जरायु (झिल्ली) से आवृत्त होकर माताकी कोखमें दक्षिण ओर घूमने लगताहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तत्त्वोंकी उत्पत्ति नहीं कहना है वरन जिस क्रमसे शरीरकी रचनामें ये तत्त्व काममें आए वह क्रम रक्खागया क्योंकि यहाँ रचना कहरहेहैं—'पंचरचित...'।

प्र०—'अति अधम' से सूचित किया कि सहज स्वरूप उत्तम है, सूक्ष्म (शरीर) मध्यम और लिङ्ग (शरीर) तथा पंचभौतिक शरीर अति अधम है।

उपजा ज्ञान चरन तब लागी।
लीन्हेसि परम भगति बर मागी॥ § १० (६)
उमा दारु-जोषितकी नाईं।
सबहि नचावत राम गोसाईं॥ ,, (७)

अर्थ—जब ज्ञान उत्पन्न हुआ तब चरणोंसे लगी और वर माँगकर परमभक्ति लेली। (शिवजी कहतेहैं कि) हे उमा! राम गोसाईं सबको कठपुतलीकी तरह नचातेहैं अर्थात् सब प्राणी रामजीकी इच्छाके अनुकूल कार्य्य करतेहैं।

टिप्पणी १—ताराको उसी क्षण ज्ञान उत्पन्न होगया यह रामजीकी वाणीका प्रभाव है। ज्ञान होनेपर उसने सहगमन के विचारको त्याग भक्तिकी प्राप्तिका उपाय श्रेयस्कर जाना।—"जहँ लगि साधन वेद बखानी। सबकर फल हरिभगति भवानी॥" भक्तिके विना ज्ञानकी शोभाभी नहीं, यथा—'सोह न रामप्रेम बिनु ज्ञानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू'। रामजीने ताराको ज्ञान अपनी ओरसे दिया और भक्ति उपाय करनेसे मिली। इससे सूचित हुआ कि ज्ञानसे भक्ति दुर्लभ है, यथा—'प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही'।

[२ गौड़जी—तारा पहले अत्यन्त विकल हो गयी। शोकसे ऐसी संतप्त हो गयी कि वह बालिके शवके साथ चितामें जल जानेको तैयार थी। उसेभी वैसाही कच्चा वैराग्य हो गया जैसा कि श्मशान-वैराग्य हुआकरताहै और जैसा सुग्रीवको बालिसे भिड़नेके पहले होगयाथा। उस प्रसंगमें बालिको परमहित मानकर वह उसका वध नहीं चाहताथा, परन्तु "नट मर्कट इव" नचानेवाले भगवान्ने उसे प्रवृत्त किया और यथोचित ज्ञान दिया। यहाँभी तारा महापतिव्रता होगयी, परन्तु वस्तुतः उसे अनाथा विधवा रहनेमें भय था। इसीलिये

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जब ज्ञान हुआ तब 'तैं पुनि होब सनाथ' वा 'तौ पुनि होब सनाथ' का स्मरण करके चरणोंपर गिरी और पहले उसने 'वर' (पति) माँगा। अर्थात् सुग्रीवको वरणकरनेकी आज्ञा माँगी। इससे, परम भागवत, राम सखा, पार्षद, पारिवारिकको वरणकरके सहजही उसने "परम भक्ति ले ली।" अर्थात् उसकी अधिकारिणी होगयी। अन्वय यों है—'वर माँगि (कै), परम भक्ति लीन्हेसि।" रामसखा को वरण करनाही उसे अधिकारिणी बनाता है, जैसे राजाको वरते ही भिखारिणीभी रानी होजातीहै। भगवत्प्रेरणानुकूलही सब काम हुआ। इस प्रसंगमेंभी ठीक वही बात कही है कि रामजी "दारुयोषितकी नाईं" सबको नचातेहैं।]

३—यहाँ 'दारु जोषित'का उदाहरण दिया और पूर्व कहाथा कि 'नट मर्कट इव सबहि नचावत'। मर्कटके दृष्टान्तसे जगत्को चैतन्य कहा और दारुयोषितके दृष्टान्तसे जगत्को जड़ कहा। एकही (जगत्) को जड़ और चैतन्य दोनों कहना विरुद्ध है। पर तनिक ध्यान देनेसे इसका समाधान होजाताहै। 'उमा दारुजोषितकी नाईं' यह शिववाक्य है। शिवजीका ज्ञानघाट है, वे ज्ञानी हैं और ज्ञानीके मतानुसार जगत् जड़ है; अतएव शिवजीने जड़का दृष्टान्त दिया। और, 'नट मरकट इव सबहिं नचावत। राम खगेस वेद अस गावत', यह भुशुण्डिवाक्य है। इनका उपासनाघाट है। ये उपासक हैं और उपासकोंके मतसे जगत् चैतन्य है; इसीसे भुशुण्डिजीने चैतन्यका दृष्टान्त दियाहै। सबको नचातेहैं, यह क्रीड़ा है; इसीसे दोनों जगह 'राम'नाम दिया—रमुक्रीड़ायाम्।—[नोट १—सुग्रीव पुरुष हैं उनके विषयमें पुल्लिग 'नट मर्कट' का दृष्टान्त दियाथा और तारा स्त्री है, इसके विषयमें स्त्रीलिंग 'योषित' का दृष्टान्त दिया। पां०—यहाँ अद्वैतका प्रतिपादन है कि एक ईश्वर ही सत्य है और सब मिथ्या।]४-"गोसाईं"इति। कठपुतलीका नचानेवाला छिपकर नचाताहै। रामजी गोसाईं अर्थात् समस्त इन्द्रियोंके स्वामी हैं और अन्तर्यामी रूपसे सब इन्द्रियोंके प्रेरक हैं। प्रेरणा करके सबको कठपुतलीकी तरहसे नचातेहैं, यथा—"सारद दारुनारिसम स्वामी। राम सूत्रधर अंतरजामी'।

श्रीमद्भागवत में भी ऐसाही कहाहै—'यथा दारुमयी योषिन्नृत्यते कुहकेच्छया। एवमीश्वर तंत्रोयमीहते सुखदुःखयोः॥' अर्थात् जैसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नटकी इच्छाके अनुकूल कठपुतली नाचतीहै वैसेही ईश्वराधीन जीव सुखदुःखमें चेष्टा करताहै।

पं० रा० व० श०—कठपुतलीमें कुछ सामर्थ्य नाचनेकी नहीं है पर उसका नचानेवाला जो पर्देकी आड़में छिपाबैठाहै उसे तार पकड़ेहुए नचाताहै, वह तारभी दूसरेको दिखाई नहीं देता। नचानेवाला अपनी इच्छानुसार नचाताहै। वैसेही कर्मरूपी तार पकड़ेहुए आप नचातेहैं। जीव परतंत्र है रामजी स्वतंत्र हैं। चेतन होतेहुएभी जीव प्रभुकी इच्छा विना कुछ कर नहीं सकता, न अपनेसे यत्न करके कुछ पासकता है, प्रभुही कृपा करें तो ज्ञान, भक्ति सब कुछ मिलसकताहै।

मा० म०—१—"जब ताराको ज्ञान प्राप्त हुआ तब श्रीरामचन्द्रजी-के चरणपर गिरी और पहिले भक्ति तदनन्तर 'बर' (पति) माँगा। यदि कोई कहें कि यह अर्थ असंगत है तो इसीकी पुष्टताकेलिए आगे कहतेहैं कि 'उमा दारु जोषित की नाई।०'। यदि तारा केवल भक्तिही माँगती तो इस चौपाईके कहनेकी आवश्यकता न थी, परन्तु उसने पतिभी माँगा अतएव शिवजी कहतेहैं कि—हे उमा! देखो। इन्द्रियपति श्रीरामचन्द्र इन्द्रियोंको स्थिर वा चंचल जैसा चाहें करने-वालेहैं क्योंकि पहिले ताराने भक्ति मांगी थी परन्तु इन्द्रियोंके वश होकर पतिभी माँगना पड़ा। २—(मयूख)—श्रीरामचन्द्रजीने शापके डरसे ताराको ज्ञान देकर मोह छुड़ाया और पतिके बदले पति दिया अर्थात् सुग्रीवको ताराका पति बनादिया; बालिका कहनाभी पूरा हो गया।—'तौ पुनि होब सनाथ' में देखिए।‡

‡ ऐसाही अर्थ §७ में दीनजीने कियाहै संभवतः मयङ्कके आधारपरही। पर यहाँ वे 'भगत बर' पाठ देतेहैं। यह पाठ संपादकको किसी प्राचीन पोथीमें अबतक नहीं मिला। दीनजी जो भाव लिखतेहैं वह मयङ्क और मयूखमें होचुकाहै पर वहाँभी पाठ 'भगति' है। दीनजी लिखतेहैं कि—"कुछ लोग प्रथम अर्द्धालीके दूसरे पदमें 'भगति-वर' पाठ करके 'भक्तिका वरदान माँगलिया' ऐसा अर्थ करतेहैं, पर हमें वह पाठ नहीं जँचता क्योंकि तारा पंचकन्या है। उसका किसी समय विधवा रहना हमारे शास्त्रानुकूल विहित नहीं है। अतएव उसे तुरत सुग्रीवको वरन करना ही पड़ा। 'भगत-वर' ही पाठ माननेसे पार्वतीजीकी शंकाभी उचित जानपड़तीहै, नहीं तो वह व्यर्थसी होजायगी क्योंकि 'भक्तिका वरदान माँग लेना कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं है। 'भगत-वर' माँगनाही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा।
मृतक कर्म विधिवत सब कीन्हा॥ § १० (८)

अर्थ—तब (जब ताराका शोक दूर हुआ और सुग्रीवके वरणसे सहगमनका प्रश्न नहीं रहा) रामचन्द्रजीने सुग्रीवको आज्ञा दी और उसने विधिपूर्वक बालिका सब मृतक-कर्म किया।

टिप्पणी १—[नोट—आयसु देनेकी आवश्यकता यह है कि बालि-वधपर तारा आदिका विलाप देखकर सुग्रीवभी शोकनिमग्न होगए और उन्हें बहुत पश्चात्ताप हुआ। यहाँ तक कि उन्होंने आत्महत्या करलेने की इच्छा प्रकटकी—वा० स० २४ के प्रथम २३ श्लोकोंमें इनका शोक दिखायागयाहै।] जब रामजीने आज्ञादी तब सुग्रीवने मृतककर्म किए। २—विधिवत्से सूचित किया कि बालिकी क्रिया अंगदद्वारा कराई। पिताकी क्रिया पुत्र करे, यही विधि है। †

नोट—'विधिवत्' शब्दमें सब मृतकसंस्कारकी शास्त्रोक्त विधि जना दी। पुनः,जैसा राजाका संस्सार होना चाहिए उसेभी सूचित करदिया। वा० स० २५ में इसका कुछ उल्लेख है। शवको रत्नजटित पालकीपर नदीके तीर लेगये। रास्तेमें वानर रत्न लुटाते जातेथे। सब परिजन,

---

आश्चर्य्यमें डालनेवाली बात है कि जो तारा अभी बालिकेलिए रोरहीथी वही एकदम भूलकर सुग्रीवको वरण करनेकेलिए तैयर होगई। इस स्थानपर बालिका वह कथन स्मरण करना चाहिए जो उसने युद्धकेलिए प्रस्थान करते समय तारासे कहाथा।—'जौ कदाचि मोहिं मारहिं तैं पुनि होब सनाथ'—(नोट-'तैं'-पाठभी हमें कहीं नहीं मिलाहै)—इस दोहेके चौथे चरणका पाठ 'तौ पुनि होउँ सनाथ' करके इसका अर्थ 'तो फिर मैं सनाथ होजाऊँगा' लोग करतेहैं;पर वह संगत नहीं है क्योंकि 'पुनि' का यहाँपर कोई अर्थही नहीं लगता। यदि बालि एकबार कहीं 'अनाथ' से 'सनाथ' होचुका होता तो उसका यह कहना संगत होता अतएव यह पाठ माननेसे पद अशुद्ध ठहरताहै।

† 'ततः सुग्रीवमाहेदं रामो वानर पुंगवम्। भ्रातुर्ज्येष्ठस्य पुत्रेण यद्युक्त सांपरायिकम्॥ कुरु सर्वं यथान्यायं संस्कारादि ममाज्ञया। गत्वा चकार तत्सर्वं यथा शास्त्रप्रयत्नतः॥' (अध्यात्म स० ३)। अर्थात् बड़े भाईके पुत्रके द्वारा शास्त्रोक्त संस्कारादिकर्म को मेरी आज्ञासे करो, ऐसा रामचन्द्रजीने वानरश्रेष्ठ सुग्रीवसे कहा। तब सुग्रीवने जाकर सब कर्म शास्त्र-विधि से किया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्त्रियाँ और प्रजा रोतीहुई साथ थीं।...अंगदने सुग्रीवके साथ पिता को चितापर रक्खा, विधिपूर्वक अग्नि लगाई, चिताकी प्रदक्षिणा की। विधिपूर्वक संस्कार करके नदीके तटपर प्रेतको जल दिया गया। रामजीने सब प्रेत-कर्म करवाए। यह सब 'बिधिवत्' शब्दसे सूचित करदियाहै।*

"सुनि सेवक दुष दीनदयाला" से यहाँ तक
'बालि प्रान कर भंग' यह प्रसंग है।

'सुग्रीव-राज्याभिषेक'—प्रकरण

राम कहा अनुजहि समुझाई।
राज देहु सुग्रीवहि जाई॥ § १० (९)
रघुपति-चरन नाइ करि माथा।
चले सकल प्रेरित रघुनाथा॥ ,, (१०)

अर्थ—रामचन्द्रजीने भाई लक्ष्मणको समझाकर कहा कि जाकर सुग्रीवको राज्य दो। रघुनाथजीके चरणोंमें माथा नवाकर सब रघुनाथजीकी प्रेरणासे चले।

टिप्पणी—१ (क)—'समुझाई'से सूचित किया कि अंगदको युवराज करनेको कहा जैसा आगे स्पष्ट है—'राज दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुवराज'। युवराज बनानेमें यह समझाकर कहा कि—यदि अंगद को युवराज न करेंगे तो हमारी निन्दा होगी, लोग कहेंगे कि बालि अपना पुत्र इनको सौंप गया पर इन्होंने अंगदके साथ कुछ उसका उपकार न किया। दूसरे, यदि उसे युवराज न बनायेंगे तो सुग्रीव उसका निरादर करेंगे, उसे त्रास देंगे और युवराज करदेनेसे इसको हमारा कृपापात्र समझकर वह इसे सुखपूर्वक रक्खेगें।

* मा०म—रामचन्द्रजीने सुग्रीवको मृतककर्म विधिवत् करनेकी आज्ञा दी, यद्यपि यह अंगदको करना उचित था। कारण यह कि सुग्रीवको राज्य देनाहै अतएव इनको कृतपुत्र करके राज्य दिया और अंगदको यौवराज्य देकर राज-प्रबंधका सब भार दिया। इस अनुमतिमें राजनीति प्रच्छन्न है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—'चले सकल प्रेरित रघुनाथा'। बालिके मरनेसे सब वानर विकल हैं, इसीसे जब सुग्रीवको राज्य देनेकी आज्ञा दी और सबसे जानेको कहा तब सब गए। चरणोंमें प्रणाम करके चलनेका भाव कि सबके मनकी बात हुई, सबकी इच्छा थी कि अंगद युवराज बनाए जावें। वह इच्छा पूर्ण होते देख सब प्रसन्न हुए। इसीसे प्रणाम कर करके चले।—(बड़ोंको प्रणाम योंभी उचितही है, शिष्टता है।

३—'रघुपति'का भाव—(क) रघुवंशी धर्मात्मा और नीतिपर चलनेवालेहैं, ये उनके पति हैं। अतः इन्होंने वही किया जो धर्म है और नीति है—यह समझकर और प्रसन्न होकर सबने प्रणाम किया। (ख)—रघुवंशके पति अर्थात् रक्षक हैं; सुग्रीवको राज्य देकर अपने वंशकी तरह हम सबके वंशकीभी रक्षाकी—यह समझकर प्रणाम किया।

पां०, शिला—यहाँ रामजीका शीलनिधानगुण दरसाया। सुग्रीव से, वा उसके सन्मुख, न कहा कि अंगद युवराज होगा। सुग्रीवके बाद वही राजा होगा सुग्रीवका पुत्र राजा न होगा। (यहाँ 'समुझाई' पदसे अंगदके युवराज्यकाही लक्ष्य है। यहाँ गुप्त कहा; इसीसे कविनेभी उस बातको गोलमोल लिखा। आगे युवराज्य होनेपर स्पष्ट किया—मा० सं०)। रामजीका बड़ा संकोची स्वभाव है, यथा—'प्रभु गति देखि सभा सब सोची। कोउ न राम सम स्वामि सकोची"।

लछिमन तुरत बोलाए पुरजन बिप्र समाज।
राज दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुवराज॥ ११

अर्थ—लक्ष्मणजीने पुरजन और विप्रसमाजको तुरंत बुलाया। सुग्रीवको राज्य और अंगदको युवराज्य दिया।

नोट १—मा० त० भा०—लक्ष्मणजीको रामजीकेपास सेवाकेलिए जल्दी आनाहै इसीसे वहाँका काम उन्होंने जल्दी किया। पुनः, तिलककी साअतभी जल्दीकीथी। अतएव 'तुरत बुलाए'। २—पंजाबीजीका मत है कि तुरत बुलानेका भाव यह है कि जिसमें रात्रि न होनेपावे, दिनहीदिन सब कार्य करके लौटजायँ। किसीका मत है कि सबको इससे बुलाया कि सब जान लें कि सुग्रीवके बाद अङ्गदही राज्यका उत्तराधिकारी है। यहभी होसकताहै, पर विशेषतः यह रीतिही है कि राज्याभिषेकके समय सब बुलाएजातेहैं जो इस योग्य होतेहैं। पुनः, 'तुरत बुलाया' क्यों-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कि प्रभुकी आज्ञापालनमें विलंब करना सेवकको उचित नहीं। इससे आज्ञामें तत्परता दिखाई।

उमा राम सम हित जग माहीं।
गुर पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं ॥◊११ (१)
सुर नर मुनि सब के यह रीती।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥ ,, (२)

अर्थ—हे उमा! संसारमें रामसमान हित करनेवाला गुरु, पिता, माता, भाई और स्वामी कोई नहीं है। सुरनर मुनि सबकी यह रीति है कि स्वार्थकेलिए ये सब प्रीति करतेहैं।

☞ प्रथम चौपाईमें दो ही दो अक्षरके पद हैं, यह काव्य वैदर्भी-रीतिका कहाजाताहै कि जिसमें बड़े पद और बहुत समास न पड़ें।

टिप्पणी—१ रामजीको सबसे अधिक हितकारी कहा। फिर उसका कारण बतातेहैं कि सुर नर मुनि सभी स्वार्थवश प्रीति करते-हैं। 'सेवा लेत देत फल पलटे हानि लाभ अनुमानी', यह देवताओंकी रीति है। मुनियोंकी यह रीति है कि सेवा कराके पढ़ातेहैं। सुर मुनि-की यह बात है तब नर बेचारे किस गिनतीमें हैं। पर रामचन्द्रजी विना कारण कृपा करतेहैं—'कारन बिनु रघुनाथ कृपाला'। यह बात आगे कहतेहैं।—(सुग्रीवका हित करनेमें वस्तुतः कोई स्वार्थ राम-जीका न था जैसा पूर्व लिखाजाचुकाहै पर सबरी आदिने उसे महात्मा और दीन कहाथा इसीसे उसका हित किया क्योंकि आप तो दीनदयाल हैं। यही बात विनयसे स्पष्ट है।*

* 'अजहुँ आपने रामके करतब समुझत हित होइ।
कहँ तू कहँ कोसलधनी तोकों कहा कहत सब कोइ ॥१॥
रीझि निवाज्यो कबहि तूं कब खीझि दई तोहि गारि।
दर्पन बदन निहारि कै सुविचार मानि हिय हारि ॥२॥
बिगरी जनम अनेककी सुधरत पल लगै न आधु।
पाहि कृपानिधि प्रेम सों कहे को न राम कियो साधु ॥३॥
बालमीकि केवट कथा कपि भीलभालु सनमान।
सुनि सनमुख जो न राम सों तेहि को उपदेसै ज्ञान ॥४॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—समानार्थी श्लोक, यथा—'श्रीरामेण समः कश्चिद्धितो नास्तिगिरीन्द्रजे। गुरुः पिता तथा माता बन्धुः प्रभुरिलातले॥'—(शिवरामायणे)। "देवमर्त्य मुनीनां च सर्वेषां रीतिरस्ति वै। इयं कुर्वंति यत्प्रीतिं केवलं स्वार्थहेतवे॥'—(भार्गवपुराण)।

करु०—यहां संभव है कि कोई २ संदेह करें कि 'गुरु भी नहीं है' यह कैसे? गुरुको तो शास्त्र ईश्वर कहतेहैं। यथा—'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुरेव महेश्वरः। गुरुरेव परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवेनमः॥१॥' 'अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्। तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवेनमः॥२॥' गुरु परमेश्वरके समान है, यह सत्य है। पर गुरु अपने शिष्यका ईश्वर है और ईश्वर सबका ईश्वर है; पुनः, ईश्वर चराचर मात्रका हितकारी है और गुरु अपने शिष्यकाही। पुनः, गुरु जीव ही हैं अपने शिष्यके माननेकेलिए ईश्वर हैं; अतएव गुरु श्रीरामजीके समान हितकारी कैसे होसकतेहैं? प्रमाणं श्रीमद्भागवते पंचमस्कंधे, यथा—

गुरुर्नसस्यात्स्वजनो नसस्यात्पिता न सत्याज्जननी न सास्यात्।
दैवन्नतत्स्यान्न पतिश्च सस्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम्।

का सेवा सुग्रीव की का प्रीति रीति निरबाह।
जासु बन्धु बध्यो ब्याध ज्यों सो सुनत सोहात न काह॥५॥
भजन बिभीषन को कहा फल कहा दियो रघुराज।
राम गरीबनिवाज के बड़ी बांहबोल की लाज॥६॥
जपहि नाम रघुनाथको चरचा दूसरी न चाल।
सुमुख सुखद साहिब सुधी समरथ कृपाल नतपाल॥७॥
सजल नयन गदगद गिरा गहबर मन पुलक सरीर।
गावत गुनगन राम के केहि की न मिटी भव भीर॥८॥
प्रभु कृतज्ञ सर्वज्ञ हैं परिहरु पाछली गलानि।
तुलसी तोसों रामसों कछु नई न जान पहिचानि॥९॥ (१९३)

ऐसाहा 'ऐसे राम दीन हितकारी' इस १६६ पदमेंभी कहाहै—'कपि सुग्रीव बन्धुभय ब्याकुल आयो सरन पुकारी। सहि न सके जनके दारुन दुख हत्यो बालि सहि गारी'। जहां किसीका अपनाही अपयश होजायगा वहाँ भला वह कब दूसरेंका हित करेगा पर प्रभुने उसके पीछे अपयश सहा पर उसका हित किया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देखिए, श्रीरामचन्द्रजीने करोड़ों निज विरोधी कोलभिल्ल कीट पतंगोंको परमपद दियाहै और गुरु वशिष्ठ ऐसे समर्थ होकरभी एक राजा त्रिशंकुको परमपद न देसके। पुनः, गुरु श्रीरामचन्द्रकी प्राप्ति हेतु शिष्यको उपदेश करतेहैं; आगे शिष्यका कर्तव्य है। इन कारणोंसे गुरु श्रीरामचन्द्रके समान हितकारी नहीं हैं। *

* करु०—इस संदेहके निवारणार्थ दूसरी प्रकार अर्थ करसकतेहैं कि "श्रीरामचन्द्रके समान जगत्में हितकारी एक गुरु है और पिता माता बंधु कोई नहीं है"। (२) गुरु=श्रेष्ठ। अर्थात् जितने श्रेष्ठजन हैं, पितामाता भाई बन्धु वे कोईभी रामसमान हितकारी नहीं हैं। (३) सम=एकरस। अर्थात् एकरस हितकारी (आदि-अन्त निबाहनेवाला) एक श्रीरामचन्द्र हैं। गुरु, पितामाता और भाई कोई किसीके सदा रह नहीं जाते (अतः वे एकरस हितकारी नहीं होसकते)।

बाबा हरीदास यह अर्थ करतेहैं कि 'रामजी सम-हित हैं और गुरु आदि सम-विषम-हित हैं। अर्थात् जब समता भाव बनताहै तब समताका फल देतेहैं और जब विषम भाव बना तब विषमताका फल देतेहैं; यथा—'जो नर गुर सन इरिषा करहीं। रौरवनरक कलपसत परहीं'। जैसे गुरु वसिष्ठने त्रिशंकुको विषम फल दिया। और रामजी विषमतामेंभी समताका फल देतेहैं जैसे विरोधी निशचरोंकोभी गति दी, शिशुपालकोभी गति दी जो नित्य गाली दिया करताथा, इत्यादि। ☞ पर हमारी समझमें खींचतानसे यहाँ तात्पर्य नहीं। यहाँ वस्तुतः स्वतंत्र ईश्वरपनका निरूपण है, गुरुकी श्रेष्ठताभी ईश्वरतत्व बतलानेके कारणही है नहीं तो न होती। गोस्वामीजीने विनयमेंभी कहाहै—'नाम सों न मातु पितु मीत हित बंधु गुरुसाहिब सुधी सुसील सुधाकर है'। पुनः, यथा—कवित्तरामायणे—'राम हैं मातु पिता सुत बंधु औ संगी सखा गुर स्वामि सनेही (उ० ३६)। पुनः यथा विनये—'जनक जननि गुरु सुहृद पति सब प्रकार हितकारी' (पद ११४)। भाव यह कि गुरु केवल परमार्थदर्शानेवाले हैं माताका काम वे नहीं करसकते न पिताका न सखा इत्यादिका। इसी प्रकार प्रत्येक नातेदार अपने नातेके अनुकूल ही हित करसकताहै; पर श्रीरामजी अकेलेही सब नातेदारोंका सुख देते और देसकतेहैं जैसा कहाहै—'करि बीत्यो अबहूं करत करिबे हित मीत अपार। कबहु न कोउ रघुबीरसों नेह निबाहन हार॥ जासों सब नातो फुरे तासों न करी पहिचान। ताते कछु समझेउ नहीं कहा लाभ कहा हानि'—(वि० १९०)। ७७वें पदमें गोस्वामीजीने रामजीको 'सुस्वामि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मा० म०—इस कथनमें भाव यह है कि सुग्रीवके गुरु इत्यादि सहायक-समूह बहुत रहे परन्तु किसीसे कणमात्रभी स्वार्थ नहीं साधन होसका और न किसीका किंचित्भी मुँह मिला। अन्ततः श्रीरामचन्द्रजीने ही सुग्रीवका हित किया।

यहाँ 'चतुर्थ प्रतीप' अलंकार है।

बालि-त्रास व्याकुल दिनराती।
तनु बहु ब्रन चिंता जर छाती॥ §११ (३)
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ।
अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ॥ ,, (४)
जानतहूँ अस प्रभु परिहरहीं।
काहे न बिपति जाल नर परहीं॥ ,, (५)

अर्थ—जो रातदिन बालिके भयसे व्याकुल रहताथा, जिसके तनपर बहुतसे घाव होगएथे और जिसकी छाती चिन्ताके मारे जलाकरतीथी, उसी सुग्रीवको वानरोंका राजा बनादिया। रघुबीरजीका अत्यन्त कृपालु स्वभाव है। जो मनुष्य जानतेहुएभी ऐसे प्रभुको छोड़ देतेहैं वे क्यों न विपत्ति के जालमें फँसें।

नोट १—'बालित्रास व्याकुल०', यथा—'तदपि सभीत रहउँ मन माहीं', 'सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला'। 'तन बहु ब्रन' क्योंकि बालिने बहुत मार मारीथी, यथा—'रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी'। 'तन बहु ब्रन' से बाहरसे दुःखी और 'चिंता जर' से भीतरसे भी दुःखी जनाया। 'अति कृपाल' का भाव कि सुग्रीवको किसी स्वार्थसे नहीं राजा बनाया बल्कि अपनी कृपालुतासे, उसको दीन दुःखी जानकर उसको राज्य दिलाया। नहीं तो यदि स्वार्थ चाहते तो बालिसे मित्रता करते। पर ऐसा न करके बालिका त्याग और सुग्रीवसे मित्रता की।

बालिने स्वयं कहाहै कि यदि आप मुझसे कहते तो मैं एकही दिनमें दुष्टात्मा रावणका गला बाँधकर उसे आपके सामने उपस्थित

सुगुरु सुपिता, सुमातु, सुबन्धु' कहाहै। उसकाभी यही भाव है कि और सब स्वामी, गुरु, पिता, माता, बन्धु हैं पर रामजी सबसे श्रेष्ठ और सबकुछ हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करदेता और जहाँभी जानकीजी होतीं मैं उन्हें लादेता।—(वा० १७। ४९-५१)। पर वस्तुतः सुग्रीवकी इस कार्य्यसिद्धिमें स्वार्थ स्वप्नमेंभी हेतु न था। सोचिए तो, भला उनकी सहायता कौन करसकताहै? यह बात तो रावण, मेघनाद और कुम्भकर्णके युद्धमें स्पष्ट देखपड़तीहै। सभी त्राहि त्राहि करनेलगतेथे। जाम्बवंतनेभी कहाहै—'तब निज भुजबल राजिवनयना। कौतुक लागि संग सब सैना...'।

वा० २९ में स्वयं हनुमान्‌जीका वचन सुग्रीवसे है कि—'कामं खलु: शरैः शक्तः सुरासुरमहोरगान्। वशे दाशरथिः कर्तुं त्वत्प्रतिज्ञामवेक्षते ॥२२॥' अर्थात् रामचन्द्रजी बाणोंद्वारा देवता दैत्य, और महानागोंको अपने वशमें करसकतेहैं तोभी वे तुम्हारी प्रतिज्ञाको देखरहेहैं इन सब बातोंके उपस्थित रहतेहुएभी स्वार्थारोपण करना अपनी बुद्धिकोही कलंकित करनाहै। इससे सिद्ध हुआ कि उन्होंने दीन सुग्रीवपर कृपाही की, यथा—'नतः ग्रीव सुग्रीव दुःखैक बंधु...' इति विनये। पुनः, यथा—

बालि बली बलसालि दलि सखा कीन्ह कपिराज।
तुलसी राम कृपालको बिरद गरीबनिवाज ॥ (दो०) ॥

'रघुबीर' पदकाभी यही भाव है कि वे तो पंचवीरतायुक्त हैं उनका उपकार कोई क्या करेगा। 'प्रभु' का भाव कि वे इस जालको काटनेमें समर्थ हैं। (मा० त० भा०)।

२—सुग्रीवपर अत्यन्त कृपा दिखाकर कवि यहाँ सबको उपदेश देतेहैं कि प्रभुका ऐसा स्वभाव जानकर उनको भूलना नहीं चाहिए, वरन उनको अपनाकेनाचाहिए, वे सब विपत्तिजालके काटनेवालेहैं। मयूखकार कहतेहैं कि इस अर्द्धालीमें भाव यह है कि सुग्रीवने प्रभुको जानकरभी भुलादिया इसीकारण वह विषय-विपत्तिमें पड़गया, स्मरण भजन सब छूट गया। 'जाल' शब्दसे दोनों अर्थ यहाँ लेंगे। एक तो जाल (फाँसनेवाला) दूसरे समूह।

पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बोलाई।
बहु प्रकार नृपनीति सिखाई ॥ ◊ ११ (६)
कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा।
पुर न जाउँ दस चारि बरीसा ॥ ,, (७)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—फिर सुग्रीवको बुलालिया और बहुत प्रकारसे राजनीति सिखाई †। फिर प्रभु बोले – हे कपीश सुग्रीव ! सुनो, मैं चौदह वर्ष तक पुरमें नहीं जाऊँगा।

नोट 'बहु प्रकार नृपनीति सिखाई'। इति। राजनीति सिखाई क्योंकि राजाका कल्याण नीतिसे होताहै। यथा—'राज कि रहइ नीति बिनु जाने'। नीति, बिना राज्य नहीं रह सकता। यही भाव अंगदके वचनोंमें है—

साम दान अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा।
नीति धर्मके चरन सोहाये। अस जिअ जानि नाथ पहिं आये।
धर्म हीन प्रभु पद बिमुष कालबिबस दससीस।
तेहि परिहरि गुन आये सुनहु कोसलाधीस॥ लं § ३७

राजनीति बहुत प्रकारकी है, यथा दोहावल्याम्—

माली भानु किसान सम नीति निपुन नरपाल।
प्रजा-भाग-बस होहिंगे कबहुँ कबहुँ कलिकाल॥

---

† "उत्खातान् प्रतिरोपयन् कुसुमितांश्चिन्वल्लघून्वर्द्धयन्। क्षुद्रान् (कुब्जान् ?) कंटकिनो बहिर्निरसयन् विश्लेषयन् संहतान्॥ १॥ अत्युच्चान्नमन्नतांश्चसनकैरुन्नामयन्भूतले। मालाकार इव प्रयोग चतुरो राजा चिरंनंदति (जीवति)॥२॥" इति हनुमन्नाटके॥ अर्थात् जैसे माली उखड़ेहुए वृक्षोंको जमाता, फूलेहुओंको चुनता, छोटोंको बढ़ाता, कटीले क्षुद्र पौधोंको निकाल फेंकता, जो एकत्र हैं उनको अलग करता वा बहुत बढ़ेहुओंको लचाता और झुकेहुओंको धीरे धीरे ऊँचाकरताहै, वैसे ही राजा प्रजाके साथ बर्ताव करनेसे चिरकालतक आनंद करताहै। पुनः, "सत्यानृता च परुषा प्रियवादिनी च। हिंसा दयालुरपि चार्थपरावदान्या। नित्यव्यया प्रचुरनित्य धनागमा च वेश्यागणेवनृपनीतिरनेकरूपा"—(भर्तृहरि)। अर्थात् राजाकी नीति सच्ची, झूठी, कठोर एवं मीठी बोलनेवाली, हिंसाकरनेवाली, दयाकरनेवाली, मतलबी, उदार, नित्य व्यय करनेवाली वेश्याओंके समान अनेक रूपकी है।

२—पंजाबीजी लिखतेहैं कि यह शिक्षा दी कि अंगद और बालिके सचिव सखाओंसे प्रीति करके उन्हें अपनालेना, पूर्वपक्षविचारकर वैर किसीसे न करना और सुभटोंसे कहना कि बालिके साथ तुम्हारी दृढ़ता देखकर तुमपर हमेंभी अत्यन्त विश्वास है कि अब हम राजा हैं तो हमाराभी साथ प्राणोंके रहते न छोड़ोगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

☞ भोजप्रबन्धसार, शुक्रनीति, कामंदकीयनीतिसार, और भर्तृहरि नीतिशतक इत्यादिमें नीतिका सविस्तर वर्णन है। अरण्यकाण्डमें मारीचका उपदेश रावणको नीतिपूर्ण है। अयोध्याकाण्डमें भरतजीको थोड़ेहीमें राजनीतिका सार समझादिया है।

टिप्पणी—'पुर न जाउँ दस चारि बरीसा', इस कथनसे ज्ञात होताहै कि सुग्रीवने प्रभुसे नगरमें चलनेकी प्रार्थना की। यथा अध्यात्मे—"राज्यं प्रशाधि राजेन्द्र वानराणांसमृद्धिमत् ॥ ४३ ॥ दासोहं ते पादपद्मं सेवे लक्ष्मणवच्चिरम्। इत्युक्त्वा राघवः प्राह सुग्रीवं सस्मितं वचः ॥ ४४ ॥"—(स० ३)। अर्थात् हे राजेन्द्र! आप इस सम्पूर्ण ऋद्धि-संपन्न वानरराज्यका शासन करें। मैं आपका दास हूँ, लक्ष्मणकी तरह चिरकाल तक आपके चरण-कमलकी सेवा करूँगा। सुग्रीवके ऐसा कहनेपर रघुनाथजी मुसुकाकर बोले।

नोट १—निषादराज और विभीषणजीसे मिलान करने योग्य है—

निषादराज	विभीषण	सुग्रीव
देव धरनि धन धाम तुम्हारा।	सहित बिभीषन प्रभु पहिं आए॥	'पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बोलाई।'
मैं जन नीच सहित परिवारा॥	अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजै॥	
कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ।	...देषिकोस मंदिर संपदा।	
थापिअ जन सबलोगु सिहाऊ॥	देहुकृपाल कपिन्ह कहँ मुदा॥	
कहेहु सत्य सबु सषा सुजाना।	सबबिधि नाथ मोहि अपनाइय	
मोहि दीन्ह पितु आयसु आना॥	पुनि मोहिसहित अवधपुर जाइय	
बरषचारिदसबासबनमुनिव्रत०।	... ...	
ग्रामबास नहिं उचित सुनि	तोर कोस गृह मोर सब सत्य	"कह प्रभु सुनु
गुहहि भयेउ दुष भारु॥—	बचन सुनु भ्रात। भरतदसा०	सुग्रीव हरीसा।
(अ० §८७—८८)।	—(लं० ११५)।	पुर न जाउँ
		दसचारि बरीसा

सुग्रीवको राज्य मिला, वे स्वयं न आए बुलाएगए, आनेपरभी नीति उपदेशके पश्चात् सम्भवतः उन्होंने कहा कि नगर चलिए जैसा कि अध्यात्मसे सिद्ध होताहै। उत्तरमें प्रभु कहतेहैं कि १४ वर्ष तक नगरमें नहीं जासकता। विभीषणजी स्वयं आए, यथा—"करि बिनती जब संभु सिधाये। तब प्रभु निकट बिभीषन आये॥ नाइ चरन सिर कह मृदु बानी। विनय सुनहु प्रभु सारँगपानी॥..."। और, आतेही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विनती की कि अब अपने जनके घरको पवित्र कीजिए, इत्यादि। इससे शब्दों द्वारा कवि सुग्रीवसे विभीषणका प्रेम अधिक दिखारहेहैं। निषादराजका प्रेम विभीषणजीसेभी बढ़ाचढ़ाहै यद्यपि वह केवटोंका ही राजा है। वह अपने राज्य, घर, आदिको अपना नहीं कहता वरन प्रभुकाही मानताहै और ऐसा सच्चे हृदयसे समझकर वचनसे वही बात कहरहाहै कि यह सब आपका है, आप कृपाकरके नगरमें चलें और मैं तो आपका नीच टहलुवा हूँ। प्रभुके वचन सुनकर उसे भारी दुःख हुआ। ये सब बातें निषादराजको उन दोनोंसे अधिक प्रेमी प्रकट कररही हैं। और भी देखिए, प्रभुने उत्तरमें संबोधनमेंभी भेद कियाहै—सुग्रीवको 'हरीसा', विभीषणको 'भ्राता' और निषादराजको 'सखासुजाना'। उत्तरकांडमें बिदाईके समयभी निषादराजमें रामजी का विशेष प्रियत्व पुनः देखिए। वहाँ प्रभुने किसीसे यह न कहा कि यहाँ बराबर आते रहना पर निषादजीसे कहा कि 'तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता'। विशेष लंकाकांडमें लिखा जायगा।

२—'पुर' और "दस चारि बरीसा"के भाव अ० §५३ और §८८ में दिएगएहैं। पाठकोंके सुविधार्थ यहाँ केवल पं० रामकुमारजीके भाव पाद-टिप्पणीमें दिएजातेहैं*। 'हरीसा'का भाव कि तुम राजा हो राजाके

---

* 'पुर न जाउ दसचारि बरीसा'। १—निषादराजसे ग्राम बास नहिं उचित...' ऐसा कहा, विभीषणसे 'पितावचन मैं नगर न जाऊँ' ऐसा कहा और यहां 'पुर न जाउँ' कहा—तीन जगह तीन पृथक् शब्द कहकर जनाया कि मैं ग्राम, नगर, पुर किसी (आबादी) में नहीं जाता।

२—यहां दसचारि बरीसा' कहतेहैं, परन्तु कौसल्याजी और निषादराजसे 'बरष चारिदस' कहाथा। अर्थात् वहाँ पहले 'चारि' कहकर 'दस' कहाथा और यहां प्रथम 'दस' कहकर तब 'चारि' कहा। यह व्यतिक्रम सहेतुक है। कौसल्याजीसे एवं निषादराजसे जब ये वचन कहेथे तब वनवासका प्रारंभ था। कौसल्याजीसे जब कहा तब वनवास प्रारंभभी न हुआथा, पूरी अवधि बाकी थी और निषादसे जब कहा तब पूरे दो दिनभी न बीतेथे। इसीसे अल्पकालवाचक 'चारि' शब्द प्रथम कहा और 'दस' पीछे कहकर जनाया कि अभी व्रतके बहुत दिन बाकी हैं। सुग्रीवसे जब कहरहेहैं उससमय वनवासके लगभग १३ वर्ष

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

घर जाना उचित है पर मेरा व्रत भंग होताहै—(मा० त० भा)।

नोट ३—'लीन्ह बोलाई' से सूचित किया कि सुग्रीव राजा होते ही विषयवश होगए, श्रीरामचन्द्रजीके निकट नहीं गए। अतएव श्रीरामजीने उनको बुलवाकर अनेक प्रकारकी राजनीति सिखाई।—(मा० म०)। अथवा, पुनि बुलानेका हेतु यह है कि सुग्रीवको राज्यका योग तो हुआ पर क्षेमका योग अभी नहीं हुआ। (कल्याण राजनीतिसे होता है अतः उसे सिखानेके लिए बुलाया)।—(प्र०)। ४—'हरीसा' इति। राजा हुए अतएव प्रभुने भी उनको सम्मान हेतु हरीश संबोधन किया। हरि=वानर+ईस=ईश, स्वामी। इससे प्रभुकी राजनीतिमें निपुणता दर्शितहोतीहै। ‡

बीत चुके। बहुत काल बीतगया अल्प रहगया इसीसे बहुतकालवाची 'दस' शब्द प्रथम दिया। विभीषणजीके यहाँ व्रतका काल व्यतीत होगया इसीसे वहाँ कालका नाम न लिया, 'दसचार' कुछभी न कहकर इतनाही कहा कि 'पिता बचन मैं नगर न जाऊँ'।—विशेषभाव अयोध्याकांडमें देखिए।

नोट—यहाँ एक बात और देखनेयोग्य है। तीन काण्डों (अ०, कि० लं०) में यह वार्ता आईहै और तीनोंमें राजधानीकेही स्थलोंपर ऐसा कहा है। निषादराज शृङ्गवेरपुरका राजा है, इसकी राजधानी छोटी है अतः यहाँ 'ग्रामबास' कहा। सुग्रीवसे कहा जब उसे किष्किंधा का राज्य मिला। किष्किन्धा राजधानीभी बड़ी सुन्दर है। वाल्मीकिजीने इसका वर्णन कियाहै पर वह लंकाराज्यके सामने छोटीही है और सिंग्रौरसे बहुत बड़ी है। अतः यहाँ 'पुर न जाउँ' कहा और लंकाराज्य जब विभीषणको मिलगया तब उनसे कहा कि 'पिताबचन मै नगर न जाऊँ'। इस प्रकार अपने राज्यसे निकलनेपर तीन स्थानोंमें जहाँ जहाँ कहा वहाँ राजाओंसेही कहा। अयोध्यामें कहा फिर अरण्य छोड़कर किष्किंधामें कहा, फिर सुन्दर छोड़ लंकामें कहा गया। बाबा रामप्रसादशरणजीका मत है कि नगर, पुर और ग्राममें इससे न जातेथे कि इनमें राक्षस अनीति करतेथे; यथा—'जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाँव पुर आगि लगावहिं'। हो सकताहै कि ऐसा हो, पर मुख्य कारण 'विशेष उदासी' 'वनवासी' का वरदान है और यही रामजीने सर्वत्र कहा है।

‡ पं०—यदि सुग्रीव कहे कि आप मुझे अभी शिक्षा क्यों देतेहैं आपभी तो नगरमें मेरे साथ रहेंगे, जब जो बात होगी, उसमें सलाह लेताही रहूँगा। इसी पर प्रभु कहतेहैं कि मैं साथ नहीं रह सकता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गत ग्रीषम बरषारितु आई।
रहिहौं निकट सैल पर छाई॥ § ११ (८)
अंगद सहित करहु तुम्ह राजू।
संतत हृदय धरेहु मम काजू॥ ,, (९)

शब्दार्थ—'छारहना, छाना'=निवास करना, बसना, टिकना, यथा—'राम प्रवर्षन गिरिपर छाए', 'कहा भयो जो लोग कहत हैं कान्ह द्वारका छायो' —(सूर) 'चित्रकूट रघुनंदन छाये'।

अर्थ—ग्रीष्मऋतु (गर्मीके महीने) बीत गए, वर्षाऋतु आगई, मैं आपके पासही पर्वतपर निवास करूँगा। तुम अङ्गदसहित राज करो, मेरे कार्य्यका सदा हृदयमें ध्यान रखना; अर्थात् राज्यसुखमें पड़कर कार्य्य भूल न जाना।

टिप्पणी—१ 'गत ग्रीषम०'इति। (क) भाव कि ग्रीष्मऋतुमें सीता-शोधका उपाय होसकताथा सो वह ऋतु बीतगई, वर्षाऋतु आगई। अर्थात् अब खोजनेका समय नहीं रहा।—[नोट—यह श्रावणका महीना है। चतुर्मासामें जो जहाँ होतेहैं वहीं रहजातेहैं। यह ऋतु उद्योगका समय नहीं समझाजाता। इसमें बाहर दुर्गम स्थानोंमें जानेवाले काम प्रायः बंद रहतेहैं। यही भाव 'वर्षाऋतु आई' का है। यथा—'पूर्वोयं वार्षिको मासः श्रावणः सलिलागमः। प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारोमासा वार्षिक-संज्ञिताः॥ १४॥ नायमुद्योगसमयः प्रविशंत्वं पुरीं शुभाम्।"—(वा०-स० २६)] समयपर सब काम करना चाहिए, यथा—'समरथ कोउ न राम से तीयहरन अपराध। समय हि साधे काज सब समय सरा-हहिं साधु' इति दोहावल्याम्। श्रीरामजीने विचार किया कि वर्षाऋतु में हमारा काम करनेमें सुग्रीवको कष्ट होगा इसीसे वे स्वयंही कहने लगे कि ग्रीष्म गतहोगई, वर्षा आगई, जिसका तात्पर्य्य यह है कि वर्षा बाद काम करना। *

* "अयात्रां चैव दृष्ट्वेमां मार्गांश्च भृशदुर्गमान्। प्रणते चैव सुग्रीवे न मया किंचिदीरितम्॥ ६०॥ अपिचातिपरिक्लिष्टं चिराद्दारैः समागतम्। आत्मकार्यं गरीयस्त्वाद्वक्तुं नेच्छामि वानरम्॥ ६१॥ तस्मात्काल प्रतीक्षोऽहं स्थितोऽस्मि शुभलक्षण॥ ६३॥"—(वा० २८)। अर्थात् यात्राका योग न देखकर और मार्ग को दुर्गम समझकर शरणागत सुग्रीवसे मैंने कुछ न कहा। बहुत दिनोंपर उसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२–'रहिहौं निकट'। भाव कि तुम मुझे अपने घर लेचलनेको कहते हो, मैं तुम्हारे समीपही टिकूँगा, दूर नहीं।–[१ मा० म०—'निकट रहूँगा' यह कहना राजनीति है क्योंकि समीप रहनेसे सुग्रीवको भय रहेगा, स्त्री आदिकी ममतामें न फँसेगा। २ प्र०—भाव कि वियोगका भय न करो] ३—'अंगद सहित०' में ध्वनि यह है कि उसका निरादर न करना। ४—'संतत हृदय धरेहु' कहा क्योंकि निरंतर हृदयमें कामका ध्यान रहनेसे उसे भूल न सकेंगे।

☞ सुग्रीव-तिलक प्रकरण 'राम कहा अनुजहि समुझाई' से यहाँतक है।

पा०—अंगदसहित' कहनेका भाव कि जो राजकाज करो वह अंगदकी संमत लेकर करो। निरंतर हमारे कार्यको हृदयमें रखना (जिसमें विस्मरण न होजाय) जब तक प्रगट करनेका समय न आवे।

"प्रवर्षण-वास"-प्रकरण

जब सुग्रीव भवन फिरि आए।
रामु प्रबरषन गिरि पर छाए॥ ◊ ११ (१०)

प्रथमहि देवन्ह गिरि गुहा राषेउ रुचिर बनाइ।
राम कृपानिधि कछुक दिन बास करहिंगे आइ॥१२

अर्थ—जब सुग्रीव घर लौट आए। तब रामचन्द्रजी प्रवर्षणपर्वत पर जाटिके। देवताओंने पहलेसे ही पर्वतमें सुन्दर गुफा बना (सजा) रक्खीथी कि दयासागर रामजी आकर कुछ दिन यहाँ निवास करेंगे।*

स्त्री मिलीहै और हमारा काम देरमें सिद्ध होनेवालाहै इसलिए सुग्रीवसे इससमय कुछ कहना नहीं चाहा। इसी कारण कालकी प्रतीक्षा करता हुआ मैं ठहराहूँ। कछु—(भा० द०), कछुक—(का०)

* यथा आनन्दरामायणे—"देवैः पूर्वंत एवाद्रिगुहा विरचिता शुभा। वसत्यर्थं च रामस्य स्वप्रयोजन साधकैः॥" अर्थात् अपना स्वार्थ साधनेवाले देवताओंने पूर्वहीसे रामजीके वासके लिए पर्वतमें सुंदर गुहा रचकर बनाई है

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नोट—पूर्व कहा था कि 'रहिहौं निकट सैल-पर छाई', यहाँ उसका नाम खोला। अध्यात्ममें भी प्रवर्षण नाम दियाहै—'प्रवर्षणगिरेरूर्ध्वं शिखरं भूरि विस्तरम्॥ ५२॥"—(सर्ग ३)। वा० २७।१ में इसे 'प्रस्रवण' कहाहै—'आजगाम सह भ्रात्रा रामः प्रस्रवणं गिरिम्'। अर्थ दोनों का एकही है। अर्थात् जहाँ बहुत वर्षा होतीहै। इससे दोनों एकही जान पड़तेहैं। यह पर्वत माल्यवान पर्वतकाही एक भागहै। यथा—'वसन्माल्यवतः पृष्ठे रामो लक्ष्मणमब्रवीत्'—(२८।१)। और किष्किंधा के समीपही मतङ्ग ऋषिके आश्रमकी सीमामें है।

टिप्पणी १—'प्रथमहि देवन्ह०' इति। चित्रकूटमें रामजीके पहुँचने पर देवताओंने कुटी बनाई और यहाँ प्रथमसेही गुहा बनारक्खी। देवताओं द्वारा बनाई गई; इसीसे 'गुहा' कहतेहैं, यथा—'देवखात बिले गुहा इत्यमरः'। २—कृपानिधिका भाव कि हमपर कृपाकरके गुहामें रहकर हमारा परिश्रम सफल करेंगे।

प्रथमसेही गुहा बनानेका भाव

१—मा० म०—जब श्रीजानकीजीके साथ रहनाथा तब पर्णकुटीकी आवश्यकता थी। इसीसे चित्रकूट और गोदावरीतटपर पर्णकुटीमें रहतेरहे, यथा—'रचे परन-तृन-सदन सुहाये'—(अ० § १३२), 'गोदावरी निकट प्रभु रहे परन-गृह छाइ'—(आ०)। अब प्रियारहित हैं इससे कंदराकोही प्रभु उचित समझतेहैं वैसीही प्रेरणा देवताओंको करदी। २—रा० प्र० श०—यहाँ प्रथमसे बनाया क्योंकि वर्षामें पहाड़को शीघ्र खोदना कठिन है। ३—पूर्व देवताओंको संदेह था कि लौट न जायँ इससे पहुँचनेपर बनाया और अब विश्वास है कि हमारा कार्य अवश्य करेंगे, लौटेंगे नहीं। ४ पं०—देवता जानतेहैं कि यहाँ वास करेंगे इससे बना रखाथा। सुग्रीव न जानतेथे कि गिरिपर वास करेंगे इससे उनका बनाना न कहा। सुग्रीव अब बनवाते पर वहाँ प्रथमसेही तैयार थी।

सुंदर बन कुसुमित अति सोभा।
गुंजत मधुप-निकर मधु लोभा॥ § १२ (१)
कंद मूल फल पत्र सुहाए।
भए बहुत जब ते प्रभु आए॥ ,, (२)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शब्दार्थ—मधुप=मधु पीनेवाले=भ्रमर, भौंरा। मधु=मकरंद, फूल का रस।

अर्थ—सुन्दर वन फूला हुआ अत्यन्त शोभित है। मधुके लोभसे भ्रमरसमूह गूँज रहेहैं। जबसे प्रभु आए तबसे सुन्दर कन्द-मूल-फल-पत्ते बहुत हुए (क्योंकि ये उनके कामके हैं)।

टिप्पणी—१ (क)—वनकी शोभाका विस्तृत वर्णन वा० २७, २८ में है। उसीको यहाँ 'सुन्दर' विशेषणसे जनायाहै। (ख)—वनमें साधारण ही शोभा रहतीहै पर इस समय कुसुमित है इससे 'अति शोभा' है। (ग)—मधुके लोभसे गंजार कर रहेहैं इसीसे 'मधुप' (=मधुपीनेवाले) नाम दिया। २—'भए बहुत००' अर्थात् थे तो पहिलेभी पर अब बहुत हुए। ☞ यहाँ तक स्थावरकी सेवा कही, आगे जंगमकी सेवा कहते हैं, यथा—'मधुकर खग मृग तनु धरि देवा' इत्यादि।

देषि मनोहर सैल अनूपा।
रहे तहँ अनुज सहित सुरभूपा॥ § १२ (३)
मधुकर षग मृग तनु धरि देवा।
करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा॥ ,, (४)

अर्थ—मनको हरनेवाला 'अनूप' पर्वत देखकर देवताओंके राजा राम भाई सहित वहाँ रहे। देवता-सिद्ध-मुनि, भ्रमर, पक्षी, पशु (वा, हिरन) के शरीर धारण कर करके प्रभुकी सेवा कर रहेहैं।

टिप्पणी—१ (क) अनूप=उपमारहित। अथवा, उस पर्वतमें बहुत जल होनेसे अनूप कहा। अनूप=जलप्राय, वह स्थान जहाँ जल अधिक हो, यथा—'अनुगता आपो यस्मिंस्तदनूपम्। जलप्रायमनूपं स्यात् इत्यमरः॥' इसीसे इसका नाम प्रवर्षण है। (ख) प्रथम बनकी शोभा कहकर तब मनोहर शैलका देखना कहकर जनाया कि यह वन पर्वतके ऊपर है। (ग)—'सुरभूपा'—पदका भाव कि देवताओंके अंश वानर हैं, येही यहाँ रामजीकी प्रजा हैं जिनकी वे रक्षा करतेहैं। पुनः, देवता, पक्षी पशु आदि रूपसे, सेवा कररहेहैं और पूर्व अपने रूपसे गुहा बनानेकी सेवा करचुके हैं; अतएव यहाँ प्रभुको 'सुरभूप' कहा।

२—'मधुकर षग मृग तनु धरि देवा।०' इति। (क)—ये रूपान्तरसे क्यों आए? उत्तर—क्योंकि मर्यादापुरुषोत्तम इनसे साक्षात् रूप-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से सेवा न कराते। (ख) मधुकरकी सेवा गुंजार, पक्षीकी सेवा मधुर सुरीली बोली और मृगोंकी सेवा नेत्रोंकी शोभा दिखानाहै। यथा—'मृग बिलोकि षग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी'—(अ०)। (ग)—चित्रकूटमें देवता कुटी बनानेके लिए कोल किरातके वेषसे आए, यथा—'कोल किरात बेष सब आए। रचे परन तृन सदन सोहाए'। और, यहां भ्रमरादि रूपसे आए। वहां कुटी बनानी थी जो काम कोल किरात किया करतेथे और यहां राम विरही हैं उनका मन रमाना है इससे यहाँ भ्रमर आदि रूपसे आए। ये मधुकर दिव्य मधुप हैं और पूर्वकथित, 'गुंजत मधुप निकर मधु लोभा'-वाले मधुप प्राकृत हैं। प्राकृत मधुप मधुके लोभी हैं और ये सेवाके।

पां०—सुरभूप इससे कहा कि देवताओंके हितकेलिए नरराज पदवीको छोड़कर शैलपर आ बसे।

रा० प्र० श०—यहां मुनि भ्रमर हैं क्योंकि भ्रमर जब उड़ताहै तब गुंजारताहै और पुष्पपर बैठनेसे मौन होजाताहै, मौन होकर मनन करताहै। सिद्ध पक्षी हैं क्योंकि पक्षी एक जगहसे उड़कर दूसरी जगह जाताहै; ऐसेही सिद्ध लोग सिद्धिके बलसे स्थानान्तरमें जासकतेहैं। देवता मृग हैं क्योंकि विषयी होनेसे वे चंचल होतेहैं वैसाही स्वभाव मृगोंका है।*

वै०—देवता भ्रमर हो गान सुनाते, सिद्ध पक्षी हो बोली बोलते और मुनि मृग होकर सदा समीप रहतेहैं।

मंगल रूप भएउ बन तब ते।
कीन्ह निवास रमापति जब ते॥§१२ (५)
फटिकसिला अति सुभ्र सुहाई।
सुष आसीन तहां द्वौ भाई॥ ,, (६)

अर्थ—जबसे रमापति रामजीने यहां निवास किया तबसे वन

* 'रामं मानुषरूपेण गिरिकाननभूमिषु ॥४॥ चरन्तं परमात्मानं ज्ञात्वा सिद्धगणा भुवि। मृगपक्षिगणा भूत्वा राममेवानुसेविरे ॥५॥'—(अध्यात्म ४)। अर्थात् यह जानकर कि परमात्मा राम नररूपसे पर्वत और वन भूमिपर विचररहे हैं, सिद्धगण मृग पक्षि रूप होकर सेवा करने लगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मंगलरूप होगया। स्फटिकमणिकी एक अत्यन्त उज्ज्वल शिला शोभित है, उसीपर दोनों भाई सुखपूर्वक बैठे हैं।

टिप्पणी १—लक्ष्मीसे मंगल होताहै। वन मंगलरूप होगया इसीसे यहां 'रमापति' कहा। † २—'जब सुग्रीव भवन फिरि आए' से यहां तक 'प्रभुकृत सैल प्रबर्षन बास' प्रसंग है।

'बरनत बरषा'—प्रकरण

कहत अनुज सन कथा अनेका।
भगति बिरति नृपनीति बिबेका॥ १२ (७)
बरषाकाल मेघ नभ छाए।
गरजत लागत परम सुहाए॥ ,, (८)

अर्थ—भाईसे भक्ति, वैराग्य, राजनीति और ज्ञानकी अनेक कथाएँ कहतेहैं। वर्षाकालमें मेघ आकाशमें छाए (घिरे, फैले) हुएहैं, गरजते हुए बड़ेही सुहावने लगतेहैं।

टिप्पणी—१ ☞ अध्यात्ममें इस स्थानपर पूजनका प्रकरण वर्णन किया और वाल्मीकीयमें वन वर्णन कियाहै और उसीमें अपने विरहकी और सांसारिक व्यवहारकी उपमा दीहै। अन्य रामायणोंमें और तरह मुनियोंने वर्णन कियाहै। इसीसे गोस्वामीजी सबका मत

---

† १—प्र०—'मंगलरूप भएउ' से जनाया कि पूर्व निश्चरवाससे अमंगलरूप था। २—पं०—यहां रमापति विशेषण इससे दिया कि कोई यह न कहे कि अब रघुनाथजीका विपत्तिकाल है। भाव यह कि जिनके निवाससे गिरि और वनकी आपदा नष्ट होजातीहै उनको विपत्ति कहां? वा, यह जनाया कि जहां प्रभु होंगे वहां श्रीभी साथही रहती है। यहां सीतातनका वियोग था इससे प्रभुके मनको रमानेके लिए रमा सारे वनको शोभित कररहीहै। ३—यहां परिकराङ्कुर अलंकार है। प्रथम उल्लासकी ध्वनि है।

† गरजत—(का०)। समानार्थी श्लोक—'अयं सकालः संप्राप्तः समयो यो जलागमः। संपश्य त्वं नभो मेघैः संवृतं गिरिसन्निभैः॥'—(वा०स०२८)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ग्रहण करनेके वास्ते, अनेक कथाओंका कहना लिखते हैं। भागवत और विष्णुपुराणमें वर्षा वर्णन की है, ज्ञान वैराग्य भक्ति और राजनीतिकी उपमा दीहै; इसी मतको गोस्वामीजी विस्तारसे वर्णन करतेहैं।

२—भक्ति शाण्डिल्य सूत्रमें, वैराग्य सांख्यशास्त्रमें, नीति धर्मशास्त्रमें और ज्ञान वेदान्त शास्त्रमें है।

३—यहां प्रथम 'भक्ति' कही। क्योंकि अरण्यकाण्डमें लक्ष्मणजी भक्तियोग सुनकर अत्यन्त सुखी हुएथे, यथा—'भगति जोग सुनि अति सुख पावा'। अरण्यकाण्डमें ज्ञान, वैराग्य, भक्ति और नीति समझाकर कहचुकेहैं अब यहां उनके समझानेका प्रयोजन नहीं है; इसीसे यहां कथा कहतेहैं। कथा कहना सुनना रामजीको प्रिय है।

४—'गरजत लागत परम सुहाए'। 'परम सुहाए' का भाव कि आकाशमें छाएहुए सुहावने लगतेहैं और जब गरजतेहैं तब 'परम सुहाए' लगतेहैं।—(अपने २ समय पर सब बातें सुहावनी लगतीहीहैं)। ५—रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीको मेघ और मोर दिखातेहैं। दोहेका 'लछिमन देषु' देहलीदीपक है। यहां आकाशमें मेघोंकी सुंदरता दिखाकर आगे पृथ्वीपर मोरोंका नृत्य दिखाते हैं। अन्वय यों है—'वर्षाकाल मेघ नभ छाए गरजत लागत परम सुहाए लछिमन देषु' और 'लछिमन देषु मोरगन नाचत०'।

☞ यहां अपने आचरण द्वारा उपदेश देतेहैं कि समय सदैव भक्ति वैराग्य ज्ञान और नीति हीमें व्यतीत करे, व्यर्थ न खोवे।

मा० म०—आठ महीने जल कर्षित होताहै और सावन भादों दो महीने मेघ जल देनेके लिए छाए हुए रहतेहैं, उनका गरजना मानों देनेको कहनाहै अतएव शोभताहै। यह नीतिहै। इसी प्रकार राजा प्रजासे धन लेतेहैं फिर अधिकारी पाकर देतेहैं।

लछिमन देषु मोरगन नाचत बारिद पेषि।
गृही बिरति रत हरष जस बिष्नु भगतकहुँ देषि॥१३

अर्थ—हे लक्ष्मण! देखो, मोरोंके समूह मेघोंको देखकर नाच रहेहैं, जैसे वैराग्यवान् गृहस्थ विष्णुभक्तको देखकर हर्षित होतेहैं।*

* १ समानार्थक श्लोक—'मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनंदन् शिखंडिनः। गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाच्युतजनागमे॥—(भा० स्कं० १० अ०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी १—सजलमेघोंका शब्द सुनकर मोर नाचतेहैं इसीसे प्रथम मेघोंका गरजना कहकर—'गरजत लागत परम सुहाए'—तब मोरोंका नाचना कहा। २—'बारिद पेषि' इति। मेघ जल देतेहैं इसीसे बारिद कहलातेहैं। मोर यह जानकर नाचतेहैं कि हमको ये 'वारि' देंगे। ३—'गृही बिरतिरत०' इति। मोर नाचतेहैं कि हमें जल मिलेगा और विरक्त गृहस्थ हर्षित हैं कि हमें रामयश संतसे प्राप्त होगा।—[प्र०—'गृही बिरतिरत' से गृहस्थीमें रहकर अपने धर्मको निबाहनेवाले विरक्त लोगोंसे तात्पर्य है। जैसे जनकमहाराज, मनुमहाराज। 'भौन बसत भा चौथपन', 'बरबस राज सुतहि नृप दीन्हा', इत्यादि विष्णुभक्तिके साधन हैं। भागवत-धर्ममें प्रीति होनेसे वैराग्य होता है, यथा—'निज २ धर्म निरत श्रुति रीती' 'एहिकर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धरम उपज अनुरागा'। पुनः,'गृही और वैराग्यवान दोनों' ऐसाभी अर्थ करसकतेहैं। दोनों आनंदित होतेहैं।]

४—वर्षा-वर्णनमें मयूरका-आनंद वर्णन करना, यह कवियोंका नियम है। प्रमाण यथा—'कोकिल को कल बोलिबो बरणत हैं मधुमास। वर्षाहीं हरषित कहहिं केकी केशवदास॥' इति कविप्रिया ग्रंथे। इसीसे गोसाईं जी वर्षा वर्णनके प्रारंभमें मयूरका नाचना लिखतेहैं।

☞५—यहाँ भक्ति और वैराग्य कहे। उदाहरण अलंकार।

(समता)

१ विरतिरत गृही मोरगणहैं २ विष्णुभक्त बारिद हैं।

३ रामयश जल है, यथा—'सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। वेद पुरान उदधि घन साधू॥ बरषहिं रामसुजस बरबारी। मधुर मनोहर मंगलकारी॥"—(ब०)।

४ गृही विषय-भोग गृहजालसे संतप्त, मोर ग्रीष्म-तापसे तपे

५ संत गरज २ कर रामयश कहतेहैं जिससे गृही हर्षित होताहै, मेघ गरज २ कर बरसते हैं जिससे मोर नाचते हैं।

६ संतदर्शनसे गृहस्थ अत्यन्त सुखी होतेहैं, यथा—'संत मिलन

२० इल० २०)। अर्थात् मेघोंके आगमनरूपी उत्सवसे प्रसन्न मोरगण कैसे आनन्दित हुए (मेघोंको देखकर आनंदसे नाचनेलगते हैं) जैसे गृहजंजालसे तप्त आत्त और वैराग्यको प्राप्त गृहस्थ विष्णु-भक्तके आगमनसे प्रसन्न होताहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सम सुख कछु नाहीं'। मेघको देखकर मोर अत्यन्त सुखी होतेहैं। अब उनके पक्ष जमेंगे।

७—जैसे वर्षाकालके सजलमेघ सुहाए लगतेहैं वैसेही संत सब अच्छे लगतेहैं। बादल गरजनेपर सुहावने लगतेहैं। वैसेही संत जो रामयश गरजतेहैं वे विशेष अच्छे लगतेहैं।

मा० म० - 'सुत बित लोक ईषना' ये तीनों सबके बुद्धिको मलिन करदेतेहैं। गृहस्थ जो इन तीनोंके दुःखसे संतप्त होकर मनकर्मवचनसे परमात्मामें रत होकर विरक्त होगए उनको हरिभक्तोंके सत्संगसे श्रेष्ठ-सुखका मूल प्राप्त होनेसे आनन्द होताहै। मोर ग्रीष्म-तापसे क्षीण होगए थे वर्षागमनसे मयूरनीके साथ आनंद अनुभव करने लगे जैसे गृहस्थ भक्त भक्तिरससे पुष्ट होकर कर्मादिकके दुःसह तापसे मुक्त होकर प्रगट सुखमें मग्न हो विह्वल होरहेहैं।

मा० म० (मयूख)—'लछिमन देषु०' इस पूर्वार्द्धसे दिनका बोध होताहै क्योंकि मेघको देखकर मोर दिनहीमें नाचताहै। पुनः, 'गृही बिरतिरत०' इस उत्तरार्द्धसे आर्द्रा नक्षत्रकी अँधियाली रात्रिका बोध होताहै क्योंकि रातको न चलनेके कारण विष्णुभक्त गृहस्थोंके घर विश्राम करतेहैं। इस दोहेमें राजनीति, विरति और भक्ति तीनोंका कथनहै।—(पां०)

☞करु०—इस वचनका अभिप्राय यह है कि गृहस्थकी रामभक्तमें प्रीति हो तभी वह कृतार्थहै।

☞यहाँ से वर्षा और शरद् वर्णन में उदाहरण अलंकार है।

घन घमंड नभ गरजत घोरा।
प्रियाहीन डरपत मन मोरा॥ § १३ (१)
दामिनि दमक रह न घन माहीं।
षल कै प्रीति जथा थिरु नाहीं॥ ,, (२)

शब्दार्थ—'घमंड'=गर्व सहित।=समूह—(मा० म०, मा० त० भा०)।= घुमड़ घुमड़ कर।

अर्थ—मेघोंके समूह गर्वपूर्वक आकाशमें घोर गर्जन कररहेहैं, प्रियाहीन होनेसे मेरा मन डररहाहै। बिजलीकी चमक बादलमें नहीं रहती जैसे खलकी प्रीति स्थिर नहीं रहती।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—१ (क) 'प्रियाहीन' का भाव यह है कि हम प्रियाहीन हैं और सब मयूर प्रियायुक्त हैं। इनकी मयूरीका हरण राक्षसने नहीं किया इसीसे ये नाचतेहैं †। (ख)—'प्रियाहीन डरपत मन मोरा' इति। मेघका गरजना, बिजलीका चमकना, मोरका नाचना ये सब शृङ्गार-रसके उद्दीपक विभाव हैं इसीसे विरहीको दुःखदायी होतेहैं। इसी भावसे प्रभु कहतेहैं कि 'प्रियाहीन डरपत०'। ☞ (ग) यहाँ नीति और वैराग्य है।

२—'दामिनि दमक०' इति। (क) मेघ आकाशमें है, मोर पृथ्वीपर है। दोनोंके बीच इतना अंतर है तोभी मोरोंकी प्रीति मेघमें है इसीसे

† (१) प्र०—'घन घमंड०' का भाव यह है कि आकाश क्षणिक संयोग पाकर ऐसा गरजताहै। आगे हनुमान्‌जीके वचनमें यही भाव स्पष्ट होगा। यथा—'मोकहँ सकल भए बिपरीता'। (२) कु०—यहाँ रघुनाथजी विरह दिखातेहैं। अन्य अर्थ यहाँ असिद्ध हैं। मेघ शृंगाररसका उद्दीपक है। शृङ्गार दो प्रकारका होताहै एक संयोग दूसरा वियोग। यहाँ वियोग है। इसीसे वर्षाकालके मेघोंका गरजना दुःखद होरहाहै। यहाँ ध्वनिसे रघुनाथजी इस दृष्टान्तद्वारा श्रीजानकीजीमें अपना प्रेम दिखारहेहैं। (३) मा० म०—श्रीरामचंद्रके वचनमें यह भी ध्वनि है कि मेरी प्रिया मेरे साथ रही परन्तु न जाने कहाँ चली गई इसी दुःखसे मैं दुःखित हूँ, मैं उनको नहीं कहता जो स्त्रीके सन्निकट नहीं जाते वरन दूर रहतेहैं। पुनः, वह अन्यत्र चलीगई जहाँ दुःखका समूह है और यहाँ सुखका समूह है अतः मेरा मन डरताहै।

(४) शिला—इस प्रकरणमें 'उपाख्यान विवेक रीति' का है। चौपाई चौपाई प्रति दो दो बातें कही हैं, रामजी वक्ता हैं इस कारण इसमें यह अर्थ करनेसे कि 'सीताके विना मेरा मन डरताहै' विरोध होगा। इस प्रकरण भरमें ४६ चौपाइयोंमें दोदो बातें कहीहैं तब यहां भी दो ही बातें होना ठीक हैं (एक दृष्टान्त दूसरा दार्ष्टान्त)। (अर्थात रामजीने ४६ चौपाइयोंमें कहीं अपने ऊपर कोई बात नहीं कही तब यहां कैसे कहेंगे)। अतएव इसका निर्वाह करनेके लिए 'मोरा' का अर्थ 'मोड़े हुए, मुड़े हुए' करना होगा। भावार्थ यह है कि जो प्रिया हीन हैं, सांसारिक विषयोंसे मन मोड़े अर्थात् फेरे हुए हैं ऐसे उदासी लोग वनमें बादलोंका गर्जन सुनकर डरतेहैं। बादल कामदेवका समाज है, गर्जन कामदेवकी ललकार है।

(५) प०—यहाँ वैराग्य है। प्रियाके संयोगसे वियोग होनेपर दुःख हुआ अतः इसका त्यागही शुभहै। ६—दूसरा उल्लास अलंकारहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसे देखकर मोर नाचतेहैं। और, बिजली मेघोंके समीपही है (उसीसे उत्पन्न होती है) पर मेघोंमें उसकी प्रीति नहीं है इसीसे स्थिर नहीं रहती। ☞ खलकी प्रीति स्थिर नहीं रहती। यह नीति है *-[अच्छे लोग (सज्जन) दूरभी रहकर प्रीति का निर्वाह करतेहैं, अतएव खलसे प्रीति न करे सज्जनसे करे; यह उपदेश है]। ☞ ३—वर्षा-वर्णनमें मेघ, मोर, दामिनी आदिका वर्णन करना चाहिए, यथा—'वर्षा हंस पयान बक दादुर चातक मोर। केतक पुंज कदंब जल क्यों दामिनि घन जोर॥' इति कविप्रियायाम्।

बरषहिं जलद भूमि नियराए।
जथा नवहिं बुध बिद्या पाए॥ § १३ (३)
बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे।
षल के बचन संत सह जैसे॥ ,, (४)

अर्थ—बादल पृथ्वीके निकट आकर (अर्थात् इतना नीचे झुककर) बरसतेहैं जैसे पंडित लोग विद्यापाकर नवते (नम्र होजाते) हैं। बूँदोंकी चोट पर्वत कैसे सहतेहैं, जैसे खलके वचन संत सहतेहैं।*

* १ समानार्थी श्लोक—'न बबन्धाम्बरे स्थैर्यं विद्युदत्यन्त चंचला। मैत्रीव प्रवरे पुंसि दुर्जनेन प्रयोजिता॥'—(विष्णुपुराणे)। अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषमें दुर्जनसे कीहुई मित्रताकी भाँति अत्यन्त चंचल बिजुली आकाशमें स्थिरता नहीं पाती। २—मा० म०—(क) भाव यह है कि बिजुली सब गुणसिंधु मेघको पाकरभी खलताहीको सेवतीहै अर्थात् अस्थिरता नहीं त्यागती, चमककर अन्यत्र चलीजाती है, वहाँसे दूसरी २ जगह चमकने लगतीहै, केवल एक सुखकी टेक नहीं रखती। (ख) यहां यह रूपकभी मिलताहै कि पुरुषरूपी मेघ स्त्रीरूपी दामिनी अपने गुण और गकी उतंगतावश चंचल होकर आधी चमक एक जगह और आधी चमक दूसरी जगह दिखलाती फिरती है और स्थान स्थान प्रति किंचित् थिर हो होकर अभंग चमक प्रकाश करतीहै। यहाँ स्त्रीकी उतंगता—गुण और मेघकी उतङ्गता श्याम रंग जानो।—(मेघ पुल्लिंग, दामिनि० स्त्रीलिंग खल पुल्लिंग, प्रीति स्त्रीलिंग। संभवतः इसीसे यह भाव निकालागया है। पर प्रत्यक्ष तो यहाँ दुष्टोंकी प्रीति ही का दिखाना अभिप्रेत है—मा० सं०)।

* समानार्थक श्लोक—'ज्यालम्बमाना जलदा वर्षन्ति स्फूर्जिताम्बराः। यथा विद्यामुपालभ्य नमन्ति गुणिनोजनाः॥ १॥—(विष्णु पु०)॥ गिरयो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—१ 'जथा नवहिं बुध विद्या पाए' इति। उदाहरणमें समता—(क) मेघ आकाशसे उतरकर नीचे आतेहैं। विद्या-संपन्न होना आकाशमें स्थिर होना है, उसे पाकर विनम्र होना मेघोंका भूमि पर आना है। (ख) मेघ जल बरसातेहैं इसीसे जलद (जल देनेवाला) नाम है, पंडित लोग विद्यादान देतेहैं।‡ २—'बुध' का भाव कि विद्या पाकर 'बुध' ही नवतेहैं, अबुध नहीं। यथा—'अधम जाति मैं विद्या पाए। भयउँ जथा अहि दूध पियाए'। ३—मेघोंका आकाशमें छाना, गरजना, बिजलीका चमकना, मेघोंका पृथ्वीके निकट आना और बरसना ये सब क्रमसे वर्णन किए। ४ ☞ विद्या पाकर बुद्धिमान विनम्र होतेहैं'। यथा—'विद्या ददाति विनयं'। यह नीति है। विद्यावान्‌को विनयसंपन्न होना चाहिए।]

"बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे।०"

१ संत पर्वत हैं। २ खलके वचन बूंद हैं। ३ वचन अनेक, बूंद अनेक ४ खलके वचन सहनेमें संत गिरिके समान जड़ हैं, इनके हृदयमें वचन प्रवेश नहीं करते जैसे पाषाणमें पानी प्रवेश नहीं करता।—[मा० म०—संत शरणागतरूपी वृक्षके नीचे होकर चोटको सहन करलेतेहैं।]

५ खलके वचन औरोंको वज्रसमान हैं, यथा—'बचन बज्र जेहि सदा पिआरा'। वही सन्तोंके निकट पानीके बूंदके समान हैं, कुछ बाधा नहीं करसकते।

[नोट—'सहहिं' पदमें ध्वनि है कि उन्हें पल्टा (बदला) देनेका सामर्थ्य है पर वे जड़की तरह सहलेतेहैं अपने मनमें किंचित् विक्षेप नहीं होनेदेते। यहाँ उपदेश है कि संतको क्षमा चाहिए।] मिलान कीजिये—

वर्षं धाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः। अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाधोक्षजचेतसः ॥२॥ —(भा० स्क १० अ० २०।१५)।

‡ मा० म०—१ (क) मेघ समुद्रसे जल कर्षण करके पृथ्वीपर बरसाताहै वैसेही पंडितलोग महापंडितोंसे विद्या प्राप्त करके विद्यार्थियोंकी बुद्धिरूपी भूमिपर विद्यारूपी जलको बरसातेहैं। (ख) जैसे जल आकाशसे पतन होकर नदियोंमें भरताहै वैसेही दयावश पंडितलोग घूमघूमकर शब्दवृष्टि कर विद्यार्थियोंका भरण करतेहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"दुर्जन बदन कमान सम वचन विमुच्चत तीर।
सज्जन उर वेधत नहीं छमा सनाह सरीर ॥१॥"
"सील गहनि सबकी सहनि कहनि हिये मुख राम।
तुलसी रहिए यह रहनि संत जननको काम ॥२॥"
"बचन तून जिह्वा धनुष वचन पवन गमतीर।
साधुनके लागै नहीं छमा सनाह सरीर ॥३॥"

टिप्पणी ५—'सहहिं गिरि' में ध्वनि यह है कि वर्षाके बूंद हमसे नहीं सहे जाते, पर्वत सहतेहैं—(वा, हे लक्ष्मण ! वे कैसे सहलेतेहैं, हमसे तो नहीं सहे जाते)। तात्पर्य कि विरहीको वर्षा दुःखदायी है, यथा—'वारिद तप्त तेल जनु बरिसा'। ६—मेघ प्रथम पहाड़पर बरसतेहैं इसीसे प्रथम पहाड़पर बरसना लिखा। यहाँ नीतिहै।

६ पां०—संभव है कि कोई कहे कि वृक्ष, मनुष्य, पशु आदि सभी बूँदकी चोटको सहलेतेहैं जिसपर ही वह पड़तीहै, तो उसका उत्तर यह है कि वेभी सहलेतेहैं पर 'अघात' से वेधित होकर वे दुःखित होजातेहैं पर पर्वतको कुछ पीड़ा नहीं होती; वैसेही खलोंके वचनसे सबका मन बिगड़ जाताहै पर सन्तोंका अन्तष्करण इतना शुद्ध है कि वह उनके वचनोंसेभी नहीं बिगड़ता।

७ पं०—जब तक मेघ छूछे थे तबतक ऊँचे पर थे, जब जलसे लदकर बरसनेवाले हुए तब नीचे झुक आए।

८ मयूख—यदि बूँद-अघात पर्वत न सहसके तो उसकी निन्दा हो, वैसेही संत यदि खलकी वाणी सुनकर न सह सकें तो उनके नाम को लज्जा है।

छुद्र नदी भरि चली तोराई।
जस थोरेहु धन षल इतराई ॥ § १३ (५)

शब्दार्थ—'तोराई'=वेगसे। त्वरासे।

अर्थ—छोटी नदी भरकर वेगसे चलने लगी जैसे थोड़ाभी धन पाकर खल गर्व करनेलगताहै।

टिप्पणी १—क्षुद्र नदी गंभीर नहीं है और न पेटकी भारी है इसीसे थोड़ेही जलसे उभर कर बेमर्याद चली, और घर और वृक्ष ढाती, कृषीको डुबाती, मार्ग रोकती, इत्यादि भारी उपद्रव करके सूखजा-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तीहै। यही दशा खलकी है। थोड़ाभी धन हुआ कि उसे गर्व हुआ, अपनेमें नहीं समाता। उसका धनभी क्षुद्र नदीकी तरह शीघ्र बह-जाताहै पर जबतक रहताहै तबतक वह उपद्रव करताही रहताहै।

२—क्षुद्रनदीकी उपमा देनेके भाव—

(I) क्षुद्रनदी मूलरहित है और खल भगवद्भक्तिरहित है इसीसे उसका धन जल्दी नष्ट होजाताहै। यथा—

"रामबिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥
सरितमूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गए पुनि तबहिं सुषाहीं॥"

(II) खलके मन वचन कर्म तीनों नष्ट हैं। (क) मन चंचल है; यथा—'खल कै प्रीति जथा थिरु नाहीं'। प्रीति करना मनका धर्म है। (ख) वचन कठोर है, यथा—'खलके बचन संत सह जैसे' (ग) कर्म नष्ट है, यथा—'जस थोरेहु धन खल इतराई'। इतराना कर्म है।

३—पहाड़का पानी नदीद्वारा चलाकर अब आगे भूमिके जलका वर्णन करतेहैं। यहाँ नीति है।

मा० म०—इस नदीमें न तो पहिलेही जल था न पीछे रहेगा, इधरसे आया उधर गया, अन्ततः कणमात्रभी नहीं रहजाता। वैसेही खलका आदि अंतमें पेट जलताही रहताहै, किंचित् धन बीचमें हाथ लगगया तो विषय, युद्ध और खेलमें व्यय करताहै एवं तत्कालही धनका नाश होजाताहै।

नोट—१ यहाँ क्षुद्रनदी और खल, धन और जल, नदीका शीघ्रतासे (त्वराके साथ) बहने और खलके इतराने एवं धन व्यय करडालनेसे रूपकहै, २—खलके पास अन्यायसेही उपार्जन कियाहुआ धन रहताहै इसीसे वह बुरे कर्मोंमेंही लगताहै। ३—समानार्थक श्लोक विष्णुपुराणमें यह है—'ऊर्द्धरुन्मार्गगामीनि निम्नगांभांसि सर्वतः। मनांसि दुर्विनीतानां प्राप्य लक्ष्मीं नवामिव॥' अर्थात्—मर्यादा तोड़कर क्षुद्रनदियोंके जल ऐसे बहनेलगे जैसे दुर्विनीत पुरुषोंके चित्त धन प्राप्त कर मर्यादा छोड़कर बहने लगतेहैं।

भूमि परत भा ढाबर पानी।
जनु जीवहि माया लपटानी॥ (१३ (६)

अर्थ—पृथ्वीपर पानी पड़तेही गँदला होगया। मानों जीवको माया लपटगई है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी १—'भूमि परत' का यह भाव कि पत्थरपर गिरनेसे कम मैला हुआ, जब भूमिपर पड़ा तब बहुत मलिन होगया। २—गिरिकी उपमा साधुसे दी—'बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खलके बचन संत सह जैसे'—और भूमिकी उपमा मायासे दी। इसका तात्पर्य्य यह है कि जब जीव साधु-कुलमें अवतार लेताहै तब माया कम लपटतीहै और जब मायिक जीवोंके यहाँ अवतार लेताहै तब माया खूब लपटतीहै। ३—'भूमि परत' का संबंध जल और जीव दोनोंमें है। जब जल आकाशमेंरहा तब निर्मल रहा, भूमिपर पड़तेही रज लपटगई और वह मलिन होगया। ऐसेही जब जीव गर्भमें रहा तब उसको अपने स्वरूपका ज्ञान रहा और वह निर्मल रहा; पर भूमिपर पड़तेही माया लपटगई, और वह मलिन होगया। * यहाँ ज्ञान है।

मा० म०—१ भाव यह कि रजमें जल मिलाहुआ दिखाईपड़ताहै परन्तु दोनोंका भिन्न करना दुस्तर है, यद्यपि दोनोंमें वास्तविक भेद

---

* १ यथा—'जिव जब ते हरि ते बिलगान्यो। तब ते देह गेह निज जान्यो।
माया बस सरूप बिसरायो। तेहि भ्रम ते दारुन दुख पायो॥
... ...
तैं निज कर्मडोरि दृढ़ कीन्ही। अपने करन गाँठि गहि दीन्ही॥
ताते परबस परेउ अभागे। ता फल गर्भबास दुख आगे॥
छंद—आगे अनेक समूह संसृत उदरगति जान्यो सोऊ। सिर हेठ ऊपर चरन संकट बात नहिं पूछै कोऊ॥ सोनित पुरीष जो मूत्र मल कृमि कर्दमावृत सेवही। कोमल सरीर गँभीर बेदन सीस धुनि धुनि रोवही॥३॥
तू निज कर्मजाल जहँ घेरो। श्रीहरि संग तज्यो नहिं तेरो॥
बहु बिधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हो। परम कृपालु ज्ञान तोहि दीन्हो॥
छंद—तोहि दियो ज्ञान बिबेक जन्म अनेक की तब सुधि भई। तेहि ईसकी हौं सरन जाकी बिषम माया गुनमई॥ जेहि किये जीव निकाय बस रसहीन दिन दिन अति नई। सो करौ बेगि सँभार श्रीपति बिपति महँ जेहि मति दई।४।
पुनि बहु बिधि गलानि जिय मानी। अब जग जाइ भजौं चक्रपानी॥
ऐसहि करि बिचार चुप साधी। प्रसव पवन प्रेरेउ अपराधी॥
छंद—प्रेरेउ जो परम प्रचंड मारुत कष्ट नाना तैं सह्यो। सो ज्ञान ध्यान बिराग अनुभव जातना पावक दह्यो॥...' इति विनये। यही बात भगवान् कपिलदेवने मातासे (भागवतमें) कहीहै। २—यहां उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है तथापि देखनेमें समान मालूमहोताहै। माया जीवकी सत्यतासे सत्य भासतीहै और जीव मायाकी जड़तासे जड़ अर्थात् मलिन भासताहै। २ मयूख—जल पृथ्वीमें गिरनेसे ढाबर होजाताहै तैसेही जीव लघुयोनिमें पड़कर भ्रष्ट होजाताहै, जलका तालाबमें गिरना मानों अच्छी योनिमें प्राप्त होकर सत्संगमें रहनाहै और जो जल गंगामें पड़ा वह मानों महा श्रेष्ठ योनि है जैसे जीव उत्तम कुलमें जन्म लेकर मानसमें रत रहे।

समिटि समिटि जल भरहिं तलावा।
जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा॥ § १३ (७)

सिमटना=दूरतक फैलीहुई वस्तुका थोड़े स्थानमें आजाना, बटुरना, इकट्ठा वा एकत्र होना।

अर्थ—सिमिट सिमिटकर जल तालाब भरतेहैं जैसे सद्गुण सज्जनके पास आतेहैं।

टिप्पणी १—पहाड़का जल सिमट कर नदीमें गया और पृथ्वीका जल बटुरकर तालाबमें भरताहै। २—'समिटि समिटि' का भाव कि उत्तम गुण सज्जनके हृदयमें क्रमसे आतेहैं, एकही बार सब शास्त्र हृदयमें नहीं भरजाते। ३—'आवा' अर्थात् अनायास आपसेही आ प्राप्त होतेहैं, जैसे जल तालाबमें आआकर भरताहै। तालाबको कुछ प्रयत्न नहीं करना पड़ता। यथा—'पुन्यपुरुष कहँ महि सुख छाई॥ जिमि सरिता सागर महँ जाई। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥'

☞सज्जन अपने गुणोंसे शत्रु, मित्र, उदासीन, पशु, पक्षी, मनुष्य इत्यादि सबको तालाबकी नाईं सुख देतेहैं और खल अपने क्षुद्र धनसे क्षुद्रनदियोंकी तरह सबको दुःखही देतेहैं।

पां०—जल कहीं बरसे पर सब जगहसे बटुरकर तालाबमें जाताहै जो उसका पात्र है। वैसेही सद्गुणको कोई कहे सुने पर वह सज्जनकेही पास जाताहै।

करु०—देव बूंदबूंद बर्षतेहैं। उससे तालाब भरतेहैं। वैसेही एकएक दोदो गुण जो दूसरोंमें मिलतेहैं उनसे सज्जन सद्गुणसिंधु होजातेहैं जैसे दत्तात्रेयभगवान् २४ प्राणियोंसे गुण प्राप्तकरके परमहंस होगए।—(कथा भागवतमें है, पूर्व आचुकीहै)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मा० म०—ऊँची जमीनपर पानी टिकता नहीं इसीसे बहकर तालावको भरदेताहै। सद्गुण कहीं एक कहीं दो रहजाताहै। पर अवगुण समाजमें नहीं ठहरता। इसीसे सन्तसमाजमें जाकर सब सद्गुण शोभा पातेहैं। नोट—समानार्थक श्लोक ऋग्वेदमें है, यथा—

'वित्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः।
तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वा जयन्त आर्जि न जग्मुर्गिवाहो॥'

सरिता-जल जलनिधि महुँ जाई।
होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥ § १३ (८)

अर्थ—नदीका जल समुद्रमें जाकर अचल (स्थिर) होजाताहै जैसे जीव हरिको पाकर अचल होजाताहै।

टिप्पणी—१ (क) जो जल तालावमें नहीं गया वह आकर नदीमें मिला। तब समुद्रमें नदीका मिलान कहा। (ख) सरिताका-प्रसंग—'छुद्रनदी भरि चली तोराई' पर छोड़कर बीचमें भूमि और तालावके जलका वर्णन करनेलगेथे, अब पुनः नदीके जलका प्रसंग उठातेहैं—'सरिताजल...'। (ग) 'सरिता' नाम दिया क्योंकि उसका अर्थ है 'बहा हुआ,बहता हुआ अर्थात् चल'।—सरति गच्छति इति सरित। उसका अचल होना कहनेके सम्बन्धसे 'चल' अर्थ-सूचक नाम दिया। सरिताजलकी तरह जीवभी चल है, यथा—'आकर चारि लाख चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥ फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥'—(उ० §४३)। २—'जलनिधि' का भाव कि जलका अधिष्ठान समुद्र है इसी-तरह समस्त जीवोंका अधिष्ठान ईश्वर है।

'होइ अचल जिमि जिव हरि पाई'

पं० रामकुमारजी—(क) यहाँ 'हरि' नाम जीवके क्लेश हरणक-रनेके सम्बन्धसे दिया। भगवत्प्राप्ति होनेसे जीवका क्लेश दूर होताहै (ख) बड़ी नदीमें बहुतसे नदी नद आकर बीचमें मिले पर उसका जल अचल न हुआ; क्योंकि वे सब तो आपही बहरहेहैं तब दूसरेको अचल कैसे करसकतेहैं? इसीतरह अनेक देवी देवताओंकी उपासना-करनेसे जीवका भवप्रवाह नहीं मिटता; क्योंकि देवता तो आपही भवप्रबाहमें पड़ेहुएहैं। यथा-'भवप्रबाह संतत हम परे। अब प्रभु पाहि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सरन अनुसरे' इति देवविनती—(लं० १०८)। (ग)—जल समुद्रसे पृथक् होकर नदीद्वारा पुनः समुद्रमें मिलकर स्थिर हुआ। इसी प्रकार जीव हरिसे पृथक् हुआ और सत्संगद्वारा पुनः हरिको पाकर जन्ममरणसे रहित होताहै।—(मा० म०)। [मा० म०—जो जल नदीमें नहीं पड़ा वह जहाँतहाँ रहगया, वैसेही जो जीव हरिकेभेजेहुए महात्माओंकी शरण नहीं गए वे भवप्रवाहमें पड़ेरहे। जो गए वे उनकेद्वारा हरिको प्राप्तकर दुःखसे छूटगए।—'रामसरूपसिंधु समुहाहीं।'] (घ)—'हरि पाई' का भाव कि उसको कहीं जाना नहीं पड़ता, ईश्वर अपने हृदयमें विराजमान है। ☞ यहां ज्ञान है।

समानार्थक श्लोक, यथा—'भवन्त्यापो नदीनां तु वारिधिं प्राप्य सुस्थिराः। जन्तवो हि यथा सर्वे स्थैर्यं यान्ति हरिं श्रिताः।'

हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाषंड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ॥ ◊ १४

संकुल=संकीर्ण, भरी हुई, परिपूर्ण।=समूह

अर्थ—घाससे परिपूर्ण पृथ्वी हरी होगईहै (इसीसे) मार्ग नहीं समझपड़ता। जैसे पाखण्ड विवादसे उत्तम ग्रंथ गुप्त होजातेहैं।

टिप्पणी १—भूमिपर वर्षाका होना कहा, यथा—'भूमि परत भा ढाबर पानी'; अब भूमिके जलका कार्य्य कहतेहैं कि 'हरित भूमि तृन संकुल...'। २—'पाषण्ड बाद', यथा—'साखी सब्दी दोहरा कहि कहनी उपषान। भगति निरूपहिं कलिभगत निंदहिं बेद पुरान॥'—(दो०)। पाखंडवाद कोई मार्ग नहीं है किन्तु तृण समान मार्गका भ्रम करनेवाला है। घासके काटनेसे मार्ग खुलजाताहै इसी प्रकार पाखण्ड वादके खण्डनसे वेदमार्ग खुलजाताहै।

☞ गोस्वामीजीने वर्षा और शरद दो ऋतुओंका वर्णन कियाहै। प्रत्येक ऋतुमें दो मास होतेहैं। श्रावण और भाद्रपद वर्षाके महीने हैं, आश्विन और कार्तिक शरदके दोनों मास हैं। गोस्वामीजीने एक एक दोहेमें एक एक मासका वर्णन कियाहै इस दोहेमें यहांतक श्रवणका वर्णन करके अगले दोहेमें भादोंका वर्णन करतेहैं। यहां नीति और ज्ञान है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नोट—इस दोहेके भाव निम्न श्लोकोंसे मिलतेहैं। श्लोकोंका भावार्थ यह है कि मार्ग तृणसे आच्छादित होजानेसे संदिग्ध होगएहैं, यह नहीं जानपड़ता कि किस मार्गसे किधरको जायँ, कौन मार्ग किस स्थानका है एवं मार्ग कहांपर है, संदेह होनेसे किसी ओर जा नहीं सकते, चलना बंद होगया। जैसे बहुत काल होजानेसे वा कलिकालके प्रभावसे ब्राह्मणोंसे न अभ्यस्तकीहुई श्रुतियाँ नष्टभ्रष्ट होजातीहैं अर्थात् अभ्यास न होनेसे विस्मृत होगईं वा पाखण्ड-विवाद बढ़गयाहै इससे संदेह उत्पन्न होजाताहै कि कौन मानी जायँ कौन न मानी जायँ। ठीक वेदमार्ग क्या है यह समझ नहीं पड़ता। गोस्वामीजी 'गुप्त होहिं' लिखतेहैं। भाव कि वैराग्य ज्ञान सद्मार्गवाले ग्रन्थोंका ही पता न रहगया,पाखंडी लोग ग्रन्थ रचरचकर उन्हींको सद्ग्रन्थ बतानेलगे जिससे भ्रम होगया कि वस्तुतः कौन सद्ग्रन्थ है कौन नहीं।

यथा भागवते—'मार्गा बभूवुः संदिग्धास्तृणैश्छन्नाह्यसंस्कृताः। नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव॥ (१०-२-१६)॥ (जलौघैः निरभिद्यन्त सेतवो वर्षतीश्वरे।) पाखण्डिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा॥'—(१०-२०-२३)॥ अर्थात् सारे मार्ग वर्षाकालके कारण पहिचाने नहीं जाते,लम्बी लम्बी घास रास्तोंमें खड़ी होगई, जिस तरह कलिकालके कारण श्रुतियाँ द्विजोंसे न पढ़नेके कारण संदिग्ध होगईहैं। (१०-२-१६)॥ वरुण या इन्द्रदेवताकी कृपासे अधिक वर्षा पड़नेके कारण जलसमूहने पुल, मर्यादा तोड़डाली—जिसप्रकार कलिदेवताके बरसनेपर पाखण्डी जड़ (ल) समूहने वेद-मर्यादा ध्वस्त करादी॥ (१०-२-२३)॥

दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई।
बेद पढहिं जनु बटु समुदाई॥ § १४ (१)
नव पल्लव भये बिटप अनेका।
साधक मन जस मिले बिबेका॥ ,, (२)

अर्थ—चारों ओर मेंढकोंकी सुहावनी ध्वनि भली लगतीहै मानों ब्रह्मचारियोंके समुदाय (समूह, वृंद, झुण्ड) वेद पढ़रहेहैं। अनेक (प्रकारके) वृक्ष नवीन पत्तोंसे युक्त होगए जैसे साधनकरनेवालेके मनमें विवेक प्राप्त होजाय।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी १—'बेद पढहिं जनु बटु समुदाई' इति। (क) सामवेदियोंकी श्रावणी भादोंमें होतीहै,—'मासिप्रौष्ठपद ब्रह्म ब्राह्मणानां विवक्षताम्। अयमध्याय समयः सामगानामुपस्थितः' ॥ (वा० २८। ५४।) अर्थात् भादोंके महीनेमें वेद पढ़नेवाले सामवेदी ब्राह्मणोंके लिए यह अध्यायका समय है।—इसीसे भादोंवाले दोहेमें वेदका पढ़ना लिखतेहैं। ☞ यहां भक्ति ज्ञान है।

दादुर-ध्वनि और वेद-ध्वनि की समता

पं० रामकुमारजी—१ (क) दादुरध्वनिको वेदध्वनिकी उपमा दी; क्योंकि दोनोंकी ध्वनि समान होतीहै। (ख)— दादुरकी ध्वनिको वेदध्वनिकी उपमा दी, वेदध्वनि सुहावनी होतीहै इसीसे उसकोभी 'सुहाई' विशेषण दिया। (ग)—जहाँ रघुनाथजी बैठेहैं वहाँ चारों ओरसे दादुरध्वनि सुनपड़तीहै, दादुर चारों ओर जलाशयोंके निकट बोलरहे हैं। और ब्राह्मणभी ग्रामके चारों ओर जलाशयोंके निकट बैठकर श्रावणी किया करतेहैं अर्थात् वेद पढ़तेहैं। (घ) दादुरकी बोली सुहावनी लगतीहै पर समझमें नहीं आती और वेदपाठ सबको सुहावन लगताहै पर सर्वसाधारणके समझमें नहीं आता।

२—मा० म०—मेघके गर्जनको सुनकर दादुर बोलतेहैं वैसेही पूर्णवैदिक (वेदज्ञाता) के वाक्य (आह्वान) सुनकर बटुगण जोरसे वेद घोषने लगतेहैं। यहां घन और वैदिक, बटुगण और दादुरवृंद, नभ और ऊँचा स्थान, गरजना और पढ़ाना, शब्द करना और पढ़ना, और, ध्वन्यात्मक और स्वरहीन शब्दके उच्चारणसे एक रूपक है। ३—यहां उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा है।

विटप और साधकमें समता

१ वृक्ष ग्रीष्म-तापसे तपे तब साधक अष्टाङ्गयोगसाधनमें प्रथम क्लेश
वर्षामें नवपल्लवयुक्त हुए।····· सहतेहैं तब उनको विवेक मिलताहै।
२ वृक्ष जड़ और अचल·····साधक क्लेश सहनेमें वृक्षवत् जड़ और अचल।
३ वृक्षमें पल्लव फूट आए···साधकके मनमें विवेक आगया किसीको सिखाना न पड़ा
४ नवपल्लवका कारण वर्षा ज्ञानका कारण साधन
५ मा० म०—साधकका तन वृक्ष, साधन ग्रीष्मऋतु, साधकका श्रम ग्रीष्मका तीक्ष्णघाम, मोहराजसमाज (कामक्रोधादि) पत्ते, साधनसे कामादिका अंतः करणसे दूर होना पत्तोंका झड़ वा सूखजाना, साधन-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

फलरूपी विवेक (इसीके लिए साधन कियाथा) पावसजल, साधक दुर्बलसे हृष्टपुष्ट और वृक्षके पत्ते हरे भरे-इस प्रकार इनका एक रूपक है।—(मा० म०) ।

☞ यहाँ ज्ञान कथन हुआ। समानार्थक श्लोक ये हैं—

यथा—"श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मंडूका व्यसृजन् गिरः। तूष्णींशयानाः प्राग्यद्वद्ब्राह्मणा नियमात्यये ॥ ९ ॥ पीत्वापः पादपाः पद्भिरासन्नानात्ममूर्तयः। प्राक्क्षामाः तपसा श्रान्ता यथा कामानु सेवया ॥ २१ ॥" —(भा० स्कं० १० अ० २०) ॥ अर्थात् प्रथम मौन बैठे हुए मेंढक मेघों का शब्द सुनकर बोलने लगे जैसे प्रथम चुपचाप बैठे हुए ब्राह्मण विद्यार्थी नित्य नियम समाप्त होनेपर गुरुका आह्वान सुनकर वाणी उच्चारण करने लगतेहैं। ग्रीष्मसे तप्त होकर वृक्ष सूखगएथे वे जड़ों द्वारा जलपानकर नए पत्र पुष्पादिसे अनेक देह रूपवाले होगए जैसे तपस्या करनेसे पूर्व दुर्बल इन्द्रियोंसे शिथिल हुए साधक मनोकामनाकी प्राप्तिसे स्थूल देहवाले होजातेहैं।

अर्क जवास पात बिनु भयऊ।
जस सुराज खल उद्यम गयऊ॥ § १४ (३)
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी।
करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी॥ ,, (४)

अर्थ—मदार और जवासा बिना पत्ते के होगए जैसे सुन्दर राज्य एवं स्वराज्य में खलका उद्यम (व्यापार, धंधा) जाता रहा †। धूल कहीं ढूंढ़ने से नहीं मिलती जैसे क्रोध धर्मको दूर कर देताहै (क्रोध करनेसे धर्मका पता भी नहीं रहजाता)। ‡

† मा० म०—१ अर्क अर्थात् सूर्यके आठवें नक्षत्र पुष्यगत होनेसे जवासा जलगया। खल उद्यम पत्तेहैं जो जलगए। पुनः, शिशिररूपी कुराज्यमें प्रकट होतेहैं। अथवा अकवन और हिन्गुआ दोनों पावसमें नाश होगए जैसे भूपरूपी मेघके नीतिरूपी जलसे खलरूपी जवास पत्रहीन होजातेहैं। ‡ २ मा० म०—भाव यह है कि धूर कीचड़ होगई तैसेही क्रोधसे धर्म सूख जाताहै और क्रोधधर्म अर्थात् तामस-धर्म बढ़जाताहै। तात्पर्य कि हृदयरूपी तामसभूमि पर मनरूपी आकाशसे जब क्रोधरूपी नीर पड़ा तो धर्मरूपी धूर अबरूपी पंक होगया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

❀ जस सुराज षल उद्यम गयऊ" इति ❀।

१—(क) ग्रीष्म ऋतुमें जब कि पौधे विना पत्तेके होगए तब अर्क और जवासमें पत्ते हुए और वर्षा ऋतुमें जब सब वृक्ष पल्लवयुक्त हुए तब ये दोनों पल्लवहीन हुए। इसी तरह कुराज्य (वा, परतंत्रराज्य) में जब सब लोग दुःखी होते हैं तब खल सुखी होते हैं और सुराज वा स्वराज्य में जब सब सुखी रहतेहैं तब खल दुःखी होतेहैं। यहां ग्रीष्म कुराज और वर्षा सुराज है। (ख) मदार के पत्ते बड़े होतेहैं और जवास के छोटे। यहां दोनोंको एक खलकी उपमा देकर जनाया कि खलके छोटे बड़े सभी उद्यम नाश होजातेहैं। पुनः, (ग)—'पात बिनु भयऊ' पद देकर यह समता दिखायी कि जैसे मदार और जवास वर्षामें बने रहतेहैं केवल पत्रहीन होजातेहैं वैसेही सुराज्यमें खल बने रहते हैं पर उनका उद्यम नहीं रहजाता। पुनः, (घ)—सब वृक्ष साधु हैं, अर्क और जवास खलहैं। अर्क और जवासके नाम दिए पर अन्य वृक्षोंके नाम नहीं दिए। कारण यह कि पल्लवयुक्त वृक्ष बहुत हैं उनको कहाँ तक गिनाते इससे उनको "अनेक" कह दिया, यथा—"नव पल्लव भए बिटप अनेका"। और, जो पल्लवरहित हुए वे दोही हैं जो प्रसिद्ध हैं अतः इनके नाम देदिए। (यहां 'तृतीय उल्लास' है)।

२—सुराज्यमें प्रायः सब सज्जनही होतेहैं। 'यथा राजा तथा प्रजा' प्रसिद्धही है। वहां जो दो एक दुष्टात्मा होतेहैं उन्हें सब जान लेतेहैं वे नक्कू होजातेहैं, इसीसे उनका पुरुषार्थ नहीं चलसकता। सब उनको जानतेहैं अतः कविने उनका नाम दिया।

टिप्पणी—'करइ क्रोध जिमि धर्महि दूरी' इति।—भाव कि वेद पुराणमें ढूँढ कि क्रोध करनेसे धर्म रहताहै तो कहीं न मिलेगा। २—धर्मको धूरि कहने का भाव कि—(क) जैसे धूरि सूक्ष्म वैसेही धर्मकी गति सूक्ष्म होतीहै। (ख) धूरि बहुत वैसेही धर्म बहुत। (ग) वर्षा होनेसे धूलिका नाश और क्रोध होनेसे धर्मका नाश है। (घ) जहाँ पानी नहीं पड़ा वहां धूलि है, जहां क्रोध नहीं वहां धर्म है।

❀ यथा विष्णु पुराणे—"बभूवुर्निश्छदा वृक्षा अर्कयावासकास्तथा। सुराज्ये तु यथा राजन् न चलन्ति खलोद्यमाः॥" अर्थात्—सब वृक्ष, आकड़ा और जवासा वगैरह पत्तों से रहित होगए। जिस प्रकार सुराज्यमें खल पुरुष उद्यम रहित हो जाते हैं॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३—"धर्महि दूरी" का भाव यह है कि क्रोधी धर्म करताहै, पर धर्म ही उसके निकट नहीं आता। तात्पर्य कि क्रोध करके जो धर्म किया जाताहै उसमें धर्म नहीं होता। क्रोध पापका मूल है, इसीसे धर्म पाप से दूर भागताहै। ☞ यहां नीति और ज्ञान है। 'जस सुराज खल उद्यम गयऊ' में नीति है।

प्र०—धूलि कहीं नहीं मिलती क्योंकि वर्षा होनेसे कुपथ (अधर्म) रूपी पंक बढ़ा। जैसे क्रोध धर्मको दूर कर देताहै अर्थात् क्रोधसे अविवेक और अनीतिकी बाढ़ होतीहै।

ससि संपन्न सोह महि कैसी।
उपकारी कै संपति जैसी॥ §१४ (५)
निसि तम घन खद्योत बिराजा।
जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा॥ ,, (६)

शब्दार्थ—ससि (सं० शस्य)=अनाज, अन्न।

अर्थ—अन्नसे सम्पन्न पृथ्वी कैसी शोभित होरहीहै जैसी परोपकारीसे सम्पन्न संपत्ति (सोहतीहै)। रात्रिमें अंधकार और बादल होनेसे जुगुनू प्रकाशित एवं शोभित हैं मानों दंभियों (पाखण्डियों) का समाज आजुटा है।*

नोट—खेतीसे पृथ्वी शोभित है। इसमें खेती पृथ्वीकी संपति है। इस प्रकार 'ससि संपन्न सोह महि' में संपत्तिकी उपकारीसे शोभा

---

* यथा—क्षेत्राणि सस्यसंपद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः।
धनिनामुपतापं च दैवाधीनमजानताम्॥
निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भांतिनो ग्रहाः।
यथा पापेन पाखंडा नहि वेदाः कलौ युगे॥
भा० स्कं० १० अ० २० श्लो० ८

अर्थात्—हरेभरे खेत किसानोंको खुश करतेथे—और धनियोंको दुःख देतेथे—जो कि धनी बेवकूफ़ थे, यह न जानतेथे कि सब दिन एकसे नहीं होते, न जाने कब भाग्य पलटा खाजाय। निशाके प्रारम्भके अन्धकारमें अँधेरेके कारण ग्रह नहीं चमकतेथे। जैसे पापके कारण पाखण्ड कलिमें चमकतेहैं, प्रतिष्ठा पाते हैं, पर वेद या वेदज्ञ नहीं पाते।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कहीगई। अन्य प्रसंगोंमें पृथ्वी "उपकारी" है, यथा—'संत विटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्हि कै करनी'। परन्तु प्रस्तुत उदाहरणमें 'उपकारी की संपति जैसी शोभितहो' ऐसा कहतेहैं अर्थात् इसमें उपकारीसे संपत्तिकी शोभा कही। ऐसा कहकर कवि जनातेहैं कि संपतिसे उपकारीकी शोभा है और उपकारीसे संपत्ति की। संपत्ति हो और उपकारमें न लगे तो अशोभित है और उपकारी हो पर पास संपत्ति न हो, तो उपकारी होनेसे ही क्या लाभ? इससे अन्योन्य शोभा दिखाई। परन्तु प्रस्तुत प्रकरणमें पृथ्वी और सम्पत्ति समान लिंगमें होनेसे दोनोंमें दार्ष्टान्त और दृष्टान्तका भाव है।

टिप्पणी—१ 'उपकारी' कहनेका भाव कि—खेतीसे अनेक जीवोंका उपकार होताहै। ऐसेही उपकारीकी संपतिसे बहुत जीवोंका उपकार है। यह नीति है। २—खेतीसे पृथ्वीका कुछ उपकार नहीं, केवल शोभा है; ऐसेही उपकारीकी संपत्तिसे सबका उपकार होताहै पर उपकारी उसे अपने उपकारमें नहीं लाता।

३—(क) "निसि तम" का भाव कि रात्रिके अंधकारमें जुगुनू सोहतेहैं, दिनके अंधकारमें नहीं सोहते, यद्यपि दिनमेंभी अँधेरा होताहै, यथा—'कबहुँ दिवस महँ निबिड तम"। (ख) 'बिराजा' का भाव कि रात्रिके अँधेरेमें जुगुनू 'राजते' हैं और मेघोंके होनेसे विशेष 'राजतेहैं'। (ग) 'घन' कहकर जनाया कि आकाशमें चन्द्रमा वा तारागण कोई नहीं प्रकाश करते तब खद्योत प्रकाश करतेहैं। ऐसेही जहाँ कोई विद्वान् वेद-पुराण शास्त्रका प्रकाश करनेवाला नहीं है वहाँ दंभी दंभकी बातें कहकर अपना २ प्रकाश अँधेरेमें दिखातेहैं।—(प्र०—परन्तु जैसे खद्योत-समाजसे अंधकार दूर नहीं होता वैसेही दंभी अपने चमत्कारसे अज्ञानतमको दूर नहीं कर सकते।)

नोट—इसका भाव भागवतके श्लोकसे यह निकलताहै कि वर्षाके अंधकारसे आकाश छाया हुआहै, कोई ग्रह नक्षत्र नहीं देख पड़ते तब जुगुनू चमकतेहैं। ऐसेही कलिमें पापके छाजानेसे वेदादिका प्रकाश नहीं देखपड़ता, दंभी पाखंडी और उनका दंभही सर्वत्र चमचम होताहै।

महावृष्टि चलि फूटि किआरी।
जिमि सुतंत्र भये बिगरहिं नारी॥ ॰१४ (७)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कृषी निरावहिं चतुर किसाना ।
जिमि बुध तजहिं मोह मद माना ॥ ,, (८)

अर्थ—महावृष्टि (वर्षाकी बहुत बड़ी झड़ी) से क्यारियाँ फूट चलीं जैसे स्वतंत्र होनेसे स्त्रियाँ बिगड़जाती हैं। चतुर किसान खेती को निरातेहैं। (घास तृण निकाल फेंकतेहैं) जैसे पंडित लोग मोह-मदमानका त्याग करतेहैं।

टिप्पणी—१—"चलि फूटि" अर्थात् फूटकर बहजातीहै, ठिकाने नहीं रहती। ऐसेही स्त्री स्वतंत्र होनेसे बिगड़कर बहजातीहै। नारी कियारीके समान है, स्वतंत्रता महावृष्टिके समानहै। - यहाँ नीति है।*

२—(क) 'चतुर' विशेषण दिया क्योंकि तृणको निकालकर खेती-की रक्षा करतेहैं, यही किसानकी चतुरताहै। (ख) मोह मद मान तृण हैं। इनको हृदयसे निकालकर भक्तिरूपी कृषिकी रक्षा करना बुद्धिमान-की चतुरताहै। मोहमदमानको त्यागकर भजन करना चाहिए, यथा—'परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस'। (ग) 'बुध' का भाव कि मोह मद मानका त्याग बुधही करसकतेहैं अबुध नहीं; यथा—"पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह विटप नहिं सकहिं उपारी॥" ☞ यहाँ ज्ञान है।†

* यथा--"जलौघैर्निरभिद्यंत सेतवो वर्षतीश्वरे"—(भा० १०-२०-२३)। "स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव"—(श्ल० १)। इंद्रके वर्षा करनेसे जलसमूहसे पुल टूट गए। अस्थिर प्रेमवाली कामिनी गुणवान् पुरुषके पासभी नहीं रुकसकती। पुनः यथा मदनपारिजाते—"अस्वतंत्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैश्च दिवानिशम्। नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः॥ सुरूपं वा कुरूपं वा पुमानित्येव भुंजते"॥ अर्थात्—स्त्रियोंको स्वतन्त्र नहीं छोड़ना चाहिए—रातदिन इनपर निगाह रखनी चाहिए। मनुष्य सुरूप है या कुरूप यह इनमें विवेक नहीं होता, न अवस्थाकाही ख्याल होताहै किन्तु 'यह मनुष्य है स्त्री नहीं' बस उतने मात्रसे धर्मच्युत होजातीहै—स्वयं पतित होजातीहैं। पुनः, यथा हितोपदेशे—"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रस्तु स्थविरे भावे न स्त्री स्वातंत्र्य-मर्हति" अर्थात्—बचपनमें पिता, जवानीमें पति, बुढ़ापेमें लड़का, इस प्रकारसे प्रत्येक अवस्थामें स्त्रीकी रक्षा देखरेख होनी चाहिए—स्त्रियाँ स्वतन्त्रता, उच्छृङ्खलता के योग्य नहीं हैं। † यथा—"कृषिं संस्कृत्य शुन्धन्ति पटीयांसः कृषीबलाः। यथा कामादिकं त्यक्त्वा बुधाश्चित्तं पुनन्ति च॥ (विष्णुपुराणे)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रा० प्र० श०—तृण बोया नहीं जाता स्वयं उत्पन्न होजाताहै। वैसेही पाठशालोंमें तो अनेक प्रकारकी लोकपरलोकहितकारी विद्याही पढ़ाई जातीहै चोरीचमारी नहीं; पर प्रकृति-शरीरमें उनके न सिखाए जानेपरभी अनेक दुर्गुण स्वयं उत्पन्न होजातेहैं। पंडितलोग इन्हें धीरे-धीरे त्याग कर देतेहैं नहीं तो वे उत्तम गुणोंको दबादें जैसे तृण गेहूँ आदि अन्नको।

मा० म०—भाव यह है कि स्त्रीका पतिव्रतधर्महीं मानों पुल है जिसके दृढ़ होनेकी संभावनासे पति घरमें निःशोच सोताहै। वह समझताहै कि वह धर्म नहीं खोवेगी इसीलिए कहीं आनेजानेसे नहीं रोकता। परन्तु युवारूपी पापीके बलसे प्रीति करके स्त्री बिगड़जातीहै, अब खोजनेसे धर्म नहीं है। रूपक यों है—युवतीरूपी पुल धर्मरूपी जलसे परिपूर्ण है सो युवाके वीर्य्यरूपी जलके पड़नेसे जो कामीरूपी मेघसे शून्यस्थानरूपी रात्रिमें गिरताहै उसके रतिरूपी आघातसे टूटकर बिगड़गया।

रा० प्र० श०—यहां क्यारियां मर्याद हैं और स्वतंत्रता जल है। अधिक स्वतंत्रता होनेसे स्वेच्छाचारिणी होकर स्त्रियां मर्याद छोड़देतीहैं जैसे अधिक वृष्टिसे क्यारियोंका जल दूसरेखेतोंमें चलाजाताहै। अतः उपदेशहै कि पति, पुत्र, भाई या इनके न होनेसे अपने कुलके किसी उत्तम पुरुषके आज्ञानुकूल अपना जीवन व्यतीत करें।

मा० म०—चतुर किसान इस कारण खेती निरावतेहैं कि उपज अच्छी होगी तो धनीका ऋण और पोत दियाजायगा, भूषणादि बनेंगे पेटभी भरेगा और गमी व्याह इत्यादिभी भली भाँति होंगे। यहाँ बुध किसान, हृदय खेत, और मोहादि तृण हैं; गुरु धनी है, गुरुका उपदेश पोत है और अन्नका विक्रय रामपंचांगका बोध है।

देषिअत चक्रवाक षग नाहीं।
कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं॥ § १४ (९)
ऊसर बरषै तृन नहिं जामा।
जिमि हरिजन हिय उपज न कामा॥ ,, (१०)

अर्थ—चक्रवाक पक्षी नहीं देखपड़ते जैसे कलिको पाकर धर्म

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भाग जातेहैं । ऊसरमें वर्षा होतीहै पर तृण नहीं जमता, जैसे भगवद्भक्तके हृदयमें काम नहीं उत्पन्न होता * ।

टिप्पणी—१ "देषियत चक्रवाक षग नाहीं ।०" इति । अर्थात् वे कहीं रहतेहैं पर दिखाई नहीं देते । इसी प्रकार कलिको पाकर लोगोंमें धर्म दिखाई नहीं देता, पुस्तकोंमें लिखा रहतहै, यथा—'सकल धर्म बिपरीत कलि कलपित कोटि कुपंथ । पुन्य पराइ पहार वन दुरे पुरान सद्ग्रंथ'—(दो०) । 'धर्म पराहीं' इति । धर्म वृषभरूप है, कलियुग कसाई है । इसीसे कलिको देखकर धर्मका भागना कहा । यथा—'कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है' इति विनये । यहां नीति है ।

२—"ऊसर बरषै तृन नहिं जामा ।०" । (क)—तृण की उत्पत्ति का हेतु वर्षा है, हरिजनके हृदयमें काम उत्पन्न होनेकाभी हेतु होना चाहिए । वह हेतु है—'अनेक उत्तम उत्तम पदार्थके भोजन' । पर तो भी इनके हृदयमें काम उत्पन्न नहीं हो पाता । (ख) सब पृथ्वीपर तृण जमताहै पर ऊसरपर नहीं जमता । ऐसेही सबके हृदयमें काम उत्पन्न होताहै पर हरिभक्तमें नहीं होता । इसका क्या कारण है, यह "हरिजन" पदमें जनादियाहै । अर्थात् ये तो हरिके जन हैं, इनकी रक्षा 'हरि' करतेहैं । हरिसे काम डरताहै । हरि सिंह हैं काम हाथी है, यथा—'कंदर्प नाग मृगपति मुरारि' इति विनये । यहां हरि शब्द श्लेष है, सिंह और भगवान् दोनोंका वाचक है । ☞यहां ज्ञान है । [प्र०—वा, 'हरिजन' पदसे जनाया कि इनके हृदयमें हरि हैं इससे कामादि वहां नहीं जासकते । यथा—"तब लगि हृदय बसत खल नाना । लोभ मोह मत्सर मद माना ॥ जब लगि उर न बसत रघुनाथा । धरे चाप सायक कटि भाथा ॥" । वे हरि हैं अतएव जनके इन सब दुःखोंको हरण करने वालेहैं । और प्रभुकी प्रतिज्ञाही है कि—'बालकसुत सम दास अमानी ॥ करउँ सदा तिन्हकै रखवारी । जिमि बालकहि राख महतारी ।']

* यथा—"संप्रस्थिता मानसवासलुब्धाः प्रियान्विताः संप्रति चक्रवाकाः ।" (वा० २८ । १६) ॥ अर्थात् मानस-सरमें रहनेके लोभी चक्रवाकोंने अपनी स्त्रियों सहित प्रस्थान किया ॥ १ ॥ "वर्षणेनोषरायाञ्च न रूढं तृणमात्रकम् । यथा साधुजनस्वान्ते कामाद्युत्पद्यते न वा ॥" अर्थात् ऊसरमें वर्षा होनेसे तृण मात्रतक नहीं जमता जैसे साधु लोगोंके अन्तःकरणमें काम नहीं उत्पन्न होता ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नोट—§ १४ (४) में कहाथा कि 'करै क्रोध जिमि धर्महि दूरी' और यहां कहतेहैं कि 'धर्म पराहीं'। भाव यह है कि क्रोध धर्म को भगाताहै और कलिको देख धर्म स्वयं भागतेहैं, इसीसे वहां 'करै दूरी' कहा और यहां 'पराहीं'। क्रोधमें मनुष्य अपने सामने दूसरेको रहने नहीं देना चाहता जैसे परशुरामने कहाहै—'बेगि करहु किन आँखिन्ह ओटा'।

नोट—मयङ्ककार 'चक्रवाक' और 'खग' ऐसा अर्थ करतेहैं। और फिर खगसे खंजन पक्षीका अर्थ कियाहै। परन्तु 'खग' से केवल खंजन का अर्थ मानसमें कहीं नहीं आया। 'खग' शब्दको अलग लेनेसे विरोधभी होताहै क्योंकि वर्षाकालमें सब पक्षी भाग नहीं जाते। चक्रवाकका मानसमें जाना वाल्मीकि एवं हिंदी कवियोंनेभी लिखाहै। (दोहा)—'प्यारो जुत चकवा गए लोभी मानस बास। वर्षासलिल बिलोकि कै हिय बिश्राम न आस॥' पुनः, कवित्त यथा—'जैसे फल झरेको बिहंग छांडि देत रूख सुवा देख सुवा छोड़ै सेमरकी डारको। सुमन सुगंध बिनु जैसे अलि छाड़ि देत मोती नर छाड़ि देत जैसे आबदार को॥ जैसे सूखे ताल को कुरंगछांड़ि देत मग शिवदास चित्त फाटे छाँड़ि देत यार को। जैसे चक्रवाक देस छाँड़िदेत पावस में तैसे कवि छाड़ि देत ठाकुर लबार को॥'—(प्र०)। परन्तु कुछ लागोंका अनुभव है कि चकवाचकवीका कहीं कहीं पावस में होना पायाजाताहै इसलिए वे यों अर्थ करतेहैं कि 'चक्रवाक दिखाईदेताहै, खग अर्थात् हंस नहीं दिखाईदेता।'

रा० प्र० श०—भक्तोंके उत्तम भोजन पानेपर किसीने आक्षेप कियाहै। यथा—'सागपात जे खात हैं तिन्हें सतावत काम। हलवा पूरी जो चखैं तिनकी जानै राम॥' गोस्वामीजीने उसका उत्तरभी यहाँ देदियाहै। भगवत्जन भगवत्प्रसादही पातेहैं, अनर्पित नहीं पाते। इसीसे उनमें विकार नहीं होता (और जो हलुवापूरी समझकर पातेहैं उनमें विकार उत्पन्न होजाताहै)। भगवत् और भगवत्चरित्र दोनोंमें अभेद हैं। 'कंदर्पनाग मृगपतिमुरारि' यह भगवान्प्रति कहाहै और 'कामक्रोह कलिमल करिगनके। केहरिसावक जनमन बन के' यह चरितके विषयमें कहागयाहै। भाव यह कि भक्त भगवान् या भगवत्चरितकाही मनन कियाकरतेहैं इससे उनके हृदयमें कामादिसे विघ्न नहीं होता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बिबिधि जंतु संकुल महि भ्राजा।
प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ॥ §१४ (११)
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना।
जिमि इंद्रियगन उपजे ज्ञाना ॥ ,, (१२)

अर्थ—अनेक प्रकारके छोटे छोटे जीवोंसे भरी हुई पृथ्वी शोभायमान है जैसे सुराज्य वा स्वराज्य पाकर प्रजा बढ़तीहै अर्थात् प्रजाकी बढ़तीसे राजा एवं राजकी शोभा है। जहाँ तहाँ अनेक पथिक (बटोही) थक रहे अर्थात् ठहर गए। जैसे ज्ञान उत्पन्न होनेसे इन्द्रियाँ शिथिल होजातीहैं।

टिप्पणी १—इन्द्रियाँ अपने अपने विषयकी ओर दौड़तीहैं इसीसे पथिकसे उपमा दी। २—ज्ञान होनेसे सब इन्द्रियां जहां तहां रहजातीहैं, यथा—'ज्ञान मान जहँ एकौ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माही'। जब सबमें समान ब्रह्म देखपड़ा तब इन्द्रियां किसके साथ रमण करें। ☞ यहां नीति और ज्ञान है।

कबीरजीका पद यहां पढ़नेयोग्य है—"बालमके संग सोय गई पाँचो जनीं।' आदि।

गौड़जी—"जिमि सुराज खल उद्यम गयेऊ" "प्रजाबाढ़ जिमि पाइ सुराजा" आदि चौपाइयोंमें "सुराज" पद "स्वराज्य" और "सुराज्य" दोनोंके लिये आयाहै क्योंकि भारतीय आदर्श दोनोंका एकही है। साधु राजा शुक्रनीतिके अनुसार अपनेको प्रजाका दास मानताहै, और एक धोबीकी खातिर अपनी पटरानी तकका परित्याग कर देताहै। उसका राज्य तो वस्तुतः प्रजाका राज्य है। उसका शासन प्रजा की धरोहर है। इसी दृष्टिसे भारतीय सुराज्य वस्तुतः प्रजाका स्वराज्य है। इसीलिये महात्मा गांधी स्वराज्य और राम राज्यमें कोई भेद नहीं मानते। "सुराजमें" तुलसीदासजीके और श्रीरामचन्द्रजीके मतसे भी खलोंका उद्यम नष्ट हो जाताहै और प्रजा बढ़तीहै। इस कसौटीपर वर्त्तमान पर-राज्यको कसें तो बात खरी उतरतीहै। इस समय तो सरकारी कर्म्मचारियोंकाही खल-उद्यम हो रहाहै, और देशकी आबादी उस वेगसे नहीं बढ़ने पाती जिस वेगसे स्वतंत्र देशोंकी बढ़तीहै। और देशोंकी आबादी जहां १० प्रतिशत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बढ़तीहै वहां भारतकी एक प्रतिशत बढ़तीहै। "सुराज" में खलोंका नाश होताहै और साधु प्रजाकी वृद्धि होतीहै।

कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कुपूत के उपजे कुल सद्धर्म नसाहिं॥
कबहुँ दिवस महुँ निबिड तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ज्ञान जिमि पाइ कुसंग सुसंग॥§१५

अर्थ—कभी पवन बड़े जोरसे चलताहै (जिससे) मेघ जहाँ तहाँ गायब होजातेहैं जैसे कुपुत्रके पैदा होनेसे कुलके अच्छे धर्म नष्ट होजातेहैं। कभी दिनमें घोर अंधकार होजाताहै, कभी सूर्य्य प्रगट होजातेहैं जैसे कुसंग पाकर ज्ञान नाश होताहै और अच्छे संगसे ज्ञान उत्पन्न होताहै।

टिप्पणी १—एक पवनके चलनेसे अनेक मेघ नाश होतेहैं, वैसेही एकही कपूतसे अनेक सद्धर्म नाश होतेहैं। वर्षाऋतुमें मेघ मुख्य हैं, इसीसे वर्षाके आरंभमें मेघका आगमन कहा, यथा—'बरषाकाल मेघ नभ छाए' और वर्षाके अन्तमें उनका नाश कहा—'मेघ बिलाहिं।'

२—सत्संगसे ज्ञानकी उत्पत्तिमें विलंब नहीं होता और कुसंगसे ज्ञानके नष्ट होनेमें देर नहीं लगती। जैसे क्षणमें सूर्य्य छिप जातेहैं और क्षणमें खुलजातेहैं।

३—वर्षाके प्रारंभमें विष्णुभक्तका दर्शन कहा, यथा—'गृही बिरतिरत हरष जस विष्नु भगत कहँ देषि'। और अन्तमें सुसंगसे ज्ञानकी प्राप्ति कही—'बिनसइ उपजइ ज्ञान...'। यहाँ पहले विनाश कहकर पीछे 'उपजइ' कहकर ज्ञानकी उपज (उदय) पर प्रसंगकी समाप्ति की, विनाशपर समाप्ति नहीं की। ☞यहाँ ज्ञान और नीति है।

मा० म०—कपूत लोक, बेद और कुल तीनोंके प्रतिकूल कर्म करताहै इससे कुलके सद्धर्म का नाश होजाताहै। यहाँ रूपक यों है कि—धर्मरूपी मेघ कुलरूपी नभमें पापकर्मरूपी वायु की प्रचण्डतासे नाश होजाताहै।

मयूख—चौदहवें दोहेके ऊपर दो नक्षत्र वर्णन किएहैं और तेरहवेंके ऊपर चार नक्षत्रोंका वर्णन है। अर्थात् 'दादुरधुनि चहुँ दिसा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सोहाई;' से आगे दो नक्षत्र कहेहैं और 'लछिमन देखहु...' के बाद चारका वर्णन है और 'खोजत कतहुँ मिलै नहिं धूरी' यहाँ अश्लेषा-नक्षत्र जानो औह 'महावृष्टि चलि फूट कियारी' इसको मघा नक्षत्र जोनो जिसमें बहुत वर्षा होनेसे पुल टूटगए। वर्षाऋतुके तीन महीने बीतगए, इसमें छः नक्षत्र भली भाँति बरसे, अब केवल एक महीना रहगया जिसमें दो नक्षत्र बाक़ी रहगए परन्तु उनमें वर्षा थोड़ी होतीहै। ☞'कहत अनुज सन कथा अनेका' से यहाँतक वर्षा वर्णन प्रसंग है।

"शरद-वर्णन"-प्रकरण

बरषा बिगत सरद रितु आई।
लछिमन देषहु परम सुहाई॥ §१५ (१)
फूले कास सकल महि छाई।
जनु बरषा कृत प्रगट बुढाई॥ ,, (२)

अर्थ—हे लक्ष्मण! देखो, वर्षा बीतगई और परम सुहावनी शरदऋतु आगई। फूलेहुए काँससे सब पृथ्वी छागई (ऐसी दिखतीहै) मानों वर्षाऋतुने अपना बुढ़ापा प्रकट कियाहै।—[कृत=किया। यथा 'कपिहि तिलक करि प्रभु कृत सयलप्रबर्षन बास (लं० §६६)]

टिप्पणी—१ (क) 'बरषा बिगत' कहकर वर्षावर्णन-प्रसंगकी समाप्ति की। और, 'सरद रितु आई' कहकर शरदऋतुवर्णन प्रसंग प्रारंभ किया। (ख)—वर्षावर्णनके प्रारंभमें लक्ष्मणजीको संबोधन किया, यथा—'लछिमन देषु मोरगन...'। वैसेही अब शरदवर्णनमें 'लछिमन देषहु' कहा। (ग) वर्षाको परमसुहाई कहा। वैसेही यहाँ शरदको कहतेहैं। यथा—'बरषाकाल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए' और यहाँ 'लछिमन देषहु परमसुहाई'। ☞ यहाँ नीति है।

☞शरद-वर्णनमें जिन वस्तुओंका वर्णन करना चाहिए उनको गोसाईंजी आगे वर्णन करतेहैं। कविप्रियामें वस्तुओंके नाम ये हैं—(दोहा)—अमल अकास प्रकास ससि मुदित कमल कुल कास।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पंथी पितर पयान नृप सरद सुकेशवदास॥'इति कविप्रियायाम्।

२—(क) काँसके फूल श्वेत होतेहैं यह मानों वर्षाके श्वेत केश हैं। तात्पर्य्य कि काँसके फूलनेसे वर्षाका अन्त समझाजाताहै। (ख) 'प्रगट बुढ़ाई'—प्रगटका भाव कि विना (?) शरीरकी बुढ़ाई अनुमानसे जानी जातीहै। कासने फूलकर वर्षाका बुढ़ापा प्रगट दिखादिया।—(नोट—पं० रामकुमारजीने 'कृत' की ठौर 'रितु' पाठ रखाहै और रामायणपरिचर्य्यामेंभी 'रितु' पाठ है।)

३—वर्षामें मेघ मुख्य हैं इसीसे उसके प्रारंभमें मेघोंका आगमन कहाथा जो श्यामताके प्रगट करनेवालेहैं, यथा—'बरषाकाल मेघ नभ छाए'। शरदमें उज्वलता मुख्य है इसलिए इसके प्रारंभमें कासका फूलना कहा। ☞ यहाँ नीति है।

नोट १—पंजाबीजी लिखतेहैं कि प्रभुके वचनामृत सुननेमें सौमित्रजीका ध्यान रंचक शिथिल देखा,.....इससे यहाँ द्वितीयबार 'लक्ष्मण' पद उनको सावधान करनेके लिए दिया। पर हमारे समझमें लक्ष्मणजीके विषयमें ऐसा कहना यथार्थ नहीं वरन अनुचितसा है; विशेषतः इस समय कि जब प्रभु 'कहत अनुजसन कथा अनेका। भगति बिरति नृपनीति बिबेका', क्या वह कभी असावधान रहसकतेहैं? कदापि नहीं। अरण्यकांडमें प्रभु-नारद-संवादमेंभी प्रभुने 'सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा,' 'सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता', 'सुनु मुनि सतन्हके गुन जेते' इत्यादि कई बार 'सुनु मुनि' कहाहै, वह भी सावधान करनेके लिए नहीं, वरन जब एक बात समाप्त हुई दूसरी प्रारंभ हुई तब फिर संबोधन किया। वही बात यहाँ है।

२—पंजाबीजी 'परम सुहाई' विशेषणके भाव यह लिखतेहैं—(क) वर्षाऋतु सुन्दर तो थी पर उसमें कभी 'महावृष्टि' और कभी ऊष्णता का भय, एवं कहीं कहीं कीचादिका खेद होताथा। पुनः नदी स्पर्शयोग्य न थी।—(गंगा सरयू आदि पुण्य नदियोंका जल वर्षामेंभी पवित्र मानागयाहै। इनकेलिए वह नियम नहीं है जो अन्य नदियोंके लिए है। इससे स्पर्शयोग्यके बदले यह कहना कुछ अच्छा होगा कि जल निर्मल नहीं रहता जैसा स्वयं आगे कहतेहैं—'सरिता सर निर्मल जल सोहा'। अर्थात् पूर्व 'समल' था अब स्वच्छ है।) शरद्में ये दोष नहीं रहे। पुनः, (ख) शरद् समऋतु है। वा, (ग) भविष्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सूचित करते हुए ऐसा कहतेहैं, क्योंकि यह ऋतु श्रीसीताजीकी प्राप्तिके उद्योगके योग्य है—(पां०)। अतएव 'परम सुहाई' कहा।

३—यहाँ सिद्धविषयाहेतूत्प्रेक्षा है।

उदित अगस्ति पंथ जल सोषा।
जिमि लोभहि सोषइ संतोषा॥ §१५ (३)

'अगस्ति' (अगस्त्य)—यह एक तारा है जो भादोंमें सिंहके सूर्य्यके १७ अंशपर उदय होताहै। रंग इसका कुछ पीलापन लिएहुए सफ़ेद होताहै। इसका उदय दक्षिणकी ओर होताहै इसीसे बहुत उत्तरके निवासियोंको यह नहीं दिखाईदेता। आकाशके स्थिर तारोंमें लुब्धकको छोड़कर दूसरा कोई इस जैसा नहीं चमचमाता। यह लुब्धकसे ३५° दक्षिण है।

अर्थ—अगस्त्य उदय हुआ और मार्गका जल सोखलियागया, जैसे संतोष लोभको सोखलेताहै।

टिप्पणी—१ अगस्त्यने पंथजलको सोखलिया, दूषित पंथको साफ़ करदिया। इस कथनमें तात्पर्य्य यह है कि महात्माओंका उदय पंथके साफ़ करनेकेलिए है, यह अभिप्राय दिखानेकेलिएही 'पंथका जल' कहा और जलाशयोंको न कहा। पुनः, २—अगस्त्यके उदयसे नदी, तालाब, आदि सबकाही जल सूखताहै पर सब जल नहीं सूखता, बहुत कुछ बनारहताहै इसीसे इन जलाशयोंका सूखना न कहा। पंथका सब जल सूखजाताहै इससे उसीको कहा। पुनः, [३—पंथके जल सूखनेसे रामजीके कार्य्यकी सिद्धि होनाहै इससे प्रथम पंथके जलकाही सूखना कहा।] ☞ यहाँ ज्ञान है।

समता

'अगस्ति पंथजल सोषा'	'संतोष लोभहि सोषइ'
१ पंथका जल सदा मलिन रहताहै और पंथकोभी दूषित किए रहताहै	लोभसे हृदय सदा मलिन रहताहै, यथा—'सदा मलीन पंथके जल ज्यों कबहुँ न हृदय थिराने'।
२ जबतक जल रहताहै मार्गमें लोग नहीं जाते, जलसूखनेपर सब जातेहैं	लोभके रहते लोभीके पास कोई नहीं जाता, लोभ न रहनेपर सब जातेहैं
३ अगस्त्यके उदयपर पंथका सब जल सूखजाताहै	संतोषसे समस्तलोभका नाश होजाताहै

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

४ अगस्त्य आकाशमें, पंथका जल पृथ्वी-पर। दोनोंमें बड़ा अंतर है। — लोभ संतोषके समीप नहीं आता, दूर-हीसे नाश होजाताहै।

५ समुद्रके सोखनेवाले अगस्त्यके लिए पंथजलके सोखने में परिश्रम नहीं। — संतोष होनेसे विना परिश्रम लोभका नाश है।

नोट—मार्गका जल सूखनेसे पथिकोंको सुख होगा। अगस्त्य नामका तारा महर्षि अगस्त्यके नामसे है। अगस्त्यजीका यह महत्व था कि उन्होंने समुद्रको तीन आचमनमें सोखलियाथा और इस ताराका यह प्रभाव कि इसके उदयसे वर्षाऋतुका अंत और जलका सोषण होताहै। इसी प्रकार संतोष होनेपर लोभादि नष्ट होतेहैं जिससे जीव सुखी होताहै। यथा—'बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहु नाहीं'। संतोष होनेसे कामनाही नहीं रहजाती तब लोभ कहाँ होगा। कामनारहित होनेसे भगवत्में मन लगेगा जहाँ आनंद ही आनंद है।

सरिता सर निर्मल जल सोहा।
संत हृदय जस गत मद मोहा॥ ◊ १५ (४)
रस रस सूष सरित सर पानी।
ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी॥ ,, (५)

रस रस=रसे रसे, धीरे धीरे, शनैः शनैः।

अर्थ—नदी और तालावोंमें निर्मल (मलिनता रहित) जल सोहताहै जैसे सन्तोंका मद और मोह रहित हृदय शोभित होताहै। नदी और तालाबका पानी धीरे-धीरे सूख रहाहै जैसे ज्ञानी (धीरे २) ममताका त्याग करतेहैं।

टिप्पणी १—वर्षाका जल पृथ्वीपर गिरकर गँदला होगया, यथा—'भूमि परत भा ढाबर पानी'। वह नदी और तालावोंमें पहुँचा इससे उनका जलभी मलिन होगयाथा। अब शरदऋतु पाकर वह निर्मल हुआ, तब उसकी शोभा कही। संत 'सरिता सर' हैं, हृदय जल है, मद मोह मल है। २—'ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी' इति। ममत्वका त्याग ज्ञानसे होताहै इसीसे ज्ञानीको ममताका त्याग करना कहा, यथा—'जासु ज्ञान रवि भव-निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा॥ तेहि कि मोह ममता नियराई'। ☞ यहाँ ज्ञान है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समानार्थक श्लोक—विष्णुपुराणे पंचमे अंशे—'सर्वत्रातिप्रसन्नानि सलिलानि तथा भवन्। ज्ञाते सर्वगते विष्णौ मनांसीव सुमेधसाम् ॥१॥' अर्थात् जल सब स्थानोंमें वैसाही निर्मल होगयाहै जैसा सद्बुद्धि लोगोंका मन सर्वव्यापी विष्णुके जानने से होजाताहै। पुनः यथा—'शनकैः शनकैस्तीरं तत्यजुश्च जलाशयाः। ममत्वं क्षेत्रपुत्रादिरूढं सर्वे यथा बुधाः ॥ २ ॥' अर्थात् जलाशयोंने धीरे २ तीरको छोड़ दिया जैसे पंडित लोग घर पुत्रादिमें चिरकालकी ममताको छोड़ देतेहैं। भा० १०।२०।३९ वाला श्लोक भी इसी भावका है यद्यपि रूपमें भिन्न है। यथा—'शनैः शनैर्जहुः पङ्कंस्थलान्यामं च वीरुधः। यथाहं ममतां धीराः शरीरादिष्वनात्मसु ॥' अर्थात् स्थलोंने कीचड़ और वृक्षोंने अपक्वपनको धीरे २ दूर कर दिया जैसे धीर पुरुष शरीरकी अहंता एवं ममता त्याग करदेतेहैं।

जानि सरद रितु षंजन आए।
पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए ॥ § १५ (६)
पंक न रेनु सोह असि धरनी।
नीति निपुन नृप कै जसि करनी ॥ ,, (७)

अर्थ—शरद ऋतु जानकर खंजन † पक्षी आये जैसे समय पाकर सुन्दर सुकृत आतेहैं। न कीचड़ है न धूलि; इससे पृथ्वी ऐसी शोभित है जैसी नीति-निपुण राजाकी करनी शोभित होतीहै।

टिप्पणी—१ धर्मका चला जाना दो प्रकारसे कह आयहैं, एक तो क्रोधसे दूसरे कलिसे। यथा—'करइ क्रोध जिमि धर्महि दूरी' और

† खंजन—यह पक्षी कई रंग और आकारका होताहै। भारतमें यह हिमालयकी तराई, आसाम और बरमामें अधिकतासे होताहै। इसका रंग बीच २ में कहीं सफेद कहीं काला होताहै। यह प्रायः एक बालिश्त लंबा होताहै और इसकी चोंच लाल और दुम हलकी काली झाईं लिए सफ़ेद और बहुत सुंदर होतीहै। यह प्रायः निर्जन स्थानोंमें और अकेलाही रहताहै और जाड़ेके आरंभमें पहाड़ोंसे नीचे उतर आताहै। लोगोंका विश्वासहै कि यह पाला नहीं जा सकता और जब इसके सिरपर चोटी निकलतीहै तब यह छिप जाताहै किसीको दिखाई नहीं देता। यह पक्षी बहुत चंचल होताहै, इसीलिए कविलोग नेत्रोंकी उपमा इससे देतेहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं'। जो धर्म कलिको पाकर भागगयाथा वह समय पाकर फिर आगया; उसीका आना यहाँ कहतेहैं और जो धर्म क्रोध करनेसे गया वह तो दूर गया; वह फिरकर नहीं आया।

२-यहाँ खंजन की सुकृत 'सुहाए' की उपमा दी। (क)—जो पक्षी बहुत देख पड़तेहैं उनकी उपमा नहीं दी और न उनकी दी जो देख नहीं पड़ते जैसे हंस इत्यादि; क्योंकि सुहाए सुकृत न तो बहुतही हैं और न उनका बिल्कुल लोपही होगयाहै। और, खंजन हैं तो परन्तु बहुत नहीं हैं इससे खंजनको ही कहा। पुनः, (ख) खंजनके आनेका समय निश्चित है, अन्य पक्षियोंके आनेका समय निश्चित नहीं। अतः खंजनकी उपमा दी। ये शरदमें आतेहैं वैसेही सुकृत समय पाकर ही आतेहैं।

३—'पंक न रेन०' इति। भाव कि ग्रीष्ममें पृथ्वी धूलिसे अशोभित रही और वर्षामें कीचसे; अब दोनोंसे रहित होनेसे शोभित है। इसका उदाहरण 'नीतिनिपुण राजाकी करनी' देकर जनाया कि राजाको न किसीपर गर्म होना चाहिए न किसीपर शीतल, जैसा नीतिमें लिखा है वैसाही करना चाहिए। गर्म होना ग्रीष्मका धर्म है और शीतल होना वर्षाका। ४—नृपकरनीको धरणीकी उपमा दी, क्योंकि जैसे धरणी सबको धारण करतीहै वैसेही नीति-निपुण राजाकी करनी सबको धारण करतीहै; यदि वह राजनीतिसे न चले तो सब प्रजा नष्ट होजाय। ☞ इन चौपाइयोंमें नीति है।

मा० म०— पूर्व कहाथा कि 'देखियत चक्रवाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं'; पर यहाँ सुकृतरूपी खंजनका आना तो कहा पर धर्म रूपी चक्रवाकका आना नहीं कहते। अतएव भाव यह है कि वर्षारूपी कलिसे दुःखित होकर चक्रवाकरूपी धर्म दूर भागगयाथा सो सुकृतरूपी खंजनके आनेपर वह भी आमिला। संदर्भ यह कि जब सुकृत उदय होताहै तभी धर्म धारण होताहै इससे खंजनको आया देख चक्रवाकभी सुसमय जानकर आगया।

कक०—समय आनेपर पुण्योंका फल दिखाई पड़ताहै। जैसे राजा रंतिदेवको ४८ दिन बीतनेपर भोजन मिला वहभी अभ्यागतके आनेपर उन्होंने उसे उठा दिया और आप भूखे रहगए तब तुरंत भगवान्ने प्रकट हो दर्शन दिए। (इसी तरह 'दशरथ सुकृत राम धरे देही' और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'जनकसुकृत मूरति बैदेही'-पर ये दोनोंही समय आनेपरही प्राप्त हुए।)

जल संकोच बिकल भइँ मीना।
अबुध कुटुंबी जिमि धन हीना॥ § १५ (८)

शब्दार्थ—संकोच=खिंचाव, कमी। कुटुम्बी=परिवारवाला।

अर्थ-जलके कम होजानेसे मछलियाँ व्याकुल हुईं जैसे धनरहित होनेसे अज्ञानी वा मूर्ख कुटुम्बी व्याकुल हो।

टिप्पणी—१—प्रथम जलका धीरे धीरे सूखना कहा, अब सूखकर जलका इतना संकोच होगया कि मछलियाँ विकल होगईं। २—'अबुध' के भाव—(क) जो बुध नहीं हैं वेही विकल होतेहैं, यथा—"सुष हरषहिं जड़ दुष बिलषाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं।" पुनः, (ख) अबुध अर्थात् जो गुणहीन हैं, धनकी प्राप्ति नहीं कर सकते और कुटुम्बवाले हैं, वे विकल होतेहैं। विद्या आदि कोई गुण होता तो धन अधिक कमाकर कुटुम्ब पाल सकते।

मीन और अबुध कुटुम्बी की समता

१ मछलियाँ बहुत, जल कम	कुटुम्बीके प्राणी बहुत, धन थोड़ा
२ जो जल है वह भी सूखताजाताहै	धन चुकता जाताहै
३ मेघ चले गए अतः आगे जलकी आशा नहीं है	रोजगार बंद है अतः आगे धन मिलनेकी आशा नहीं
४ आकाश निर्मल होनेसे धूप कड़ी है जिससे मीन विकल है	मान्यका संमान होना चाहिए सो नहीं बनता, यही शरद्का ताप है
५ मछली जल छोड़कर कहीं जा नहीं सकती	यह घर छोड़ कहीं जा नहीं सकता क्योंकि अबुध है।
६ मछली जल बढ़ा नहीं सकती—(मा० म०)	यह बुद्धिहीन है अतः धन उपार्जन कर नहीं सकता

७ भानुरूपी महाजनने रहा सहा जलरूपी धन खींच लिया अतः दुःखी हुए तिसपर भी अपनेहीमें प्राणवियोग अर्थात् कलह होनेलगा।—(मा० म०)।

☞ १ 'अबुध' ही पाठ सब प्राचीन पोथियोंमेंहै। पर कुछ आधुनिक टीकाकारोंने 'बिबिध' पाठ रखलिया है। बहुत बड़ा परिवार हानेपरभी बुद्धिमान् वा गुणवान् मनुष्य घबड़ाते नहीं, उद्योग करके सबका पालन-पोषण करतेहैं। दूसरे, 'कुटुम्बी'

JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY,
Jangamwadi Math, VARANASI,
Acc: No.
CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पदमें परिवारका बड़ा होना भी अभिप्रेत है। धनहीन होजाना गृहस्थको दुःखदायी होताही है; यथा—'नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं'। २—समानार्थक श्लोक, यथा—'गाधवारिचरास्तापमविंदन् शरदर्कजम्। यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेंद्रियः॥'—(भा० स्क० १० अ० २०।२८)। अर्थात् थोड़ेजलवाली मछली आदि जलचर शरदऋतुके सूर्यजनित तापको कैसे प्राप्तहुई जैसे इन्द्रियोंकेवशवाला दरिद्र कृपण (दीन वा सूम) कुटुंबी पुरुष संतापको प्राप्त होताहै।

बिनु घन निर्मल सोह अकासा।
हरिजन इव परिहरि सब आसा॥ §१५ (९)
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी।
कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी॥ ,, (१०)

अर्थ—विना बादलके आकाश निर्मल सोहरहाहै। जैसे सब आशाओंको छोड़कर भगवद्भक्त शोभितहोतेहैं *। शरदऋतुकी वर्षा कहीं कहीं और थोड़ी होतीहै जैसे कोई एक मेरी भक्ति पातेहैं। †

* यथा—'खम शोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम्। सत्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम्॥ अर्थात् शरद्के निर्मल ताराओंवाला मेघरहित आकाश शोभित होरहाहै जैसे सत्वगुण-प्रधान शब्दब्रह्मार्थदर्शी चित्त शोभित होताहै। चौपाईमें 'हरिजन' है उसकी जगह श्लोकमें 'सत्वयुक्त शब्दब्रह्मदर्शीचित्त' है, भाव एकही है क्योंकि भक्तिकेलिए सत्वगुणयुक्त होना जरूरीहै और विना भक्तिके चित्त शब्दब्रह्मार्थदर्शी नहीं होसकता। † १ यथा—'गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचुः शिवम्। यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा॥' अर्थात् मेघ कहीं जल बरसतेहैं कहीं नहीं, जैसे ज्ञानीलोग मोक्षसाधक तत्वज्ञान किसी एक कालमें किसी एक अधिकारीको देतेहैं, सबको नहीं।

२ यथा—'नर सहस महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्मव्रतधारी॥
धरमसील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिरागरत होई॥
कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई॥
ज्ञानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ॥
तिन्ह सहसमहँ सब सुषपानी। दुर्लभ ब्रह्मलीन बिज्ञानी॥
धरमसील बिरक्त अरु ज्ञानी। जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्रानी॥
सब ते सो दुर्लभ सुरराया। रामभगतिरत गत मद माया॥'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—१ हरिभक्तकी शोभा आशाके त्यागमेंही है, आशा रहनेमें उनकी शोभा नहीं है। यथा—'मोर दास कहाइ नर आसा। करइ त कहहु कहा बिश्वासा'। 'हरिजन' हैं अतः हरिकीही आशा रखतेहैं और सबकी आशा छोड़देतेहैं। यहाँ घन आशा है, हरिजन आकाश हैं। घनसे आकाश मलिन, आशासे हरिजन मलिन।—['आशा परमं दुःखं'। आशा शोककी जड़ है। यथा—'तुलसी अद्भुत देवता आसादेवी नाम। सेए सोक समरपई बिमुख भए अभिराम' इति दोहावल्याम्।]

२—'कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरी...' इति। (क) कहीं कहीं और वहभी थोड़ीही होतीहै। इसके उदाहरणमें कहतेहैं कि कोई एक मेरी भक्ति पातेहैं; इससे यहभी जनादिया कि कोई एक पातेहैं और वहभी थोड़ीही, पूर्ण नहीं। भक्ति पानेवालोंके नाम आगे गिनातेहैं, यथा—'जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि'। अर्थात् गृहस्थ, ब्रह्मचारी, बानप्रस्थ और संन्यासी, इनमेंसे कोई एक पातेहैं, सब नहीं पाते। एक आश्रममें हज़ारों मनुष्य होतेहैं सब भक्ति नहीं पाते, कोई एक पातेहैं। (ख)—'कोउ एक' कहकर जनाया कि ज्ञानसे भक्ति दुर्लभ है। ज्ञानकी प्राप्ति अनेकको कहीहै, यथा—'नवपल्लव भए बिटप अनेका। साधक मन जस मिले बिबेका' और भक्तिकी प्राप्ति 'कोउ एक' को। (ग) शारदीवृष्टि दुर्लभ, वैसेही भक्ति दुर्लभ, यथा—'सब ते सो दुर्लभ सुरराया। रामभगतिरत गत मद माया'। (घ) शारदी वृष्टिसे मुक्ता आदि अनेक पदार्थ उत्पन्न होतेहैं, ऐसेही भक्तिसे मुक्ति आदि सब पदार्थ सिद्ध होतेहैं। ☞यहाँ भक्ति है।

पुनः, यथा महारामायणे—'ये कल्पकोटिसततं जपहोमयोगैर्ध्यानैः समाधिभिरहोरता ब्रह्मज्ञाने। ते देवि धन्या मनुजाहृदिवाह्यशुद्धा भक्तिस्तदा भवति तेष्वपि रामपादौ ॥१॥' एवं 'मुग्धे शृणुष्व मनुजोपि सहस्रमध्ये धर्म्मवृतो भवति सर्व समानशीलः। तेष्वेव कोटिषुभवेद्विषये विरक्तः सन्दानको भवति कोटिविरक्तमध्ये ॥१॥ ज्ञानीषु कोटिषु नृजीवनकोपि मुक्तः कश्चित्सहस्रनर जीवनमुक्तमध्ये। विज्ञानरूप विमलोप्यथ ब्रह्मलीनस्तेष्वेव कोटिषु सकृत् खलु रामभक्तः ॥२॥' अर्थ उद्धृतचौपाइयोंसे मिलताहै। अतः, पुनः नहीं लिखा। इन श्लोकोंका छन्द कुछ ठीक नहीं है। आर्ष प्रयोग है॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिषारि।
जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि॥१६॥

अर्थ—राजा (विजयके लिये), तपस्वी (तपके लिये), व्यापारी बनिए (वाणिज्यके लिए) और भिखारी (भिक्षाटनके लिये) प्रसन्न होकर नगर छोड़कर चले। जैसे हरिभक्ति पाकर चारों आश्रमवाले (गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी) श्रमको छोड़देतेहैं। *

टिप्पणी १—प्रथम वर्षामें कहआयेहैं कि जहाँ तहाँ पथिक रुक रहे हैं, यथा—"जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना"। इसीसे सम्पूर्ण वर्षा की निवृत्ति कही, यथा—'बर्षा बिगत सरदरितु आई'। वर्षा बीत जानेपरभी मार्गमें जल भरा रहताहै तब तक मार्ग चलना कठिन होता है; इससे जलका सूखना कहा, यथा—'उदित अगस्ति पंथ जल सोषा'। जल सूखनेपर कीचड़ रहताहै उसके रहतेभी चलना कठिन होताहै अतः उसकाभी न रहना कहा, यथा—'पंक न रेनु सोह अस धरनी'। पथिकोंको जो कठिनाइयाँ मार्गके चलनेमें होतीहैं उन सबका दूर होना और पंथका साफ होना कहकर तब पथिकोंका चलना कहतेहैं।

२—चलनेवालों में प्रथम 'नृप' को गिनाया क्योंकि प्रस्तुत प्रसंग यहाँ यही है, रामजीका मुख्य प्रयोजन इन्हीं के कहनेका है, उनका अभिप्राय इस कथनसे यह है कि सब राजा अपना अपना कार्य करने के लिये चलदिये। पर नृप सुग्रीव हमारे कार्यके लिये न चले। यथा वाल्मीकीये—"अन्योन्य वद्धवैराणाम् जिगीषूणां नृपात्मज। उद्योग-समयः सौम्य पार्थिवानामुपस्थितः ॥ ६० ॥ इयं सा प्रथमा यात्रा पार्थिवानाम् नृपात्मज। न च पश्यामि सुग्रीवमुद्योगं च तथाविधम् ॥६१॥" अर्थात् हे राजकुमार! परस्पर वैर रखनेवाले, अपना विजय

*यथा—"वणिङ् मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान् प्रपेदिरे। वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान् काल आगते।" (भा० १०। २०। ४९) अर्थात् वर्षाके कारण रुके हुए वणिक्, मुनि, राजा और स्नातक (कृतसमावर्त्तन ब्रह्मचारी) अपने-अपने उत्तरोत्तर व्यापार—वाणिज्य, तप, स्वाच्छन्द्य, दिग्विजय, विवाहोद्यम आदि कामों—के लिये चले। जैसे आयुसम्बन्धी वर्षोंसे ग्रसित सिद्ध लोग अन्तकाल आनेपर अपने योग्य देव आदि देहको प्राप्त करते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चाहनेवाले राजाओंके उद्योगका यही समय है। राजाओंकी प्रथम यात्राका यही प्रधान समय है; पर मैं न तो सुग्रीवको देखताहूँ और न उनके किसी उसप्रकारके उद्योग देखपड़तेहैं ॥—(सर्ग ३०) ॥

नोट—पूर्वार्द्धमें नृप, तपस्वी, वणिक् और भिक्षुक चारको गिनाया और आश्रम भी चार होतेहैं। इसीसे यहाँ "आश्रमी चारकी" उपमा दी। पूर्वार्द्धमें "चले हरषि" कहाहै। अतः उत्तरार्द्धमें भी 'हरषि तजहिं' का भाव समझलेना चाहिए।

गौड़जी—जैसे चारों पंथी मार्गके सब सुभीते पाकर हर्षसे चल पड़े, उसीतरह चारों आश्रमवालोंने भी जब भक्तिमार्गको (जिसमें मायाका पंक नहीं है, विकारोंका रज नहीं है) निर्मल देखा तब अपने आश्रमोंके श्रम फल मार्गको खुशीसे छोड़दिया, क्योंकि वह ठीक और सुगम मार्ग पागए। इसी मार्गसे वे भगवान्के पदको सहजमें पहुँच जायँगे। "तद्विष्णोः परमं पदम्। सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवि वचक्षुत ततं।"

'हरि भगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि'

पं० रामकुमारजी—सब धर्मोंका फल भक्ति है। यथा—'जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरिभगति भवानी'। जब साधनोंका फल 'भक्ति' प्राप्त होगयी तब (साधनरूपी) श्रम करनेका प्रयोजन क्या रहगया? भाव यह कि जिस आश्रममें जब भक्ति मिले तब वहींसे आश्रमका श्रम त्याग करदे। पूर्वार्द्धमें 'हरषि चले' से यह जनाया कि भक्तिप्राप्त होनेपर आश्रमके श्रमको त्याग करनेमें किंचित् सन्देह न करे।

नोट १—करुणासिन्धुजी नृप, तपस्वी, वणिक् और भिक्षुकके स्थान में क्रमसे ग्रहस्थ, वाणप्रस्थ, ब्रह्मचारी (क्योंकि ये विद्याका व्यापार करतेहैं) और सन्यासीको रखतेहैं। २ पं०रा०व० श०—जबतक भक्ति न प्राप्त थी तबतक आश्रमोंमें रहकर धर्मसेवनमें जो क्लेश होतेहैं उनको सहतेहुए धर्म करतेथे छोड़ते न थे; क्योंकि दूसरा अवलंब न था। जब भक्ति प्राप्त हुई तब निर्भय होकर आश्रमधर्म छोड़दिए क्योंकि यहाँ उनको भगवान्के 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।०' 'सकृदेवप्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।०' इत्यादि वाक्योंका अवलम्ब मिलगया। भगवद्धर्मपरायण होजानेसे अन्य धर्म्मोंके न करनेका दोष नहीं लगता; क्योंकि जो भगवद्भजन करतेहैं उनके कर्म जो छूटेहैं उनके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करनेकेलिए ३० कोटि देवता रखदिएगए हैं। भगवत्के शरण होनेपर ऋषि, पितृ और देव तीनोंके ऋणसे भक्त मुक्त होजाताहै।

सुषी मीन जे नीर अगाधा।
जिमि हरिसरन न एकौ बाधा॥ ◊ १६ (१)

अर्थ—जो मीन अथाह जलमें है वे सुखी हैं जैसे भगवान्की शरणमें एकभी बाधा नहीं।*

टिप्पणी—१—पूर्व कहा कि 'संकोच जल' के मीन विकल हैं, यथा—'जल संकोच बिकल भइँ मीना'; उसीकी जोड़में यहाँ कहतेहैं कि जो अगाध जलमें हैं वे सुखीहैं। २—संकोच जलवाले मीनकी उपमा कुटुम्बीकी दीथी और यहाँ अगाध जलवाले मीनको हरिभक्तकी। यह भेद करके जनाया कि जो हरिशरण छोड़कर कुटुम्ब सेतेहैं वे दुःखी हैं और जो हरिशरण हैं वे सुखी हैं। हरिके शरणमें प्रथम तो एक भी बाधा नहीं होती और कदाचित् कोई बाधा आपड़तीहै तो बाधा दूर करनेकेलिए हरि अवतार लेतेहैं—(वा, 'हरि' की शरण हैं अतः हरि उस बाधाका निवारण करतेहैं)—सो आगे कहतेहैं, यथा—'फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा'। ३—हरिभक्तको मीनकी उपमा दी; क्योंकि जैसे मीन जलका अत्यन्त स्नेहीहै, वैसेही हरिभक्त हारके अत्यन्त स्नेहीहैं। मीनका 'जल जीवन जल गेह' वैसेही हरिभक्तके हरिही जीवन और सर्वस्व हैं। ☞यहाँ भक्ति है।

नोट—हरिशरणरूपी जलकी गंभीरता समुद्रसी है। 'न एकौ बाधा', क्योंकि प्रभुका वचन है कि 'करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी'। पुनः शिववाक्य यथा—'सीम कि चापि सकइ कोउ तासू। बड रखवार रमापति जासू' इत्यादि।—(प्र०)। 'अबुध कुटुंबी' दुःखित रहताहै क्योंकि उसमें बुद्धि नहीं है जिससे वह समझे कि जो संसारका पालन करनेवालाहै वह हम सबका पालनभी करेगा, हमें उसकी शरण होकर उसका भजन करना और उसीका आशाभरोसा रखना चाहिए।

*यथा भागवते—"जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवणात्। अबिभ्रन् रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवणात्॥" अर्थात् जल और स्थलवासी सबने नवीन जलके व्यवहारसे रुचिर रूपको धारण करलिया जिस प्रकार भक्तचातक हरिभक्तिके व्यवहारसे रुचिररूपको धारण करलेते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किसीने कहाहै—'जब दाँत न थे तब दूध दियो अब दाँत दिए कहा अन्न न देहै ?' ।—(पं० रा० व० श०) ।

श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडियाने गीताङ्क (कल्याण) में यथार्थही लिखाहै कि सच्चे अनन्यशरण भक्तका अपनेलिए अपना कर्तव्य अथवा उसे अपने उद्धारकी चिन्ता कुछभी नहीं रहजाती। वह तो एक बाजेके समान है, बजानेवाला जिस प्रकार चाहे वैसेही बजा सकताहै, जिस रागको वह निकालना चाहताहै वही निकलताहै। अपने हानिलाभ, जीवनमरण, मान-अपमानकी उसे चिन्ता नहीं रहती। महात्मा मंगलनाथजी स्वामी कहा करतेथे कि कल्याणके अनेक मार्ग हैं और सबही ठीक हैं किन्तु उन सबमें शरणागतिका मार्ग अलौकिक है। अलौकिकका भाव यह है कि अन्य मार्गोंमें साधनका भार और कर्त्तव्य साधकके सिरपर रहताहै। यहाँ शरणागतिमें सब भार अपने प्रभुके सिरपर रहताहै। वहाँ अपनी चिन्ता स्वयं करनी पड़तीहै किंतु यहाँ शरणागतभक्तकी चिन्ता भगवान्‌को रहतीहै, भक्त तो निश्चिन्त रहताहै। गोस्वामीजीनेभी क्या खूब कहाहै—"जागै भोगी भोगही वियोगी रोगी रोगबस, सोवै सुख तुलसी भरोसे एक रामके"—(क० उ० १०३)। एवं 'भरोसे रामनामके पसारि पाय सूत हौं"। "इसके अतिरिक्त वहाँ साधक अज्ञानजन्य ममतामें आसक्ति रहनेसे गिरभी जाताहै; पर यहाँ शरणागतभक्तके रक्षक स्वयं त्रिभुवनपति भगवान् रहतेहैं, फिर गिरनेका भय कैसे होसकताहै ? यहाँ तो शुकदेव स्वामीके ये वचन चरितार्थ होतेहैं 'त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भयाः' अर्थात् आपद्वारा रक्षित हुए निर्भय विचरतेहैं। शरणागतभक्तका रक्षण प्रभु उसी प्रकार करतेहैं जैसे एक छोटे स्तनपायी बालककी रक्षा और देखभाल जननी करतीहै। माताभी परिमित शक्तिवाली होनेके कारण सर्वथा रक्षा नहीं करसकती और यहाँ तो अपरिमित शक्तिवाले रक्षक हैं। अतएव शरणागति कल्याणका अलौकिक मार्ग है। भगवान्‌की शरण नीचातिनीचभी लेसकताहै। सच्चे हृदयसे शरण लेनेके बाद कोई दुराचारी नहीं रहसकता।" वैष्णवरत्न श्री १०८ रूपकलाजीनेभी खूब कहाहै—"प्राण तोर मैं तोर मन चित बुधि यश तोर सब। एक तुही तो मोर काह निवेदौं तोहि पिय"। इस दोहेमें शरणागतका अर्थ मानों कूजे (घट) में समुद्र भरदियाहै। "इधर भगवान्‌भी नीचातिनीचको शरणदेनेसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुख नहीं मोड़ते। अतएव निर्भय होकर अपने पापोंके समूहको आगे करके विभीषणजीकी भाँति प्रभुके चरणोंमें अपनेको समर्पण करदेना चाहिए, जैसे विभीषणजी ने कहाहै—'श्रवन सुजस सुनि आयउँ प्रभु भंजन भवभीर। त्राहि त्राहि आरतहरन सरन सुखद रघुबीर'। ☞यह घोषणा श्रीरामजीने यहाँ इस एक चरणमें करदीहै। देखिए, सारी भागवत और गीता एवम् विभीषण शरणागतिमें जो कुछभी वाल्मीकीय एवं रामचरितमानस आदि रामायणोंमें भगवान्ने शरणागतिके विषयमें बड़े ज़ोरके वाक्य कहेहैं, उन सबका सार श्रीरामजीने यहाँ एक चरणमेंही कैसा भरदिया है।—भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्रजीकी जय! जय!! जय!!!

फूले कमल सोह सर कैसा।
निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा॥ § १६ (२)
गुंजत मधुकर मुषर अनूपा।
सुंदर षगरव नाना रूपा॥ ,, (३)

अर्थ—कमलके फूलनेसे तालाब कैसा शोभित है जैसे सगुण होने से निर्गुण ब्रह्म शोभित होताहै। भौंरे गूंजते हैं उनका शब्द अनूप है, अनेक रूपके सुंदर पक्षी सुंदर शब्द कररहेहैं।

टिप्पणी—१ यहाँ जल निर्गुण और कमल सगुण ब्रह्म है। जलका गुण कमल प्रगट हुआ अर्थात् जल सगुण हुआ। इसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म सगुण हुआ। २—फूले कमल', यह ईश्वरके आकारकी शोभा कही, आगे गुणकी शोभा कहतेहैं, यथा—'गुंजत मधुकर मुषर अनूपा।०'। ३—कमल अनेक और भगवान् के अवतार अनेक। ४—कमल चार रंग के (श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण) और सगुणब्रह्मभी चाररंगके हैं, यथा—"शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतांगतः" इति भागवतेगर्गाचार्य्यवचनम्। अर्थात् भगवान् श्वेत, लाल, पीत और कालारूप धारण करतेहैं, इस समय श्यामताको प्राप्त हैं।

☞आश्रमधर्मसे भक्ति प्राप्त हुई, यथा—'जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि'; तब भक्त हरिकी भक्ति करतेहैं, यथा—'सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरिसरन न एकौ बाधा'; मछली की तरह हरिके आश्रय रहतेहैं, तब भक्तों की भक्तिसे भगवान अवतार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लेतेहैं सो यहाँ कहा, अवतार लेनेपर भक्त उनका गुणगान करतेहैं, यथा-'गुंजत मधुकर···'।—यह भगवत और भक्तकी परस्पर प्रीति कही।

आश्विनके प्रारंभमें काँसका फूलना कहा और यहां कार्तिकके प्रारंभमें कमलका फूलना। ☞ यहाँ ज्ञान है।

५—"गुंजत मधुकर००" इति। (क) कमल फूलनेके बाद भ्रमरका गुंजारकरना कहा, क्योंकि यह कमलका विशेष स्नेही है। इसके बाद सुंदर पक्षियोंका बोलनाकहतेहैं; जलकुक्कुट, कलहंस, आदिभी कमलके स्नेही हैं। (ख)—भ्रमर और पक्षियोंको दासों और मुनियोंकी वाणीकी उपमा देतेहैं इसीसे इनके गुंजार और रवको अनूप और सुंदर कहा। (ग) जब कमल फूलतेहैं तब पक्षी बोलतेहैं और भ्रमर गूंजतेहैं; इसी तरह जब निर्गुणब्रह्म सगुण होताहै तब दास और मुनिजन गुण गान करते हैं। (घ) दासकी उपमा मधुकरकी है, यथा—'बिकसित कमलावली चले प्रपुंज चंचरीक गुंजत कल कोमल धुनि त्यागि कंज न्यारे। जनु बिराग पाइ सकल सोक कूप गृह बिहाइ भृत्य प्रेम मत्त फिरत गुनत गुन तिहारे॥' और मुनिकी उपमा पक्षीकी है, यथा—"बोलत षग निकर मुषर मधुर करि प्रतीति सुनहु श्रवन प्रानजीवनधन मेरे तुम वारे। मनहुँ बेद बंदी मुनिवृन्द सूतमागधादि बिरद बदत जयजयजयति कैटभारे॥" इति गीतावल्याम्। † (ङ) निर्गुणमें गुण गाना नहीं बनता अर्थात् कहाजा-सकता। प्रमाण यथा—"ब्रह्मन् ब्रह्मण्य निर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः। कथं चरन्ति श्रुतयः साक्षात्सदसतः॥" इति भागवते दशमस्कंधे। अर्थात् हे ब्रह्मन्! अनिर्देश्य (जिसको कोई दिखा नहीं सकता), गुण-रहित और भले और निकम्मेसे परे ऐसे ब्रह्मके विषयमें सगुण वेद

† इस प्रसंगमें बराबर एक चरणमें एक बात कहकर दूसरेमें उसका उदाहरण देतेआए, पर इस अर्धालीमें वह क्रम भंग हुआहै। बाबा हरीदासजी कहतेहैं कि यहाँ मन और मधुकरकी एकता है, यथा—'मुनि मन मधुप बसहि जिन्ह माहीं'। मधुकर मनको मानो उपदेश करताहै कि हम ऊपरसे श्याम हैं भीतरसे मुखर अर्थात् मुखसे रकार शब्द कहतेहैं। मनमधुकरका उपदेश मानकर सुंदर 'ख' (हृदयाकाश) में 'ग' अर्थात् गमन और रव अर्थात् मनन करताहै। मनके नाना रूप हैं, यथा—'मन महँ तथा लीन नाना तन प्रगटत औसर पाए'। यह मन ईश्वरके नाना अवतारोंमें रमणकर सुखी होताहै।—(पर यह बहुत क्लिष्ट कल्पना है)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साक्षात् कैसे कहसकें। ☞ यहाँ ज्ञान और भक्ति है।—(दीनजी—बड़े ही मार्मिक ढंगसे निर्गुण उपासनापर कटाक्ष कियाहै। बड़ाही सुंदर व्यंग है)।

मा०म०—भाव यह कि जैसे कमलका मूल पृथ्वीपर पंकमें रहताहै और जबतक जलके भीतर रहताहै कोई नहीं जानता; जब जलके ऊपर दल सहित फूलताहै तभी शोभताहै। वैसेही जबतक एकरस (साकेत) लोकमें श्रीरामचन्द्र निर्गुणरूपसे निवास करतेहैं तबतक नहीं शोभते, ध्यानमें नहीं आते, परंतु जब प्रगट होतेहैं तभी सुशोभितहोतेहैं। तात्पर्य कि साकेतरूपी पृथ्वीपर रामरूपी कमलका मूल है, वहाँसे कल्याण-गुणरूपी दल फूलके साथ सुखसमाजरूपी पंकके साथ प्रकट होतेहैं तब अनेक आनंद प्रकट होतेहैं। पुनः, निर्गुण ब्रह्म श्रीरामचन्द्ररूपी कमल अवधरूपी सरमें परम प्रेमरूपी पंकमें कल्याणगुणसहित प्रगटे और संतरूपी भ्रमर अशंक होकर मकरंदरस पान करतेहैं।

रा० प्र० श०—कमल चार रंगका और सगुण ब्रह्मभी चतुर्व्यूह होताहै—श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न, संकर्षण और अनिरुद्ध। ऐसेही निरक्षर ब्रह्मभी चारही रूपमें ऋग, यजुः, साम और अथर्व कहाजाताहै। इन्हींके आधारपर चारही उपवेद, ४ बानी, ४ धाम, ४ मुक्ति, ४ प्रकार-के भक्त, ४ अवस्थायें, ४ खानि, ४ वर्ण, ४ आश्रम आदि हुए। कमल-को सगुन ब्रह्म कहा। इसीसे कवि जब सगुण ब्रह्मके अंगोंकी उपमा देतेहैं तब कमलहीसे, यथा—नेत्र कमलवत्, मुखकमल, करकमल, इत्यादि।

वै०—निर्गुण सगुण होकर शोभित होताहै क्योंकि उससे सर्वव्यापकताका बोध होताहै जैसे कमल खिलनेसे सरमें जलका बोध होताहै।

समानार्थक श्लोक, यथा विष्णुपुराणे—"सरो शोभते राजीवैः कथं विकसितैर्नृप। सत्त्वादिभिरथाच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ॥" अर्थात् हे राजन्! खिले हुए कमलोंसे सर कैसा शोभितहै जैसे सत्त्वादि-गुणोंसे आच्छादित सगुण ब्रह्म शोभित हो।

चक्रवाक मन दुष निसि पेषी।
जिमि दुर्जन परसंपति देषी॥ § १६ (४)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—रात्रि देखकर चकवेके मनमें दुःख होताहै जैसे परायी संपत्ति देखकर दुष्टको (दुःख होताहै)।*

रात्रि और संपत्ति की समता

रात्रिसे सबको विश्राम और सुख १. संपत्तिसे सबको सुख और विश्राम
रात्रि चक्रवाकको दुःखदायी २. परसंपत्ति दुर्जनको दुःखदायी
रात्रिके नाशसे चक्रवाक सुखी ३. परसंपत्तिके नाशसे दुर्जन सुखी

चातक रटत तृषा अति ओही।
जिमि सुख लहइ न संकरद्रोही ॥ §१६ (५)

अर्थ--पपीहा रट लगाएहै, उसको अत्यन्त प्यास है। जैसे शंकरजीका द्रोही सुख नहीं पाता। अर्थात् जैसे वर्षाके रहतेभी चातकको सुख नहीं ऐसेही सब सुखका साज समाज रहते हुएभी शंकरद्रोहीको सुख नहीं, उसको सुख कैसे हो वह तो शंकर अर्थात् कल्याणकरनेवालेहीका बैरी है।†

टिप्पणी १—☞ अब हरिकी प्राप्तिका उपाय यहाँसे बतातेहैं। शंकर, संत, ब्राह्मण और सद्गुरु इन चारोंके बीचमें हरिकी प्राप्ति कहतेहैं। अर्थात् 'जिमि सुख लहइ न संकरद्रोही'—(१), 'संतदरस जिमि पातक टरई'—(२), 'जिमि द्विजद्रोह किए कुलनासा,—(३) और 'सदगुर मिले जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ'—(४); इन चारोंके बीचमें 'देषि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई', यह चौपाई है जिसमें हरिकी प्राप्ति कहतेहैं। इस चौपाईको चारोंके बीचमें रखकर जनाया कि इन चारोंकी सेवासे हरि मिलतेहैं। यथा—

---

* १—यथा—"निशि दुःखायते चक्रवाकस्य केवलं मनः। परस्यैश्वर्यमालोक्य दुर्जनस्तप्यते यथा ॥" अर्थात् रात्रि देखकर चक्रवाकहीका मन दुःखी होताहै जैसे पराया ऐश्वर्य देखकर दुर्जन जलतेहैं। २ यथा—"खलन्ह हृदय अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी ॥"

† यथा "चातको सह्यतृष्णोहि कथं घोषति शारदैः। तापैर्यथा शिवद्रोही लभते न क्वचित्सुखम् ॥" अर्थात् शरदके घामसे प्यासा चातक कैसी रटन कर रहाहै जैसे शिवद्रोही कहीं सुख नहीं पाता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवसेवासे—"जनकसुकृतमूरति बैदेही। दसरथसुकृत राम धरे देही ॥
इन्ह सम काहु न सिव अवराधे। काहु न इन्ह समान फल लाधे" ॥
संतसेवासे—"भवसागर कहँ नाव सुद्ध संतन्ह के चरन।
तुलसीदास प्रयास बिनु मिलहिं राम दुपहरन ॥"
द्विजसेवासे—"मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताके सब देव ॥"
सद्गुरुसेवासे—"श्रीहरिगुरुपदकमल भजहु मन तजि अभिमान।
जेहि सेवत हरि पाइये सुष निधान भगवान ॥"

☞ शंकर, संत, द्विज, गुरु और हरि इन पाँचोंकी सेवा बिना जीव संसारसमुद्रसे पार नहीं होता। यथा—"द्विज देव गुरु हरि संत बिनु संसार पार न पाइये" इति विनये। इसीसे पाँचोंकी सेवा करनेको कहतेहैं। ३—इस चौपाईमें विवेक और भक्ति कही।

सरदातप निसि ससि अपहरई।
संतदरस जिमि पातक टरई ॥ ◊ १६ (६)

अर्थ—शरदऋतुकी धूप (की तपन) को रातमें चन्द्रमा (का प्रकाश) हर लेताहै, जैसे संतदर्शनसे पाप दूरहोताहै। *

टिप्पणी—१'निसि ससि०'का भाव कि चन्द्रमा दिनमेंभी रहताहै पर गर्मी रात्रिमें हरताहै। संत अपना दर्शन देकर जगत्को सुखी करतेहैं और हरिदर्शन करके स्वयं सुखी होतेहैं।

२ ☞ यहां संतको चन्द्रमाका प्रकाश और अगली चौपाईमें हरिको चन्द्रमासम कहकर जनाया कि—(१) दोनोंमें अभेद है †।

---

* यथा—'शरदर्कांशुजांस्तापान् भूतानामुडुपोऽहरत्। देहाभिमानजंबोधो मुकुन्दो व्रजयोषिताम्'—(भा० १०।२०।४)। अर्थात् शरदके सूर्यकिरणोंसे उत्पन्न जीवोंके तापको चन्द्रमाने हर लिया जैसे देहाभिमान-त्रितापको ज्ञान हरलेताहै और जैसे मुकुंद भगवान् कृष्णने व्रजवनिताओंका स्ववियोगजनितताप हर लिया। चौपाईमें संतदर्शनसे पाप दूरहोना कहतेहैं। विना पाप दूर हुए न ज्ञान होसकताहै न तापत्रय मिटसकताहै। संतभगवंतमें अंतर नही अतः संतकी जगह मुकुन्दभी ठीक जमजाताहै। † यथा—'संतभगवंत अंतर नहिं किमपि०" इति विनये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(२) जो सुख भगवान्‌के दर्शनसे संतोंको है वही सुख संतोंके दर्शनसे जगत्‌वासियोंको है। (३) भगवान् संतरूपसे जगत्‌के लोगोंको दर्शन देकर पाप-ताप हरण करतेहैं। सांसारिक जीवोंमें पाप होताहै इससे उनका पाप दूरकरना कहा और हरिजनमें पाप नहीं होता इसलिए उनका केवल हरिदर्शन करना कहतेहैं, पाप हरणकरना नहीं कहते।

३—यहां ज्ञान है।

पं० रा०व०श०—'टरई' में भाव यह है कि यदि संतोंके आचरणपर चलोगे तो फिर वे पाप न सतावेंगे, नहीं तो फिर पाप लौट आयंगे जैसे प्रतिदिन सूर्य्यके तापकेलिये प्रतिनिशि चन्द्रका ताप हरणकरना लगाही रहताहै।

देखि इंदु चकोर समुदाई।
चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥ § १६ (७)

अर्थ—समूह चकोर चन्द्रमाको देखतेहैं जैसे हरिजन हरिको पाकर दर्शन करतेहैं।

टिप्पणी—१ वर्षामें मेघोंके समूहसे चंद्रमाको नहीं देख सकतेथे, अब शरदमें देखतेहैं। २—"चितवहिं" का भाव कि निर्गुण ब्रह्म देखते नहीं बनताथा, जब सगुण हुआ तब देखतेहैं। ३—"हरि पाई" का भाव कि हरिकी प्राप्ति दुर्लभ है, हरि सब काल नहीं मिलते।—विशेष ऊपरकी चौपाईमें देखिये। ४ ☞ चंद्रचकोर के दृष्टान्तसे भक्तोंकी अनन्यता दिखाई। अर्थात् जैसे आकाशमें अगणित तारागण हैं पर चकोर चन्द्रमाकोही देखताहै, वैसेही अनन्यभक्त हरिको छोड़ दूसरेकी ओर नहीं देखते।

☞५—वर्षाऋतुके वर्णनमें ज्ञानरीतिसे हरिकी प्राप्ति कहीथी और यहाँ शरदमें उपासना-रीतिसे कही। यथा—'सरिताजल जलनिधि महँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई'; अर्थात् जल में जल मिलगया और जीव हरिमें मिलगया। और "चितवहिं हरिजन हरि पाई" यह उपासना है कि भक्त भगवान्‌को पाकर उनका दर्शन करतेहैं।—[नोट—मिलान कीजिए—"मुनिसमूह महँ बैठे सनमुष सबकी ओर। सरद इंदु तन चितवत मानहु निकर चकोर॥"—(आ०§ १२)

करु०—शरद्‌इन्दु (पूर्णिमाका) एक है और चकोरसमुदाय उसे देखतेहैं। जैसे हरिजन अनेक हैं वे हरिको पाकर वाह्यान्तर नेत्रोंसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अहर्निशि मूर्तिमान सिंहासनपर विराजमान और चराचरमें व्याप्त अन्तर्यामीरूप एक हरिको देखतेहैं।

मसक दंस बीते हिम त्रासा।
जिमि द्विजद्रोह किए कुलनासा॥ § १६ (८)

दंश=डास, बड़े मच्छड़ जो प्रायः वन प्रदेशमें होतेहैं।=एक प्रकारकी बड़ी मक्खी जो जोरसे काटती और बहुत दुःख देतीहै। इसके डंक बहुत विषैले होतेहैं। बगदर, वनमक्षिका।

अर्थ – मच्छड़ और डाँस हिमके डरसे नाश होगए (गएगुज़रे) जैसे ब्राह्मणसे वैर करनेसे कुलका नाश होजाताहै।

नोट—मशक छोटे और दंश बड़े दोनों प्रकारके मच्छड़ोंको कहकर जनाया कि ब्रह्मद्रोहीके कुलके छोटेबड़े जितने हैं सभी नाशको प्राप्त होतेहैं। मिलान कीजिए—'दहइ कोटि कुल भूसुररोषू'। यहाँ विवेक कहा।

भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ।
सदगुर मिले जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ॥§१७॥

अर्थ—पृथ्वीमें जो जीव व्याप्त थे वे शरदऋतुको पाकर नाश होगए जैसे सद्गुरुके मिलनेसे संशय और भ्रमके समूह चले जातेहैं।

टिप्पणी १—"भूमि जीव" का भाव कि यहाँतक जलचर और नभचरका वर्णन हुआ अब थलचरका हाल कहतेहैं। यथा—'सुखी मीन जे नीर अगाधा' (यह जलचर है), 'गुंजत मधुकर मुषर अनूपा। सुन्दर खगरव नाना रूपा' से 'मसक दंस बीते०'तक (नभचर कहे) और यहां 'भूमि जीव' (थलचर कहे)।

२—सुसंगका मिलना शरदऋतुके वर्णनका उपक्रम अर्थात् प्रारंभ है। यथा—'बिनसइ उपजइ ज्ञान जिमि पाइ कुसंग सुसंग'। और, सद्गुरुका मिलना इस प्रसंगका उपसंहार है अर्थात् समाप्ति है। ☞यहां विवेक है।

वर्षा (वर्षा और शरद्का मिलान) शरद

गत ग्रीषम बरषा रितु आई...बरषा बिगत सरद रितु आई
बरषाकाल मेघ नभ छाए...बिनु घन निर्मल सोह अकासा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भूमि परत भा ढाबर पानी...सरिता सर निर्मल जल सोहा ।

छुद्र नदी भरि चलीं तोराई
समिटि २ जल भरहिं तलावा } रस रस सूष सरित सर पानी

महा वृष्टि चलि फूटि किआरी...कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरा
हरित भूमि तृन संकुल समुझि परै नहिं पंथ...उदित अगस्ति पंथ जल सोषा
विबिधि जंतु संकुल महि भ्राजा...भूमि जीव संकुल रहे गए सरदरितु पाइ
देपियत चक्रवाक पग नाहीं...चक्रवाक मन दुष निसि पेषी
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना...चले हरषि तजि नगर नृप तापस०

वर्षा और शरदके वर्णनमें रामजीने बहुतसे पदार्थ कहेहैं । अर्थात् १ वर्णाश्रम धर्म, २ संत और खलके लक्षण, ३ कर्मज्ञान उपासनाकी विधि, ४ पंचतत्त्वोंके कार्य्य, ५ बुध और अबुधके लक्षण, ६ माया जीव ब्रह्मके लक्षण और ७ कर्म ज्ञान उपासना तीनोंके फल कहे हैं जो नीचे क्रमसे दिखाएजातेहैं,—

१ वर्णाश्रम धर्म

ब्राह्मणधर्म, यथा—बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ।
क्षत्रियधर्म, यथा—प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ।
वैश्यधर्म, यथा—उपकारी कै संपति जैसी ।
'शूद्रस्तु द्विजसेवया'—जिमि द्विजद्रोह किए कुल नासा ।
ब्रह्मचारी—सदगुरु मिले जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ ।
गृहस्थ—गृही बिरतिरत हरष जस बिष्नुभगत कहं देषि ।
वाणप्रस्थ—साधक मन जस मिले बिवेका ।
संन्यासी—जिमि इंद्रियगन उपजे ज्ञाना ।

२ (क) संतलक्षण । (ख) खललक्षण

संत-'खल के बचन संत सह जैसे'-(१)। जिमि हरिजन हिय उपज न कामा'-(२)।
'संतहृदय जस गत मद मोहा'-(३)। हरिजनइव परिहरि सब आसा-(४)।
खल-'खल कै प्रीति जथा थिरु नाहीं'-(१)। 'जस थोरेउ धन खल इतराई'-(२)।
और 'जिमि दुर्जन परसंपति देखी'—(३)।

३ कर्म, ज्ञान और उपासनाकी विधि

(१) क्रोधरहित कर्म करे, यथा—'करइ क्रोध जिमि धर्महि दूरी'
(२) साधनसहित विवेक करे, यथा—'साधक मन जस मिले बिबेका'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(३) कामरहित भक्ति करे, यथा—'जिमि हरिजन हिय उपज न कामा।'

४—पाँचों तत्त्वोंके कार्य

पृथ्वीतत्त्वका कार्य, यथा—'ससि संपन्न सोह महि कैसी'

जलतत्त्वका कार्य्य, यथा—'महावृष्टि चलि फूटि किआरी'

अग्नि तत्त्वका कार्य्य प्रकाश है, यथा—'कबहुँ क प्रगट पतंग'—

वायुतत्त्वका कार्य्य, यथा—'प्रबल वह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं'

आकाशतत्त्वका कार्य्य, यथा—'बिनु घन निर्मल सोह अकासा'

५—बुध और अबुधके लक्षण

बुध—(१) 'बर्षहिं जलद भूमि नियराए। जथा नवहिं बुध बिद्या पाए।'

(२) 'कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥'

अबुध—'जल संकोच बिकल भइँ मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धन हीना॥'

६ माया जीव और ब्रह्मके लक्षण और स्वरूप

माया—'भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी॥'

जीव—'सरिताजल जलनिधि महँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥'

अर्थात् जीवके स्वरूपको आवरण करना मायाका लक्षण है, हरिसे अलग होना और हरिमें मिलना यह जीवधर्म है।

ब्रह्म—'फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा॥'

७—कर्म, ज्ञान और उपासना के फल

कर्मका फल } 'चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहै न संकरद्रोही॥'
दुःख सुख } 'भेकक कंठ बीते हिम रात्रा। जिमि द्विजद्रोह किए कुल नाशा॥'

ज्ञानका फल—'सरिताजल जलनिधि महँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई'

उपासनाफल—'मेघा हनु चकोर चतुराई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई'

टिप्पणी—☞ रामजीने वर्षा और शरद्के सब अंग लक्ष्मणजीको दिखाए पर इन्द्रधनुष नहीं दिखाया। कारण यह है कि इन्द्रधनुषका दिखाना धर्मशास्त्रमें निषेध कियागयाहै। यथा—'न दिशोन्द्रायुधं दृष्ट्वा कस्यचिद्दर्शयेद्बुधः' इति मनुः। अर्थात् पंडितलोगोंको उचित है कि आकाशमें इन्द्रधनुष देखकर किसी औरको न दिखावें।

☞ 'बरषा बिगत सरद ऋतु आई' से यहाँतक शरद्वर्णन है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मयूख— राजा इत्यादिका नगरसे विजयदशमीके दिन कूच करना जानो। यथा—'चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि'। और पूर्णिमाके नीचे हिम कहाहै, यथा—'देखि इन्दु चकोर समुदाई'। यह पूर्णिमा जानो और तदनन्तर 'मसक दंस बीते हिमत्रासा' यह कार्तिक समझो। १५ और १३ इन दो दोहोंके अन्तर्गत ज्ञान विवेक कहा और १७ और १५ दोहोंके अंतर्गत वैराग्य और भक्तिका नियम कहाहै।

नोट—१ एक बात यहभी दृष्टिगोचर करनेयोग्य है कि वर्षा वर्णनमें एक अर्धाली, एक दोहा, ८ अर्धाली. फिर दोहा और उसपर १२ अर्धालियाँ तब दो दोहे आए। फिर शरदवर्णनमें १० अर्धालियोंपर प्रथम दोहा है, उसके उपरान्त ८ अर्धालियोंपर दोहा है। इस भेदपरभी पाठक विचार करें।—देखिए पहिलेमें वर्षाका आरंभ है, दूसरे मासमें महावृष्टि है, अतः पहलेसे दूसरेमासमें ड्योढी अर्धालियां आईं।

२—पं० रा० व० श०-संशय=संदेह अर्थात् किसी पदार्थके विषय में विविध प्रकारका ज्ञान उत्पन्न होना जिससे यह न समझ पड़े कि उनमेंसे कौन उत्तम वा ठीक है। भ्रम=कोई पदार्थ है कुछ और हमारी बुद्धिमें कुछ और ही उसका आना। जैसे देहेन्द्रियके धर्मको आत्मा में मान लेना, नावपर बैठे चलें आप और समझें कि जलके तटकी भूमि वृक्षादि चलतेहैं। सद्गुरु से ब्रह्मनिष्ठ गुरुसे तात्पर्य है।

"रामरोष"-प्रकरण

बरषा गत निर्मल रितु आई।
सुधि न तात सीता कै पाई॥ §१७ (१)
एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं।
कालहु जीति निमिष महुँ आनौं॥ ,, (२)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—वर्षा बीतगई, निर्मल ऋतु आई। हे तात (भाई)! सीताकी ख़बर न मिली, † एकबार किसी तरह एवं कैसीही ख़बर मालूम हो तो कालकोभी जीतकर पलभरमें ले आऊँ। *

टिप्पणी १—(क) पूर्व कहचुकेहैं कि 'बर्षा बिगत सरदरितु आई' और अब कहतेहैं कि 'बरषागत निर्मल रितु आई' ये दोनों बातें एकही हैं, अतएव पुनरुक्ति जानपड़तीहै। इस पुनरुक्तिका समाधान यह है कि प्रथम जो कहाथा कि 'शरद ऋतु आई' वह लक्ष्मणजीको दिखानेके निमित्त कहाथा और यहाँ जो कहाहै कि 'निर्मल' ऋतु आई, यह सीताकी सुध न पानेपर कहाहै जैसा दूसरे चरणमें कहाहै—'सुधि न तात सीता कै पाई'; इससे पुनरुक्ति नहीं है। ‡ (ख)

† विनोदार्थ—(पां०) 'न तात सुधि पाई न शीतल ही'।

* यथा अध्यात्मे (सर्ग ५)—'यदि जानामि तं साध्वीं जीवन्तीं यत्र कुत्र चित्। हठादेवाहरिष्यामि सुधामिव पयोनिधेः॥' अर्थात् यदि उस साध्वीको मैं कहींभी जीतीहुई जानलूँ तो उसे जबरदस्ती लेआऊँगा, जैसे समुद्रसे अमृत लायागयाथा। चौपाईके 'कालहु जीति' के बदले अध्यात्ममें 'हठाद्' शब्द है। भाव एकही है। कालसे कोई लौटा नहीं सकता अतः उससे लौटालेना बलात् लौटालाना है।

‡ प्र०—कोई कोई शंका करतेहैं कि 'बरषा बिगत सरद रितु आई' कहकर पूर्वही वर्षाकी समाप्ति कहचुकेहैं। अब यहाँ फिर 'बरषा गत निर्मल रितु आई' क्यों कहा? समाधान यह है कि गोस्वामीजी जब कोई प्रकरण छोड़कर कोई दूसरी कथा लिखतेहैं तब फिर ये पूर्वसे कथाका संबंध मिलाया करतेहैं। पहले शरदागमन कहकर शरदका वर्णन करनेलगे (नहीं तो वहीं यह बात कहते जो अब कहरहेहैं) जब उसका वर्णन समाप्त किया तब फिर वहींसे उठाया (क्योंकि अपने कार्यका प्रारंभभी शरदमेंही करनाहै)। इसी तरह सुंदरकांडमें 'करै बिचार करौं का भाई' पर प्रसंग छोड़कर रावणका आगमन कहनेलगे—'तेहि अवसर रावन तहँ आवा...'। इस प्रसङ्गकी पूर्ति 'देषि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता' पर करके तब पुनः पूर्व प्रसंग मिलाया है, यथा—'कपि करि हृदय बिचार...'। ऐसेही अनेक प्रसंग ग्रंथमें हैं।

मा० म०—वर्षा चार महीनेका होतीहै। चारोंका बीतना यहाँ जानकर शरदका आगमन कहा। 'सुध न पाई' में भाव यह है कि आशा थी कि मैथिलीजी येनकेन प्रकारेण ख़बर देंगी सो आशाभी गई।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'वर्षा गत' का भाव कि वर्षा तक सीताशोधमें अटक (रुकावट) रही अब निर्मल ऋतु आई, सीताशोधके योग्य समय आगया तबभी समाचार न मिला। (ग) 'सुधि न तात सीता कै पाई' अर्थात् न जान पड़ा कि वह जीती है या मरगई, है तो कहां है, किस दशामें है, इत्यादि। यथा अध्यात्मरामायणे पंचमसर्ग—'मृतामृता वा निश्चेतु न जानेद्यपि भामिनीम्'। यहां स्मृतिभाव है।

२ (क)—'कैसेहुँ' अर्थात् मृतक वा जीवित होनेकी। [कैसेहुँ= किसी प्रकारसे, अपने पुरुषार्थसे वा किसी मित्र आदिके द्वारा।] ख)—'कालहु जीति आनौं' अर्थात् यदि मरगई होगी तो कालके यहां होगी क्योंकि जीव मरनेपर कालके यहां रहताहै, तब मैं कालको जीतकर लेआऊँगा। (ग)—सुधि मिलनेमें वर्षाकी अटक रही, पर सुधि मिलजानेपर पलभरकी अटक न होगी। 'निमिष' अल्पकालवाचक है।

पं०—'कालहु जीति' में काल-पदसे लक्षणाद्वारा कालसमान महाबली योधा समझना चाहिए।

पं० रा० व० श०—गोस्वामीजी उपासक हैं, उपासनामें त्रुटि नहीं आनेदेसकते। इसीसे उन्होंने अन्य रामायण-कर्त्ताओंकी तरह मरण शब्दका प्रयोग न करके उसी बातको 'कालहु जीति' से सूचित कर-दियाहै।

कतहुँ रहौ जौं जीवति होई।
तात जतन करि आनौ सोई॥ §१७ (३)
सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी।
पावा राज कोस पुर नारी॥ ,, (४)

अर्थ—कहींभी रहे (हो) पर यदि जीतीहोगी तो, हे तात! यत्न करके उसे ले आऊँगा। सुग्रीवनेभी मेरी सुध भुलादी, (क्योंकि अब) वह राज्य, कोश, नगर और स्त्री पागया [अर्थात् राज्यादि-मेंसे यदि एकभी बाकी रहता तो सुध न भुलाता। पुनः, मदमस्त करनेकेलिए एकही अलं है और यहां तो चार हैं फिर भला वह क्यों न भूलजाता।]

टिप्पणी १—कालके वश होना प्रथम कहा और जीवितरहना पीछे। क्योंकि मरनेमें संदेह नहीं है, जीवित रहनेमें संदेह है। इसीसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'जीवति होई' में संदिग्ध वचन 'जौं' दिया। मृत्युमें संदेह इससे नहीं है कि वे सहजही भीरु स्वभाव हैं; शूर्पणखासे डरगईथीं—'मृगलोचनि तुम्ह 'भीरु सुभाये' 'चित्रलिखित कपि देषि डेराती'। राक्षसको देखकर उसके भयसे प्राण निकलगएहोंगे। अथवा, राक्षसोंने खालियाहोगा क्योंकि यह निश्चरस्वभाव है, यथा—'नर अहार रजनीचर चरहीं'। अथवा, हमारे वियोगमें प्राण अवश्य छोड़दियाहोगा क्योंकि वनयात्रा समय यही उन्होंने कहाभी था कि—'राषिअ अवध जो अवधि लगि रहत जानियहि प्रान'। वा० स० १।५१ सेभी इसकी पुष्टि होतीहै। वहाँ रामचन्द्रजी कहतेहैं कि मेरा दृढ़ निश्चय है कि मेरे विरहमें साध्वीसीता रह नहीं सकती, यथा—'दृढं हि हृदये बुद्धिर्मम संपरिवर्तते। नालंवर्तयितुं सीता साध्वीमद्विरहंगता'॥

२—'कतहुँ रहौ' का भाव कि मरनेपर तो ठिकाना है कि कालके यहां होगी, पर जीती रहनेपर ठिकाना नहीं कि कहाँ हो; इसलिए कहतेहैं कि 'कहीं भीहो', जहां होगी वहांसे, जानलेनेपर ले आवेंगे। मरी होगी तो पलभरमें ले आवेंगे क्योंकि तब खोजनेमें विलंब न लगेगा और जीवित है तो खोज लगानेमें समय लगेगा, इसके लिए यत्न करना होगा, दूत भेजने पड़ेंगे, इत्यादि।‡

३—'सुग्रीवहु' का भाव कि काल तो हमारे विपरीत है ही कि हमें ऐसी विपत्तिमें डाला, (यथा—'कीन्ह काल मिस मातु कुचाली' इति भरतवाक्यं) पर अब सुग्रीवनेभी हमारी सुध भुलादी। अतएव हम कालकोभी जीतेंगे और कृतघ्न सुग्रीवकोभी मारेंगे। ४—'पावराज०' कहकर सुग्रीवको कृतघ्नी सूचित किया। ५—'बिसारी' अर्थात् जानबूझकर भुलादी, सुधि 'बिसर' नहीं गई।

‡ पाँड़ेजी अर्थ करतेहैं कि "यदि मरी होगी तो मैं कालके यहाँसे निमिषमें ले आऊँगा और अब लक्ष्मणजीसे कहतेहैं कि जो कहीं जीती हो तो तुम उसे यत्न करके ले आना"। पर यह अर्थ ठीक नहीं जान पड़ता। 'आनौ' ऐसा प्रयोग अन्यत्रभी दिखायाजाचुकाहै। पांडेजी 'आनों' पाठ देतेहैं। महादेवदत्तजी लिखतेहैं कि 'यहाँ दो संकल्प हैं, एक मृतका दूसरा जीवितका।'—(ऐसाही टिप्पणीमेंभी कहाहै)। 'हनुमान्‌जी जीवित होनेकी खबर लाए। अतएव प्रभु जीवितवाले संकल्पके अनुकूल कटक बटोरना, सेतु बाँधना, युद्ध करना यह सब प्रयत्न करके सीताजीको लाए'।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मा० म०—पहिले कहाहै कि कालको भी निमिषमें जीतकर लाऊँगा। पर जान लेनेपर निशिचरवधमें तो बड़ा समय लगा ? इस वचनका तात्पर्य्य यह है कि जब निशिचर युद्धार्थ सम्मुख आतेथे तब प्रभु उन्हें एकही निमिषमें मारडालते थे।—(पर रावणसे कई दिन लड़ाई रही ? कारण कि वरके अनुसार उससे नरलीला कररहेथे और जब मारना निश्चय किया तब तो ज़रामेंही वध कर डाला।)

समानार्थक श्लोक—१ सुग्रीवोपि दयाहीनो दुःखितं मां न पश्यति ॥७॥ राज्यं किष्कंटकं प्राप्य स्त्रीभिः परिवृतोरहः।··· ॥ ८ ॥ (अध्यात्म ५)। अर्थात् सुग्रीवभी दयाहीन होगया वह हमारा दुःख नहीं देखता। निष्कण्टक राज्य पाकर एकान्तमें स्त्रियोंमें आसक्तहै।

पुनः, यथा—२"पूर्वोपकारिणं दुष्टः कृतघ्नो विस्मृतो हि माम"—(अध्यात्म ५)। अर्थात् दुष्ट और कृतघ्नी सुग्रीवने प्रथमही उपकार करनेवालेको भुलादिया। ३ पां०—भाव कि राज्य, कोश, आदिमेंसे कोई एकभी रहगया होता तो न भूलता।

जेहि सायक मारा मैं बाली।
तेहि सर हतहुँ मूढ कह काली ॥ § १७ (५)
जासु कृपा छूटहिं मद मोहा।
ता कहुँ उमा कि सपनेहु कोहा ॥ ,, (६)

अर्थ—जिस वाणसे मैंने बालिको माराहै उसी वाणसे मूढ़को कल मारूँगा (वा, मारूँ ? मारूँ तो सारी विलासिता मिट्टीमें मिलजाय।) हे उमा ! जिसकी कृपासे मद और मोह छूटजातेहैं, उसको क्या स्वप्नमेंभी क्रोध होसकताहै ? (अर्थात् कदापि नहीं। यह तो नरलीला है, विरहातुरका अभिनय है)।

'हतहुँ मूढ कह काली'

मा० त० भा०—ये वचन केवल भय दिखानेकेलिए कहेगएहैं; जैसा कि आगे रामचन्द्रजीकेही वचनसे स्पष्ट है, यथा—'भय दिखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव'। 'मूढ़' कहनेका भाव कि उसने हमारा कार्य्य भुलादिया, हमारा उपकार भुलादिया, यथा—'सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोष पुर नारी ॥' और हमारा बलभी भुला दिया। 'जेहि सायक मारा मैं बाली' उस वाणकी उसको ख़बर नहीं है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करु०, मा० म०—प्रभु प्रतिज्ञा करतेहैं कि कल मारूँगा। संदर्भ यह कि यदि वह आजही मेरे समीप आजाय तो उसके प्राण बचजायँगे; नहीं तो कल अवश्य मारूंगा।

वै०—यह माधुर्य्यमें राजनीति है कि राजा जिसके शत्रुको मारकर राज्य दिलातेहैं यदि वहभी बदकौल हुआ तो उसकोभी दंड देतेहैं, विरोधीको मारतेहैं। मित्रताकी हानि हुई। इसका दंड उसे अग्नि देती क्योंकि वह साक्षी है। प्रभुने यह वचन कहकर उसको मित्र-द्रोहके पाप और दण्डसे बचादिया। 'कल मारूँग' इसीसे कहा कि वह तो आजही आजायगा।

पं०—बालि-बधकी प्रतिज्ञा की सो सत्य और वैसीही प्रतिज्ञा अब की सो असत्य, यह कैसा? इसमें क्या अभिप्राय है? उत्तर—भगवान् भक्तोंकेलिए अपनी प्रतिज्ञा अन्यथा करदेतेहैं। सुग्रीव भक्त है, अतः आश्चर्य्य क्या? यही बात भीष्म-पितामहजीने भगवान् कृष्णसे कहीहै। भगवान्ने अपनी प्रतिज्ञा छोड़ भीष्मकी प्रतिज्ञा रक्खी। 'आज न आया तो कल मारूँगा और वह आजही आगया, इससे प्रतिज्ञा पूर्ण रही', ऐसा अर्थ करनेसे अर्थ तो बनताहै पर इससे रघुनाथजीमें कोप निश्चय होताहै और भक्तोंपर प्रभुका दृढ़ कोप करना उचित नहीं। इसी बातकी पुष्टता शंकरजी करतेहैं।

मयूख—कार्तिकके पाँच दिन बीतगए तब श्रीरामचन्द्रजीने कोपकी ओटसे सुग्रीवपर करुणा की।

शिला—सुग्रीवद्वारा शिक्षाहेतु रामजी यह चरित्र कररहेहैं। १—दिखातेहैं कि विषय कैसा प्रबल है कि वही सुग्रीव जो बालिभयसे अहर्निशि चिंतित और व्याकुल रहताथा, अब बालिवध होनेपर राज्य, स्त्री आदि पानेपर अपना वचन भूलगया कि—'सब परिहरि करिहौं सेवकाई'। पासही रहताहै तोभी तनकी कौन कहे वचनसेभी सहायता उसने न की। ☞मुझमें और भक्तोंमें बीच डालनेमें विषय ऐसा प्रबल है। अतएव जो मुझे चाहे उसे उचित है कि विषयभोगका त्यागकरे। पुनः, २—प्रभु अपनी भक्तवत्सलताका एवं भक्तोंके अपराधका स्वरूप एकत्र करके सुग्रीवद्वारा दिखातेहैं। सुग्रीवका ऐसा अपराध कि अपना उपकार करनेवालेके कार्यको भूलगया; ऐसा कृतघ्न। उस अपराधकेलिए उसे झूठही मारनेको और वहभी कल और झूठही क्रोध उसपर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किया -- ऐसा कृपालु कौन है ? पुनः, ३—यहाँ यहभी दिखाया कि भगवान् अपने भक्तकी प्रतिष्ठा अपनेसे अधिक करतेहैं । आपने सुग्रीवको मित्र बनाकर अभय दिया। पर परमभक्त लक्ष्मणजी द्वारा उसे अभय दिलानेपर फिर क्रोध आदि दिखावमात्रवालाभी न करेंगे । लक्ष्मणजीने सुग्रीवको आगे अभयदान दियाहै. यथा—'तब सुग्रीव चरन सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा'।

पां०—आशय यह है कि रघुनाथजी मानुषीलीला बरतरहेहैं। अतः उसी आचरणके अनुकूल रघुनाथजीकी यह 'कहनि' है इसीसे शंकरजी कहतेहैं कि इस लीला (चरित) को वही जाने जिसने रघुवीरचरणमें प्रीतिकी।

दीनजी—अर्थ यह है कि--"जिस बाणसे मैंने बालिको माराहै यदि मैं उसी बाणसे इसेभी मारूँ तो लोग कलही मुझे मूढ़ कहने लगेंगे (कि मित्रता तो की पर तनकसी बातपर चिढ़गए और मित्रता का निर्वाह न करसके)।" यहांपर 'तेहि सर हतउँ मूढ़ कहँ काली' को रामजीने उसी भावमें प्रयुक्त कियाहै जो ऊपर लिखाजाचुकाहै पर लक्ष्मणजीने इसका दूसरा अर्थ लगाया कि रामजी प्रतिज्ञा करतेहैं कि उसी बाणसे मैं इस मूढ़को कल मारूंगा । यहांपर रामजीमें कुछ कोपसा दर्शायागयाहै। पार्वतीजी चकित होगईं, उन्होंने पूछा यह क्या ? ईश्वरको कोप कैसा ? तब महादेवजी कहतेहैं। आगे कवि कहतेहैं कि "लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना"। इसमें स्पष्ट भाव यही है कि वस्तुतः रामजीमें क्रोध नहीं, लक्ष्मणजीको भ्रम हुआ कि उन्हें क्रोध आगयाहै। 'जाना' शब्द इसीलिए प्रयुक्त हुआहै।

नोट—भागवतदासजीका पाठ 'कह काली' है। इस पाठसे दीनजीका अर्थ खूब बैठजाताहै। यह भाव शेषदत्तजीने दियाहै। काशीकी प्रतिमें 'कहु' पाठ है। उससे लोग एक अर्थ यहभी निकालतेहैं कि 'हे काली (शेषावतार)! उससे जाकर कहो कि बालिको जिस बाणसे माराहै उसी बाणसे, अरे मूढ़, तुझेभी मारूँगा'। 'काली' का अर्थ 'कल' भी करतेहुए ऐसा अर्थ करसकतेहैं कि उससे तुम जाकर कहो।—यह अर्थ और भाव वाल्मीकीयसे पूर्ण संगत है। * पर प्रधान अर्थ मेरी

* यथा वा० ३०—'उच्यतां गच्छ सुग्रीवस्त्वया वीर महाबल। मम रोषस्य यद्रूपं ब्रूयाश्चैनमिदं वचः ॥८०॥ न स संकुचितः पन्था येन बाली हतो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समझमें वही है जो अर्थमें दियागयाहै। क्योंकि यदि ये अर्थ लें तो फिर 'लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना', यह अर्धाली व्यर्थसी होजातीहै अथवा, कमसेकम इसकी कुछ विशेषता रहही नहीं जाती। पाठकोंका जिस अर्थमें मन भरे वे उसीको ग्रहण करें। अध्यात्ममें इसी प्रकारका कथन है जैसा कि मानसमें, भेद केवल इतना है कि उसमें 'काली' वाली बात नहीं है। †

गौड़जी—यहाँ 'हतहुँ' पूर्ण क्रिया नहीं है। 'हतहुँ'=मारूँ। मारूँगाकेलिए 'हतिहौं' लिखते। यहाँ 'अगर मारूँ' या 'क्या मारूँ' यह अर्थ होगा। यहां भगवान् शुद्ध मायामनुष्यरूपका अभिनय कररहेहैं। विरहसे पीड़ित मनुष्य जो कहताहै, वही कहरहेहैं। वस्तुतः सुग्रीवकी रक्षा करके उसे राजा करदेना किसी स्वार्थभावसे तो था नहीं। स्वार्थ साधना होता तो बालीसे मित्रता करनेमें अधिक सौकर्य्य था। सुग्रीव आर्त्त और अर्थार्थी भक्त था। उसकी रक्षाही वास्तविक बात थी। परन्तु यहाँ विरहातुरका अभिनय होरहाहै। 'सुग्रीवका मतलब तो निकलगया न। देश, कोश, राज, रानी, सब कुछ पाकर अब मज़ेसे ऐश कररहाहै और मेरे कामको स्वार्थीने भुलादिया। जिस बाणसे बालीको माराथा उसीसे मूढ़को कलही ख़तम करदूँ तो सारी ऐशोइशरत खाकमें मिलजाय।' यह विरहातुरका वाक्य है।

गतः। समये तिष्ठ सुग्रीव मा बालिपथमन्वगाः ॥८१॥ एक एव रणे बाली शरेण निहतो मया। त्वां तु सत्यादति क्रान्तं हनिष्यामि सबान्धवम् ॥८२॥' अर्थात् हे महाबली वीर! सुग्रीवसे जाकर कहो, और मेरे रोषका स्वरूपभी उसे बताओ, कि जिस मार्गसे बाली गयाहै वह मार्ग बंद नहीं होगयाहै; प्रतिज्ञाका पालन करो, बालिके रास्तेपर मत चलो। मैंने बालिको अकेलाही माराथा पर तुमको सत्यके त्यागके कारण बन्धुवर्गसहित मारूँगा।

† यथा (स० ५)—'नायाति शरदं पश्यन्नपि मार्गयितुं प्रियाम्। पूर्वोपकारिणं दुष्टः कृतघ्नो विस्मृतोहि माम् ॥९॥ हन्मि सुग्रीवमप्येहं सपुरं सहबान्धवम्। बाली यथा हता मेऽद्य सुग्रीवोपि तथा भवेत् ॥१०॥ इति रुष्टं समालोक्य राघवं लक्ष्मणोऽब्रवीत् ॥' अर्थात् शरदऋतु आगया पर वह अबतक प्रियाके शोधमें चलाहुआ नहीं दीखता। वह दुष्ट और कृतघ्न है कि पूर्वही उपकारकरनेवाले मुझको उसने भुलादिया। मैं उसे पुर और बान्धवोंसहित मारूँगा जैसे पूर्व बालिको माराथा। इसप्रकार क्रोधयुक्त राघवको देखकर लक्ष्मणजी बोले।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राम-सत्य-संकल्प-प्रभुका संकल्प नहीं है। रोष मात्र है। सोभी अभिनय है। माया है। इस मायाको लक्ष्मणजी क्या जानें। 'लछिमन हू यह मरम न जाना'। यह विरहातुरका रोषभी तो उसी मायाके सिलसिलेमें है।

टिप्पणी १—'जासु कृपा छूटहिं मद मोहा'। यथा—'क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल रामकी दाया॥'' २—यहाँ मद और मोह दोकाही छूटना कहा, क्योंकि ये दोनों क्रोधके मूल हैं। अतएव जब मूलही रामकृपासे नाश होजाताहै तब उनको स्वयं क्रोध कैसे होगा? ३—उमाको संदेह हुआ कि ईश्वरको क्रोध कैसे हुआ, इसीसे महादेवजीने समाधान किया और 'उमा' संबोधन दियागया। ४—ईश्वरको स्वप्न नहीं होता। स्वप्न अज्ञानता है। जो यहाँ स्वप्न कहा वह माधुर्य्य लीलाके अनुकूल कहाहै।—[नोट—यहां यह ध्वनि है कि भगवान् नरलीलामें क्रोधका नाट्य कररहेहैं। स्वप्नमें क्रोध न होना मुहावरा है, जिसका भाव यह है कि किसी अवस्थामेंभी भगवान्को क्रोध नहीं हो सकता।] *

जानहिं यह चरित्र मुनि ज्ञानी।
जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी॥§१७ (७)
लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना।
धनुष चढाइ गहे कर बाना॥ ,, (८)

अर्थ—मुनि, ज्ञानी और जिन लोगोंने रघुबीर रामजीके चरणोंमें प्रीति मान ली है वेही इस चरित्र (रहस्य) को जानतेहैं † (कि सबको

* यथा—"मायया मोहितास्सर्वेजना अज्ञानसंयुताः। कथमेषां भवेन्मोक्ष इति विष्णुर्विचिन्तयन्॥ कथां प्रथापितुं लोके सर्वलोक मलापहाम्। रामायण विधां रामो भूत्वा मानुष चेष्टकः॥ क्रोधं मोहंच कामंच व्यवहारार्थं सिद्धये॥"—(अध्यात्म ५। २०)। अर्थात् मायामोहित होकर लोग अज्ञानी होगए। उनके मोक्षके लिए भगवान्ने लोकमें कथा विस्तारके लिए पापनाशिनी रामायण और मनुष्य व्यवहार निबाहनेके लिए काम, क्रोध और मोहकोभी ग्रहण किया।

† यथा—'विदंति मुनयः केचिज्जानन्ति सनकादयः। तद्भक्ता निर्मलात्मानः सम्यग्जानन्ति नित्यदा'॥ (अध्यात्मे ५।२४) अर्थात् इसे कोई मुनि जानतेहैं या सनकादिक और निर्मल हृदयवाले भक्त अच्छी तरह नित्य प्रत्यक्ष करतेरहतेहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कृतार्थ करनेके लिए प्रभु यह नरनाट्य कररहेहैं, उनमें काम क्रोध आदि कहां ?)। लक्ष्मणजीने प्रभुको क्रोधवंत जाना तब उन्होंने धनुष चढ़ाकर बाणको हाथमें लिया। अर्थात् सुग्रीवको मारनेको तैयार हुए।

टिप्पणी १—मुनिसे अधिक ज्ञानी जानतेहैं और ज्ञानीसे अधिक उपासक जानतेहैं। इसीसे क्रमसे प्रथम मुनिको, फिर ज्ञानीको और अंतमें उपासकको कहा। २—'लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना' इति। (क) 'क्रोधवंत जाना' का भाव कि प्रभु क्रुद्ध नहीं हैं, ऊपरसे क्रोध दिखातेहैं; पर लक्ष्मणजीने जाना कि वे क्रुद्ध हैं। इससे यह शंका होतीहै कि मुनि, ज्ञानी और उपासक जानतेहैं कि क्रोध नहीं है और लक्ष्मणजीने जाना कि क्रोधित हैं, तो क्या लक्ष्मणजी ज्ञानी या रामचरणरत नहीं हैं ? इसका समाधान यह है कि लक्ष्मणजीमें ये दोनों गुण हैं, यथा—"बारेहि ते निज पति हित मानी। लछिमन रामचरन रति मानी"। पर रामजी उनको यह चरित्र जनाया नहीं चाहते। क्रोधका मूल विरह है और विरहका मूल सीताहरण है, सो सीताहरणका मर्ममी तो उनको नहीं जनायाथा। क्योंकि यदि लक्ष्मणजी जानजाते तो रामजीसे विरह आदि लीला न करते बनती।

पां०—रघुवीरचरणका भाव यह कि माधुर्यके उपासकही जानेंगे और शंकर महाराज इसलिए नहीं कहते कि वे ऐश्वर्यके उपासक हैं। वाल्मीकिजीने चरितके विषयमें कहाही है कि 'तुम्ह जो कहहु करहु सब साँचा। जस काछिय तस चाहिय नाचा'। आशय यह कि नरतनमें क्रोध-भ्रमादि सब लगेहैं इससे वैसाही चरित्र करना आवश्यक हुआ। प्रभुने कहाभी है—'मैं कछु करब ललित नर लीला'। उसीका निर्वाह सर्वत्र करते जायंगे।

तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुनासीवँ।
भय दिषाइ लै आवहु तात सषा सुग्रीवँ॥ §१८

अर्थ—करुणाकी सीमा रघुनाथजीने तब भाईको समझाया कि हे तात! सुग्रीव सखा है उसे भय दिखाकर लेआओ। [अर्थात् समझाया कि सखाको मारना अनुचित है। वह अपनाही बनायाहुआहै, अपना बनाया आपही न बिगाड़ना चाहिए। यथा—'पालि कै

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कृपाल व्याल बालकौ न मारिये औ काटिये न नाथ बिषहू को रूख लाइ कै' —(क० उ० ६१)।]

टिप्पणी १—रघुपति करुणासींवँ' अर्थात् सभी रघुवंशी कारुणीक होतेहैं और ये तो रघुवंशियोंके पति (स्वामी) हैं अतएव ये करुणामें सबसे अधिक हैं, इनसे हद है। पुनः, इस विशेषणको देकर जनाया कि सुग्रीवपर तो रामजीकी करुणा है, क्रोध नहीं है। २—'अनुजहि समुझावा'। 'अनुज'-पद देकर जनाया कि यहभी समझाया कि सुग्रीव हमारे सखा हैं अतः हमारे समान हैं और तुम्हारे मानकरनेके योग्य (मान्य) हैं क्योंकि तुम हमारे छोटे भाई हो।

गौड़जी—भगवान् लक्ष्मणजीकी आतुरताका हाल जानतेहैं कि नासमझीसे भरतकोही मारडालनेको तैयार थे। यहाँभी नासमझीसे उठखड़ेहुएहैं। अतः समझाया।

नोट—वाल्मीकीय स० ३१ में लक्ष्मणजीका क्रोध और उनको रामजीका समझाना दश श्लोकोंमें है। उन्होंने यहाँतक कहडाला कि मैंअसत्यवादी सुग्रीवका वध अभी करताहूँ। अंगद सीताको ढूढें, धनुषबाणको लिए वेगसे चलते देख रामजीने समझाया कि—तुम्हारे ऐसे मनुष्यको ऐसा पाप न करना चाहिए, कोपको विवेकसे वीर-पुरुषोत्तमलोग शान्त करतेहैं। तुम साधुचरित हो, सुग्रीवके प्रति मारनेकी बात तुमको न सोचनी चाहिए। स्मरण तो करो कि तुमने पहिले मैत्री कीहै; काल बीतगया इसके संबंधमें कोमल वचनोंसे रुखाई दूरकर सुग्रीवसे कहना। और अध्यात्ममें समझाना यह लिखाहै कि वह हमारा प्रिय सखा है, उसे मारना नहीं किंतु उसे भय दिखाना कि बालिकी तरह तुम्हाराभी वध होगा। यथा—'न हन्तव्यस्त्वया वत्स सुग्रीवो मे प्रियः सखा ॥१३॥ किन्तु भीषय सुग्रीवं बालिवन्न हनिष्यसे।'—(स० ५)।

शिला—रामजीको कुपित जान लक्ष्मणजीने धनुषचढ़ाकर हाथमें बाण लिया। भाव यह कि उन्होंने सोचा कि ऐसे कृतघ्नीको कल क्यों, आजही मारडालेंगे और नगरभी जानेकी ज़रूरत नहीं यहींसे वध कर देंगे। यह जानकर रामजीने समझाया कि ऐसा न करो क्योंकि—(क) हमारे ऐसा करनेसे हमारी सनातन रीतिमें विरोध पड़ेगा। पुनः, (ख) वह सूर्यपुत्र है, सूर्य हमारे पुरुषा हैं। उसके वधसे गोत्रवध-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दोष होगा। पुनः, (ग) रावणवधमें नर वानर दोनों कारण हैं, ऐसा वर रावणने माँगा है—'वानर मनुज जाति दुइ बारे'। सुग्रीव वानरराज है। बिना उसके बुलाए वानर कैसे आयंगे। पुनः, (घ) हमें सुर नर मुनि किसीने सीताका हाल न दिया, सुग्रीवनेही दिया, वह विपत्तिका साथी हुआ और सीताजीनेभी उसपर कृपाकी इसीसे उसे पटभूषण दिए। सबलोग एवं सीता हमें क्या कहेंगी? पुनः, (ङ) हनुमान्‌जीसे सूर्यने गुरुदक्षिणामें सुग्रीवकी रक्षा माँगी और हनुमान्‌जीने वही वचन हमसे लिया। हनुमान्‌जी क्या कहेंगे? हनुमान्‌जीसे आगे सब कार्य लेना है।

इहाँ पवनसुत हृदय बिचारा।
रामकाजु सुग्रीव बिसारा॥ § १८ (१)
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा।
चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा॥ ,, (२)

अर्थ—यहाँ (किष्किंधा नगरमें) पवनसुत हनुमान्‌जीने मनमें बिचारकिया कि सुग्रीवने रामकार्य्य भुलादिया। पास जाकर उन्होंने माथा नवाया (प्रणामकिया) और साम, दाम, भेद और दंड चारों प्रकारसे कहकर उनको समझाया।

टिप्पणी—१ (क) सुग्रीवने रामकार्य भुलादिया यह विचार मनमें इससे उत्पन्न हुआ कि शरदऋतु आगई और वे सुखभोगमें आसक्त हैं, यदि उनको कामकी सुध होती तो वे हमसे कार्य्यकेलिए अवश्य कहते पर उन्होंने उसकी चर्चाभी नहीं चलाई। (ख) सुग्रीव भूलगए पर ये न भूले; क्योंकि रामकार्य्यकेलिए तो इनका अवतारही हुआहै, यथा—'रामकाज लगि तव अवतारा'।—[पुनः, १—ये तो सदा 'रामकाज करिबेको आतुर' रहतेहैं इनके हृदयमें धनुषबाण धारण किए सदाही रामजी बसतेहैं अतः ये कब भूलनेवाले हैं। दूसरे, इन्हींने सुग्रीवकी रक्षा (बालिवध कराके) श्रीरामजीके द्वारा कराई, इन्हींने मित्रता कराई और वचन दिया था कि आप उसे अभय करें वह सीताकी खबर मँगायेगा। पुनः, रामजी हनुमानजीको परम सम्मान देनाचाहतेहैं, अतः उरप्रेरक रघुवंश-विभूषणने इनको प्रेरणा की। वा० २९ में लिखाहै कि हनुमान्‌जी विषयको ठीक ठीक समझने-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाले, कर्त्तव्य-विषयमें संदेहरहित और समयको खूब जाननेवाले हैं। उन्होंने हितकारी, सत्य और उपकारी, साम, धर्म और नीतिसे युक्त, नम्रता और प्रेम सहित, शास्त्रोंमें विश्वास करनेवालोंके निश्चित वचन जाकर कहे।* पुनः, २—यहां हनुमान्‌जीको मन, कर्म और वचन तीनोंसे सुग्रीवका हितैषी दिखाया है।—'पवनसुत हृदय विचारा' यह मन, 'जाइ चरनन्हि सिर नावा' यह कर्म और 'कहि समुझावा' यह वचनसे हित हुआ।]

२—"निकट जाइ००" इति। (क) बात समाजमें कहने योग्य नहीं है अतः पास जाकर कहा जिसमें दूसरा न सुन सके। दूसरेके सुनने से राजाकी 'हलकाई' होतीहै। (ख) रामकार्यके लिए सिखावन देना है और राजाके पास जानेपर प्रथम प्रणाम करके तब बोलनेकी रीतिहै अतः प्रणाम करके बोले।

३—चारिहु बिधि समुझाया। यथा—(क) रामजीने तुमसे मित्रता वा प्रीति की, यह साम है। (ख) तुमको राज्य दिया यह दाम है।—[पंजाबीजी लिखतेहैं कि साम-विधि यह है कि ये रघुवंशी महानुभाव हैं, उसपरभी ईश्वर हैं कि जिनकी सेवाकी लालसा समग्र देवता किया करतेहैं, सो तुम्हारे घर आए। ऐसे पूज्यकी सेवा कर्त्तव्य है, जिसमें वे प्रसन्न रहें। दाम यह कि तुम्हें राज्यादि दिलाया, उसका बदला शीघ्र देना उचित है।] †—(ग) वाली अंगदको रामजीको

* "निश्चितार्थोऽर्थ तत्त्वज्ञः कालधर्म विशेषवित् ॥६॥ प्रसाद्य वाक्यैर्विविधैर्हेतुमद्भिर्मनोरमैः। वाक्यविद्वाक्य तत्त्वज्ञं हरीशं मारुतात्मजः ॥ ७ ॥ हितं तथ्यं च पथ्यंच साम धर्मार्थनीतिमत्। प्रणयप्रीतिसंयुक्तं विश्वासकृत निश्चयम् ॥ ८ ॥" अर्थात् वक्तव्य अर्थका निश्चय करके काल और स्वधर्मके मर्मको जाननेवाले, मनोरम तरह २ के वाक्योंसे खुश करके, वाक्यवित् हनुमान् जी हित, तथ्य, पथ्य, सामधर्म अर्थ नीति, प्रेम और विश्वास भरे वचन बोले।

† वा० स० २९ में हनुमान्‌जीका समझाना इस प्रकार है—आपने राज्य और यश पाया...पर मित्रोंका कार्य अभी बाक़ी है उसे आप करें। अवसर जाननेवाले मित्रके कार्यमें सदा तत्पर रहतेहैं।...अतएव सन्मार्गमें स्थित, चरित्रवान्, आपको मित्रकार्यको भलीभाँति संपन्न करना चाहिए। मित्रकार्यमें आदरपूर्वक उद्योग न करनेवालेका उत्साह नष्ट होजाताहै और वह अनर्थ पाताहै। समय बीतजानेपर कार्य करना करना नहीं समझाजाता। समय बीतरहाहै॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सौंप गयाहै। यदि रामजी उसे राज्य दे दें तो तुम क्या करसकते हो? यह भेद है। (घ) जिन्होंने बालिका वध किया उनके सामने तुम क्या चीज़ हो? यह दंड है।

४—हनुमान्‌जीने रामकार्यमें मन, तन और वचन तीनों लगाए। मनसे स्वामीका हित बिचारा, तनसे नम्र हुए और वचनसे हित कहा। यथा—'पवनसुत हृदय बिचारा', 'चरनन्हि सिरु नावा' और 'कहि समुझावा'।

नोट—१ वा० २९ के विशेष भागमें हनुमान्‌जीका समझाना है। इसमें एवं अध्यात्ममें यहभी कहाहै कि वे समस्त सुरासुरको मार सकतेहैं, केवल तुम्हारी प्रतिज्ञा देखरहेहैं कि तुम कृतघ्नी तो नहीं हो। कृतघ्नी होनेंपर वे बालीकी तरह तुम्हेंभी मारसकतेहैं।—'न करोषि कृतघ्नस्त्वं हन्यसे बालिवद्द्रुतम्'।

२—'रामकाज सुग्रीव बिसारा' इति। यह बिचार सुग्रीव और रामजीके वचनोंके स्मरणसे हुआ। सुग्रीवने कहाथा कि 'तजहु सोच मन आनहु धीरा' 'सब प्रकार करिहौं सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई'। और रामजीके वचन हैं कि 'गत ग्रीषम बर्षारितु आई। ...संतत हृदय धरेहु मम काजू'। हनुमान्‌जी सोचतेहैं कि प्रभुकी यह आज्ञाथी पर सुग्रीवने 'हृदय धरने' के बदले 'हृदयसे बिसार दिया'। पंजाबीजी लिखतेहैं कि 'राम' और 'सुग्रीव' पदोंका भाव यह है कि "जो सबको रमानेवाले हैं उनका काम न भूलना चाहिए था। दूसरे, यह सुष्ठु अर्थात् नम्र-ग्रीव-वाला है, इसमें यह भूल उचित न थी।"

(९ से १५ तक)॥ रामचंद्र काल जानतेहैं पर बुद्धिमानहैं इसीसे उन्होंने समय बीतने की बात तुमसे नहीं कही। वे तुम्हारे कुलकी वृद्धिके हेतु हैं, बहुत दिनोंके लिए मित्र हैं। उनका प्रभाव अनुपम है, वे सर्वगुणसंपन्न हैं। तुम्हारा काम पहले कर दिया-है। आप उनका काम अब कीजिए। जब तक वे कुछ नहीं कहते तब तक यदि हम कार्य प्रारंभ करदें तो समय बीता न कहा जायगा। पर उनके कहनेपर समय बीता समझा जायगा।...आप शक्तिमान हैं, पराक्रमी हैं, तब उनको प्रसन्न करनेके लिए वानरोंको शीघ्र आज्ञा क्यों नहीं देते?...वे आपकी प्रतिज्ञा देखरहेहैं, नहीं तो वे सुरासुर सभीको बाणोंसे अनायास वश करसकतेहैं। उन्होंने बालिवधके विषयमें किंचित् शंका न करके हम सबका बड़ा उपकार प्रथम ही कियाहै अतएव उनका प्रिय आपको सब प्रकारसे करना चाहिए।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पवनसुत-पदका भाव कि 'पवनदेव भक्त हैं और ये उनके पुत्र हैं। अथवा, पवन प्राणरूप से सबमें व्याप्त है और ये पवनात्मज हैं, अतः इनकी बुद्धिमें विचार उठा—(पं०)। ३—हनुमान्‌जी गोस्वामीजीके सर्वस्व हैं, इसीसे कवि 'इहाँ'-पद देकर अपनेको उन्हींके साथ सूचित कररहेहैं।

सुनि सुग्रीव परम भय माना।
बिषय मोर हर लीन्हेउ ज्ञाना॥ § १८ (३)
अब मारुतसुत दूत समूहा।
पठवहु जहँ तहँ बानरजूहा॥ ,, (४)
कहेहु पाष महुँ आव न जोई।
मोरे कर ताकर बध होई॥ ,, (५)

अर्थ—सुग्रीवने हनुमान्‌जीके वचन सुनकर अत्यन्त भय माना (अर्थात् अभी तक उनको किंचित् भय न था अब बहुत भयभीत होगए) कि विषयने मेरा ज्ञान हरलिया। हे पवनपुत्र! अब जहाँ जहाँ वानरोंके यूथ हैं वहां वहाँ बहुतसे दूतोंको भेजो और दूतों एवं वानर-यूथोंको यह कहलादो कि जो कोई एक पक्ष अर्थात् १५ दिनमें न आजायँगे उनका वध मेरे हाथों होगा।

नोट १—'हर लीन्हेउ ज्ञाना' से जनाया कि पूर्व ज्ञान था। यहां लक्ष्य है सुग्रीवके इन वचनोंपर कि—'उपजा ज्ञान बचन तब बोला। नाथ कृपा मन भयउ अलोला॥ सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई॥ ये सब रामभगति के बाधक।००' इत्यादि जो §६ में कहेहैं। बाबा हरिहरप्रसादजी लिखतेहैं कि जब चेत हुआ तब परम भयभीत हुआ कि उफ़ ओह! मुझसे बड़ा अपराध हुआ, विषयने मुझे ऐसा वशमें कर लिया! विषयने ज्ञान हरलिया, यही भय हुआ।

नोट २—'मारुतसुत' वा 'पवनसुत' का प्रयोग वहाँ २ हुआहै जहाँ कार्य्य करनेमें शीघ्रता दरसाना होतीहै। सुंदरकांडमें इसका प्रयोग प्रारंभमें ही बहुत हुआहै, यथा—'जात पवनसुत देवन्ह देषा', 'अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा', 'तुरत पवनसुत बत्तिस भएऊ' इत्यादि। वहां इसके भाव लिखे जाचुकेहैं। वैसेही इस सम्बोधनसे सुग्रीवका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तात्पर्य है कि तुम शीघ्र काम करनेवाले हो अतः तुम शीघ्र यह काम करो, शीघ्र शीघ्रगामी वानरोंको बुलाओ, शीघ्रगामी दूतोंको भेजो। यथा—'शीघ्रं कुरु मदाज्ञां त्वं वानराणां तरस्विनाम्'—(अध्यात्म ४।५०)

टिप्पणी—१ दूतोंकी संख्याके विषयमें अनेक मत हैं। अध्यात्ममें 'सहस्राणि दशेदानीं'—(५।५०), अर्थात् दशहज़ार और वा० ३७।१३ में 'शतान्यथ सहस्राणि कोट्यश्च मम शासनात्। प्रयान्तु कपिसिंहानां निदेशे मम ये स्थिताः' अर्थात् प्रथम वेगवान बहुतसे दूत भेजे-गएथे फिर हनुमान्‌जीसे यह आज्ञा की कि मेरी आज्ञा माननेवाले श्रेष्ठ वानर सैकड़ों हज़ारों करोड़ों शीघ्र कार्य्य होनेके लिए और भी भेजो। इत्यादि। इसीसे सर्वमतरक्षक पूज्य कविने 'समूह' पद देकर सबके मतका निर्वाह कर दिया।

२—'पठवहु जहँ तहँ' अर्थात् गोस्वामीजीने स्थानकाभी नियम नहीं रक्खा; क्योंकि इसमेंभी अनेक मत हैं। अध्यात्ममें 'सप्तद्वीपगतान् सर्वान् वानरानयंतु ते' (४।५२) अर्थात् सप्तद्वीपनिवासी सब वानरोंको ले आवें, ऐसा लिखाहै। और,वा० ३७ में महेन्द्र हिमवान्, विन्ध्याचल इत्यादि अनेक पर्वतोंके नाम गिनाएहैं। अतः गोस्वामीजीने 'जहँ तहँ' पद दिया जिसमें सब मतोंका समावेश होजाय।—['जूह' यूथका अपभ्रंश है]।

मा० म०—वानरोंको भेजा रीछोंको नहीं, क्योंकि वानर हलके होतेहैं शीघ्रतासे जायँगे, रीछ भारी होतेहैं उन्हें देर लगेगी।

तब हनुमंत बोलाए दूता।
सब कर करि सनमान बहूता॥ § १८ (६)
भय अरु प्रीति नीति देषराई।
चले सकल चरनन्हि सिरु नाई॥ ,, (७)
एहि अवँसर लछिमन पुर आए।
क्रोध देषि जहँ तहँ कपि धाए॥ ,, (८)

अर्थ—(जब सुग्रीवकी आज्ञा पाई) तब हनुमान्‌जीने दूतोंको बुलाया और सबका बहुत सम्मान करके † सबको भय, प्रीति और

† १ सम्मान यह कि उचित आसन देना, आदरसे कुशल-प्रश्न करना, इत्यादि। यह इससे कि उनसे काम लेनाहै। २ पं०—सम्मान यह कि उनसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नीति दिखाई। सब वानर चरणोंमें मस्तक नवाकर चले। (जब हनुमान्‌जी दूतोंको भेजचुके तब) उसी समय लक्ष्मणजी नगरमें आए उनका क्रोध देखकर वानर जहां तहांसे दौड़े।

टिप्पणी १—'तब हनुमंत बोलाए' से सूचित किया कि वे विना राजाज्ञाके कुछ न करसकते थे। २—भय, प्रीति और नीति दिखाई। यथा—(क) पक्ष भरमें जो न लौटकर आजायगा उसका वध राजा स्वयं करेंगे, यह भय दिखाया। (ख) शीघ्र आनेवालेपर राजा प्रसन्न होंगे यह प्रीति दिखायी और (ग) सेवकका धर्म है 'स्वामि-सेवकाई', यह निति दिखाई—[पुनः, नीति यह भी कि बालिके बाद सुग्रीवका राज्य होनेपर इनका प्रथम कार्य्य, जो तुमको सौंपागया, यही है; इससे तुम्हारी परीक्षाभी होरहीहै कि तुम विरोधी पक्ष तो नहीं रखते। बाबा हरिहरप्रसादजी कहतेहैं कि भय और प्रीति ये ही दोनों नीतियाँ दिखाईं—] ३—सुग्रीवकी आज्ञा भय दिखानेकी है। अतः प्रथम भय दिखाया; प्रीति और नीति अपनी ओरसे दिखाई।—[दीनजी—सम्मान करके प्रेम दर्शाया, और फिर उन्हें दूतोंकी नीति बतलाई।]

४—'क्रोध देषि'। 'देखि' से जनाया कि लक्ष्मणजी भय प्रदर्शनके लिए क्रोधकी चेष्टा किएहैं, नेत्र लाल हैं, त्योरी चढ़ाए हैं, कठोर रोदाका शब्द करतेहुए देखपड़े।

नोट—'जहँ तहँ कपि धाए'। अध्यात्मके 'चक्रुः किलकिला शब्दं धृत पाषाण पादपाः। तान्‌दृष्ट्वा क्रोधताम्राक्षो वानरान्लक्ष्मणस्तदा॥ ५।२७॥' (अर्थात् शहरपनाहके बानर उनको देखकर शिलाएँ और वृक्ष लेलेकर किलकिला शब्द करनेलगे, यह देखकर लक्ष्मणजीके नेत्र क्रोधसे लाल होगए।) इस श्लोकसे 'धाए' का भाव लड़नेकेलिए दौड़े, यही सिद्ध होताहै। कोई महानुभाव ऐसा कहतेहैं कि वे सुग्रीवकी रक्षाकेलिए मोरचाबंदी करनेलगे कि कहीं उनको जाकर मारें नहीं।

कहा कि तुम सदाके विश्वासी सेवक और मित्र हो, सदा अवसर पड़नेपर तुमही काम आएहो। ३—अध्यात्ममें दान मानसे तृप्त करना कहाहै। यथा—'पवनहितकुमारः प्रेषयामास दूतानतिरभसतरात्मादानमानादि तृप्तान्।' (४।५४) अर्थात् पवनके प्रियपुत्र हनुमान्‌जीने दान देकर सम्मानसे तृप्तकर दूतोंको भेजा। ४—सबका नाम आदरसे लेनाभी सम्मान है, यथा—'ल लै नाम सकल सनमाने'।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वा० स० ३१ में लिखाहै कि लक्ष्मणजीने देखा कि महाबली वानर हाथोंमें वृक्ष लिएहुए शहरपनाहके बाहर खड़ेहैं, इससे उनका क्रोध बढ़गया। *

धनुष चढाइ कहा तब जारि करौं पुर छार।
ब्याकुल नगर देषि तब आएउ बालिकुमार ॥§१९॥

अर्थ—तब (अर्थात् जब वानरोंको लड़नेकी तैयारी करके दौड़ते किलकिला शब्द करते देखा) लक्ष्मणजी धनुष चढ़ाकर बोले कि (अग्निवाणसे) नगरको जलाकर राख करदूँगा। नगर-वासियोंको व्याकुल देखकर बालिपुत्र अंगद उनके पास आए। †

टिप्पणी १—"जारि करौं पुर छार" इस कथनसे ज्ञात होताहै कि नगरभरके वानर युद्ध करने आए इसीसे नगरभर जलानेको कहतेहैं। पुनः,"कहा"पद देकर जनाया कि भयदर्शनके लिए ऐसा मुखसे कहकर डरवारहेहैं और इस कथन मात्रका प्रभावभी वैसाही पड़ा; ये शब्द सुनतेही सारा नगर व्याकुल होगया। २—"बालिकुमार" का भाव कि—(i) यह बालिके समान बुद्धिमान् हैं—जैसे बालिके वचनसे प्रसन्न होकर रामजीने उसके सिरपर हाथ फेराथा वैसेही अंगदके वचनसे प्रसन्न होकर लक्ष्मणजीने इसको अभयबाँह दी अर्थात् निर्भय किया। (ii)-बालि नगरका रक्षक था, इस समय अंगदनेभी नगरको लक्ष्मणजीके क्रोधसे बचाया।

* यथा—'ततस्तैः कपिभिर्व्याप्तां द्रुमहस्तैर्महाबलैः। अपश्यल्लक्ष्मणः क्रुद्धः किष्किंधां तां दुरासदाम् ॥२६॥ ततस्ते हरयः सर्वे प्राकार परिखान्तरात्। निष्क्रम्योदग्रसत्वास्तु तस्थुराविष्कृतं तदा ॥२७॥ ददर्श वानरान्भीमान् किष्किंधायां बहिश्चरान् ॥१७॥' अर्थात् हाथमें उखाड़ेहुए पेड़ लिएहुए बन्दरों से व्याप्त, दुर्गम किष्किंधाको लक्ष्मणजीने देखा। फिर वे सब वानर परकोटेकी खाईसे बाहर निकल स्पष्ट रूपसे खड़ेहोगए और उन्होंने वहाँ भयंकर भयंकर बन्दरोंको देखा।

† १ 'निर्मूलान् कर्तुमुद्युक्तो धनुरानम्य वीर्यवान्। ततः शीघ्रं समागत्य ज्ञात्वा लक्ष्मणमागतम् ॥२८॥ निवार्य वानरान् सर्वानंगदो मंत्रिसत्तमः।' (अध्यास्म ५)—अर्थात् बलवान् धनुषको चढ़ाकर वानरोंको निर्मूल करनेको तैयार हुए, तब उनका आगमन जानकर मंत्रिश्रेष्ठ अंगदने शीघ्र आकर सब वानरोंको हटादिया। २—'व्याकुल नगरमें' लक्षित लक्षणा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नोट १—'धनुष चढ़ाइ' से जनाया कि पूर्व धनुष जो चढ़ायाथा-'लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना', वह रामजीके समझानेपर उतारलियाथा। यद्यपि रोदाका उतारना नहीं कहागया पर यहां पुनः प्रत्यञ्चाका चढ़ाना बिना प्रथम उतारनेके नहीं होसकताथा। २—सुग्रीवको केवल भय दिखानेकेलिए आपथे इससे प्रत्यंचा उतार दीथी, पर यहां देखा कि सब लड़नेकेलिए तैयार हैं, यह दुष्टता देख धनुष चढ़ाकर उन्होंने नगरभरको भस्म करनेको कहा।—(प्र०)।

पं०—'बालिकुमार' का भाव कि—(क) लक्ष्मणजाको कुपित तो जाना पर यह विचार किया कि मुझे शिशु जानकर सबपर कृपाही करेंगे। अतः आया। वा, (ख) यह सोचा कि यद्यपि क्रोध बहुत है तथापि मेरे पिताने शरणागत होकर मेरी बाँह इनको पकड़ाईहै अतः मेरे जानेसे दयाही करेंगे। वा, (ग)—सोचा कि यद्यपि पुरीका स्वामी इस समय सुग्रीव है, फिरभी इसे सुखपूर्वक मेरे पितानेही बसायाथा, इससे इनका दुःख मुझसे कैसे देखाजासकताहै; उनकी रक्षा मेरा कर्त्तव्य है, अतः आया। पुनः, (घ) इस पदसे जनाया कि लक्ष्मणजीका कोप और नगरकी व्याकुलता देख इसकाभी अधीर होजाना संभव था पर यह बालिका पुत्र है अतः अधीर न हुआ। धैर्य, विनय आदि गुणोंमें पिताके समानही है।

दीनजी—यहां पहले अंगदका आना राजनीतिसे परिपूर्ण है। पहली बात यह है कि रामजीने अंगदको युवराज बनाया, अतएव अपने किष्किंधा युवराजपर दया अवश्य करेंगे। दूसरे, इस समय सुग्रीव राजा हैं, अतएव वे स्वयं स्वागतार्थ नहीं जासकते। राजकुमार लक्ष्मणके स्वागतकेलिए युवराजको भेजनाही राजनीतिकी दृष्टिसे उचित और उपयुक्त था।—(पर वह स्वयं आयाहै सुग्रीवने नहीं भेजा। यह बात 'आयउ' और 'व्याकुल देखि' से स्पष्ट है।)

चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही।
लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्ही॥ § १९ (१)
क्रोधवंत लछिमन सुनि काना।
कह कपीस अति भय अकुलाना॥ ,, (२)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुनु हनुमंत संग लै तारा।
करि बिनती समुझाउ कुमारा॥ ,, (३)

अर्थ—अंगदने चरणोंमें मस्तक नवाकर विनती की (अर्थात् अपराध क्षमा कराया)। लक्ष्मणजीने उसे अभय बाँह दी (अर्थात् भयसे बचानेका वचन दिया, उसे अपने क्रोधसे निर्भय करदिया; कहा कि तुमको कोई भय नहीं, तुम तो अपनेही हो, तुम्हें तो तुम्हारे पिताही हमें सौंपगए थे, हम वचन देतेहैं कि नगर न जलायंगे †)। अपने कानोंसे लक्ष्मणजीको क्रोधवंत सुनकर कपिपति सुग्रीव अत्यन्त भयसे व्याकुल होगए (और हनुमान्‌जीसे बोले कि) हे हनुमन्त! सुनो। ताराको साथ लेजाकर विन्ती करके राजकुमारको समुझाओ (शान्त करो) *

† 'अभय बाँह देना' मुहावरा है। पर पंजाबीजी कहतेहैं कि 'मुखसे क्यों न कहा? भुजासे अभय क्यों जनाया?' और उत्तर देतेहैं कि 'वचनसे इसमें विशेषता मानीजातीहै। दूसरा भाव यह है कि लक्ष्मणजीने विचारा कि यह सुग्रीवका भेजाहुआ नहीं है, इससे सब कोप अभी निवृत्त करना उचित नहीं। अतः हाथसे उसका आश्वासन किया और मुखका कोप बनारक्खा क्योंकि अभी सुग्रीवको भय दिखानाहै।

* यथा अध्यात्मे—'गत्वा लक्ष्मणसामीप्यं प्रणनाम स दंडवत्॥ २९॥ ततोऽङ्गदं परिष्वज्य लक्ष्मणः प्रियवर्धनः। उवाच वत्स गच्छ त्वं पितृव्याय निवेदय॥ ३०॥ ममागतं राघवेणचोदितं रौद्रमूर्त्तिना॥ तथेति त्वरितं गत्वा सुग्रीवाय निवेदयत्॥ ३१॥ लक्ष्मणः क्रोधताम्राक्षः पुरद्वारि बहिस्थितः। तच्छ्रुत्वातीव संत्रस्तः सुग्रीवो वानरेश्वरः॥ ३२॥ प्रेषयित्वा हनूमंतं तारामाह कपीश्वरः॥ ३४॥ त्वं गच्छ सांत्वयंती तं लक्ष्मणं मृदुभाषितैः॥...३५॥" —(स० ५)। अर्थात् अंगदने लक्ष्मणजीके समीप जाकर दण्डवत् प्रणाम किया, तब प्रियजनकी वृद्धि करनेवाले लक्ष्मणजी उन्हें हृदयसे लगाकर बोले कि हे वत्स! जाकर अपने चाचासे कहो कि रघुनाथजीने क्रोधयुक्त होकर लक्ष्मणजीको भेजाहै। बहुत ठीक, ऐसा कहकर अंगद ने शीघ्र जाकर सब वृत्तान्त सुग्रीवसे निवेदन किया कि लक्ष्मणजी क्रोधसे लाल आँखें किए पुरद्वारके बाहर खड़ेहैं। यह सुनकर वानरराज सुग्रीव अत्यन्त भयभीत हुए।...हनुमान्‌जीको भेजकर तारासे बोले कि लक्ष्मणके समीप जाकर कोमल वाणीसे उनको समझाओ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी १—'सुनि काना' का भाव कि वानरोंने उनका क्रोध देखा, यथा—'देषि क्रोध जहँ तहँ कपि धाए'; पर सुग्रीव महलके भीतर हैं इससे उन्होंने देखा नहीं, वरन् औरोंसे सुना। किससे सुना? पहले अंगदका आगमन और अभयदान कहकर तब उसके आगेकेही चरणमें सुग्रीवका सुनना कहा, ऐसा करके कवि जनातेहैं कि अंगदने जाकर सुग्रीवको खबर दी। अध्यात्मरामायणसे यह भाव प्रमाणित होताहै।

२—'अति भय अकुलाना'। भाव, कि हनुमान्‌जीकेही समझाने पर वे परम भयको प्राप्त हुएथे, यथा—'सुनि सुग्रीव परम भय माना' और अब लक्ष्मणजीका क्रोध सुना इससे 'अति भय' से अकुला उठे। —(पाद-टि० पृष्ठ २४८ देखिए)।—[पं०—अकुलानेका कारण कि रामजी होते तो वे मित्र थे उन्हें हम समझाभी लेते, पर ये भाई के नातेको मानें या न मानें, इनसे मेरा वश नहीं]

'संग लै तारा०'

मा० त० भा०—१ स्त्रीपर महात्मा क्रोध नहीं करते। † वा, २—ताराको बड़ी बुद्धिमान समझकर भेजा कि वह लक्ष्मणजीको समझाकर प्रसन्न करदेगी। —(पूर्व लिखाजाचुकाहै कि इसकी प्रशंसा बाली ने सुग्रीवसे करतेहुए कहाथा कि इसकी रायसे चलना। - पृष्ठ १५८)। और हनुमान्‌जीको बुद्धि-विवेक-विज्ञानके निधान समझकर भेजा।

दीनजी—ताराको लक्ष्मणजीके पास समझाने भेजनाभी रहस्यमय है। क्योंकि रामजीने ताराको राजमहिषी बनाया था। अब यदि लक्ष्मणजी कोप करके नगर जलादें या कुछ और अनिष्ट उत्पात करें तो उन्हें रामजी द्वारा निर्धारित कार्यका खण्डन करना पड़ेगा, जो वे कर नहीं सकते। साथही ताराको भेजकर सुग्रीवकी गंभीर राजनीतिसे अनभिज्ञताकाभी कुछ परिचय दियागयाहै।

वा० ३२ में सुग्रीवके वचन हैं कि जान पड़ताहै कि मेरे शत्रुओं वा अपकारियोंने मेरी त्रुटियाँ देखकर मेरे दोष उनसे कहेहैं। विना कारण मित्रका कुपित होना घबड़ाहट और भय पैदा कररहाहै। (श्ल० ३-६)।

† यथा—'नहि स्त्रीषु महात्मानः क्वचित् कुर्वन्ति दारुणम्'—(वा० ३३)। अर्थात् महात्मा लोग स्त्रीपर कठोरता नहीं करते।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गौड़जी—हनुमान्‌जीने मैत्री स्थापित करायी और तारा सनाथा कीगई। सुग्रीवके मारे जाने से दोनों बातें नष्ट होजायँगी, यह भाव है।

पां०—१ स्त्रीकी बिन्तीसे दया शीघ्र और अधिक होतीहै। श्रीकृष्णजीने नागपत्नीकी विन्तीसे नागका वध न किया। २—ताराका रूप देखकर समझ जायँगे कि इसपर सुग्रीव आसक्त होकर भूलगया।

वै०—उसको सौभाग्यवती करके अब सौभाग्यहीन न करेंगे।

पं०, प्र०—मुझे उन्मत्त जानकर मुझपर कृपा न करेंगे, यह समझकर इन्हें भेजा। हनुमान्‌जी प्रभुके कृपापात्र हैं।

श्री० मि०—हनुमान्‌जीने चारों प्रकारसे समझायाही था, उसपर यह सुना कि अंगद जाकर मिलाहै और वे उसको अभय बाँह देचुके हैं। अतएव घबड़ाकर ताराको साथ लेजानेको कहा; इस विचारसे कि अंगदकी माता जानकर क्रोध त्यागदेंगे और इसकी विनय सुनकर मुझे उसका पति जानकर मेरा अपराधभी क्षमा करेंगे।—(मं० शं०)

टिप्पणी ४—(क)—'करि बिनती समुझाउ' अर्थात् जब विनयसे शीतल होजायँ तब समझाना। (ख) 'कुमार' अर्थात् राजकुमार हैं। इनको नीतिशास्त्रसे समझाना, यों कि नीति यह है कि अपने बनाएको आपही न बिगाड़े, विचारिये तो कि आपने अपने हाथसे सुग्रीवका तिलक कियाहै।

पं०—'कुमार'-पद देकर जनाया कि इस प्रकार समझाना कि सुग्रीवकी मैत्री रामजीसे है, तुम रामजीके छोटे भाई हो, अतएव तुम्हें सुग्रीवका सम्मान बड़े भाईके तुल्य करना चाहिए।

तारा सहित जाइ हनुमाना।
चरन बंदि प्रभु सुजस बषाना॥ §१९ (४)
करि बिनती मंदिर लै आए।
चरन पषारि पलँग बैठाए॥ ,, (५)

अर्थ—तारासहित जाकर हनुमान्‌जीने चरणोंकी वन्दना करके प्रभुका सुयश वर्णन किया। बिन्तीकरके महलमें लेआए *। चरणोंको धोकर पलंगपर बिठाया।

* १ यथा अध्यात्मे—'गत्वा ननाम शिरसा भक्त्या स्वागतमब्रवीत्। एहि वीर महाभाग भवद्गृहमशंकितम्॥३७॥ प्रविश्य राजदारादीन्दृष्ट्वा सुग्रीवमेवच।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—१—(क) 'जाइ हनुमाना' इति। लक्ष्मणजी दरवाज़ेके बाहर हैं और ये भीतर अन्तःपुरमें थे, अतः चलकर लक्ष्मणजीके पास आकर मिले। इसीसे 'जाइ' कहा। (ख)—'प्रभु सुजस', यथा—'जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ', 'न घटै जन जो रघुबीर बढ़ायो'—(क०), जिसको एकबार अपनालिया फिर उसके दोषपर दृष्टि नहीं डालते। पुनः, यह कि प्रभुके समान कोई दीनहितकारी नहीं है। दीन गृद्ध्र, शबरी और सुग्रीवका उन्होंने कैसा हित किया। इत्यादि।

२—'मंदिर लै आए', इस कथनसे जनाया कि सुग्रीवकी आज्ञा थी कि उन्हें महलमें ले आना।* मन्दिरमें ले आनेसे लक्ष्मणजीका अधिक सम्मान हुआ और सेवा बनी कि चरण धोए और पलंगपर बिठाया।

नोट—१—रामभक्तको प्रसन्न करनेका यह सहज नुसख़ा है कि उसे भगवद्यश सुनावे। देखिए, विभीषणजीको हनुमान्‌जीने प्रभुका यश सुनाया, कालनेमिने हनुमान्‌जीको रोकनेकेलिए प्रभुका यश सुनाया, सीताजीको हनुमान्‌जीने लंकामें जाकर प्रभुका यश सुनाया, इत्यादि। कारण यह है कि रामगुणग्राम रामभक्तका जीवन-धन है, यथा—'राम भगत जन जीवनधन से', 'सेवक-मन-मानस

यदाज्ञापयसे पश्चात्तत्सर्वं करवाणि भो ॥३८॥...' (सर्ग ५)। अर्थात् हनुमान्‌जीने जाकर प्रणाम करके कहा—'आइए, आपका स्वागत है। हे महाभाग वीर! यह आपकाही घर है, निश्शंक भीतर चलेआइए, सुग्रीवको देखिए, घरमें बैठकर फिर जो आज्ञा कीजिए वह हम सब करें'। २—वा० ३३ में ताराने लक्ष्मणजीसे कहाहै कि 'सुग्रीव बहुत दिनोंसे बिछुड़ीहुई स्त्रीको और मुझको पाकर आसक्त होगया, उसे क्षमा कीजिए। आइए, मित्रको समझाना चाहिए। आपने मर्यादाकी रक्षाकी कि किसीके घरमें जहाँ स्त्रियाँ हों न जाय; पर मित्रके यहाँ जानेमें दोष नहीं और न सद्भावसे देखनेमें दोष है'। यथा—'तदागच्छ महाबाहो चारित्रं रक्षितं त्वया। अच्छलं मित्रभावेन सतां दारावलोकनम् ॥' यह आज्ञा पाकर लक्ष्मणजी भीतर गए।

* यथा अध्यात्मे—"सांत्वयन् कोपितं वीरं शनैरानय मन्दिरम्।'—(५।३४)। अर्थात् सुग्रीवने हनुमान्‌जीसे कहा कि कुपित वीरको शान्त करतेहुए धीरे-धीरे मन्दिरमें ले आओ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मरालसे', 'सेवक सालि पाल जलधरसे' और 'संत समाज-पयोधि रमा सी'; इत्यादि।—(ब० ◊ ३०-३१)। २—गोस्वामीजीने परम भागवत श्रीहनुमान्‌जीको प्रधान रक्खाहै और ताराको गौण, यह बात 'तारा सहित' और 'संग लै तारा' से स्पष्ट है। वाल्मीकीयमें तारा प्रधान है।†

तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा।
गहि भुज लछिमन कंठ लगावा॥ ◊ १९ (६)

अर्थ—(जब समझाने, रामयश सुनाने और सेवासे लक्ष्मणजी शान्त हुए) तब सुग्रीवने चरणोंमें मस्तक नवाया। लक्ष्मणजीनें हाथ पकड़कर उनको गले लगाया।

टिप्पणी १—'कपीश' का भाव कि ये राजा हैं, नीति जानतेहैं, नीतिके अनुकूल ऐसाही करना चाहिए जैसा इन्होंने किया। इन्होंने क्रमसे लक्ष्मणजीका क्रोध शान्त किया—प्रथम अंगद आए और बिन्ती की, फिर ताराने आकर चरणोंपर पड़कर बिनती की, तब सुग्रीव उनके चरणोंपर पड़े।*

नाथ बिषय सम मद कछु नाहीं।
मुनि मन मोह करै छन माहीं॥ ◊ १९ (७)
सुनत बिनीत बचन सुष पावा।
लछिमन तेहि बहु बिधि समुझावा॥ ,, (८)

अर्थ—हे नाथ! विषयके समान और कोई मद नहीं है, यह मुनियों (मननशीलों) के मनको क्षणभरमें मोहित करलेताहै। नम्रवचन सुनकर लक्ष्मणजीने सुख पाया और उनको बहुत प्रकार समझाया।

---

† यथा—"उवाच तारा प्रणयप्रगल्भं वाक्यं महार्थं परिसान्त्वरूपम्"—(३३।४०)। अध्यात्ममें हनुमान्‌जीही प्रधान हैं।

* पं०—सुग्रीव महलसे बाहरही मिलने क्यों न गए? कारण कि यदि बाहर प्रजाके सामने कहीं लक्ष्मणजी उनका निरादर करदेते तो प्रजामें उनका मान्य घट जाता और एकान्तमें निरादर करें वा जो कुछ भी कह डालें तो उचित ही है। बाहरवाले तो न जान पायँगे, घरकी घरहीमें रहेगी। यह समझकर घरमें और वहभी कोपनिवृत्ति होनेपर मिले।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी १—विषय समान दूसरा मद नहीं है। तात्पर्य कि और मद तो अज्ञानियोंको मोह लेतेहैं पर विषयरूपी मद ज्ञानियोंकेभी मन को मोहित कर लेताहै। विषय मनको मलिन करताहै, यथा—'काई बिषय मुकुर मन लागी" इसीसे 'मन मोह करै' कहा।

२—'बहु बिधि'। कि तुम भय न मानो, हमने तुमपर क्रोध नहीं किया, तुम तो रामजीके सखा हो और तुमपर उनकी कृपा है। अब तुम उनके पास चलो।—[अध्यात्ममें लक्ष्मणजीका वचन है कि मैंने जो कुछ कहा वह प्रेमके कोपसे कहा, उसे क्षमा करो। यथा—"सौमित्रिरपि सुग्रीवं प्राह किंचिन्मयोदितम्। तत्क्षमस्व महाभाग प्रणयाद्भाषितं मया॥" (५।६०)। रामचन्द्रजी सीता विरहसे अत्यत दुःखी हैं। अतः इसी समय उनके पास चलना चाहिए। इस एक अर्धालीमें पूरा सर्ग वाल्मीकीयका आगया *]

नोट—इस स्थानपर वा० ३५ में ताराके वचन लक्ष्मणजीसे इसी विषयके बोधक हैं। वही भाव यहाँ सुग्रीवके वचनोंका है। ताराने कहाथा कि—सुग्रीवने बहुत दुःखके बाद सुख पाया इससे उन्हें समयका अंत न जान पड़ा। विश्वामित्र ऐसे महामुनिभी घृताचीपर

* वा० ३६ में सुग्रीव और लक्ष्मणजीकी बातचीत यों दीहुईहै।—'सुग्रीव लक्ष्मणजीको प्रसन्न करनेवाले नम्र वचन बोले। यह श्री, कीर्ति और सनातन राज्य सभी मैंने रामचंद्रजीकी कृपासे पुनः पाया। उनका थोड़ाभी बदला चुकाने को कौन समर्थ है? वे तो अपने तेज, बलसे रावणवध कर सीताको पायेंगे। सप्ततालोंको वेधनेवालेको सहायककी आवश्यकता कहाँ? मैं तो दासकी तरह उनके पीछे पीछे चलूँगा। विश्वासके वा स्नेहके कारण यदि कुछ अपराध दाससे हुआ हो तो उसे क्षमा करो; दासोंसे अपराध हुआ ही करतेहैं।" वस्तुतः ये "विनीत वचन" हैं। इनसे लक्ष्मणजी प्रसन्नभी हुए और यह कहा कि—सुग्रीव! मेरे भाई तुमको पाकर सनाथ हुए। उत्तम लक्ष्मीका भोग करनेयोग्य तुममें प्रताप और शुद्ध हृदय है; तुम्हारी सहायतासे रामजी शीघ्रही सीताको पावेंगे। धर्मज्ञ, कृतज्ञ, रणमें पीठ न देनेवालोंके ऐसेही वचन होतेहैं। आप विक्रम और बलमें रामजीके समान हैं इसीसे देवताओंने आपको सदाकेलिए उनका सहायक बनायाहै। अब आप शीघ्र मेरे साथ चलें और सीतावियोगसे दुःखी अपने मित्रको समझावें। शोकसे पीड़ित रामजीके वचनोंको सुनकर जो कठोर वचन मैंने कहेहैं, हे मित्र! आप उन्हें क्षमा करें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आसक्त होगएथे तो उनको दश वर्ष एक दिन प्रतीत हुआ। जब ऐसे महामुनियोंको विषयासक्तिमें कालका ज्ञान न रहा तब साधारण मनुष्य क्या चीज़ हैं। यथा—"सुदुःखशयितः पूर्वं प्राप्येदं सुखमुत्तमम्। प्राप्तकालं न जानीते विश्वामित्रो यथा मुनिः॥ घृताच्यां किल संसक्तो दशवर्षाणि लक्ष्मण। अहो मन्यत धर्मात्मा विश्वामित्रो महामुनिः॥६,७॥"

पवनतनय सब कथा सुनाई।
जेहि बिधि गए दूत समुदाई॥ § १९ (९)

अर्थ—हनुमान्‌जीने सब कथा सुनाई जिस प्रकार समूह दूत गए। अर्थात् चारों दिशाओंमें वानरोंके जानेकी कथा और संख्या कही।

टिप्पणी—हनुमान्‌जीने लक्ष्मणजीको कुपित जानकर यह सब कथा प्रथम नहीं सुनाईथी अब सुअवसर समझकर सुनाई। सुग्रीवने स्वयं इससे न कहा कि लक्ष्मणजीको विश्वास न होगा; वे समझेंगे कि हमारे भयसे ये बात बनाकर कहरहेहैं, अभी दूत भेजे नहीं गए। इसीसे हनुमान्‌जीसे कहलाया।—(पं०, प्र०—हनुमान्‌जी वाक्य-विशारदहैं, परमवाग्मी हैं, मंत्री हैं और इन्हींने दूत भेजेहैं अतः येही ठीक समाचार उसका कहसकतेथे।)

पांडेजी—यहां 'पवनतनय' इससे कहा कि इनके वचन सुनकर लक्ष्मणजी शीतल होगए।

हरषि चले सुग्रीव तब अंगदादि कपि साथ।
रामानुज आगे करि आए जहँ रघुनाथ॥ § २०॥

अर्थ—तब अङ्गद आदि वानरोंको साथलिए रामजीके भाई लक्ष्मणजीको आगे करके हर्षित होकर सुग्रीव चले और जहाँ रघुनाथ-जी हैं वहाँ आए।

टिप्पणी—रामकार्य प्रारंभ हुआ, दूत भेजदिएगए, इसीसे सुग्रीव हर्षितहोकर चले †। लक्ष्मणजी रामानुज हैं, अतः रामजीके समान

† १—अध्यात्मके 'भेरीमृदंगै बहु ऋच्छवानरैः श्वेतातपत्रैर्व्यजनैश्च शोभितः। नीलांगदाद्यैर्हनुमत्प्रधानैः समावृतो राघवमभ्यगाद्धरिः॥', इस श्लोकके भाव 'हरषि' आदि पदसे जनादिएगएहैं। अर्थ यह है कि 'भेरी, मृदंग, बहुतसे रीछ और वानर, श्वेत छत्र और चमरसे शोभित तथा अंगद, नील और हनुमा-नादि प्रधान वानरोंसे घिरेहुए वे रामजीके समीप आए। २ पं०—अंगद राज-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समझकर उनको आगे किया, उनके पीछे सुग्रीव हैं और सुग्रीवके पीछे अङ्गद फिर और सब वानर हैं; यह चलनेका प्रकार दिखाया।

नाइ चरन सिर कह कर जोरी।
नाथ मोहि कछु नाहिंन षोरी॥ § २० (१)

अर्थ—रामजीके चरणोंमें सिर नवाकर हाथ जोड़कर सुग्रीव बोले कि हे नाथ! मेरा कुछ दोष नहीं है।

टिप्पणी १—हाथ जोड़ना और प्रणाम करना यह मुद्रा रामजीको प्रसन्न करनेकी है, यथा—'भलो मानि हैं रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाइ है। ततकाल तुलसीदास जीवन जन्म को फल पाइ है' इति विनये। क्षमा करानेकाभी उपाय यही है इसीसे अङ्गद, तारा, हनुमान्‌जी और सुग्रीव चरणोंपर पड़े और विनती की थी, यथा—'चरन नाइ सिर विनती कीन्ही' (अङ्गद), 'चरन वंदि प्रभु सुजस सुनावा', (तारा, हनुमान्), 'चरन पषारि पलंग बैठाए' (तारा), 'तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा'। तथा यहाँ 'नाइ चरन सिर कहकर जोरी'। सुग्रीवसे अपराध हुआ, उसे सुग्रीव माया आदिके सिर डालकर आप निरपराध होतेहैं—'मोहि कछु नहिंन षोरी'। यह कहकर आगे उनका नाम लेतेहैं जिनका दोष है।

नोट १—मेरा कुछ दोष नहीं। कारण कि माया आपकी है, आपकी प्रेरणासेही वह सब कुछ करतीहै। भाव यह है कि आपही फँसानेवालेहैं, आपही छुड़ासकतेहैं। यथा विनये—'तुलसिदास यह जीव मोहरजु जेहि बाँध्यो सोइ छोरै'। मैंने प्रथमही प्रार्थना की थी कि 'अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजन करउँ दिन राती'; पर आपने कृपाही न की, उलटे माया डालदी। अब कृपा कीजिए कि आगे मोहमें न फँसू।—'काल करम गति अगति जीवकी सब हरि हाथ तुम्हारे। सोइ कछु करहु हरहु ममता मम फिरहुँ न तुम्हहिं बिसारे' इति विनये (पद १९३)।

पुत्र है और रामजीने सुग्रीवसे कहाथा कि 'अंगद सहित करहु तुम्ह राजू', अतएव अंगदको सादर साथ लेना योग्यही था। इसीसे उसको स्पष्ट लिखा। ३ प्र०—रामभक्त लक्ष्मणका पीछा पकड़ा, अतएव उनके बलसे निर्भय चले। रामभक्तका अनुचर होनेसे मनुष्य सबसे अभय होजाताहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अतिसय प्रबल देव तव माया।
छूटइ राम करहु जौं दाया॥ ९ २० (२)
बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी।
मैं पावर पसु कपि अति कामी॥ ,, (३)

अर्थ—हे देव! आपकी माया अत्यन्त प्रबल है, जो आप कृपा करें तो छूटे। हे स्वामी! सुर, नर, मुनि, सभी विषयके वश हैं, (तब) मैं पामर (=नीच, तुच्छ, निर्बुद्धि) पशु अत्यन्त कामी किस गिनतीमें हूँ।

नोट—१ 'अतिसय प्रबल', यथा—'सिव बिरंचि कहँ मोहई को है बपुरा आन', 'जाकी मायाबस बिरंचि सिव नाचत पार न पायो', 'यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुराः'। यहाँ शुद्धापह्नुति अलंकार है। २—'करहु जौं दाया' अर्थात् आपकी कृपाके सिवा और किसी देवतादिकी कृपासे नहीं छूटसकती और न किसी साधनसे छूटे, साधनसे छूटती तो 'मुनि विज्ञानधाम' के मनमें क्षोभ न पैदा कर-सकती। यथा—'सो दासी रघुबीर की समुझे मिथ्या सोपि। छूट न रामकृपा बिनु नाथ कहौं पद रोपि' (उ०९७१)। प्रभुकी कृपासे छूटतीहै क्योंकि प्रभुकी दासी है, यथा—'मायापति सेवक सन माया'*। यहाँ प्रथम निदर्शना अलंकार है।

* यथा—'माधव असि तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि पचि मरिय तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया॥१॥
सुनिय गुनिय समुझिय समुझाइय दसा हृदय नहिं आवै।
जेहि अनुभव बिनु मोह जनित भव दारुन बिपति सतावै॥२॥
जेहि के भवन बिमल चिंतामनि सो कत काँच बटोरै।
सपने परबस परयो जागि देखत केहि जाय निहोरै॥३॥
ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जो पै मन सो रस पावै।
तौ कत मृगजलरूप बिषय कारन निसिबासर धावै॥४॥
ज्ञान भक्ति साधन अनेक सब सत्य झूठ कछु नाहीं।
तुलसीदास हरिकृपा मिटै भ्रम है भरोस मन माहीं'॥५॥—(विनय११७)

पुनश्च—'अस कछु समुझि परत रघुराया। बिनु तव कृपा दयालु दासहित मोह न छूटै माया॥१॥ वाक्य ज्ञान अत्यंत निपुन भवपार न पावै कोई।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—१ 'विषयवस्य सुर नर मुनि'। (क) यथा—इन्द्रने अहल्यासे संग किया, मनुष्योंमें आदिपुरुष मनुजी अपनेहीलिए कहतेहैं कि 'होइ न विषय बिराग भवन बसत भा चौथपन', और मुनियोंमें देवर्षि नारद और विश्वामित्रजीही हैं; नारदजीकी कथा मानसमें आहीचुकी, विश्वामित्रजी घृताची और उर्वशीके जालमें पड़गएथे। पुनः, (ख) सुर-नर-मुनिको कहकर जनाया कि देवता जो सत्वगुणसे उत्पन्न एवं ज्ञानके स्वरूप हैं, मनुष्य जिनका शरीर गुणज्ञानका निधान है और मुनि जो मननशील हैं जब येही सब विषयके वश हैं तब तुच्छ पशु किस गिनतीमें है, वानरजाति अति कामी होतीही है *। यहाँ सार अलंकार एवं काव्यार्थापत्ति है।

२—सुग्रीवने जैसे निष्कपट बात लक्ष्मणजीसे कहीथी वैसेही रामजीसे कही इसीसे दोनों भाई उनपर प्रसन्न हुए क्योंकि श्रीमुखवचन है कि 'मोहि कपट छलछिद्र न भावा'।

(लक्ष्मणजीसे)—'नाथ विषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करै छनमाहीं'
(रामजीसे)—'विषयबस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पावँर पसु कपि अति कामी'

३—रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श ये पाँच विषय हैं, बाह्येन्द्रिय इनके वश होतीहैं और अन्तःकरण काम क्रोध लोभके वश होताहै, सो आगे कहतेहैं।

निसि गृहमध्य दीपकी बातन्ह तम निवृत्त नहिं होई ॥ २ ॥ जैसे कोउ एक दीन दुखी अति असनहीन दुख पावै। चिंत्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न बिपति नसावै ॥ ३ ॥ षटरस बहु प्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैन बखानै। बिनु बोले संतोषजनित सुख खाइ सोई पै जानै ॥ ४ ॥ जब लगि नहि निज हृदि प्रकास अरु विषय आस मन माहीं। तुलसिदास तब लगि योनिन भ्रम सपनेहु सुख नाहीं' ॥५॥ (वि० १२४)

* यथा (वा० ३३।५७)—'महर्षयो धर्मतपोभिरामाः कामानुकामाः प्रतिबद्धमोहाः। अयं प्रकृत्या चपलः कपिस्तु कथं न सज्जेत सुखेषु राजा ॥' अर्थात् धर्म और तपस्यासे शोभित महर्षि जिन्होंने मोहको दूरकरदियाहै वेभी कामकी अभिलाषा करनेलगतेहैं तब कपि जो स्वभावसेही चंचल है वह वानरराज सुखमें कैसे न आसक्त होजाता? इसमें आश्चर्यही क्या? (ताराके वचन लक्ष्मणजीसे)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नारि नयन सर जाहि न लागा ।
घोर क्रोध तम निसि जो जागा ॥ § २० (४)
लोभपास जेहि गर न बँधाया ।
सो नर तुम्ह समान रघुराया ॥ ,, (५)

अर्थ—स्त्रीका नेत्र-कटाक्ष रूपी बाण जिसके नहीं लगा, जो भयंकर क्रोधरूपी अँधेरी रातमें जागतारहताहै (अर्थात् क्रोधका मौक़ा होने पर भी सावधान बनारहताहै), लोभरूपी पाश (फाँसी, फंदा, बंधन) से जिसने अपना गला न बँधाया अर्थात् जो लोभमें नहीं फँसा, हे रघुनाथजी! वह मनुष्य आपके समान है। *

* १ "कान्ताकटाक्षविशिखा न लुनन्ति यस्य चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः। कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशैर्लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः ॥" इति भर्तृहरिशतके। अर्थात् स्त्रियोंके कटाक्षरूपी बाण जिसको नहीं बेधते, कोपाग्निका ताप जिसके चित्तको नहीं जलाता, सम्पूर्ण विषय जिसे लोभपाशसे नहीं खींचते, वह धीर पुरुष त्रैलोक्यमें जय पाताहै।

पुनश्च, यथा—२ विश्वामित्र पराशर प्रभृतयो वातांबुपर्णाशनास्
तेपि स्त्रीमुखपंकजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुंजते मानवास्
तेषामिंद्रियनिग्रहो यदि भवेद् विंध्यस्तरेत्सागरम् ॥—(भर्तृहरि)

अर्थात् विश्वामित्र पराशरादि बड़े २ ऋषि जो वायु जल और पत्ते खापीके रहजातेथे वे भी स्त्रीके मुखकमलको देखकर मोहित होगए तब जो लोग अन्न दूध घी आदि उत्तम व्यंजन भोजन करतेहैं उनकी इन्द्रियाँ यदि वशमें हो जायँ तो समुद्रपर विन्ध्याचलके तैरनेमें क्या आश्चर्य्य है। अर्थात् वे इन्द्रियोंको कठिनाई से वशमें कर सकतेहैं। पुनः, यथा कबित्तरामायणे—

३ "को न क्रोध निरदह्यो काम बस केहि न कीन्हो। को न लोभ दृढ़ फंद बाँधि त्रास न करदीन्हों ॥ कवन हृदय नहिं लाग कठिन अति नारिनयनसर। लोचनजुत नहि अंध भयो श्री पाइ कवन नर ॥ सुर नागलोक महिमंडलहु को जु मोह कीन्हों जयन। कह तुलसिदास सो ऊबरै जेहि राख राम राजिवनयन॥"—(१११)। पुनश्च—"भौंह कमान सँधान सुठान जे नारि बिलोकत बान ते बाचे। कोप कृसानु गुमान अवां घट ज्यों जिनके मन आँच न आँचे ॥ लोभ सबै नट के बस ह्वै कपि ज्यों जगमें बहु नाच न नाचे। नीके हैं साधु सबै तुलसी पै तेई रघुबीरके सेवक साँचे ॥" (११२)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—१—नारिनयनका वाणसे रूपक बाँधा; क्योंकि स्त्रीके नेत्रोंके कटाक्ष वाणकी तरह हृदयको वेधतेहैं। कामदेव भौंहरूपीकमान चढ़ाकर नेत्ररूपी वाणसे लोगोंको मारताहै।—(पं०—वाण शरीरको वेधतेहैं, नारिनयनसर हृदयको वेधतेहैं। विशिखपरभी विष चढ़ता है और यहाँ अंजन विष है)। सुग्रीव कामके वश हुए इसीसे उन्होंने प्रथम 'नारिनयनसर' कहकर कामकी प्रबलता कही। २—क्रोधको अँधेरी रात्रि कहा क्योंकि दोनोंमें कुछ नहीं सूझता। क्रोधके आवेशमें लोग अनुचित कर्म कर बैठतेहैं, यथा—'लषन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोध पाप कर मूल। जेहि वस जन अनुचित करहिं चरहिं विस्व प्रतिकूल'।

३—'लोभ पास०' इति। (क) लोभ नट है, आशा पाश है, यथा—'लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों गरे आसा डोरि'—(विनय); पुनः, यथा—'लोभ सबै नटके बस ह्वै कपि ज्यों जगमें बहु नाच नचावै'—(क०)। (ख) 'गर न बँधाया' का भाव कि वानर अपना गला आपही बँधाताहै। वैसेही जीव आशामें आपही बँधताहै। ४—यहां काम क्रोध और लोभ तीनको कहा क्योंकि ये तीन अत्यन्त प्रबल हैं, यथा—'तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ। मुनि बिज्ञान धाम मन करहिं निमिष महँ छोभ'।

"सो नर तुम्ह समान रघुराया"

पां०—यह बात सुग्रीवकी व्यंग्यभरी सख्यत्वभावसे समझपड़ती है, क्योंकि रघुनाथजीने जानकीजीके विरहसे विकल हो उनकी प्राप्ति के लिए क्रोध कर लक्ष्मणजीको उनके पास भेजा उससे ये तीनों बातें पाई जातीहैं। और, लक्ष्मणजी उसे बाँह देकर लाए सो उनकी स्तुति इसी बातसे प्रकट होतीहै; क्योंकि वे तीनों बाधाओंसे रहित हैं। आगे रघुनाथजीके हँसनेसेभी व्यङ्ग भाव सिद्ध होताहै सखाका व्यंग्यपूर्ण वचन था इसीसे प्रभु हँस दिए। यथा—'तब बोले रघुपति मुसुकाई'।

प्र०—'सो नर' अर्थात् वह पराक्रमी है, अबला वा नपुंसक नहीं है।

दीनजी—भाव यह कि ईश्वरके सिवा कोई दूसरा ऐसा है ही नहीं जिसके शरीरमें काम क्रोध लोभ न हो। यहां इन अर्धालियोंमें सार, काव्यर्थापत्ति और रूपककी संसृष्टि है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करु०—जीवको परमेश्वरके समान क्यों कहा ? यहाँ ध्वनि यह है कि काम क्रोध लोभमेंसे कामका सहायक मद है और बनिता स्थायीहै, क्रोधका सहायक मोह है और अहंकार स्थायी है, और लोभ का सहायक ईर्ष्या है और दंभ स्थायी है; इनको जो जीतें और श्रीरामजीका भजन करें वे सारूप्यको प्राप्त होतेहैं। अतः जीवको रामके समान कहा। यहाँ प्रथम निदर्शना अलंकार है।

यह गुन साधन तें नहिं होई।
तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई॥ ९ २० (६)
तब रघुपति बोले मुसुकाई।
तुम्ह प्रिय मोहिं भरत जिमि भाई॥ ,, (७)

अर्थ—यह गुण साधनसे नहीं होसकता, आपकी कृपासेही कोई कोई पाताहै। तब रघुनाथजी हँसकर बोले—हे भाई! तुम मुझे भाई भरत जैसे (सदृश) प्रिय हो।

टिप्पणी १ (क)—'यह गुन' अर्थात् अन्य गुण क्रिया-साध्य हैं, यथा—'धर्म ते बिरति योग ते ज्ञाना००'। परन्तु यह गुण क्रियासाध्य नहीं है, कृपासाध्य है। काम, क्रोध और लोभको जो अपने पुरुषार्थसे जीत ले वह आपकेही समान है, यह कहकर अब पुरुषार्थका तिरस्कार करतेहैं कि यह गुण साधनसे नहीं होते अर्थात् साधन करनेवाले तुम्हारे समान नहीं हैं। "तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई' अर्थात् तुम्हारे कृपापात्रही तुम्हारे समान हैं।—[जैसे लक्ष्मणजी, हनुमान्‌जी आदिने पाया—(पा०)]

☞ (ख) "क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल राम की दाया"में जिन पाँच विकारोंका छूटना श्रीरामकृपासे बताया गया है, वही सब यहाँ सुग्रीवभी गिनाकर सबका कृपासाध्य कहरहे हैं। यथा क्रमसे—

१ 'घोर क्रोध तम निसि जो जागा'। २ 'नारिनयनसर जाहि न लागा' ३ 'लोभ पास जेहि गर न बँधाया'। ४ 'बिषयबस्य सुरनर मुनि स्वामी' ५ 'अतिसय प्रबल देव तव माया'। ६ 'छूटहिं सकल करहु जौं दाया'।

२—'तब रघुपति बोले मुसुकाई०' इति। तब=जब सुग्रीवने कहा कि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कामादि विकार आपकी कृपासे छूटतेहैं और मैं कामके वश होगयाथा। इन वचनोंसे सुग्रीवने सूचित किया कि मुझपर आपकी कृपा नहीं है। यह सुनकर रघुनाथजीने हँसकर जनाया कि मेरी कृपा तुमपर है। हँसी यहाँ कृपाका द्योतक है, यथा—'हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा'। इस समय हँसकर प्रसन्नता जनानेका कारण यह है कि सुग्रीव यह न समझें कि हमसे अपराध हुआहै इससे रघुनाथजी हमपर अप्रसन्न होंगे।*

'भरत जिमि भाई'

१मा० त० भा०—भरतसदृश कहनेका भाव कि हनुमान्‌जी सुग्रीवके मंत्री हैं, यथा—'मंत्रिन्ह सहित यहाँ इक बारा। बैठि रहेउँ कछु करत बिचारा'। हनुमान्‌जीको प्रभुने लक्ष्मणजीके समान कहाहै, यथा—'सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना'। मंत्रीको लक्ष्मणसमान कहाथा अतएव राजाको भरतके समान कहा। भरतजी लक्ष्मणजीसे बड़े हैं।—(पं०)। (ख) 'प्रिय भरत जिमि भाई' अर्थात् जैसे भरतजी हमको प्रिय हैं वैसेही तुम प्रिय हो, जैसे वे भाई वैसेही तुमको मैं भाई समझताहूँ, यथा—'सुग्रीवः पंचमो भ्राता' इति वाल्मीकीये :—यहाँ उदाहरण अलंकार है।

२ पाँडेजी—'भरत जिमि भाई' कहनेका दूसरा भाव यह कि जैसे भरतजी दूर होतेहुएभी अति प्रिय हैं, वैसेही तुमभी हो चाहे पास रहो चाहे दूर। ३ प्र०—'भरत सम भाई' कहा क्योंकि दोनोंको राज्याधिकार दिया। पुनः, वे दूर हैं तौ भी समीपहीसे हैं। लक्ष्मणजी अनन्य प्रेमांध हैं और भरतजी ज्ञानरूप रामपरछाईं हैं।

---

* मुस्कानेका कारण यह भी कहाजाताहै कि जीव जब भूलता है तब युक्तिसे हमपरही दोष रखताहै। यथा विनये—'लोभ मोह मद क्रोध बोधरिपु फिरत रैन दिन घेरे। तिन्हहिं मिले मन भयो कुपथ रत फिरै तिहारे फेरे॥ २॥ दोषनिलय यह बिषय सोकप्रद कहत संत श्रुति टेरे। जानत हौं अनुराग तहाँ अति सो हरि तुम्हरेहि प्रेरे॥ ३॥'—(१८६)। अपने गुरु श्रीमुरारिदासजी से राजानेभी ऐसाही कहाहै—(भक्तिरसबोधिनी टीका कवित्त ५०६) यथा—'ठाढ़ो हाथ जोरि मति दीनतामें बोरि कीजै दंड मोपै कोरि यों निहारिमुख भाषिए। घटती न मेरी आप कृपाही की घटती है बढ़ती सी करी ताते न्यूनताई राखिए॥'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दीनजी—रामचन्द्रजीका 'भरत जिमि भाई' और लषन जिमि भाई आदि कहनाभी रहस्यमय है प्रेमभक्तिके भावमें जिसकी उत्कृष्टता दिखानी होतीहै, उसे 'भरतके बंधुत्वके' सदृश स्वीकार करतेहैं, पर जिसमें सेवाभावकी उत्कृष्टता दर्शानी होतीहै उसे 'लक्ष्मणके बंधुत्व' से मिलातेहैं। इसी कांडमें हनुमान्‌जीके लिए रामजी कह आएहैं—'तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना'। वही नियम सर्वत्र जानना।

☞'लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना' से यहाँ तक 'कपि त्रासा' प्रसंग है क्योंकि जब रामजीने हँसकर उनको भरतसमान कहा तब सुग्रीवका भय जातारहा। अब आगे 'जेहि बिधि कपिपति कीस पठाए' की भूमिका है।

रामरोष कपित्रास प्रकरण समाप्त हुआ।

'जेहि बिधि कपिपति कीस पठाये'—प्रकरण

अब सोइ जतनु करहु मन लाई।
जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई॥ § २० (८)

अर्थ—अब मन लगाकर वही उपाय करो जिस प्रकार सीताकी ख़बर मिले। *

नोट—'अब सोइ जतन करहु मनलाई' में भाव यह है कि खैर हुआ सो हुआ अब विषय छोड़ कार्यमें लगो। वा० ३८।२०।२४ में इस स्थान

---

* १ पं०—रघुनाथजीको तो कहना चाहिए था कि मैंने तुम्हें सुख दियाहै, तुम यत्न करके अब सीताको लेआओ (जैसा सुग्रीवने वचन दियाथा कि 'जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई'), पर यह न कहकर केवल सुध मँगानेको कहा। इसमें आशय यह है कि उत्तम पुरुषोंको कार्यसाधनके लिए ऐसा कहना योग्य नहीं कि मैं तुम्हारे आश्रित हूं तुम्हारेही रक्खे रहता और मारे मरताहूं। अथवा, सर्वज्ञ प्रभुने विचारा कि इन्हें तो केवल सुधिही लानाहै और सीताका लाना तो मेरे गए बिना होही नहीं सकता; इसलिए उन्होंने यथार्थ बात कही। २ प्र०—'जतन करहु मनलाई' अर्थात् जो मन विषयमें लगाएहुए थे उसे अब सीताशोधमें लगाओ। अब विषयमें न फँसना।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पर सुग्रीवको रामजीने राजधर्म उपदेश कियाहै। वह यह कि—'जो अर्थ-धर्म-कामका समयपर अनुष्ठान करताहै, इनकेलिए जो समयका विभाग करताहै, वही राजा है। जो अर्थ-धर्मको छोड़ केवल कामकी सेवा करताहै वह वृक्षकी शाखापर सोए हुएके समान गिरनेपरही समझताहै। जो शत्रुओंका वध और मित्रोंका संग्रह करताहै वही अर्थ-धर्म-कामका फल भोगताहै। हम लोगोंके उद्योगका यही समय है'।

एहि बिधि होत बतकही आए बानर जूथ।
नाना बरन सकल दिसि देखिअ कीस बरूथ ॥ २१

अर्थ—इसप्रकार बातचीत होरहीथी कि वानरोंके यूथ आगए। सब दिशाओंमें अनेक रंग और जातिके वानरोंके झुण्डकेझुण्ड दिखाई पड़तेहैं।

नोट—'बतकही' शब्दका प्रयोग मानसमें सात स्थानोंपर कियागयाहै और विलक्षणता यह है कि प्रत्येक काण्ड या उस काण्डका प्रसंग दूसरे किसी काण्डमें आनेपर यह शब्द प्रयुक्त हुआहै, इसतरह प्रत्येक काण्डके प्रसंगमें एकबार आयाहै। परमार्थ-वार्ताकेही प्रसंगमें यह शब्द लिखागयाहै। भाव पूर्व बालकांडमें भी दिए जाचुकेहैं। उदाहरण नीचे दिएजातेहैं।*

टिप्पणी—१ हनुमान्‌जीने दूत भेजे उसी अवसरमें लक्ष्मणजी किष्किंधानगरमें पहुँचे और उसी दिन सुग्रीवको रामजीके पास ले आए; यथा—"तब हनुमन्त बोलाए दूता।...चले सकल चरनन्हि सिरु नाई॥ तेहि अवसर लछिमन पुर आए।" इससे संदेह होताहै

*बालकाण्ड—हंसहि बक दादुर चातकही। हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही॥
'करत बतकही अनुज सन मन सियरूप लुभान'।
अरण्यका प्रसंग—'दसकंधर मारीच बतकही। जेहि बिधि भई सो सबतेहि कही।'
किष्किंधा—'एहि बिधि होत बतकही आए बानर जूथ'।
सुन्दरका प्रसंग—तब बतकही गूढ़ मृगलोचनि। समुझत सुपद सुनत भयमोचनि॥
लंका—काज हमार तासुहित होई। रिपुसन करब बतकही सोई॥
उत्तर—निज निज गृह गए आयसु पाई। बरनत प्रभुबतकही सुहाई॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कि क्या उसी दिन, दिनके दिनहीमें चारों दिशाओं से वानर आगए ? सुग्रीवकी आज्ञासे स्पष्ट जानपड़ताहै कि १५ दिनके भीतर लौटना कठिन था। (वाल्मीकिमें ताराके वचनोंसे जो उसने लक्ष्मणजीसे कहे हैं, यह स्पष्ट जानपड़ताहै कि) दूतोंके भेजे जानेके कई दिन पीछे लक्ष्मणजी सुग्रीवके पास भेजे गएथे, यथा—"उद्योगस्तु विराज्ञप्तः सुग्रीवेण नरोत्तम। कामस्यापि विधेयेन तवार्थप्रतिसाधने ॥३३।५६॥" अर्थात् हे पुरुषोत्तम ! कामके वश होनेपरभी आपके कार्य्य साधनके लिए पहिलेही सुग्रीव उद्योग करनेकी आज्ञा देचुकेहैं।‡

२—'नाना बरन' इनका उल्लेख वाल्मीकिमें ३७ से ४० तक चार सर्गोंमें है। अध्यात्म ६।९ में लिखतेहैं कि कोई तो अंजनके पर्वतके समान नील वा काले, कोई स्वर्ण-पर्वतके समान, कोई अत्यन्त लाल मुखवाले, कोई बड़े बड़े बालवाले, कोई श्वेतमणिकेसे और कोई † ३—राक्षसोंके समान भयङ्कर युद्धके इच्छुक इत्यादि अनेक वानर आये। 'सकल दिसि' में देख पड़तेहैं, यह कहकर सूचित किया कि सब दिशाके वानर बुलाए गएथे, वे सब आएहैं।

प्र०—'नाना बरन सकल दिसि देखिय०' का भाव कि बतकही छोड़कर दृष्टि देखनेमें लग गई। वानर यूथोंका आना हुआ मानों बतकही फलित हुई।

---

‡ पुनः, यथा (वा० ३५)—"त्वत्सहाय निमित्तं हि प्रेषिता हरिपुङ्गवाः। आनेतुं वानरान्युद्धे सुबहून्हरिपुङ्गवान् ॥ १९ ॥ तांश्च प्रतीक्षमाणोऽयं विक्रान्तान्सुमहाबलान्। राघवस्यार्थं सिद्ध्यर्थं न निर्याति हरीश्वरः ॥२०॥ कृता सुसंस्था सौमित्रे सुग्रीवेण पुरा यथा। अद्य तैर्वानरैः सर्वैरागन्तव्यं महाबलैः ॥ २१ ॥" अर्थात् आपकी सहायताकेलिए प्रधान प्रधान वानरोंको बुलानेकेलिए बहुतसे वानर भेजेगएहैं और उन पराक्रमी महाबली वानरोंकी सुग्रीव प्रतीक्षा कर रहेहैं इसीसे ये अभी बाहर नहीं निकलेथे। जैसी सुग्रीवने व्यवस्था की है उसके अनुसार वानर आजही आजायँगे।

† "केचिदञ्जन कूटाभाः केचित्कनकसन्निभाः। केचिद्रक्तांतवदना दीर्घबालास्तथापरे ॥ ९ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशाः केचिद्राक्षस सन्निभाः। गर्जन्तः परितोयांतिवानरायुद्धकांक्षिणः ॥१०॥"—(अर्थ ऊपर दिया गयाहै।)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बानर कटक उमा मैं देखा ।
सो मूरुष जो करन † चह लेखा ॥ § २१ (१)
आइ रामपद नावहिं माथा ।
निरषि बदनु सब होहिं सनाथा ॥ ,, (२)
अस कपि एक न सेना माहीं ।
राम कुसल जेहि पूछी नाहीं ॥ ,, (३)
यह कछु नहिं प्रभु कइ अधिकाई ।
बिस्व रूप व्यापक रघुराई ॥ ,, (४)

अर्थ—हे उमा ! मैंने वानरी सेना देखीहै, जो उसकी गिनती किया चाहे वह मूर्ख है (अर्थात् असंख्यकी कोई संख्या करना चाहे तो मूर्खताही तो है. वह तो असंख्य थी अपार थी) । सब आआकर माथा नवातेहैं और मुखका दर्शन करके कृतार्थ होतेहैं । सेनामें एकभी बंदर ऐसा न था कि जिससे रामजीने कुशल न पूछी हो । यह प्रभुकी कुछ बड़ी बात नहीं है, (क्योंकि) रघुराई रामजी विश्वरूप और व्यापक हैं * ।

---

† करन'—(भा० द०, छ०) । कर—(न० प्र०) ।

* १ यथा—श्वेताश्वर उपनिषद्—'यो देवो अग्नौ यो अप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश । य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमोनमः ॥' अर्थात् उन आप रामजीको मैं बारंबार नमस्कार करताहूँ जो अग्निमें, जलमें, औषधिमें, वनस्पतियोंमें, समस्तलोकोंमें विश्वव्यापक रूपसे उपस्थित हैं ।

२ पुनः—आरत लोग राम सब जाना । करुनाकर सुजान भगवाना ॥
जो जेहि भाय रहा अभिलाषी । तेहि तेहि कै तसि तसि रुचि राखी ॥
सानुज मिलि पल महुँ सब काहू । कीन्ह दूर दुष दारुन दाहू ॥
यह बड़ि बात राम कै नाहीं । जिमि घट कोटि एक रवि छाहीं ॥ (अ०) ।
पुनः,—प्रेमातुर सब लोग निहारी । कौतुक कीन्ह कृपाल परारी ॥
अमित रूप प्रगटे तेहि काला । जथा जोग मिले सबहि कृपाला ॥—(उ०)

और यहाँ 'बिस्वरूप व्यापक रघुराई' । इन तीनोंका मिलान कीजिए और शब्दोंके भेदको विचारिए ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—१ (क) 'मैं देखा' अर्थात् सुनी या लिखी देखी नहीं कहता वरन् अपने आँखों देखी कहताहूँ। प्रवर्षण-गिरिपर सब देवता मुनि सिद्ध आएहैं, यथा—'मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभुकी सेवा॥' इन्हींमें शिवजीभी आएहैं, इसीसे कहतेहैं कि हमने देखाहै। (ख) सब रामजीके चरणोंमें आकर मस्तक नवातेहैं और मुखारविन्दका दर्शन करके कृतार्थ होतेहैं; यहभी 'राम-रहस्य' है। पार्वतीजीने प्रश्नमें 'रामरहस्य' भी पूछाहै, इसीसे शिवजीने यहाँकाभी रहस्य बताया। रहस्य=प्रभुत्व। सब आकर मस्तक नवाते हैं और रामजी प्रत्येकसे कुशल पूछतेहैं। जिस सेनाकी लेखाकी इच्छाभी शिवजीने नहीं की उस सेनामें रामजीने सबकी कुशल पूछी। सेवकका धर्म है स्वामीके चरणकी वन्दना करना और स्वामीका धर्म है सेवकका सम्मानकरना; कुशलपूछना सम्मान है। (ग) सबसे कुशल पूछना यह माधुर्य्यमें रामजी की अधिक महिमा है। इसीसे आगे इसे ऐश्वर्य्यमें घटातेहैं, इसप्रकार कि 'यह कछु नहि प्रभु कै अधिकाई...'। ऐश्वर्य्यमें यह महिमा कुछ नहीं है।

२—विश्वरूप और व्यापक हैं। विराटरूपसे विश्वरूप हैं और परमात्मा-रूपसे सबमें व्याप्त हैं तब उनका सबसे कुशल पूछना यह कुछ अधिक बड़ाई नहीं है। यहाँ दिखाया कि व्यापक व्याप्य दोनों-रूप रघुनाथजीकेही है।—[विश्वरूप=विश्व जिनका रूप है एवं जो परमात्मा-विश्वरूपमें भासतेहैं।]

प्र०—१ मानसाचार्य यहाँ लेखा करनेवालेको मूर्ख कहते हैं और आगे इसी कांडमें लेखा है। यथा—'अस मैं श्रवन सुना दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर'। इसका समाधान यह है कि यह कोई सिद्धान्त नहीं है, सुनीहुई बात है निश्चय नहीं; दूसरे यह निशचरकी कहीहुईहै।—(१८ पद्म यूथप बताया है। वह पूरी सेनाकी संख्या नहीं देता। सेना न जाने कितनी है।) २—ब्रह्माकी आज्ञा थी कि 'बानरतन धरि धरनि महँ हरिपद सेवहु जाइ'। सब देवता वानर-तन धरकर प्रभुकी राह देखतेरहे कि जिनके सेवक होकर सेवा करना है वे प्रभु कब आवें—'हरिमारग चितवहिं मतिधीरा॥ गिरि कानन जहँ तहँ भरिपूरी। रहे निज निज अनीक रचि रूरी॥'—(ब० §१८७)। वेही सब आकर अब अपने स्वामीके मुखारविंदका दर्शन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पारहेहैं अतः कृतार्थहुए। अभी तक नाथके दर्शन न होनेसे अनाथ थे अब नाथको पाया अतः 'सनाथ' कहा। ३—'राम कुसल जेहि पूछा नाहीं' इससे रामजीका स्वभाव और उनकी प्रभुतामें सावधानता दिखाई। यथा—'बड़ी साहिबीमें नाथ बड़े सावधान हौ'—(क०)।

गौड़जी—'पदुम अठारह जूथप बन्दर' यह तो केवल यूथपतियोंकी संख्या थी। सिपाहियोंकी संख्याका अन्दाजा तो यूथकी संख्यासे होसकेगा। परन्तु यूथ कितने कितने वानरोंका था, कौन कहसकताहै? यदि सौ सौका मानें तो १८०० और दसदसकाभी मानें तो १८० पद्म वानर होतेहैं। ऋक्षोंकी तो गिनती अलग थी। 'बनचर देह धरी छिति माहीं' यदि देवताओंने बनचर देह धरी तो वह तो ३३ करोड़ही मानेजातेहैं। बहुतोंके मतसे कोटिका अर्थ जाति है, अर्थात् ३३ जातिके हैं, उनकी आबादीका तो पता नहीं है। फिर युद्धमें देवता लोग विमानपर चढ़े तमाशादेखतेहैं, वह कहांसे आये, जब कि सबकेसब बनचररूपसे फौजमें दाखिल होचुकेहैं? इनका जो हिसाब करनेका प्रयत्न करे वह मूढ़ है क्योंकि जब देवताओंकोभी एकसे अनेक होनेकी शक्ति है और वृद्धिही प्रवृत्ति मार्ग है तो संख्याकी मर्य्यादा कहाँ मिलसकतीहै। भगवान्के सगुण विग्रहके बनानेवाले सायुज्य-मुक्ति-प्राप्त जीव वा वह देवता जो शाश्वत रूपसे भगवद् विग्रहमें रहतेहैं, कौन कहसकताहै कि कितने हैं। वह सभी पूर्ण भगवत्रूप भागवत हैं। परात्परकी लीलोन्मुख प्रवृत्ति देखकर उनके साथ आवश्यकतानुसार एक वा अनेक, सूक्ष्म वा स्थूल, अणु वा महान, सभी रूपोंमें अवतार लेतेहैं। रामावतारकी लीलामेंभी युद्धका अभिनय करनेको वेही विग्रही देवता, एकएक असंख्यरूप धारण करके बनचररूपमें पहलेसे मौजूद हैं। यह तो भगवदंश हैं। इसीलिए सेनामें एकभी ऐसा कपि न था जिनसे भगवान्ने कुशल न पूछी हो। साधारण सुननेवालेको शंका होतीहै कि क्या हरएक वानर भगवान्को जानता था? इसका सामाधान यह है कि जिसके यशका विस्तार जितनाही बड़ा होगा उतनेही अधिक उसके जाननेवाले होंगे? आज महात्मा-गांधीको भारतका बच्चा बच्चा जानताहै। परन्तु वास्तविक समाधान तो यह है कि यह सब वानर तो भगवान्की बाटदेखरहेथे, लीलामें अपना अपना अभिनय करनेको तैयार बैठेथे कि कब सूत्रधारकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आज्ञा हो और हम रंगमंचपर आजायँ। इस स्थलपर मानसकारने अगलीही चौपाईमें समाधान करदियाहै कि यह कोई प्रभुताकी बात नहीं है, लोकमें यशस्वियोंका जो प्रभुत्व ऐसा कराताहै, सो बात यहां नहीं है। यह जो रघुकुलके राजा हैं वह वस्तुतः विश्वरूपसे व्याप रहे हैं, अर्थात् विश्वमें यहां जो संख्यातीत अपार वानरसेना है उसके एकएक शरीरके प्रेरक आत्मा प्राणोंकेप्राण जीवोंकेजीव वही हैं, व्याप रहेहैं, उनकी यह सहज लीला है। विग्रहसंबंधी देवोंके 'निज-निजधाम' पर पहुँचनेके प्रसंगमेंभी इसी तरहका समाधान मानस-कारने 'जगन्निवास' 'अखिललोक विश्राम' कहकर कियाहै। अन्यत्र-भी 'अखिल लोक दायक विश्रामा' और पुरुष सूक्तमें तो सारे सूक्तमें विराट्काही वर्णन है, जिसमें 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्या-मृतं दिवि' और श्रीमद्भगवद्गीतामें 'नत्वहं तेषु, ते मयि' से विराट् विभुकी व्यापकताके प्रकारका निदर्शन कियाहै।

आजकलके विज्ञानलवदुर्विदग्ध शिक्षितलोग वानरोंका मनुष्यों-कासा आचरण वर्णित देखकर बड़े पेचोताबमें पड़जातेहैं और हनु-मान् सुग्रीवादि वानरोंको जंगली जातियाँ करार देतेहैं, और इतनी भारी संख्याको अत्युक्ति मानकर आसानीसे सब शंकाओंका निवारण करदेतेहैं। वह समझतेहैं कि विज्ञानसे तो यह बातें ठीक नहीं उत-रतीं, अतः सत्य नहीं होसकतीं। इस तरहकी तर्कशैलीमें भारी भ्रम है, उससे सावधान रहनेकी आवश्यकता है। बाहुल्य भयसे यहाँ यह विषय संक्षेपसे दियाजाताहै।

विज्ञान सतत वर्धमान, नास्तिक और आसुरी विद्या है। हमारे विचार उसको सत्य और निश्चल मानकर न तो बनने चाहियें और न अपने यहाँके वर्णनोंको पाश्चात्य विज्ञानकी कसौटीपर कसना चाहिये। हाँ, यदि विज्ञानसे हमारी किसी बातका समर्थन होता हो तो उसे हम केवल कुतूहल-शान्तिकेलिये काममें लासकते हैं। प्रस्तुत प्रसंगमें मनुष्योंकी तरह बोलने-चालने रहन-सहन आचार विचारवाले वनचर और पक्षी आदिका वर्णन देखकर कई विद्वानोंकी धारणा यह होगयी है कि यह प्राणी वस्तुतः किसी और देशके, जैसे द्राविड़ी, मनुष्य थे जिन्हें आर्य कवियोंने तिरस्कारतः वानर, ऋक्ष, गृध्रादि कहाहै। परन्तु यह बात उलटीसी लगतीहै क्योंकि तिरस्कारके बदले इनका तो बहुत भारी सम्मान है। राक्षस शत्रु हैं परन्तु उनके सम्राट् रावणको बराबर वाल्मीकिने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"महात्मा" रावण कहा है। यह भिन्न भिन्न योनियाँ हैं सही, परन्तु मनुष्यके समकक्ष हैं। शारीरिक बलमें, तामसी छलमें और मायामें मनुष्यसे बढ़े-चढ़े हैं, परन्तु मस्तिष्क और सात्विक बुद्धिकी दृष्टिसे मनुष्यही बढ़ा हुआ है। इसपर आधुनिक सन्देहकर्त्ता पूछता है कि आजकल तो राक्षस कहीं मिलते नहीं और वानरोंमेंसे कोई जाति मनुष्योंसे बातचीत नहीं कर सकती। यह प्रश्न इसी भ्रमपर उठता है कि एक तो आधुनिक विज्ञानलवदुर्विदग्ध यह माने बैठाहै कि संसारमें जैसी सृष्टि आज है, जो परिस्थिति अब है वैसीही सृष्टि, वही परिस्थिति, पूर्वयुगोंमेंभी थीं, और वर्त्तमान सृष्टि और परिस्थितिको तो विज्ञानीने हस्तामलकवत् अनुशीलन करलियाहै। यह दोनों महाभयंकर भ्रम हैं। विज्ञानी तो बारंबार यही इकरार करताहै कि वर्त्तमान जगत्का हम अत्यन्त थोड़ा अनुशीलन करपायेहैं। उसके आधारपर जो निष्कर्ष निकालतेहैं उसमें सभी विज्ञानी एकमत नहीं हैं। दूसरी बात यह है कि सभी विज्ञानी इस बातमें एकमत हैं कि बहुत पूर्वकालकी सृष्टि वर्त्तमानकालकी सृष्टिसे बहुत भिन्न थी, भिन्न योनियोंके प्राणी पूर्वकालमें हो चुकेहैं, पूर्वकालकी परिस्थितियाँ भी भिन्न थीं और इन भिन्नताओंका पता लगा लेना आज असंभव है। चट्टानोंके स्तरोंसे परिशीलित इतिहाससे जो कुछ पता लगताहै उसकी रचना अनुमानके आधारपर कीजातीहै। अनेक भिन्न योनियों और जातियोंके लोगोंका लोप हो चुका है। इस विषयको कुछ अधिक विस्तारसे भूमिका भागमें देनेका प्रयत्न कियागया है। इस स्थलपर हम नीचेकाही अंश पर्य्याप्त समझतेहैं।

जिस त्रेतायुगमें भगवान्का सबसे पिछला रामावतार हुआहै, वह इसी श्वेत वाराहकल्पके किसी मन्वंतरका त्रेतायुग था। यह आवश्यक नहीं हैकि वह वैवस्वत मन्वन्तरके सत्ताईसवेंही त्रेतायुगकी घटना हो। भगवान्का रामावतार प्रत्येक कल्पमें होताहै परन्तु प्रत्येक त्रेतायुगमें नहीं होता। होताहै तो त्रेतायुगमें ही। वैवस्वत मन्वन्तरमेंही यदि मानें तो वर्त्तमान चतुर्य्युगी तक सत्ताईस त्रेतायुग बीत चुकेहैं। हिसाबसे पिछले सत्ताईसवें त्रेतायुगके बाद मन्वन्तरका अट्ठाईसवाँ द्वापर लगा। अब अट्ठाईसवाँ कलियुग है। परन्तु वर्त्तमान श्वेत वाराहकल्पका रामावतार इस कल्पके अब तकके बीते चारसौ छप्पन त्रेता युगोंमेंसे किस युगमें हुआ, यह निश्चित रूपसे कहना अत्यन्त कठिन है। हाँ इतनी अवधि अवश्य बँध जातीहै कि पहली चतुर्युगीके त्रेतासे लेकर पिछली चतुर्य्युगीके त्रेतातकमें कोईभी हो सकताहै। अतः रामावतार हुए कमसेकम सोलह लाख और अधिकसे अधिक एक अरब अट्ठानवे करोड़

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बरस हुए। सबसे पिछले विकास विज्ञानियोंकी धारणा है कि इस धरतीपर जीवनका आरंभ हुए एक अरब बरस हो गये होंगे। उसका विकास होते होते बड़े जन्तुओंकी उत्पत्तिको अबसे पचास करोड़ बरस हो चुके होंगे। आदिम मनुष्यकी उत्पत्ति तो अब से ३-४ करोड़ बरसके लगभगसे लेकर अब से ३८ लाख बरस पहले तकके समय भिन्न भिन्न मतोंके समन्वयके साथ समझी जातीहै। अर्थात् विज्ञानके अनुसार छठें मन्वन्तरकी छाछठवीं चतुर्युगी से लेकर वर्त्तमान चतुर्युगीके सतयुगके आरंभतककी अवधिमें कभी आदिम मनुष्यकी उत्पत्ति मानीजातीहै। आजकलका मनुष्य उसी आदिम मनुष्यकी एक शाखामें है। आदिम मनुष्यका मूलवंश और उसकी कई शाखाओंका तो उद्भव-विकास-ह्रास और लोप कबका होचुकाहै जिसकी स्मृति इतिहासको नहीं है और जिसका प्रमाण पत्थरकी चट्टानोंपर प्रकृतिके कलमसे लिखे इतिहाससे ही विज्ञानियोंको मिलताहै।

वर्त्तमान मनुष्यजातिकी शाखा आजसे ५ लाख बरसोंसे लेकर बीस लाख बरसोंके बीचमें आरंभ हुई मानीजातीहै। इससे पहलेकी मनुष्यकी शाखाएँ कबकी नष्ट होचुकी हैं। आदिम मनुष्यके विकासकालमेंही मानववृक्ष वा महाशाखासेही कुछ अर्धमानव शाखाएँ निकलीं जिनके चिबुक था और सभी अंग वर्त्तमान मनुष्यकेसे थे, केवल मस्तिष्क मनुष्यके मस्तिष्ककी अपेक्षा छोटा था। आजकल वानर, लंगूर, भोरिल्ला आदि जातिके प्राणी मौजूद हैं वह चिबुक-हीन हैं, "हनुमान्" नहीं हैं। ऐसी कमसेकम दो शाखाएँ आदिम मनुष्यके पूर्ण विकासके कालमें निकलीं, उनका पूर्ण विकास हुआ और फिर काल पाकर उनका लोपभी हो गया। इनकेलिये अनुमान कियाजाताहै कि इनका रहन-सहन सभ्यता सब कुछ आदिम मनुष्योंकी तरह होगी। मनुष्योंकी अपेक्षा इनमें अधिक जंगलीपन होगा।

रामावतारके कुछ काल पूर्व राक्षस-योनिका आरंभ जानपड़ताहै। इनके उपद्रवसे तंग आकरही देवोंने भगवान्से इनके नाशकेलिये प्रार्थना की। ब्रह्माने आकाशवाणीके अनन्तर वनचरके रूपमें समस्त देवताओंको अवतार लेनेका आदेश दिया। तदनुसार भालू और वानरकी नयी योनियाँ उत्पन्न हुईं। राक्षस और यह वानर ऋक्ष तथा उस समयके गीध आदि दानवाकार पक्षी सभी एक दूसरेकी भाषा बोलतेसमझतेथे। राक्षस और वानरभी शिक्षा पाते थे। विद्वान् होतेथे। राक्षस मनुष्य तक को भोजन कर जातेथे। वानर फल-शाकाहारी थे। राक्षस योनिवालोंको चिबुक नहीं होतेथे या नाममात्रको थे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वानरों को चिबुक होते थे। चिबुक के टेढ़े हो जानेसे पवनपुत्रका नाम हनुमान् पड़ाथा। राक्षस तथा वानर आदि प्राणियोंका रामावतारकालमें पूर्ण विकास हुआ और प्रायः श्रीरामचन्द्रजीके साकेतप्रयाण तक ही उस विशेष वानर योनिका लोप हो गया। फिर द्वापरके अन्तमें महाभारतके समयमें उस प्रकारके वानरों की कहीं चर्चाभी नहीं आयीहै। राक्षस तो श्रीरामजीके साकेत-गमनके बाद भी बचे-खुचे मोजूद थे और महाभारत काल में इनके दुष्कोंकी चर्चा जरूर आतीहै।

वह वानर तो श्रीरामावतारके समयमेंही अपने पूर्ण विकासको पहुँच चुके थे। उनका जन्म विशेष प्रयोजनसेही था। अतः उनकी आबादी का संख्यातीत होजानाभी स्वाभाविक था क्योंकि वह उनके विकासकी पराकाष्ठा थी। किसी प्राणीकी आबादी उसी समय अत्यधिक बढ़जातीहै जब वह ऊँचेसे ऊँचे विकास तक पहुँच जाताहै। इसीके बाद उसके विनाशकाभी समय आताहै। जिस प्राणीका अभ्युदय होताहै, वृद्धि होतीहै, उसका एक दिन नाशभी होना अनिवार्य्य है। उन वानरोंका नाश लगभग भगवान्के साकेतप्रयाणके समय हुआ। कारण तो स्पष्टही है कि उन्हेंभी साकेत लोकको जाना था क्योंकि 'मोच्छ-सब त्यागि' संगरहनेके लिये आयेथे। सबके देखनेमें वह दूर रहतेथे परन्तु उनका तो विराट विभुमें सतत निवास रहताथा। वानर-शरीर तो निमित्तमात्र था। इति।

ठाढे जहँ तहँ आयसु पाई।
कह सुग्रीव सबहि समुझाई॥ § २१ (५)
रामकाजु अरु मोर निहोरा।
बानरजूथ जाहु चहुँ ओरा॥ ,, (६)
जनकसुता कहुँ षोजहु जाई।
मास दिवस महुँ आएहु भाई॥ ,, (७)
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाए।
आवइ बनिहि सो मोहि मराए॥ ,, (८)

अर्थ—आज्ञा पाकर सब जहांके तहाँ खड़े हुए, तब सुग्रीवने सबको समझाकर कहा कि यह रामजीका काम है और मुझपर तुम्हारा उपकार (एहसान) है—हे वानरयूथ! तुम चारों ओर जाओ। हेभाई! जाकर जनकसुताका पता लगाओ और महीनेभरमें आजाना। जो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कोई बिना पता लगाए (महीनाभरकी) अवधि बिताकर आएगा उसको हमसे वध कराएही बनेगा अर्थात् हमें उसका बध करवाना पड़ेगा।

टिप्पणी १—(क) चलनेका सावकाश नहीं था इसीसे आज्ञा दी कि जो जहां हैं वहीं खड़े रहें। (ख) 'आयसु पाई' देहलीदीपक है। रामजीकी आज्ञा पाकर वानरयूथ जहाँके तहाँ खड़े होगए और रामजीकी आज्ञा पाकर सुग्रीवने सबको आज्ञादी। वा० स० ४० में लिखा है कि सुग्रीवने पृथ्वीभरका हाल वानरोंसे समझाकर कहा,* यह बात गोस्वामीजीने 'समुझाई' पदसे सूचित कर दिया औरभी जो समझाया वह आगे कहतेहैं –'रामकाज००' इत्यादि।

२—'रामकाज अरु मोर निहोरा'। रामकार्य मुख्य है अतः उसे प्रथम कहा और 'मोर निहोरा' पीछे। 'रामकाज' का भाव कि इसके करनेसे परलोक बनेगा और हमारा उपकार करनेसे लोक बनेगा, जो माँगोगे वही हम देंगे। † ३—'जनकसुता कहँ खोजहु जाई' यह राम-

* "यन्मन्यसे नरव्याघ्र प्राप्तकालं तदुच्यताम्। त्वत्सैन्य त्वद्वशे युक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ८ ॥"...तथाब्रुवाणं सुग्रीवं रामो दशरथात्मजः। बाहुभ्यां संपरिष्वज्य इदं वचनमब्रवीत ॥ १० ॥ ज्ञायतांसौम्यवैदेही यदि जीवति वा न वा। स च देशो महाप्राज्ञ यस्मिन्वसति रावणः ॥ ११ ॥...त्वमस्य हेतुः कार्यस्य प्रभुश्च प्लवगेश्वर ॥ १३ ॥ त्वमेवाज्ञापय विभो मम कार्यविनिश्चयम्। त्वंहि जानासि मे कार्यं मम वीर न संशयः ॥ १४ ॥" अर्थात् सुग्रीवने कहा कि ये सब वानर आगएहैं, हे नरश्रेष्ठ! जो इसकालके लिए आप उचित समझते हों उसकी आज्ञा दीजिए, यहसब सेना आपकी है और आपके अधीन है। यह सुनकर उनका आलिंगनकरके रामजी बोले—सौम्य! पता लगाना चाहिए कि वैदेही कहाँ हैं, जीवित हैं या नहीं, वह देश कहाँ है जहां रावण बसताहै...इस कार्य्यके कारण (कर्त्ता) और स्वामी तुम्ही हो। कार्यका निश्चय करके और यह विचारकर कि क्या करनाहै आपही आज्ञा दें। आप मेरे कार्यको जानतेहैं इसमें संदेह नहीं।

† अस्मिन्कार्ये विनिर्वृत्ते कृते दाशरथेः प्रिये। ऋणान्मुक्ता भविष्यामः कृतार्थार्थविदांवर ॥५॥ कृतं हि प्रियमस्माकं राघवेण महात्मना। तस्यचेत्प्रतिकारोऽस्ति सफलं जीवितं भवेत्॥ अर्थिनः कार्यनिर्वृत्तिमकर्तुरपि यश्चरेत्। तस्यस्यात्सफलं जन्म किं पुनः पूर्वकारिणः ॥ ७ ॥ एतां बुद्धिं समास्थाय दृश्यते जानकी यथा। तथा भवद्भिः कर्त्तव्यमस्मत्प्रिय हितैषिभिः ॥ ८ ॥'—(वा० ४३)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

काज है जो करनाहै। 'जनकसुता' का भाव कि जनकमहाराजने रामजीको जनकसुता दी और यशके भागी हुए। इसी तरह इनका पता लगानेसे तुमभी वैसेही यशके भागी होगे मानों तुमने ही जनकसुता रामजीको दी।

[दीनजी—यहाँ 'जनकसुता' शब्द बड़े मार्केका है। भाव यह है कि सीताको अपने जनक (पिता) की सुता अर्थात् अपनी सगी बहिन समझकर खोजना। जैसे तुम अपनी सगी बहिनको खोजते, उसी व्याकुलता और तत्परतासे खोजना। आगेका 'भाई' शब्दभी इसी ओर इशारा करताहै।]

४—'मास दिवस महँ आएहु भाई'। यहाँ सबको 'भाई' सम्बोधन देकर मित्ररूपसे उपदेश जनाया। आगे 'अवधि मेटि०' यह प्रभुरूपसे उपदेश है। भय और प्रीति दोनों दिखाना चाहिए। इससे दोनों दिखाए। पुनः, 'मास दिवस महुँ आयेहु' के साथ 'भाई' सम्बोधनका भाव कि जो सीताजीका पता लगाकर महीनेभरमें आजायगा वह हमारा भाई है, हम उसे अपने समान सुख देंगे। ‡

अर्थात् रामकार्य होनेपर हम सब ऋणमुक्त और कृतार्थ होजायंगे। उन्होंने हमारा प्रिय कार्य कियाहै उसका बदला हम देदें तो हमारा जीवन सफल हो। जिसने अपने साथ कुछ उपकार न किया हो उसके साथभी उपकार करनेसे जन्म सफल होताहै; फिर उपकार करनेवालेकी तो बातही क्या है? इस विचारानुसार हमारा हित चाहनेवाले आप लोग जानकीजीको ढूँढें। पुनः, यथा—'ततः कृतार्थाः सहिताः सबान्धवा मयार्चिताः सर्वगुणैर्मनोरमैः। चरिष्यथोर्वीं प्रतिशान्तशास्त्रवाः सहप्रियाभूतधराः प्लवंगमाः॥ ६१॥' अर्थात् यह प्रिय कार्य करनेपर बड़े उत्तम और मनोरम पदार्थोंसे मैं सबको संतुष्ट करूँगा, आपका कोई शत्रु न रहजायगा, आप स्त्रियों सहित मुझसे जीविका पावेंगे और प्रसन्नता पूर्वक पृथ्वीपर विहार करेंगे।

‡ 'यश्च मासान्निवृत्तोऽग्रे दृष्ट्वा सीतेति वक्ष्यति। मत्यत्तु विभवो भोगैः सुखं स विहरिष्यति॥४७॥ ततः प्रियतरो नास्ति मम प्राणाद्विशेषतः। कृतापराधो बहुशो मम बन्धुर्भविष्यति॥४८॥'-(व० स० ४१)। अर्थात् जो मास बीतनेके पूर्व लौट आकर कहेगा कि मैंने सीता देखी वह मेरे समान ऐश्वर्य और भोगोंका सुख प्राप्त करेगा। उससे बढ़कर हमारा कोई प्रिय न होगा, वह हमको प्राणोंसेभी अधिक प्रिय होगा। बहुतसे अपराधभी किए हों तो भी वह हमारा 'भाई' ही होगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

५—'अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाए' अर्थात् पता लगनेपर यदि एक मासकी अवधि बीत जाय तो भय नहीं है, और पता न लगे और एक मासके भीतर आजाय कि पता नहीं लगा तोभी भय नहीं; वध तभी होगा जब पताभी न लगा और अवधिभी बितादी। यही बात समझकर तीन दिशाओंके वानर अवधिके भीतरही आगए। *

नोट—यह तो जटायु और सुग्रीवसे मालूमही होगयाथा कि रावण लेगया और दक्षिण दिशामें गया एवं उधरही वह रहता भी है; तब चारों दिशाओंमें वानरोंको क्यों भेजा? इसका समाधान अरण्यमें आचुका।

---

* १—"तदहः प्रथमं कृत्वा मासे प्रस्रवणंगताः। कपिराजेन संगम्य निराशाः कपिकुञ्जराः॥ ६॥ विचिन्त्यतु दिशं पूर्वां यथोक्तां सचिवैः सह। अदृष्ट्वा विनतः सीतामाजगाम महाबलः॥ ७॥ दिशमप्युत्तरां सर्वां विविच्य स महाकपिः। आगतः सह सैन्येन भीतः शतबलिस्तदा॥८॥सुषेणः पश्चिमामाशां विविच्य सह वानरैः। समेत्य मासे पूर्णे तु सुग्रीवमुपचक्रमे॥ ९॥"—(वा० ४७)। अर्थात् प्रस्थानके दिनसे मास पूर्ण होतेही वानरसेनापति निराश होकर प्रस्रवणपर्वत पर कपिराजके पास आगए। सुग्रीवके आदेशानुसार समस्त पूर्वदिशाको ढूँढकर विनत नामक महाबली वानर मंत्रियों सहित सीताको न देखकर लौटआया। समस्त उत्तर दिशाको ढूँढकर महाबली शतबलि डरता हुआ सेन्या सहित आगया। सुषेण पश्चिम दिशाको ढूँढकर महीना पूराहोनेपर सुग्रीवके पास वानरोंके साथ लौट आया।

२—"सीतामदृष्ट्वा यदि वो मासादूर्ध्वं दिनं भवेत्। तदा प्राणांतिकं दंडं मत्तः प्राप्स्यथ वानराः"—(अध्यात्मे ६। २६) अर्थात् बिना देखे जो माससे एक दिनभी अधिक बीतनेपर आवेगा वह मुझसे प्राणान्तक दंड पावेगा।

३ शिला—'कहि सुग्रीव सबहि समुझाई' इति। समझाया कि भक्त चार प्रकारके हैं—उत्तम, मध्यम, नीच, लघु। मास दिवस श्लेषार्थीहै। चारोंमें यों घटताहै कि—जो मास (=१२) दिनमें आवे वह उत्तम; जो मास (=१२) +दिवस (=७)=१९ दिनमें आवे वह मध्यम; जो मास (=३०) दिनमें आवे वह नीच भक्त है पर है यहभी तीसमार क्योंकि करारके भीतर आगया, और जो मास बिताकर सुरति लेकर आवे वह लघु है क्योंकि करारके बाहर चलना लघुका कम है। एवं जो वादा बिताकर बिना सुधलिए आया वह तो मेरा शत्रु है, वध होनेकोही आवेगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। तथापि यहां पुनः संक्षिप्तरूपसे लिखाजाताहै रावण चोरीसे लेगया-है, यथा—'इत उत चितइ चला भड़िहाई'। चोर वस्तु छिपाकरही रखताहै; इससे न जाने सीताजीको कहां रक्खा हो; यही कारण है; कि श्रीरामलक्ष्मणजी जटायुजीसे यह समाचार पानेपरभी वनकी प्रत्येक-झाड़ी इत्यादिमें ढूँढते फिरे।

बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरंत।
तब सुग्रीव बोलाए अंगद नल हनुमंत ॥§ २२॥

सुनहु नील अंगद हनुमाना।
जामवंत मतिधीर सुजाना॥ ,, (१)
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू।
सीता सुधि पूँछेहु सब काहू॥ ,, (२)

अर्थ—वचन सुनतेही सब वानर तुरंत जहाँ तहाँ चले। तब सुग्रीवने अंगद, नल और हनुमान्‌जीको बुलाया। (बोले कि) हे नील, अंगद, हनुमान् और जाम्बवान! सुनिए। आप सब धीरबुद्धि और चतुर हैं, आप सब सुभट मिलकर दक्षिण दिशाको जाएँ और सब किसी (सभी) से सीताका पता पूछें।

टिप्पणी १—(क) 'जहँ तहँ चले तुरंत' अर्थात् जिनको जिस दिशामें जानेकी आज्ञा हुई उसी दिशाको वे चले। * 'तुरंत' से

* यथा—'उत्तरांतु दिशं रम्यां गिरिराज समावृताम् ॥४॥ प्रतस्थे सहसा वीरो हरिः शतबलिस्तदा। पूर्वां दिशं प्रतिययौ विनतो हरियूथपः ॥५॥ पश्चिमांच दिशं घोरां सुषेणः प्लवगेश्वरः। प्रतस्थे हरिशार्दूलो दिशं वरुणपालिताम् ॥७॥'—(वा० ४५)। अर्थात् हिमालय वा बड़े बड़े पर्वतोंसे युक्त रमणीय उत्तरदिशामें शतबलि नामक वीर वानरोंने प्रस्थान किया। वानरयूथपति विनत पूर्व दिशाको गया और वानरोंमें सिंहरूप (श्रेष्ठ) सुषेण वानरपति वरुणसे पालित भयानक पश्चिम दिशाको गया। चौथी दिशावाला समाज यह है जिसे अब नाम लेकर संबोधन कररहेहैं, यथा—'तारांगदादिसहितः प्लवगः पवनात्मजः। अगस्त्याचरितामाशां दक्षिणां हरियूथपः ॥६॥' अर्थात् तारा, अंगद, आदि सहित पवनपुत्र हनुमान्‌जी अगस्त्यजीकी दक्षिण दिशाको गए।

अंगदके साथके मुख्य वानरोंके नाम वा० ५० में हैं। यथा—'परस्परेण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जनाया कि सबको रामकार्यकरनेमें उत्साह है एवं अपने स्वामीका निहोराभी है। ☞ जो वानर तीन दिशाओंमेंगए वे चलते समय प्रणामकरना भूलगए क्योंकि इनके द्वारा 'सीतासुधि' नहीं मिलनी है और, जो वानर दक्षिणदिशाको चले वे प्रणामकरके चले, यथा—'आयसु मागि चरन सिरु नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई'; क्योंकि इनके द्वारा सीताजीकी ख़बर मिलनी है। रामाज्ञामें कहाहै—'तुलसी करतल सिद्धि सब सगुन सुमंगल साज। करि प्रनाम रामहि चलहु साहस सिद्धि सुकाज॥' (ख) सब वानरोंके नाम लेनेका भाव यह है कि नीतिकी आज्ञा है कि कार्यके समयमें वीरोंका सम्मान करे, सबका नाम लेना सम्मान है, यथा—'देषि सुभट सब लायक जाने। लै लै नाम सकल सनमाने॥'—(पं०)।

२—'सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू...' इति। (क) दक्षिणकी ख़बर जटायुसे मिलीहैं, यथा—'लै दच्छिन दिसि गएउ गोसाईं'। इसीसे सब सुभटोंको उधर भेजरहेहैं क्योंकि वहाँ रावणसे युद्धकी संभावना है। (ख) 'मिलि' का भाव कि शत्रुसे युद्ध करनेके वास्ते सब इकट्ठे रहना।—पुनः, [प्र०—मिले रहनेसे भारी कार्यभी साधारणतयाही साधलियाजासकताहै। (ग) 'सकल सुभट' का भाव कि एक एक दिशामें एक एक सुभट गयाहै। पूर्व दिशामें विनत नामका वानर गया, पश्चिममें सुषेन, उत्तरमें शतबलि गया। दक्षिणमें सब सुभटो जाओ। ३—सबसे पूछनेको कहा क्योंकि न जाने किससे पता मिलजाय। छोटेबड़े ऊँचनीच कोईभी हो।

पं०—प्रथम नीलको तब अंगदादिको कहा; इसमें मुख्य तो छंद हेतु है। दूसरे यहभी होसकताहै कि नील अग्निका अवतार और बड़ा भारी यूथप है, सेतुबंधनमें मुख्य है एवं लंकाके संग्राममें चतुर्थ होगा। अंगद, हनुमान् पुत्र समान हैं, इनका नाम पीछे लेनेमें दोष नहीं। जाम्बवंतको सबसे पीछे कहा इसीसे 'मतिधीर' विशेषण दिया।

प्र०—'तुरंत' चलनेसे निरालस्य और आज्ञानुकूलता जनाई। दक्षिण दिशा विशेष निश्चित है अतएव अपने तुल्य सुभटोंको भेजा।

रहिता अन्योन्यस्याविदूरतः। गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः॥५॥ मैन्दश्च द्विविदश्चैव हनूमान्जाम्बवानपि। [अंगदो युवराजश्च तारश्च वनगोचरः॥६॥'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साथमें अपने प्रियपुत्रको, युवराजको, भेजतेहैं जिससे उन सबका उत्साह बढ़े, इससे इन सबका आदरभी हुआ। इसीसे अंगदका नाम प्रथम कहा (बुलानेमें)। २—नील मुख्य सेनापति है, अंगद युवराज हैं, हनुमान् महावीर और जाम्बवंत वृद्धमंत्री हैं। प्रजापति (ब्रह्मा) का अवतार जानकर जाम्बवंतको 'मतिधीर सुजान' विशेषण दिए। इन्हींने संपातीसे भयभीत होनेपर सबको सावधान किया, फिर हनुमान्‌जीका उत्साह बढ़ाकर रामकार्य कराया।

मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु।
रामचंद्र कर काज सवाँरेहु॥ § २२ (३)

अर्थ—मन, कर्म और वचनसे वह उपाय बिचारना,(जिससे उनका काम हो और विचारकर) रामचन्द्रजीका काम भली प्रकार करना।

टिप्पणी १—यत्न विचारना मनका काम है, कार्य्य 'सँवारना' कर्म है और सबसे सीताजीकी सुध पूछना 'वचन' है। जैसी आज्ञा सुग्रीवने दी वैसाही वानरोंने कियाभी। यथा—(क) 'यहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं'। (ख) 'चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह।' यह कर्म है और (ग) "सब मिलि कहहिं परस्पर बाता। बिनु सुधि लिए करब का भ्राता"*

२—'रामचन्द्र कर काज सवाँरेहु', यहाँ चन्द्रमा कहा; 'भानु पीठि सेइअ उर आगी', यहाँ सूर्य और अग्निका नाम दिया और 'मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु' यहाँ मन, कर्म और वचन कहे। ☞इन शब्दोंके देनेका तात्पर्य यह है कि मन, कर्म और वचनके साक्षी क्रमसे चन्द्रमा, भानु और अग्नि हैं। रामचन्द्रका कार्य सवाँरनेमें तुम्हारे मनका साक्षी चन्द्रमा है, कर्मका साक्षी सूर्य है और वचन का साक्षी अग्नि है; इसीसे स्वामीको सब भावसे छलकपट त्यागकर भजो; मन, कर्म, वचनमें छल न रहे।

* प्र०—१ मन, यथा—'कह अंगद बिचारि मन माहीं'। कर्म यथा—'राम काज कीन्हे बिन्न मोहि कहाँ बिश्राम'। वचन, यथा—'रामकाज करि फिरि मैं आवउँ। सीता०' इत्यादि। २—'रामचंद्रका काज' कहनेका भाव कि ये श्रेष्ठ हैं, श्रेष्ठके कार्य करनेका श्रेष्ठ फलभी मिलताहै, यथा—'सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं'।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भानु पीठि सेइअ उर आगी।
स्वामिहि सर्वभाव छल त्यागी ॥§२२ (४)

अर्थ—सूर्य्यको पीठसे और अग्निका उर (छातीसे) सेवन करना चाहिए (अर्थात् धूप खाना, घाम तापना, हो तो सूर्य्यकी ओर पीठ करके बैठे, सामने छातीपर धूप न पड़े और अग्नि तापना हो तो अग्निके सन्मुख बैठकर अग्नि तापे; अग्निकी ओर पीठ न देकर बैठे, यह वैद्यकका नियम है। इसके विपरीत करनेसे हानि होती है); (परन्तु) स्वामीकी सेवा सब भावसे छल छोड़कर करनी चाहिए।

टिप्पणी १—(क) सूर्य पीठसे सेवन करनेसे सुखदाता है, अग्नि उरसे सेवन करनेसे सुखदाता है और स्वामी सब भावसे (माता, पिता, गुरु, स्वामी, भाई इत्यादि सभी भावोंसे) छल त्यागकर सेवन करनेसे सुखदाता हैं। (ख) 'छल त्यागी' का भाव कि सूर्य्यको पीठसे और अग्निको छातीसे सेनेमें छल है; वह यह कि सूर्यका सेवन पीठसे इसलिए करतेहैं कि उससे शीत और वायु नहीं रहते, सूर्य्य सेवनमें यह स्वार्थ होताहै। सम्मुखसे उसका सेवनकरनेसे दृष्टिकी हान होतीहै। इसी प्रकार अग्निको उरसे सेवन करनेसे जठराग्नि बढ़तीहै और पीठसे सेवन करनेसे 'काम' की हानि होतीहै। यही समझकर लोग अपने हितके अनुकुल सेवन करतेहैं—यही छल है। इसीसे कहते हैं कि स्वामीकी सेवा छलरहित करे अर्थात् स्वामिसेवामें दुःख सुख न बिचारे, निःस्वार्थ और निश्छल भावसे करे।

२—सूर्य्य और अग्नि इन दोनोंके दृष्टान्त देनेका भाव यह है कि सूर्य्यका सेवन लोग पीठसेही अर्थात् पीछेसे करतेहैं और अग्निका आगेहीसे, यह बात स्वामिसेवामें न होनी चाहिए। उनकी सेवा आगे पीछे एकही तरह करनी चाहिए, जैसी सेवा उनके सामने करे वैसीही उनके पीछेभी करे। यह न करे कि आगे तो कोमल वचन बनाकर कहे और पीछे अनहित करे, यथा—'आगे कह मृदु बचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई'

३—इस चौपाईकी जोड़का श्लोक वृद्ध चाणक्यमें है।-मिलान यथा

भानु पीठि सेइअ उर आगी	पृष्ठेन सेवयेदर्कंजठरेणा हुताशनम्
स्वामिहि सर्वभाव छल त्यागी	स्वामिनं सर्वभावेन
तजि माया सेइअ परलोका	परलोक हितेच्छया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यहां अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

नोट—उ०§ ८७ में भुशुण्डिजीके प्रति यह श्रीमुखवचन है कि—"पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ। सर्वभाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥" वही 'सर्वभाव' और 'छल (कपट) त्यागी' यहांभी है। वैजनाथजी लिखतेहैं कि योतिषके मतसे यात्रा एवं युद्धमें रविका सम्मुख होना अमंगल है और वैद्यकमतसे रुजवर्द्धक है इसलिए सूर्यको पीठसे सेवन कियाजाताहै और अग्निकी आँच आयु कफ़ चोट आदिको हरतीहै और जठराग्निको उदरमें शुद्ध रखतीहै इसलिए उसका सेवन उरसे करना चाहिए।

दीनजी—भाव यह है कि स्वामीकी सेवा पीठ और उर किसी विशेष अंगसे नहीं बल्कि मन-वचन-कर्म सब प्रकारसे करनी चाहिए। अग्निको उरसे सेवनमें यह स्वार्थ है कि पीठसे सेवनमें जल जाने काभी भय रहता है। (करु०, पां०)।

पं० रा० व० श०—सूर्य्य और अग्निका एक विशेष अंगसे सेवन देहकी ममता एवं स्वार्थसे लोग करतेहैं कि जठराग्नि बढ़े, रोग दूर हों। सुग्रीवजी कहतेहैं कि स्वामी के कार्य्यमें देहकाभी ममत्व न करो, स्वार्थ उसमें छूभी न जाय, मन-तन-वचन उसमें लगादो, शरीरका भानभी न रहे। और ऐसाही इन महात्माओंने कियाभी यथा—'राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह'। यही भाव यहां है। †

पां०—मुख्य अर्थ यही है (जो ऊपर दियागयाहै)। सूर्य्यके साथ आगेका और अग्निके साथ पीछेका कपट लगाहुआहै। दूसरा

† यह चौपाई 'बज्र तेरही' वालीमेंसे एक है। भाव तो इसका स्पष्ट है और प्रमाणसिद्ध है, फिरभी लोगोंने अनेक क्लिष्ट कल्पनाएँ की हैं। पाठकोंकी जानकारी एवं विनोदार्थ उनमेंसे कुछ यहां उद्धृत किएजातेहैं, पाठक स्वयंभी विचार देखें—

१ मा० म०—भानुपीठ=सूर्य्यमुखी पत्थर। इसको टकटोरकर देखो तो उसके भीतर कुछ न दिखाई देगा परन्तु वह अग्निको धारण किएहुयेहै। वह भानुपीठ केवल उदरमें अग्निको सेवताहै।

२ महादेवदत्तजी, वै०—भानुपीठ=चकोर। यह अपने स्वामी चन्द्रमाके वियोगमें दुःखसे उरमें अग्नि सेवताहै, अग्निको खालेताहै कि मैं भस्म होजाऊं तो मेरी चिताकी भस्म यदि शिवजी लगालें तो मेरी क्षार चंद्रढिगतक पहुँच जायगी। इसी प्रकार स्नेहसे छल कपट छोड़कर स्वामीकी सेवा करनी चाहिए।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ और सुनिए—"बाहरका छलकपट रघुनाथजी सूर्यरूपसे देखतेहैं और अन्तष्करणका अग्निरूपसे । इसलिए छलकपट, बाह्यान्तर दोनोंका, छोड़कर रामचंद्रका काम करो।" पुनः तीसरा अर्थ यह है कि—"सूर्य कपटछलको छोड़ पीठ अर्थात् रास्तेको सेवतेहैं । और अग्नि जैसे छलकपट छोड़कर अन्तस सेवतेहैं—क्योंकि यदि सूर्य सावधानी न रक्खें तो रात दिनमें अंतर पड़े और जो अग्नि छलकपट करे तो अन्न न पचे वा देह जलजाय—ऐसेही सावधान होकर रघुनाथजीकी सेवा करो ।

तजि माया सेइअ परलोका ।
मिटहिं सकल भवसंभव सोका ॥ § २२ (५)
देह धरे कर यह फलु भाई ।
भजिअ राम सब काम बिहाई ॥ ,, (६)
सोइ गुनज्ञ सोई बडभागी ।
जो रघुबीर चरन अनुरागी ॥ ,, (७)

अर्थ—माया (अर्थात् तन, धन, स्त्री, पुत्र, घर इत्यादिकी ममता) का त्याग करके परलोक सेवन करे (तो) भव (=संसार, जन्ममरण) से उत्पन्न जितने शोक हैं वे सब मिटजायँ । हे भाई ! देह धरनेका यही फल है कि सब काम एवं कामनाएँ छोड़कर रामजीका भजन

यह शरीर क्षणभंगुर है, कभी न कभी नष्ट होगाही, यदि स्वामिकार्यमें छूट जाय तो रामजीकी प्राप्ति हो जायगी ।

३ शिला—भानुपीठ अर्थात् सूर्य्यमुखीका इष्ट भानु है, उसे जलमें रखदो तोभी वह हृदयमें अग्नि बनाए रखताहै । जैसेही जलसे निकालागया और सूर्यके सम्मुख हुआ कि उसमेंसे अग्नि प्रकट हुई, जल अग्निका नाशक है । ऐसेही सेवकको अनेक कष्ट पड़ें तोभी स्वामीके कार्यको न भुलावे ।

४ शिला०, मा० शं०—भानुपीठ=भानुका सिंहासन=पूर्व दिशा । उरभागी=माताकी जठराग्निमें । अर्थात् जिस स्वामीने पूर्वही माताकी जठराग्निमें तुम्हारी रक्षाकी उनका काम छल कपट छोड़कर करना चाहिए । इत्यादि ।

५ करुणासिंधुजीने भानपीठका अर्थ सूर्य्यमुखी, और सूर्य्यमंडलमध्यस्थराम इत्यादि किए है । इसी तरह और भी कई तरहसे लोगोंने क्लिष्ट बनादियाहै ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करे। जो श्रीरघुवीरचरणोंका प्रेमी है वही गुणवान् है और वही बड़भागी है। (भाव यह कि आप सब तो रामकार्य्यमेंही लगने जारहे हैं तब आपसे बढ़कर भाग्यवान् कौन होसकताहै)।

नोट—भवसंभव शोक मायाकृत हैं, यथा—'एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जाबस जीव परा भव कूपा'। इससे कहतेहैं कि उसका त्याग करनेसे भवसे छुटकारा होगा। माया, यथा—'मैं अरु मोर तोर तैं माया'; संसारमें ममत्वही माया है इसीको त्याग करनेको कहतेहैं, यथा—'सुत दार अगार सखा परिवार बिलोकु महा कुसुमाजहि रे।

सब की ममता तजि कै समता सजि संत समान बिराजहि रे॥'

—(क० उ० ३)।

टिप्पणी—१ देह धरे कर यह फल भाई...' इति। (क) 'यह फल', कहनेका भाव कि रामसेवा इस समय जो प्राप्तहुईहै वही इस देह-धारणकरनेका फल है। (ख) 'भाई' नम्रता, प्रियत्व और सम्मानका सूचक है। बड़े लोग नम्रतापूर्वक उपदेश देतेही हैं। दूसरे इस वानर यूथमें 'सकल सुभट' अर्थात् सब प्रधान हैं, इसमें मंत्री और युवराजभी हैं, ब्रह्मा और शिवही जाम्बवान् और हनुमान् रूपसे यहाँ हैं, अतः इनको प्रीतिसूचक 'भाई' पद देकर सम्बोधन किया। (ग) ☞ प्रधान वानरोंको प्रीति दिखातेहैं—(देह धरे कर यह फल भाई)। सामान्य वानरोंको भय और प्रीति दोनों दिखातेहैं—('जनकसुता कहुँ खोजहु जाई। मास दिवस महँ आयेहु भाई', यह प्रीति है। और 'अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाये। आवइ बनिहि सो मोहि मराए', यह भय है)। प्रधान वानरोंको प्रत्यक्ष भय नहीं दिखाया, पर उनके सामनेही सामान्य वानरोंको भय दिखायाहै, इस प्रकार उनके द्वारा इनकोभी वही भय सूचित करदियाहै।—यह बड़ोंकी रीति है। इसी प्रकार शिवजीने सामान्य देववृन्दके उपदेश द्वारा ब्रह्माकोभी श्री-सियरघुवीर-विवाह-समय उपदेश दियाथा, यथा-'बिधिहि भयउ आचरजु बिसेषी। निज करनी कछुकतहुँ न देषी॥ सिव समुझाये देव-सब जनि आचरज भुलाहु। हृदय बिचारहु धीर धरि सियरघुवीर बिवाहु॥ (ब० § ३१४)। २—इन सुभटोंकेलिएभी वह दंड है, यह बात कांडके अंतमें अङ्गदके वचनोंसे सिद्ध है, यथा—' यहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गए मारिहि कपिराई']

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—'सोइ गुनज्ञ सोई बड़भागी ।०' इति। (क)—'जो' पदसे जनाया कि रामचरणानुरागी होनेमें जाति, योनि, वर्ण, आश्रम, स्त्री, पुरुष, नपुसंक इत्यादि किसीका नियम नहीं है। कोईभी हो यदि वह रामचरणानुरागी है तो वही गुणज्ञ और बड़भागी है। (ख) 'सोइ' का भाव कि रामचरणानुराग न हुआ और समस्त गुण हुए एवं और सारे संसारमें उसकी प्रीति हो तो अन्य समस्त गुणोंसे संपन्न होनेसे वह गुणज्ञ नहीं माना जासकता और संसार भरके पदार्थोंमें प्रेम होनेपरभी वह बड़भागी नहीं होसकता।—यहाँ 'तृतीय तुल्ययोगिता' अलंकार है।

☞ १—वही बड़ा भाग्यवान् है जिसका श्रीरामचरणारविन्दमें अनुराग है। इस बातको रामचरितमानसके प्रत्येक काण्डमें दिखाया-जाचुका है। रामचरणानुरागियोंको सर्वत्र बड़भागी कहाहै। यथा—

अहल्याजी—'अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगलन यन जलधार बही'

जनकजी—'ते पद पषारत भागभाजन जनक जय जय सब कहहिं'।

लक्ष्मणजी—१ 'भूरिभागभाजन भयउ मोहि समेत बलि जाउँ'।

(अयोध्यामें) जौं तुम्हरे मन छाँडि छल कीन्ह रामपद ठाउँ' ॥'

उत्तरमें—२ 'अहह धन्य लछिमन बड़भागी। रामपदारबिन्द अनुरागी ॥'

निषादराज—'नाथ कुसल पदपंकज देषे। भएउँ भागभाजन जन लेषे ॥'

सुतीक्ष्णजी—'परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी। प्रेममगन मुनिबर बड़भागी'।

अंगद हनुमान्—'बड़भागी अंगद हनुमाना। चरनकमल चाँपत बिधि नाना॥'

२—जो रामपद-विमुख हैं वे 'अभागी' हैं, यथा—'ते नर नरक रूप जीवत जग भवबंधन पदबिमुख अभागी' इति विनये।

नोट—☞ मिलान कीजिए—"मानुषं देहमाश्रित्य सर्वं त्यक्त्वा हरिं भजेत्। तत्पदाब्जानुरागाये ते गुणज्ञा मतं मम ॥" अर्थात्—मनुष्यका शरीर प्राप्तकर भगवान्का अर्चन करे। जो भगवान्के चरणोंमें प्रीति रखतेहैं उन्हें मैं गुणज्ञ मानता हूँ।

आयसु मागि चरन सिरु † नाई।
चले हरषि सुमिरत रघुराई ॥ § २२ (८)

† सिर—भ० द०।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पाछे पवनतनय सिरु नावा।
जानि काजु प्रभु निकट बोलावा॥ ,, (९)

अर्थ—आज्ञा माँगकर चरणोंमें सिर नवाकर सब प्रसन्न होकर रघुनाथजीका स्मरण करतेहुए चले। (सबके) पीछे हनुमान्‌जीने प्रणाम किया। (इनके द्वारा) कार्यका होना जानकर प्रभुने उनको पास बुलाया।

टिप्पणी १—(क) सुग्रीव तो आज्ञादे ही रहेहैं कि 'सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू', उनसे आज्ञा नहीं मांगी। यहाँ जो 'आयसु माँगि' कहतेहैं उससे रामजीकी आज्ञा अभिप्रेत है, उन्हींसे अब चलनेकी आज्ञा माँग रहेहैं, उन्हींको प्रणाम कररहेहैं और उन्हींका स्मरण करते चले; यह बात 'सुमिरत रघुराई' और 'पाछे पवनतनय सिरु नावा। जानि काजु०' से स्पष्ट होजाताहै। (ख) 'हर्ष' दो बातें जनाताहै। एक तो राम कार्य्य करनेको मिला अतः अपनेको बड़ा भाग्यवान् समझकर हर्षित हुए, दूसरे प्रस्थानके समयका हर्ष कार्य्यकी सफलता सिद्ध करताहै, यह शकुन है। (ग) यहाँ दिखातेहैं कि सबके मन, कर्म और वचन तीनों रामजीमें लगे हैं। 'हरषि सुमिरत रघुराई' (मनका धर्म), 'चरन सिरु नाई चले' (कर्म वा तन) और 'आयसु मागि' वचन है। (घ) रामस्मरणसे कार्य्य सिद्ध होतेहैं अतः 'सुमिरत' चले।

२—सुग्रीवने जो तीन बातें कहीं उनको यहाँ घटातेहैं—

तीन उपदेश	चरितार्थ
सेवा—तजि माया सेइअ परलोका'	आयसु मागा। आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा।
भजन—भजिय राम सब काम बिहाई	'सुमिरत रघराई' (स्मरण भजन है)।
पदप्रेम—जो रघबीर चरन अनुरागी	'चरन सिरु नाई' (पदप्रेम हुआ)।

३—'पाछे पवनतनय सिरु नावा।०' इति। (क) पीछे प्रणाम करनेका कारण यह है कि सब वानरोंको समझाकर फिर सुग्रीव हनुमान्‌जीसे और भी बातें करतेरहेथे, इसीसे ये सबके पीछे रामजीके पास गए—(वा० ४४। १-८)*।

* "विशेषेण तु सुग्रीवो हनूमत्यर्थमुक्तवान्। स हि तस्मिन्हरिश्रेष्ठे निश्चितार्थोऽर्थ साधने ॥ १ ॥ अब्रवीच्च हनूमन्तं विक्रान्तमनिलात्मजम्। सुग्रीवः परम प्रीतः प्रभुः सर्व वनौकसाम् ॥ २ ॥ न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(ख) रामजीने जानलिया कि हनुमान्‌जीसे हमारा कार्य सिद्ध होगा, यथा—'जानसिरोमनि जानि जिय कपि बल-बुद्धि-निधान। दीन्ह मुद्रिका मुदित प्रभु पाय मुदित हनुमान॥'—(रामाज्ञा)। †

नामरालये। नाप्सु वा गतिसङ्गंते पश्यामि हरिपुंगव॥ ३॥ सासुराः सहगन्धर्वाः सनाग-नरदेवताः। विदिताः सर्वलोकास्ते ससागर धराधराः॥ ४॥ गतिर्वेगश्च तेजश्च लाघवं च महाकपे। पितुस्ते सदृशं वीर मारुतस्य महौजसः॥ ५॥ तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते। तद्यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवानुचिन्तय॥ ६॥ त्वय्येव हनुमन्नास्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः। देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित॥ ७॥" अर्थात् सुग्रीवको निश्चय था कि हनुमान्‌जीसे कार्य्य सिद्ध होगा इससे वे पवनसुत पराक्रमी हनुमान्‌से प्रसन्नतापूर्वक बोले—हे हरिपुंगव! पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश, अमर देवताओंके लोकों एवं जलमेंभी आपकी गतिको रुकावट नहीं है। असुर, गन्धर्व, नाग, देवता, सागर और पर्वतसहित सब लोकोंको आप जानतेहैं। आपमें आपके पिता मरुतके समान गति, वेग, तेज और हलकापन है। आपसा तेजस्वी पृथ्वीमें नहीं है। अतएव जिस प्रकार सीताजी मिलें वह आपही सोचें। हे हनुमान्! आपमें बल, बुद्धि, पराक्रम, देशकालका अनुवर्तन और नीतिका ज्ञान वर्तमान है।

† १ यथा—'अस्मिन कार्ये प्रमाणं हि त्वमेव कपि सत्तम। जानामि सत्त्वं ते सर्वं गच्छ पंथाः शुभस्तव॥'—(अध्यात्म ६। २९)। अर्थात् इस कार्यमें तुम्ही प्रधान हो, तुम्हारे सब सामर्थ्यको मैं जानताहूं, जाओ, मार्ग तुम्हें सब प्रकार मंगलकारी हो! २—वाल्मीकिजी लिखतेहैं कि सुग्रीवका इनपर अधिक विश्वास और हनुमान्‌का स्वयं अपने ऊपर दृढ़ विश्वास देखकर रामजीने जानलिया कि इनसे अवश्य कार्य्य सिद्ध होगा। यथा—'सर्वथानिश्चितार्थोऽयं हनूमति हरीश्वरः। निश्चितार्थतरश्चापि हनूमान्कार्यसाधने॥९॥ तदेव प्रस्थितस्यास्य परिज्ञातस्य कर्मभिः। भर्त्रा परिगृहीतस्य ध्रुवः कार्यफलोदयः॥१०॥'—(सर्ग ४४)। सर्ग ३ में हनुमान्‌जी (वटरूप) के प्रश्न करचुकनेपर रामजीने लक्ष्मणजीसे इनकी प्रशंसा की है और अंतमें कहाहै कि जिस राजाके पास ऐसा गुण सम्पन्न दूत हो उसके कार्य दूतके वचनसेही सिद्ध हो सकतेहैं, शत्रुभी उसके वचन सुनकर प्रसन्न होजाय—(श्लो० ३३-३५)। वहभी 'जानि काज' का कारण है। यथा—'कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि॥३३॥ एवं विधायस्य दूतो न भवेत्पार्थिवस्य तु। सिद्ध्यन्ति हि कथं तस्यकार्याणां गतयोऽनघ॥३४॥ एवं गुणगुणैर्युक्ता यस्य स्युः कार्यसाधकाः। तस्य सिद्ध्यन्ति सर्वेऽर्था दूतवाक्यप्रचोदिताः॥३५॥'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

४—'प्रभु निकट बोलावा'। (क) जब चरणोंमें सिर नवाया तब निकट तो थे ही फिर निकट बुलाना कैसा? निकट बुलाना लिखकर कविने आशयसे सूचित किया कि मस्तक नवाकर हनुमान्‌जी चल दिएथे तब रघुनाथजीने बुलाया, यथा—'गच्छन्तं मारुतिं दृष्ट्वा रामो वचनमब्रवीत्'—(अध्यात्म २८) अर्थात् मारुतनंदनको जाते देख रामजी ये वचन बोले। (ख) निकट बुलाया—कानसे लगकर गुप्त बात कहनेके लिए। यथा—'कहँ हम पसु साखामृग चंचल बात कहौं मैं विद्यमान की। कहँ हरि सिव अज पूज्य ज्ञानघन नहिं बिसरति वह लगनि कान की॥'—(गी०) *

परसा सीस सरोरुह पानी।
करमुद्रिका दीन्हि † जन जानी॥§२२ (१०)
बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु।
कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु॥ ,, (११)

अर्थ—अपना करकमल हनुमान्‌जीके सिरपर फेरा। अपना जन (सेवक) जानकर हाथकी अंगूठी दी। (और कहा कि) बहुत तरह से सीताको समझाना, हमारा विरह और बल कहकर तुम शीघ्र आना।

टिप्पणी १—(क) जिस करकमलके स्मरणमात्रसे भवसागर पारकरना सुगम होजाताहै वही करकमल श्रीहनुमान्‌जीके सिरपर

* १ मा० म०—भाव यह कि हनुमान्‌जीने अपनेको सबसे लघु जान सबसे पीछे प्रणाम किया; इस कारण प्रभु ने सन्निकट बुलाया। वा, श्रीरामचन्द्रकी प्रेरणासे। वा, एकान्त होनेपर प्रणाम किया। अथवा, यह धीरोंकी चाल है कि सबका मर्म लेकर पीछे काम करतेहैं। २ पं०—अति प्रेमी सबसे पीछे विदा होतेहैं जितनी देर साथ रहें उत्तम है। वा, परम सेवकने स्वामीका रुख लखा कि कुछ चिह्न देंगे अतः पीछे मिले। वा, प्रभुको चिह्न इन्हींको देना है और इन्हींसे काम लेना है; सबके बीचमें इनको देनेसे औरोंका अपमान होगा यह विचारकर प्रभुने ऐसी प्रेरणा की। ३ प्र०—हनुमान्‌जी सदा परमविनीत रहतेहैं, इसीसे दीनबंधुको वे परमप्रिय हैं। शुकसारननेभी यही देखकर रावणसे कहाथा कि 'सकल कपिन्ह महँ तेहि बल थोरा'। ४-वै०—क्योंकि इन्हींने सुग्रीवका कार्य साधा था।

† दीन्ह—(भ० द०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

फेरा। इससे समुद्र पारकरना अत्यन्त सुगम करदिया। यथा—'सुमिरत श्रीरघुबीर की बाहैं। होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ नाघत कोउ उतरत थाहैं॥'—(गी० उ०)। पुनः, विनयपत्रिकामें लिखाहै कि 'सीतल सुषद छाँह जेहि कर की मेटति ताप पाप माया'; इससे यह सूचित करतेहैं कि हनुमान्‌जीको अग्निकी ताप, लंकापुरी जलानेका पाप और सुरसा, सिंहका, मेघनाद आदिकी माया कुछ न व्यापेगी। (ख) 'जन जानी' का भाव कि सिरपर हाथ फेरना, मुद्रिका देना और कानमें लगकर बात कहना, ऐसी कृपा 'निज जन' परही करतेहै।*

२—(क)—'बहु प्रकार' का समझाना सुंदरकाण्डमें लिखाहै। यहां कानसे लगकर श्रीरामजीने गुप्त बात कहीहै। इसीसे ग्रन्थकारोंने भी यहाँ बात गुप्त रक्खी। सुंदरकाण्डमें हनुमान्‌जी खोलकर कहेंगे तब ग्रन्थकारभी स्पष्ट लिखेंगे। (ख) 'बेगि आयेहु' जिसमें हम उनकी प्राप्तिका शीघ्र उपाय करें।—[नोट—ये शब्द मानों हनुमान्‌जी-के लिए आशीर्वाद हैं कि तुम्हीसे यह कार्य्य सिद्ध होगा, इसका यश तुम्हीको प्राप्त होगा। अध्यात्ममें आशीर्वादके वचनभी हैं, यथा—'जानामि सत्वं ते सर्वं गच्छ पंथाः शुभस्तव। (६।२९) अर्थात् तुम्हारे बुद्धिबलादि सत्वको मैं जानताहूँ, जाओ, तुमको मार्ग मङ्गलकारी होगा।] (ग)—'तुम्ह आएहु' अर्थात् तुमही आना सीताजीको साथ न लाना। इसी भावसे हनुमान्‌जीने सुन्दरकाण्डमें सीताजीसे कहाहै कि 'अबहि मातु मैं जाउँ लेवाई। प्रभु आयसु नहिं राम-दोहाई'।

नोट—यह मुद्रिका निशानीकेलिए दी। इससे सीताजी विश्वास करेंगी। यथा—'अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा। मत्सकाशादनुप्राप्त मनुद्विग्नानुपश्यति'—(वा० ४४।१३); अर्थात् मेरे यहाँसे

* प्र०—मुद्रिका मुखमें रखली कि जो इस मुखसे वचन निकलें वे मानों रामजीकी मुहरछापसरीखे प्रमाण हों। कोई २ कहतेहैं कि 'परसा सीस सरोरुह पानी' उपक्रम है और इसका उपसंहार सुंदरमें, 'सिर परसेउ प्रभु निज करकंजा' यह है। इसीसे 'मेटति पाप' (लंकादहन और बालवृद्ध वधका)। यह मुद्रिका वही है जो केवटको उतराई देनेके लिए सीताजीने रामजीको दीथी। और किसीका यह मत है कि यह वह नहीं है वह रामजीने लौटादीथी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आयाहुआ जानेंगी, देखकर घबड़ायगी नहीं। हनुमान्‌जीने कहाभी है कि 'दीन्ह राम तुम्ह कहँ सहिदानी'।

मा० म०, पं०, प्र०—बल तो महारानीजी जानतीही हैं, वे स्वयं हनुमान्‌जीसे कहेंगी कि 'तात सक्रसुत कथा सुनायेहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझायहु'; अतः यहाँ बलसे सेनाका अर्थ है। अर्थात् बताना कि कैसी सेना है, कैसा दलका बल है इत्यादि, जिससे विश्वास हो कि सेना निश्चरोंको जीत लेगी। और बताना कि वियोग-दुःखसे हम बहुत दुःखी हैं, अतएव वहां पहुँचनेमें विलंब न करेंगे यह विश्वास होगा।

पां०—'सीता' शब्द देकर जनाया कि समझाने एवं बल, विरह सुननेसे उन्हें शीतलता प्राप्त होगी।

पं० रा० व० श०—बल और विरह दोनों कहनेको कहा। क्योंकि यदि विरह-दुःखही कहेंगे तो वे ये न समझें कि दुःखसे निर्बल हो गएहैं अब हमको छुड़ाने क्योंकर आसकेंगे। केवल बल कहें तो संभव था कि समझतीं कि हमारे लिए क्यों परिश्रम करेंगे।

हनुमत जन्म सुफल करि माना।
चलेउ हृदय धरि कृपानिधाना॥ § २२ (१२)
जद्यपि प्रभु जानत सब बाता।
राजनीति राखत सुरत्राता॥ ,, (१३)

अर्थ—हनुमान्‌जीने अपना जन्म सफल समझा और कृपानिधान रामजीको हृदयमें धरकर चले। यद्यपि देवताओंके रक्षक प्रभु सब बात जानतेहैं तोभी वे राजनीतिकी रक्षा करतेहैं (नीतिकी मर्यादाका पालन करतेहैं)।

टिप्पणी १—(क) "जन्म सुफल माना"। भाव कि हनुमान्‌जी का जन्म रामकार्य्यके निमित्त है, यथा—'रामकाज लगि तव अवतारा'; जब वह कार्य्य मिला तब अपना जन्म सफल माना। (ख) जन्मकी सफलता तो कार्य्य होजानेपर माननी चाहिए, अभीसे सफल कैसे मानलिया? उत्तर—जब प्रभुने मस्तकपर हाथ फेरा, मुद्रिका दी और सीताजीको समझाकर शीघ्र लौट आनेको कहा, तब कार्य्य हो चुका, उसके पूरा होनेमें किंचित् संदेह नहीं है।—(नोट—प्रभु

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सत्यसंध हैं, उनका वचन झूठ नहीं होसकता। जो मुखसे निकल गया वह अवश्य होकर रहेगा। सीताजीको समझाकर लौटना तभी हो सकताहै जब कार्य्य सफल हो। अध्यात्ममें यहभी लिखाहै कि मङ्गलका आशीर्वादभी हनुमान्‌जीको दिया। तब हनुमान्‌जी सरीखे भक्त कैसे न कार्य्यको सिद्ध समझते। वे तो जानतेहैं कि "स्वयं सिद्ध सब काज नाथ मोहि आदर दियेउ' अतः तुरंत जन्म सुफल मान लिया।)। (ग) ['कृपानिधाना' को हृदयमेंव सालिया, ऐसा कहकर जनाया कि इस समय उनके चितमें प्रभुकी कृपाका चिन्तवन समा गयाहै। कृपाकाही स्मरण करते चलेजारहेहैं; इसीसे कविने कृपानिधानको 'सुमिरत चले' ऐसा लिखा]। हनुमान्‌जीने जाना कि मुझपर प्रभुने बड़ी कृपा की कि हाथ फेरा और कार्य करनेकी आज्ञा दी, यथा—'कहँ हरि सिव अज पूज्य ज्ञानघन नहिं बिसरत वह लगन कान की'—(गी०)।

२ (क)—'प्रभु' अर्थात् समर्थ हैं अतः सब जानतेहैं। 'राजनीति राखत' अर्थात् सोचतेहैं कि यदि ईश्वरत्वसे काम लेंगे तो राजनीतिकी मर्यादा न रहजायगी। राजनीति है कि दूत भेजकर शत्रुका समाचार पाकर तब चढ़ाई करे, इसीसे प्रथम दूत भेजतेहैं।—(मर्यादा-पुरुषोत्तम इस अवतारका नामही है, अतः सबकी मर्यादा रखतेहैं)। (ख) 'सुरत्राता' का भाव कि देवताओंकी रक्षाकेलिए रामावतार है, देवरक्षा माधुर्य्यसे होगी, ऐश्वर्य्यसे नहीं, क्योंकि रावणकी मृत्यु मनुष्यके हाथसे है, इसीसे माधुर्य्यके अनुकूल लीला करतेहैं, ईश्वरताके अनुकूल नहीं। ऐसाही अरण्यकांडमें कहाहै, यथा—'जद्यपि प्रभु जानत सब कारन। उठे हरषि सुरकाजसँवारन' इत्यादि। *

☞ 'अब सोइ जतन करहु मनलाई' से यहाँतक 'जेहि बिधि कपिपति कीस पठाए' यह प्रसंग है।

---

* पं०—अथवा, देवताओंको रावणने बहुत दुःख दिएथे, इसीसे प्रभु देवतोंके वानरतनद्वाराही रावणका अपमान करायेंगे। अतएव 'सुरत्राता' कहा। वा, वानर दूतको भेजा कि इसका बल पराक्रम देख रावणको हमारे बलपराक्रमका बोध होगा कि कैसा अतुल होगा। वा, सब कार्य काल पाकर होतेहैं, दूत भेजनेसे कुछ समय बीतेगा तब रावणादिके मरणका समयभी आजायगा। यहभी नीति है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'सीताखोज सकल दिसि धाए'-प्रकरण

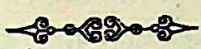

चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह।
रामकाज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह ॥§२३

अर्थ—सब वानर सभी वन, नदी, तालाब, पर्वत और पर्वतकी कंदरायें गुफ़ाएँ ढूँढ़ते चलेजातेह। रामकार्य्यमें मन लवलीन (तन्मय, तल्लीन, मग्न) है, देहका मोह-ममत्व भूलगया।

टिप्पणी—१—'चले हरषि सुमिरत रघुराई' में एक बार चलना कहचुके, अब यहाँ फिर चलना कहतेहैं। पहिली बारका चलना विदा होनेके अर्थमें है और यहाँ रास्ता चलनेका प्रकार कहतेहैं कि वन, सरिता आदि खोजते चले। अतः पुनरुक्ति नहीं है।

कतहुँ होइ निसिचर सैं† भेंटा।
प्रान लेहिं एक एक चपेटा॥ § २३ (१)
बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं।
कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिं॥ ,, (२)

अर्थ—जो कहीं निश्चरसे भेंट होतीहै तो सब एक एक चपेट (थप्पड़, तमाचा, झाँपड़) लगाकर उसके प्राण लेलेतेहैं। बहुत तरह से पर्वत और वन देखतेहैं (कोई मुनि मिल जाताहै तो सब उसे घेर लेतेहैं। इस विचारसे कि मुनि सब जगहकी बात जानतेहैं।)‡

टिप्पणी १—(क) 'कतहुँ होइ निसिचर सैं भेंटा' का भाव कि खरदूषणके मारेजानेपर निश्चर भागगए, अब इधर बहुत नहीं हैं इसीसे कभी कहीं भूले भटके कोई निश्चर मिलताहै। उसे रावण

† 'सों'—(का०), सें—(छ०)।

‡ किसीका यह मत भी है कि मुनिको सब घेरलेतेहैं कि निश्चरहा न हो जो मुनिवेषमें है; यदि ऐसा होगा तो सबसे एकबारगी घिरजानेसे घबड़ा जायगा जिससे वह पहिचान लियाजायगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जानकर मारतेहैं। * (ख) 'कोउ मुनि' का भाव कि निश्चरोंके भयसे बहुत मुनि नहीं रहते इसीसे कभी कोई मिलताहै। [(ग) दीनजी—निश्चरको मारतेहैं क्योंकि प्रभुने कहाथा—'इहां हरी निसिचर बैदेही']

'सीताखोज सकल दिसि धाए'-प्रकरण समाप्त हुआ।

'विवर-प्रवेश'-प्रकरण

लागि तृषा अतिसय अकुलाने।
मिलै न जल घन गहन भुलाने॥ § २३ (३)
मन हनुमान कीन्ह अनुमाना।
मरन चहत सब बिनु जल पाना॥ ,, (४)

अर्थ—अत्यन्त प्यास लगनेसे सब अत्यन्त व्याकुल होगए। (अर्थात् मरणावस्थाको पहुँचगए)। जल नहीं मिलता और सघन वनमें भूल-गएहैं (भटकरहेहैं)। † हनुमान्‌जीने मनमें अनुमान किया कि सब वानर विना जलपानके मराचाहतेहैं।

टिप्पणी—पर्वतों और जंगलोंमें ढूँढ़नेमें बड़ा श्रम हुआ इसीसे अत्यन्त प्यास लगी। 'भुलाने' अर्थात् उनको दिशाका ज्ञान न रहगया।

---

* १ 'रावणोयमिति ज्ञात्वा केचिद्वानरपुङ्गवाः। जघ्नुः किलकिला शब्दं मुन्चंतो मुष्टिभिः क्षणात्॥' (अध्यात्म ६) अर्थात् यह समझकर कि यही रावण है वानरोंने किलकिला शब्द करके उसको मुष्टियों से मारा। २—वा० ४८। १७-२० में लिखाहै कि जब ये उस स्थानमें पहुँचे जिसे कण्डूऋषिने शापसे भस्मकर वन करदियाथा तब एक भयानक असुरको बैठे देखा जो मुट्ठी बाँध-कर इनकी ओर दौड़ा। अंगदने उसे रावण समझ एक चपेटा दिया जिससे वह रुधिर उगलताहुआ गिरपड़ा और मरगया। ३—पांडेजी अर्थ करतेहैं कि एकही वानर एकही चपेटेसे उसका प्राण हरलेताहै। ४—राक्षसोंको शत्रुपक्षका जानकर थप्पड़ मारना और मुनियोंको मित्रपक्षका अनुमान करके घेरना 'प्रत्यनीक' अलंकार है।—(वीरकवि)।

† 'तृषार्ताः सलिलं तत्र ना विंदन् हरिपुङ्गवाः। विभ्रमन्तो महारण्ये शुष्क कण्ठोष्ठतालुकाः॥' (अध्यात्म ६) अर्थात् श्रेष्ठ वानर प्याससे आर्त्त हैं, वहाँ जल न मिला। कण्ठ, ओष्ठ और तालू सूखगएहैं, इसदशामें वे उस महावनमें फिर रहेहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नोट १—हनुमान्‌जीको प्यास न लगी। इसका कारण यह है कि श्रीरामजीकी इनपर विशेष कृपा है; प्रभुने इनके मस्तकपर करकमल फेरा था, फिर 'रामनामांकित' मुद्रिका इनको दी थी जो इन्होंने मुखमें रखलीथी। रामनाम अमृतरूप है, यथा—'धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्' जो मंगलाचरणमें कह आए हैं। अँगूठी रामनामयुक्त, है और ये स्वयं परमानन्य विलक्षण नामजापक हैं कि जिनके रोमरोमसे नामकी ध्वनि होतीहै और जिनका रोमरोम रामनामाङ्कित है एवं जिनके हृदयमें सदा धनुर्धररामजी विराजमान रहतेहैं। तब इनको प्यास, थकावट, आदि कैसे सतासकते? वे तो निकटभी आते डरते होंगे। २—'अनुमान'—सबके मुखकी चेष्टा देखकर किया।

चढि गिरि सिखर चहूँ दिसि देषा।
भूमि बिबर एक कौतुक पेषा॥ § २३ (५)
चक्रवाक बक हंस उडाहीं।
बहुतक † खग प्रबिसहिं तेहि माहीं॥ ,, (६)
गिरि ते उतरि पवनसुत आवा।
सब कहुँ लै सोइ बिबर देखावा॥ ,, (७)
आगे कै ‡ हनुमंतहि लीन्हा।
पैठे बिबर बिलंबु न कीन्हा॥ ,, (८)

अर्थ—पर्वतशिखरपर चढ़कर चारों ओर देखा (तो) पृथ्वीके एक बिलमें एक कौतुक देखा। चक्रवाक, बगले और हंस उड़तेहैं † † और बहुतसे पक्षी उसमें प्रवेश करतेहैं (घुसतेहैं)। पर्वत से पवनसुत

† बहुतेक ‡ कर—(ना० प्र०), कै—(भा० द०, छ०, का०)।

† † महादेवदत्तजी—हंस और बक एकसाथ नहीं रहते अतः यहाँ अर्थ है कि 'चक्रवाक बकते (बोलते) हैं और हंस उड़तेहैं। वा, दोनों बोलते और उड़ते-हैं। बक=बकना, यथा-'भृगुपति बकहिं कुठार उठाये'। यहाँ यदि कहाजाय कि अरण्यकांडमेंभी तो हंस और बकको साथ कहाहै तो उसका उत्तर यह है कि वहाँ 'स-वाले चरणसे 'बक'-वाले चरणतक तीन चरणोंका अन्तर देकर तब बकका निवास लिखाहै इसलिए वह प्रमाण असंगत है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उतरकर आए और सबको लेजाकर वह बिल दिखाया। सबने हनुमान्‌जीको आगे करलिया और बिलमें घुसे, देर न की।

टिप्पणी—१ (क) 'चढ़ि गिरि सिखर०' इति। वन सघन है, यथा-'घन गहन भुलाने', कुछ देख नहीं पड़ताथा, अतएव पर्वतपर चढ़े। और, पर्वतपरभी वन था अतएव उसके शिखरपर चढ़े। (ख) 'कौतुक' इति। रंग बिरंगके जाति जातिके पक्षियोंका उड़ना और बिलमें घुसना या उससे निकलना कौतुक ही है।

२—चक्रवाक, बक और हंस ये जलपक्षी हैं, इसीसे इनके पखने भीगे हैं। ये जलपक्षी उड़कर बाहर आतेहैं और बाहरके जलके निमित्त भीतर जातेहैं। अतएव यहां जल अवश्य है, अनुमान प्रमाण अलंकार है।

३—पहाड़ परसे शीघ्रतासे उतरे और शीघ्र सबको लेजाकर दिखाया इसीसे 'पवनसुत' नाम दिया। सबको दिखाया क्योंकि सब व्याकुल हैं, बिवर देखकर सबकी व्याकुलता कम होगी। दूसरे, यह कौतुक है सबको देखनेकी चाह होगी।—[पं०—तीसरे, बुद्धिमानोंकी रीति है कि अपना अनुमान दूसरोंके सामने उनकीभी सम्मति लेनेके लिए पेश करतेहैं। सर्वसंमतसे पास होनेपर अनुमानित कार्य पर आरूढ़ होतेहैं। नोट— कौतुक इससे कि बक और हंस दोनों एक ठौर नहीं होते, जहाँ बगले होतेहैं उस सरके निकट भी हंस नहीं जाते। और भीतर जाते समय तो पखने सूखे होतेहैं पर बाहर आनेपर भीगे दिखातेहैं; इससे जलाशयका अनुमान करतेहैं।] *

* १ (वा० ५०)—'अस्माच्चापिबिलाद्धंसाः क्रौञ्चाश्च सह सारसैः ॥१५॥ जलाद्राश्चक्रवाकाश्च निष्पतन्ति सर्वशः। नूनं सलिलवानत्र कूपो वा यदि वाह्रदः ॥१६॥' अर्थात् हनुमान्‌जीने सबसे कहा कि इस बिलसे सारसोंके साथ हंस क्रौंच चक्रवाक आदि जलसे भीगे हुए निकले हैं। अतः निश्चय ही यहाँ जलाशय है, चाहे कुआं हो चाहे तालाब। पुनः यथा अध्यात्मे-'आर्द्रपक्षान् क्रौंच हंसान् निःसृतान् ददृशुस्ततः। अत्रास्ते सलिलं नूनं प्रविशामो महागुहाम् ॥' अर्थात् तब हनुमान्‌जीने भीगेहुए पक्षोंवाले क्रौंच और हंसोंको निकलते हुए देख अनुमान किया कि यहाँ निश्चयही जल है, इस महागुहामें हम सब प्रवेश करें। २—कौतुक, यथा—'जेहि सर काक कंक बक सूकर क्यों मराल तहँ आवत' इति विनये। स्मरण रहे कि पंपासरमेंभी यह अद्भुतता दिखायीगईहै, वहाँभी 'चक्रवाक बक खग समुदाई' कहा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

४ (क)—हनुमान्‌जीको आगे करनेका भाव यह है कि विवरमें अँधेरा है, वानरोंको उसमें जाते भय लगताहै, उनको साहस न हुआ कि उसमें प्रवेश करते और हनुमान्‌जी भारी पराक्रमी हैं अतः उन्हें आगे किया। (ख) 'पैठे बिबर' अर्थात् सब उसमें घुसे। इससे जनाया कि वह विवर बड़ा विस्तृत है। बिलम्ब न किया क्योंकि अत्यन्त प्यासे हैं * † (ग) हनुमान्‌जीको आगे करके सबने विवरमें प्रवेश किया, इस कथनसे मुख्यता वानरोंकीही हुई; क्योंकि हनुमान्‌जीको कोई प्रयोजन विवरमें प्रवेश करनेका न था इन्हें तो प्यास लगी न थी, प्रयोजन तो अन्य सब वानरोंकाही था जो प्यासे थे। इसीसे कविने विवरप्रवेशमें वानरोंकी प्रधानता कही। यदि कहते कि वानरोंको लेकर हनुमान् 'पैठे' तो हनुमान्‌जीकी प्रधानता होती। (घ) 'हनुमंत' अर्थात् जिनकी हनु (ठोढ़ी) ने इन्द्रके वज्रका अभिमान चूर्णकरडालाथा, ऐसे बलवान्‌को सबने आगे करलिया, यथा—'जाकी चिबुक चोट चूर्न कियो रदमद कुलिस कठोरको।—(विनय)।

मा० म०—यहाँ बिलंबन कीन्हा' का 'देर न की' यह अर्थ नहीं है क्योंकि उस विवरमें जानेकेलिए शाप था कि जो विना एक दूसरेको पकड़े उसमें जायगा वह मृत्युको प्राप्त होगा। अतएव एकदूसरेका 'बिलंबन' अर्थात् अवलंब लेकरगए, यह अर्थ है।

---

* † 'अन्योन्यं संपरिष्वज्य जग्मुर्योजनमन्तरम्। ते नष्टसंज्ञास्तृषिताः संभ्रान्ताः सलिलार्थिनः ॥२२... आलोकं ददृशुर्वीरा निराशा जीविते यदा... ॥२४॥' (वा० स० ५०)। अर्थात् जलकी इच्छा करनेवाले प्यासे, चेष्टारहित और अत्यन्त भ्रान्त वे सब वानर एक दूसरेको पकड़ेहुए एक योजनतक उसमें चलेगये...जीवनसे जब निराश होनेलगे तब उन्हें प्रकाश देखपड़ा। २—'इत्युक्त्वा हनुमानग्रे प्रविवेशतमन्वयुः। सर्वे परस्परं धृत्वा बाहून्बाहुभिरुत्सुकाः ॥' (अध्यात्म ६। ३६)। अर्थात् ऐसा कह एक दूसरेकी बाहु पकड़ेहुए जलकेलिए उत्सुक वे सब हनुमान्‌को आगे करके बिलमें प्रविष्ट हुए। ३—आगे इससेभी किया कि ये व्याकुल नहीं हैं, इन्होंने बिलभी दिखायाथा इत्यादि। वा, हनुमान्‌जीके पास मुद्रिका होनेसे इनके शरीरसे अँधेरेमें प्रकाश होजाताथा, अतः प्रकाशकेलिए इनको आगे किया—ऐसाभी कोई २ कहतेहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दीख जाइ उपबन बर सर बिगसित बहु कंज ।
मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तपपुंज ॥◊२४॥

अर्थ—जाकर देखा कि वहाँ उत्तम उपवन और सुन्दर तालाब है जिसमें बहुतसे कमल खिले हुए हैं और वहीं एक सुन्दर मन्दिर है जिसमें एक बड़ी तपस्विनी स्त्री बैठी है।

टिप्पणी १—'दीख जाइ' से जनाया कि पहले अन्धकार रहा, जब बहुत दूर गए तब पहुँचे। यथा अध्यात्मे—'अन्धकार महद्दूरं गत्वा पश्यन्कपीश्वराः'। २—'बर' और 'रुचिर' विशेषण देकर वाल्मीकि आदि रामायणोंमें दिए हुए वर्णनको सूचित किया है। * ३ तपपुंज= तेजकी राशि। यथा—'बिनु तप तेज कि कर बिसतारा'। उपबन=वह बाग जो घरके निकट जी बहलानेके लिए बनाया जाता है।

† 'सर बर बिकसित'—(छ०, का०)। 'बिकसित'—(ना० प्र०)।

* १ यथा वा० स० ५०—'ततस्तं देशमागम्य सौम्या विविमिरं वनम् ॥ २४॥ ददृशुः काञ्चनान्वृक्षान्दीप्तवैश्वानरप्रभान्। सालांस्तालांस्तमालांश्च पुंनागान्वञ्जुलान्धवान् ॥२५॥ चम्पकान्नागवृक्षांश्चकर्णिकारांश्च पुष्पिताम्। स्तबकैः काञ्चनैश्चित्रै रक्तैः किसलयैस्तथा ॥२६॥ आपीडैश्च लताभिश्च हेमाभरणभूषितान्। तरुणादित्यसंकाशान्वैदूर्यमय वेदिकान् ॥२७॥ विभ्राजमानान्वपुषा पादपांश्च हिरण्मयान्। नीलवैदूर्यवर्णांश्च पद्मिनीः पतगैर्वृताः ॥२८॥ महद्भिः काञ्चनैर्वृक्षैर्वृतं बालार्कसंनिभैः। जातरूपमयैर्मत्स्यैर्महद्भिश्चाथ पङ्कजैः ॥ ॥२९॥ नीलनीस्तत्र ददृशुः प्रसन्नसलिलायुताः... पुष्पितान्फलिनोवृक्षान्प्रवालमणिसंनिभान् ॥३२॥' अर्थात् प्रज्वलित अग्निके समान सोनेके ताल, शाल, तमालादि वृक्ष देखे जिनमें सुवर्णमय गुच्छे लगेथे। गुच्छों और लताओंसे युक्त स्वर्णाभूषणयुक्त वैदूर्यकी वेदीवाले सुन्दर चमकीले वृक्ष देखे। नीलवैदूर्यसदृश तालाब, बालसूर्यसदृश स्वर्णके वृक्षों और स्वर्णकी मछलियों और कमलोंसेयुक्त स्वच्छ तालाब देखे। मूँगेके समान फलफूलवाले वृक्ष देखे।

२—'रुचिर मंदिर'—सोनेकी खिड़कियाँ, मोतीकी जाली, सोने चाँदीके वैदूर्यमणियुक्त घंट ऐसे उत्तम घर देखे। सोनेके भ्रमर, मणि, सुवर्णसे चित्रित अनेक शयन और आसन देखे। इत्यादि —(श्लोक ३१-३६)।

३—'नारि तपपुन्ज'—'ददृशुर्वानराः शूराः स्त्रियं कांचिददूरतः। तां च ते ददृशुस्तत्र चीरकृष्णजिनाम्बराम् ॥ तापसीं नियताहारां ज्वलन्तीमिव तेजसा।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दूरि ते ताहि सबन्हि सिरु नावा।
पूछे निज वृत्तांत सुनावा ॥§२४ (१)
तेहि तब कहा करहु जल पाना।
खाहु सुरस सुंदर फल नाना ॥ ,, (२)
मज्जन कीन्ह मधुर फल खाए।
तासु निकट पुनि सब चलि आए ॥ ,, (३)

अर्थ—सबने उसे दूरसे प्रणाम किया और उसके पूछने पर, अपना समाचार (सब हाल हनुमान्‌जीने) सुनाया। (जब सब हाल कहकर कि किष्किन्धासे यहाँ क्योंकर आना हुआ और यह कि सब प्याससे अत्यन्त व्याकुल हैं, इस विवरका कौतुक देख यहाँ आए) तब उसने (सबसे पहले यही) कहा कि जलपान करो (पियो) और अनेक रसीले सुन्दर फल खाओ। (आज्ञा पाकर) सबने स्नान किया, मीठे फल खाए और फिर उसके पास सब चले आए।

टिप्पणी १—'दूरसे प्रणाम किया', इस कथनसे भय और भक्ति दोनों दिखाए †। भयसे उसके पास न गए कि कहीं पास जानेसे अपना अनादर समझकर शाप न देदे और तपस्विनी जानकर प्रणाम किया। २—यहाँ वानर बहुत हैं, अतः 'सिरनाए' और 'सनाए' बहुवचन पद देना चाहिए था; पर यहाँ एक-वचन पद दिए हैं। कारण यह है कि यहाँ वानर समुदायका प्रणाम एक साथ कहाहै। जहाँ समूह होताहै वहाँ बहुवचन और एकवचन दोनों प्रकारका प्रयोग

—(५०। ३८, ३९)। अर्थात् शूरवीर वानरोंने कुछ दूरपर एक स्त्री देखी। वह काले मृगछालके सुन्दर वस्त्र पहने थी। तपस्विनी थी, नियमसे आहारकरनेवाली और अपने तेजसे प्रकाशित थी।

† १ यथा—'विस्मिता हरयस्तत्र व्यवतिष्ठन्त सर्वशः'—(वा० ५०।३९) अर्थात् सब वानर देखकर विस्मित होकर खड़े होगए। पुनः, यथा—'प्रणेमुस्तां महाभागां भक्त्या भीत्या च वानराः'। अर्थात् वानरोंने कुछ भक्तिसे और कुछ भयसे उस महाभाग्यवती स्त्रीको प्रणाम किया—(अध्यात्म ६।४१)। २ पं०—भय यह था कि तपस्विनी है, स्त्री है, पास जानेसे शाप न देदे, वा, कोई छलसे इस वेषमें न बैठा हो। वा, पर-स्त्रीको माता या बहिनकी नाईं सम्मानकरके प्रणाम किया। ३ पां०—तेजसे निकट न जासके।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होताहै। यथा—'नगर लोग सब व्याकुल धावा'। पुनः, दूसरे चरणमें यदि 'सुनाए' क्रिया देते तो समझाजाता कि सबने सुनाया पर ऐसा है नहीं। केवल हनुमान्‌जीने सुनाया और सब तो व्याकुल हैं, और हनुमान्‌जीही अगुआ हैं। अतएव दोनों जगह एकवचनका प्रयोग हुआ।

३—(क) पहिले जल पीनेको कहाक्योंकि हनुमान्‌जीसे सुनाहै कि सब विना जलके मरणप्राय हैं। यदि कहा होता कि भूखेहैं तो पहिले फल खानेको कहती। पर अगली चौपाई में 'मज्जन कीन्ह मधुर फल खाए' ऐसा लिखतेहैं, इसमें जलपीना नहीं कहा। इससे जान पड़ता है कि स्नान करते समय जलभी पीलिया इसीसे जल पीना अलग न लिखा। धूपसे सब तपेहुए और श्रमित थे; स्नान करनेसे श्रम दूर होताही है, यथा—'मज्जन कीन्ह पंथ श्रम गएऊ'। इसीसे प्रथम स्नान किया; और प्यासे थे इसीसे पहले जलाशयपर आए; नहीं तो पहिले फल खाते।—[पं०—कपिकी रुचि स्नानकी विशेष होतीही है। वा, भक्त हैं स्नान बिना भोजन कैसे करें।]

(ख)—'तासु निकट पुनि सब चलि आए' इति। प्रथम बिना जाने भयसे दूरसेही प्रणाम कियाथा अब उसका शान्त स्वभाव जानकर निकट आए। (ग)—'चलि आए' से जनाया कि धीरे धीरे चलकर आए, दौड़कर नहीं, जिसमें उसको बुरा न लगे, वह क्रोध न करे।

नोट—१—'पूछे निज वृत्तान्त सुनावा'। अध्यात्ममें ऐसाही क्रम है। आतेही तपस्विनीने पूछा कि तुम कौन हो, किसके दूत हो, क्यों मेरे स्थानमें आए? यथा—'दृष्ट्वातन्वानरान्देवी प्राह यूयं किमागताः॥ ४१॥ कुतो वा कस्य दूता वा मत्स्थानं किं प्रधर्षथ।।' यह सुनकर हनुमान्‌जीने उत्तरमें "दशरथजी महाराजके पुत्र और वनवास से लेकर यहाँ तकका सब वृत्तान्त कह सुनाया। यथा'—तच्छ्रुत्वा हनुमानाह शृणु वक्ष्यामि देवि ते ॥४२॥" इत्यादि॥ वाल्मीकिमें क्रम उलटा है वहाँ पहले हनुमान्‌जीने उससे उसका वृत्तान्त पूछाहै और जलपानादिके पश्चात् उसने इनसे।

२—'निकट सब चलि आए' क्योंकि अब भय नहीं है। दूसरे हनुमान्‌जीने अपना वृत्तान्त कहचुकनेपर उससे उसका वृत्तान्त पूछाथा। पर उसने सबको भूखप्याससे व्याकुल सुनकर कहा कि पहले फल

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

खाकर जलपान करके श्रम दूर करके आओ तब अपनी कथा कहूँ। यही कारण है कि, और इसी लालसासे, वे निकट आए। †

तेहिं सब आपनि कथा सुनाई।
मैं अब जाब जहाँ रघुराई॥ ◊ २४ (४)
मूँदहु नयन बिबर तजि जाहू।
पैहहु सीतहि जनि पछिताहू॥ ,, (५)

अर्थ—उसने अपनी सब कथा सुनाई और कहा कि अब मैं वहाँ जाऊँगी जहाँ रघुराई रामचन्द्रजी हैं। (इस बिलमें जो आजाताहै वह बाहर नहीं निकल सकता। मैं अपने तप बलसे निकल सकतीहूँ और तुम्हें निकाल सकतीहूँ। तुम बिना आँख मूँदे नहीं निकल सकते अतएव) तुम आँखें बन्दकरो और बिलको छोड़कर बाहर जाओ, तुम सीताजीको पाओगे, पछताओ नहीं।

टिप्पणी १ (क)—'मैं अब जाब' अर्थात् मेरे यहाँ रहनेकी अवधि इतनीही थी। मेरी सखी हेमाने मुझे आज्ञा दीथी कि त्रेतामें रामजी वनमें आयंगे, उनकी स्त्री खोजनेकेलिए वानर तुम्हारे यहाँ आयेंगे। तुम उनकी पूजा करके रामजीके पास जाना। (ख) 'आपनि कथा सुनाई', इससे अनुमान होताहै कि वानरोंने उससे पूछाथा कि आप यहाँ कैसे रहतीहैं और कौन हैं *। तब उसने कहा कि तुम जल पीलो फल खालो तब स्वस्थ होनेपर मैं सब कहूँगी। इसीसे फल खाकर जब सब आए तब कथा कह सुनाई।

---

† यथाध्यात्मे—'यथेष्टं फलमूलानिजग्ध्वापीत्वामृतं पयः॥ ४८॥ आगच्छ ततो वक्ष्ये मम वृत्तान्तमादितः। तथेति भुक्त्वा पीत्वा च हृष्टास्ते सर्वे वानराः॥४९॥ देव्या संमीपं गत्वा ते बद्धांजलिपुटाः स्थिताः। ततः प्राह हनूमंतं योगिनी दिव्य दर्शना॥५०॥"—(सर्ग ६)।

* यथा—'त्वंवा किमर्थमत्रासि का; वात्वं वदनः शुभे'—(अध्यात्म ६।४७)। पुनः, यथा—'ततो हनूमान्गिरि सन्निकाशः कृताञ्जलिस्तामभिवाद्य वृद्धाम्। पप्रच्छ का त्वं भवनं बिलं च रत्नानि चे मानि वदस्य कस्य॥'—(वा० ५०।४०)। इत्यादि। अर्थात् हाथ जोड़कर हनुमान्जीने पूछा कि आप कौन हैं, यह बिल और घर किसके हैं, ये रत्न किसके हैं? यह सब आप कहें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—'पैहहु सीतहि', यह तपस्विनीका आशीर्वाद है। इतनाही कहा, पता न बताया। क्योंकि उसे भविष्यका ज्ञान है, वह जानती-है कि मेरे पहुँचानेसे ये सब समुद्रतीर पहुँच जायंगे, वहाँ संपाती द्वारा इनको सीताजीका पता लगेगा और उसके पंख जमेंगे।——(यहाँ पता बतादेनेसे संपातीके कार्यमें विघ्न होना सम्भव है। पुनः, चन्द्रमा ऋषिका वचन सत्य करनाहै)। ३—जिस दिन विवर-में वानर गए उसी दिन वानरोंको लौटनेकेलिए मिलीहुई एक मासकी अवधि पूरी हुई; तब सब वानर शोचवश हुए और स्वयं-प्रभासे उन्होंने प्रार्थनाकी कि हमें बिलके बाहर करदो, सीताकी सुध-भी न मिली और अवधि पूरी बीतगई। इसीपर उसने कहा कि 'मूँदहु नयन बिबर तजि जाहू।०'।—यह कथा वा० ५२ में है †। वानरोंका चिन्तित होना, पश्चात्ताप करना, इत्यादि 'जनि पछिताहू' पदसे जनादियाहै।

तपस्विनी का वृत्तान्त

पूर्वकालमें हेमानामकी एक कन्या विश्वकर्माकीथी जो दिव्य रूप और नादकलामें प्रवीण थी। अपने नृत्य और गानसे उसने महादेवजी को प्रसन्न करलियाथा। महेशजीने प्रसन्न होकर उसे एक बड़ा दिव्य पुर प्रसादमें दिया जिसमें वह १० किरोड़ वर्ष रही। उस हेमाकी मैं सखी हूँ, मोक्षकी इच्छासे विष्णु भगवान्के आराधनमें तत्पर हूँ।

---

† 'शरणं त्वां प्रपन्नाः स्मः सर्वे वै धर्मचारिणीम् ॥२१॥ यः कृतः समयो ऽस्माभु सुग्रीवेण महात्मना। स तु कालो व्यतिक्रान्तो बिले च परिवर्तताम् ॥२२॥ सा त्वमस्माद्बिलादस्मानुत्तारयितुमर्हसि... त्रातुमर्हसिनः सर्वान्सुग्रीव-भयशङ्कितान्। महच्चकार्यमस्माभिः कर्तव्यं धर्मचारिणि ॥२४॥...जीवता दुष्करं मन्ये प्रविष्टेन निवर्तितुम्। तपसः सुप्रभावेण नियमोपार्जितेन च ॥२६॥ सर्वानेव बिलादस्मात्तारयिष्यामि वानरान्। निमीलयत चक्षूंषि सर्वे वानरपु-ङ्गवाः ॥२७॥ नहि निष्क्रमितुं शक्यमनिमीलित लोचनैः। ततो निमीलिताः सर्वे सुकुमाराङ्गुलैः करैः ॥२८॥' अर्थात् हम सब तुम्हारी शरण हैं, सुग्रीवकी-दीहुई अवधिभी इस बिलमें बीतगई। आप हमें इसके बाहर करके हमलोगोंके प्राणोंकी रक्षा करें। उसने कहा कि जीतेजी यहाँसे निकलना कठिन है पर धर्म-पालन और तपस्याके प्रभावसे तुम्हें बाहरकरदूँगी बिना आँखें बन्दकिए बाहर निकलना कठिन है। अतएव नेत्र बन्द करो।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मेरा स्वयंप्रभा नाम है, मैं दिव्य नामक गंधर्वकी कन्या हूँ। हेमा जब ब्रह्मलोकको जानेलगी तब मुझसे उसने कहा कि तू अकेली रहकर यहाँ तपस्या कर, त्रेतायुगमें नारायण दशरथपुत्र होंगे, भूभार हरणके लिए वनमें विचरेंगे। उनकी भार्याको ढूँढते हुए वानर यहाँ आयेंगे। तब तुम उनका पूजन करके रघुनाथजीके पास जाकर उनकी स्तुति करना, तब तुम योगियोंको गम्य विष्णुलोकको जाओगी।—(अध्यात्म सर्ग ६।५१-५७ तक)

वाल्मीकिमें और इसमें भेद है। वा० ५१ में यह कथा यों है-महा तेजस्वी मय नामक एक मायावी असुर था। उसने इस सारे सुवर्ण-मय वनको अपनी मायासे निर्माण किया। विश्वकर्मा नामके एक दानवश्रेष्ठ हुए; उन्होंने यह दिव्य सोनेका उत्तम भवन बनाया। बड़े घोर वनमें उन्होंने हज़ारवर्ष तप करके ब्रह्मासे वरदानमें शुक्राचार्यकी समस्त शिल्पविद्या रूपी संपदा प्राप्त करली। इस महावनमें कुछ काल (मय) सुखपूर्वक रहा फिर हेमा नामक अप्सरापर आसक्त होनेपर इन्द्रने उसे मारडाला। तब ब्रह्माने यह घर और उत्तम वन हेमाको देदिया। मैं मेरुसावर्णकी कन्या स्वयंप्रभा हूँ। हेमा मेरी सखी है, नृत्य-गानमें निपुण है, मैंने उसको वर दियाहै अतः मैं उसके घरकी रक्षा करतीहूँ। (श्लो० १० से १८ तक)।

करुणासिंधुजी एवं बाबा हरीदासजीका मत है कि "यह वही विश्व-मोहिनी है जिसने नारदको मोहित कियाथा। नारद भक्त हैं; भागवता-पराधका उसेभी फल मिला। भगवान्‌ने उससे प्रायश्चितकेलिए तप करनेको कहा। इत्यादि।"—पर हमें इसका कोई प्रमाण नहीं मालूम।

नयन मूँदि पुनि देखहिं बीरा।
ठाढे सकल सिंधु के तीरा॥ § २४ (६)
सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा।
जाइ कमलपद नाएसि माथा॥ ,, (७)
नाना भाँति बिनय तेहिं कीन्ही।
अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही॥ ,, (८)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बदरीबन कहँ सो गई प्रभु अज्ञा धरि सीस।
उर धरि रामचरन जुग जे बंदत अज ईस ॥ २५

अर्थ—आँखें बंद करके फिर सब वीर आँख खोलकर क्या देखते-हैं कि सब समुद्रके तीर खड़ेहैं। (जब सब सिंधुतीर पहुँचगए) तब स्वयंप्रभा वहाँ गई जहाँ रघुनाथजी हैं। जाकर उसने चरण-कमलोंमें माथा नवाया और बहुत प्रकारसे उसने विनती की। प्रभुने उसे अनपायिनी (अचल, अविनाशिनी) भक्ति दी। प्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य्य करके (मानकर) और रामजीके युगल चरणोंको, जिनकी वंदना ब्रह्मा और महेश करतेहैं, हृदयमें धारण करके वह (स्वयंप्रभा) बद्रिकाश्रम को गई † ।

टिप्पणी—१ (क) 'नयन मूँदि पुनि देखहिं' से जनाया कि पलमात्रमें उसने सबको समुद्रतटपर पहुँचादिया। (ख) 'देखहिं बीरा' का भाव कि जो अपनी वीरतासे बिवरके बाहर न होसकतेथे वेही वीर नेत्र बन्दकरतेही बिना परिश्रम बाहरही नहीं किंतु समुद्रतीरपर पहुँचगए। इससे वीरोंकी वीरतासे तपस्विनीके तपका प्रभाव अधिक जनाया। (ग) 'ठाढ़े सकल' से सूचित किया कि आँख बंद करते समय सब खड़ेहीथे वैसेही समुद्रपर पहुँचे।—यहाँ प्रथम विशेष अलंकार है। २ (क)—नाना भाँति विनय करनेपर प्रभुने अनपायिनी भक्ति दी, इससे जनाया कि इसी भक्तिकी प्राप्ति केलिए उसने अनेक प्रकारसे विनतीकी थी। * (ख) तपस्विनीने बड़ा तप कियाथा

† १ यथा—"भवत्वेवं महाभागे गच्छ त्वं बदरीवनम्। तत्रैव मां स्मरंतीत्वं त्यक्त्वेदं भूतपंचकम्। मामेव परमात्मानं अचिरात्प्रतिपद्यसे ॥८३॥" अर्थात् ऐसा ही हो। अब तू बदरीवनको जा, वहाँ मेरा स्मरण करती हुई इस पञ्चभूत शरीर को त्यागकर मुझ परमात्माको शीघ्रही प्राप्त होगी। २—पाण्डेजी बदरीबनका अर्थ प्रयाग लिखतेहैं।

* यथा—'प्रदक्षिणा करके बहुत बार प्रणाम किया और प्रेमपूर्वक गद्गद कंठसे स्तुतिकी। हे राजराजेन्द्र! मैं आपकी दासी हूँ, दर्शनार्थ आई हूँ। बहुत हजारों वर्षों दुःख सहकर कठिन तप जो मैंने किया वह सफल हुआ कि मायासे परे आपका मैं दर्शन कर रही हूँ। आप मायासे परे, अलक्ष्य, चराचरमें एकरस व्याप्त अपनी योगमायासे मनुष्यरूपधारी हैं। नटकी तरह अनेक रूप धारण करते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसका फल रामभक्तदर्शन मिला, इनके दर्शनसे रामजीका दर्शन हुआ और रामदर्शनसे अनपायिनी भक्तिकी प्राप्ति हुई।

३ (क)—'प्रभु अज्ञा धरि सीस'। आज्ञा शिरोधार्य करनेका कारण 'प्रभु' शब्दसे जनाया। अर्थात् ये 'प्रभु' हैं, इससे इनकी आज्ञा उल्लंघन करनेयोग्य नहीं है अवश्य शिरोधार्य करनी चाहिए। शिरोधार्य करना आदर है, यथा—'नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं॥

हो और स्वतंत्र हो, अज्ञानियोंको अदृश्य हो, महाभागवतोंको भक्तियोगका विधान करनेकेलिए अवतीर्ण हुएहो; भला मैं आपके यथार्थ रूपको कैसे जानसकतीहूँ। हे राम! आपका यह दिव्यरूप सदा मेरे हृदयसदनमें प्रकाश करतारहे; मोक्षके देनेवाले युगलचरणकमलोंके दर्शन मुझे आपने दिए। जो स्त्री पुत्र धन इत्यादि लोक-ऐश्वर्य्यके अभिमानी हैं वे आपका नाम लेनेयोग्य नहीं। निष्किंचनके आपही धनरूप हैं। आप निर्गुण और दिव्यगुणोंके आयतन हैं, आपका आदि मध्य अंत नहीं। आप कालरूप हैं, जीवमात्रमें एकरस विचरतेहैं, आप परमपुरुष हैं, आपके चरित्र कोई नहीं जानता, आप शत्रु-मित्र-उदासीन-रहित हैं पर जिसका जैसा भाव है आप उसको वैसाही देखपड़तेहैं। आप अकर्ता, अजन्मा, ईश्वर हैं। आपके अवतारके लोक अनेक कारण कहतेहैं। जो आपका चरित गातेहैं वे आपके पदकमलको देखतेहैं। आपकी प्रभुता मैं कैसे जानसकतीहूँ।' —(अध्यात्म ६। ६० ७७),—यह स्तुति सुनकर रामजी प्रसन्नहोकर बोले कि क्या चाहती हो, माँगलो। तब उसने माँगा—

'यत्र कुत्रापिजातायानिश्चलां भक्ति देहि मे प्रभो ॥७९॥ त्वद्भक्तेषु सदा संगो भूयान्मे प्राकृतेषुन। जिह्वा मे राम रामेतिभक्त्या वदतु सर्वदा ॥८०॥ मानसं श्यामलंरूपं सीतालक्ष्मणसंयुतम्। धनुर्बाणधरं पीतवाससं मुकुटोज्वलम् ॥ ८१॥ अंगदैर्नूपुरैर्मुक्ताहारैः कौस्तुभकुंडलैः। भांतं स्मरतु मे राम वरं नान्यं वृणे प्रभो ॥८२॥ अर्थात् हे प्रभो! जहाँभी मेरा जन्म हो वहाँ आपकी निश्चल भक्ति मुझे प्राप्त रहे, आपके भक्तोंका सदा संग रहे और प्राकृतोंका संग न हो, मेरी जिह्वा रामराम भक्तिपूर्वक निरंतर कहा करे। श्रीसीतालक्ष्मण सहित यह आपका श्यामलस्वरूप मेरे हृदयमें सदा वासकरे। धनुषबाण धारण किएहुए, अंगमें पीतवस्त्र, सिरपर परमोज्वल मुकुट, बाजूमें अंगद, चरणोंमें नूपुर, उरमें कौस्तुभ-मुक्ताहार, कानोंमें कुण्डल इत्यादि आभरणधारण किएहुए रूपका हृदयमें सदा ध्यान करूँ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सिरधरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा॥ मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी। बिनहि विचार करिय सुभ जानी॥'—(ब० ७६)। (ख)—'जे बंदत अज ईस'। भाव कि ब्रह्मा और महेश सबसे बड़े देवता हैं, ये जिन चरणोंकी वन्दना करतेहैं उन्हीं का साक्षात् दर्शन इसने किया और उन्हें हृदयमें धारण किया।*

विवर-प्रवेश-प्रकरण समाप्त हुआ

'संपाती-मिलाप'—प्रकरण

इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं।
बीती अवधि काज कछु नाहीं॥ § २५ (१)
सब मिलि कहहिं परसपर बाता।
बिनु सुधि लिए करब का भ्राता॥ ,, (२)

अर्थ—यहाँ वानर मनमें विचारतेहैं कि अवधि बीतगई (विवर-प्रवेश अंतिम दिन हुआथा अब दूसरा मास प्रारम्भ हुआ) और काम कुछ न हुआ। † सब मिलकर आपसमें एक दूसरेसे यह बात कहतेहैं

---

* ऐसाभी कहतेहैं कि 'अज ईश' में कुल संसार आगया। इस तरह कि ब्रह्मा आदिसृष्टिके करनेवाले और शिवजी संहार करनेवालेहैं; सभी प्राणी जन्म मरणके फंदेमें हैं। वा 'अज' से प्रवृत्ति मार्गवालों और 'ईश' से निवृत्तिमार्गवालोंको सूचित किया।

† "हुमान्वासन्तिकान्दृष्ट्वा बभूवुर्भयशङ्किताः॥ ४॥ ते वसन्तमनुप्राप्तं प्रतिवेद्य परस्परम्। नष्ट सन्देशकालार्था निपेतुर्धरणीतले ॥५॥...मासः पूर्णो-विलस्थानां हरयः किं न बुध्यत॥८। वयमाश्वयुजेमासिकालसंख्याव्यवस्थिताः। प्रस्थिताः सोऽपिचातीतः किमतः कार्यमुत्तरम् ॥९॥"—(वा० ५३)। अर्थात् विलसे निकलनेपर वसन्तके फूलेहुए वृक्षोंको देखकर वे शंकित हुए। परस्पर यह कहकर कि वसन्त आगया, सुग्रीवकी आज्ञाका समय बीत जानेसे वे पृथ्वीपर गिरपड़े...महाप्राज्ञ युवराज बोले कि बिलहीमें हमलोगोंका मास पूरा होगया, क्या यह आपको मालूम नहीं है। हमलोग कार्तिकमें अवधि करके चले, वह अवधि बीतगई। अब क्या करना चाहिए?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कि—भाई ! सुध लिए बिना क्या करेंगे ? (अर्थात् कोई बचनेका उपाय नहीं समझ पड़ता। अवधि बीत गई अब तो सुध मिले तभी प्राण बच सकें।

कह अंगद लोचन भरि बारी।
दुहु प्रकार भइ मृत्यु हमारी॥ ◊ २५ (३)
इहाँ न सुधि सीता कै पाई।
उहाँ गए मारिहि कपिराई॥ ,, (४)
पिता बधे पर मारत मोही।
राषा राम निहोर न ओही॥ ,, (५)

अर्थ—नेत्रोंमें जल भरकर अंगदने कहा कि दोनों प्रकारसे हमारी मृत्यु हुई—यहाँ सीताकी सुध नहीं मिली * और वहाँ जानेसे कपिराज मारेगा। वह तो मुझे पिताके वध होनेपरही मारडालता, पर रामजीने मुझे रखलिया (मेरी रक्षा की)। इसमें सुग्रीवका कुछ उपकार वा एहसान नहीं है।

टिप्पणी १—अवधि बीतजानेसे वानरोंके मन, वचन और कर्ममें शोच दिखरहा है। मनमें सोच उत्पन्न हुआ, यथा—'इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं॥' फिर मनसे बचनमें शोच आया, यथा—'सब मिलि कहहिं परसपर बाता'; और वचनसे फिर कर्ममें आया, यथा—'बिनु सुधि लए करब का भ्राता'। २—'इहाँ न सुधि सीता कै पाई।०' अर्थात् जो काम हमें दियागयाथा वह हमसे न बन पड़ा तो अब अवश्य वध होगा इससे यहीं प्रायोपवेशन करके मरजायंगे, नहीं तो वहाँ जानेपर सुग्रीव वध करेंगे। ३—पिताके वधपर मारते, क्योंकि नीति है कि 'रिपु रिन रंच न राखब काऊ' अर्थात् शत्रुका वंशही निर्मूल करदेना उचित है। ‡

* सीतानाधिगतास्माभिर्नकृतं राजशासनम्। यदि गच्छामि किष्किन्धां सुग्रीवोऽस्मान्हनिष्यति॥' अर्थात् हमलोगोंने सीताको ढूँढ़ न पाया, राजाज्ञाका निर्वाहभी न किया, यदि किष्किन्धाको जाऊँ तो सुग्रीव हमको मार डालेगा।—(अध्यात्म ७)।

‡ १—'विशेषतः शत्रुसुतं मां मिषान्निहनिष्यति। मयि तस्य कुतः प्रीति-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दीनजी—यदि अवधि बीतजाने परभी सीताजीका समाचार मिलजाता तो वहाँ जाकर सुग्रीवके हाथों मरना सार्थक होता, पर सीताजीका समाचारभी न मिला और अवधिभी बीतगई; अतएव दोनों प्रकारसे हमारी मृत्यु हुई, क्योंकि सुग्रीवने कहाथा—'अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाये। आवइ बनइ सो मोहि मराये॥' इसमें दो शर्तें हैं—एक समय बिताकर आवे, दूसरे बिना समाचार पाये आवे, वे दोनों मारे जायंगे—(अन्य महानुभाव इस विचारसे सहमत नहीं हैं—मा० सं०)—इस शर्तके अनुसार यदि अवधि न बीतती तो 'बिना सुधि पाये' जानेके कारण दूत माराजाता, पर अब तो दोनों प्रकारसे मृत्यु निश्चित होगई, क्योंकि सीताकी सुधि नहीं मिली इस कारणसे और दूसरे अवधि बीत गई इस कारणसे, यही 'दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी' का भाव है।

पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं।
मरन भएउ कछु संसय नाहीं॥ २५ (६)
अंगदबचन सुनत कपिबीरा।
बोलि न सकहिं नयन बह † नीरा॥ ,, (७)

रहं रामेण रक्षितः। इदानीं रामकार्यं मे न कृतं तन्मिषं भवेत् तस्य मद्धन नेनन सुग्रीवस्यदुरात्मनः॥' (अध्यात्म ७) अर्थात् विशेष करके मुझे तो अपने शत्रुका पुत्र जानकर बहानेसे मारेहीगा, मेरे ऊपर उसकी प्रीति कहां? अब तक श्रीरामचन्द्रजीसे मैं रक्षित रहा, अब जो हमने रामकार्य नहीं किया, इसी बहानेसे दुष्टात्मा सुग्रीव निश्चय हमें मारेगा। पुनः यथा—'न चाहं यौवराज्येन सुग्रीवेणाभिषेचितः॥१७॥ नरेन्द्रेणाभिषिक्तोऽस्मि रामेणाक्लिष्टकर्मणा। स पूर्वं बद्धवैरो मां राजा दृष्ट्वा व्यतिक्रमम्॥ १८॥ घातयिष्यति दण्डेन तीक्ष्णेन कृतनिश्चयः। किं मे सुहृद्भिर्व्यसनं पश्यद्भिर्जीवितान्तरे॥ इहैव प्रायमासिष्ये पुण्ये सागररोधसि॥ १९॥'—(वा० ५३) अर्थात् सुग्रीवने मेरा अभिषेक नहीं किया, वह तो पहलेसे ही मुझसे वैर रखताहै, धर्मात्मारामचंद्रजीने मेरा अभिषेक किया। अपराध देखकर वह निश्चय कठोर दण्ड देगा, उस समय मेरा दुःख देखकर मित्रभी क्या करसकेंगे अतएव यहीं समुद्र तीर पुण्यक्षेत्रमें मैं प्रायोवेशन करूंगा।

२—यहाँ एकही कारण मृत्युके लिए पर्याप्त था तो भी दूसराभी कारण दिखाना दूसरा समुच्चय अलंकार है।

† भरि—(का०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

छन एक सोच मगन होइ रहे† ।
पुनि अस बचन कहत सब भए ॥§२५ (८)

हम सीता कै सुधि लीन्हे बिना / सोध बिहीना ।
नहिं जैहैं जुवराज प्रबीना ॥ ,, (९)

अस कहि लवनसिंधुतट जाई ।
बैठे कपि सब दर्भ डसाई ॥ ,, (१०)

अर्थ—अंगद बारंबार (अत्यन्त व्याकुलतावश) सबसे कहरहे हैं कि मरण हुआ इसमें कुछ संदेह नहीं । वीर वानर अंगदके वचन सुनतेहैं, कुछ बोल नहीं सकते, नेत्रोंसे जल बहरहा है । सब एक क्षण-भर सोचमें डूबगए । फिर सब ऐसा वचन कहनेलगे कि, हे चतुर युवराज ! हम सीताकी सुध लिए विना नहीं लौटेंगे । ऐसा कहकर समुद्र तटपर जाकर सब वानर कुशासन बिछाकर बैठगए ।

टिप्पणी १—'पुनि पुनि कह सब पाहीं' इति । अत्यन्त व्याकुलतावश बार बार कहतेहैं कि रामजीने हमें बचाया अब उन्हींका काम हमसे न बनपड़ा तब वेभी हमारी रक्षा क्यों करेंगे, अतएव मरण हुआ इसमें संदेह नहीं । सबसे कहनेका भाव कि तुम सब बुद्धिमान हो, जीनेका उपाय बताओ ‡ । २—'बोलि न सकहिं नयन बह-

† गयऊ, भयऊ—(न० प्र०), 'रहेउ, भयऊ'—(का०), 'गए, भए' —(रा० प०) । 'सोध बिहीना'—(ना० प्र०) । छक्कनलालजीकी प्रतिमें 'सुधि लीन्हे बिना' पर हरताल देकर 'सोध बिहीना' बनाया गया है । काशी और भा० द० में 'सुधि लीन्हे बिना' पाठ है । काशीकी पोथीमें 'किमि जैहैं' पाठ है ।

‡यथा—'भवन्तः प्रत्ययं प्राप्ता नीतिमार्गविशारदाः । हितेष्वभिरता भर्तुर्निसृष्टाः सर्वकर्मसु ॥१०॥ कर्म स्वप्रतिभाः सर्वे दिक्षु विश्रुतपौरुषाः । मां पुरस्कृत्य निर्यातः पिङ्गाक्ष प्रतिचोदिताः ॥११॥ इदानीमकृतार्थानां मर्तव्यं नात्र संशयः ।'—(वा० ५३) । अर्थात् आपलोग नीतिमार्गमें चतुर हैं, स्वामीके विश्वासपात्र हैं, उनके द्वारा सभी कामोंमें अधिकारके साथ नियुक्तहोतेहैं, कार्य-करनेमें आपके समान कोई नहीं, सब दिशाओंमें आप पराक्रमी प्रसिद्ध हैं । पिङ्गाक्ष सुग्रीवकी आज्ञासे आप मेरी अधिनायकतामें आएहैं, काम सिद्ध न होनेसे हमसबका मरण हुआ इसमें संदेह नहीं; क्योंकि विना आज्ञापालन कौन सुग्रीवसे सुखी रहसकताहै ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नीरा' इति। यद्यपि सब वानर बड़े वीर हैं तोभी वचन सुनकर सब असमर्थकीतरह रोनेलगे। पहले तो सब सोचही करतेथे पर अब वचन सुनकर कि अङ्गदने अपना मरण निश्चय कियाहै सब सोचमें व्याकुल होगए कि जब सुग्रीव अङ्गदकाही वध करेंगे तब हम कैसे बच सकेंगे। प्रथम सोचमें आँसू नहीं थे अब आँसू बहनेलगे अर्थात् अङ्गदकी दशाको प्राप्त हुए। वचनोंका उत्तर न देसके। 'कपि वीरा' का भाव कि राजाका दुःख सुनकर पुरुषार्थ नहीं चलता और चुप होगए, पराक्रमका काम होता तो पराक्रम करते क्योंकि वीर हैं।

३—'हम सीताकै सोध बिहीना। नहिं जैहैं ..', इस वचनसे वाल्मीकि सर्ग ५३ में दिएहुए वानरोंके विचारभी जनादिए। न जायंगे तो कहां रहेंगे? तार वानरकी सलाह थी कि सबकी यदि सम्मति हो तो हेमा वा स्वयंप्रभावाले मायिक बिलहीमें रहें, वहां सब सुपास है, और किसीका भय नहीं। सर्ग ५४ में हनुमान्‌जीने इस मतिका खंडन कियाहै और अङ्गदको समझायाहै कि लक्ष्मण उस मायाको तुरत तोड़देंगे, इत्यादि। तब अङ्गदने प्रायोवेशनका विचार ठाना। पुनः, अध्यात्ममें (सर्ग ७) भी हनुमान्‌जीका समझाना लिखाहै। उन्होंने सोचा कि सुग्रीव और अङ्गदके बीचमें इन वानरोंकी सम्मतिसे विरोध उत्पन्न होजायगा; यह अनुचित है। अतः समझाया कि किसीसे भय नहीं है तुम ताराके पुत्र हो, सुग्रीवके प्रिय हो, इत्यादि।

३—'छन एक सोच मगन होइ रहे।०" इति। सोचमें वाणी रुकी रही फिर धीरज धरकर सब वानरोंने उत्तर दिया। ४—'हम सीता कै सुधि लीन्हे बिना' इति। (क)-वानरोंके प्रथम वचनमें कोई सिद्धांत निश्चय न हुआ, यथा—'सब मिलि कहहिं परस्पर बाता। बिनु सुधि लिए करबका भ्राता'। अब यहाँ दूसरे वचनमें सिद्धान्त हुआ कि बिना सुध लिए लौटकर न जायँगे। (ख) 'जुवराज प्रबीना' का भाव कि आप सब जानतेहैं। नीतिमें उपदेश है कि जब राजा इस प्रकारकी आज्ञा दे तब उसके पास जाय तो कार्य करके जाय नहीं तो न जाय। * (ग)—

* 'न क्षमं चापराद्धानां गमनं स्वामिपार्श्वतः' (वा० ५३।२३)। अर्थात् अपराधियोंको स्वामीके पास जाना उचित नहीं है। हनुमान्‌जीके वचन अंगदजीसे वा० ५४ में ये हैं कि तुम तेज, बल और पराक्रमसे पूर्ण हो। बुद्धिमें बृहस्पतिके समान, और पराक्रममें बालिके समान हो। यथा-'आपूर्यमाणं शश्वच्च तेजोबलपरा-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दो प्रकारसे मृत्यु है। एक प्रकारकी मृत्युका समाधान वानरोंने किया कि वहाँ हम न जायँगे तब वे कैसे मारेंगे। दूसरी प्रकारकी मृत्युका समाधान वे न करसके। इसीसे समुद्रतीर कुश बिछाकर मरनेकेलिए बैठे। ५—'बैठे कपि सब०' इति। सबका भाव कि इस बातमें सबका सम्मत है। 'सिन्धुतट' का भाव कि सिन्धु तीर्थपति है, इसके तीरपर मरना उत्तम है। कुश बिछाकर बैठे क्योंकि कुशासनपर बैठकर मरना उत्तम है। † ☞यहाँ वानरोंके मन, कर्म, वचन तीनों दिखाए यथा—'सोच मगन होइ रहे' (मन), 'दर्भ डसाई' (कर्म) और 'पुनि अस बचन कहत सब भए' (वचन)।

नोट १—'बैठे कपि सब दर्भ डसाई' इति। प्रायोपवेशनकी विधि वाल्मीकिजीने यों लिखी है—'अंगदको घेरकर वे सब वानर प्रायोपवेशन करनेलगे। जलका आचमन करके पूर्व मुहँ बैठे। समुद्रके उत्तर तट पर जाकर दक्षिणकी ओर मुहँ किए हुए कुश पर बैठे'। * २—कुछ लोग तट और तीरमें यह भेद कहतेहैं कि 'तट=वह स्थान जहाँ जल है, जलाशयका किनारा'। और 'तीर=वह स्थान जहाँ तक पानीकी हद है'।

क्रमैः। शशिनं शुक्लपक्षादौ वर्धमानमिवश्रिया ॥३॥ बृहस्पति समं बुद्ध्या विक्रमे सदृशं पितुः।"—ये भाव 'प्रवीण' शब्दसे सूचित कर दिएहैं।

† यथा—'सुग्रीव वधतो स्माकं श्रेयः प्रायोपवेशनं। इति निश्चित्य तत्रैव दर्भानास्तीर्य सर्वतः। उपाविवेशुस्ते सर्वे मरणे कृत निश्चयाः।'—(अध्यात्म ७)। अर्थात् हमलोगोंका सुग्रीवके हाथसे वध होनेकी अपेक्षा प्रायोपवेशन (एक जगह पर बैठकर उपवास करके मरजाना) कल्याण-कारक है। ऐसा निश्चयकर वहीं पर कुश बिछाके वे सब मरनेका निश्चय करके बैठे।

* १ 'परिवार्याङ्गदं सर्वे व्यवसन्प्रायमासितुम्। तद्वाक्यं बालिपुत्रस्य विज्ञाय प्लवगर्षभाः ॥१९॥ उपस्पृश्योदकं सर्वे प्राङ्मुखाःसमुपाविशन्। दक्षिणाग्रेषुदर्भेषु उदक्तीरं समाश्रिताः ॥२०॥'—(सर्ग ५५)। २—प्रमाणसिद्ध भाव 'दर्भ डसाने' का यही मिलाहै, पर बाबाहरिदासजी कहतेहैं कि—'सीता मिलनहेतु ये व्रत कर रहेहैं। शरदऋतुकी रेत ठण्ढी है अतः कुशासन बिछाए। वा, शोच समयमें राम-स्मरण हेतु कुशासनपर बैठे'। पंजाबीजी लिखतेहैं कि सिंधुकी सेवा करतेहैं (धन्ना देतेहैं) कि इससे कार्य सिद्ध न हुआ तो कुशासनपर प्राण त्याग करेंगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जामवंत अंगद दुष देषी ।
कही कथा उपदेस बिसेषी ॥ §२५ (११)
तात राम कहुँ नर जनि मानहु ।
निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु ॥ ,, (१२)
हम सब सेवक अति बड भागी ।
संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी ॥ ,, (१३)

अर्थ—जाम्बवान्‌ने अंगदका दुःख देखकर विशेष उपदेशकी कथा कही। हे तात! रामको मनुष्य न मानो, उन्हें निर्गुण ब्रह्म, अजित और अजन्मा समझो। हम सब सेवक अत्यन्त बड़भागी हैं कि सगुण ब्रह्म के निरंतर अनुरागी हैं।

टिप्पणी १—'कही कथा०'। कथासे दुःख दूर होताहै, यथा—'रामचंद्र गुन बरनइ लागा। सुनतहि सीताकर दुख भागा'। (ख) उपदेस बिसेषी' का भाव कि सोच दूर करनेकेलिए इससे अधिक और कोई उपदेश नहीं है। अथवा, व्यवहारको लिए हुए जो उपदेश होता है वह सामान्य है और जो परमार्थको लिए हुए होताहै वह विशेष है। २ (क)—'नर जनि मानहु' का भाव कि तुम नर मानतेहो इसीसे ऐसे व्याकुल होरहेहो और ऐसा कहते हो कि मरनेमें संशय नहीं। हम ईश्वरके दूत हैं, ईश्वर केकार्य्यको आएहैं; तब हमारा मरण कैसे होगा? हमको सीताकी सुध क्यों न मिलेगी? (ख) 'निर्गुन ब्रह्म०' का भाव कि निर्गुण ब्रह्म सगुण हुआहै, हम सब सेवक वानर हुए हैं। (ग) 'अजित' का भाव कि काल, कर्म, गुण, स्वभाव और मायासे नहीं जीते जाते। (घ) 'अज' का भाव कि जैसे कर्मवश सब जीवोंका जन्म होताहै, वैसे ईश्वरका जन्म नहीं होता, वे अपनी इच्छासे अवतार लेतेहैं। ☞ ऐश्वर्य कहकर उपदेश करनेका भाव यह है कि ऐश्वर्य समझनेसे संदेह और दुःख दूर होताहै।—यहाँ भ्रान्त्यपह्नुति अलंकार है।

३—'अति बड़ भागी' कहनेका भाव कि वैराग्य होनेसे भाग्यवान् हैं, विवेक होनेसे बड़भागी हैं और सेवक होनेसे अति बड़भागी हैं। क्योंकि वैरागी वैराग्य करतेहैं, ज्ञानी ज्ञान करतेहैं जिससे मोक्ष मिले और सेवक मोक्षका त्यागकरके सगुण ब्रह्मकी उपासना करतेहैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वैराग्यसे ज्ञान होताहै और ज्ञानसे उपासना। यथा—'जानिय तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥ होइ बिबेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथचरन अनुरागा॥'

प्र०—नर अर्थात् सामान्य मनुष्य। किसीकामतहै कि इसी उपदेशानुसार अङ्गदने रावणकी बातका खंडन किया जब उसने रघुनाथजीको 'नर' कहा था। यथा - 'तेहि रावन कहँ लघु कहसि नर कर करसि बषान।' *

नोट - वाल्मीकिमें यह प्रसंग नहीं है। अध्यात्ममें हनुमान्‌जीहीके इस प्रकारके वाक्य हैं ‡ पर सिंधुतीर पर नहीं किंतु रास्तेहीमें बिलसे निकलनेके बाद। भट्टिकाव्य-रामायणमें जाम्बवान्‌का नाम आयाहै, यथा—'जाम्बवान् दुःखितान् दृष्ट्वा समस्तान् कपिसत्तमान्...'।

निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब† त्याग॥२६

अर्थ—प्रभु अपनी इच्छासे देवता, पृथ्वी, गौ और ब्राह्मणोंकेलिए

---

* अंगदका उत्तर—'बोलु सँभारि अधम अभिमानी॥
सहसबाहु भुज गहन अपारा। दहन अनल सम जासु कुठारा॥
जासु परसु सागर खर धारा। बूड़े नृप अगनित बहु बारा॥
तासु गर्ब जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दससीस अभागा॥
राम मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी कामु नदी पुनि गंगा॥...

पुनः, 'राम मनुज बोलत असि बानी। गिरहिं न तव रसना अभिमानी॥
सोर नर क्यों दसकंध बालि बध्यो जेहि एक सर।
बीसहु लोचन अंध धिग तव जन्म कुजाति जड़॥'

‡ यथा—'अन्यद्गुह्यतमं वक्ष्ये रहस्यं शृणु मे सुत। रामो न मानुषोदेवः साक्षान्नारायणोऽव्ययः।... वयं च पार्षदाः सर्वे विष्णोर्वैकुण्ठवासिनः।'—(७।१६, १९) अर्थात् हे पुत्र! कुछ परमगुप्त रहस्य मैं कहताहूँ, सुन। रघुनाथजी मनुष्य नहीं हैं किन्तु साक्षात् अविनाशी नारायण भगवान् हैं... हम वैकुण्ठवासी पार्षद हैं।

† सुख—(न० प्र०, का०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जहाँ अवतारलेतेहैं वहां सब मोक्षोंको छोड़कर सगुण उपासक उनके साथ रहतेहैं ।‡

टिप्पणी १—प्रथम कहा कि भगवान् 'अज' हैं। जो अजन्मा है उसका जन्म कैसे होसकताहै ? इसको यहां कहा कि निज इच्छासे प्रभु अवतार लेतेहैं; जैसा कि मनुजीसे प्रभुने स्वयं कहाहै—'इच्छामय नरबेष सवाँरे। होइहउं प्रगट निकेत तुम्हारे' (ब० ◊ १५१)। यह कहकर अवतारका कारण कहा कि 'सुर महि गोद्विज लागि' अवतरित होतेहैं। २—'सब मोक्ष'। मोक्ष कई प्रकारका कहागयाहै - सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य, कैवल्य, ऐक्य, सामीप्य। इनमेंसे सामीप्यको ग्रहण करतेहैं, शेष सबको त्यागदेतेहैं।

पांड़ेजी—सगुण ब्रह्मके उपासक इन चारोंको त्यागकर केवल भक्तिके अनुरागी होतेहैं। यथा—'जन्मजन्म रति रामपद यह बरदान न आन'। *

गौड़जी—इस दोहेसेभी वानर-सेनाके प्रकृत रहस्यका उद्घाटन होताहै। भगवान्के विग्रहमें मोक्षसुख, सायुज्य मुक्तिका सुख, भोगनेवाले उपासक भक्त, जब जब जहाँ जहाँ अपनी इच्छासे प्रभु अवतार लेते हैं, तब तब मोक्षको त्यागकर किसी न किसी रूपमें तहाँ तहाँ उनके संग रहतेहैं। जब भगवान् स्वयं लीलाके लिये अपनी मायाके बन्धनमें—अपनेको बाँधकर अवतार लेतेहैं, तब तो जिसे मोक्ष कहतेहैं वह अवस्था तो भगवान्के बंधनमें आनेसे शवकी तरह होगयी। इसीलिये मोक्ष अवस्थारूपी शवका विग्रह-निर्माता सुर वा उपासक भक्त त्याग करदेतेहैं। यहाँ 'मोक्ष-सब' 'मोक्षशव'है। 'मोक्ष-सब' ही समीचीन पाठ है। यहाँ 'सगुन उपासक' से साधारण उपासक अभिप्रेत नहीं हैं। यहाँ वही देवगण पार्षदादि अभिप्रेत हैं जिनका संग छूट नहीं सकता। उसी ओर 'हम सब सेवक

‡यथा अध्यात्मे—'मनुष्यभावमापन्ने स्वेच्छया परमात्मनि। वयं वानररूपेण जातास्तस्यैव मायया।'—(७।१९)। अर्थात् परमात्मा अपनी इच्छासे मनुष्यभावको प्राप्त होतेहैं और उन्हींकी मायाके योगसे हमसब (पार्षद) वानररूपसे उत्पन्नहुए।

* 'सालोक्य सार्ष्टि सायुज्य सारूप्यैकत्वमप्युत। दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनम् जना॥'—भा० १० (२१) देखिए।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अति बड़भागी' का इशारा है क्योंकि जिसकी बाट जोह रहेथे कि रंगमंचपर कब आवेंगे उसे पा गये। अपने अभिनय द्वारा सेवाका अवसरभी आगया।

एहि बिधि कथा कहहिं बहु भाँती।
गिरिकंदरा सुनी संपाती॥ § २६ (१)
बाहेर होइ देखि†बहु कीसा।
मोहि अहारु दीन्ह जगदीसा॥ ,, (२)
आजु सबहि कहुँ भछन करऊँ।
दिन बहु चलेउ‡अहार बिनु मरऊँ॥ ,, (३)
कबहुँ न मिल* भरि उदर अहारा।
आजु दीन्ह बिधि एकहि बारा॥ ,, (४)

अर्थ—इस प्रकारसे बहुत तरहसे कथा कहरहेहैं। (इनकी वाणी) पर्वतकी कंदरामें संपातीने सुनी। बाहर निकलकर बहुतसे वानरोंको देखकर वह बोला कि जगदीशने मुझे भोजन दिया, आज सभीको खाऊँगा, बहुत दिन बीतगए बिना भोजनके मररहाथा। कभी पेट भर भोजन नहीं मिलताथा, आज विधाताने एकहीबार देदिया।

टिप्पणी १—(क) प्रथम जाम्बवंतका कहना लिखतेहैं, यथा—'जामवंत अंगददुख देखी। कही कथा उपदेस बिसेखी॥' और उसके समाप्तिपर यहाँ सब वानरोंका कहना लिखतेहैं—'एहि बिधि कथा कहहिं बहुभाँती'। यह कैसा? उत्तर—वाल्मीकिजी लिखतेहैं कि वानरोंने प्रथम रामवनवाससे लेकर बालिबध और रामरोष कपित्रासतक कथा कही। उसके पश्चात् जाम्बवान्ने कथा कही। ग्रंथकारने जाम्बवान्की कथाके समाप्तिपर उन सबका कथनभी इस चौपाईमें इकट्ठा करदिया। (ख) 'बहु भाँत' पद दिया क्योंकि भिन्न २ रामा-

† देखे—(ना० प्र०)।
‡ चल—(ना० प्र०), चलेउ-(भा० द)।
* मिल—(ना० प्र, का०, मा० त० भा०), मिलै—(भा० द, पं० रा० गु० द्वि०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यणोंमें भिन्न भिन्न प्रकारकी कथाएँ ऋषियोंने वर्णन की हैं। इस पदसे सबका समावेश यहाँ होगया। (ग) ☞ गृद्ध्रका कंदरामें बैठेहुए कथा सुनना कहतेहैं। कथा-श्रवणसे रामभक्तोंका दर्शन हुआ। भक्तोंके दर्शनसे एवम् स्पर्शसे पक्ष जमे और सब दुःख दूर हुए। वानर सीताको खोजते खोजते व्याकुल हुए, सुध न मिली; कथा कहनेसे बैठेही बैठे संपातीसे सुध मिलगई। यह रामकथाका प्रभाव है।

२—'अहार दीन्ह जगदासा'। जगत्के ईश अर्थात् पालनकर्ता हैं अतः मेरे लिए सब वानर यहाँ इकट्ठे आ प्राप्त हुए नहीं तो इतने वानर पराक्रमसे एकत्र किए न होते। ३—'न मिल भर उदर अहारा' अर्थात् कुछकुछ मिलता रहा भरपेट न मिलताथा। 'आजु दीन्ह बिधि०' अर्थात् बिधि हैं; वे सबका विधान करतेहैं, विधानसे सबको आहार देतेहैं; हमारे कर्मानुसार आज उन्होंने हमकोभी दिया: यथा वाल्मीकीये—'विधिः किलनरं के विधानेनानुवर्तते। यथायं विहितो भक्ष्य श्चिरान्मह्यमुपागतः' (५६।४)—' यहाँ प्रहर्षण अलंकार और समाधिका सन्देहसङ्कार है—(वीर)]

नोट १—वा० ५५।२१, २२ में लिखाहै कि--'वानरोंने प्रायोपवेशन करना उचित समझा। (दर्भपर बैठकर) वे रामचन्द्रके वनवास, दशरथमहाराजका मरण, जनस्थानका एवं जटायुका वध, सीताहरण, बालिवध और रामचन्द्रजीका कोप कहतेहुए, सब भयभीत हुए, पर्वतशिखरके समान बड़े बड़े वानरोंके बैठनेसे वह पर्वत गर्जनेवाले-मेघोंसे आकाशके समान शब्दायमान झरनावाला मालूमपड़ा।'—इनमें आगेपीछे अथवा किसीका नाम नहीं दियागयाहै और न जाम्बवन्तका समझानाहीहै। *

२ 'आजु सबन्ह कहुँ भक्षण करऊँ'। अर्थात् ये मरने बैठेहैं. जैसे-जैसे एकएक मरताजायगा तैसेतैसे मैं खाता जाऊँगा, इस प्रकार

* यथा—"रामस्य वनवासं च क्षयं दशरथस्य च ॥२१॥ जनस्थानवधं चैव वधं चैव जटायुषः। हरणं चैव वैदेह्या बालिनश्च वधं तथा ॥ रामकोपं च वदतां हरीणां भयमागतम् ॥२२॥ स संविशद्भिर्बहुभिर्महीधरो महाद्रिकूटप्रतिमैः प्लवंगमैः। बभूव संनादितनिर्झरान्तरो भृशं नदद्भिर्जलदैरिवाम्बरम् ॥२३॥" अर्थात् पुरानी वनवासकी कथा कहतेहुए वानरोंको डरलगगया—तथा वह पर्वत उनके शब्दोंसे गूंजउठा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सबको खालूँगा। जीवित वानरोंको खानेको नहीं कहाहै। †

३—'कबहुँ न मिल भरि पेट अहारा'। कारण कि स्वयं पक्षहीन था। उसका पुत्र उसे लादेताथा। संभव है कि उसने डाँटा तबसे वह औरभी कम खबर लेनेलगाहो। अथवा, वह पिताकेलिए भोजन लाताहै पर नित्य नहीं, समय समयपर लातारहाहै, इसीसे पेट कभी न भरा। * संपातीने कहाभी है कि हमलोग बड़े भूखे होतेहैं।

डरपे गीधबचन सुनि काना।
अब भा मरन सत्य हम जाना॥ § २६ (५)
कपि सब उठे गीध कहँ देखी।
जामवंत मन सोच बिसेषी॥ ,, (६)

अर्थ—गृद्ध्र संपातीके वचन कानोंसे सुनकर सब डरकर ‡ बोले कि हमने जानलिया अब सत्यही हमारा मरण हुआ। गृद्ध्रको देखकर सब कपि उठखड़ेहुए तब जाम्बवान्के मनमें विशेष सोच हुआ।

---

† १ 'परम्पराणां भक्षिष्ये वानराणां मृतंमृतम्। उवाचै तद्वचः पक्षी तान्निरीक्ष्य प्लवंगमान्॥'—(वा० ५६। ५) २—एकैकशः क्रमात्सर्वान्भक्षयामि दिने दिने'—(अध्यात्म ७। ३१)। अर्थात् प्रतिदिन एकएकको खाता जाऊँगा इस प्रकार क्रमसे सबको खालूँगा।

* यथा (वा० ५९)—'अहमस्मिन्गिरौ दुर्गे बहुयोजनमायते। चिरान्निपतितो वृद्धः क्षीण प्राणपरिक्रमः॥७॥ ते मामेवं गतं पुत्रः सुपार्श्वो नामनामतः। आहारेण यथाकालं बिभर्ति पततां वरः॥८। तीक्ष्णकामास्तु गन्धर्वास्तीक्ष्णकोपा भुजंगमाः। मृगाणां तु भयं तीक्ष्णं ततस्तीक्ष्णक्षुधा वयम्॥९॥ स कदाचित्क्षुधार्तस्य ममाहाराभिकाङ्क्षिणः। गतः सूर्येऽहनि प्राप्तो मम पुत्रो ह्यनामिषः॥१०॥ स मयाहार संरोधात्पीडितः प्रीतिवर्धनः। अनुमान्य यथातत्त्वमिदं वचनमब्रवीत्॥११॥'

‡ यथा—'श्रुत्वा तद् गृद्ध्रवचनं वानराः भीतमानसाः॥'—(अध्यात्म ७।३१)। भक्षयिष्यति नः सर्वानसौ गृद्ध्रो न संशयः। रामकार्यं च नास्माभिः कृतं किंचिद्वरीश्वराः॥३२॥ सुग्रीवस्यापि च हितं न कृतं स्वात्मनामपि। वृथा तेनवधं प्राप्ता गच्छामोयमसादनम्॥३३॥' अर्थात् गृद्धकेवचन सुनकर वानर भयभीत होगए। सबको यह खालेगा, संदेह नहीं। हमने न तो कुछ रामकार्यही किया, न कुछ सुग्रीवका हित किया (कि वह रामजीसे उऋण होजाता) और न कुछ अपनाही हितकिया; अब इस गृद्धद्वारा मृत्युको प्राप्त हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—१ 'डरपे' गृद्ध्रका स्वरूप देखकर और उसके वचन सुनकर जाना कि ऐसे स्वरूपसे यह सबको खासकताहै *। अतएव कहा कि 'अब भा मरन सत्य०'। अर्थात् सीताजीकी ख़बर न मिलनेसे चाहे सुग्रीव न भी मारते, प्रायोपवेशनसे चाहे मृत्यु न होती, सीताजी-की सुध मिलजाती; पर अब तो मरण सत्यही होगा, संदेह नहीं। इस कथनसे शंका होतीहै कि हनुमान् जाम्बवान् आदि अनेक बड़े बड़े योद्धा यहाँ थे, क्या ये सब मिलकरभी उससे न लड़सकते; जो भयभीत होकर ऐसा कहरहे हैं? समाधान यह है कि इस समय सीताजीकी खबर न मिलनेके शोच और दोनों प्रकारकी मृत्युके भय-से सब वीर व्याकुल होरहेहैं, इसीसे संपातीके वचन सुनकर डर गए, उनको अपने पराक्रमकी सुधबुध न रहगईथी। भयभीतकी गणना निर्बलोंमें है, यथा—'पंगु गुंग रोगी बनिक भीति भूखजुत जानि। अंध अनाथ अजाति शिशु अबला अबल बखानि॥' इति कविप्रियाग्रंथे।

२ (क)—'कपि सब उठे' अर्थात् कुशासन बिछाकर सिंधुतीर बैठे हुएथे, अब भयभीत होकर उठखड़े हुए। सुग्रीवका भय था ही, उसपर इसके वचन सुने; इससे डरपर डर व्याप्त होगया; क्योंकि 'रहत न आरत के चित चेतू'। (ख) 'जामवंत मन सोच बिसेषी' इति। 'विशेषी' से जनाया कि सोच तो सबको है पर इनको सबसे अधिक है। विशेष सोच इससे कि (।) उनने अंगदका दुःख देखकर कथा कहकर उनका दुःख दूर कियाथा, अब इस दुःखके दूर करनेका कुछ उपाय नहीं सूझता। अथवा, (॥) जाम्बवंत सबका सँभाल करनेवाले हैं; इसीसे इनको विशेष सोच हुआ कि हमारे देखतेही क्या सब वानर खाडिपजायंगे। —(प्र०—विशेष सोच यह कि एक गृद्धको देख यह दशा है, रावणके संग्राममें क्या करेंगे) ‡

* ते प्रायमुपविष्टास्तु दृष्ट्वा गृद्ध्रं प्लवंगमाः। चक्रुर्बुद्धिं तदा रौद्रां सर्वान्नो भक्षयिष्यति॥'—(वा० ५७.२)। अर्थात् उस गृध्रको देखकर ऐसा भयंकर विचार किया कि वह सबको खालेगा। पुनः, यथा—'कर्मणातस्यशंकिता' (५७।१), एवं 'पश्य सीतापदेशेन साक्षाद्वैवस्वतो यमः। इमं देशमनुप्राप्तो वानराणां विपत्तये॥' (५६।७)। अर्थात् अंगदने हनुमान्जीसे कहा कि देखो सीताके व्याजसे साक्षात् यमराज इस वेषमें वानरोंपर विपत्ति डालने आएहैं।

‡ १—कि कहाँ तो हम सगुण ब्रह्मकी कथा कहरहेथे कहाँ यह आफ़त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मा० म०—'वानरोंने जाना कि सत्यही मरण हुआ। भाव कि संपातीने देखा कि सब वंदर नियम करके बैठेहैं, इस अवस्थामें वे लड़ेंगे नहीं; अतएव कहा कि मुझको आहार मिला। यही विचार करके कपिभी डरगए कि इस अवस्थामें लड़सकते नहीं, अवश्य मरना होगा, प्रथम मरनेके लिए प्रायोपवेशन करतेही थे पर जाम्बवंतके कहनेसे संदेह आपड़ा। परन्तु इस गीध द्वारा अपमृत्यु विचारकर डरे'। –(वै० गृद्धके खालेनेसे कुमृत्यु होकर यमलोकको जायंगे)।

कह अंगद बिचारि मन माहीं।
धन्य जटायू सम कोउ नाहीं॥ § २६ (७)
रामकाज कारन तनु त्यागी।
हरिपुर गएउ परम बड भागी॥ ,, (८)

अर्थ—अंगदने मनमें विचारकर कहा कि जटायुके समान कोई धन्य नहीं है। रामकार्य्यकेलिए शरीर छोड़कर वह परम बड़भागी हरिपुर गया।

टिप्पणी १—'कह अंगद०' इति। (क) ☞ देखिए, अंगदका दुःख देखकर जाम्बवान् बोलेथे, और, अब जाम्बवंतका दुःख देखकर अंगद बोले। इस प्रकार सूचित करतेहैं कि दोनों बड़े बुद्धिमान हैं। (ख) अंगदकी बुद्धिमानी दिखातेहैं। उन्होंने विचार किया कि यह गृध्र है, इसको गृध्र का समाचार सुनावें; उससे यह अवश्य प्रसन्न होगा। (ग) 'धन्य जटायू सम कोउ नाहीं'। भाव यह कि उधर जाम्बवन्तने जो कहाथा कि हम सब अत्यंत बड़भागी सेवक हैं उसपर ये कहतेहैं कि जटायुके समान कोई भाग्यवान् नहीं है। क्योंकि वह रामकार्य्यके लिए तन त्यागकर हरिपुरको गया। वह हम सबसे अधिक बड़भागी है, वह परम बड़भागी है। गीतावलीमें बड़भागी होनेका हेतु विस्तार से दियाहै।—आ० § ३० (६-१०) और § ३२ देखिए।

२—'हरिपुर गयउ परम बड़भागी'। पराये कार्यके लिए शरीर त्याग करे वह भाग्यवान्है और जटायुने रामकार्यकेलिए तन त्याग

बीचमें आपड़ी। २—अवतार बताया, समझाया, फिरभी ये सब ऐसे कायर बने रहे, ऐसे पोच विचार इनमें हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किया अतः वह बड़भागी है। पुनः, भगवान्‌की गोदमें बैठकर तन त्याग किया, भगवान्‌के हाथ से दाह पाया, और हरिपुरको गया। अतएव परम बड़भागी है।*

दीनजी—तात्पर्य यह कि एक गृद्ध जटायु था, जिसने रामकार्य्यमें अपने प्राण तक देदिए और एक गीध यह है कि रामदूतोंको भक्षण करनेको कहताहै। ☞ यह युवराज अंगदकी नीतिकुशलताहै। एक जाति भाईकी प्रशंसा करके उसी जातिके अन्य एक व्यक्तिकी सहानुभूति प्राप्त कीजासकतीहै। अंगदकी यह चतुर नीति काम करगई। —(पां०)। यह गूढ़ोत्तर अलंकार है—(वीर)।

सुनि खग हरष सोकजुत बानी।
आवा निकट कपिन्ह भय मानी॥ § २६ (९)
तिन्हहि अभय करि पूछेसि जाई।
कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई॥ ,, (१०)
सुनि संपाति बंधु कै करनी।
रघुपति महिमा बहु बिधि बरनी॥ ,, (११)

अर्थ—हर्ष-शोक-युत वाणी सुनकर जटायु पक्षी वानरोंके पास आया, वानर डरे। उसने उन्हें निर्भय करके (पास) जाकर सब (जटायुकी) कथा पूछी। उन्होंने सब कथा उसे सुनाई*। भाईकी करनी सुनकर संपातीने बहुत तरहसे रघुनाथजीकी महिमा वर्णनकी।

* यथा अध्यात्मे—'अहो जटायुर्धर्मात्मा रामस्यार्थे मृतः सुधीः। मोक्षं प्राप्त दुराधर्षं योगिनामप्यरिन्दमः॥' (सर्ग ७ ३४) अर्थात् बड़े आश्चर्यकी बात है कि धर्मात्मा, बुद्धिमान और शत्रुनाशक जटायुने रामचन्द्रजीके कार्यकेलिए प्राणत्याग किये और उस मोक्षको प्राप्त हुए जो योगियोंकोभी दुर्लभ है।

नोट—वा० ५६ में अंगदने कहाहै कि—देखो, पक्षियोनिमेंभी उत्पन्नप्राणी रामजीका प्रिय कार्य करतेहैं। धर्मज्ञ जटायुने उनका प्रिय किया। हमकोभी उचित है कि रामचन्द्रके लिए थककर हमलोगभी अब अपने प्राणोंका त्याग करें। —यह भावभी इन अर्धालियोंमें लिया जासकताहै। यथा—'प्रियं कृतं हि रामस्य धर्मज्ञेन जटायुषा। राघवार्थे परिश्रान्ता वयं संत्यक्तजीविताः' ॥१२॥

*यथा—'उच्यतां वो भयं माभून्मत्तः प्लवगसत्तमाः' ॥३६॥ तमुवाचांगदः

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—१ (क) 'हरष सोक जुत बानी'। वाणीमें हर्ष और शोक दोनों हैं। उसका पुरुषार्थ और हरिधामकी प्राप्ति हर्षके कारण हैं और मृत्युका समाचार शोकका कारण है ‡ (ख) 'आवा निकट'। पूर्व कंदरामें बैठे वानरोंकी बातें सुनी, फिर निकलकर उनको देखा—'बाहर होइ देखे बहु कीसा'; अब जटायुका वृत्तान्त पूछनेकेलिए निकट आया। वानरोंने समझा कि खाने आताहै, अतः डरे। २—'तिन्हहि अभय करि पूछेसि जाई'। प्रथम दूरसे अभय किया तब पास जाकर पूछा (इस बातको जनानेकेलिए 'जाई' क्रिया पीछे दी) जिसमें वानर भाग न जायं। ३—'कथा सकल' सुनानेका भाव कि पूर्व जो वचन अंगदने कहे उसमें जटायुकी कथा संक्षेपसे थी अब विस्तारपूर्वक कही। अध्यात्म सर्ग ७ में पूरी कथा दीहै। ४—'बन्धुकी करनी' में 'करनी' शब्द पुरुषार्थवाचक है। यथा—'जूझे सकल सुभट कै करनी'। और रघुनाथजीने अपने हाथसे उसकी क्रिया की यह करनी सुनकर रघुनाथजीकी महिमा वर्णन की कि उन्होंने ऐसे अधमको मुक्ति दी। यथा—'गीध अधम खग आमिषभोगी। गति दीन्ही जो जाँचत जोगी॥' यहाँ 'करनी' पद मृतक-क्रियाका वाचक है, यथा—'पितु हित भरत कीन्ह जसि करनी'।—(तात्पर्य कि 'करनी' पद श्लेषार्थी है दीपदेहरी न्यायसे दोनों ओर लेनाचाहिए)। महिमा यह कि रावण ऐसे वीरको उसने विरथ और मूर्छित करदिया। (इत्यादि जो अरण्यकांडमें लिखा जाचुकाहै।)

नोट—'तिन्हहि अभय करि' से जनाया कि उसके वचनपर उनको विश्वास न था वे यही समझतेथे कि इस बहानेसे आकर खालेगा। यथा—'शोकाद्भ्रष्टस्वरमपि श्रुत्वा वानरयूथपाः। 'श्रद्दधुर्नैव तद्वाक्यं कर्मणातस्य शङ्किताः।...' (वा० ५७-१२) अर्थात् शोकके कारण संपातीका टूटाहुआ स्वर सुनकरभी वानरोंने विश्वास न किया, क्योंकि उसके कर्मोंसे वे शंकित होगएथे।

श्रीमानुस्थितो गृध्रसन्निधौ। रामोदाशरथिः श्रीमान् लक्ष्मणेन समन्वितः॥३७॥ सीतयाभार्यया सार्द्धं विचचारमहावने।...॥४५॥" अर्थात्—हे वानरो! कहो, आप न डरें, तब अंगद उठे और कहनेलगे, कि भगवान् रामचन्द्र लक्ष्मण और सीताके साथ वनमें रहा करतेथे। जन्म से यहाँ तककी कथा है।

‡ 'प्रथम समुच्चय अलंकार है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मोहि लै जाहु सिंधुतट देउँ तिलांजलि ताहि।
बचन सहाइ † करबि मइँ पैहहु खोजहु जाहि॥ § २७

अर्थ—मुझे सिंधुके किनारे लेचलो। मैं उसे तिलाञ्जलि दूँ। (फिर) मैं तुम्हारी वचनसे सहायता करूँगा (अर्थात् बताउंगा कि सीता कहाँ हैं), जिसे ढूँढ़तेहो उसे पाओगे।

टिप्पणी—१ संपातीने यह बात ज्ञानके बलसे कही। शंका—'जब गृद्ध वानरोंके पास आया तब उसे कहनाचाहिए था कि 'मोहि लै चलहु'', पर उसने 'लै जाहु' कहा, यह क्यों? समाधान—वानर पहाड़के नीचे बैठेहैं और वह कन्दरासे निकलकर इनके ऊपर पहाड़पर आया, यही निकट आना है। अब वह पहाड़परसे कहरहाहै कि तुम लोग आओ और मुझको लेजाओ, मैं पहाड़परसे उतर नहीं सकता। * २—धर्मशास्त्रमें लिखाहै कि जब मृतककी बात सुने तभी सूतक लगताहै, इसीसे भाईका मरण सुनकर क्रिया करनेको है।

३—वचनसे सहायता करूँगा, इस कथनका तात्पर्य यह है कि शरीरसे सहायता नहीं करसकता, क्योंकि मैं वृद्ध हूँ †। यहाँ शंका होसकतीहै कि जब उसे समुद्रतट तक आनेका सामर्थ्य न था तब वह सबको भक्षण करनेको कैसे कहताथा? समाधान यह है कि वानर लोग अपनी मृत्यु कहरहे थे, यही बात सुनकर उसने कहा था कि इनकी मृत्यु होगी तब मैं सबको भक्षण करूँगा। यथा—'परंपराणां भक्षिष्ये वानराणां मृतंमृतम्'।

---

† सहाय—(ना० प्र०), सहाइ—(भा० द०)।

* वा० ५७। २४, यथा—'सूर्यांशुदग्धपक्षत्वान्न शक्नोमि विसर्पितुम्। इच्छेयं पर्वतादस्मादवतर्तुमरिन्दमाः'। अर्थात् सूर्य्य-किरणसे पक्ष जलजानेके कारण मैं चल नहीं सकता, पर्वतसे उतरनेकी इच्छा है, आप मुझे उतारें।

† 'वाक्सहायं करिष्येहं भवतां प्लवगेश्वराः। भ्रातुः सलिलदानायनयध्वं मां जलन्तिकम्॥ पश्चात् सर्वं शुभं भवतां कार्यसिद्धये'।—(अध्यात्म ७।४८)। अर्थात् हे श्रेष्ठ वानरो! आपकी सहायता मैं वाणीसे करूँगा; मुझे भाईको जलाञ्जलि देनेके लिए जलके तीर लेचलो। पश्चात् आपके कार्यके लिए शुभ वचन कहूँगा। वा० ५८।१२ में भी ऐसाही है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्र०—तीन तट कहेहैं। १—नयन मूँदि पुनि देखहिं वीरा। ठाढ़े सकल सिंधु के तीरा॥ २—अस कहि लवनसिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई॥ ३—'मोहि लेइ जाहु सिंधु तट देउँ तिलांजलि ताहि'; एवं 'अनुज क्रिया करि सागर तीरा'।—भाव यह है कि कपि लोग मध्य तट (बीच) में रहे; क्योंकि अनशनव्रत करनेकेलिए प्रथम तटपर रहते तो फूल फल खाते, क्योंकि देखकर रहा न जाता। सुंदर काण्डमें लिखाहै कि 'एहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागरतीर। जहँ तहँ लागे खान फल भालु बिपुल कपि बीर॥' पुनः, 'सुनहु मातु मोहि अतिसय भूषा। लागि देखि सुन्दर फल रूखा॥'। पुनः, 'खाएउँ फल प्रभु लागी भूखा'। दूसरे तटमें बालू थी और तीसरे में जल। अतएव मध्यमें रहे।

नोट—पहले जटायुका समाचार पूछनेको पर्वतसे उतारेगए, यथा 'अवतार्य गिरेः शृङ्गादगृद्धमाहाङ्गदस्तदा''—(५७।३)। फिर तिलांजलि के लिए यहाँसे समुद्र तटपर लेजानेको कहा जहाँ जल है, यथा—'समुद्रं नेतुमिच्छामि भवद्भिर्वरुणालयम्। प्रदास्याम्युदकं भ्रातुः स्वर्गं तस्य महात्मनः॥'—(५८।३३)। अर्थात् मैं महात्मा भाईको जल देना चाहताहूँ, मेरी इच्छा है कि आप मुझे समुद्रके तीर लेचलें।*

* प्र०—१ गृध्रतिलाञ्जलिका अधिकारी कैसे? उत्तर—गीतावलीमें वचन सहाय तककाही अधिकार अपना कहा, आगे नहीं। दिव्य और कामरूप है इससे जलांजलि दी। (भगवान्‌ने उसके भाईकी दाह-क्रियाकी तब यह जलांजलिकाभी अधिकारी नहोगा तो क्या? वह तो जीवन्मुक्त है।—मा० स०) २—कंदरासे वानरों तक पहुँचनेकी सामर्थ्य थी और तट तक जानेकी न थी? इसमें कारण है। परीक्षार्थ ऐसा किया। यदि ये रामदूत हैं तो मेरे पक्ष स्पर्शसे जम आयँगे और यदि राम-दूत नहीं हैं तो 'मोहि अहार दीन्ह जगदीसा'।

गौड़जी—गीधके तिलांजलिके अधिकारी होने न होनेका प्रश्न यहाँ व्यर्थ है। स्मृतियाँ मनुष्यको रीति बताती हैं कि तिलांजलि देनेका कौन पात्र है, कौन नहीं। गीध गीधमें तिलांजलिका आदान-प्रदान हो सकता है या नहीं, यह प्रश्न गीधोंकी स्मृतिका है। मानव स्मृतियोंका नहीं। यह प्रश्न तो जटायु के प्रेत कर्म्म करनेपर भगवान् के सम्बन्धमें हो सकताहै। वहाँ भी भगवान् ने पिताके सखाके नाते प्रेत कर्म्म किया। तर्प्पणमें तो आब्रह्मस्तंभ पर्य्यन्त अखिल सृष्टिका तर्पण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनुज क्रिया करि सागर तीरा ।
कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा ॥ § २७ (१)
हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई ।
गगन गए रबि निकट उडाई ॥ ,, (२)
तेज न सहि सक सो फिरि आवा ।
मैं अभिमानी रबि नियरावा ॥ ,, (३)
जरे पंख अति तेज अपारा ।
परेउँ भूमि करि घोर चिकारा ॥ ,, (४)

अर्थ—समुद्र के तीर भाईकी क्रिया करके अपनी कथा कही—हे वीर वानरो ! सुनो । हम दोनों भाई थे, प्रथम उठती वा चढ़ती जवानी-में हम दोनों उड़कर सूर्यके निकट जानेके लिये उड़े । वह तेज सह न सका इससे लौट आया । मैं अभिमानी था इससे सूर्य्यके कुछ निकट गया । अत्यन्त अपार तेजसे मेरे पखने जलगए तब मैं घोर चिक्कारकर के पृथ्वीपर गिरपड़ा ।

टिप्पणी १—क्रिया मुख्य है इससे प्रथम क्रिया की तब कथा कही । 'वीर' सम्बोधनका भाव कि तुम सब वीर हो, मेरी वीरता सुनो । २-'मैं अभिमानी' का भाव कि यदि मैं भी लौट पड़ता तो दोनों भाइयों का बल बराबर समझाजाता और मुझे अपने बलका बड़ा अभिमान था, अपनेको उससे अधिक बलवान् समझताथा । अतएव सोचा कि मैं यहाँसे क्यों लौट पड़ूँ । इस अभिमानसे सूर्यके निकट गया । अभि-मानका फलदुःख है सो मुझे मिला । ३-'अति तेज अपारा'का भाव कि जिनका तेज पृथ्वीपर नहीं सहाजाता उनके निकटके तेजकी क्या कहिए । जिस तेजको भाई न सह सका उसे मैंने सहा इसीसे मेरे पंख जल-गए और मैं भूमिपर गिरपड़ा अर्थात् इधर भूमिकीभी ठोकर लगी ।

कियाजाता है और पिण्डदानके अन्तमें बलिवैश्वदेव सभी तरहके प्राणियोंके तृप्त्यर्थ करतेहैं । ऐसी शंका व्यर्थ है । अच्छे कामों में यह शंका तो चाहिये नहीं; फिर भगवान् तो मर्य्यादा पुरुषोत्तम हैं । वह तो अपने आचरणसे नीति और शील का आदर्श दिखातेहैं । यथा—

'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः । सयत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ।'
(गीता ।)—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नोट—१ जटायुकी कथा अरण्यमें दीगईहै कि अरुणका पुत्र था इत्यादि। वही यहाँ संपातीने कहीहै। २-संपातीको कौन पर्वतसे उतार कर लाया? यह बात विनयपत्रिकासे स्पष्ट होतीहै। वहाँ हनुमान्‌जी-की स्तुतिमें संपातीका दिव्यदेहदाता इनको कहाहै, यथा—'जयति धर्मांसु-संदग्ध-संपाति नवपक्ष-लोचन-दिव्यदेह-दाता'—(पद २८)। इससे ज्ञात होताहै कि हनुमान्‌जी उसे गोदमें उठालाए। ३☞ (उप-देश भागमें) देखिए अभिमानका फल मिला; प्रभुकी कृपा हुई कि शरीर टुकड़े टुकड़े न होगया। आगे इससे कार्य होगा इसीसे यह लीला हुई। रामभक्तोंकी वचनसेही सहायता करेगा उसका फलभी देखिए क्या हुआ।

गौड़जी—(१) सूर्य्यका पिंड पृथ्वीसे साढ़े नव करोड़ मीलके लगभग है। प्रकाशकी गति प्रतिसेकंड १,८६,००० मील है। प्रकाशको सूर्य्यसे पृथ्वी तक पहुँचनेमें आठ मिनट लगतेहैं। जटायु और संपाति इतिहासके पूर्व युगके हैं। कमसे कम बीस लाख और अधिकसे अधिक पचास करोड़ बरस पहलेके दानवाकार पक्षी हैं। जिनसे उसी समयके भारी भारी योद्धा भीमकाय वानर अत्यन्त भयभीत थे। आजकल साधारण शरीरवाले तेज़ पक्षी एक घंटेमें डेढ़सौ मील तक उड़तेहैं। संभवतः उस समय इन पक्षि-दानवोंका वेग उनके बलके अनुरूप अत्यधिक रहा होगा। यदि हम मानलें कि सम्पाती और जटायुका वेग एक मिनटमें केवल सौ मीलका था तो सवा बरसमें यह लोग छः करोड़ मील तय कर सके। छः करोड़ मील तयकरनेके पहलेही आँच अत्यन्त भयंकर हो जानी चाहिये। यह आँच जटायु न सह सका, लौट आया। सम्पाती बढ़ा तो कुछ आगे जाकर उसके पर झुलस गये।

(२) यदि हम यह मानें कि इन पक्षियोंका वेग ऐसा असाधारण न रहा होगा, तो साधारण वेगसेभी पृथ्वीके वायुमंडलकी अत्यन्त क्षीण दशामें दस बीस मील ऊपर पहुँचनेपर इतना अधिक शीतका मुकाबला होताहै कि उससे वही अनुभव होताहै जो प्रचंड तापसे। शरीर जल जाताहै। तापकी अत्यन्त कमीसे शरीरकी रक्तवाहिनियाँ फट जातीहैं, रक्त निकल जाताहै और शरीर सूख जाताहै। नाड़ी-मंडल एक बार स्तब्ध वा मृत होगया तो फिर प्राणीको पृथ्वीपर गिर-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर मर जानेके सिवा और गति नहीं है। सम्पातीकीभी यही दशा हुई और वह धरतीपर जीवशेष होकर गिरा। इन रामदासों वानरोंको देखकर उसका नाड़ी-मंडल पुनरुज्जीवित होगया और बाजू फिरसे कामके होगये।

मुनि एक नाम चंद्रमा ओही।
लागी दया देखि करि मोही॥§२७ (४)
बहु प्रकार तेहिं ज्ञान सुनावा।
देह जनित अभिमान छुडावा॥ ,, (५)

अर्थ—वहाँ एक मुनि थे जिनका चन्द्रमा नाम था। मुझको देखकर उनको दया लगी। (संत कोमलचित और दयालु होतेही हैं, यथा—'नारद देषा बिकल जयंता। दया लागि कोमल चित संता')। उन्होंने बहुत प्रकारसे ज्ञान सुनाया और देहजनित (देहसे उत्पन्न) अभिमानको छुड़ाया।

नोट—१ वाल्मीकिजी लिखतेहैं कि मुनिने रामजन्मसे लेकर यहाँ तककी भविष्य कथा कही और अध्यात्ममें शरीरकी उत्पत्तिकी कथाका कहना लिखाहै। अन्य ऋषियोंने अन्य प्रकारका ज्ञान सुनाना लिखाहै। अतएव 'बहु प्रकार' पद देकर कविने यहाँ सबका मत कह दिया। २—चन्द्रमा ऋषि अत्रिजीके पुत्र हैं, आत्रेय और निशाकरभी इनका नाम है। अध्यात्ममें चन्द्रमा नाम दियाहै, यथा—'बोधयामास मां चन्द्रनामा मुनिकुलेश्वरः' और वाल्मीकीयमें 'निशाकर' नाम है। अर्थ दोनोंका एकही है जैसे सुग्रीव और सुकण्ठ, कुंभज और घटयोनी, इत्यादि। चन्द्रमा ऋषिका हाल नोट ३ में है।

टिप्पणी १—दया लगी तब ज्ञान सुनाया। तात्पर्य यह कि गृद्ध ज्ञानका अधिकारी नहीं था, मुनिने दयाके कारण इसे ज्ञान सुनाया। २—देहका अभिमान छुड़ाया। अर्थात् कहा कि देहसे आत्मा भिन्न है, इसीसे आत्माको दुःख नहीं है। देह जड़ है इससे इसको दुःख नहीं है। दुःख है देहाभिमानी होनेसे।*

* यथा—'देहमूलमिदं दुःखं देहः कर्म समुद्भवः॥१२॥ कर्म प्रवर्तते देहेऽहं बुद्धया पुरुषस्यहि। अहंकारस्त्वनादिस्यादविद्यासंभवोजडः॥१३॥ चिच्छायासादायुक्तस्तप्तायः पिण्डवत्सदा। तेनदेहस्यतादात्म्याद्देहश्चेतनवान्भवेत्॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नोट ३—वा० ६२, ६३ में कथा इस प्रकार है-संपातीने वानरोंसे कहा कि मैं इस विन्ध्यापर्वतपर आकर गिरा जो दक्षिणसमुद्रके तीरपर

१४॥ देहोऽहमितिबुद्धिः स्यादात्मनोऽहं कृतेर्बलात् । तन्मूल एष संसारः सुख-दुःखादि साधकः ॥१५॥ आत्मनो निर्विकारस्य मिथ्या तादात्म्यतः सदा । देहो-ऽहं कर्मकर्ताहमिति संकल्प्य सर्वदा ॥१६॥ जीवः करोति कर्माणि तत्फलैर्बध्यते वशः । ऊर्ध्वाधोभ्रमते नित्यं पापपुण्यात्मकः स्वयम् ॥१७॥ कृतं मायाधिकं पुण्यं यज्ञदानादि निश्चितम् । स्वर्गं गत्वा सुखं भोक्ष्ये इति संकल्पवान् भवेत् ॥१८॥ तथैवाध्यासतस्तत्र चिरं भुक्त्वासुखं महत । क्षीणपुण्यः पतत्यर्वाक् अनि-च्छन् कर्मचोदितः ॥१९॥ पतित्वा मण्डले चेंदोस्ततोनीहार संयुतः । भूमौपतित्वा व्रीह्यादौ तत्रस्थित्वा चिरं पुनः ॥२०॥...(इसके बाद श्लोक ४१ तक वही गर्भाधान, पिंड, जन्मादिकी कथा है जो विनयपद १३६ 'राम सनेहीसों तैं न सनेह कियो' एवं भागवतमें कपिलदेवजीने मातासे कहीहै और पूर्व लिखी-जाचुकीहै)... एवंदेहोऽहमित्यस्मदभ्यासान्निरयादिकम् । गर्भवासादिदुःखानि भवंत्यभिनिवेशतः ॥४२॥ तस्माद्देहद्वयादन्यमात्मानं प्रकृतेः परम् । ज्ञात्वादेहादि ममतांत्यक्त्वात्मज्ञानवान् भवेत् ॥४३॥ जाग्रदादि विनिर्मुक्तं सत्यज्ञानादिल-क्षणम् । शुद्धं बुद्धं सदाशांतमात्मानमवधारयेत् । ४४॥ चिदात्मनि परिज्ञाते नष्टे मोहेऽज्ञ संभवे । देहः पततु प्रारब्धकर्मवेगेनतिष्ठतु ॥४५॥ योगिनों नहि दुःखं वा सुखं वा ज्ञान संभवम् । तस्माद्देहेनसहितो यावत्प्रारब्ध संक्षयः ॥४६॥ तावत्तिष्ठ सुखेनत्वं धृतकंचुक सर्पवत् ।' (अध्यात्म ८) अर्थात् यहदेह दुःखकी जड़ है, देहकी जड़ कर्म है । कर्मकी जड़ अहंकार है, अहंकारकी जड़ अविद्या है । अहंकार चित्के साथ तप्तायः पिण्डके समान संयुक्त है । इन दोनोंका तादात्म्य होनेसे देहमें चैतन्य भासताहै, यही संसार है जो कि अविद्यामूलक है, पाप और पुण्यके फेरमें जीवात्मा मारा मारा फिरताहै । मैं सुख तथा दुःखवाला हूं यह प्रतीतिभी अध्यास कृत है । सुख भोगनेके लिए धर्मके कारण जीव स्वर्गलोकमें जाताहै, पुण्य क्षय हो जाने पर चन्द्रमंडलमें आ पड़ताहै, फिर व्रीह्यादि द्वारा वीर्य और रजमें आकर चतुर्विध भौतिक शरीरोंमेंसे कोई एक शरीर ग्रहण करताहै । इत्यादि ॥२०॥

'मैं देह हूँ' इस अभ्याससे निरय-अर्थात् नरककी प्राप्ति होतीहै, और इसी 'अभिनिवेश' 'मानभूवं भूयासम' इत्याकारक ज्ञानसे गर्भवासदि दुःख होताहै । इसलिए देहादिकी ममता छोड़कर आत्मज्ञान-सम्पादन करना चाहिए । शुद्ध, बुद्ध, शान्त स्वरूप आत्माकी भावना किया करे, चिदात्माके ज्ञान होनेपर मोह नष्ट हो जाताहै, फिर देह चाहे रहे, या न रहे ज्ञानी को सुख या दुःख नहीं होता अतः काँचलीवाले साँपकी तरह उससे (देहसे) दुःख या सुख न मानता हुआ रहाकर ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। यहाँ देवताओंसेभी पूजित एक पवित्र आश्रम था जिसमें निशाकर नामक उग्र तपस्वी ऋषि रहतेथे। शिखरसे कष्टके साथ मैं उतरकर उस आश्रममें जाकर वृक्षके नीचे बैठ गया और मुनिकी प्रतीक्षा करने लगा...स्नान किएहुए वे आते देखपड़े; भालु, बाघ, सिंह रेंगकर चलनेवाले जन्तु उनके साथ साथ आतेथे;जैसे दाताके साथ याचक। आश्रमपर पहुँचनेपर वे जन्तु लौटगए। उन्होंने मुझे देखा तो दया आई और बोले कि तुमको मैं पहचानताहूँ,तुम दो भाई हो-संपाती और जटायू। गृद्धोंके राजा हो और कामरूप हो। तुमने मनुष्यरूप धरकर मेरी चरणसेवा कीथी।—'गृद्धाणां चैव राजानौ भ्रातरौ कामरूपिणौ ॥ १९ ॥ मानुषं रूपमास्थाय गृह्णीतां चरणौ मम ॥ २० ॥'— (सर्ग ६०) तुम्हें क्या रोग होगया, पंख कैसे गिर वा जलगए सो कहो। मैंने उनसे हाल कहा कि गर्वसे मोहित होकर मैं और जटायु जीतनेकी इच्छा रखतेथे। पराक्रमका पता लगानेके लिए आकाशमें बहुत दूर तक उड़े, कैलाशपर मुनियोंके सामने हमलोग पण करके उड़ेथे कि अस्ताचल-तक सूर्यका पीछा करेंगे...बहुत ऊँचेपर पहुँचा कि जहाँसे पृथ्वी तालाबमें हाथीके समान देखपड़तीथी...तब मुर्छा आनेलगी, बड़े प्रयत्नसे मैंने सूर्यमें अपना मन और नेत्र लगाकर देखा तो वे पृथ्वीके समान विशाल देख पड़े...असावधानीसे मैं जलगया, मेरे पंख जल-गए, मैं विंध्यपर गिरा। राज्य, भाई, पक्ष और पराक्रमसे हीन अब मैं पर्वतसे गिरकर मरना चाहताहूँ। यह सुनकर ऋषिने ध्यान किया और मुझसे कहा कि तुम्हारे पंख जमैंगे, इत्यादि (रामजन्मसे यहाँतक की कथा कही)। यह भी बताया कि इन्द्रने दुःखिनी सीताको जाकर पायस खिलाया। और मुझे यह आज्ञा दी कि यहाँसे कहीं मत जाना, समयकी प्रतीक्षा करो। तुमको आजही मैं सपक्ष करदूँ, यह इच्छा होतीहै तोभी इसलिए मैं ऐसा नहीं करता कि तुम यहाँ रहकर अधिक लोक-कल्याण करसकोगे।—'उत्सहेयमहं कर्तुमद्यैव त्वां सपक्षकम्। इहस्थस्त्वं हि लोकानां हितं कार्यं करिष्यसि'—(६२।१३)। यहाँ रहकर दोनों राजपुत्रोंका कार्य करना, ब्राह्मण, गुरुओं, मुनियों और इन्द्रकाभी कार्य्य करना। इस तथा अनेक वाक्योंसे मुझे समझाया। मेरे मनमें आत्मघात करनेकी इच्छा हुईथी सो मुनिकी आज्ञासे मैंने छोड़ दी। प्राणोंकी रक्षाकेलिए जो बुद्धि मुनिने दीथी उसीसे मेरे सबदुःख दूर होतेह।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्रेता ब्रह्म मनुज तनु धरिही ।
तासु नारि निसिचरपति हरिही ॥ § २७ (६)
तासु षोज पठइहि प्रभु दूता ।
तिन्हहिं मिले तैं होब पुनीता ॥ ,, (७)
जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता ।
तिन्हहिं दिखाइ देहेसु तैं सीता ॥ ,, (८)
मुनि कइ गिरा सत्य भइ आजू ।
सुनि मम बचन करहु प्रभु काजू ॥ ,, (९)

अर्थ—'त्रेतायुगमें ब्रह्म मनुष्य-शरीर धारण करेंगे। उनकी स्त्रीको निश्चरराज हरण करेगा। उसकी खोजमें प्रभु दूत भेजेंगे। उनके मिलनेपर तू पवित्र होजायगा। तेरे पक्ष जमेंगे, चिंता न कर, तू उनको सीता दिखादेना'। मुनिकी वाणी आज सत्य हुई, मेरा वचन सुनकर प्रभुका कार्य्य करो।

टिप्पणी १—'त्रेता' पदसे पायागया कि यह वृत्तान्त सतयुगका है। २—मुनिने बाल, अरण्य और किष्किंधाकी कथा कही। 'ब्रह्म त्रेतामें मनुजतन धरेंगे', यह बालकांड हुआ, अयोध्यामें भरत-चरित है इससे उसे न कहा। 'नारि निसिचरपति हरेगा' यह अरण्य और 'खोजके लिए दूत भेजेंगे'से'तू पुनीत होगा००'तक जो मुनिने कहा यह किष्किंधा है। वही कथा संपातीने वानरोंसे कही। ३—'पठइहि प्रभु दूता'। प्रभुका भाव कि वे समर्थ हैं, सब जानतेहैं पर राजनीतिकी मर्यादा रखनेकेलिए दूत भेजेंगे।—[प्र०—भाव कि तुमने सूर्य्यापराध किया और वे सूर्यवंशभूषणके दूत हैं अतः उनके मिलनेसे पवित्र होगा] ४—'करसि जनि चिंता'से जनाया कि वह चिन्तित था कि विना पक्षके निर्वाह कैसे होगा। मुनिने उससे प्रथम कहा कि चिन्ता न कर तब सीताजीको दिखानेको कहा। भाव यह है कि प्रथम तेरा कार्य होगा, तेरे पक्ष जमेंगे तब तू दिखाना। इसीलिए मुनिने उसको वहीं रक्खा नहीं तो मुनिमें सामर्थ्य थी कि उसी समय पखने जमादेते।—§ २७ (४-५) का नोट ३ देखिए।—(प्र०—चिंता यह कि इतन काल कैसे बीतेगा।)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

५ (क)—गिरा सत्य हुई अर्थात् तुम मिले, मेरे पंख जमे। 'आजु' अर्थात् मैं आशा करतारहा हूँ कि कब मुनिवाक्य सत्य होगा, आज वह सत्य हुआ। मुनिगिरा मुझको सत्य हुई तो तुमकोभी अवश्य होगी, तुमको सीता मिलेंगी, तुम प्रभुका कार्य्य करो। (ख) 'सुनि मम बचन'। भाव कि मेरा वाक्य सत्य है, मुझे ज्ञानके द्वारा देख पड़ताहै कि तुम सीताको देखकर लौटोगे। अतः वचनपर विश्वास करो। पुनः, वे 'प्रभु' हैं वे तुमको अपने कार्यकेलिए सामर्थ्य देंगे। (ग) पूर्व जो कहाथा कि वचनसे सहायता करूँगा वह अब आगे कहतेहैं।

नोट—वाल्मीकिजी लिखते हैं कि ये बातें वानरोंको सुनाते २ उसके पंख जम आए। यह देख गृद्ध प्रसन्न होकर बोला कि राजर्षि निशाकरकी कृपासे सूर्यसे दग्धभी पंख फिर प्राप्त होगए। अतः संसारमें अप्राप्य कुछ नहीं है। तुम यत्न करो, अनुमित है कि तुम्हारे कार्यकी सिद्धि अवश्य होगी।*

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका।
तहँ रह रावन सहज असंका॥§२७ (१०)
तहँ असोक उपबन जहँ रहई।
सीता बैठि सोचरत अहई॥ ,, (११)

मै देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार।
बूढ भएउँ नत करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार॥§२८॥

अर्थ—त्रिकूटाचलपर † लंका बसी है। वहाँ रावण सहजही निःशंक रहताहै (वहाँका राजाहै)। वहाँ अशोकका उपवन है जहाँ सीता

* 'निशाकरस्यराजर्षेः प्रसादादमितौजसः॥ १०॥ आदित्यरश्मिनिर्दग्धौ पक्षौ पुनरुपस्थितौ।···सर्वथा क्रियतां यत्नः सीतामधिगमिष्यथ॥ १२॥ पक्षलाभो ममार्थं वः सिद्धि प्रत्ययकारकः। इत्युक्त्वा तान्हरीन्सर्वान्संपातिः पतगोत्तमः॥१३॥'—(वा० ६३)।

† हिंदी शब्दसागरमें चित्रकूटके विषयमें यह अर्थ लिखेहैं—१ तीन शृङ्गवाला पर्वत। २—वह पर्वत जिसपर प्राचीन लंका बसीहुई मानीजातीहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शोचमें डूबी बैठी रहतीहैं। मैं देखरहाहूँ, तुम नहीं देख सकते; क्योंकि गृध्रकी दृष्टि बहुत बड़ी होतीहै। मैं बुड्ढा होगया नहीं तो कुछ तुम्हारी सहायता करता।

टिप्पणी—१ (क) पर्वतपर लंका बसी है। इस कथनसे गिरि-दुर्गकी श्रेष्ठता दिखाई। (ख) 'सहज असंक' है अर्थात् किलेके भरोसे अशंक नहीं है किन्तु अपने पुरुषार्थके भरोसे निश्शंक है। वाल्मीकीयमें लिखाहै कि जाम्बवंतने संपातीसे पूछाथा कि रावण कहाँ रहताहै और जानकी कहां है। इसीसे उसने दोनोंका ठिकाना बताया। * गोस्वामीजीने यहां जाम्बवन्तका प्रश्न नहीं लिखा; गृद्धका उत्तर लिखकर प्रश्नभी जना दियाहै।

२—रावणको लंकापुरीमें बताया और सीताजीको अशोकके उपवनमें, इस भेदसे जनादिया कि जहां रावण है वहां जानकीजी नहीं हैं। 'बैठि अहई' से जनाया कि सदा बैठीही रहतीहैं, यथा—'देखि मनहि मन कीन्ह प्रनामा। बैठेहि बीति जात निसि जामा'। ३—'कछुक सहाय' अर्थात् वृद्धावस्था न होती तो ४०० कोस जाकर खबर लेआता, कुछ बड़ी बात न थी *।

नोट—१ 'तहँ असोक उपबन जहँ रहई...' से जनाया कि अशोक भी उन्हें शोकरहित न करसका। २—'सहज असंका', यथा—'सहज असंक सुलंकपति सभा गयउ मति अंध', 'सुनासीर सत-सरिस सोइ संतत करै बिलास। परम प्रबल रिपु सीसपर तदपि न कछु मन त्रास॥'—(लं०)।

देवी-भागवतके अनुसार यह एक पीठ स्थान है और यहां रूपसुन्दरीके रूपमें भगवती निवासकरतीहैं,—'गिरि त्रिकूट एक सिन्धुमँझारी। बिधिनिरमित दुर्गम अति भारी॥' ३—एक कल्पित पर्वत जो सुमेरुका पुत्र मानाजाताहै, वामनपुराणके अनुसार यह क्षीरोदसमुद्रमें है जहां देवर्षि रहतेहैं और विद्याधर, किन्नर गंधर्वादि क्रीड़ार्थ आतेहैं। नास्तिकों और पापियोंको यह नहीं दिखाईदेता'।—(इस तीसरेसे यहां तात्पर्य्य नहीं है)।

* यथा—'जाम्बवान्वानरश्रेष्ठः सह सर्वैः प्लवंगमैः। भूतलात्सहसोत्थाय गृद्धराजानमब्रवीत्॥२॥ क्व सीता केन वा दृष्टा कोव्यहरति मैथिलीम्। तदाख्यातु भवान्सर्वं गतिर्भव वनौकसाम्॥३॥'—(सर्ग ५९)। अर्थात् वानर श्रेष्ठ जाम्बवान सारे वानरोंकेसाथ पृथ्वीपरसे सहसा उठकर गृद्धराजसे बोला कि कृपया आप सब स्पष्ट कहिए कि सीता किसने देखी, कौन हरलेगया, इत्यादि॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नोट—वा० ५८ में संपातीने 'मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहिं दृष्टि अपार' को यों कहाहै कि—आकाशका पहला मार्ग कुलिंग पक्षियोंका है और अन्न खानेवाले कबूतरोंका, उससे ऊपरका मार्ग वृक्ष फल-खानेवालों एवं काकादि पक्षियोंका है। इसके ऊपरवाला मार्ग क्रौंच, कुररी, भास आदि पक्षियोंका है। उसके ऊपर चौथे मार्गसे बाज़, और पाँचवें मार्गसे गृध्र जातेहैं; उसके ऊपर हंसोंका मार्गहै फिर गरुड़का। हमलोगोंका जन्म वैनतेयसे है इसलिए हमकोभी गरुड़के समान देखनेकी शक्ति है। भोजनके बल तथा स्वभावसे ४०० कोश और उससे आगे तक देख सकतेहैं। हम लोगोंकी वृत्ति दूरसे देखी वस्तुसेही होतीहै ऐसाही विधान है। अतएव मैं यहींसे जानकीको देखरहाहूँ। *

जो नाँघै सत जोजन सागर।
करै सो रामकाज मति आगर॥ § २८ (१)
मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा।
राम कृपा कस भएउ सरीरा॥ ,, (२)
पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं।
अति अपार भवसागर तरहीं॥ ,, (३)
तासु दूत तुम्ह तजि कदराई।
रामु हृदय धरि करहु उपाई॥ ,, (४)

अर्थ—जो चारसौ कोशका समुद्र लाँघे और बुद्धिका स्थान (बुद्धिमान्) हो वह रामकार्य्य को करे। (अर्थात् बल और बुद्धि दोनोंमें पूरा हो वही करसकताहै)। मुझे देखकर मनमें धीरज धरो (अर्थात् यह प्रत्यक्ष प्रमाण रामकृपाके प्रभावका है अपनी आँखों देखरहेहो कि तुम्हारे देखते २ मैं कैसाका कैसा होगया। (देखो) श्रीरामजीकी कृपा-

* 'वैनतेयाच्च नो जन्म सर्वेषां वानरर्षभाः ॥२७॥ इहस्थोऽहं प्रपश्यामि रावणंजानकीं तथा। अस्माकमपि सौपर्णं दिव्यं चक्षुर्बलं तथा॥ २९॥ तस्मादाहारवीर्येण निसर्गेण च वानराः। आयोजनशतात्साग्राद्वयं पश्यामनित्यशः ॥३०॥' पुनः, यथा अध्यात्मे—'समुद्रमध्यं सालंका शतयोजन दूरतः। गृध्रत्वा-द्दूरदृष्टिर्मे नात्रसंशयितुं क्षमम्'—(सर्ग)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से मेरा शरीर कैसा होगया। पापीभी जिसका नाम स्मरण करके अत्यन्त अपार भवसागरके पार होजातेहैं, तुम उनके दूत हो, कादरपन छोड़कर, रामजीको हृदयमें रखकर उपाय करो।*

१ (क)—प्रथम संपातीने सबसे रामकार्य करनेको कहा, यथा—'सुनि मम बचन करहु प्रभु काजू'। अब कहतेहैं कि इतने वानरोंमेंसे जो ४०० कोशका समुद्र लाँघे वही रामकार्य करे अर्थात् अब एकही को करनेको कहते हैं। (ख) प्रथम कहा कि त्रिकूटाचलपर लंका है अब उसका ठिकाना बतातेहैं कि सौयोजन समुद्रपार है। (ग) 'सत-जोजन' का भाव कि यदि यह न बताते तो संदेह रहता कि किस समुद्रके पार है क्योंकि सागर तो सभी समुद्रोंको कहतेहैं।

२—'मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा' इस कथनसे सिद्ध होताहै कि शतयोजन सागर सुनकर वानरोंके हृदयमें कादरपन आगया और उनका धैर्य्य जाता रहाथा। यह लखकर उसने ये बचन कहे कि धीरज धरो कायरता छोड़ो। † ३-अपना प्रत्यक्ष प्रमाणदेकर फिर शब्द प्रमाण दिया कि'पापिउ जाकर नाम०'। पापी नामस्मरण करके भवपार होतेहैं; यह बात प्रयत्न नहीं है पर वेदपुराणादिमें है, वेही प्रमाण हैं। ४—'पापिउ'=पापीभी, ऐसा कथनका भाव कि वे भवपार होनेमें अत्यन्त असमर्थ हैं।' 'अति अपार भवसागर' का भाव कि ऐसे अपारको पापीभी पारकरजातेहैं तब तुमको सौयोजन समुद्र पार करना क्या है!

५—'तासु दूत तुम्ह तजि कदराई'। भाव कि पापीसे और प्रभुसे कुछ सम्बन्ध नहीं है तोभी प्रभुका नाम लेकर वह भवपार होताहै

* यथा अध्यात्मे (सर्ग ८)—"स्वस्तिवोस्तु गमिष्यामि सीतांद्रक्ष्यथनिश्चयम्। यत्नंकुरुध्वं दुर्लंघ्य समुद्रस्य विलंघने ॥ ५४ ॥ यन्नामस्मृति मात्रतोऽपरिमितं संसारवारांनिधिं तीर्त्वा गच्छति दुर्जनोऽपि परमं विष्णोः पदं शाश्वतम्। तस्येवस्थितिकारिणस्त्रिजगतां रामस्यभक्ताः प्रियाः यूयं किं न समुद्रमात्र तरणे शक्ताः कथं वानराः ॥ ५५ ॥" अर्थात्—तुम्हारा कल्याण हो, तुम निश्चित ही सीता को प्राप्त कर लोगे-समुद्रके उल्लङ्घन का यत्न करो। जिस भगवान् की कृपासे दुर्जन भी संसार सागरको पार कर लेताहै, क्या उसके ही सेवक तुम (वानर) समुद्रको पार न कर लोगे? अवश्य करोगे।

† आत्मतुष्टिप्रमाण अलंकार।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और तुम तो उनके दूत हो। कादरपनके रहनेसे कार्य सिद्ध नहीं होता अतः उसका त्याग कहा। ६—'राम हृदय धरि' का भाव कि जिनके प्रतापसे मेरे पक्ष जमे, जिनके स्मरणसे पापी तरतेहैं, उनका स्मरण करके उपाय करनेसे कार्य सिद्ध होगा। ‡

☞ 'यहां बिचारहिं कपि मन माहीं' से यहां तक 'संपाती मिलन प्रसंग' है।

नोट—१ 'सागर' पदमें यहभी ध्वनि है, कि जिसे रघुवंशी राजा सगरके पुत्रोंने खोदाहै वह लाँघनेमें अवश्य सहायता करेगा। और हुआभी ऐसाही, यथा—'जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहु श्रमहारी'। 'करै सो रामकाज' से जनाया कि 'राम' का काम है वे स्वयं सहायक होंगे और बुद्धि देंगे, तुम क्यों घबड़ाते हो, करनेको उद्यतभर हो जाओ।—(पं०)। २—'धरहु मन धीरा' से जनाया कि सबका हर्ष जाता रहाथा, यथा हनुमानबाहुके—"रामको सनेह राम, साहस लषन, सियरामकी भगति सोच संकट निवारिये, मुद मरकट रोग बारिनिधि हेरि हारे जीव जामवंतको भरोसो तेरो भारिये॥"

"सुनि सब कथा समीर कुमारा"—प्रकरण

असकहि गरुड †† गीध जब गयऊ।
तिन्हके मन अति बिसमय भएऊ॥ § २८ (५)
निज निज बल सब काहू भाषा।
पार जाइ कै † संसय राषा॥ (६)
जरठ भएउ अब * कहै रिछेसा।
नहिं तन रहा प्रथम बललेसा॥ ,, (७)
जबहिं त्रिविक्रम भए खरारी।
तब मैं तरुन रहेउँ ‡‡ बल भारी॥ ,, (८)

‡ काव्यार्थापत्तिकी ध्वनि है—(वीर)।
†† उमा—(ना० प्र०)। † कर—(न० प्र)
* अस—(भा० द) ‡‡ रहउँ (भ० द)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बलि बाँधत प्रभु बाढेउ सो तनु बरनि न जाइ ।
उभय घरी महँ दीन्ही सात प्रदछिन धाइ ॥२९॥

अर्थ—हे गरुड़ (वा हे उमा) ! इस प्रकार कहकर जब गृद्ध चला-गया, तब उन सब वानरोंके मनमें अत्यन्त विस्मय प्राप्त हुआ (भाव कि सीताजीके न मिलनेसे विस्मय थाही, अब समुद्र -उल्लंघन कैसे होगा यह अति विस्मयदायक हुआ) * । अपना अपना बल सबने कहा पर सबने समुद्र पार करजानेमें संदेहही प्रकट किया । ऋक्षराज जाम्बवंतने इस प्रकार कहा कि अब मैं बुढ्ढा होगया, शरीरमें पहलेवाले बलका लेशभी नहीं रहगया(अर्थात् यह कार्य कुछ न था हमारे युवावस्था के बलके लेशमात्रसेही होजाता । पर अब उतनाभी बल नहीं रहगया ।) जब खरारी (खरके शत्रु) भगवान् वामनरूप हुए, तब हमारी तरुण अवस्था (युवा) थी, और भारी बल था, बलिके बाँधनेके समय प्रभु जो बढ़े उस शरीरका वर्णन नहीं होसकता, मैंने दोघड़ीमें (उस शरीरकी) सात परिक्रमाएँ दौड़कर करलीं (ऐसा मेरा बल था) ।

टिप्पणी—१ (क) 'सब काहू भाषा', इस कथनसे प्रमाण न रहा कि कितने वानरोंने अपना बल कहा । 'पार जाइ कै संसय राखा' से प्रमाण होगया कि सौ यौजन समुद्र है इसीके पार करनेका संशय है । प्रथम सब वानरोंने अपना अपना बल कहा, तब जाम्बवंतने अपना बल कहा, फिर अंगदने कहा; इससे यह निश्चय हुआ कि जब अंगदने अंतमें सौयोजन जानेको कहा तब जाम्बवंतने ९० और अन्य वानरोंने ८० योजन तक जानेका सामर्थ्य कहा होगा । वा० सर्ग ६५ में सबका अपना अपना बल कहनेका प्रमाण है ।* †

---

* १ "संकुलं दानवेन्द्रैश्च पातालतलवासिभिः । रोमहर्षकरं दृष्ट्वा विषेदुः कपिकुञ्जराः ॥ ६ ॥ आकाशमिवदुष्पारं सागरं प्रेक्ष्य वानराः विषेदुःसहिताः सर्वे कथं कार्यमिति ब्रुवन् ॥ ७ ॥ विषण्णां वाहिनीं दृष्ट्वा सागरस्य निरीक्षणात् । आश्वासयामास हरीन्भयार्तान्हरिसत्तमः ॥ ८ ॥" (वा० ६४) । पुनः २ यथा—"बनचर बिकल बिषादबस देखि उदधि अवगाह"—(रामाज्ञा)

* † "गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः । मैन्दश्च द्विविदश्चैव अङ्गदो जाम्बवांस्तथा ॥२२॥ आबभाषे गजस्तत्र प्लवेयं दशयोजनम् । गवाक्षो योजना-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—'त्रिविक्रम भए खरारी'। खर=दुष्ट। भगवान् खरारी हैं अर्थात् दुष्ट राक्षसोंके शत्रु हैं। उनके परास्त करनेके लिए वामन रूप हुए। पुनः, खरारि=खर राक्षसके शत्रु रामजी।—[जितने अवतार हुए वे सब भगवान्केही कहे जातेहैं, चाहे वह साकेतविहारी द्विभुज श्रीरामजीके हों, चाहे श्रीमन्नारायण क्षीरशायी भगवान्के, चाहे विष्णु भगवान् वैकुण्ठ-निवासीके। वैष्णव सबमें अभेद भाव रखतेहैं। दूसरे, जिसका जो स्वरूप निष्ठ होताहै वह अपनेहीं इष्टके सब अवतार मानताहै और ठीकभी यही है]। बलिसे भगवान्ने तीन पग पृथ्वी माँगीथी। एकमें उन्होंने सातों पाताल और मर्त्यलोक नापलिए, एकमें सातो स्वर्ग नापलिए और एकके लिए बलिको बाँधा।—अ० § २९ (७) देखिए। ३—'बलि बाँधत प्रभु बाढ्यो', यहाँ बाँधने और बढ़ने में 'प्रभु' पद प्रयुक्त करके जनाया कि बलिबंधनकी सामर्थ्य इन्हींमें थी और किसीमें नहीं; इन्द्रादि सब देवता हारचुकेथे।

४—'सो तन बरनि न जाइ' कहनेका आशय यह है कि जिसका वर्णन नहीं होसकता कि कितना बड़ाथा ऐसे उस विशाल शरीरकी सात प्रदक्षिणायें दो घड़ी मात्रमें करलीं; ऐसा भारी बल मुझमें था। 'उभय घड़ी' कहनेका भाव कि वह रूप दोही घड़ी रहा। इसीसे हमने दौड़कर प्रदक्षिणाकी, नहीं तो प्रदक्षिणा दौड़कर नहीं कीजाती।—(यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है। क्योंकि प्रथम कहा कि अब पहलेका बल शरीरमें नहीं है; और, फिर उस बलको विशेष प्रमाण-द्वारा समर्थन कियाहै।)

न्याहगमिष्यामीति विंशतिम् ॥ ३ ॥ शरभोवानरस्तत्र वानरां स्तानुवाचह। त्रिंशतं तु गमिष्यामि योजनानां प्लवंगमाः ॥४॥ ऋषभो वानरस्तत्रवानरांस्तानुवाचह। चत्वारिंशद्गमिष्यामि योजनानां न संशयः ॥ ५ ॥...ततो वृद्धतमस्तेषां जाम्बवान्प्रत्यभाषत ॥ १० ॥ पूर्वमस्माकमप्यासीत्कश्चिद्गति पराक्रमः। ते वयं वयसः पारमनुप्राप्ताः स्मसांप्रतम् ॥ ११ ॥...सांप्रतं कालमस्माकं या गतिस्तां निबोधत। नवतिं योजनानांतु गमिष्यामि न संशयः ॥ १३ ॥...मया वैरोचने यज्ञे प्रभविष्णुः सनातनः। प्रदक्षिणीकृतः पूर्वंक्रममाणस्त्रिविक्रमः १५" अर्थात् सब बानर अपनी अपनी गति बतलाने लगे कि मैं इतने योजन जासकता हूं और मैं इतने योजन जासकता हूँ। अन्त में जाम्बवान् बोला कि मैं ९० योजन अर्थात् ३६० कोस जासकताहूँ यद्यपि मैं बहुत वृद्ध होगयाहूँ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्र०—१ 'अस कहि गरुड़ गीध जब गएऊ'। 'उमा' पाठ भी मिलताहै पर यहाँ गरुड़ सहेतुक है। गृद्ध और गरुड़ एक वंशके हैं, अरुण और गरुड़ भाई हैं। अरुणके पुत्र संपाती और जटायू हैं। २—विस्मय यह कि समुद्रका लांघना कैसे होगा।—[वा, पं०—कि इसे सीताजी यहींसे देखपड़तीहैं और हम सबभी विशाल हैं हमें नहीं देखपड़तीं।—(पर यहाँ प्रसंग उल्लंघनकाही है)]।

नोट—'तिन्हके मन अति बिस्मय भयऊ' कहकर फिर सबका अपना अपना बल कहना लिखा। बीचकी कथा वा० ६४ में है कि सबको विषादयुक्त देखकर अंगदने सबको विषादका परिणाम बताया और उत्साहित किया। इस तरह कि—'विषादमें बड़े बड़े दोष हैं, यह पुरुषको ऐसेही मारडालताहै जैसे क्रुद्ध सर्प बालकको, उद्योगके समय विषाद करनेवाले तेजहीन पुरुषका मनोरथ सिद्ध नहीं होता। देखें कौन महातेजस्वी इस महासमुद्रको पारकर सुग्रीवको सत्यप्रतिज्ञ ठहरावेगा, किसकी कृपासे सब यूथपतियोंका भय छूटेगा, सीताका पता लगेगा और हम सब हर्षपूर्वक किष्किंधा जायंगे? जो समर्थ हो वह हमें अभयबांह दे। जिसकी जितनी शक्ति हो वह कहे।' तब वानरोंने बल-कहा। इतनी कथा 'बिसमय' पदसेही लगालेनी चाहिए।

अंगद कहै जाउँ मैं पारा।
जिय संसय कछु फिरती बारा॥ ◊ २९ (१)
जामवंत कह तुम्ह सब लायक।
पठइअ किमि सबही कर नायक॥ ,, (२)

अर्थ—अंगदने कहा कि मैं पार तो चला जाऊँगा पर जीमें कुछ संशय फिरती (लौटती) बारका है। जाम्बवंत बोले कि तुम सब लायक हो पर तुम सबके नायक (सरदार) हो, हम तुमको कैसे भेजें।

जिय संसय कछु फिरती बारा

मा० त० भा०—चारसौ कोश समुद्र कूदनेसे बड़ा श्रम होगा, इसीसे लौटनेमें संशय है। यथा अध्यात्मे—'अङ्गदोप्याह मे गन्तुं शक्यं पारं महोदधेः। पुनर्लङ्घनसामर्थ्यं न जानाम्यस्ति वा न वा॥' (सर्ग ६) अर्थात् अङ्गदने कहा कि समुद्र पारकरनेकी शक्ति मुझमें है पर उधरसे फिर समुद्र उल्लंघनका सामर्थ्य है या नहीं यह मैं नहीं जानता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पांड़ेजी—अङ्गद फिरतीबार जो अपनेजीमें संशय करतेहैं उसका कई प्रकारसे अर्थ कियाजाताहै। १-लंका रूपवती स्त्रियोंसे भरीहुईहै और मेरी वानर जाति है एवं युवावस्था है, ऐसा न हो कि वहीं मोहित होकर रहजाऊँ। २-रावण और बालि मित्र थे; उस मित्रताके कारण प्रीतिरूपी फाँसी डालकर कहीं रावण मुझे फँसा न ले। ३—कहतेहैं कि कोई ब्राह्मण बालिका टिकायाहुआ नदीके किनारे रहताथा। अङ्गद बाल्यावस्थामें वानरोंके बच्चोंको साथ लेकर वहां कूदाकरतेथे जिससे ब्राह्मणपर छींटे पड़तेथे। एकदिन विप्रने कुपित होकर शापदेदिया कि जिस जलको तुम 'डाँकोगे' (लाँघोगे) फिर लौट न सकोगे। उस शापका स्मरण करके अङ्गद लौटनेका संशय करतेहैं—पर इसका कोई प्रमाण नहीं मिला, यदि मिले तो अर्थ पुष्ट है नहीं तो किसीका गढ़ा हुआ किस्सा है। दूसरे, यदि ऐसा शाप होता तो 'संशय' पदका प्रयोग न करते वरन् उनको निश्चय होता; क्योंकि ये देवांश हैं इनको विप्रशापका निश्चय होताहै।—यहतो इस अर्थके विषयमें हुआ। रहे प्रथम दो, वेभी लचर हैं क्योंकि उनमें अङ्गदकी कादरता और रघुनाथजीमें उनकी प्रीतिकी न्यूनता सूचित होतीहै।—[इन बातोंका निषेध रावण-अङ्गद-संवादसे स्पष्ट होजाताहै। यथा-'सुनु सठ भेद होइ मन ताके। श्रीरघुबीर हृदय नहि जाके'—लं० ◊ २०]—अतएव अर्थ यह जानपड़ताहै कि अङ्गद कहतेहैं कि जानेके समयमें शक्तिके सन्मुख जाऊँगा, जो शक्तिके सन्मुख जाताहै वह असमर्थभी हो तो समर्थ होजाताहै और जो शक्तिसे पराङ्मुख होताहै वह शक्तिमानभी हो तो अशक्त होजाताहै, जैसा अगस्त्य-रामायणमें कहाहै। यथा—'अशक्ताः शक्तिसम्पन्नाः येच शक्ति पराङ्मुखाः। असमर्थासमर्थास्युः शक्तिसम्मुखगामिनः॥'—[नोट—पर यह बात तो हनुमान्‌जीकेलिएभी होसकतीहै]।

प्र०—प्रायः नदी आदिमें करारके दूसरे भागमें पृथ्वी नीची होतीहै जहांसे उलटकर लाँघना कठिन है। पंजाबीजी कहतेहैं कि अङ्गदने सोचा कि कभी निश्चरोंसे मैंने युद्ध नहीं किया और वे बड़े बली सुनेजातेहैं; उनसे समर करके फिर समुद्र कूदनेमें न जाने समर्थ हूँ या न हूँ।

मा० म०—क्रमसे वानर १०, १० योजन बढ़तेगए। जाम्बवन्तने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

९० कहा, तब अङ्गदने सोचा कि यदि मैं कम कहूँगा तो हँसी होगी। इससे उसने सौ योजन लांघजानेको कहा और सबने तो जानेमें संशय रक्खाथा इससे इन्होंने लौटनेमें संशय रक्खा। अथवा, दुर्वासाके शापवश वे नहीं लौटसकतेथे—(पर इसका प्रमाण कोई नहीं दियाहै। मा० सं०)। अथवा, 'सहिदानी' नहीं है, जानकीजी क्योंकर पहचानेंगी, इससे दीनतावश जाना अस्वीकार किया।

किसीका मत है कि अङ्गद और अक्षयकुमार साथ पढ़तेथे। अङ्गदने एक दिन उसे बहुत पीटा। गुरुने सुना तब शापदिया कि अक्षयकुमारके एकही घूँसेसे तेरी मृत्यु होजायगी। तबसे अङ्गद लंकामें नहीं गए।—पर इसका प्रमाण हमें अबतक नहीं मिलाहै।

श्री० मि०—मानस-मयंकका दोहा यह है—'दश दश दश सब बढ़ गए नव्वेपर रह बूढ़। ताते अङ्गद दश बढ़े फिरिबो राखे गूढ़॥' यहां 'गूढ़' शब्दका आभप्राय यह है कि अङ्गदजीके सामने रघुनाथजीने हनुमान्‌जीको मुद्रिका दी और संदेश दिया—'बहु प्रकार सीतहि समुझायेहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आयेहु॥' अतएव अङ्गदने यह विचारकर कि आज्ञा तो हनुमान्‌जीको है और वे कुछ बोले नहीं, यह कहा कि 'फिरती बार' का संशय है। वह 'कुछ संशय' यही है कि कदाचित् श्रीरघुनाथजी कहें कि आज्ञा तो हमने सहिदानीके संयुक्त हनुमान्‌जीको दीथी, तुम किसके कहनेसे गए और क्या निशानी श्री जानकीजीकी प्रतीतिकेलिए लेगएथे, तब मैं क्या उत्तर दूँगा। यहां केवल हनुमान्‌जीके कुछ न बोलनेसे अङ्गदने ऐसा कहा, नहीं तो उन्हें जाने-आने-में संशय कदापि नहीं होसकताथा और न था।

शिला—सब वानर यहां हिचकिचातेहैं और सेतुबन्ध होनेपर तो न जाने कितने आकाशसे गएहैं। यहां अङ्गदके वचनमें भाव यही है कि कार्य तो हनुमान्‌जीको प्रभुने सौंपाहै, मैं कैसे जाकर करूँ। इसीभावसे जाम्बवन्तने और इन्होंनेभी संशय प्रगट किया। *

* औरभी अनेक भाव लोगोंने कहे हैं। जैसेकि—१ मन्दोदरी मौसी है वह रोक न ले। २—'फिरती बारा'=तीन बार मैं जाऊँ-आऊँ। 'जिय सन्सय कछु' क्या आपको इसमें सन्देह है? ३—संशय है कि हनुमान्‌जीसे प्रभु प्रश्न करेंगे कि तुमको मुद्रिका दीथी, इत्यादि, तुम क्यों न गए? तब वे क्या उत्तर देंगे। इत्यादि।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—१ जब सब बानर बोले तब अंगद नहीं बोले क्योंकि सिपाहकी पंक्तिमें राजाके बोलनेमें शोभा नहीं है। राजाओंकी पंक्तिमें राजाके बोलनेकी शोभा है। जाम्बवन्त ऋक्षराज हैं। जब वे बोले तब ये बोले। २—'जाउँ मैं पारा'। औरोंने जानेमें संशय रक्खा तब अंगदने लौटनेका संशय प्रकट किया। ३ 'जिय संसय कछु फिरती बारा' अर्थात् जानेमें कुछभी संशय नहीं है, लौटनेमें कुछ है।

४—'तुम्ह सब लायक' अर्थात् तुम जाकर कार्य करके लौट सकतेहो, इस सबकी योग्यता तुममें है। पर सिपाह सब बैठी रहे और राजा स्वयं काम करे यह अयोग्य है। *

नोट—वा० ६५। २०—३० में जाम्बवंतके वचन हैं कि "आपकी शक्ति हम जानतेहैं, आप हजार योजन तक जासकतेहैं, पर यह उचित नहीं। आप प्रेषणकर्ता स्वामी हैं हम सब प्रेष्य हैं, आप हम सबके रक्षणीय हैं, स्वामीकी रक्षा परम्पराकी रीति है। आप इस कार्यके मूल हैं, सब भार आपपर है। मूलके रहनेपर सभी कार्य्य सिद्ध होतेहैं। आप हमारे गुरु एवं गुरुपुत्र हैं। आपके आश्रयसे हम लोग कार्य सिद्ध करसकतेहैं।" इत्यादि। ऐसा कहकर फिर उन्होंने अंगद-को समझाया कि "चिन्ता न करो, मैं उसे प्रेरित करताहूँ जो इस कार्यको सिद्ध करेगा।"

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना।
का चुप साधि रहेहु बलवाना॥ ◊ २९ (३)
पवनतनय बल पवन समाना।
बुधि बिबेक बिज्ञान निधाना॥ ,, (४)
कवन सो काज कठिन जगमाहीं।
जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥ ,, (५)
रामकाज लगि तव अवतारा।
सुनतहिं भएउ पर्बताकारा॥ ,, (६)

* "तमाह जाम्बवान् वीरस्त्वं राजा नो नियामकः। न युक्तं त्वां नियोक्तुं मे त्वं समर्थोसि यद्यपि॥"—(अध्यात्म ९)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—ऋक्षराज जाम्बवान्‌जी हनुमान्‌जीसे कहतेहैं कि—अरे बलवान् हनुमान् ! सुनो ! तुम क्या चुप (मौन) साधे हुएहो। तुम पवनपुत्र हो, (अतः) तुम्हारा बल पवनदेवके बलके समान है, और तुम बुद्धि, विवेक और विज्ञानके खज़ाना वा समुद्र हो। संसारमें कौनसा कठिन काम है जो, हे तात ! तुमसे न होसके। श्रीरामजीके कार्य्यके लिएही तुम्हारा अवतार है—यह सुनतेही हनुमान्‌जी पर्वतके समान विशाल काय होगए। *

टिप्पणी १—(क) 'कहइ रीछपति' इति। यहाँ 'रीछपति' पद देकर इनके बोलनेका कारण कहदिया। सबसे बड़े बूढ़े हैं, फिर ऋक्षराज हैं; अतएव येही हनुमान्‌जीको प्रेरित करसकतेथे। इसीसे इन्होंने प्रेरणाकी। (ख) 'हनुमान्' और 'बलवान' सम्बोधनका भाव कि जन्म लेतेही तुमने इन्द्रके वज्रके गर्वको चूर्ण करदियाथा, वज्र तुम्हारा कुछ न करसका, तुम ऐसे बलवान हो। उसपरभी अब तो तुम्हारी तरुणावस्था है। (ग) 'का चुप साधि रहेहु' अर्थात् सबने अपना अपना बल कहा और तुम बलवान होकरभी चुपही बैठे हो, यह क्या बात है ? क्यों नहीं बोलते ?

२—'पवनतनय-बल पवन समाना ।०', इस कथनसे सूचित किया कि जाम्बवंतने इनके जन्मकी कथा कही, फिर इनके बलकी प्रशंसा की। यथा—"जयति बालकपिकेलि-कौतुक उदित चंड कर मंडल ग्रासकर्ता। राहु रवि-शक्र-पवि-गर्व-खर्बीकरण शरण भयहरण जय भुवनभर्ता" इति विनये। पुनः, "जाको बाल बिनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को। जाकी चिबुक चोट चूरन कियो रद मद कुलिस कठोर को" इति विनये। ३—बुद्धि-विवेक-विज्ञानके निधान कहनेका तात्पर्य कि जिनमें ये हैं वे सब काम करसकतेहैं। बुद्धिसे कार्यको समझकर बलसे उसे सिद्ध करे। कार्यमें विवेक रक्खे जिसमें अनुचित न होने पावे और विज्ञानसे कार्यका अनुभव करे कि अनुचित न होनेपावे। ४—'सुनतहि भएउ पर्वताकारा',

* यथा अध्यात्मे—"इत्युक्त्वा जाम्बवान् प्राह हनूमन्तमवस्थितम्। हनूमन् किं रहस्तूष्णीं स्थायते कार्यगौरवे। त्वंसाक्षाद्वायुतनयो वायुतुल्यपराक्रमः। रामकार्यार्थमेव त्वं जनितोसि महात्मना। श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं हनूमानति हर्षितः। बभूवपर्वताकारस्त्रिविक्रम इवापरः।"—(९)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इससे जनाया कि रामकार्यकेलिए अपना अवतार सुनकर इनके हृदयमें बड़ा हर्ष हुआ, यथा—"रामकाज लगि जनम जग सुनि हरषे हनुमान' इति रामाज्ञा । ५—यहांपर मुख्य दो बातें जाम्बवन्तने कहीं—एक तो यह कि तुम ऐसे ऐसे बलवान् हो और तुम्हारा जन्म रामकार्यहीके निमित्त हुआहै और दूसरे कि तुम क्या चुप साधे बैठे हो । पहलेके उत्तरमें वे पर्वताकार विशाल शरीर हुए और दूसरेके उत्तरमें उन्होंने सिंहनाद किया जैसा आगे कवि लिखतेहैं ।

पं०—'पवनतनय बल पवन समाना...' इति । पवनसुत हो अतएव जैसा पराक्रम वायुका समुद्र लांघनेमें है वैसाही तुम्हारा है, लांघनेमें कोई यत्न नहीं करना पड़ता । केवल सिंधुही लाँघना नहीं है, आगे औरभी कुछ कार्य करनाहै—महाबलवान् छलकारी प्राणियोंसे काम पड़ेगा—जिसमें बुद्धि, विवेक और विज्ञानसे काम लेना पड़ेगा; सो तुम बुद्धि-विवेक-विज्ञानके निधानही हो । तुम सबमें पार पाओगे । जहां जिसका काम होगा वहां उसे काममें लाओगे । बुद्धिसे व्यवहार समझोगे, विवेकसे ऊँचनीचका निर्णय करसकोगे और विज्ञाननिधान होनेसे तुमको अनेक शास्त्रोंका ज्ञान है इससे तुम शास्त्रानुसार मिलोगे और भविष्यका विचारभी करलोगे ।—(प्र०) ।

☞ शिला—१ जबतक जाम्बवान् हनुमान्‌जीकी प्रशंसा करतेरहे और रामजीका नाम न लिया तबतक वे कुछ न बोले * । जब 'राम'

* र० ब०—अंगिरास्मृतिकार लिखतेहैं कि गुरुजनोंके सन्निधानमें मौन रहना चाहिए । जाम्बवान् एक तो सबमें वृद्ध दूसरे बलवानभी हैं, जैसा उनके बलकथनसेही स्पष्ट है । फिर अंगदभी गुरुतुल्य है; क्योंकि युवराज है, सबका नायक है । उसपरभी श्रीरामजीकी दीहुई मुद्रिका, जो रामजीकेही तुल्य है उनके पास है, मानों एक गुरु येभी वहाँ विराजमान हैं । तब बोलनेकी आवश्यकता कहाँ रहगई । फिर रामजीने उन्हें 'सुत' कहाहै—'सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं' । इससे रामजी पिताके समानहुए । पितृकार्य्यमें मौन रहनाही चाहिए । अतएव हनुमानजी मौनरहे । प्रमाण यथा—'संध्ययोरुभयोर्जाप्ये भोजने दन्तधावने । पितृकार्य्येच दैवे च तथा मूत्रपुरीषयोः ॥१॥ गुरूणांसन्निधौ दाने योगे चैव विशेषतः । एतेषु मौनमातिष्ठन् स्वर्गं प्राप्नोति मानवः ॥२॥' पं०, पां० प्र०—हनुमानजीको अपना बल विस्मृत होजाताहै, स्मरण करानेसे याद आताहै । अतएव जाम्बवन्तने बल स्मरण कराया । वा० उ० सर्ग ३६ में शापकी कथा है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नाम लिया—'रामकाज लगि तव अवतारा', तब वे गरज उठे। २—जाम्बवन्तने कहाथा कि—(१) 'का चुप साधि रहेउ बलवाना', (२) 'पवनतनय बल पवन समाना', (३) 'बुधि बिबेक बिज्ञान निधाना', (४) 'कवन सो काज कठिन जगमाँहीं०' और (५) 'रामकाज लगि तव अवतारा'। इनके उत्तर क्रमसे हनुमान्‌जीमें ये हैं—(१) सिंहनाद करि बारहिं बारा', (२) 'लीलहि नाँघौं जलनिधि खारा', (३) सहित सहाय रावणहि मारी', (४) 'आनौं इहाँ त्रिकूट उपारी' और (५) 'सुनि कपि भएउ पर्बताकारा'।

नोट—वा० स० ६६ भरमें हनुमान्‌जीके जन्म, देवताओंसे वरदान इत्यादिकी कथा है जो जाम्बवान्‌ने उनसे कही जो सुन्दरकांडमें एवं इस कांडमें पूर्व कुछ लिखीजाचुकीहै। 'पवनतनय' का भाव वा० स० ६७। १० के अनुसार यह है कि पवनदेव बलवान्, सीमारहित आकाशमें चलनेवाले, शीघ्रगामी और लोगोंके प्राण इत्यादि हैं वैसेही तुम हो।

कनक बरन तन तेज बिराजा।
मानहु अपर गिरिन्ह कर राजा॥ § २९ (७)
सिंहनाद करि बारहिं बारा।
लीलहि नाघउँ जलनिधि † खारा॥ ,, (८)
सहित सहाय रावनहि मारी।
आनौं इहां त्रिकूट उपारी॥ ,, (९)
जामवंत मैं पूँछउँ तोही।
उचित सिखावनु दीजहु मोही॥ ,, (१०)

अर्थ—(कैसे पर्वताकार हुए सो कहतेहैं कि) उनके तनका रंग-सोनेकासा है, तनमें तेज विराजमान है, (ऐसा मालूम होताहै) मानों यह दूसरा पर्वतोंका राजा (सुमेरु) है। बारंबार सिंहकी तरह गरज गरजकर बोले कि इस खारी समुद्रको मैं खेलहीमें लाँघ जाऊँगा (अर्थात् एक क्या मैं सारे समुद्रोंको लांघ सकताहूँ और यह जो खारी समुद्र है यह तो सबसे छोटा है इसका लाँघना क्या? यह तो मेरेलिए खेल है)। रावणको उसके सहायक सेना आदि सहित मारकर

† जलधि अपारा—(ना० प्र०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्रिकूटाचलको यहां उखाड़कर ले आऊँ ? (अभिप्राय यह कि संपाती की समझमें लंका दुर्ग बड़ा दुर्गम और रावण बड़ा भारी वीर भलेही क्यों न हो, पर मैं तो उसको और उसकी सेनाको मारडालनेको समर्थ हूँ और दुर्गकी क्या, मैं पर्वतका पर्वत उखाड़कर ला सकताहूँ)। हे जाम्बवान्। (बल तो हमने तुम्हारे प्रेरणा करनेसे अपना बतादिया जैसे औरोंने पूर्व अपना अपना बतायाहै। पर मेरेलिए उचित कर्त्तव्य क्या है) मैं आपसे पूछताहूँ, आप मुझे उचित सलाह दीजिए।— ('उपारी' संस्कृत उत्पाटन शब्दसे बनाहै।)

टिप्पणी १—'कनकबरन तन०'। यहाँ हनूमान्‌जीको सुमेरु से उपमा दी। हनुमान्‌जी कनकवर्ण वैसेही सुमेरु सुवर्णमय; हनुमान्‌जीका स्वरूप भारी और सुमेरुभी भारी; सुमेरु पर्वतोंका राजा, हनुमान् कपिराज, यथा—'सकल गुणनिधानं वानराणामधीशम्'—(सु० मं०), 'जयति मर्कटाधीश मृगराज विक्रम महादेव मुद मंगलालय कपाली'—(विनय), और 'वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ'—(ब०मं०)। —उक्तविषयावस्तूत्पेक्षा है।

२—'उचित सिखावन दीजहु मोही' इति। भाव यह कि जो हमने अपना बल रावणवध इत्यादि कहा सो अनुचित है क्योंकि इसमें रामजीका यश नहीं है किंतु अपमान है। यही बात अंगदने कहीहै, यथा— 'जो न राम अपमानहि डरऊँ। तोहि देखत अस कौतुक करऊँ॥ तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तव गाँउ। तव जुवतिन्ह समेत सठ जनकसुतहिं लैजाउँ॥'—(लं० ◊ ३०) अपनी बातको अनुचित समझतेहैं इसीसे उचित उपदेश माँगतेहैं।

मा० म०—जब हनुमान्‌जी उपदेशकोंके सींव श्रीरामचन्द्रजीके निकट से चले तब उन्होंने शिक्षाके सींव दो उपदेश दिए।—'कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु'। तथापि यहाँ हनुमान्‌जीने जाम्बवन्तसे पूछा; इसका कारण यह कि वे वीररसमें मग्न होगए अतएव वह (प्रभुके उपदेशकी) सुधि जातीरही। अतः जाम्बवन्तसे पूछा तो उन्होंने वही उपदेश दिया और उनको लड़ैतीपीव श्रीरामचन्द्रजीमें दृढ़ किया।

दीनजी—आगे सुन्दरकांडमें कहाहै—'जामवंतके बचन सोहाये' वे सोहाए वचन यही हैं जो आगे जाम्बवन्तजी कहरहेहैं, जिनको सुनकर हनुमान्‌जीका अभिमान दबगया और हनुमान्‌जी अनुचित-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कथनके दोष तथा दंडसे बचगए, नहीं तो झूठे ठहरते, क्योंकि रावण उनके हाथसे न मरता। हनुमान्‌जी आवेशमें ऐसी बातें कहगए—(प्र०), जिनका पूर्णकरना उनकी सामर्थ्यसे बाहर था; क्योंकि रावणकी मृत्यु रामजीसे होनीथी। अतएव अपनी भूलपर विचार करके उन्होंने कहा कि हे जाम्बवन्त! मैं आपसे पूछताहूँ कि क्या करूँ। मुझे उचित शिक्षा दीजिए; क्योंकि मैं जो कुछ कहगया उसमें अनौचित्य और औचित्य दोनों हैं, आप मुझे औचित्य बतलाइये। २—यहां वीररस है। रामकार्य्यकरनेका उत्साह स्थायीभाव है, जाम्बवन्तके वचन उद्दीपन विभाव, और प्रसन्न होना, बल संभाषणादि अनुभाव हैं, उग्रता आदि संचारी हैं।—(वीरकवि)।

शिला—'लीलहि नाघौं जलनिधि खारा' के 'खारा' का भाव यह कि मैं सातो समुद्र लांघजाऊँ यह क्या है। पुनः यहभी कि यह कुछ मीठा नहीं है कि इसमें स्नान, जलपान, विहार आदिमें देर लगादूँ।

एतना करहु तात तुम्ह जाई।
सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥ऽ २९ (११)
तब निज भुजबल राजिवनयना।
कउतुक लागि संग कपि सयना॥ ,, (१२)

अर्थ—हे तात! तुम जाकर इतनाभर करो (अर्थात् अधिक पुरुषार्थका अभी काम नहीं है) कि सीताको देख आकर ख़बर कहो। तब राजीवनयन रामजी अपने बाहुबलसे, कौतुकके लिए वानरी सेना संग लेंगे।

टिप्पणी—१ 'निज भुजबल' का भाव कि अपने बाहुबलसे निश्चर संहार करेंगे, सेना तो केवल कौतुकके निमित्त है। ☞ 'राजिवनयन' पदका प्रयोग प्रायः तब तब कविने कियाहै, जबजब कृपादृष्टि होना सूचित कियाहै। यथा—'देखी राम सकल कपि सैना। चितइ कृपा करि राजिवनयना', 'राजिवनयन धरे धनुसायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक'। इत्यादि। यहाँ इस पदके प्रयोगका तात्पर्य यह कि निश्चरोंपर रामजीकी कृपा है, उनको मारकर मुक्ति देंगे। यथा—'उमा राम मृदुचित करुनाकर। बैरभाव सुमिरत मोहि निसिचर॥ देहिं परमगति सो जिय जानी। अस कृपालु को कहहु भवानी॥'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रा० प्र० श०—यह लीला-विभूति प्रभुका कौतुकागार है, यथा—'जग पेखन तुम्ह देखनिहारे'। जब जीवोंपर कृपादृष्टि होतीहै तभी वे इस लीला-विभूतिमें आतेहैं। सामुद्रिकमें कहाहै कि जिसके कमलवत् नेत्र होतेहैं वह दयावान् और दूसरोंका कष्ट निवारण करनेवाला होता है। विविधि भावोंके अनुकूल जहाँ कविने नखशिख कहाहै वहाँ सामुद्रिकके मतसे भगवत्के गुणही कहनेका तात्पर्य्य है।

पं०—दुष्टवध-प्रसंगमें 'राजिवनयन' महासौम्य विशेषण देनेका भाव यह है कि—१ हृदयका कोप आँखोंमें प्रकट होताहै। प्रभुके हृदयमें कोप नहीं है, क्योंकि यदि होता तो दुष्टोंको मुक्ति कैसे देते? २—कोप तो पराएपर होताहै और ये तो अपने पुराने दास हैं, अब कृपादृष्टिसे उनको पुनः पार्षद बनानाहै। अतएव 'राजिवनयन' कहा।

छंद—

कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं।
त्रैलोक पावनु सुजसु सुर मुनि नारदादि बषानिहैं॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परमपद नर पावई।
रघुबीर-पद-पाथोज मधुकर दासतुलसी गावई॥

अर्थ—कपिसेना संग लिएहुए निश्चरका नाश करके रामजी सीताजीको लायेंगे। इस त्रैलोक्य-पावनकर्त्ता सुन्दर यशको सुर, मुनि और नारद आदि बखान करेंगे। जिसे मनुष्य सुनते, गाते, कहते, समझते परमपद पातेहैं और पावेंगे और जिसे रघुवीरपद-कमलका मधुकर तुलसीदास गाताहै।

टिप्पणी १—'नारदादि बषानिहैं' इति। श्रीरामचरितके बखान करनेमें नारदजी सबके आदिमें हैं, सबमें प्रधान येही हैं, इनकी प्रथम गिनती कीगईहै। यथा अध्यात्मे—'यस्यावतार चरितानि विरंचि लोके गायन्ति नारद मुखाभव पद्मजाद्याः।' २—संपातीने वानरोंसे किष्किन्धाकांड तक का चरित कहाथा—◊ २६ (६-८) देखिए। अब यहाँ जाम्बवंतजी आगेका अर्थात् सुंदरसे उत्तरकांड तकका चरित कह-रहेहैं। (ख) 'कपिसेन संग संहारि निसिचर राम सीतहि आनिहैं', यह लंकाकांड है। और (ग) 'त्रैलोक्यपावन सुजसु सुर मुनि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नारदादि वषानिहैं', यह उत्तरकांड है। यथा—'राजा राम अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनि बर बानी' यह यशबखान उत्तरका है जब राजा हुए।

☞ ३ किष्किंधाकांडकी समाप्तिमें सातोकांड समाप्त किए। इससे यह दरसाया कि इस काण्डके पाठ करनेसे सातोकांडके पाठका फल है।

४—'जो सुनत गावत कहत००' इति। यहाँ सुयशका माहात्म्य कहतेहैं। 'जो सुनत'=श्रोता होकर सुननेवाले। 'गावत'=रागसे गानेवाले। 'कहत'=वक्ता वा व्यास होकर कहनेवाले। और, 'समुझत'=अर्थको और भावको समझनेवाले।—ये चारो परमपद पातेहैं। मुक्ति चार प्रकारकी वैष्णवसिद्धान्तसे है—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य। और, यहाँ चार क्रियाएँ दीहैं—सुनत, गावत, कहत और समुझत। क्रमसे, सुननेवाले सालोक्य पातेहैं, गानेवाले सामीप्य (क्योंकि भगवान्‌का श्रीमुखवाक्य है कि मैं वहीं रहताहूँ, जहाँ मेरे भक्त यशगान करतेहैं। यथा—'मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद'), वक्ता सारूप्य (क्योंकि व्यास भगवान्‌का स्वरूप हैं) और समझनेवाले सायुज्य मुक्ति पातेहैं। यथा—'जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई'।—'प्रथम निदर्शना अलंकार' है।

५—सुनने-गाने-कहने और समझनेवाले, इन चारोंमेंसे गोस्वामीजी अपनेको गानेवाला कहतेहैं—'दास तुलसी गावई'। और लोग सुयश गाकर परमपद पातेहैं पर 'तुलसी' रामपद-प्रीति होनेके लिए गातेहैं। ये दो बातें कहकर जनाया कि श्रीरामचरित श्रीरामपदारविन्दमें रति (प्रेम) और परमपद दोनोंके दाता हैं। यथा—'रामचरन-रति जो चहै अथवा पद निर्वान। भाव सहित सो यह कथा करै श्रवनपुट पान॥'

६—'रघुबीरपद पाथोज मधुकर' इति। भाव कि जैसे—(क) मधुकर मकरन्द पान करताहै वैसेही मैं तुलसीदास श्रीरामपदारविन्दमें अनुराग करताहूँ। यही मकरंदका पान करनाहै। यथा—'पद पदुम परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करइ पाना'। (ख) मधुकर गुंजार करता है और मैं गाताहूँ।—[१ प्र०—भ्रमर विना पद्मके स्थिर नहीं होता, यथा—'पदुम भँवर बिनु दूबर है पदुम भवँर संबंध सनातन देवरचित नहि बरबर है'—(जानकीविंदु)। इस कारणसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं इससे कि समुद्र लंघन करनाहै कमलको हृदयमें रखना कहा। २—यहाँ परंपरित रूपक है। जाम्बवंतके मुखसे रूपक कहलाना 'भाविक अलंकार' है।]

७—'परमपद नर पावई' इति। 'नर' पद देकर जनाया कि नारदादिके बखानेहुए चरितोंके सुननेके अधिकारी 'नर' हैं, 'नारी' नहीं। यथा—'जदपि जोषिता अन अधिकारी।००'। इसीसे परमपदका पाना 'नर' को कहाहै, नारीको नहीं। और, तुलसी जो रामचरित भाषामें गातेहैं उसके अधिकारी तो 'नर नारी' सभी हैं। इसीसे यहाँ 'सुनहिं जे नर अरु नारि' ऐसा पद दिया। ८—यहाँ प्रथम 'सुनत०' पद दिया, क्योंकि श्रवणभक्ति नवधामेंसे प्रथम भक्ति है। 'सुनत' से 'श्रवण भक्ति' और 'गावत' से 'कीर्त्तन-भक्ति' जनाई। कीर्त्तन दो रीतिसे होताहै—एक तो गानरीतिसे, दूसरा कथारीतिसे। इसीसे गाना और कहना दोनों भेद कहे। 'समुझत' से स्मरण-भक्ति और 'रघुबीर-पदपाथोज' से पादसेवन-भक्ति कही।

मा० म०—'जो सुनत गावत०' का भाव कि इस कांडके तत्त्व कथन करनेवालेके समीप 'उत्तम समझनेवाला' चाहिए और इसके गानेवालेके निकट प्रेमपूर्वक सुननेवाला चाहिए। तात्पर्य कि जो इस प्रकार समझेंगे और गायंगे वे अवश्य परमपद पायंगे।

पं०, प्र०—'कौतुक लागि' का भाव कि जो निश्चरोंने देवतोंको बहुत दुःख दियाहै उसका बदला वानरों द्वारा सूत्रधार यहां लक्षित करतेहैं और राक्षसोंका गर्वभी इनके द्वारा हरण करायंगे। पुनः, भाव कि जिसकी मायाका कौतुक यह सारा ब्रह्माण्ड है वह बंदरोंको साथ लेकर, केवल वानर और निश्चरका कौतुक देखना चाहताहै।

पं०—जाम्बवन्तके मुखसे रामचरितका माहात्म्य छंदमें कहा कि 'परमपद पावहीं'—(यह त्रेतायुगकी बात है जब संस्कृतही देश-भाषा थी, यहां तक कि वानर हनुमान्‌जीभी उस भाषाके पूर्ण पंडित थे) और आगे गोस्वामीजी अपने मुखसे रामसुयश-श्रवणादिका फल कहतेहैं जिसमें स्त्रीपुरुष, वर्णाश्रमादि सभोंको अधिकारी कहतेहैं।

भव भेषज रघुनाथजसु सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्हकर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि / त्रिपुरारि ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—रघुनाथजीका यश भवरोगकी दवा है, जो स्त्री और पुरुष इसे सुनतेहैं उनके सब मनोरथ श्रीरामजी, त्रिशिराके शत्रु, वा त्रिपुरके शत्रु शिवजी सिद्ध करतेहैं।

टिप्पणी—१ 'सकल मनोरथ सिद्ध करहिं' अर्थात् इस लोकमें सुखसंपत्तिका भोग करतेहैं और भवसे छूटकर रामधामको जातेहैं, क्योंकि रघुनाथयश भवरोगकी दवा है। यथा—'जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख संपति नाना बिधि पावहिं॥ सुरदुर्लभ सुख करि जगमाहीं। अंतकाल रघुपतिपुर जाहीं॥' २–'सिद्ध करहिं त्रिसिरारि' कहनेका भाव कि नारदादिकी वाणीमें आपही प्रभाव है और हमारी वाणीमें त्रिशिरारिका भरोसा है वेही सिद्ध करेंगे।

☞ 'त्रिसिरारि' पाठ शुद्ध है क्योंकि रामयश सुननेवालेके मनोरथके सिद्धकर्त्ता सब कांडोंके अंतमें रघुनाथजीहीको लिखाहै। यथा—

बालकांड—'उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं।
बैदेहि-राम-प्रसाद ते जन सर्वदा सुख पावहीं॥'

लंकाकांड—'समर-बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान।
बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहिं देहिं भगवान॥'

उत्तरकांड—'सतपंच चौपाई मनोहर जानि जे नर उर धरहिं (धरे)।
दारुन अविद्या पंचजनित बिकार श्रीरघुपति हरहिं (हरे)॥'

तथा यहां—'तिन्हकर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि'।

सातोंकांडोंकी फलस्तुतियोंके भाव

(१) बालकांडमें रामजीका व्रत बंधुविवाहादि सुखका वर्णन है; अतएव बालकी समाप्तिमें 'सुख और उत्साह' की प्राप्ति कही। (२) अयोध्याकाण्डमें भरतजीका प्रेम और वैराग्य वर्णन है; अतः उसके अन्तमें प्रेम और वैराग्यकी प्राप्ति कही, यथा—'भरतचरित करि नेम तुलसी जे सादर सुनहिं। सीयरामपद प्रेम अवसि होइ भवरस बिरति'। (३) अरण्यमें रामजी स्त्रीके विरहसे दुःखीहुए; इसीसे वहाँ अन्तमें स्त्रीका त्याग कहाहै, यथा—'दीपसिखासम जुवतितन मन जनि होसि पतंग' (४) किष्किंधामें रामजीका मनोर्थ सिद्ध हुआ—हनुमान् सुग्रीव ऐसे सेवक मिले, सीताशोधका उद्योग हुआ; अतएव

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसके अन्तमें मनोरथकी सिद्धि कही। (५) सुन्दरकाण्डमें रामजीको बिना जहाज़ही समुद्रपार उतरनेका उपाय मिला; इसीसे उसकी समाप्तिमें बिना जहाज़के भवसागरका तरना कहा। यथा—'सकल सुमंगलदायक रघुनायकगुनगान। सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान॥' (६) लंकामें रामजीको विजय प्राप्तहुई; अतः वहाँ विजय विवेक विभूतिकी प्राप्ति कही। (७) उत्तरमें राज्याभिषेक हुआ; यह दीनोंकेलिए याचनाका समय है; अतएव वहाँ गोसाईंजी अपना माँगना लिखतेहैं। यथा—

'मो सम दीन न दीनहित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंसमनि हरहु बिषम भवभीर॥'

दीनजी—हमें 'त्रिपुरारि' ही संगत जँचता है। महादेव रामभक्तिके आचार्य हैं, वेही रामयश गायकोंके मनोरथ सिद्ध करतेहैं। इस कांडके आदिमेंभी काशीपुरी और काशीपति दोनोंकी वंदना दो सोरठोंमें कीगईहै। तदनुसार अन्तमें महादेवजीके विषयमें लिखना संगत है। आदिअंत एकसा उत्तम होताहै।

मा० म०—ग्रन्थकारने अन्तमें सिद्धान्त कहा कि जो 'नरनारि' भवभेषजरघुनाथके यशको सुनेंगे उनके सब मनोरथ त्रिपुरारि शिवजी पूरे करेंगे। यहां 'शिवजी फल देंगे' ऐसा कहनेका यह कारण है कि किष्किंधाकांड काशीरूपी है; इसीसे कहा कि काशीपति शिवही इसका फलदेंगे।

प्र०—दोनों पाठ हैं। त्रिपुरारि भक्तराज हैं एवं रामकथाके मुख्य-प्रवर्तक हैं—(पं०)। 'त्रिपुरारि' कहनेसे मंगलाचरणका सोरठा उपक्रम हुआ और यहां उसका उपसंहार हुआ। बालकाण्डमें जो कहाथा कि 'सपनेहु साँचहु मोहि पर जौं हरगौरि-पसाउ। तौ फुर होउ जो कहउँ सब...', उसमें जो हेतु था वही यहाँ है। पुनः, त्रिकूटाचलकी कथा कहनी है इससे त्रिपुरारि नाम दिया।

पां०—यह कांड शङ्करजीकी प्रसन्नतामें संपुटित है। क्योंकि 'मुक्ति-जन्म-महि जानि' यह आदि है और 'सिद्धि करहिं त्रिपुरारि' में विश्रामहै।

श्री० मि०—सप्तकांड रामचरितको सप्त पुरी कहाहै। चौथी पुरी काशी है वैसेही चौथा कांड यह है। अतएव इस कांडको काशी निरूपण करके प्रारंभमेंभी शंकरवंदना किष्किंधा-काशीका अधिष्ठाता देवता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जानकर किया और अन्तमें मनोरथका सिद्धकर्त्ता कहा। जैसे वरुणासे अस्सीतक काशी है वैसेही यहाँ 'आगे चले बहुरि रघुराया' में 'बहुरि' का 'ब' वरुणाके आदिका 'व' है और अन्तमें जो 'सिद्ध करहिं त्रिपुरारि' के 'सिद्ध' शब्दमें 'सि' है वही 'अस्सी' के अंतकी 'सी' है। यही वकार वरुणा और सिकार अस्सीके बीचकी किष्किंधा-काशी है। (इति मानस-मयंके)।

रा० प्र० श०—'विषम गरल जेहि पान किय' और 'को कृपाल संकर सरिस' आदिमें कहकर जनाया कि जिन्होंने देवताओंकी रक्षा की थी, वेही शिव इस कांडमें विरहानलसे दुःखी श्रीरामजी तथा त्रितापसे खेदित समस्त जीवोंकी रक्षा करें। अपने रूपान्तर श्रीहनुमान्‌जी द्वारा मिलकर श्रीयुगलमूर्तिके संतप्त हृदयको उन्होंने शान्त किया।

☞ उपरोक्त विचारोंसे पाठकोंको विदित होगया कि यहाँ दो पाठ मिलतेहैं। १७२१ की प्रतिलिपि और पं० रामगुलाम द्विवेदी की प्रतिलिपियोंमें 'त्रिसिरारि' पाठ है और पं० शिवलाल पाठक एवं काशीकी रामायणपरिचर्यामें 'त्रिपुरारि' है।—दोनोंमेंसे कविलिखित पाठ कौन है, निश्चय नहीं किया जासकता, दोनोंही प्राचीन प्रतिलिपियोंमें मिलतेहैं। अतएव हमने दोनों पाठ और उनके भाव देदेनाही उचित समझा।

नीलोत्पल † तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक।
सुनिय तासु गुन ग्राम जासु नाम अघ ‡ खग बधिक ॥३०

इति श्रीरामचरितमानसे सकल कलि कलुषविध्वंसने विशुद्ध संतोष संपादनो नाम चतुर्थः सोपानः समाप्तः ❀।

उत्पल=कमल। उपल=पत्थर, मणि।

अर्थ—नीलोत्पलके समान श्याम शरीर है जिसमें करोड़ों कामसेभी अधिक शोभा है। जिसका नाम पापरूपी पक्षियोंके लिए बहेलिया रूप है उसका यशसमूह (चरित) सुनिए।

† नीलोपल—(पं० रामकुमार)। ‡ 'खग अघ'-(रा० प०, काशी)
❀ 'संपादनो नाम चतुर्थः'—(न० प्र)। 'संपादनी नाम चतुर्थ'—(भा० द०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कलिके सम्पूर्ण पापोंका नाशक विशुद्ध संतोषका संपादन करनेवाला श्रीरामचरितमानसका चौथा सोपान समाप्त हुआ।

टिप्पणी—१ यहाँ रूप, गुण और नाम तीनों कहकर जनाया कि रूप हृदयमें धरे, गुण श्रवण कर, और नाम जपे। यथा—'श्रुति रामकथा मुख रामको नाम हिये पुनि रामहिको थलु है'—(क० उ०) † २ (क) 'नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक' इससे रूपका नियम किया कि जिस रूपसे मनुमहाराजके सामने प्रकट हुए उसीका ध्यान धरो। मनुको इसी रूपसे दर्शन हुआ, यथा—

'नीलसरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरषि कोटि कोटि सत काम॥"

(ख) 'सुनिय तासु गुन ग्राम', इस कथनसे गुणका नियम किया कि रामचरितमानस सुनो। मनुप्रार्थित मूर्तिका चरित मानसरामायण है। यथा—

'लीला कीन्ह जो तेहि अवतारा। सो सब कहिहौं मति अनुसारा।'

(ग) जासु नाम अघखग बधिक', इससे नामका नियम किया कि रामनाम जपो, अघखगगणवधिक रामनामही है, यथा—'राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघखगगन बधिका॥' बधिककी उपमा देनेका भाव कि वधिक स्वाभाविकही पक्षियोंका बध करताहै; इसी प्रकार रामनाम स्वाभाविक ही पापोंका नाश करताहै।

३—रामजीके रूप, गुण और नामका माहात्म्य कहकर यह कांड समाप्त किया।

४—☞ 'अस कहि गरुड़ गीध जब गयऊ' से यहाँ तक 'सुनि सब कथा समीरकुमारा' यह प्रसंग है। किष्किंधाकांडमें १४ प्रसंग हैं—(यह सब शीर्षकद्वारा दिखाएगएहैं)। [नोट—मंगलाचरणके श्लोकोंमेंभी नाम, रूप और लीला कथन कियाथा। उसी तरह यहाँ समाप्ति कीगई]।

५—प्रत्येक काण्डके अन्तमें जो फलस्तुति है वही सोपानका नाम है। जैसे कि—(१) बालकांडकी फलस्तुतिमें 'व्रत बंधुविवाहका वर्णन है

† 'तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः। श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम्॥' इति भागवते। अर्थात् हे अर्जुन, अभय चाहनेवाले पुरुष सर्वात्मा भगवान् हरि ईश्वरको श्रवण, कीर्त्तन और स्मरण करे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सो वह सब कर्म है। कर्मका फल सुख है। इसीसे बालकांड 'सुख-संपादन' नामका सोपान है। (२) अयोध्याकांडकी फलस्तुतिमें 'प्रेम और विरति' का वर्णन है इसीसे वह 'प्रेम वैराग्य संपादन' नामका सोपान है। (३) अरण्यकाण्डकी फलस्तुतिमें वैराग्य है, इसलिए वह 'विमल वैराग्य संपादन' नामका सोपान है। (४) किष्किंधाकाण्ड-की फलस्तुतिमें मनोर्थसिद्धि है। मनोर्थसिद्धिसे संतोष होताहै, इसीसे इसका 'विशुद्ध संतोष संपादन' नाम है। (५) सुंदरकांडकी फलस्तुतिमें ज्ञानकी प्राप्ति है, यथा—'सकल सुमंगलदायक रघुनायक गुनगान'। सुमंगल ज्ञानका नाम है, इसीसे वह 'ज्ञान संपादन' नामका सोपान है। (६) लंकाकांडकी फलस्तुतिमें विज्ञानका वर्णन है, यथा—'कामादि-हर विज्ञान-कर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा'। इसीसे वह 'विज्ञान-संपादन' नामक सोपान है। और (७) उत्तरकांडकी फलस्तुतिमें 'अविरल हरिभक्ति' का वर्णन है, यथा—'तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम'। इसीसे वह 'अविरल हरिभक्ति संपादन' नामका सोपान है।—खुलासा (सारांश) यह कि बालमें धर्म, अरण्यमें वैराग्य, किष्किंधामें संतोष, सुन्दरमें ज्ञान, लंकामें विज्ञान और उत्तरमें अविरल हरिभक्ति कही है।

☞ जैसा क्रम सातो कांडोंकी फलस्तुतिमें है उसी प्रकार धर्म, वैराग्य, संतोष, ज्ञान, विज्ञान और हरिभक्तिकी प्राप्तिका क्रम है। अर्थात् धर्मका फल वैराग्य है, वैराग्यका संतोष, संतोषका ज्ञान, ज्ञानका विज्ञान और विज्ञानका फल हरिभक्ति है।

नोट—'सुनिय तासु गुनग्राम... बधिक' में परंपरित रूपक है। 'नीलोत्पल तन श्याम' में वाचकलुप्तालंकार है।

पं०—कांडके अंतमें ध्यान और नामका उपदेश देनेका भाव यह है कि जैसे शयनके समय नामका जप और प्रभुका ध्यान करताहुआ सोवे तो जाग्रतिकालमेंभी शुभ वासना होतीहै, वैसेही समाप्तिमें प्रभुका ध्यान करनेसे अगले काण्डका उत्थापनभी आनन्द पूर्वक होगा।

प्र०—कुछ लोगोंका मत है कि 'बन बसि कीन्हे चरित अपारा०' इस प्रश्नका उत्तर अरण्यकाण्ड है। क्योंकि उसका नामही वनकांड है। कुछका मत है कि यथार्थ उत्तर इसका अरण्य, किष्किन्धा और सुंदर तीनों काण्ड हैं। इसके उदाहरणभी देते हैं।—(अरण्यकांडमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अरण्यके कुछ उदाहरण दिएजाचुके हैं)। किष्किंधाके उदाहरण, यथा—'छत्री रूप फिरहु बन बीरा', 'कवन हेतु बन बिचरहु स्वामी', 'सहत दुसह बन आतप बाता', 'कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव', सुंदर बन कुसुमित अति सोभा', 'मंगलरूप भएउ बन तब ते', 'चले सकल बन खोजत०' और 'बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं' इत्यादि। इसी प्रकार सुंदरमेंभी वन शब्द आयाहै, यथा—'कुवलय बिपिन कुंतवन सरिसा', 'तब मधुबन भीतर सब आए' और 'जाइ पुकारे सकल बन उजार जुवराज'।

महादेवजी—गोस्वामीजीने इस कांडमें ३० दोहे क्यों रक्खे और इसे सबसे छोटा क्यों बनाया ? उत्तर १—'३० दोहेका भाव कि मानों यह तीसामंत्र है। और अपर जो छः कांड हैं वे संपुट हैं। जिनमेंसे बाल, अयोध्या, अरण्य ऊपरका ढकना है और सुंदर, लंका, उत्तर नीचेका पल्ला है। इसके मध्यमें यह कांड रत्न-रूप है। डब्बेसे रत्न छोटा होनाही चाहिए अतः यह छोटा है और इसका मूल्य विशेष है, इसमें बहुत अर्थ भरेहैं। अथवा, २—किष्किंधा रामजीका हृदय है। यथा—'बालकांड प्रभुचरण अयोध्या कटि मन मोहै। उदर बन्यो आरण्य हृदय किष्किंधा सोहै' इति मानसाचार्येणोक्तम्। तहाँ हृदय शरीरके मध्यमें और छोटा होताहै। वा, ३—इसमें श्रीजानकीजीकी प्राप्तिका संबंध किसी पदमें पाया नहीं जाताहै। अतएव श्रीजानकी-वियोग-बिरह विचारकर थोड़ा (३० ही दोहेमें कथा) लिखकर समाप्त किया।

'सुनि सब कथा समीर कुमारा'—प्रकरण
एवं चतुर्थ सोपान समाप्त हुआ

श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु

श्रीहनुमतेनमः। श्रीरामभक्त-भगवन्त-गुरुचरणकमलेभ्योनमः॥

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY.
Jangamwadi Math, VARANASI,
Acc No. 2283
CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri